सैंतालीस शक्तियाँ

* देशनाकार *

आचार्य विशुद्धसागर मुनि

जीवराज जैन ग्रंथमाला, सोलापुर.
(हिंदी विभाग पुष्प 78)

सैंतालीस शक्तियाँ

- देशनाकार -
श्रमणाचार्य विशुद्धसागर

- प्रकाशक -
जैन संस्कृति संरक्षक संघ
(जीवराज जैन ग्रंथमाला)
'जीवराज भवन', टी.पी.4, प्लॉट नं. 56/10, बुधवार पेठ, जुना पुणे नाका, सोलापुर-2.
पोस्ट बॉक्स नं. 110, फोन-0217-2321008, मो. 9421040022.
● E-mail-jeevarajgranthmala@gmail.com

- प्रस्तुत कृति – सैंतालीस शक्तियाँ
- देशनाकार – श्रमणाचार्य विशुद्धसागर
- संकलन – श्रवण सुव्रतसागर मुनि
- संपादन – पं. शिवचरन लाल जैन, मैनपुरी
- संस्करण – प्रथम, वर्ष 2018 (वीरसंवत् 2544) 1500 प्रतियाँ
  द्वितीय, वर्ष 2018 (वीरसंवत् 2544) 2000 प्रतियाँ
- पुण्यार्जक – पुण्यार्जक परिवार
- प्राप्ति स्थान – श्री आजाद कुमार जैन, इंदौर (मो. 94253-21151)
  श्री मनीष जैन 'मोना' (मो. 98262-10189)
  श्रमण साहित्य केन्द्र, भोपाल (मो. 94253-74897)
  जीवराज जैन ग्रंथमाला, सोलापुर (मो. 94210-40022)
- मूल्य – रू. 200/-
- मुद्रक – विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
  45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल
  फोन : 0755-2601952, 9425005624

जीवराज जैन ग्रंथमाला का परिचय

सोलापुर निवासी श्रीमान् स्व. ब्र. जीवराज गौतमचंद दोशी कई बरसों से संसार से उदासिन होकर धर्मकार्य में अपनी वृत्ति लगाते रहे । सन १९४० में उनकी यह प्रबल इच्छा हो उठी कि अपनी न्यायोपार्जित संपत्ति का विनियोग विशेष रुप से धर्म और समाज की उन्नति के कार्य में करें । तदनुसार उन्होंने समस्त भारत का परिभ्रमण कर जैन विद्वानों से, इस बात की साक्षात् और लिखित संमति याँ संग्रह कीं, कि कौनसे कार्य में संपत्ति का उपयोग किया जाय । स्फुट मतसंचय कर लेने के पश्चात् सन् १९४१ के ग्रीष्म काल में ब्रह्मचारीजी ने श्री सिद्धक्षेत्र गजपंथ की पवित्र भूमि पर विद्वानों की समाज एकत्रित की और ऊहापोहपूर्वक निर्णय के लिये उक्त विषय प्रस्तुत किया । विद्वत् संमेलन के फलस्वरुप ब्रह्मचारीजी ने जैन संस्कृति तथा साहित्य के समस्त अंगोंके संरक्षण, उद्धार और प्रचार के हेतु **'जैन संस्कृति संरक्षक संघ'** नामक संस्था की स्थापना की और उसके लिये (३०,०००) तीस हजार रुपयों के दान की घोषणा कर दी । उनकी परिग्रह निवृत्ति बढ़ती गई । सन १९४४ में उन्होंने लगभग (२,००,०००) दो लाख की अपनी संपूर्ण संपत्ति संघ को ट्रस्ट रूप से अर्पित की । इसी संघ के अंतर्गत **'जीवराज जैन ग्रंथमाला'** का संचालन हो रहा है ।

* - विश्वस्त मंडल - *

श्री. अरविंद रावजी दोशी, मुंबई
श्री. ब्र. विद्युल्लता हिराचंद शहा, सोलापुर.
डॉ. सौ. त्रिशलादेवी अप्पासाहेब नाइगौडा पाटील, रबकवी.
श्री. हर्षवदन रतनचंद शहा, सोलापुर.
सौ. शोभना त्रिभुवन शहा, अकलुज.
सौ. प्रियदर्शनी सी. जदेरिया, मुंबई.
श्री. सचिन शशिकांत शहा, मुंबई.

कहाँ क्या?

	सम्पादकीय	vi-xiii
	ग्रंथ मंगलाचरण	xv
(1)	जीवत्व शक्ति	1
(2)	चिति-शक्ति	13
(3)	दृशि-शक्ति	13
(4)	ज्ञान-शक्ति	13
(5)	सुख-शक्ति	13
(6)	वीर्य-शक्ति	27
(7)	प्रभुत्व-शक्ति	37
(8)	विभुत्व-शक्ति	51
(9)	सर्वदर्शित्व-शक्ति	55
(10)	सर्वज्ञत्व-शक्ति	63
(11)	स्वच्छत्व-शक्ति	75
(12)	प्रकाश-शक्ति	81
(13)	असंकुचित-विकाशत्व-शक्ति	81
(14)	अकार्यकारणत्व-शक्ति	99
(15)	परिणम्य परिणामकत्व-शक्ति	99
(16)	त्यागोपादानशून्यत्व-शक्ति	99
(17)	अगुरुलघुत्व-शक्ति	127
(18)	उत्पादव्ययध्रुवत्व-शक्ति	139
(19)	परिणाम-शक्ति	139
(20)	अमूर्तत्व-शक्ति	139

(21)	अकर्तृत्व-शक्ति	175
(22)	अभोक्तृत्व-शक्ति	185
(23)	निष्क्रियत्व-शक्ति	195
(24)	नियत प्रदेशत्व-शक्ति	195
(2 5)	स्वधर्मव्यापकत्व-शक्ति	215
(26)	साधारणासाधारण धर्मत्व-शक्ति	215
(27)	अनन्त धर्मत्व-शक्ति	215
(28)	विरुद्ध धर्मत्व-शक्ति	231
(29)	तत्त्व-शक्ति	243
(30)	अतत्त्व-शक्ति	243
(31)	एकत्व-शक्ति	255
(32)	अनेकत्व-शक्ति	255
(33)	भाव-शक्ति	265
(34)	अभाव-शक्ति	273
(35)	भावाभाव-शक्ति	283
(36)	अभाव-भाव-शक्ति	295
(37)	भाव-भाव-शक्ति	295
(38)	अभाव अभाव-शक्ति	295
(39)	भाव-शक्ति	295
(40)	क्रिया-शक्ति	295
(41)	कर्म-शक्ति	329
(42)	कर्तृ-शक्ति	329
(43)	करण-शक्ति	347

(44)	सम्प्रदान-शक्ति	359
(45)	अपादान-शक्ति	371
(46)	अधिकरण-शक्ति	371
(47)	सम्बन्ध-शक्ति	371
	आत्मस्वरूप	395
	सद्बोधः सिद्धलोक	433
	आत्मोदय	444
	ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता	467
	स्याद्वाद शक्ति	479
	स्व-स्वभाव-महिमा	501
	ज्ञायकस्वभाव	527
	शब्दोंसे शास्त्र सृजन	541
	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	551

सम्पादकीय

(पं. शिवचरनलाल जैन)

जास के मुखारविंद तैं, प्रकाश भास वृन्द,
स्याद्वाद बैन जिमि, इन्दु कुन्दकुन्द से ।
तास के अभ्यास तैं, विकास भेदज्ञान होत,
मूढ़ सो लखै नहीं, सुबुद्धि कुन्दकुन्द से ॥
देत हैं असीस सीस नाय, इन्द्र चन्द्र जाहि,
मोह मारखंड, मारतंड कुन्दकुन्द से ।
शुद्ध बुद्धि सिद्धि दा, प्रसिद्ध ऋद्धि सिद्धि दा,
हुए, न हैं, न होहिंगे मुनीन्द्र कुन्दकुन्द से ॥ (वृन्दावनलाल)

ताही गुरुदेव की वाणी हिए में धारि,
ज्ञान की प्रभावना में लसैं रवि चन्द से ।
करी है प्रकट देशना प्रमाणयुक्त,
शब्दशब्द परिपूरित, स्वाध्यात्म कन्द से ॥
तास के उपयोग तैं मोहान्धकार नाश होत,
शोभित हैं , मधुर कलाकन्द से ।
देशना के मानदण्ड, आगम के प्रबल पक्षी,
विरल हैं जैनाचार्य, श्री विशुद्ध सिन्धु से ॥स्वोपज्ञ॥

दिगम्बर जैन श्रमण परम्परा के स्थायित्व व सुष्ठुकरण हेतु विश्ववन्द्य, बहुविश्रुत आद्य गुरु आचार्य कुन्दकुन्द विख्यात महर्षि हैं। उनका विपुल साहित्य अध्यात्म दर्शन एवं आचार के लिए प्रकाश स्तम्भ है । समयसार उनकी प्रमाण नय युक्त आध्यात्मिक चेतना को झंकृत कर, पाठक को स्वात्मतत्त्वोपलब्धि हेतु अद्वितीय रचना है। उन्होंने ग्रंथ रचना श्रमणों को लक्ष्य में रखकर की है। यह ध्यान में रखकर पारायण करने योग्य है। अन्यथा नयों के उतार-चढ़ाव में भटकाव, निश्चयैकान्त संभव है, जो आकण्ठ विषय-कषायों में डूबे जनों के लिए दुर्गति व पतन का कारण है।

समयसार की टीकाओं में से मुख्य अध्यात्म शिरोमणि आचार्य अमृतचन्द्र जी की प्रथम **'आत्मख्याति'** नामक मूल 415 गाथाओं व 278 अध्यात्म अमृत कलशमय टीका है। इस ग्रन्थ को उन्होंने नाटक समयसार का रूप दिया है। पृथक् से स्याद्वाद अधिकार की रचना के अन्तर्गत आत्मतत्त्व की 47 शक्तियों का निरूपण कर अनेकान्त-स्याद्वाद का विषयपरक विवेचन किया है। स्याद्वाद अधिकार इसका प्रतीक है।

परमपूज्य श्रमणाचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज ने अनेकों ग्रंथों पर देशनाओं के अतिरिक्त ग्रंथराज समयसार जी पर विशालतम देशना प्रदान की है। प्रस्तुत 'सैंतालीस शक्तियोंका विशद व्याख्यान' पाठकों के हाथों में है। यद्यपि पूर्व में ये विशिष्ट प्रवचन समाज के द्वारा श्रवण कर अपेक्षित लाभकारी सिद्ध हुए हैं, तथापि वाङ्मय को स्थायी रूप देकर अध्येताओं एवं अध्यात्म रसिकों के लिए प्रकाशित किया जा रहा है। ध्यान देने योग्य है कि पूर्व के व्याख्यान में क्रमशः परिष्कृत होती हुए देशना प्रस्तुत ग्रंथ में आध्यात्मिक साहित्य के

शिखर पर विराजमान हो रही है। यह आचार्य श्री का महदुपकार है। ठीक भी है समयसार की हार्द **'आत्म स्वभावं परभाव भिन्नं'** की दैनन्दिनी, देशना समापन विधि, उनका स्वभाव ही बन गई है। वे समाज के, व्यक्ति के हित में रत हैं। **''परोपकाराय सतां विभूतयः''** उन पर सटीक चरितार्थ होती है। वे ज्ञान -ध्यान-तप साधना के साथ ही आध्यात्मिक चेतना जाग्रत करने हेतु बड़े संप्रयास कचे वरीयता देते हैं। अन्यत्र उपयोग भ्रमाने को वे निरर्थक मानते हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में वर्ण्य विषयों का प्रतिपादनः

यहाँ हम कतिपय बिन्दुओं द्वारा एतद् विषयक प्रकाश डालेंगे।

1. जैन न्याय की अध्यात्म विषयक पूरकता व संगति - ज्ञातव्य है कि अनेकान्त जैनागम का प्राण है। आचार्य विशुद्धसागर जी प्रमाण, नय, निक्षेप व स्याद्वाद से अलंकृत अनेकान्त सिद्धान्त के तलस्पर्शी विद्वान् हैं। उन्होंने देशना द्वारा यह सिद्ध किया है कि उनकी अध्यात्म विषयक गहरी पैठ जैन विद्या के अपरिहार्य सिद्धान्त न्याय की भित्ति पर आधारित है। द्रव्यानुयोग के मूल तत्त्व अध्यात्म को हृदयंगम करने के लिए प्रमाण, द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नय, निश्चय-व्यवहार नय, प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रमाण आदि के प्रतिपादन करते हुए अध्यात्म-मंजूषा समयसार की देशना को अत्यंत प्रामाणिकता के साथ चार चाँद लगाये हैं। **न्यायशास्त्र तो मानो आचार्य श्री के ज्ञानोपयोग के अंश-अंश में भरित हैं। प्रतिपादन एवं मूल मन्तव्य 'पर से भिन्न, निज से अभिन्न' आत्मस्वरूप का ही है।**

02. आचार्य विशुद्धसागर जी की प्रस्तुत देशना में अध्यात्म, न्याय और उपयोगी वैराग्यपरक लगभग 1000 उद्धरण प्रसिद्ध परम्पराचार्यों के दिये गये हैं, जिनसे वे देशना को प्रामाणिकता के साथ सभी जन समुदाय को यथार्थ रूप में गले उतारने में समर्थ हुए हैं।

03. अध्यात्म विषय प्रतिपादन में उन्होंने यह सिद्ध किया है कि न्याय के पुरोधा समन्तभद्र के मन्तव्य को हृदयंगम किये बिना कुन्दकुन्द के आत्मतत्त्व के विवेचन को नहीं समझा जा सकता। उन्होंने **आप्त मीमांसा, अकलंककृत स्वरूप संबोधन, लघीयस्त्रय, आलाप पद्धति, नयचक्र, अमृतचन्द्रकृत स्याद्वादमय कलश, प्रवचनसार, मूलाचार कार्तिकेयानुप्रेक्षा, तत्त्वार्थसूत्र** आदि ग्रन्थों के उपयोगी महनीय अंशों को यथास्थान सटीक प्रयुक्त किया है। आम जनता के लिए न्याय और अध्यात्म के गूढ़, रहस्यों को सरल करके घूंटी-सी पिलाई है।

04. प्रस्तुत देशना जीव तत्त्व की 47 शक्तियों का बृहद् रूप में व्याख्यान, और उससे आत्मतत्त्व की गवेषणा का विस्तृत स्वरूप है। **इस देशना से यह बड़ा लाभ है कि अध्येता, अनेकों ग्रंथों का ग्रन्थालय न देखकर यहाँ अधिकाधिक ग्रंथों के सार को सहज में समझ सकता है।**

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने जीवत्व, परिणाम आदि शक्तियों से युक्त स्याद्वाद अधिकार में 47 शक्तियों का गूढ़, पाण्डित्यपूर्ण जो प्रकटीकरण किया है वह उनकी विशेषता है, प्रवचनसार जी में इसी प्रकार 47 नयों को परिशिष्ट में प्रस्तुत किया है। इन दोनों में संगति है। शक्तियों में कुछ शक्तियाँ परस्पर विरुद्ध भी हैं जो अनेकांत से सिद्ध हैं। जैसे भावशक्ति और अभावशक्ति और उनके सात भंगों का बहुत ही तर्क, युक्ति, स्याद्वाद के द्वारा विस्तृत विवेचन किया है। इसी प्रकार एकत्वशक्ति, अनेकत्व शक्ति अचैर षट् कारकों द्वारा क्रियाशक्ति, कर्मशक्ति, करणशक्ति आदि के विशेष व्याख्यान द्वारा अमृतचन्द्र स्वामी के मंतव्य को खुलासा किया है। **वस्तुतत्त्व एकान्त-दृष्टि से नहीं समझा जा सकता, क्योंकि वह तो अनेकान्तमय है अनेक पहलू वाला है।**

स्याद्वाद की शुद्धि को प्राप्त कर एवं जिननीति का उल्लंघन न करते हुए ही ज्ञानी संज्ञा प्राप्त होती है। (कलश-265– "नैकान्तसंगत दृशा स्वयमेव वस्तु.....)"

आचार्य श्री ने कहा है कि परदृष्टि हटाकर निजता की ओर आने के लिए इन शक्तियों के तत्त्वज्ञान का प्रयोग किया जाता है जो कि समयसार का हार्द है। श्रमणाचार्य जी का प्रतिपादन अद्वितीय है। आचार्य अमृतचन्द्र जी ने कलश संख्या 264 में स्पष्ट किया है कि–

इत्याद्यनेक निजशक्ति सुनिर्भरोऽपि
यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः।
एवं क्रमाक्रम विवर्ति विवर्त चित्रं,
तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ॥264॥

इत्यादि 47 आदि अनेक अनन्त शक्तियों से परिपूर्ण होने पर भी जो भाव ज्ञानमात्रपने को नहीं छोड़ता, ऐसा वह क्रम और अक्रम रूप से वर्त्तमान विवर्त्ति यानी पर्याय से विवर्त्त होने से विचित्र द्रव्यपर्यायमय चैतन्य वस्तु है। इसी हेतु आचार्य ने क्रमपर्यायदृष्टि और अक्रमपर्यायदृष्टि दोनों का उल्लेख किया है।

इस विषय को बहुत व्यापक और सुस्पष्ट ढंग से देशनाकार ने श्रोताओं के गले उतारा है। यह सब उनकी अनेकान्त-स्याद्वाद दृष्टि से संभव हुआ है। **मेरे देखने में तो अब तक 47 शक्तियों का आध्यात्मिक गरिष्ठता एवं ज्ञानमय विवेचन के साथ विशद व्याख्यान का प्रसंग प्रथम बार ही आया है। कुल मिलाकर यह बृहत् प्रतिपादन बहुत महत्त्वपूर्ण है। ग्रन्थ में शीर्षकवार 47 शक्तियों के नाम व अर्थ लिखे हैं। पाठक को इससे सुविधा होगी।** उदाहरणार्थ जीवत्व शक्ति के अंतर्गत "आत्मतत्त्व के हेतुभूत चैतन्यभाव को धारण करने वाली जीवत्व शक्ति है, इसके कारण ही जीव जीवित था, है और रहेगा।"

स्याद्वाद अधिकार के अंतर्गत ही पूर्व में वर्णित 47 शक्तियों के वर्णन के पश्चात् उपायोपेय भाव के विस्तार के लिए विभिन्न शीर्षकों द्वारा समयसार के अध्येताओं को एकान्त नयाभास के पतन के बचाने के लिए महत्त्वपूर्ण विवेचन किया है जो कलशों पर आधारित है। यहाँ शीर्षकों का नामोल्लेख करना उपयोगी होगा। कलश भी प्रस्तुत किए गये हैं।

(1) आत्मस्वरूप (2) स्याद्वाद-न्याय (3) सद्बोधः सिद्धलोक (4) ज्ञान नय, क्रिया नय (5) अनन्त चतुष्टय (6) आत्मोदय (7) शक्तिपिंड आत्मा (8) ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता (9) स्याद्वाद शक्ति (10) अनन्त धर्मात्मक वस्तुस्वरूप (11) स्वस्वभाव-महिमा (12) चैतन्य चमत्कार (13) अमृतचन्द्र ज्योति (14) नयसंयोग से विभिन्न भाव (15) शब्दों से शास्त्र सृजन।

उपरोक्त शीर्षकों के प्रवचनाधार अंतिम 15 कलश हैं, उन पर **आचार्य श्री विशुद्धसागरजी ने देशना का उपसंहार करते हुए समयसार के अध्यात्म अमृत को न्याय, प्रमाण, स्याद्वाद के मधुर पात्र में उड़ेल कर श्रोताओं को धर्मविवेचन के शिखर पर पहुँचाया है।** देशनाकार पूरी तरह आचार्य अमृतचन्द्र जी की आत्मख्याति और उसके कलश के गरिष्ठ अभ्यासी हैं व उससे संतृप्त हैं, यही कारण है कि उन्होंने सरलीकरण में आचार्य जयसेन स्वामी का उल्लेख नहीं किया या नाममात्र कहीं किया है। यदि आज के समय तक देखा जाये तो अमृतचन्द्र जी की इस कृति पर इतनी विशद विवेचना जो आम जनता, भोले-भाले जनमानस के कर्ण-कुहरों को सरल भाषा में आनंदित करने वाली हो और सम्यक् बोधदायिनी हो तो वह श्रमणाचार के धनी आचार्य विशुद्धसागर जी जैसे महावक्ता के श्रीमुख से प्रसूत हुई देशना ही है।

यहाँ हम विस्तार के भय से अपनी बात न प्रस्तुत कर आचार्य श्री के कतिपय विशिष्ट देशना दृष्टिकोण को हृदयंगम करेंगे।

"(ध्रुवत्व शक्ति) क्रमाक्रमवृत्तवृत्तत्वलक्षणोत्पादव्ययध्रुवत्वशक्तिः।" (आत्मख्याति) देशना पृ.-139। क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है, 'उत्पाद व्यय ध्रुवत्व' शक्ति है। यहाँ स्पष्ट है कि पर्यायें क्रम, अक्रम दोनों प्रकार की हैं। एक समय में एक होती है, मात्र इसीलिए क्रमवर्त्ती कहलाती हैं, क्रमबद्धता का एकांत ज्वर ठीक नहीं।

जैसी उपादान निमित्त्व की अनुकूल स्थिति होती है, वैसा परिणमन हो जाता है। "देशना पृ.-404, इस श्लोक (आप्तमीमांसा-101) की व्याख्या आप अष्ट सहस्री में पढ़ोगे तब जितने भी क्रमबद्ध वाले दिखाई देते हैं, वे सब दृष्टि से उतर जायेंगे। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने कलश नं.264 में लिखा है– "(इत्याद्यनेक निजशक्ति सुनिर्भरोऽपि यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः। एवं क्रमाक्रमविवर्त्ति विर्वत्त चित्रं, तद्द्रव्यपर्ययमयंचिदिहास्ति वस्तु), क्रमभावी। क्योंकि हम जो भी निर्णय करेंगे, पर ज्ञान से नहीं करेंगे निज ज्ञान से करेंगे, (आत्मा) अपने ज्ञानमयी भाव को नहीं छोड़ता। किसके ज्ञान में अपने ज्ञानमयी भाव को नहीं छोड़ता है ? कैसा है ज्ञानमयी भाव ? क्रमाक्रम। 'अनेकान्त के अभ्यासियों को तो एक दृष्टि से क्रम, एक दृष्टि से अक्रम दोनों पर्यायें स्वीकार्य होना चाहिए। **'सव्वं सप्पडिवक्खो'** अर्थात् सब सप्रतिपक्ष सहित है, क्रम है तो कुछ अक्रम भी है। न्यायशास्त्रों के अनेकों उद्धरणों द्वारा देशनाकार ने यह विषय स्पष्ट किया है, जो दुंदुभि ध्वनि के समान है। आत्मख्याति में कई स्थानों पर क्रम और अक्रम दोनों प्रवृत्तियों का उल्लेख है।

आचार्य श्री ने पृ. सं.-225, पर उल्लेख किया है- 'आत्मप्रवाद पूर्व कितना विशाल होगा। कुन्दकुन्द स्वामी ने तो अंशमात्र का व्याख्यान किया है। समयसार जी ग्रंथ में जो आत्मा की व्याख्या है वो अंशमात्र है और इसमें कोई शंका मत करना। वर्तमान में विश्व में समयसार से बड़ा द्रव्यानुयोग का व्याख्यान करने वाला कोई ग्रंथ नहीं हैं। और इस युग में भारत भूमि में जन्म लेकर इस ग्रंथ को नहीं समझ पाये तो आपको मनुष्य पर्याय को प्राप्त करना कोई सारभूत नहीं है। निर्ग्रन्थों को तो बिल्कुल समयसार में लग जाना चाहिए।"

(आशय यह है कि गृहस्थ भी पढ़े तो वह सिद्धान्त, न्याय, अनेकांत-स्याद्वाद दृष्टि से पढ़े वरना उल्टा समझेगा, अकल्याण होगा, नरक, निगोद, कुगति का पात्र होगा।)

यहाँ एक बात जरूर कहना चाहूँगा कि 'समयसार' में अग्रायणीय पूर्व एवं ज्ञानप्रवाद पूर्व का भी अंश व्याख्यान है। न्यायदर्शन तो ज्ञानप्रवाद पूर्व से ही निर्गत है। समयसार में न्याय का भरपूर प्रयोग है। आचार्य श्री ने तो न्याय विषयक विशिष्ट उपदेश दिया है। आचार्य अमृतचंद्र स्वामी ने कहा है– **"अनेकान्तात्मक वस्तुनि परस्पर विरुद्ध शक्ति द्वय प्रकाशन मनेकान्तः"**। (आत्मख्याति) अर्थात् अनेक पार्श्व वाली वस्तु में विद्यमान परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों को प्रकाशित करना, निरूपित करना अनेकान्त है।

अध्यात्म के मूर्धन्य मणी इन आचार्य की अद्वितीय पांडित्यपूर्ण शैली के भक्त और रसिक देशनाकार आचार्य के निम्न शब्द ध्यान देने योग्य हैं -

"ये सैंतालिस शक्तियों का वर्णन तो अमृतचंद्र की कथन शैली है।" यह बहुत बड़ा न्यायशास्त्र चल रहा है। एकत्व शक्ति, अनेकत्व शक्ति और दोनों विरुद्ध शक्तियाँ हैं। यह तो स्याद्वाद (अनेकान्त का वाचक) की महिमा है। **दो विरुद्ध धर्मों को एक वस्तु में दिखा दे, इसका नाम स्याद्वाद है।** अकलंक ग्रंथत्रयी– लघीयस्त्रय, सिद्धिविनिश्चय, न्यायविनिश्चय है। अकलंक स्वामी ने ग्रंथ भी लिखे और टीका भी स्वयं लिखी।

बेटा ! पेट भरने के लिए दुनियाँ पंडित बनती है। बेटा ! पुण्य का नियोग होगा तो पेट भर जायेगा। अपने को तो जिनवाणी का कोष भरने के लिए विद्या पढ़ना है। जब-जब न्याय की कक्षा चलेगी तब-तक पंचम काल की अन्तिम श्वासों तक आचार्य अकलंक, आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य समन्तभद्र को कोई भूल नहीं सकता है और कुन्दकुन्द देव के समयसार को किसी ने विख्यात किया है तो वे हैं, आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी, आचार्य जयसेन स्वामी''। (पृ.-260)

''एक आत्मा अनेक पर्यायों में जाने के बाद भी अपने चैतन्यभूत स्वभाव का परित्याग नहीं करता है – यह एकत्व शक्ति हैं'' .. एकस्वभावी एकत्व शक्ति ''। (पृ.-261)

''एक द्रव्य व्याप्यानेक पर्यायमयत्वारूपा अनेकत्वशक्तिः''। (32/पृ.-261 देखो,) विपरीत धर्म, अनेकत्वशक्ति भी हमारे भीतर है। मैं एक जीव द्रव्य अनेक पर्यायों में जाने की क्षमता मेरे में है। अनेक पर्यायों में प्रवेश किया है– अनेकत्व शक्ति। (पृ.-261)

यहाँ देशनाकार ने स्पष्ट किया है कि दोनों शक्तियाँ एक आत्मद्रव्य में मौजूद हैं। जो द्रव्य एक है वही अनेक है, यहाँ अमृतचन्द्र जी का कलश दृष्टव्य है।

एकस्य चैको न तथा परस्य,
चिति द्वयोर्द्वावितिं पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस् ,
तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥81॥

आचार्य कुन्दकुन्द ने स्वयं ही मूल ग्रन्थ में उल्लिखित किया ही है-

कम्मं बद्धमबद्धं, जीवे एवं तु जाण णयपक्खं।
पक्खातिक्कंतो पुण, भण्णदि जो सो समयसारो ॥142॥

यहाँ यह स्पष्ट है कि जो निश्चयैकान्ती हैं, निश्चयाभासी हैं, उन्होंने यह मान्यता पकड़ रखी है, कि यह अनेकान्त है कि द्रव्य तो सर्वथा एक अथवा नित्य अथवा अन्यरूप ही है, मात्र पर्याय अनेक हैं अर्थात् अनेकान्त दो वस्तुओं में हुआ। पर्याय को भी द्रव्य से भिन्न मानने की कल्पना भी आगमविरुद्ध रूप से मान रखी है। स्याद्वादी निर्णय तो, **जो द्रव्य एक है वही अपेक्षा दृष्टि से अनेक है, जो शुद्ध है वही अशुद्ध है। वह अपने शुद्ध स्वरूप को रत्नत्रय के द्वारा प्राप्त करले तो एक, शुद्ध हो सकता है।**

उपर्युक्त प्रकार आचार्य विशुद्धसागरजी महाराज ने जो विवेचन किया है, वह बहुत प्रभावक, आगमानुकूल, आस्तिक्यमय एक जैनागम के प्राण **अनेकान्त** के अनुसार है, प्रमाणभूत है। हमें अपने दृष्टिकोण को निम्न कारिका के अनुसार सापेक्ष बनाना चाहिये।

सर्वथा नियमत्यागी यथादृष्टमपेक्षकः।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये, नान्येषामात्मविद्विषां ॥समन्तभद्र ॥

'सर्वथा' इस नियम को त्याग करने वाला, यथादृष्टि का आपेक्षी 'स्यात्' शब्द, हे प्रभो ! आपके न्याय-प्रमाण में है, अन्य आत्मतत्त्व के विद्वेषियों के यहाँ नहीं। उपर्युक्त सम्पूर्ण विषय देशना में सुष्ठुरूपेण समाहित किया गया है।

समग्रदेशना

सामान्य दृष्टि से ऊहापोह करने से ज्ञात होता है कि पूर्व से अग्रिम भाग में प्रौढ़ता व अध्यात्म का

प्रमाणपूर्ण विवेचन क्रमशः वृद्धिंगत और परिष्कृत होता हुआ विदित होता है। **आम समाज के लिए सरल बनाने का सम्यक् प्रयत्न देशनाकार ने किया है। प्रौढ़ स्वाध्याय प्रेमियों एवं विद्वानों के लिए तो मानो श्रमणाचार्य जी ने समयसार के मध्य का ताला खोलकर अध्यात्म-अमृत पान कराके महदुपकार किया है। इसके लिए उन्हें युगों-युगों तक स्मृत एवं अभिवन्दित किया जाता रहेगा।**

मेरी दृष्टि में इतनी विस्तृत सर्वजनोपयोगी, व्यावहारिक देशना ने तो मुझे ही क्यों, बड़े-बड़े अभ्यासियों को भी चमत्कृत किया होगा। विशेष यह भी कहना चाहूँगा कि **यह विशाल समुद्र जो जैन वाङ्मय का भंडार है, सभी के लिए स्पृहणीय होगा। आचार्य श्री का उपकार तो श्रोताओं और पाठकों के मन मस्तिष्क में सदैव उच्च स्थान बनाये रहेगा। विद्वानों के मस्तक की टीकारूप इस देशना के आगे माथा स्वतः झुक जायेगा।**

इस ग्रंथ में यानी कुल देशना में प्रत्येक बात के स्पष्टीकरण तो आश्चर्यचकित कर देते हैं। पुनश्च, इसमें अनेकानेक संख्या में शास्त्रीय उद्धरण तो माला में मोती के समान पिरोये गये हैं। देशनाकार का श्रम तो उनके लिए सातिशय पुण्य का कारण है और अवगाहन करने वालों के लिए भी ज्ञानावरण के क्षयोपशम और पुण्य का सम्पादक होगा। इनके भगीरथ प्रयत्न का मूल्यांकन सम्यक्रूप से अध्ययन करने वाला ही कर पायेगा। कहा भी है, **"विद्वानेव जानाति विद्वज्जन परिश्रमं"** अर्थात् विद्वान् मनीषी ही इसका सही महत्त्व जान पायेगा।

अब हम विस्तार के भय से प्रस्तुत देशना व देशनाकार मात्र के विषय में एकादि आध्यात्मिक कवि के शब्दों में महत्त्व वर्जित करेंगे। आचार्य अमृतचन्द्र जी ने इसे नाटक का रूप दिया है और देशनाकार ने उस नाटक का प्रस्तार किया है। उसका महत्त्व भी प्रकट करेंगे, देशना के विषय पर भी प्रकाश पड़ेगा। इसे प्रस्तुत करने का लोभ-संवरण हम नहीं कर पा रहे हैं। प्रस्तुत हैं (सभी बनारसीदास कृत समयसार नाटक के हैं)-

"है है कहूँ तो है नहीं, नहीं कहूँ तो है।
है औ नहीं के बीच में जो कुछ है सो है॥ (आ.श्री, "जो है सो है"।)

मोख चढ़वे को सौन, करम को करै बौन,
याके रस भौन बुध लौन ज्यों धुलत है।
गुन को गरंथ, निरगुन को सुगम पंथ,
जाको जस कहत सुरेस अकुलत है॥
या ही के पच्छी ते उड़त ज्ञान गगन में,
याही के विपक्षी जगजाल में रुलत है।
हाटक सो विमल, विराटक सो विस्तार,
नाटक सुनत हिय फाटक खुलत है॥

उपर्युक्त शब्द समयसार के साथ ही समय देशना पर भी लागू होते हैं।
"देशना सुनत मुक्ति मारग मिलतु है।" चरितार्थ होता है।

"एक में अनेक है, अनेक ही में एक है सो,
एक न अनेक कछू कह्यो न परतु है।

कर्त्ता अकर्त्ता है, भोगता अभोगता है,
भेष को न भाजन पै मेष सो धरतु है ॥
बोलत विचारत, पै न बोलै विचारे कछू,
उपजै न उपजत मुए न मरतु है ।
ऐसो प्रभु चेतन अचेतन की संगति सों,
उलटि पुलटि नट बाजी सी करतु है ॥''

देशनाकार ने जिनवाणी को ही प्रमाण मानकर वर्णन किया है; निजवाणी, जनवाणी और जगवाणी का नहीं। साथ ही अपनी वाणी का अहंकार नहीं किया। निम्न छंद में एतत्संबंधी यथार्थ चित्रण सोदाहरण देखिए, कितना सटीक है।

जैसे काहू द्रह सों सलिल धार कारज की,
नदी सौ निकसि फेरि नदी में समानी है ।
नगर में ठौर ठौर फैल रही चहूँ ओर,
जाके ढिंग बहै, सोई कहै मेरो पानी है ॥
तैसे घट सदन, सदन में अनादि ब्रह्म,
वदन वदन में अनादि ही की बानी है ।
करम की कलोल की उसाँस सौ बयार आवै,
मूढ़ भयो प्राणी तासौं कहै मेरी बानी है ॥

संक्षेप में कह सकते हैं कि समयसार में जो शुद्ध आत्म तत्त्व के अनुभव, शुद्ध ध्यान, पर समय से स्वसमय होने का उपदेश है, वह न्यायशास्त्र अनेकान्तदर्शन एवं स्याद्वाद परक है उसी अनुसार **शुद्ध नय की प्रधानता से प्रमाणभूत नय-प्रमाण से खरी उतरने वचली प्रस्तुत देशना है। आत्महित के अभिलाषियों के लिए प्रबल पाथेय है मोक्षमार्ग में।** उनकी समग्र देशना के मन्तव्य और प्रेय के लिए अपने शब्दों के स्थान पर निम्न गाथा नूल व एक कवित्त को प्रस्तुत कर विराम लेना चाहूँगा।

एदह्मि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्च मेदह्मि।
एदह्मि होहि तित्तो, होहदि तुउ उत्तमं सोक्खं ॥ समयसार-206 ॥

केई मूढ़ विकल एकांत पक्ष गहैं कहैं,
आतमा अकरतार पूरन परम है ।
तिनसौं जो कोई कहै, जीव करता है तासों,
फेरि कहैं करम को करता करम है ॥
ऐसे मिथ्यामगन मिथ्याती ब्रह्मघाती जीव,
जिनके हिए अनादि मोह को भरम है ।
तिनिके मिथ्यात्व दूर कहवे को कहैं गुरु,
स्याद्वाद परवान आतम धरम है ॥

देशना का सारांश ही यह है कि एकत्व-विभक्तरूप तथा स्याद्वाद से सिद्ध अपनी आत्मा को स्वसमय

बनाना चाहिए।

प्रस्तुत ग्रंथ का सम्पादन कार्य तो परमपूज्य मुनि श्री सुव्रतसागर महाराज ने किया है अधिकांशतया। उन्हीं को इसका श्रेय है। मैंने तो मात्र यत्किंचित् पूरकता का कार्य किया है। मेरा अहोभाग्य है कि प्रस्तुत भाग को अवलोकन-पारायण का अवसर मिला। इस सम्पादकीय का कार्य अत्यन्त श्रमसाध्य रहा। स्वास्थ्य की अपेक्षाकृत प्रतिकूलता होने पर भी श्रमणाचार्य जी के प्रति चरणानुराग एवं पूज्य मुनि श्री सुव्रतसागर जी के अत्यन्त वात्सल्यपूर्ण, आशीर्वादमय पत्र के प्रति कृतज्ञता का भाव लिए यह लेखन संभव हुआ है। यद्यपि पूर्व में कतिपय भागों का सम्पादन करने का पुण्य मुझे मिला है, किन्तु इस अंतिम भाग को पाठक गौर से पढ़ेंगे, ऐसी आशा है। **सुन्दर चित्रांकन के लिए प्रसून जैन, प्राची जैन को साधुवाद।** इस देशना के देशनाकार, प्रकाशक, मुद्रक, प्रायोजक व श्रोता आदि सभी धन्यवादार्ह हैं।

मुझ जिनवाणी-सेवक के द्वारा जो त्रुटियाँ हुई हों उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। आशा है कि ग्रंथ सब दृष्टियों से शुद्ध रूप में प्रकाशित होगा। पुनः परमपूज्य श्रमणाचार्य विशुद्धसागर जी महाराज को शतशः अभिवन्दन। पूज्य मुनि श्री सुव्रतसागर जी महाराज, जो कि देशनाकार के महत्कार्य को मूर्त्तरूप देने में तत्पर होकर ज्ञानावरण का क्षयोपशम और प्रशस्त पुण्य का सम्पादन कर रहे हैं, को सविनय नमोऽस्तु।

पुनश्च अपने हृदय के लोभ-संवरण न कर पाने के कारण श्री जिनेश्वर के लघु नंदन अध्यात्मैकलक्ष्य-धारक देशनाकार जी को शब्द-प्रसूनों द्वारा विनयांजलि प्रस्तुत करता हूँ-

ज्ञान को उजागर, सुगुन रत्नाकार,
सहज सुखसागर विरागरस भर्‌यो है।
सरन की न रीति गहै, मरन को न भय करै,
करन सों पीठि दे, चरन अनुसर्‌यो है॥
धरम को मंडन, भरम को विहंडन है,
परम नरम है के करम सों लर्‌यो है।
ऐसे विशुद्धसागर गुरु धरती के देवता कों,
निरखि हम भक्ति सों नमस्कार कर्‌यो है॥

श्रुतसेवक
शिवचरनलाल जैन
संरक्षक एवं पूर्व अध्यक्ष -
तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ
संरक्षक - अ.भा.दि. जैन शास्त्रि परिषद्
श्याम भवन, बजाज बाजार, मैनपुरी-205009 (उ.प्र.)
मो.: 92191 60350

दिनांक : 07.01.2018

47

शक्तियों पर विशेष व्याख्यान

ग्रन्थ मंगलाचरण

वंदित्त्चु सव्वसिद्धे, ध्रुवमचलमणोवमं गइंपत्त्चे ।
वोच्छामि समयपाहुड, मिणमो सुयकेवली भणियं ॥1॥

(समयपाहुड – आचार्य श्री कुन्द कुन्द स्वामी)

नमः समयसाराय, स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय, सर्वभावान्तरच्छिदे ॥1॥
अनन्त धर्मणस्तत्त्वं, पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः ।
अनेकान्तमयीमूर्ति–र्नित्य मेव प्रकचाताम् ॥2॥

(आत्मख्यातिटीका-आचार्य श्री अमृतचंद्र स्वामी)

वीतरागं जिनं नत्वा, ज्ञानानन्दैक सम्पदम् ।
वक्ष्ये समयसारस्य, वृत्तिं तात्पर्य संज्ञिकाम् ॥1॥

(तात्पर्य वृत्ति टीका – आचार्य श्री जयसेन स्वामी)

1

जीवत्व-शक्तिः

''आत्मद्रव्यहेतुभूतचैतन्यमात्रभावधारणलक्षणा जीवत्वशक्तिः।''

आत्मद्रव्य के हेतुभूत चैतन्यभाव को धारण करना है लक्षण जिसका,
वह जीवत्वशक्ति है।

चैतन्यभाव को धारण करने वाली जीवत्वशक्ति है,
इसके कारण ही जीव जीवित था, है और रहेगा।

जो आत्मद्रव्य का हेतु है,
आत्मद्रव्य का कारण है ऐसा चेतनमात्रभाव वही है 'भाव-प्राण'
उसका धारण-लक्षण उसका नाम है - 'जीवत्वशक्ति'।

समय देशना

भव्य बंधुओ! हम सभी अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्र वाणी मनीषियो ! जगत् कल्याणी है। जयवंत हो नमोऽस्तु शासन, जयवंत हो वीतराग श्रमण संस्कृति।

आचार्य भगवन् कुन्दकुन्ददेव ने समयसारजी में आत्मतत्त्व की अलौकिक व्याख्या की है। भगवत् कुन्दकुन्द के साहित्य पर टीका लिखकर आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने महत् कार्य किया है।

ज्ञानियो! जैसे जिनालय शिखर से शोभायमान होता है वैसे ही आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी, आचार्य जयसेनस्वामी ने भगवान् श्री कुन्दकुन्दस्वामी के साहित्यरूपी मंदिर पर टीकारूप स्वर्ण-कलश चढ़ाया है।

आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य के गूढ़ रहस्य को उद्घाटित करने वाले कोई आचार्य हैं तो वे आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी, आचार्य जयसेन स्वामी हैं।

आत्मा अनंत शक्तिसम्पन्न द्रव्य है। आत्मा के जितने धर्म हैं उन सब में लक्षण से भेद होने पर भी, प्रदेश भेद नहीं है। आत्मा के एक परिणाम में सभी धर्मों का परिणमन रहता है। आत्मा के एक ज्ञानमात्रभाव के अंदर अनन्त शक्तियाँ रहती हैं।

कर्म मूर्तिक है, आत्मा अमूर्तिक है। अमूर्तिक आत्मा में मूर्तिक कर्म का बंध कैसे ? इसलिये आत्मा का मूर्तिक-अमूर्तिकपना जो है, वो अनेकान्तभूत है, एकान्तभूत नहीं है। **बंध की अपेक्षा से आत्मा मूर्तिक है, स्वभाव की दृष्टि से आत्मा अमूर्तिक है।**

वण्ण रस पंचगंधा, दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बंधादो।। 7/द्र.सं.।।

आचार्य नेमिचन्द्रस्वामी ने 'द्रव्यसंग्रह' में कहा है कि वर्ण, रस, गंधादि जो हैं; ये निश्चय से आत्मा में नहीं है, इसलिये आत्मा अमूर्तिक है, परन्तु व्यवहारनय से, बंध की दृष्टि से आत्मा मूर्तिक है।

अनादि सम्बंधे च।।त.सू.।।

आत्मा कब से है? बंध को प्राप्त कब से है? अनादि से है। जिस दृष्टि से मूर्तिक है, उसी दृष्टि से मूर्तिक कर्मों का बंध मूर्तिक आत्मा में हो रहा है। अब ये दशा, मूर्तिक दशा; आत्मा की व्यवहार अवस्था है, स्वभाव दशा नहीं है।

ज्ञानियो! पर्याय क्रमवर्ती है, गुण अक्रमवर्ती है। आत्मा द्रव्य है, वह क्रमवर्ती-अक्रमवर्ती अवस्थाओं से युक्त है। आत्मद्रव्य जो है वह क्रमवर्ती पर्याय की दृष्टि से क्रमभूत है और अक्रमवर्ती गुणों से युक्त होने से अक्रमभूत है और दोनों अवस्थाओं से युक्त है उसका नाम आत्मद्रव्य है।

हे मुमुक्षु! जैसे जीवद्रव्य (आत्मा) को क्रम-अक्रमवर्ती कहा है, इसी प्रकार से छहों द्रव्य क्रमाक्रमवर्ती हैं।

सहभुवो गुणाः, क्रमवर्तिनः पर्यायाः ।। 92/आ.प. ।।

साथ में होने वाले गुण हैं और क्रम-क्रम से होने वाली पर्यायें हैं, अर्थात् अन्वयीगुण हैं और व्यतिरेक परिणाम पर्यायें हैं।

हे मुमुक्षु! गुण-पर्याय का समूह ही तो द्रव्य है। द्रव्य के बिना पर्याय नहीं है, पर्याय के बिना द्रव्य नहीं है। ज्ञानियो! आत्मा अनंत धर्मों का समुदाय है। वे अनंत धर्म एक-दूसरे के विरुद्ध हैं, पर एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। यहाँ परस्पर विरुद्ध से तात्पर्य भिन्न-भिन्न है, व्यतिरेक है। सुखगुण सुखभूत है, वीर्यगुण वीर्यभूत है। दर्शनगुण दर्शनभूत है। ज्ञानगुण ज्ञानभूत है। एक-दूसरे का कोई संबंध नहीं है, फिर भी एक अखण्ड आत्मा में हैं, लेकिन फिर भी एक-दूसरे का विरोध नहीं कर रहे हैं।

मित्र! आपको अपना शरीर तो दिख रहा है। ये आपका शरीर है, यह नाक से भिन्न है कि कान से भिन्न है ? इसमें नाक भी है, कान भी है, मुख भी है, हाथ-पैर भी हैं। यह अंग-उपांगों से युक्त है। दाहिने हाथ की अँगुली, बायें हाथरूप नहीं हो रही है। एक ही हाथ की अँगुली दूसरी अँगुली से भिन्न है लेकिन फिर भी शरीर में अभिन्नरूप से है। अंग-अंग भिन्न होने पर भी शरीर एक है।

हे मुमुक्षु! जैसे शरीर के अंग-अंग भिन्न हैं, फिर भी शरीररूप में अभिन्न हैं, ऐसे ही आत्मा में प्रत्येक गुण भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी आत्मा में होने से अभिन्न है। अधिकरण की दृष्टि, आधार की दृष्टि अभिन्न है। एक जीव के अन्दर जितने गुण विद्यमान हैं, उन सभी गुणों को आप अवलोकन करो, अनुभव करो कि मेरे ही गुण मेरे में हैं। इन सारे गुणों को मैं ज्ञायकभाव से देख रहा हूँ। एकमात्र ज्ञान, ज्ञानमात्र एकभाव।

हे ज्ञानी, मुमुक्षु! सम्पूर्ण गुणों को अनुभव कराने की सामर्थ्य किसी में है, तो उसका नाम है ज्ञायक भाव। अज्ञानता का वेदन करेगा तो ज्ञान से ही करेगा, ज्ञान का भी वेदन करेगा तो ज्ञान से ही करेगा। सुख का भी वेदन करेगा तो ज्ञान से करेगा, दुःख का वेदन करेगा तो ज्ञान से ही करेगा। अहो! निजचैतन्य का वेदन करेगा, तो ज्ञान से करेगा , परचेतन की पहचान करेगा तो ज्ञान से करेगा। जड़त्व की पहचान करेगा तो ज्ञान से करेगा। इसलिये सारे कार्यों को विराम देकर योगी उस ज्ञायकभाव में अविराम लिये होता है।

ऐसा क्यों? क्योंकि करने-करने का भाव तो अनंत बार किया है और करते-करते भी पूर्ण नहीं कर सका। **हे मित्र! विश्वास रखना, आपकी पूरी पर्याय निकल जायेगी, फिर भी कार्य तुम्हारे अधूरे ही रहेंगे। विश्व में कोई जीव ऐसा नहीं हुआ है जो अपनी एक पर्याय में सभी कार्य पूर्ण कर चुका हो। जो भी गया है वह अधूरे कार्य छोड़कर ही गया है और अपन भी जायेंगे तो कार्य अधूरा ही छोड़कर जायेंगे।**

जिज्ञासा – श्रावक ने प्रश्न किया कि हम लोग तो ठीक है कि कार्य अधूरा छोड़कर जायेंगे, पर आप कैसे ?

समाधान – हाँ, इस पर्याय में अधूरा छोड़कर इसलिये जायेंगे, क्योंकि अभी असमग्र चारित्र है। पंचमकाल में, वर्तमान में समग्रचारित्र नहीं है। परम यथाख्यातचारित्र पंचमकाल में होता नहीं है, यथाख्यात चारित्र भी नहीं होता है। सम्प्रति तो सामायिक, छेदोपस्थापना दो ही संयम हैं और इन दो संयमों से कभी मोक्ष होता नहीं है। जब-तक यथाख्यातचारित्र, परमयथाख्यात चारित्र नहीं होता तब-तक मोक्ष संभव नहीं है, इसलिये इस पर्याय से तो हमें भी कार्य अधूरा ही छोड़कर जाना पड़ेगा।

जिज्ञासा – आचार्यश्री! आप मोक्ष न गये, पर मोक्ष के द्वारे तो पहुँच जाओगे?

समाधान – अभी मार्ग पर लगे हैं, द्वारे पर पहुँचने से तात्पर्य अर्हंत अवस्था है, पर वर्तमान में मोक्ष के द्वारे पर भी नहीं पहुँच सकते हैं। अभी मोक्ष के मार्ग पर हैं, द्वार तो अंतिम अवस्था है। मार्ग बहुत लम्बा है, वर्तमान में कैवल्य द्वार तक पहुँचना संभव नहीं है।

हे मुमुक्षु! आप कितना भी कुछ करो जीवन में, पर तुम अधूरा ही करके जाओगे। इसलिये जगत् के जितने प्रपंच हैं उनसे दूर रहना चाहिये। साधुओं को तो जगत् के कार्यों से दूर ही रहना चाहिये। निर्ग्रन्थ वीतरागी का काम तो तप और श्रुत है।

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते।। र.क.श्रा./10।।

हे मुमुक्षु! जो पाँचों इन्द्रियों के विषयों की आशा से रहित हैं; आरम्भ, परिग्रह से रहित हैं और ज्ञान, ध्यान, तप में लीन रहते हैं, वे ही सच्चे गुरु हैं।

हे मित्र! जगत् में चक्रवर्ती जैसे महाबली कर्तृत्वभाव से चले गये, लेकिन कार्य को पूर्ण नहीं कर सके, तो फिर आप पंचमकाल के तुच्छ संहननधारी साधु बनकर क्या करना चाहते हो? कुछ नहीं करना, अब यही करना अवशेष है। मुमुक्षु! यही मात्र मोक्षमार्ग है। न कुछ बोलना, न कुछ कहना, न कुछ सोचना, मात्र सहज रहना, समरसी आनंद का वेदन करो।

हे मुमुक्षु! आत्मा अनंत शक्तियों से युक्त है, अनंत शक्तियों को प्राप्त है, अनंत शक्तियों का पिण्ड है। आत्मा में अनंतशक्तियाँ कैसे निहित हैं?

ये अँगुली है। अँगुली लाल है कि नीली है ? पीली है कि सफेद है? जो अँगुली देख रहा है वह मात्र कहकर चला जाता है, पर इस अँगुली में और भी कुछ है कि नहीं ? रक्त इसमें लाल है, अस्थियाँ इसमें धवल हैं, नसजाल इसमें नीले हैं। इसमें पीलापन भी है। अँगुली में खण्ड भी है, पोर को देखो। जब अँगुली कह रहे थे तब आपके मस्तिष्क में कुछ भी नहीं आ रहा था और अब इतने विषय आ गये हैं।

हे मित्र! ऐसे ही जो वस्तु है, वह अपने-आप में अखण्ड एकत्वभूत दिखाई देती है, परन्तु ज्ञाता-द्रष्टा अपने ज्ञानगुण से उस वस्तु में, जो एक ही द्रव्य में अखण्ड विरुद्धधर्म - अविरुद्धरूप में विराजमान हैं उन विभिन्न धर्मों को देखता है।

छह प्रकार की विरुद्धोपलब्धि, छह प्रकार की अविरुद्धोपलब्धि है। विरुद्धकार्य उपलब्धि भी है, अविरुद्धकार्य अनुपलब्धि भी है। ये सभी उपलब्धियाँ एक ही समय में, एक ही द्रव्य में हैं। षट्गुण हानि-वृद्धि का जो परिणमन है, वो अगुरु-लघुगुण की पर्याय अपेक्षा से कथन कर रहे हैं। विरुद्धोपलब्धि, अविरुद्धोपलब्धि, सहचर, कारण-कार्य – ये सारे जो विषय हैं; ये परीक्षामुख सूत्र के विषय हैं और षट्गुण हानि-वृद्धिरूप जो परिणमन है यह आलाप पद्धति का विषय है। ये ग्रंथों की दृष्टि से कथन है, पर ये जो कथन है वह वस्तु के भीतर है।

भैया! अस्सी साल के दादा से कहना कि अब तो तुम्हारी देह की षट्गुण हानि-ही-हानि दिखाई दे रही है और एक शिशु से कहना कि तेरे शरीर की वृद्धि ही दिखाई दे रही है। ऐसा कथन आप कह सकते हो, सोच सकते हो, पर यथार्थ में दोनों युगपत् चल रहे हैं। षट्गुण हानि, षट्गुण वृद्धि। हम जान नहीं पाते हैं, पहचान नहीं पाते हैं और नहीं पहचान पाओगे तो क्या परिणमन नहीं होगा? होगा।

भैया! आप मृत्यु के संबंध में नहीं जानते, तो क्या मृत्यु नहीं होगी? होगी। कुछ ऐसे भी अज्ञानी लोग हैं जो कहते हैं कि मुझे नहीं जानना ये सारी बातें, ठीक है कि तुम मत जानो, परन्तु आपके नहीं जानने से वस्तुव्यवस्था भंग नहीं होती है।

भैया! आप कहो कि मैं घर से बाहर नहीं जाऊँगा। पूछा- क्यों? तो बोला-बूढ़ा हो जाऊँगा। मेरे मित्र! तुम कितने ही छाया में, घर में बैठे रहना, धूप में जाओगे तो भिन्न रंग बनेगा, कमरे की छाँव में रहोगे तो भिन्न रंग होगा, पर बूढ़े होने से तुम्हें कोई नहीं रोक सकता है, क्योंकि वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है, वृद्धत्व-बूढ़ापन तो आयेगा ही आयेगा।

जिसे आप बूढ़ा कह रहे हो वह स्वभावदृष्टि से तेरा बूढ़ापन नहीं है, ये आत्मा की **'अजरत्व शक्ति'** है, उसमें जड़ का बूढ़ापन कहाँ से आ गया? ज्ञानियो! आप समयसार जैसे अलौकिक ग्रंथ को समझ रहे हो तो जो पर्याय की प्रत्यासत्ति है वह स्वभावव्यंजनपर्याय है कि विभावव्यंजनपर्याय है ?

मनुष्य, तिर्यंच, देव, नारकी; इन चारों गतियों में, इन चारों पर्यायों में प्रत्यासत्तिजन्य जीव के परिणाम वैसे हो रहे हैं। मुमुक्षु! हम यहाँ परिणामों की व्याख्या नहीं कर रहे हैं, यहाँ हम परिणामी की व्याख्या कर रहे हैं। वो परिणामी मनुष्य से भी भिन्न है, तिर्यंच से भी भिन्न है, नारकी से भी भिन्न है, देव से भी भिन्न है। यहाँ भिन्न क्यों कह रहे हैं ? जो स्वभाव होता है वह सहभावी होता है, वह कभी छूटता नहीं है; ये चारों नियत छूटेंगे और छूट ही रहे हैं। जो छूट रहा है, उनके लिये पूर्ण छूट है। जब तुम छूट ही रहे हो तो फिर आओ-जाओ, आओ-जाओ, हमें तुमसे क्या लेना है ?

हे मुनिराजो! समझो, मेरी मनुष्य पर्याय का नाश होगा कि नहीं? मैं देव भी बन जाऊँगा तो उसका भी विनाश होगा। जो-जो पर्यायें धारण करुँगा उन सबका विनाश होगा। क्यों न हम इस विषय को देखें कि नागपुर से चला श्रावक जबलपुर आ रहा था, एक ट्रेन से उतरा दूसरी ट्रेन में बैठ गया, पर उसे पता है कि इससे भी उतरना होगा। जब इससे भी उतरना ही है तो भी यात्रा चल रही है। बैठ गया हूँ, पर मेरे भीतर विश्वास है कि मैं इसमें स्थिर नहीं हूँ, मात्र मेरी तो यात्रा चल रही है। न मैं मनुष्य पर्याय में स्थिर हूँ, न मैं देव पर्याय में स्थिर हूँ, न नारकी पर्याय में स्थिर हूँ, न तिर्यंच पर्याय में स्थिर हूँ। मैं तो शुद्धयात्री हूँ, वाहन से भी भिन्न हूँ। इस विषय को पकड़ो कि मैं गाड़ी से भिन्न ही हूँ।

अजंगमं जंगमनेययन्त्रं, यथा तथा जीवघृतं शरीरम्।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च , स्नेहो वृथात्रेति हितं त्वमाख्यः ।।32/स्व.स्तो.।।

हे जीव! जो तू शरीरों को धारण कर रहा है, वे शरीर तो यंत्र हैं। यंत्र क्या करेगा ? यह तो अपवित्र है, शरीर को तुम पवित्र देख रहे हो, इसमें पवित्रता है किस बात की? इसको खोलकर देखोगे तो इससे अधिक भयभीत, वीभत्स और विश्व में कौन-सा द्रव्य होगा ? इसके संयोग से पवित्र द्रव्य भी अपवित्र हो जाते हैं। मार्ग में देखो कितनी दुर्घटनायें घट जाती हैं , कितने सारे तिर्यंच जीवों के शरीर जो एक-दूसरे के प्रति राग करते मिलते थे, अब कुछ नहीं बचा।

हे मित्र! किसी का मृत शरीर दिखाई दे जाये, तो आप नाक सिकोड़ते हो पर हे मित्र! जिसे देखकर आप नाक सिकोड़ रहे हो, वैसा ही तुम्हारा होनेवाला है। जब किसी की दुर्घटना घट जाये तो कभी-कभी तो ऐसा होता है कि संस्कार करने के लिये शरीर को फावड़े से इक्ट्ठा कराना पड़ता है क्योंकि अंग-अंग बिखर गया, शरीर का कोई अंग साबुत नहीं बचा। जिस नाक को तुम सिकोड़ रहे हो वह नाक भी देखने को नहीं मिलेगी। इसलिये इस असामान्यजातिपर्याय को अपना धर्म मत मानिये। यंत्र का प्रयोग चल रहा है, उतना कर लो। आँखों से जितना देख सकते हो देख लो, फिर देखनहारा ही नहीं होगा तो आँखें क्या करेंगी?

हे मुमुक्षु! दृश्यमान को ही तुम सब कुछ न मानो, इस दृश्यमान के भीतर भी अदृश्यमान बैठा है उसे भी जानो, वो अदृश्यमान ही दृश्यमान को देख रहा है। जो अदृश्यमान है, अचाक्षुष है, अमूर्तिक है स्वभाव से उसका नाम ध्रुवात्मा है। जब ध्रुवधाम, अखण्ड, चैतन्य पिण्ड, टंकोत्कीर्ण, ज्ञायकस्वाभावी वह हंस शरीर से पलायन कर जाता है, तो तुम्हारा दृश्यमान शरीर जड़-जड़ ही रहेगा।

ज्ञानियो! सैतालिस शक्तियों में पहली शक्ति है **'जीवत्वशक्ति'**। **'आत्मद्रव्यहेतुभूत चैतन्यमात्र भावधारणलक्षणा जीवत्वशक्तिः'** जो आत्मद्रव्य का हेतु है, आत्मद्रव्य का कारण है ऐसा चेतनमात्रभाव वही है **'भावप्राण'** उसका लक्षण उसका नाम है **'जीवत्वशक्ति'**।

'चैतन्यप्राणसहितोऽहं'

मित्र! दृष्टि को बहुत ऊँची ले जाओ। ज्ञानी! आप सरसों के दाने में तेल देखना जानते हो, सरसों के दाने में तेल को देखनेवाले मिल जायेंगे, पर तेल के भीतर भी कुछ और है, वह सत् है। सरसों के तेल का सत् निकलता है, यदि वह सत् शुद्ध है तो इतना तीक्ष्ण होता है कि देखते ही आँखों से आँसू टपकते हैं।

अहो! तिल से तेल निकाल लिया, तेल से सत् निकाल लिया। मित्र! इस ज्ञानशक्ति से आप जड़ के भीतर से कितनी शक्तियों को पहचान रहे हो ? वैज्ञानिक भी परमाणु को नहीं खोज पाये हैं, परमाणु किसी के भी ज्ञान का विषय नहीं है, परमाणु एकमात्र वीतराग विज्ञान के ज्ञान का विषय है। वह सर्वावधिज्ञान, परमावधिज्ञान और केवलज्ञान का विषय है। परमाणु किसी छद्मस्थ के ज्ञान का विषय नहीं है। छद्मस्थ से तात्पर्य है केवलज्ञान से शून्य।

सकल प्रत्यक्ष परमाणु को जाननेवाला कोई है तो वह केवलज्ञान है। देशप्रत्यक्ष से जाननेवाले हैं अवधिज्ञानी। शेष जीव परमाणु को मात्र परोक्षभूत ही जान सकते हैं, प्रत्यक्षभूत नहीं जान सकते हैं।

ज्ञानियो! वैज्ञानिक जिसे परमाणु बोल रहे हैं, वो स्कन्ध है। इलेक्ट्रान, प्रोटोन, न्यूट्रान आदि, ये खण्ड तुमने किये हैं और जब-तक खण्डन हो रहा है तब-तक परमाणु नहीं है, क्योंकि परमाणु अविभागी होता है। अभी आप परमाणु तक नहीं पहुँचे हो, लेकिन फिर भी कितने ही ऐसे विषय हैं जो सामान्य लोगों को आश्चर्य उत्पन्न करा रहे हैं। ऐसी पौद्गलिक शक्तियों को आप कितने प्रकार से समझ चुके हो। माइक में मैं बोल रहा हूँ और आप दूर बैठकर भी ज्यों-का-त्यों सुन रहे हैं। एक जड़ के अंदर इतनी सामर्थ्य आ गई है, जबकि एक चेतन व्यक्ति से कहूँ कि ज्यों-का-त्यों बोलो तो वह कहेगा कि भावार्थ बता सकता हूँ। ये पुद्गल की महिमा देखो, बिना तार के यहाँ पर बैठकर आप विश्व के किसी भी कोने में बैठे व्यक्ति से चर्चा करते हो। आपको लगता है कि कोई सहारा नहीं है पर कुछ है, जिसे आप पकड़ नहीं पा रहे हो।

हे मुमुक्षु! जो करुणाशील होंगे, वे मोबाइल करना छोड़ देंगे। जिनके अंदर अणुव्रत-महाव्रत किंचित् भी नहीं है वे मोबाइल प्रयोग करें। मोबाइलों के जो टावर हैं इनसे ऐसी वर्गणायें निकलती हैं जिसके प्रभाव से मधुमक्खियाँ, पक्षी आदि प्राणियों का घात हो रहा है। पहले पक्षियों के झुण्ड-के-झुण्ड दिखाई देते थे, परन्तु वर्तमान में सब विलीन हो गये हैं। यथार्थ में मनुष्यों के लिये भी यह वर्गणायें प्रभावित कर रही हैं, इससे कई बीमारियाँ उत्पन्न हो रही हैं। **जितने भौतिकता में प्रवेश करोगे, उतना ही घातक है।** प्रकृति से छेड़छाड़ के परिणाम सामने आ रहे हैं।

मोबाइल इत्यादि ये यंत्र हैं। इनकी वर्गणाओं को ही भौतिक वैज्ञानिकों ने पकड़ लिया है और इन्हीं तरंगों के माध्यम से ही आप चर्चा कर लेते हैं। अब तो चर्चायें ही नहीं चेहरे भी दिखने लगे हैं। इतना अन्वेषण कर लिया है, ये किसकी स्वच्छता चल रही है? अपने विषय से दूर मत रहना। ये पुद्गल की

स्वच्छता है, ये पुद्गल की **स्वच्छत्वशक्ति** है। इतना स्वच्छत्व होता चला गया कि चर्चा के साथ-साथ चित्र भी दिखाई दे रहा है।

नदी की रेत, बालू से दर्पण बनता है। पुद्गल की स्वच्छता। बालू को इतना तापमान दिया जाता है तो वही बालू पिघलकर काँच का रूप धारण कर लेती है। हे मुमुक्षु! जब हम बालू को पारदर्शी बना सकते हैं, उसमें दूसरे की पर्याय को झलका सकते हैं, तो मेरा ज्ञानगुण कहता है कि मैं अपने में स्वच्छ हूँ। **जैसे बालू को अग्नि के तापमान से स्वच्छ किया जाता है वैसे ही योगी ध्यानाग्नि के तापमान से अपने ज्ञान को स्वच्छ कर लेते हैं और उस ज्ञान में विश्व के चराचर पदार्थ झलकना प्रारंभ हो जाते हैं।**

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थ मालिका यत्र॥1/पु.सि.उ.॥

हे मुमुक्षु! आँखों से, इन्द्रियों से तो मात्र पौद्गलिक द्रव्यों को ही देख सकते हो, पर ध्यानयोग से आत्मा के भीतर की शक्ति को निहार सकते हो। एक व्यक्ति ने बालू से सीमेंट बनाकर मकान बना लिया और दूसरे शिल्पकार ने बालू से काँच बना लिया। जो सामान्य नर हैं वे इस नर तन को पाकर भोगों में लगाकर पर्यायों में लिप्त रहते हैं। वहीं जो ज्ञानी जीव है वह नर तन पाकर चैतन्य भगवानात्मा को प्रकट कर लेता है। वह ध्यान की शक्ति है, विवेक की शक्ति है।

हे श्रमण! तुम तो परम वैज्ञानिक हो, **यदि विकल्पों की गर्मी में झुलसोगे तो ज्ञान-तंतु नष्ट होंगे और साधना की, तत्त्व की लीनता में चले जाओगे तो ज्ञान-तन्तु वृद्धिमान होंगे,** परिणामतः कैवल्यसूर्य उद्घाटित होगा। अज्ञानी प्राणी कितनी शक्ति व्यर्थ में नष्ट कर रहा है।

मित्र! आपने पानी में आग देखी? मैं ज्वालामुखी की बात नहीं कर रहा हूँ। आप नर्मदा नदी के पास जाना वहाँ आँख खोलकर देखना, उसमें कहीं-कहीं बर्फ जमता दिखेगा। बर्फ दिख रही है, विद्युत दिख रही है। शीतल पानी में विद्युत ? ये सारी व्याख्या क्यों कर रहा हूँ? आप कह सकते हैं कि आत्मा में सैतालीस शक्तियाँ कैसे हो सकती हैं? जैसे पानी में बिजली विपरीत धर्म है वैसे ही वायु में भी अग्नि है। मित्र! पानी से भी अग्नि बनती है। पवन से भी अग्नि बनती है। पवन चक्कियों से बिजली उत्पन्न हो रही है। पवन से विद्युत, पानी से विद्युत; ये शक्ति किसमें थी? पानी में, पवन में।

हे मुनि! ऐसे ही आप चाहो तो अपनी शक्ति से ऊर्ध्वगमन कर सकते हो और आप चाहो तो अपनी शक्ति के दुरुपयोग से अधोलोक में जा सकते हो, अधोगमन कर सकते हो। शक्ति का परिणमन कैसा कर रहे हो यह आप पर निर्भर है।

जिज्ञासा - महाराजश्री! ज्ञानी लोग वैरागी हो सकते हैं, हम अज्ञानी कैसे वैरागी हो सकते हैं?

समाधान - भैया! ज्ञानी वैरागी नहीं होता है, अपितु अज्ञानी ही ज्ञानी होकर वैरागी होता है और जब-तक अज्ञानी नहीं होगा तो ज्ञानी कौन होगा? ज्ञानी नहीं होगा, तो वैरागी कौन होगा? वैरागी वैरागी नहीं होते, वैरागी तो वीतरागी बनते हैं और रागी वैरागी होता है।

हे मित्र! अपने आपको अज्ञानी कहकर अपनी सुरक्षा मत करो, आत्मा की रक्षा का कवच अज्ञान नहीं, ज्ञान है। पहली शक्ति जीवत्वशक्ति। आत्मद्रव्यहेतुभूतचैतन्यमात्र। मित्र! चैतन्य की उत्पत्ति पंचभूतों से नहीं मान बैठना। पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु - इन भूतचतुष्टय से जीव की उत्पत्ति मानने वाले चार्वाकों से कहना कि यदि भूतचतुष्टय से जीवत्व उत्पन्न होने लग गया, तो अग्नि पर हाँडी रखकर उस में पानी डालने पर, दाल डालने पर, चूल्हा पृथ्वी है, आकाश है, वायु है; ये भूतचतुष्टय मिल गये, यहाँ दाल नहीं बनना चाहिये, वहाँ जीव निकलना चाहिये। इसलिये भूतचतुष्टय से जीव उत्पन्न नहीं होता और भूत-भूत मिलने से जीव नष्ट भी नहीं होता, ये जीवत्वशक्ति कह रही है। जीवत्वशक्ति कह रही है कि **'सद् द्रव्य लक्षणम्'। तुम द्रव्यप्राणों से जीते हो, इसलिये जीव नहीं हो, बल्कि जीवत्वशक्ति सत् हो इसलिये जीव हो।** ये विषय भिन्न चल रहा है, ये असामान्य-जातिपर्याय के मिश्रपने की बात नहीं चल रही है।

तिक्काले चदुपाणा, इंदियबलमाउ आणपाणो य।
ववहारासो जीवो, णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स ।। द्र. सं./3।।

जिसके व्यवहारनय से तीनों कालों में इंद्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास- ये चार प्राण होते हैं और निश्चयनय से जिसके चेतना होती है, वह जीव है।

ये 'ववहारा सो जीवो' की व्याख्या नहीं चल रही है। तीनों कालों में चार प्राणों से जो जीता है वो व्यवहारनय से संसारी जीव है। संसारी जीव चार प्राणों को धारण करता है, स्वीकार करता है परन्तु जो जीवत्वशक्ति है वह किसी से प्राप्त नहीं होती है, किसी को प्राप्त नहीं करती है, किसी के प्राप्त होने में लीन नहीं होती है, 'जीवत्वशक्ति' त्रैकालिक है।

पंचास्तिकाय में कहा है कि **जो जीता है, जीता था, जी रहा है, उसका नाम जीव है।** जो निश्चय चैतन्य है वो कैसे उत्पन्न हुआ है? सम्पूर्ण द्रव्यप्राणों से भिन्न होकर निहारिये। जिसका वियोग नियत है वह मैं जीव नहीं हूँ, जिनका संयोग नियत है वह मैं जीव नहीं हूँ। जिसका संयोग नहीं है, जिसका वियोग नहीं है वह मैं हूँ। अहेतुक हूँ। अब मैं किसकी जन्मजयंति मनाऊँ, जब किसी का जन्म हुआ ही नहीं है; मैं किसका मृत्यु महोत्सव मनाऊँ, किसकी पुण्यतिथि मनाऊँ, जब किसी की मृत्यु हुई ही नहीं है। सब पागलपन छोड़िये। उन्मादी लोगों के ढेर लगे हैं, उन्मादी लोगों की बहुत संख्या है। मानो न मानो ये उन्माद है कि जन्मजयंतियों पर करोड़ों का द्रव्य व्यय हो रहा है, क्योंकि अभी तक जीवत्वशक्ति पर दृष्टि नहीं जा पा रही है। अहो! जीवत्वशक्ति का व्याख्यान करनेवाले भी जन्मजयंतियों में लिप्त हो रहे हैं।

हे मुमुक्षु! जिस दिन 'जीवत्वशक्ति' पर दृष्टि चली जायेगी तो संसार की पर्याय बिछुड़ रही होगी तब बिलखेगा नहीं और जन्म लेने पर हर्ष का भाव नहीं आयेगा। जीवत्वशक्ति कह रही है कि हे ज्ञानी! कितने राष्ट्र हैं, कितने जीव हैं, कितनी पर्याय हैं? हम किन-किन को रोयेंगे? किन-किन को हँसेंगे? मैं तो अपने चैतन्य में लीन हूँ। जो है, सो है। 'जीवत्वशक्ति' को निहारो। अज्ञानमय चर्चा-चर्या की पुष्टि मत करो, निहारो जीवत्वशक्ति को।

हे मुमुक्षु! जीवत्वशक्ति में कुछ होनेवाला नहीं है, पर जीवत्व में राग सब कुछ करा रहा है। उस जीवत्व में जो रागदृष्टि बैठी हुई है, वह बंधदृष्टि है। उस बंधदृष्टि से जब-तक राग नहीं हटा पाओगे तब-तक जीवत्वशक्ति को शब्दों में पहचानते रहोगे, लेकिन जीवत्व की सत्ता को स्वीकार नहीं कर पाओगे। इसलिये अविनाशी को अविनाशीभूत समझो, अविनाशी को अविनाशीभूत समझने के उपरांत ये भाव समाप्त कर दो कि मैं मरुँगा, मैं जिऊँगा। मैं जीवत्वशक्ति सहित त्रैकालिक हूँ।

मित्र! हर्ष-विषाद ही बंध का कारण है, यही संसार का कारण है। हर्ष-विषाद ही संकल्प-विकल्प है और ये संकल्प-विकल्प ही संसार है। ज्ञानी! संसार से मुक्त होना चाहते हो तो जिन निमित्तों से संकल्प - विकल्प होते हैं उन्हें महत्त्व मत दो, उन्हें अपना स्वीकारना बंद कर दो। यदि मैं जन्म को महत्त्व दूँ, तो जन्म में भी अनन्त जीवों की हिंसा होती है, मरण को महत्त्व दूँ, तो मरण में भी अनन्त जीवों की हिंसा होती है, मैं जन्म-मरण को महत्त्व न देकर जीवत्वशक्ति को महत्त्व देता हूँ। हे मित्र! ऐसा नहीं हो सकता कि आपका जन्मदिन हो, आप मना रहे हो धूमधाम से और राग न आये। माना कि वर्तमान की पर्याय की उत्पत्ति का आपका दिन है, आपके जन्म महोत्सव पर केक आदि उन्मत्त कार्य हो रहे हैं और आप अपने हाथों से भेंट स्वीकार कर रहे हो, भेंट बाँट रहे हो। ये राग की दशा में संचालन हो रहा है कि वीतराग की दशा में? राग की दशा में। यदि राग नहीं होता तो यह सब किया कैसे?

हे मुमुक्षु! ये समयसार ग्रंथ है, यहाँ जब चौदहवें गुणस्थानवर्ती को अशुद्ध कहा जा सकता है, तो फिर तुम पहलेवाले, चौथेवाले शुद्ध कहाँ से हो गये ? बिना राग के तुमने केक कैसे बाँटा, भेंट कैसे स्वीकारी और बिना राग के तुमने भेंट कैसे दी? हम स्याद्वादी, अनेकान्तवादी हैं, जड़भूत नहीं हैं, चैतन्यभूत हैं।

रत्तो बंधदि कम्मं मुञ्चदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ।। स. सा./150 ।।

भगवान् कुन्दकुन्ददेव कह रहे हैं कि **रागी जीव कर्म बाँधता है और वैराग्य को प्राप्त जीव कर्म से छूटता है,** यह जिनेन्द्र भगवान् का उपदेश है, इसलिये हे भव्यात्मन्! तू कर्मों में प्रीति-राग मत कर।हे जीव! परवस्तु को लेना भी राग है और परवस्तु को देना भी राग है। हे मुनि! जब तुम दीक्षा ले रहे थे तब कपड़े उतारकर फेंक रहे थे। वह वैराग्य के साथ राग था। बिना राग के, बिना मोह के तुमने कपड़े पहिचाने

कैसे थे? रागपूर्वक ही वैरागी वस्त्र छोड़ता है। छठे गुणस्थान तक सरागदशा है, तद्जन्यराग है। **परमवीतरागभाव में न छोड़ने का भाव, न ग्रहण करने का भाव है।**

हे मुमुक्षु! सैतालीस शक्तियों में 'त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति' है, वह कह रही है कि मैं त्याग और ग्रहण दोनों से शून्य हूँ। जब वस्तु मेरी है नहीं तो छोड़ूँ किसको? जब परवस्तु मेरी है नहीं तो ग्रहण किसको करूँ? छोड़ना भी राग है, ग्रहण करना भी राग है।

जिज्ञासा – अगर मैं अपनी आत्मा से राग नहीं करूँगा तो फिर क्या करूँगा ? क्या सोचूँगा ?

समाधान – ये आप राग के कारण बोल रहे हो, क्योंकि आप राग के कारण उस परम सत्ता को पहिचान नहीं पा रहे हो, इससे जीव को लगता है कि क्या करूँगा।

एक श्रावक मुझसे कह रहा था कि महाराज! भगवान् से राग छोड़ दूँगा तो फिर करूँगा क्या? मैंने कहा कि हे जीव! इसमें तेरी गलती नहीं है, क्योंकि तू जिस दृष्टि से देख रहा है उस दृष्टि से तुझे लगता है कि राग छोड़ दूँगा तो क्या करूँगा ? भैया! समझो, एक गन्ना था। आपने गन्ने का छिलका हटाया, गाँठ हटा दी, दल भी हटा दिया, गन्ने को पेलने के उपरांत जो रस निकला उसे मशीनों में डाल दो। शक्कर, मिश्री बनती है। ज्ञानी! जिसने मिश्री नहीं देखी, शक्कर नहीं देखी तो उसको लगता है कि गन्ने का नाश कर दिया। अरे भाई! गन्ने का नाश नहीं किया उससे मिश्री को निकाल लिया है। ऐसे ही मैं व्यवहार का नाश नहीं कर रहा हूँ, व्यवहार को भिन्न करके मैं परमात्मा, भगवानात्मा को प्रकट कर रहा हूँ।

हे मुमुक्षु! जिसने जिस पर्याय को देखा है उसे वही दिखता है। जिसने गन्ने में गूदा देखा है, उसे गूदा ही दिखता है। जिसने गन्ने में मिश्री देखी, उसे मिश्री ही दिखती है। जिसने शक्कर को देखा उसे शक्कर ही दिखती है। मित्र! गन्ने से मिश्री भी बनती है आपको आस्था है। मैं यहाँ पौद्गलिक दृष्टांत दे रहा हूँ, लेकिन आप 'शुद्धजीवत्वशक्ति' को समझना। हे ज्ञानी! जिसका किसी से उत्पाद नहीं है, व्यय नहीं है; जिसमें उत्पाद है, व्यय है, ध्रौव्यत्व है, उसका नाम जीवत्व है। **जो किसी से उत्पन्न नहीं है, जो किसी से नष्ट नहीं होता है और जिसमें उत्पाद, व्यय है। जो ध्रौव्यत्वशक्ति से युक्त है उसका नाम 'जीवत्वशक्ति' है।**

मित्र! जन्म-जरा-मृत्यु- ये तीनों धारायें असामान्यजाति पर्यायों से युक्त हैं। शरीर में जन्म, शरीर में जरा, शरीर की मृत्यु। द्रव्यप्राणों का संयोग जन्म, द्रव्यप्राणों का वियोग मरण और शरीर की जीर्णता वृद्धत्व है। न मैं मरा हूँ, न मैं जिया हूँ। मैं तो जो हूँ, सो हूँ। मैं रोता नहीं हूँ , क्योंकि मैंने पहचान लिया है कि 'जीवत्वशक्ति' त्रैकालिक है। चाहे साता हो चाहे असाता हो, मैं तो त्रैकालिक हूँ।

हे मुमुक्षु! कम-से-कम यथार्थ निर्णय कर लो कि एक किनारा पानी नहीं है, न ये किनारा पानी है, न वह किनारा पानी है। नर्मदा का न दाहिना तट पानी है, न बायाँ तट पानी है। मध्य में जहाँ से पानी प्रारम्भ है वो भूमि नहीं है और जहाँ से भूमि प्रारंभ है वहाँ पानी नहीं है और फिर भी पानी बह रहा है। वैसे ही ज्ञानी!

जहाँ तन है, वहाँ चेतन नहीं है और जहाँ चेतन है वहाँ तन नहीं है। **तन और चेतन के मध्य जो धारा बह रही है, उन दोनों के मध्य की जो धारा है उसका नाम 'चेतन की जीवत्वशक्ति' है।**

हे मुमुक्षु! पहाड़ को उखाड़ने में जितनी मेहनत नहीं लगती है, उससे कहीं अधिक शक्ति इस देह के अंदर बैठी आत्मा को जानने में लगती है। केवलज्ञान जब प्रकट होगा, उसके साथ वीर्यान्तराय कर्म का क्षय भी होगा। जब-तक वीर्यान्तराय कर्म का क्षय नहीं होगा, अनंतबल नहीं होगा तब-तक केवलज्ञान प्रकट नहीं हो सकता। ज्ञान को रखने के लिये शक्ति चाहिये। कुछ लोगों का अल्प समय में पढ़ते-पढ़ते ही माथा दर्द करने लगता है, आँखें दर्द करने लगती हैं। ज्ञानी! तत्त्व घनत्व देखता है, सामान्य चर्चा में बिखराव है।

भैया! दुग्ध अग्नि पर गर्म करना और प्लास्टिक की छननी से छान लो, तो जलेगी नहीं, पर घी गर्म करके छानोगे तो छन्नी ही जल जायेगी। क्या हुआ? दूध भी गर्म था, घी भी गर्म था। अंतर देखिये, दोनों गोरस हैं, पर दुग्ध में बिखराव था उसके परमाणु में घनत्व नहीं था। घृत में शुद्धशक्ति उत्पन्न हो चुकी है, इसलिये घनत्व है। गर्म घृत को प्लास्टिक की छन्नी से छानोगे तो वह जल जायेगी।

जिज्ञासा - सभी में जीवत्वशक्ति समान होती है कि भिन्न-भिन्न ?

समाधान - मित्र! जीवत्वशक्ति प्रत्येक जीव की सादृश्यदृष्टि से एकत्वभूत है, पर स्वरूपदृष्टि से प्रत्येक जीव की जीवत्वशक्ति भिन्न-भिन्न है। मेरा जीव भिन्न है, आपका जीव भिन्न है। इस अपेक्षा से भिन्नत्व है, परन्तु चेतनत्व-चेतनत्व की दृष्टि से एकत्व है।

हे मुमक्षु! आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्रभाव का धारण जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है ऐसी जीवत्वशक्ति है। **आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्रभावरूपी भावप्राण का धारण करना जिसका लक्षण है ऐसी जीवत्व नामक शक्ति है।** आत्मद्रव्य के हेतुभूत चैतन्यभाव को धारण करना है चिह्न जिसका, वह जीवत्वशक्ति है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

2

चितिशक्तिः

''अजडत्वात्मिका चितिशक्तिः ।।''

अजड़त्वस्वरूप 'चितिशक्ति' है।

अजड़त्व यानी जड़रूप नहीं होना, चेतनरूप होना है लक्षण जिसका, उसे 'चितिशक्ति' कहते हैं। यह आत्मा चितिशक्ति के कारण जड़रूप नहीं होता अर्थात् चेतनरूप ही था, है और रहेगा।

3

दृशिशक्तिः

''अनाकार उपयोगमयी दृशिशक्तिः ।।

अनाकार उपयोगमयी 'दृशिशक्ति' है।''

दर्शनक्रियारूपशक्ति अर्थात् सामान्यावलोकनरूप दर्शनगुण ही **'दृशिशक्ति'** है।

4

ज्ञानशक्तिः

''साकार उपयोगमयी ज्ञानशक्तिः ।।''

साकार उपयोगमयी 'ज्ञानशक्ति' है।

ज्ञेयपदार्थों के विशेषरूप आकारों में उपयुक्त होती है, वह ज्ञानोपयोगमयी **'ज्ञानशक्ति'** है अर्थात् विशेष जाननेरूप ज्ञानगुण को ही ज्ञानशक्ति कहा है।

5

सुखशक्तिः

''अनाकुलत्वलक्षणा सुखशक्तिः ।।''

अनाकुलता लक्षणस्वरूप 'सुखशक्ति' है।

अनादि से यह आत्मा परपदार्थों में ही सुख मानता रहा है, परन्तु परपदार्थों में सुख है ही नहीं, अतः आज तक शाश्वत सुख को प्राप्त हुआ ही नहीं। यह **'सुखशक्ति'** कह रही है कि सुख का पिण्ड आत्मा स्वयं ही है। अनाकुलता स्वरूप सुखशक्ति है।

समय देशना

भव्य बंधुओ! आचार्य प्रवर भगवत् श्री कुन्दकुन्दस्वामी ने समयसारजी ग्रंथ में जिस अलौकिक वस्तुस्वभाव की व्याख्या की है उस वस्तुव्यवस्था को 'आत्मख्याति' टीका में आगे व्याख्यान करते हुये आचार्य भगवन् अमृतचंद्रस्वामी आत्मा की सैतालीस शक्तियों के अंतर्गत यहाँ चितिशक्ति, दृशिशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं सुखशक्ति को समझा रहे हैं।

'अजडत्वात्मिका चितिशक्तिः'

अजड़त्व अर्थात् जड़रूप नहीं होना यानी चेतनरूप होना है लक्षण जिसका वह है 'चितिशक्ति'। **जिसके कारण यह आत्मा जड़रूप नहीं होता है और जो चेतनरूप ही था, सम्प्रति चेतनरूप है और हमेशा चेतनरूप रहेगा ऐसी दूसरी शक्ति का नाम है चितिशक्ति।**

ज्ञानियो! जीवत्वशक्ति त्रैकालिक है, अविनाशी है, अहेतुक है, अखण्ड है, शाश्वत है, ध्रुव है। उसकी सत्ता बता दी है, पर वह जीवत्व है क्या ? चैतन्य है। कैसा है ? जड़भूत नहीं है। मुमुक्षु! सुगत का जड़त्व नहीं है, न ही शून्यवादी का शून्य है। ये विकारों से शून्य है, परभावों से शून्य है, परपरिणामों से जड़भूत है परन्तु निजचैतन्य में अजड़त्व है, चितिभूत है। 'चितचित्स्वरूपोऽहं''।

अहो! एक श्रावक सोचता है कि काश! मैं भी दिगम्बर मुनि बनकर अपनी आत्मा का आनंद लूट पाता, पर धन्य हैं वे जीव जो निर्ग्रन्थता की अनुभूति ले रहे हैं। कोई योगी बनकर भी यदि उपयोग पर में ले गया तो उससे अभागा जगत् में कौन होगा कि निर्ग्रन्थ बनकर भी नहीं जान पा रहा है अपने चैतन्यनिजध्रुवधाम को। मित्रो! जब भी वृद्धों के पास बैठो तो वे अपनी अंतरंग व्यथा सुना देते हैं। सन् 1999 में करगुवाँजी में एक वृद्ध मुनिराज मिले तो बोले - विशुद्धसागर जी! हम तो अपने जीवन में कुछ कर नहीं पाये, पर जब बाल ब्रह्मचारी युवा मुनियों को तत्त्वचर्चा करते हुये देखता हूँ तो प्रसन्नता होती है। जिसने छोटी उम्र में तत्त्व का निर्णय करना सीखा है वह महान् है। मेरा माथा श्रद्धा से झुक गया कि एक वृद्धमुनि के कितने निर्मलभाव हैं युवा मुनि के प्रति। युवा मुनियों को विचारना चाहिये कि लोगों ने अपनी पर्यायों को विषयों में नष्ट किया है, मेरा अहोभाग्य है कि मैंने अपनी युवापर्याय को जिनवाणी और निजस्वरूप में लवलीन करके पूर्ण किया है। जब भी कोई वृद्ध आपको नमोऽस्तु करे तो हे मुनि! उसकी वृद्धावस्था को देखना और फिर निज के संयम को देखना, फिर न तुम्हारा जन्म पर लक्ष्य जायेगा, न मरण पर लक्ष्य जायेगा। एकमात्र 'चित्स्वरूपोहं' पर दृष्टि रहना चाहिये।

हे जैनियो! एक जयंति मनाने में इतना द्रव्य व्यय होता है कि एक नया तीर्थ निर्मित हो सकता है, हजारों ग्रंथ प्रकाशित हो सकते हैं। तीर्थ बनेगा तो लोग दर्शनकर सम्यक्त्व प्राप्त करेंगे, जिनवाणी प्रकाशित होगी तो लोग पढ़कर तत्त्वनिर्णय करेंगे। मैं किसी का विरोधी नहीं हूँ, मैं तो समाज को एक सोच दे रहा हूँ। जगत् में उत्साह मनाने के अनेक रूप हो सकते हैं, पर **त्यागी को उपवास करके उत्साह**

मनाना चाहिये, नीरस आहार अथवा अन्य नियम व्रत धारण कर उत्साह मनाना चाहिये। जगत् में लोग लड्डू-पेड़ा खाकर पर्व मनाते हैं, परन्तु जैनियों के जब पर्यूषण आते हैं तो जैनी उपवास, एकाशन करके पर्व मनाते हैं। **हमारे यहाँ जो पर्व हैं, साधना है; वह त्यागमय है।**

जिनको सालभर अच्छे से खाने नहीं मिलता, सो लोग पेटभर खाकर पर्व मनाते हैं। जैनियों को सदा दिन एक से। अर्थात् जैनियों का भोजन प्रतिदिन त्योहार जैसा ही होता है, सो आप त्यागकर त्योहार मनाते हो। व्रत-जप-तप करके जैनी पर्व मनाते हैं । जब तीर्थंकर भगवंतों के पंचकल्याणक पर्व आते हैं तो उन तिथियों में मातायें उपवास करती हैं। हे साधक! ऐसे ही जब आपका जन्म दिन हो तब उपवास न कर सको तो कम-से-कम किसी वस्तु का त्याग ही कर देना। त्याग करके उत्साह मनाना तो समझ में आता है, पर षट्काय की हिंसा का त्यागकर पुनः उसमें लवलीन हो जाना, दुनियाँ के आडम्बरों में लिप्त होना यह बात समझ में नहीं आती है।

हे जीव! अनंत पर्यायें धारण कीं, बहुत भ्रमण किया है, तब यह दुर्लभ मनुष्य पर्याय मिली है, तो उदासवृति से जीवन जीना, क्योंकि इस अहेतुक भगवान् का न जन्म है, न मरण है। कैसा है चैतन्य ? सत् है, सत्-चित्-आनंद। जीवत्वशक्ति-सत्। चितिशक्ति-चिद्। चिद् जो है वह चैतन्य है। जो चैतन्य है वह ज्ञान-दर्शन-स्वरूप है। सद्-चित् में दृशिशक्ति, साकार ज्ञानशक्ति, आनंद सुखशक्ति। सत्-चित् में जीवत्वशक्ति, चितिशक्ति। **'चिदानंद स्वरूपोऽहं'**। मैं सत् हूँ। मेरी सत्ता त्रैकालिक है। जो त्रैकालिक है वह चेतन है। चेतन क्या है ? वह ज्ञानदर्शनभूत है। ज्ञान-दर्शन क्या करता है ? आनंद में लीन है।

हे मुमुक्षु! यहाँ पूरी व्याख्या योगी की चल रही है। यहाँ साधु की चर्चा नहीं चल रही है। **जिसके निज चैतन्य ने परज्ञेयों से पूर्ण विराम ले लिया है, अविराम एकमात्र निजज्ञेय को ही अपना ध्येय बना रहा है वही योगी है।** निज के शरीर के प्रति ममत्व होना, निज के शरीर के पास आना - ये तो बहुत निम्न बात है। योगी निजदेह को भी पर ही मानता है। हे श्रावको! जब आप बारह व्रतों का धारण करते हैं तब आपने अनर्थदण्ड का भी त्याग किया था, उसमें एक अपध्यान नाम का भी अनर्थदण्ड है। ज्ञानियो! जगत् की आपाधापी से समय निकालकर कम-से-कम चौबीस घण्टे में एक बार धारण किये व्रतों का ही ध्यान कर लिया करो। मुनिराज अपने मूलगुणों का स्मरण कर लें कि मेरे कौन-कौन से मूलगुण हैं। अहो! जब द्रव्यसंयम ही नहीं पल पायेगा तो भावसंयम कैसे पलेगा ? आचार्य भगवन् श्री समन्तभद्र स्वामी 'रत्नकरण्डक श्रावकाचार' में कह रहे हैं कि -

वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः।
आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥ 78॥

इस व्यक्ति की स्त्री का नाश हो जाये, इसके बेटे का नाश हो जाये, इसकी सम्पत्ति का नाश हो जाये, इसके यश का नाश हो जाये, इसके वैभव का नाश हो जाये, इसकी कीर्ति मैं मिटा दूँगा - ऐसे परिणाम यदि

किसी के अन्दर आ रहे हैं तो वह व्रती नहीं है। क्यों कि उसके भीतर अपध्यान चल रहा है। हमारे यहाँ बारह व्रत धारण करने पर एक श्रावक खोटे चिन्तन का त्यागी है फिर जिसने महाव्रतों को धारण किया हो ऐसा मुनि कैसे चिन्तन कर सकता है कि मैं इनका नाम मिटाकर रहूँगा। ऐसा चिन्तन जिसके अन्दर चल रहा है वह मुनि कहलाने का पात्र है क्या ?

जहाँ जीव के लिये ये कहा जा रहा है कि हे श्रमण! हे योगी ! निज के रागद्वेष परिणामों का चिन्तन भी तेरा परभाव है। स्वयं के भीतर उत्पन्न हुये रागद्वेष परिणाम का होना भी तेरा निजभाव नहीं है। ये ध्रुवसत्य है कि आस्थाओं को कमजोर करने के लिये जीव कुछ भी बोल सकता है। किंचित्मात्र भी जैनत्व होगा, व्रतत्व होगा, महाव्रतत्व होगा तो जब तुम चींटी की रक्षा के भाव कर सकते हो, तो श्रमण संघ के विनाश की बात करके कौन से लोक की यात्रा करना चाहते हो ? धूप से छाँव में आने पर देह का मार्जन कर रहे हो जिससे कि जीवों का विघात न हो जाये और जहाँ साकार-अनाकार उपयोग में लवलीन हो वहाँ तुमको भिन्न द्रव्यों पर जाने का समय कब मिलेगा ? भैया! किंचित्मात्र भी प्रश्न उठें तो वहीं जाकर समाधान प्राप्त कर लें नहीं तो पता नहीं किस जीव के बारे में कितना गहरा हमारा अशुभ चिन्तन चला जाये। आप तो कहीं के न बचेंगे। इधर उल्टा सोचूँगा तो मैं गया, उधर उल्टा सोचूँगा तब भी मैं गया। इसलिये जब भी तत्त्व का निर्णय करना हो तो मेरा इतना विश्वास है कि पिच्छीकमण्डलुधारी है, उससे सबके सामने आकर मिल लेना, वह सबके सामने पिच्छी उठाकर तो नहीं मारेगा। नमोऽस्तु कर लेना।

भैया! यति के संघ का नाश तो घोर पाप है, दिगम्बर मुनि का चित्र भी कहीं टंगा हो, मैं चित्र को पूज्य नहीं मानता हूँ, न आप मानते हो लेकिन तब भी तुम चित्र को नष्ट करोगे तो आपको महान् पाप का बंध होगा। मुनि का चित्र तो दूर है, यदि कोई पशु का भी चित्र बना है और आप प्रतिमाधारी हो तो उस चित्र पर बैठ नहीं सकते हो, कागज के चित्र पर छेद नहीं कर सकते हो। जिस पर दिगम्बर योगी का चित्र बना हो उसे तुम विदीर्ण करोगे तो परिणाम क्या होगा? जब संक्रान्ति के चित्रवाले गड़िया-गुल्ला खाने का हमारे यहाँ निषेध किया है, खाते हो तो तुमको पशु खाने की हिंसा का दोष लगेगा। एक आटे के मुर्गे की बलि चढ़ाने का परिणाम क्या हुआ और एक अर्हन्त की प्रतिमा को छुपाने का परिणाम कितना खोटा हुआ ? जिस जीव ने यह सोच लिया कि यह तस्वीर उतार दूँगा, इसको नष्ट कर दूँगा, ये सब अधोगमन करने के विचार हैं। ऐसा विचार भावलिंगी मुनि का बनना ही नहीं चाहिये। यदि बनता है तो उनका भावलिंग तो दूर है, मैं द्रव्यलिंग ही नहीं मानता हूँ।

यहाँ जो व्याख्या चल रही है आचार्य भगवन् कह रहे हैं - हे श्रमण! यदि रागभाव न इस माइक का, न इस ग्रंथ का, बाहर के किसी द्रव्य का नहीं आपको पर अपनी निर्ग्रन्थ मुद्रा पर भी राग है तब भी तुम निर्ग्रन्थ नहीं हो। आपको अपनी मुनिदशा, मुनिचर्या, मुनिलिंग पर राग है तो क्या आप निर्ग्रन्थ हो ? जिस निर्ग्रन्थ की मैं व्याख्या कर रहा हूँ, वह बारहवें गुणस्थान में विराजता योगी, उसकी निर्ग्रन्थ संज्ञा है।

जिसके मोह की गाँठ निकल चुकी है उस मुनि की संज्ञा निर्ग्रन्थ है। ऐसा निसर्ग निर्ग्रन्थ जीवमात्र स्वरस का रसपान तो कर रहा है पर स्वरस के रस का वेदन स्वरस में ही चल रहा है पर वहाँ उस स्वरस के वेदन करने का भाव भी वहाँ नहीं है। जो निज में आनन्द आ रहा है, उस निज के आनन्द के व्याख्यान करने के परिणाम भी मोह ही हैं।

जब बारहवें गुणस्थान में विराजते मुनिराज कोई व्याख्यान नहीं करते तो फिर तेरहवें में क्यों करते हैं ? ऐसा प्रश्न करो और फिर इतना व्याख्यान कि पूरा द्वादशांग उनका ही व्याख्यान है। बारहवें गुणस्थान में वे वीतरागी तपोधन कारण-परमात्मा। अर्हन्त अवस्था कार्यपरमात्मा, उस में मोह का कोई विकल्प ही नहीं बचा। अब परमेश्वर के ज्ञान में विश्व के चराचर द्रव्य झलक रहे हैं, चल रहे हैं, वे जान नहीं रहे हैं, वे जन रहे हैं। जैसे मैं जानता हूँ वैसे वे जानने लग जायें तो हममें उनमें कोई अन्तर नहीं होगा। मैं भी रागी, वे भी रागी। जानने का भाव जहाँ है, वहाँ राग है। नियमसारजी ग्रंथ में स्पष्ट लिखा है कि 'ईहापूर्वक' इच्छापूर्वक अर्हन्तदेव की कोई प्रवृत्ति नहीं होती है।

भैया! देखो, ये मेरा हाथ तेरे केमरे में आ रहा है क्या ? आ गया। जब मेरा हाथ तेरे केमरे में चला गया तो मैं तो हाथ से रहित हो गया। लेकिन वास्तव में आया है क्या ? ये तो व्यवहार में कहा जा रहा है। जो दिख रहा है वह केमरे के लेंसों में ही परिणमन हुआ है। ऐसे ही मुमुक्षु! भगवान् तीर्थंकर केवली सर्वज्ञ के ज्ञान में जगत् की कोई वस्तु प्रवेश करती नहीं है, वह तो कैवल्य के लेंस की इतनी निर्मलता है कि उसमें झलकते हैं। वो किसी को देखते नहीं हैं किसी को दिखाते भी नहीं हैं। अभी तो श्रुतज्ञान की व्याख्या चल रही है। केवली भगवान् बनने के लिये इस श्रुतज्ञान की चरमसीमा में प्रवेश करना पड़ेगा। हाथ तो नहीं आया न? सर्वज्ञदेव जानते हैं, देखते हैं; ये व्यवहारनय का विषय है। उनके ज्ञान में झलकता है।

चित्रकार ने चित्र इस दीवार पर बनाया पर उधर देखो, चित्र इधर दिखाई देता है, कोई अन्तर नहीं है कि चित्र इस दीवार पर है कि उस दीवार पर। उस पाषाण को इतना अच्छा घिसा गया, दर्पण के समान कर दिया गया कि सामने का चित्र परावर्तितरूप से दिखाई देता है। भैया! चित्र दिखेगा कि नहीं ? दिखेगा। जबकि दीवार जड़ है, चित्र भी जड़ है। जड़ की स्वच्छता, स्वच्छत्व प्रवृति। स्वच्छत्व शक्ति इतनी स्वच्छ हो गयी है जबकि है नहीं। ये दीवार दूसरी दीवार में प्रवेश किये है क्या ? चित्र प्रवेश किया क्या ? ये स्वच्छत्व गुण अतन्मयीभूत होने पर, अन्तराल होने पर भी झलक रहा है, तन्मयी जैसा। कितना ही झलकेगा तब भी अतन्मयी ही रहेगा और देखनेवाला चित्र को न देखकर सबसे पहले झलकनवाले चित्र को देखता है तो वह यह नहीं समझेगा कि यह चित्र है कि परछाई है। जैसे दीवार के ऊपर भिन्न दीवार का चित्र प्रदर्शित हो रहा है ऐसे ही जगत् के भिन्न ज्ञेय भगवान् के स्वच्छ केवलज्ञान में झलक रहे हैं परन्तु वहाँ वे किंचित्मात्र भी हैं नहीं, अतन्मयीभूत हैं।

मैं बहुत अच्छे से बोल रहा हूँ जैसा मैं मेरे बारे में अनुभव कर रहा हूँ जान रहा हूँ, वैसा तुम्हारा सर्वज्ञ मेरे बारे में आज तक नहीं जान सका। तीनों लोकों के सम्पूर्ण द्रव्यपर्यायों को युगपत् जाननेवाला उसे आप चुनौती दे रहे हो और आप जैन मुनि होकर आचार्य की गद्दी पर बैठे हो और ऐसा बोल रहे हो। विश्वास नहीं है तो आचार्य भगवन्तों से पूछ लेना। समन्तभद्र योगी जैसे अलौकिक आचार्य कह रहे हैं -

मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान् देवतास्वपि च देवता यतः।
तेन नाथ परमासि देवता श्रेयसे जिनवृष प्रसीद नः ॥75/स्व. स्. ॥

भैया! आप दोनों फुरसत से लग रहे हो और दोनों के बेटे कमाने लगे हैं और उम्र अभी आपकी ऐसी नहीं है कि लाठी टेककर चलो या फिर मात्र माला फेरने बैठ जाओ। अभी उम्र आपकी ऐसी है कि अगर आप चाहो तो पूरे श्रुत का अध्ययन कर सकते हो, बुद्धि भी है, क्षयोपशम भी है। नोट कमाने का क्षयोपशम जिसके पास है वह जिनवाणी को झेल सकता है। भैया! आचार्य समन्तभद्र योगी जैसा महान् तार्किक आचार्य जिसने धीरे से बोल दिया 'मानुषीं प्रकृतिमभ्य' परन्तु भैया! इसके आगे भी कुछ है, वे तो यह कह रहे हैं कि तेरी प्रकृति को देव भी नहीं पहचान पाते। ये तो देव गति के देव की व्याख्या हो गयी।

महाराज! मेरी श्रद्धा तो ऐसी ही थी कि भगवान् सर्वज्ञ तो सब जानते ही हैं और आपने ये क्या कह दिया कि सर्वज्ञदेव आपके बारे में नहीं जानते। हाँ, बिल्कुल सत्य कह रहा हूँ, नहीं जानते। भैया! मिश्री खाई क्या? जिस जीव ने मिश्री खाई है और आपको बताया है कि मिश्री मीठी होती है। फिर आपसे किसी ने पूछ लिया कि भैया! मिश्री कैसी होती है ? जब आपने खाई ही नहीं तो क्या बतायेंगे ? न तुमने चखी, न पूछनेवाले ने चखी, चखनेवाला तो कोई दूसरा है, तब भी आप क्या बोलोगे कि मिश्री मीठी है। जैसा मीठा स्वाद मिश्री का चखनेवाला ले पा रहा है क्या ऐसा स्वाद आप ले पा रहे हो? जैसा उनने कहा सो आपने बोल दिया। ऐसा बोलते-बोलते हम वहाँ से यहाँ तक आ गये लेकिन मिश्री किसने खाई ? भिन्न पुरुष ने। हे जीव! जैसे मिश्री का आस्वादन का ज्ञान अनुभवभूत चखनेवाले को है वैसा सुनकर जाननेवाले को है क्या ? नहीं है।

केमरेवाले भैया! मेरा चेहरा आ रहा है कि नहीं? भैया! ये बताईये कि उस चेहरे को आप देख रहे हैं कि नहीं? ज्ञानी! मेरे चेहरे का वेदन तुझे हो रहा है कि नहीं ? दर्पण में गाल पर लगा दाग दिखाई दे रहा है कि नहीं ? और आप उसे लगे हो साफ करने में। मित्र! ये तो बताओ दाग कब पुछेगा? जहाँ लगा है वो भिन्न चेहरा है। जहाँ पोंछ रहा है वो परछाई है, प्रतिबिम्ब है। प्रतिबिम्ब पर तुम कितना ही घिसते रहो लेकिन दाग साफ होनेवाला नहीं है और जहाँ लगा है वहाँ पोंछो तो दाग हटेगा। जो चेहरा मेरा है, मैं अपने चेहरे को जैसे वेद रहा हूँ, मैं अपने ज्ञान का वेदन कर रहा हूँ, मैं अपने दर्शन का वेदन कर रहा हूँ, मैं अपने आप में तन्मयभूत होकर वेदन कर रहा हूँ। पर केवली मेरे बारे में तन्मयभूत होकर वेदन नहीं

करता। वह अतन्मयीभूत होकर जानता है, तन्मयीभूत होकर नहीं जानता है। यदि केवली जगत् के द्रव्यों को तन्मयभूत होकर जानने लगेगा तो केवली और भिन्न द्रव्य में कोई अन्तर ही नहीं होगा, संकर दोष आ जायेगा। फिर निरामय क्या ? चाहे निरावरण ज्ञाता हो चाहे सावरणज्ञाता हो, परज्ञेयों को जानते समय कोई भी ज्ञाता तन्मयभूत होकर नहीं जानता, अतन्मयभूत होकर ही जानता है।

जो-जो इन्द्रियों से तुम जानते हो वो निज को नहीं पहचानते, निज को नहीं जानते, दूसरों को जानते हो और दूसरों को जब आँखें तुम्हारी देखेंगी तो तन्मयभूत होकर नहीं देखेंगी, अतन्मयभूत होकर ही देखेंगी। तादात्म्यसंबंध, व्याप्तिव्यापकभाव, तन्मयभूत-व्याप्तिव्यापकभाव, अतन्मयभूत-व्याप्तिव्यापकभाव, तद् तद् अतद् अतद्। भैया! ये मेरा हाथ है कि नहीं ? जरा अपनी ओर करो। मैंने अपने हाथ में सुई चुभोई। क्या तेरे हाथ में वेदन होगा ? पर इसमें कोई सुई चुभो रहा है तो आपको दया आयेगी कि नहीं ? दया का ही कष्ट है पर सुई चुभने का कष्ट तुम्हें किंचित्मात्र भी नहीं है।

भैया! जैनदर्शन को विभिन्न भागों में विभाजित कीजिये। प्रथमानुयोग की व्याख्या अलग है। करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग की व्याख्याएँ अलग-अलग हैं। पुण्य-पाप की जो क्रियाभूत प्रवृत्तियाँ हैं, श्रावकाचारादि हैं उनकी व्याख्या अलग है। जो अभी सुन रहे हो, ये द्रव्यदृष्टि अंतरंग चक्षु का विषय है। भैया! सर्वज्ञदेव केवली भगवंत् जैसा मैं अपने को जानता हूँ वैसा वो मेरे को जानते हैं क्या ? जैसा हूँ वैसा बता सकते हैं क्या ? जैसा हूँ मैं, वैसा बोल सकते हैं क्या ? लेकिन तब भी जैसा मैं जान रहा हूँ वैसा नहीं जान सकते। जो भगवान् सीमन्धर स्वामी, भगवान् आदिनाथ, भगवान् नेमिनाथ स्वामी सम्पूर्ण द्रव्यों की सम्पूर्ण पर्यायों को युगपत् जानते हैं, उसे तुम क्या जान सकते हो ? लेकिन फिर भी जैसा मैं जानता हूँ अपने बारे में, वैसा फिर भी वे नहीं जान रहे हैं। मेरे बारे में वे मेरे से ज्यादा जानते हैं, मेरा तो क्षायोपशमिकज्ञान-छद्मस्थ का मतिश्रुतज्ञान। केवलज्ञान तो निरावरणज्ञान है उसमें तो अनन्त को जाना जाता है।

भैया! क्या है जो द्रव्य तुमको परलक्षित हुये हैं, ये स्थूल व्यवहार बोल रहा है कि मैंने आपके चेहरे को देख लिया, जान लिया। मैंने ग्रंथ से ज्ञान प्राप्तकर लिया, अत्यंत स्थूल व्याख्या है ये। हे जीव! आपने ग्रंथ से जाना कि आपके ज्ञान ने ग्रंथ को पढ़ा ? ज्ञान से ग्रंथ को पढ़ा एवं जाना। ज्ञानियो! यदि ज्ञान न होता तो तुम ग्रंथ को पढ़ते कैसे ? ज्ञानी! ग्रंथ ने ज्ञान नहीं दिया। ग्रंथ के आलम्बन से तुमने ज्ञेय को और जान लिया पर ज्ञान तो तेरे भीतर ही था। ऐसे ही ज्ञान जो है वह ज्ञेयों से उत्पन्न नहीं होता। ज्ञेय भिन्न है, ज्ञान मेरा भिन्न है। निजज्ञानज्ञेय तो एक है, परज्ञान परज्ञेय निजज्ञान से भिन्न है और परज्ञेय का निजज्ञान में अत्यंताभाव है। ज्ञान ज्ञेयों से नहीं होता है। यथार्थ तो ये है कि ज्ञान ही निज का परिणत हुआ है पर उपचार से कहा जाता है कि मैंने ज्ञेयों से जाना है। जानते तो हम ज्ञान को ज्ञान से ही हैं। जानते तो ज्ञान से ही ज्ञेय को हैं। भैया! ये मानना पड़ेगा कि जितने गहरे आप विद्वानों को सुनकर बैठे हो यदि इस विषय

पर कुछ निर्णय लोगे, वे अपने चिन्तन से निर्णय देंगे। मेरे मित्र! वो ज्ञान उन्हीं का उनने तुम्हारे ज्ञान को उल्टा और करा दिया। ज्ञानी! उनके ज्ञान में दुनियाँ का कोई ज्ञान प्रवेश नहीं करता और न ही कोई ज्ञेय प्रवेश करता है।

यदि सर्वज्ञ के ज्ञान में ज्ञेय प्रवेश कर जायेगा तो चेतन में जड़ प्रवेश किया कैसे ? और चेतन यदि ज्ञेयों में प्रवेश कर जाता तब या तो सर्वज्ञ को अचेतन होना पड़ता या अचेतन को चेतन होना पड़ता। न ज्ञान में ज्ञेय प्रवेश करता है न ज्ञेय में ज्ञान प्रवेश करता है, 'मुकुर मयूरवत्'। दर्पण में मोरने प्रवेश नहीं किया पर दर्पण में मोर दिख रहा है, वह दर्पण की स्वच्छता है। मयूर तो मयूर है, दर्पण दर्पण है। ज्ञान ज्ञान है, ज्ञेय ज्ञेय है। ज्ञेय ज्ञान होता नहीं, ज्ञान में ज्ञेय प्रवेश करता नहीं फिर भी ज्ञान में ज्ञेय झलकता है जैसे कि कैमरे में । उसमें प्रवेश किया नहीं वो मेरे में प्रवेश किया नहीं तब भी मैं कैमरे में झलक रहा हूँ। मैं नहीं झलक रहा हूँ, ये पर्याय झलक रही है। वो पर्याय भी नहीं है उसके ही लेंस का परिणमन है। यह तो प्रकाश परावर्तन है, विकिरण (Radiation) विधि नहीं है।

भैया! एक घर में मेरे आहार हुये। कितना चतुर श्रावक था? उसके चौके में सूर्य का प्रकाश नहीं आता था सीधा और बल्ब में न बन सकता न आहार कर सकता। ये ध्यान रखना, जो व्रती हैं उन्होंने बल्ब के उजाले में भोजन किया एवं बनाया उन्हें रात्रिभोजन का दोष लगेगा। भैया! उसने क्या किया, ऊपर रखा काँच, तो सूर्य की किरणें सीधी उस काँच पर पड़ रहीं थीं और काँच का जो प्रकाश था वह टकराकर पूरे चौके में फैला हुआ था। मुझे पहले भ्रम हुआ कि बल्ब तो नहीं जल रहा, ये प्रकाश किसका था ? सूर्य का परावर्तित प्रकाश था पर सूर्य वहाँ दिखाई नहीं दे रहा है। क्या दर्पण में प्रकाश होता है ? तो सब घरों में दर्पण रख लो प्रकाश होना चाहिये फिर रात्रि में भी दर्पण प्रकाश देगा इसलिये ज्ञेयों के बिना ज्ञाता जानता नहीं पर भिन्न ज्ञेय ज्ञान में प्रवेश करते नहीं।

मयूर के बिना मुकुर में झलकता नहीं पर मुकुर में मयूर प्रवेश करता नहीं। वे जानते तो सब कुछ हैं मगर व्यवहार से लेकिन जैसा मैं अपने बारे में तन्मयभूत अनुभव कर रहा हूँ वो मेरा कोई भी अनुभव नहीं कर रहे हैं। यदि वो मेरा वेदन करने लग गये तो वे पक्के संसारी छद्मस्थ हो जायेंगे। जितने रो रहे होंगे तो उन्हें रोने की अनुभूति होगी, जितने हँस रहे होंगे तो उन्हें हँसने की अनुभूति होगी। अरे भैया! उन्हें तो छोड़िये, मेरे से मिल लो। ये इतने लोग यहाँ बैठे हुये हैं इनके अन्दर कोई चिन्ता हो रही है क्या ? इतने लोग बैठे हैं सबके चेहरे एक से हैं क्या ? नहीं। सबके भाव एक से हैं क्या ? नहीं। पर वह खड़ा-खड़ा देख रहा है सबको, देख रहा है कि नहीं ? वह आपको देख तो रहा है पर वह आपका वेदन अपने ज्ञान में कर रहा है क्या ? नहीं, तुम्हारा कोई भी वेदन उसके भीतर नहीं हो रहा है। मेरा वेदन आप नहीं कर पा रहे हो आपका वेदन मैं नहीं कर पा रहा हूँ।

वे सर्वज्ञ वीतरागी पर के ज्ञेयों को क्या देखेंगे, क्या जानेंगे, क्या वेदन करेंगे, वो तो झलक रहा है। अपने कष्टों में तुम प्रभु को कष्ट में डाल दोगे। आप डालने का ही विचार कर पाओगे पर वे कष्ट में कभी जायेंगे नहीं। ऐसा ज्ञान होने लग गया जैसा आप बोल रहे थे। पर भैया! आप अपने घर में शांति से एक मिनिट नहीं बैठ सकते थे। भैया! आज अपना अहोभाग्य मानो कि हम उस दर्शन में जन्मे हैं जिसमें ज्ञान के भीतर भी ज्ञान प्रवेश करा दिया था। कोई भी दर्शन इस विषय को समझ ही नहीं सका। सबका शरीरों पर आलम्बन है और प्रभु पर लिप्त हैं। पर भैया! जो हमारा जैनदर्शन है वह तुमको प्रभु से, गुरु से, शिष्य आदि सबसे भिन्न करके जीना सिखाता है। जहाँ से कहीं जाया नहीं जाता वह मेरा निजज्ञायकभाव है।

मित्र! जीवन में कितने प्रकार के रोगी तेरे पास आये थे। आपने सबके रोगों को जाना कि नहीं ? एक जीव ने सबके रोगों को जाना और सबको दवाई दी लेकिन तब भी एक भी प्रकार का रोग इसके अन्दर नहीं हुआ। इसने जाना क्या है ? मात्र जो पुस्तकों में पढ़ा था उसके अनुमान से इसने दवाई दी है पर एक भी रोग को इसने नहीं जाना। जान लिया होता तो स्वयं रोगी होकर ही जान पाता। जैसे आपने उन रोगों का परीक्षण अनुमान-ज्ञान से करके, ग्रंथों से पढ़कर औषधियाँ देकर स्वस्थ तो कराया है लेकिन स्वयं अनुभूति न तुमने, न टीवी वाले, न केंसर वाले ने की। किसी फोड़े का वेदन तो तुझे हुआ ही नहीं है। जैसे डाक्टर को किसी रोग की पीड़ा नहीं हुई ऐसे ही केवली भगवान् को जगत् के ज्ञेय की पीड़ा तनिक-सी नहीं हुई। यदि डाक्टर को पीड़ा होने लग जाये तो वह डॉक्टरी छोड़कर ही भाग जाये और कहे कि मैं बिना रोग के ही दुःखी हूँ। देखो भैया! जितना भी मैं आपको यहाँ बता रहा हूँ, वह भी बहुत कम बता पा रहा हूँ। शब्दों में ताकत नहीं है, जितना मैं सोच पाता हूँ उतना बोल नहीं पाता। सर्वज्ञदेव ने जगत् के रोग तो समझ लिये, दूर करने के उपाय बता दिया है - मोक्षमार्ग। लेकिन वे किसी के रत्नत्रय को पालने नहीं जाते, पलाने नहीं जाते। वे तो अपने रत्नत्रयधर्म का आनंद लूटते हैं। जो उन्होंने मुनिदशा में रत्नत्रय का पालन किया था उसका फल वेद रहे हैं, वे अर्हन्तदेव केवली भगवान्। भैया! समझ में आ गया होता तो तू क्या यहाँ बैठा मिलता ?

आदि होता कब है ? अन्त होता कब है ? देखो, एक भ्रम फैलाया जा रहा है तत्त्वार्थसूत्र में- **'सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य'**। 'कौण्देयकौमदी' उस पुस्तक को पढ़ने के पहले आपको सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिये। 'कौण्देयकौमदी' ग्रंथ को पढ़ने से भगवान् के कैवल्य पर कई भ्रम हो रहे हैं। जितनी पण्डित परम्परा है ये लोग विद्वानों के ग्रंथों को ज्यादा महत्त्व देते हैं। यदि हमारे मुनिराज कहीं उसमें उलझ गये तो बड़ा अनर्थ हो जायेगा। वस्तु का आदि कब से है ? वस्तु का अंत कब होगा ? अब आप प्रश्न कर रहे हो श्रुतज्ञान से केवली पर कि भगवान् आदि की पर्याय को नहीं जानते, अन्त की पर्याय को नहीं जानते।

अभी कुछ समय से इस सूत्र की व्याख्या कुछ लोगों के द्वारा विपरीत प्रारंभ हो गई है। मेरे मित्र! जब आदि है ही नहीं, अंत है ही नहीं द्रव्य की तो जो पर्याय है नहीं, वह आपके ज्ञान में झलकेगी तो उस पर्याय को कहकर तुम केवली के बारे में प्रश्न खड़ा करना चाहते हो। अभी मैं संसारी और मुक्तजीव को आधार बनाकर नहीं बोल रहा हूँ, मैं सामान्य कथन कर रहा हूँ। यह पुद्गल द्रव्य (पेन) इसकी पर्याय, इस पुद्गल स्कंध का प्रारम्भ कब से हुआ ? अंत कब होगा पुद्गल का ? इस पुद्गल का कभी प्रारंभ नहीं हुआ। **'नैवाऽसतो जन्म सतो नि नाशो'** असत् का जन्म नहीं होता, सत् का विनाश नहीं होता। इसकी उत्पत्ति हुई क्या ? द्रव्य की उत्पत्ति नहीं होती है। द्रव्य त्रैकालिक है, तो इसकी पर्याय त्रैकालिक है कि नहीं ? तो इसकी प्रथम पर्याय कौन-सी है ? क्या केवली के ज्ञान में इस पेन की प्रथम पर्याय भी झलकेगी ? इसकी अंतिम पर्याय भी झलकेगी ? नहीं, तो फिर भाई जो द्रव्य जैसा है वैसा झलक रहा है। अब आप ये बोल रहे हो कि वे सर्वपर्यायों का नहीं जानते हैं, अनन्त पर्यायों को नहीं जानते हैं।

यदि किंचित् भी आर्जव-मार्दव गुण से युक्त हो तो विद्वानों को समाज में विपरीतता फैलाने की जगह अपने ज्ञान को और मार्जन करने के लिये दूसरे विद्वानों के पास बैठना चाहिये। **ख्याति फैल जावे और मान तीव्र हो जाये उससे अनर्थ हो जाता है।** ये उनसे मिलना चाहेगा नहीं और एक ही पक्ष की बोलता रहेगा। जरूरी नहीं है इतना गहरा चिन्तन पहुँच जाये। इसलिये आप इन सुनी-सुनाई बातों को बाद में सुनना।

पहले तो आप 'सर्वार्थसिद्धि' ग्रंथ पढ़ लेना। भाई! मैं वर्तमान के लोगों को बाद में सुनूँगा। पहले मुझे पूज्यपाद स्वामी से मिल लेने दो। पूज्यपाद स्वामी ने इसका अर्थ क्या किया है कि वे असर्वपर्यायों को जानते हैं कि सर्वपर्यायों को जानते हैं ? असर्वपर्यायों को। ये असर्व शब्द आपने जोड़ा है कि सूत्र में है ? जब सूत्र में नहीं है तो आप लोग असर्व शब्द का प्रयोग क्यों कर रहे हो ? पूज्यपाद स्वामी ने अर्थ किया है कि सर्वज्ञदेव सर्वपर्यायों को जानते हैं। सम्पूर्ण द्रव्यों की सम्पूर्ण पर्यायों को जानते हैं। लेकिन वर्तमान में कुछ विद्वान् असर्व शब्द का प्रयोग करने लग गये हैं और असर्व शब्द का प्रयोग करके आप पूज्यपाद स्वामी, अकलंक स्वामी, विद्यानन्द स्वामी इन सारे आचार्यों पर प्रश्न चिह्न खड़ा कर रहे हो। इसलिये अपना चिन्तन अपने अनुसार मत करो।

'तज्जयति परं ज्योतिः' अगर इसका अर्थ जान लेते तो वो फिर गलत नहीं करते। भैया! उसको नहीं जान पाये। जानने में तो लगता है यदि मैं जान लूँगा तो फिर मुझे कहना पड़ जायेगा कि इस श्लोक में समस्त शब्द का प्रयोग है। इसलिये भाई ! अल्पज्ञानी बनकर रहना पर इतना श्रद्धान बनाकर रखना, जैसा पूरा जो लिखा है वह परम सत्य है। आपको जब भी कोई शंका उत्पन्न हो तत्त्व पर तो पहले क्या बोलना कि ये तो मैं जानना चाहता हूँ पर सत्य वही है जो आचार्यों ने कहा है। इससे अपना सम्यक्त्व भी सुरक्षित हो गया।

अब खोज चल रही है चलने दो। ये मेरी समझ में नहीं आ रहा है इसलिये मैं खोज कर रहा हूँ लेकिन है सत्य वही जो भगवान् ने कहा है। ज्ञानी! ऐसा मत कह देना कि भगवान् जानते ही नहीं हैं। ऐसे मित्र! काम नहीं चलेगा, गहनतम अध्ययन करना पड़ेगा श्रुत का, नहीं तो पिच्छी-कमण्डलु ढोते-ढोते पूरी पर्याय निकल गई और दुःखी होगा जीव। भैया! किसी ने उल्टा -सीधा प्रश्न कर दिया, ये तो उल्टा उत्तर दे देगा पर जिस विद्वान् ने ज्ञान का अर्थ जाना है वही हँसी कर देगा अथवा चुप रहकर बैठना पड़ेगा तो मन में अशुद्धि आयेगी कि मैं उत्तर दे नहीं सका। भैया! इधर देखो, ये तीन अँगुली दिख रही हैं आपको, इनके नाम बताओ। तर्जनी, मध्यमा, अनामिका। ये सबसे बीच की बड़ी क्यों है ? ऐसा प्रकृति में क्या हो गया, ये छोटी हो जाती। भो ज्ञानी! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। बीच में ऊँची है कौन-सी ? ज्ञान की। ये क्या कह रही हैं, इधर भी प्रकाश, उधर भी प्रकाश। ज्ञान मध्य में, चारित्र को भी विशुद्धि देता है और दर्शन को भी विशुद्धि देता है। **जितना-जितना निर्मल ज्ञान होगा, उतनी ही सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र की विशुद्धि बढ़ेगी** इसलिये ज्ञान को ही इतना विशुद्ध करना। इसलिये कर्णधार भले ही सम्यग्दर्शन है पर मुमुक्षु, ज्ञान ही पथ-प्रदर्शक है।

अज्ञानपूर्वक चारित्र को धारण कर लेना ये सम्यक् नहीं है। ज्ञानपूर्वक चारित्र धारण करोगे यही तुमको मोक्ष ले जायेगा। भैया! पहले सम्यग्दर्शन होता ही नहीं है। घबराना मत, मैं तो जानकर ही ऐसा बोल रहा हूँ। सबसे पहले ज्ञान ही होता है और मुझे मालूम है कि आप लोग अभी तक यही पढ़े हो कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। मैं कह रहा हूँ ऐसा, तो आप कहो कि मैं उलटा पढ़ा रहा हूँ कि नहीं ? भैया! जो आप बोलते हो वो तो मैं मानता हूँ, जानता हूँ लेकिन फिर से कहता हूँ कि पहले ज्ञान ही होता है इसके बाद सम्यग्दर्शन होगा। जब-तक ज्ञान नहीं होगा तब-तक श्रद्धान हो ही नहीं सकता।

1996 में लार्डगंज में प्रवचनमाला की कक्षा चली। प्रथम दिन लोगों ने जाना , दूसरे दिन पहचाना, तीसरे दिन माना। भैया! ये मैं नहीं बोल रहा हूँ, ये कुन्दकुन्दस्वामी की बात सुनो और जो पण्डित टोडरमल जी ने ' मोक्षमार्ग प्रकाशक' ग्रंथ में लिखा हुआ है वह उनकी निजी बात नहीं है। कुन्दकुन्दस्वामी ने 'दंसणपाहुड' में लिखा है -

णाणं णरस्स सारो, सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।
सम्मताओ चरणं, चरणाओ होइ णिव्वाणं॥31॥

मनुष्यजीवन का जो सार है उसका नाम ज्ञान है और ज्ञान का जो सार है उसका नाम सम्यक्त्व है और सम्यक्त्व का जो सार है उसका नाम चारित्र है और चारित्र का जो सार है उसका नाम निर्वाण है। तत्त्वज्ञान, तत्त्वनिर्णय, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान। पहले सामान्य से वस्तु को जाना जाता है, सामान्यज्ञान। मिथ्यादृष्टिजीव तीर्थंकर के समवशरण में गया। वह सम्यक्त्व के साथ गया कि मिथ्याज्ञान के साथ

गया ? मिथ्याज्ञान के साथ। मिथ्यात्व का जो अज्ञान है वह ज्ञान सामान्य है। उसने देखा वेद-वेदान्त का ज्ञाता गौतम, जैसे ही गौतम ने महावीर स्वामी को देखा और देखते ही जाना-पहचाना और स्वीकारा वैसे ही गौतम, गौतम स्वामी हो गये।

'ऋते ज्ञानं न मुक्ति' बिना ज्ञान से मुक्ति नहीं होती है। परन्तु जब 'ऋते ज्ञानं न मुक्ति' की बात करोगे तब ज्ञान सामान्य मत लेना तब वहाँ भीतर का भेद-विज्ञान लेना, नहीं तो ये हमारे पण्डित, मुनियों को जीने नहीं देंगे। मेरे से इतना बनता है, तुमसे बनता क्या है ? चारित्रशून्यज्ञान से मुक्ति नहीं है। यह सूत्र कहाँ लगाना? अभेदज्ञान, वीतराग चारित्र के अविनाभावीभूत वीतराग सम्यग्ज्ञान, भेद पर अभेददृष्टि - ये 'अष्टसहस्री' से बोल रहा हूँ मैं। (जैन संस्कृत पूजा में तीनों का वर्णन अलग से कर दिया है) इसलिये कभी ज्ञान से उदास मत हो जाना। कितने ही तुम भ्रमित हो जाओ, विपरीत ज्ञान भी आगे चलकर सम्यक् हो जायेगा। मैं इतनी देर से बोल रहा हूँ, यथार्थ मानना आपको समझ में आ रहा है। भले ही आप न जानते हो पर विपरीत कथन करूँगा तो समझ में आ जाता है। बीना में प्रवचन चल रहे थे और सुकमाल की जगह सुकौशल महाराज का नाम मैंने कह दिया। एक माँ बैठी हुई थी, वह कहती है कि नहीं, महाराज! सुकौशल नहीं, सुकमाल महाराज। ये मत सोचो, ये कौन पढ़ते हैं ?

'अनाकारोपयोगमयी दृशिशक्तिः' अनाकार उपयोगमयी दृशि तीसरी शक्ति है। **'साकारोपयोगमयी ज्ञानशक्तिः'** निर्विकल्प चिद्प्रकाश जहाँ है चेतन से चेतन का। यहाँ दर्शन से तात्पर्य छद्मस्थों के ज्ञान के अनुरूप जैनदर्शन दर्शन को लेकर निर्विकल्प कहता है। बौद्धदर्शन ज्ञान को निर्विकल्प कहता है। यदि ज्ञान निर्विकल्प हो गया तो बोधि शब्द का उपदेश कौन देगा ? हे गौतम! तुम निर्विकल्प ज्ञान को खूब पढ़े। पर इस बात को कहाँ भूल गये कि जो बोल रहा है वह निर्विकल्प कैसा ? इसलिये ज्ञान निर्विकल्प नहीं है, ज्ञान साकार है और दर्शन निराकार है। जीवन में कभी कुण्डलपुर गये। जब तीर्थंकर आदिनाथस्वामी की प्रतिमा भोयरे के भीतर थी तब कभी दर्शन किये आपने ? तो उस दिन की याद करो जब पहली बार गये थे, पता नहीं उस प्रतिमा में क्या अनोखा आश्चर्य है।1990 में मैं क्षुल्लक था और प्रथमबार जब मैं उतरकर नीचे पहुँचा जब भोयरे में विराजे आदिश्वर को ऊपर मुँह कर के देखा तो एक क्षण को कुछ समझ नहीं आया। कुछ समझने से तात्पर्य **'विषय-विषयी सन्निपाते दर्शनम्'** जो विषय-विषयी का सन्निपात है, इन नयनों ने उन नयनों को देखा और देखने के बीच में विचारों का भी अन्तराय नहीं डाला। जब आप शादी के पूर्व, बननेवाली अपने बेटे की माँ को देखने गये थे तो इसके पहले देख चुके थे क्या ? आपके सामने वो कन्या थी।

बीच में विकल्प खड़े हो गये पर दर्शन में कोई विकल्प नहीं था। 'धवलाजी' ग्रंथ और 'बृहत् द्रव्यसंग्रह' टीका, इन दोनों ग्रंथों में दर्शन को आत्मग्राही निर्विकल्प कहा है। सदृश्यमान वह दर्शन है। दृशिशक्ति, ज्ञानी परम आनन्दभूत है। जब क्षुल्लक अवस्था में प्रथमबार आदिनाथस्वामी के दर्शन

किये । भैया! स्तब्ध अवस्था, पर ये समय दीर्घ नहीं है, ये ध्यान रखना। ये मत समझना कि एकाध घंटे चला होगा, नहीं निमिषमात्र में तो सब हो गया। पलक के ऊपर नीचे होने में तो ज्ञान प्रारम्भ हो चुका था। चक्षुज्ञान होने से पहले जो सामान्य सत्ता का अवलोकन है उसका नाम चक्षुदर्शन है। सामान्य महासत्ता का अवलोकन, अवान्तर सत्ता का नहीं, इसलिये जो साकारउपयोगमयी है उसका नाम ज्ञानशक्ति है।

'**अनाकुलत्वलक्षणा सुखशक्तिः**' जिसमें किंचित्मात्र भी आकुलता है वह सुखशक्ति नहीं है। इसलिये पंचेन्द्रिय के विषय जो-जो तुम्हें सुख दे रहे हैं वे एकभी सुखभूत नहीं हैं, क्योंकि सबमें आकुलता है, निराकुलता नहीं । कहीं भी चले जाओ। भैया ! अब तनिक साता ले लेने दो, आकुलता न करो। **आकुलता में तनकऊ सुख नहीं है। सुख तो निराकुलता में है।**

आतम को हित है सुख सो सुख आकुलता-बिन कहिए।
आकुलता शिवमाहि न तातें, शिवमग लागौ चहिए।।3/1, छ.ढा.।।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।
आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।
भगवान् महावीर स्वामी की जय।

6

वीर्यशक्तिः

‘स्वरूप निर्वर्तनसामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः’

स्वरूप की रचना की सामर्थ्यरूप वीर्यशक्ति है।

ज्ञानदर्शन आत्मा का लक्षण है और सुख प्राप्ति की आकांक्षा सभी को रहती है
और वीर्यशक्ति के बिना इसकी रचना कौन करेगा ?
प्रत्येक वस्तु के स्वरूप की रचना करनेवाली वीर्यशक्ति है।

समय देशना

भव्य बंधुओ! आचार्य प्रवर भगवत् श्री कुन्दकुन्दस्वामी समयसारजी ग्रंथ में ध्रुवज्ञायकस्वभावी भगवानात्मा के सहज स्वभाव का वर्णन कर रहे हैं। **अनन्तशक्ति सम्पन्न आत्मद्रव्य निज शक्तियों से परिपूर्ण है, परशक्तियों से शून्य है। प्रत्येक द्रव्य परशक्ति से शून्यस्वभावी है, निजगुण में अशून्यस्वभावी है।** ऐसा कोई भी द्रव्य नहीं है जो भिन्न द्रव्य के लक्षणों से युक्त हो। ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जो परचतुष्टय को परिणमन कराता हो। जिन द्रव्यों में स्वभाविकशक्ति है वे द्रव्य भी परद्रव्यभूत नहीं होते हैं। जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों में स्वभावशक्ति, विभावशक्ति; दोनों शक्तियाँ हैं। जब स्वभावशक्ति में होता है तब वह द्रव्य अपने शुद्ध स्वरूप में होता है और जब विभावशक्ति में होता है तब वह द्रव्य अशुद्ध अवस्था को प्राप्त होता है। कर्मसापेक्ष जीवद्रव्य अशुद्धदशा को प्राप्त है। स्कन्ध अवस्था में पुद्गल अशुद्ध अवस्था को प्राप्त है। परमाणु पुद्गलद्रव्य की शुद्धदशा है। सिद्धपर्याय जीवद्रव्य की शुद्धदशा है। जब अशुद्धदशा में जीवद्रव्य होता है वैभाविक अवस्था में जीवद्रव्य होता है, उस काल में भी जीवद्रव्य पुद्गलभूत नहीं होता।

अण्णोण्णं पविसंता देंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वि य णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति।।7/पं. का.।।

यह सूत्र कुन्दकुन्ददेव के 'पंचास्तिकाय' ग्रंथ का है। जिस श्रावक को, विद्वान् को कुन्दकुन्ददेव के रहस्य को समझना है उसे पंचास्तिकाय ग्रंथ का गहनतम अध्ययन करना पड़ेगा। 'अण्णोण्णं पविसंता' एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में अनन्यभूत प्रवेश करने पर भी 'मेलंता वि य णिच्चं' मिले होने पर भी अपने परिणामों को नहीं छोड़ते। **'अनादि सम्बन्धे च'** जीव संसार में कब से है ? अनादि से। जब अनादि से है तो कर्म का बंध भी अनादि से है। आज तक संतानदृष्टि से कर्म का विछोह तो हुआ, संतान बदली है पर कर्म के संतान का अभाव नहीं हुआ, सन्तति का अभाव नहीं हुआ। जैसे आयुकर्म की स्थिति तैंतीससागर प्रमाण है। किसी जीव ने नरक गति की तैंतीससागर की आयु को प्राप्त किया, ऐसे जीव ने तैंतीससागर, तैंतीससागर कितने बार प्राप्त किये और तैंतीससागर की आयु का भोग करने के उपरांत वह कर्म तो निर्जरित हो गया। उस कर्म की अपेक्षा से तो सान्तर अवस्था है। लेकिन मरण से पूर्व उस जीव ने पुनः आयु का बंध किया। इस दृष्टि से संसार में निरन्तर अवस्था है।

एक प्रतिनियत कर्म की दृष्टि से सान्तरधारा है, पर संतति की दृष्टि से निरन्तरधारा है। कब से है? कर्म का बंध आत्मा में अनादि से है। हे कर्म! इस भगवती आत्मा को तू अपने घेरे में अवश्य रख लेगा। आत्मा के प्रदेश, कर्म के प्रदेश, एक-मेकरूप में मिले रहे लेकिन मिले होने पर भी तद्भूत नहीं हुये अतद् ही रहे। 'सूक्ष्म क्षेत्रावगाह' एक क्षेत्रावगाह होने पर भी आत्मा में आत्मप्रदेश और कर्मप्रदेश - इन दोनों

का एकमेक संश्लेषभाव रहा। दूध-पानी की तरह मिले रहे। खीर-नीर की तरह मिले रहे। प्राकृत भाषा में क्षीर को खीर कहा जाता है। जैसे दुग्ध पानीभूत नहीं हुआ, पानी दुग्धभूत नहीं हुआ ऐसे ही अनादि से आत्मा बंधनयुक्त होने पर भी, कर्म के साथ होने पर भी संसार के दुःख-सुख का अनुभव करते हुये भी चैतन्य, चैतन्य ही रहा है और कर्म, कर्म ही रहा है। कर्म चैतन्य के गुणधर्म को छीन नहीं सका, चैतन्य कर्म के गुण को ग्रहण कर नहीं सका।

मुमुक्षुओ! अनादि से मिले होने पर भी हम कर्मरूप एक नहीं हो पाये। ये अजड़त्वशक्ति क्या कह रही है ? मैं अजड़त्व हूँ, मैं जड़त्व नहीं हूँ, मैं चिद्भूत हूँ, चैतन्यभूत हूँ। समुद्र का पानी ग्रीष्मकाल में सूखकर नमक की डली बन सकता है। वही नमक की डली बारिश के मौसम में पुनः पानी बन सकती है। लेकिन ऐसा कोई मौसम नहीं आयेगा जब भगवानात्मा जड़ हो जाये और जड़ आत्मा हो जाये, ऐसा कभी नहीं होगा। योगी क्या निहारता है ? जड़ के मध्य होने पर भी अजड़त्व शक्ति को निहारता है। उसे भूलता नहीं है। पूर्णरूप से पहचानकर बैठा हुआ है वही पूर्ण ज्ञानघन कैवल्य अवस्था को प्राप्त करता है। मित्र ! आपके, जितने संबंध हैं वे सब जड़ के साथ हैं। चेतन का संबंध चेतन में होता नहीं है वो तो स्वभाव है। बहिर्संबन्ध स्वभावभूत नहीं है, बहिर्संबंध विभावभूत है। इस सत्त्वयुगल में भिन्नत्व-भिन्नत्व तो दिखाई देता है, लेकिन ध्रुवसत्य ये है कि ज्ञान की शक्ति में सभी शक्तियाँ समाविष्ठ हैं।

आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतं।
न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः ॥ 48/इष्टो॥

ये निर्णय हो जाना चाहिये है। शब्दब्रह्म की व्याख्या सिर्फ शब्दों से कानों तक जा रही है। ये शब्दश्रुत को जानकर, जाग्रति भावश्रुत की चाहिये और भावश्रुत नहीं बन रहा है तो द्रव्यआगम जो है वह आपको मोक्ष नहीं भेज पायेगा। द्रव्य-आगम जो है वह साधनमात्र है, वह साध्य नहीं है। बिना अक्षरज्ञान के भी अक्ष का ज्ञान हो सकता है और अक्ष का ज्ञान ही अक्षयज्ञान हो जायेगा, जिसका क्षय नहीं होगा, कैवल्यरूपी। इसलिये जितने ज्ञाता यहाँ विराजते हैं वे सभी शास्त्रों की गणना के लिये उन्हें मत पढ़ना। शास्ता का रास्ता समझने के लिये पढ़ना। शास्त्रों की गणना तो अनन्तबार कर चुके।

ण मुयदि पयडिमभव्वो सुट्ठु वि अज्झाइदूण सत्थाणि।
गुडदुद्धं पि पिबंता ण पण्णया णिव्विसा होंति ॥317/स.सा. ॥

ज्ञानी! अभव्य जीव अपनी प्रकृति को नहीं छोड़ता, सम्पूर्ण शास्त्रों को अच्छी तरह से कण्ठस्थ करले, जीव पढ़ले फिर भी अपनी प्रकृति नहीं छोड़ता। कैसे? गुड़ से मिश्रित दूध पीनेवाला कालिया नाग विष से कभी निर्विष नहीं होता। इसलिये जो कथन यहाँ चल रहा है ये भव्यों के लिये है। जिनेन्द्र का उपदेश, अर्हंत का उपदेश, निर्ग्रन्थ का उपदेश, कल्याणभूत यदि किसी को है तो मात्र भव्यों को है।

अभव्यों को कोई उपदेश नहीं है। **'ताहि सुनौ भविथिरमन आन'**। हे भव्य! स्थिर होकर सुनो यदि अपना कल्याण चाहते हो तो। भैया! गेहूँ के भीतर से कंकड़ों को निकालकर अलग कर लेती हैं माताएँ। आटा पीसने के बाद भी चलनी से छान लेती हैं।

ज्ञानी! जड़द्रव्य के भीतर की शक्तियाँ सब तुमको मालूम हैं। क्या आपको सरसों में तेल दिखाई दे रहा है, आँख से देखने पर? लेकिन ध्रुवत्वशक्ति पर कितनी तुम्हारी दृष्टि निर्गूढ़ है ? सरसों दबाकर, निचोड़कर, सूखे सरसों से तुम तेल टपकाना चाहते हो। तुम सरसों से तेल निकाल सकते हो, जो आँखों से दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। जो यूँ कह रहा है कहाँ है मेरा भगवान् मुझे आँखों से नहीं दिखता है, तो तिल में तेल कहाँ दिखता है। तुमने प्रक्रिया कर तिल से तेल निकाल लिया तो मेरे मित्र ! ऐसे ही योगी निज के ध्यान से निज के भगवान् को निकाल लेता है। **जड़ द्रव्यों की शक्ति का संग्रह करना तुम सीख गये हो। तब फिर चेतन की शक्ति का मनन क्यों नहीं कर रहे हो?**

श्रमणो ! पूरा श्रम तुम्हारा तिल के तेल निकालने में नहीं जाना चाहिये। आपका श्रम चिद्पिण्ड चैतन्य अखण्ड ज्ञानघन आनन्दकन्द टंकोत्कीर्ण परम पारणामिकभाव से युक्त इस देह के अन्दर विराजी भगवानात्मा को देखने में लगना चाहिये, तभी श्रमणपने का श्रम श्रेष्ठ है। अन्यथा पिच्छी-कमण्डलु के ढेर लगे रहते हैं। पर के आराध्य-आराधनाभाव को मैंने अनेकबार जान लिया और पहचान लिया है पर निज के आराध्य और आराधकभाव को नहीं जान सका इसलिये पंचमकाल में आ चुका हूँ। मैं ही साध्य हूँ, मैं ही साधन हूँ, मैं ही आराध्य हूँ, मैं ही आराधक हूँ, मैं ही भाव हूँ, मैं ही भावक हूँ, यह दशा जब तक नहीं झलकेगी, तब-तक चैतन्य से चैतन्य भगवानात्मा को नहीं निकाल पाएगी। पाषाण से प्रतिमाओं को हमने अनन्तबार निकाला है, चैतन्य से चैतन्य भगवानात्मा को निकाल ले एक बार।

प्रभु! आपको तो मैं पाँच दिन में सूरिमंत्र देकर परमात्मा बना देता हूँ। अपने भगवानात्मा को मैं सूरिमंत्र कब दूँ? उसके संस्कार के लिये भगवान् की प्रतिमा को सूरिमंत्र देता हूँ । लेकिन लक्ष्य वहाँ मैं ही मूर्ति हूँ, मैं ही मूर्तिमान हूँ, मैं ही प्रतिष्ठत्व हूँ, मैं ही प्रतिष्ठापक हूँ और मेरा ही भगवान् मेरे में प्रतिष्ठित हो रहा है। इसलिये इतने गहरे में उतरता है जीव, वह परम योगीश्वर निर्ग्रन्थ तपोधन तब लगता है कि चाहे निशा हो, चाहे दिन हो दिगम्बर देवता मुझे दिखाई दे जाये। नहीं देखना चाहता हूँ भवनवासियों को, नहीं देखना चाहता व्यंतरवासियों को, नहीं देखना चाहता ज्योतिषियों को, नहीं देखना चाहता हूँ वैमानिकों को, मैं तो देखना चाहता हूँ दिगम्बर देवताओं को। ये चारों निकाय के देव मेरे मोक्षमार्ग के कारण-कार्यभाव नहीं हैं। मेरे मोक्षमार्ग का कारणकार्यभाव, मुक्ति का प्रदाता यदि कोई है तो ये दिगम्बरदेव हैं।

भैया! जहाँ दिख जाये ये दिगम्बर देवता वहीं मस्तिष्क टेक लेना और भावना भाना कि हे प्रभु! वो दशा मेरी कब हो कि मैं दिगम्बरदेव बनकर अर्हंत बनूँ, सिद्ध बनूँ। बस, मुझे तो दिगम्बरदेव ही देखना है ।

इन सैंतालीस शक्तियों का चिन्तवन अर्हंतदेव नहीं करते, सिद्धदेव नहीं करते। इनका चिन्तन तो दिगम्बरदेव करते हैं। नमोऽस्तु हो उन दिगम्बर देवताओं को जो द्रव्यलिंग को शुद्ध पालते हुये भावलिंग में विराजते हैं। भैया! विश्वास रखना, एक मुनि दिख जाते थे तो गद्गद् भाव होते थे। मैं आपको भूत के मुनि के रूप में देखना चाहता हूँ। अभूतपूर्व मुनि जो बैठे हैं जंगलों में, झाड़ियों में बैठे हैं, सरिता के तट पर बैठे हैं, शिखर के ऊपर बैठे हैं, वृक्ष के नीचे बैठे हैं, उन वीतरागी तपोधनों को नमोऽस्तु। नहीं बैठे हैं पंखों के नीचे। मैं कूलर, ए.सी. के आगे बैठनेवालों को नमोऽस्तु नहीं कर रहा हूँ। जो लगे हैं किसी के खण्डन में, किसीके मण्डन में उनको मेरी किंचित्मात्र भी वन्दना नहीं है। मेरी वन्दना मात्र उनके लिये है जो लगे हैं कर्म के खण्डन में और मोक्षमहल के मण्डन में।

लोकाचार, लोकव्यवहार सबका निर्वाह करते हुये भी मेरी दृष्टि तो मात्र वहाँ है जो मोक्षमहल को निर्मित कर रहे हैं और पापकर्म के पर्वत का खण्डन कर रहे हैं। उन योगियों को त्रिकाल नमोऽस्तु। यह वन्दना इतनी सस्ती नहीं है। समन्तभद्र स्वामी से मिलो जिन्होंने वन्दना की तो भगवान् प्रकटा लिये। किसी पत्थर के पिण्ड की वन्दना नहीं की, चन्दप्रभु स्वामी प्रकट कर लिये। करो ऐसी वन्दना। भाई! आप लोगों को भी प्रतिनमोऽस्तु करता हूँ। मेरी प्रतिनमोऽस्तु को आप ढील मत समझ लेना। इसलिये निर्दोष ईमानदारी की साधना करना।

जिसको निजकार्य पर लक्ष्य है वह कभी प्रमाद नहीं कर सकता। उसके कोश में प्रमाद नाम की वस्तु नहीं आयेगी। जिसके कोश में निजकार्य की सिद्धि का लक्ष्य ही नहीं है उसके घर में चौबीस घण्टे प्रमाद-देवता खड़ा रहेगा। प्रमदाओं के साथ वे ही रहते हैं जो प्रमादी होते हैं। जो प्रमादी नहीं होते हैं वे प्रमदा से शून्य निजस्वरूप में लीन रहते हैं। प्रमदा यानी नारी। अरे भैया! स्वाध्याय से बड़ा तो जगत् में कोई आनन्द नहीं है। ग्रंथों का स्वाध्याय करते-करते स्व के स्वाध्याय में उतर जाओ, न प्रमदा दिखेगी न प्रमाद दिखेगा। तू अप्रमत्त दशा को प्राप्त हो जायेगा। कल जीवत्वशक्ति को जाना, अजड़त्वशक्ति को जाना। चितिशक्ति, दृशिशक्ति, ज्ञानशक्ति, सुखशक्ति। सर्वज्ञदेव के ज्ञान में सम्पूर्ण चराचर द्रव्य झलक रहे हैं।

नमः श्री वर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते।। र.क.श्रा. ।।

उन वर्धमान स्वामी के लिये मेरा नमस्कार हो, वन्दना हो जिन्होंने 'निर्धूत कलिलात्मने' अपनी आत्मा से सम्पूर्ण कलिल पापसमूह का नाशकर दिया है। जिनकी 'यद्विद्या' विद्या में जिनके कैवल्य में, 'सालोकानां त्रिलोकानां' लोकाकाश सहित तीनों लोक झलक रहे हैं, 'दर्पणायते' दर्पण के समान।

आगे सर्वदर्शित्व सर्वज्ञत्व और स्वच्छत्व शक्ति का वर्णन आ रहा है। ये तीनों शक्तियाँ सर्वज्ञ के ऊपर जा रही हैं। दर्पण की स्वच्छता से दर्पण में झलकता ही है, पर दर्पण कभी अपने चतुष्टय का विनाश

नहीं करता। ऐसे ही ज्ञान अपने ज्ञान में जगत् के ज्ञेयों को जानता ही है, छद्मस्थ बुद्धिपूर्वक, पर किसी ज्ञेयरूप परिणत नहीं होता है और किसी ज्ञेय को निजभूत परिणत नहीं कराता। ऐसे ही सर्वज्ञ के ज्ञान में वे जानते भी नहीं बुद्धिपूर्वक, वे देखते नहीं बुद्धिपूर्वक, उनके तो ज्ञान में झलकता है, जनता है, दिखता है अबुद्धिपूर्वक।

ज्ञानी ! पन्द्रहवीं- सोलहवीं कारिका समयसार की समझ लो। मुमुक्षुओ ! कमलपत्र के ऊपर पानी की बूँद है। एक जीव कह रहा है कि पत्र पर बूँद है पर बूँद ने पत्र में प्रवेश किया नहीं और पत्र ने बूँद में प्रवेश किया नहीं, व्यवहार से देख रहा है। पर पत्र तो पत्र है और बूँद बूँद है जो मोती-सी चमक रही है। ज्ञेय ज्ञेय है, ज्ञान ज्ञान है, ज्ञेय ज्ञेयभूत ही है, ज्ञान ज्ञानभूत ही है। यहाँ व्यावहारिक कोई भी प्रश्न, चाहे गृहस्थी का या राजनैतिक, सामाजिक खड़ा करते हो इस परम विद्या से तुम दूर हो जाओगे। मित्र! इतने घने जंगल में बुद्धिपूर्वक प्रवेश किये हो, उलझे हुये हो इसलिए आपको पता नहीं चल पा रहा है कि मेरा स्वच्छ स्थान कहाँ है? और इसी में तू आनन्द लूट रहा है। इसी में तू अपनी बढ़ाई मानता है। पचास रुपये का नोट भी कमाकर लायेगा तो आज महसूस करेगा कि हाँ, आज कुछ अच्छा किया। फिर पचास के कहीं पचास लाख कर लिये तो फिर तो पता नहीं तू जमीन पर पैर रखेगा भी कि नहीं? गहरी बात बताऊँ, जैसे मैं मुनि हूँ, आपने पचास लाख रुपये कर लिये और मैंने पचास दीक्षायें दी हैं। यदि मैं आपको स्पष्ट नहीं करूँगा तो आपके साथ छल हो जायेगा। आप भी खुश, मैं भी खुश।

एयं तु असंभूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो ॥22/स.सा.॥

आप कहते हैं कि मेरे पास पचास लाख रुपये हैं और मैं कहता हूँ कि मेरे पचास शिष्य। जीव इनका विकल्प कर रहा है। हे मूढ़ सम्मोही! तू कर क्या रहा है? पचास लाख में और तेरे में अत्यन्ताभाव है या नहीं? पचास लाख में तेरा स्वद्रव्य है क्या ? स्वक्षेत्र है क्या ? स्वकाल है क्या ? स्वभाव है क्या? मित्र ! ये पचास लाख तेरे से अत्यन्त भिन्न हैं कि नहीं ? भिन्न हैं। शब्द से कह पाना बहुत सरल है पर बुद्धि में कैसे बैठे हैं। भैया! ये उस जमाने का डाक्टर है जब इसको फीस में दो रुपये मिलते होंगे। दो रुपये छोड़ने में इसको कैसा लगता था ? जब कोई मन्दिर का अध्यक्ष इसके द्वारे पर रसीद कट्टा लेकर पहुँचा और कहता है कि भाई ! दान लिखवा दो तो यह कहता है कि भाई! आपको पता है मैं कैसे दो रुपये कमाकर लाता हूँ। सुनो मित्र ! राग बुद्धि में आत्मबुद्धि कितनी गहरी बैठी थी जीव के भीतर। अत्यन्त भिन्न द्रव्य में, अनात्मभूत द्रव्य में जीव के सर्वाधिक आयुकर्म के निषेक व्यय हुए हैं । संसार में भी, किसमें भैया? जड़ द्रव्यों के लिये। प्रातः से लेकर शाम तक जिनालय में समय कितना देते हो और वस्त्रालय, भोजनालय आदि में कितना समय देते हो। देखो, ये मैं नहीं कह रहा हूँ कि तुम छोड़ दो। मैं तो कह रहा हूँ कि तुम सोचो। यहाँ तो यह कह रहे हो कि जिनालय में भी निकाले हैं तब भी आयुकर्म के निषेक निजालय में नहीं

निकाले। अन्तर क्या हुआ, वहाँ तू घर बनाता था, यहाँ मंदिर बना रहा है। राग बदला है, राग मिटा नहीं है।

अहमेदं एदमहं अहमेदस्सेव होमि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्त मिस्सं वा।।20/स.सा.।।

जितने सचित्त अचित्त मिश्र, आपके पचास लाख और मेरे पचास शिष्य। ये कहता है कि मेरे बेटे की माँ सचित्त, मेरे भवन अचित्त, मेरा बेटा और उसके सुन्दर वस्त्र मिश्र और मैं क्या कहता हूँ कि ये मेरे शिष्य सचित्त। ये पिच्छी-कमण्डलु अचित्त, ये मेरे कितने सुन्दर चेले दिख रहे हैं। आपको इनके हाथ में पिच्छी-कमण्डलु कितने अच्छे लगते हैं। अहो महाराज! **समझो, सँभलो, सुलझो।** उस रागी गृहस्थ का राग पचास लाख में गया, अपने कुटुम्ब परिवार में गया पर तुम्हारा राग चेला-चेलियों में गया। दोनों बंधस्थान को प्राप्त हुए। ये मैं नहीं बोल रहा हूँ, आपको बुरा लगे तो आचार्य कुन्दकुन्द से मिलना और आचार्य कुन्दकुन्द बड़े ज्ञानी जीव थे। वे कहेंगे कि तुम परेशान मत करो, तुम्हें ज्यादा तनाव है तो जिनेन्द्र देव से मिलो।

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणावदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज।। 150/स.सा.।।

वे कहते हैं कि बंध का कारण राग है और छूटने का मार्ग विराग है, इसलिये राग को छोड़ दो। ऐसा जिनेन्द्र देव का उपदेश है। भो ज्ञानी! बंधदृष्टि से देखेगा तो चाहे सोना हो, लोहा हो, बेड़ियाँ तो बेड़ियाँ हैं।

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं।
कह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि।।145/स.सा.।।

अशुभ कर्म को कुशील और शुभ कर्म को सुशील ऐसे कहनेवाले लोग जगत् में बहुत हैं। अरे मित्र! ये सुशील कैसे जो संसार में भ्रमण कराये। अन्तर इतना है कि एक स्वर्ग भेजेगा, एक नरक भेजेगा लेकिन मुक्त दोनों नहीं करेंगे। ये परमार्थ दृष्टि है, निश्चय दृष्टि है इसलिये मुक्त होना है तो न शुभकर्म, न अशुभकर्म। **शुद्धोपयोग की दशा ही मोक्षमार्ग है।** पर भाई! इस अवस्था तक पहुँचने के लिये बुद्धिपूर्वक शुभकर्म पहले करना। बुद्धिपूर्वक अशुभकर्म छोड़ना और बुद्धिपूर्वक जिनदीक्षा को स्वीकार करना। बुद्धिपूर्वक परिग्रह का विसर्जन करना और फिर शुद्धोपयोग में लीन हो जाना तो तेरे शुभ-अशुभ कर्म समाप्त हो जायेंगे। अरे! पंचमकाल के लोग हैं, शुभ करेंगे नहीं, अशुभ छोड़ेंगे नहीं और शुद्ध होने का प्रचार करेंगे।

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्ख मग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे।।23/सु. पा.।।

जिनशासन में वस्त्रधारी की सिद्धि नहीं होती है। भगवान् जिनेन्द्र देव के शासन में तीर्थंकर भी क्यों न हों, नग्नता ही मोक्षमार्ग है, नंगापन नहीं। शेष सभी उन्मार्ग हैं। **ये उन्मार्गियों का मार्ग नहीं है ये जिनमार्गियों का मार्ग है, इसलिये जो निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग है वही साक्षात् मोक्षमार्ग है, शेष कोई मोक्षमार्ग नहीं है।** ऐलक, क्षुल्लक, आर्यिका, ब्रह्मचारी - ये परम्परा के मोक्षमार्गी हैं, साक्षात् मोक्षमार्गी तो जिनमार्गी हैं। प्राचीन कवियों ने प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश में पूजायें लिखी हैं जिनमें रहस्य भरे हैं, परन्तु अब तो आप लोगों को तो भूत चढ़ गये। **'तेरी कृपा से सब काम हो रहे हैं'** ऐसे भजन गा रहे हो। फिल्म की धुनें शुरू हो गई हैं। अरे भाई! ऐसे भजन गाओ, ऐसी भक्ति करो जिसमें तनिक भीतर का भगवान् जगे। छोड़ो कर्त्ताबुद्धि।

ज्ञानी! सर्वज्ञदेव के ज्ञान में स्वच्छत्वशक्ति के प्रभाव से सारा विश्व झलकता है। वे रागियों जैसा किसी को देखते-जानते नहीं हैं और उनके ज्ञान में, दर्शन में कोई भी द्रव्य बिना जाने, बिना देखे नहीं है। कोई विषय बिन देखा नहीं है। कोई विषय बिन जाना नहीं है। जो वर्तमान में यहाँ विषय चल रहा है वो आत्मस्थधारा के नियम यही कहेंगे कि सर्वज्ञ न किसी को जानते हैं, न किसी को देखते हैं। ध्यान रखना दार्शनिकदृष्टि का भी ज्ञान होना अनिवार्य है।

भैया! सामने भिन्न दर्शन का कोई आकर खड़ा हो गया। ये तो मैं कब से कह रहा हूँ सर्वज्ञता सर्वदर्शिता होती ही नहीं है। बोले - मेरे पीठ के पीछे क्या हो रहा है मालूम है क्या ? तो ऐसा कौनसा पुरुष है जो सारे विश्व को जान ले, देख ले। वहाँ आप ये नहीं कहोगे कि आत्मा को देख रहे, आत्मा को जान रहे, वहाँ डंके की चोट पर कहोगे कि सर्वज्ञ जो है वर्तमान में नहीं है। इस बात को कह रहे हो कि भूत में नहीं था या फिर भविष्य में नहीं होगा इस बात को कह रहे हो आप। मान लो भैया! आप सर्वज्ञशून्यवादी हो और आप मेरे से प्रश्न कर रहे हो कि मैं आपके सर्वज्ञ को नहीं मानता हूँ। मित्र! मेरा आपसे राग नहीं है और मेरा आपसे द्वेष भी नहीं है तो मेरा सर्वज्ञ से राग नहीं है और असर्वज्ञ से द्वेष भी नहीं है, परन्तु वस्तुस्वभाव को कहने के लिये वात्सल्य अवश्य है। भैया! मेरा प्रश्न है कि मेरे सर्वज्ञ को आप वर्तमानकाल में भरत क्षेत्र में नहीं मानते हो कि विदेह क्षेत्र में भी नहीं मानते हो कि आप सर्वकालिक सर्वक्षेत्रिक भी नहीं मानते हो। भैया! ये बताओ, सर्वज्ञ वर्तमान में नहीं हैं कि भूत में भी नहीं थे। आप तो ऐसा बोलो कि वर्तमान में दिखते नहीं इसलिये भूत में कैसे मानूँगा ? ये कह रहा है कि भूत में भी सर्वज्ञ नहीं थे तो क्या भविष्य में होंगे क्या ? भैया! देख ये क्या बोल रहा है भूत में नहीं थे, भविष्य में होंगे भी नहीं और वर्तमान में भी नहीं हैं। मेरे मित्र! मैं सर्वज्ञ उसे कहता हूँ जो भूत को भी जान जाये, भविष्य को भी जाने और वर्तमान को भी जाने। तेरी आँखों के सामने वर्तमान में नहीं है पर तूने भूत में नहीं थे, ये कैसे जान लिया, भविष्य में नहीं होंगे, ये कैसे जान लिया ? इसका मतलब तू ही सर्वज्ञ है। अब मैं ये कहूँगा -

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद् द्रव्याणि तेषां गुणान्,
पर्यायानपि भूत-भावि-भवितः सर्वान् सदा सर्वदा।
जानीते युगपत्-प्रतिक्षण-मतः सर्वज्ञ इत्युच्यते,
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ॥1/वी.भ.॥

ज्ञानियो! जो भूत-भविष्य को जानते हैं उसको हम सर्वज्ञ कहते हैं। वो कैसे हैं ? जो सम्पूर्ण द्रव्यों के सम्पूर्ण पर्यायों को सम्पूर्ण गुणों को युगपत् से जान रहे हैं उसका नाम सर्वज्ञ है। फिर तुम कैसे कह सकते हो कि सर्वज्ञ नहीं है ? आपने नहीं देखा इसलिये ? तो क्या आपने अपने दादा के दादा को देखा ? वह थे क्या ? बोलो। वह कह रहा है कि मैं तो दिख रहा हूँ। जब तेरे दिखने से तेरे दादा के दादा दिख सकते हैं तब मैं भी तो दिख रहा हूँ। मेरे दिखने से भगवान् महावीर भी हो सकते हैं। अपनी सन्तति को अपने से लगा रहा है। ज्ञानी! जब तूने अनुमान लगाया कि मैं हूँ तो मेरे दादा के दादा भी होंगे तो मैं भी अनुमान से सिद्ध करता हूँ कि मैं निर्ग्रन्थ मुद्रा में हूँ तो कोई निर्ग्रन्थ अर्हंत सर्वज्ञ भी था।

सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्नया दिरिति सर्वज्ञ संस्थितिः ॥5/आ. मी.॥

ये सर्वज्ञ संस्कृति है। भैया! इसे आगम भक्त ही मानता है अभक्त नहीं मानता और अभक्त को आगम से सिद्ध नहीं किया जा सकता। **'तर्कात्तन्निर्णयः'** इसको तर्क से निर्णय कराना पड़ेगा। आपने कब मना किया कि मैं सर्वज्ञ को नहीं मानता हूँ, मना तो नामधारी ने किया है। नाम है सुगत, जाति है इनकी कुगत। भैया ! ऐसे नामधारी लोग विश्व में हुये हैं जिन्होंने जैन-स्याद्वाद को संशयवाद कह दिया। पर क्या करूँ स्याद्वाद को संशयवाद कहनेवाला बुद्धिविहीनजीव, जिसकी दृष्टि विपरीत चल रही है, वह रथ्या पुरुष ही हो सकता है।

जो सत् है, चिद् है, आनन्दभूत है, त्रैकालिक है, परिणमन हुआ है, नाश थोड़े ही हुआ है। जो यहाँ था वह दूसरे नगर में रह रहा है, उसका नाश कहाँ हुआ है। इसलिये क्यों रोने का। हम लोगों के साथ हमेशा घटित होता है, कभी किसी पुर में थे आज यहाँ हैं। कल किसी दूसरे पुर में होंगे। जब इसी पर्याय में एक पुर का नहीं हूँ तो नाना पर्यायों में एक पुर का कब से हो गया हूँ। जब जेल में प्रवचन करने जा सकता हूँ, स्कूलों में प्रवचन करने जा सकता हूँ, तो टोडरमल स्मारक में क्यों नहीं ? भवन किसी का हो पर आत्मभवन और जिनभवन से बाहर नहीं जाना। जब-तक तुम दूरियाँ बनाकर रहोगे तब-तक एक दूसरे को समझोगे कैसे? कभी-कभी बात होती नहीं है और बातें हो जाती हैं।

आत्मस्वभावं परभावभिन्नं।
आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।
भगवान् महावीर स्वामी की जय।

7

प्रभुत्वशक्ति

''अखण्डित प्रतापस्वातंत्र्यशालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्तिः ।''

अखण्डित प्रताप और स्वतंत्रता से सम्पन्न होना है लक्षण जिसका, वह प्रभुत्वशक्ति है।

प्रभु यानी पूर्णतः समर्थ, प्रभावशाली, अनंत महिमावंत,
अखण्डित प्रताप से सम्पन्न पूर्णतः स्वतंत्र द्रव्य।

आत्मा भी एक ऐसा ही अलौकिक प्रताप से सम्पन्न, प्रभुत्वशक्ति युक्त पदार्थ है,
जिसमें किंचित् भी दीनता नहीं है, इसलिये हे भव्य! अपनी प्रभुता की पहचान कर।

समय देशना

बन्धुओ! आचार्य भगवन् कुन्दकुन्ददेव ग्रंथराज समयसारजी में ध्रुवधाम भगवानात्मा के सहज स्वरूप की व्याख्या कर रहे हैं। आचार्य भगवन् ने जिस तत्त्व की गवेषणात्मक प्ररूपणा की है, उसी तत्त्व को अत्यंत प्रसन्नता (विशदता) प्रदान करते हुये स्याद्वाद अधिकार में सैतालिस शक्तियों के माध्यम से समझा रहे हैं। **'अखण्डितप्रताप स्वातन्त्र्यशालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्तिः'**। जीवत्वशक्ति से लेकर आत्मा के त्रैकालिक सत्ता का बोध कराया। विश्व में धर्म की सिद्धि की आकांक्षा है तो सबसे पहले आत्मा की सिद्धि की आवश्यकता है। यदि आत्मा की ही सिद्धि नहीं कर सका तो धर्म की सिद्धि किसके लिये ? भारतीय दर्शनों में एकमात्र स्याद्वाददर्शन ऐसा है जो आत्मा को अनादि-अनन्त मानता है, जीवत्वशक्ति से युक्त मानता है। शेष दर्शन पंच अथवा चतुर्थ भूचतुष्टय से आत्मा की उत्पत्ति मानते हैं और वे भूचतुष्टय स्वयं में ही विलीन हो गये वहाँ जीव का नाश मानता है। शून्यवादी बौद्धदर्शन आत्मा को शून्यस्वभावी मानता है, जड़स्वभावी मानता है लेकिन स्याद्वाददर्शन आत्मा को जगत् के परज्ञेयों से शून्य तो स्वीकारता है लेकिन निजचैतन्य स्वभाव में शून्य नहीं है, 'शून्यस्वरूपोऽहम्' मैं शून्य-स्वभावी हूँ और जब मांगलिक द्रव्यों की व्याख्या करते हैं जयसेन स्वामी 'पंचास्तिकाय' ग्रंथ में, तो सिद्धार्थ का वर्णन करते हैं, सिद्धार्थ यानी पीला सरसों। जैसा सिद्धार्थ है, वह गोल है; आदि, मध्य, अन्त से शून्य है ऐसे ही जो सिद्धों का स्वरूप है आदि, मध्य, अन्त से शून्य है। ऐसा ही मैं आदि मध्य अंत से शून्यभगवान् आत्मा हूँ। ऐसा शून्यस्वरूप तो हूँ पर सुगत जैसा जड़भूतशून्य नहीं हूँ। 'परमात्मप्रकाश' ग्रंथ में आचार्य ब्रह्मदेव सूरि ने आत्मा के शून्य-स्वभाव की व्याख्या की है। जब भी ग्रंथ का आप वाचन करते हो तो सबसे पहले शून्य की बात करते हो और विश्व के गणितज्ञों को शून्य किसी ने दिया है तो उसका नाम जैनदर्शन है।

ओंकारं बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः॥

जो बिन्दु है वह सिद्ध का स्वरूप है, कर्मों से शून्य है। यहाँ शून्य से तात्पर्य परभावों का निजभावों में अभाव है, न कि आत्मा बिन्दु हो गई। ऐसी जीवत्वशक्ति की सिद्धि। आत्मा त्रैकालिक है, परिणमनशील है, द्रव्य द्रवणशील है। भव्यत्वभाव द्रव्य का स्वभाव है, अभव्यत्वभाव द्रव्य का स्वभाव है, भव्यत्व-अभव्यत्वभाव – ये छहों द्रव्यों का स्वभाव है। आप अपना चिन्तन तत्त्वार्थसूत्र में ले गये और आपको दिख रहा है **'जीव भव्याऽभव्यत्वानि च'** लेकिन जो यह सूत्र है, यह पारिणामिकभाव की व्याख्या कर रहा है, वह जीव की प्रधानता से कथन कर रहा है पर जिस भव्यत्व-अभव्यत्व की व्याख्या यहाँ मैं कर रहा हूँ वह **'आलाप पद्धति'** से कर रहा हूँ। **भव्यत्वभाव से तात्पर्य यहाँ परिणमनशीलता,**

अभव्यत्वभाव से तात्पर्य यहाँ अपरिणमनशीलता। भैया! ये भव्यत्व अभव्यत्व कौन से गुणों में है ? अस्तिस्वभाव, नास्तिस्वभाव, नित्यस्वभाव, अनित्यस्वभाव, एकस्वभाव, अनेकस्वभाव, भेदस्वभाव, अभेदस्वभाव, भव्यस्वभाव, अभव्यस्वभाव, परमस्वभाव।

ये द्रव्यों के सामान्य स्वभाव हैं और जो सामान्य स्वभाव हैं वे शाश्वत हैं। यदि कोई जीवद्रव्य में भव्यत्वभाव को नहीं स्वीकारता तो वह कूटस्थ होता है, अभव्यत्वभाव को नहीं स्वीकारता तो क्षणिकवादी होता है। एक सांख्य की ओर जा रहा है, एक सुगत की ओर जा रहा है। एक ही समय में, एक ही द्रव्य में, भव्यत्वभाव भी है, अभव्यत्वभाव भी है। स्यात् सत्, स्यात् असत्; स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् नित्य; स्यात् अनित्य, स्यात् तत्, स्यात् अतत्।

मैं भव्य हूँ, ये लेखनी भी भव्य है। मैं परिणमन करूँगा, यदि मेरा परिणमन नहीं होगा तो मैं मनुष्य से देव कैसे बन सकता हूँ? यह लेखनी परिणमन नहीं करेगी तो टूटकर इसका दूसरा रूप नहीं बन सकता। इसलिये प्रत्येक द्रव्य परिणमनशील है इसलिये भव्यत्वभाव है। यदि इसको हम भव्यत्वभाव नहीं मानते, अभव्यत्व-एकान्त मानते हैं तो फिर यह कूटस्थ नित्य होता है और जिस रूप में है उसी रूप में रहेगा। मनुष्य मनुष्य ही रहेगा, देव देव ही रहेगा, नारकी नारकी रहेगा, तिर्यंच तिर्यंच रहेगा। अभव्यत्व-एकान्त मानते हो तो पररूप नहीं होगा, अन्य पर्यायभूत नहीं होगा। इसमें आपको विघ्न क्या है ? होने दो। यदि अभव्यत्व-एकान्त स्वीकारते हो तो फिर किसके लिये पुण्य ? किसके लिये पाप ? यदि इस पेन के अन्दर अभव्यत्व-एकान्त है, हे जीव! आपके अन्दर अभव्यत्व-एकान्त है तो फिर नित्य-एकान्त में पुण्य-पाप क्रिया क्या ?

पुण्यपाप क्रिया न स्यात् प्रेत्यभावः फलं कुतः।
बन्धमोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायकः ॥40/आ.मी.॥

नित्य-एकान्त पक्ष मानने पर फिर विक्रिया नहीं हो सकती है यानी पर्याय का परिणमन नहीं हो सकता और पर्याय का परिणमन नहीं हो सकता है तो मैं क्यों कहूँगा कि भाई! आप हिंसा मत करो क्योंकि मैं तो मनुष्य हूँ ही और मनुष्य ही रहूँगा। ये पुण्य-पाप की व्याख्या तभी तक सम्भव है जब आप द्रव्य के परिणमन को स्वीकार करोगे। नित्य-एकान्त के बाद अनित्य एकान्त नष्ट हो जाता है। जब नष्ट ही हो जायेगा, कुछ बचेगा नहीं तो फिर ये पुण्य-पाप किसके लिये ?

क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि प्रेत्यभावाद्यसम्भवः।
प्रत्यभिज्ञानाद्यभावान्न कार्यारम्भः कुतः फलम् ॥41/आ.मी.॥

क्षणिक एकान्तपक्ष में प्रत्यभिज्ञान का अभाव हो जाता है। जैसे आप किसी नगर से आये हो और क्षणिक एकान्त में आप जीते हो, आप कैसे जाओगे ? क्योंकि जो आप थे वह नष्ट हो चुके हो। जो घर था वह भी नष्ट हो चुका। प्रत्यभिज्ञान बनेगा ही नहीं। वह तो तब होता है जब पूर्व की स्मृति होती है; स्मृति

प्रत्यक्षतारूप जो ज्ञान है, उसका नाम प्रत्यभिज्ञान है। इसलिये न नित्य एकांत है; न क्षणिक-एकान्त है; स्यात् नित्य, स्यात् अनित्य। पर्यायदृष्टि से अनित्य, द्रव्यदृष्टि से नित्य। एक ही समय में भव्यत्व, अभव्यत्वभाव एक ही द्रव्य में होता है। ये कलम पुद्गल है, परिणमनशील है इसलिए भव्य है, पर ये पुद्गल पुद्गलरूप ही परिणमन करेगा, ये अचेतन है। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, रूप धर्म से युक्त है। तद्रूप ही परिणमन करेगा। ये पुद्गल अरस, अगन्ध, अरूप, अवक्तव्य नहीं हो सकता। ये चेतनभूत परिणमन नहीं करेगा। यदि ये पुद्गल चेतनभूत परिणमन करेगा तो संकर दोष होगा और सम्पूर्ण द्रव्य एक द्रव्यभूत परिणमन कर गये तो छह द्रव्यों का अभाव हो जायेगा। **'सत्ता सव्वपयत्था'** सत्ता सम्पूर्ण पदार्थों की विश्व में अनन्तभूत है लेकिन फिर भी एक नहीं है, भिन्न - भिन्न ही है।

शुद्ध संग्रहनय की दृष्टि से सारा विश्व द्रव्यत्वभूत है। द्रव्यत्वभूत होने पर भी हम व्यवहार का लोप नहीं कर रहे हैं। व्यवहार विपरीत करा देता है, भिन्न-भिन्न कर देता है। ये पुद्गल है, पुद्गलरूप ही है, पुद्गलरूप ही परिणमन करेगा, कभी जीवभूत परिणमन नहीं करेगा। ऐसे ही जीवद्रव्य बहिरात्मा से अन्तरात्मा, अन्तरात्मा से परमात्मा अवस्था को प्राप्त कर सकता है लेकिन वह जीवत्वभूत ही परिणमन करेगा, अचेतनभूत परिणमन नहीं करेगा। **प्रत्येक द्रव्य परभाव में परिणत नहीं होता है इसलिये अभव्यस्वभावी है। प्रत्येक द्रव्य निजस्वभाव में परिणमन करता है इसलिये भव्यत्व स्वभावी है।**

जब क्षणिकवादी कार्यकारणभाव को नहीं मानते हैं और जिसके यहाँ कार्यकारणभाव ही नहीं बनता है उसके यहाँ क्रिया की क्या आवश्यकता ? क्रिया वहाँ होगी जहाँ कार्यकारणभाव होगा। जहाँ कार्यकारण का अभाव होगा वहाँ अर्थ-क्रियाकारक का अभाव होगा। जहाँ अर्थक्रियाकारक का अभाव होगा वहाँ द्रव्यत्व का ही अभाव हो जायेगा। षट्गुण हानिवृद्धिरूप परिणमन; ये अर्थ क्रियाकारकभाव। कमण्डलु, इसका काम जल धारण करना। जब अर्थ-क्रियाकारत्व नहीं तो वह द्रव्य कैसा ? ये पिच्छी है, इसका काम मार्जन, अर्थ-क्रियाकारत्व। इसलिये प्रत्येक द्रव्य की आवश्यकता है सामान्य गुण, विशेष गुण व्याख्यान की। भैया ! विषय वही है, शब्द परिवर्तन है।

यहाँ पर सैंतालीस शक्तियों में प्रथम शक्ति का व्याख्यान किया - जीवत्वशक्ति। अस्तित्व पहला सामान्य गुण, द्रव्य की त्रैकालिक सत्ता की मौजूदगी विद्यमानता, जीवत्वशक्ति त्रैकालिक है। योगी संकल्प अवस्था में ही चित्त में प्रवेश करता है। भाई ! तू साधू बना है। तू सामान्य पुरुष ही तो था। सबके साथ मिलकर रहता था। सबके बीच में रहता था। संयोग-वियोग, हर्ष-विषाद, रति-अरितिभाव; ये सब अनादि के संस्कार तो हैं उस जीव में। जो भरे घर के बीच में रहता हो, आज उसको मंदिर के शून्य स्थान कोठे में विराजमान कर दिया। यदि इस वस्तु-स्वभाव के ज्ञान से अनभिज्ञ रहा तो एकान्त कमरे में बैठकर एकत्व में नहीं जा सकेगा। वहाँ बैठा-बैठा पता नहीं कितने विचारों के अनेकान्त में भरा होगा।

लोक की दृष्टि में एकान्त कक्ष में है परन्तु पता नहीं कितने विचारों में विश्व में विचरण कर रहा है। देह आपकी कमरे में है पर चित्त विश्व में विचरण कर रहा है। बन्धस्थान, आस्रवस्थान आपका विश्व का चल रहा है। वह जीव असंख्यात लोकप्रमाण के परिणाम करके असंख्यात बंध कर रहा है।

कदाचित् अभिनव त्यागी हुआ उसको माँ की याद सताने लग गई वह बेचारा हीड़ जायेगा। पिता की याद सताने लग गई, हीड़ जायेगा और पता नहीं क्या करने का विचार मन में लायेगा। इतना ही नहीं ये समूह है एक दूसरे से बातें करके एक दूसरे को सहयोग कर रहे हो, अस्वस्थ होने पर और पेट का भूखा होने पर; इन दो अवस्थाओं में अपने चित्त को सम्हालना, ये तुम्हारा परम पुरुषार्थ है। जब जीव को समय पर भोजन नहीं मिलता अथवा अल्प मिले, ग्रीष्म की तपन पड़ रही हो उस चित्त की चंचलता द्रुतगति से तीव्र हो जाती है।

साधना के मार्ग को गुरु के पास क्यों चुना गया ? यदि उपवास भी करना है तो क्रम से कीजिये। भैया! जो शीघ्र उपवास करके शीघ्र कुछ करना चाहते हैं उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, चित्त भ्रमित हो जाते हैं। जो पाचनशक्ति आपके भीतर है उससे बाहर भ्रमण करोगे तो चित्त तो भ्रष्ट होगा। साधना का मार्ग या अस्तित्वगुण को नहीं समझा और उस साधक को मालूम चल गया कि आप तो मुनि बन गये हो और आपके आने के बाद आपके घर विडम्बना हो गई है। माँ अस्वस्थ हो गई और पिता की मृत्यु हो चुकी है ऐसा किसी श्रावक ने संकेत दे दिया। भैया ! उस समय देखना परिणामों से, अरे ! मेरे वियोग में मेरा पिता चला गया। मैंने क्या उतावलापना किया। मुझे क्यों दीक्षा लेने की सूझ गई। वस्त्र उतारने के मार्ग को तो तुमने देख लिया था, पर वस्त्र उतारने के बाद मोह की वासना को कैसे उतारकर रखा जाये इसे सीख नहीं पाये।

वहाँ अस्तित्वगुण कहता है कि हे मुनीश्वर! जीवत्वशक्ति का चिन्तन क्यों नहीं कर रहे हो? जिसका वियोग हुआ है उसके शरीर के संयोग का वियोग हुआ है, लेकिन आत्मा की सत्ता का वियोग नहीं हुआ है। देह के संयोग का वियोग हुआ है और आप जो त्यागी बने हो ये देह को संयोग के वियोग के लिये ही बने हो। ये तो एक पर्याय का एक समय वियोग हुआ है। आप तो जंगल में त्रैकालिक असमानजाति पर्यायों से वियोगित होने के लिये ही मुनि बने हो। गुरु, आचार्य, गुरुभाई, शिष्य आदि की समाधिकाल में किंचित् भी विकल्प हो तो वहाँ ये सोचना कि भाई ! मुनि बना ही इसलिये जाता है।

ये किस अज्ञानी ने बोल दिया कि समाधि हो गई सो आत्महत्या हो गई, जबरदस्ती मरण हो गया, असमय मरण हो गया। अरे! मुनि तो इसलिये बना जाता है कि सतर्क हैं जब आना चाहे यम तू आ जाना, मैंने अपना काम कर लिया है। अब होता क्या है ? जिस जीव ने देखा नहीं, जाना नहीं, पहचाना नहीं। जब प्रत्यक्षसागरजी की समाधि हुई थी पूरा परिवार था वहाँ। पिताजी, मामाजी थे, पूरा परिवार डॉक्टर है। प्रतिदिन उनके मामाजी उनको देख रहे थे बाकायदा एक दिन पहले उनकी पारणा हुई और फिर उनका

स्वास्थ्य बिगड़ गया। यहाँ ये पकड़ना चाहिये कि उस जीव ने देह को नहीं देखा। जिसके लिये मैंने रत्नत्रयधर्म धारण किया था वह मुझे मिल ही गया। अब देह का विकल्प किस बात का ?

तड़फ-तड़फ कर लोग मरते हैं। रोटी-रोटी चिल्लाते लोग मरते हैं। जिसने बत्तीस उपवास किये हों उस आत्मा से पूछो कि कितने परिणामों की विशुद्धि से मरा है। सत्य ये है कि जो सत्य की किरणों से दूर है और निशा के अंधियारों में बैठा है वह पूछ रहा है कि वस्तु ऐसी है, मैंने ऐसा सुना है। अरे भाई! तुम पहले देखने आते फिर बोलते तो ज्यादा अच्छा था। वस्तुतत्त्व जो है सत्ता की ओर दृष्टिपात करो। वह जीवत्व कैसा है ? चेतन है, चिद्भूत है, त्रैकालिक सत्ता जिसने द्रव्य की समझ ली, अस्तित्वगुण को समझ लिया है, मैं विश्व से कभी भी बाहर नहीं हूँ।

क्षेत्राधिकरण, प्रदेशान्तरण वस्तु का अभाव नहीं है। पर्यायांतरण, वस्तु का अभाव नहीं है। आज मैं यहाँ हूँ इसके पूर्व मैं कहीं और था। आज लोग मुझे वहाँ देखने जायेंगे वहाँ मेरा अभाव है **'अस्मिन् भूतले घटं नास्ति'** इस भूतल पर घट नहीं है। इसका तात्पर्य क्या ? घट नहीं और यदि घट नहीं होता तो **'अस्मिन् भूतले घटं नास्ति'** कैसे शब्द आया ? कोई घट नाम की वस्तु अवश्य है तभी तो इस भूतल पर घट का अभाव है। मैं जहाँ था वहाँ नहीं हूँ, ये बिल्कुल सत्य है पर यहाँ मेरा अभाव नहीं है। ऐसे ही जो साधक एकान्त कक्ष में बैठा है और जिसको वस्तुतत्त्व का बोध हो चुका है उसको कोई सूचना भी दे जाये कि महाराज ! आपके गृहस्थ जीवन के पिताजी की मृत्यु हो गई। वह जीवात्मा चिन्तवन करेगा। अब ये जीव इस देह में नहीं है, इस नगर में नहीं है अथवा मेरे ज्ञान में नहीं है। हो सकता है उसी नगर में किसी दूसरे घर में आ गया हो। जीव का नाश नहीं हुआ है, पर्यायान्तरण हुआ है। ऐसी दृढ़ श्रद्धा बनाओ। जैसे अर्हंतदेव के चरणों में आपकी अकाट्य श्रद्धा होती है, दिगम्बर गुरु पर अकाट्य श्रद्धा है, जिनवाणी पर अकाट्य श्रद्धा है।

ऐसे ही जिनवाणी में प्ररूपित जो विषय हैं, अस्तित्वादि गुण हैं, इनपर अकाट्य श्रद्धा होगी तभी सम्यक्त्व में रह पाओगे। अर्हन्तदेव मात्र पर श्रद्धा है, पर यदि अस्तित्त्वगुण पर श्रद्धा नहीं तो तुम्हारे पास भी सम्यग्दर्शनगुण नहीं है। दया और करुणा हम जीव की पर्याय के कष्ट में रखते हैं लेकिन जीव की सत्ता के नाश के लिये नहीं करते। गहरे में जाओगे तो ये दया और करुणा मोह का चिह्न है। मोह के अभाव में न दया होती है, न करुणा होती है। जिसके मोह है उसके अन्दर भी दया करुणा नहीं होती। दर्शनमोहनीय की तीव्रता जिसके है उसके दया करुणा झलकती नहीं है और चारित्रमोहनीय कर्म की दया करुणा है उसके दया करुणा झलकती तो है।

ज्ञानी! यदि दया है तो अर्हन्त नहीं और अर्हन्त है तो दया करुणा नहीं। भैया! आपका प्रश्न है कि अर्हन्तदेव की दिव्य देशना करुणा के तीव्रोदय में आती है। आगम में तो लिखा है क्षायिक अभयदान है। हाँ, भैया! बिल्कुल सत्य है वो क्षायिक अभयदान होने पर भी करुणाशून्य हैं। करुणाशून्य से तात्पर्य बिना

कषाय के, बिना मोह के। **राग के बिना किसी के प्रति उपकार के भाव नहीं आ सकते और उपकार के भाव जहाँ हैं वहाँ प्रत्युपकार की भावना होती है।** अर्हन्त की देशना तो ऐसी है अनपेक्षतार्थ वृत्ति।

अनात्मार्थं विना रागैः शास्ता शास्ति सतो हितम्।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते।। 8 /र.क.श्रा.।।

जैसे मृदंग शिल्पकार के हाथ के स्पर्श से ध्वनि को प्रदान तो करता है, लेकिन उसके बदले में कुछ चाहता नहीं है। ऐसे ही भव्यों के भाग्य के नियोग से सहज ही जिनदेशना तो खिरती है पर जिनदेव कुछ चाहते नहीं हैं। कुछ लेना नहीं चाहते हैं, देना नहीं चाहते। लेने-देने लग जायेंगे तो मैं उनको नमोऽस्तु करना बंद कर दूँगा।

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ।।57/स्व.स्.।।

प्रभु ! आपकी पूजा करूँ तो प्रसन्न नहीं होते हो और निन्दा करूँ तो बैर धारण नहीं करते हो।

फिर भी आप के गुण का स्तवन करने से पुण्यात्मा जीव के, भव्यों के पापकर्मकलंक अपने आप समाप्त हो जाते हैं। हे भगवान् ! आपके चरणों में मेरा कोटि-कोटि प्रणाम।

अर्हन्तदेव की देशना मोहशून्य है इसलिये कुन्दकुन्ददेव को प्रवचनसार जी में लिखना ही पड़ गया, जैसे नारी का माया धर्म सहज है वैसे ही तीर्थंकर अर्हन्त केवली का गमन, प्रवचन, विहार आदि क्रियायें ये सब सहज हैं। ज्ञानी ! केवली का कैवल्य सहज है। अब सहज शब्द का अर्थ समझो, परसापेक्ष नहीं है परनिरपेक्ष है। शुद्ध सहज रूप कैवल्य प्रकट हुआ है न कि किसी से उत्पन्न कराया गया है, स्वसापेक्ष है। इस सहज का दुरुपयोग मत कर लेना नहीं तो आप के भीतर विकार आये कि वह तो सहज है, सरल है। मेरे मित्र ! सहज सरल नहीं है कर्मसापेक्ष है, परन्तु जो कैवल्यज्ञान प्रकट हुआ है ये कर्म के अभाव से हुआ है, कर्म के सद्भाव से नहीं हुआ है।

भगवान् की छह माह तक दिव्य देशना क्यों नहीं खिरी ? इसमें प्रभु का क्या दोष है ? उस दिव्य देशना को झेलने का कोई पात्र ही नहीं था ऐसा आप कहोगे पर वीरसेन स्वामी ऐसा नहीं कह रहे हैं। वीरसेन स्वामी धवलाजी ग्रंथ में कह रहे हैं – छह महीने मत कहना, पैसठ दिन तक नहीं खिरी छियासठवें दिन खिर गयी। योग्य पात्र का अभाव था व्यवहारदृष्टि से, तत्काल की योग्यता का अभाव था, परमार्थदृष्टि से काललब्धि नहीं थी, क्योंकि अर्हन्तदेव की देशना को झेलने के लिये भी उत्तमपात्र चाहिये है।

यथार्थ बताऊँ, आप लोग यहाँ आ गये। ये विद्वान् लोग यहाँ बैठे हैं, मेरी भाषा बदल जाती है और जब कोई सामान्य लोग होते हैं तब भाषा इसलिये बदल जाती है कि मैं इनको उत्कृष्ट भाषा बोलूँ तो इनको

समझ में कुछ नहीं आयेगा। आप भी अभी छोटे-छोटे बच्चों को पढ़ाने बैठ जाओ आपकी भाषा भी बदल जायेगी। ये सहज नियोग है। भव्यों के पुण्य से भाषा बदल जाती है और गणधर के अभाव में भी तीर्थंकर की दिव्य ध्वनि भी खिर जाती है। जब प्रबल पुण्यात्मा जीव आया भरत। ये बेटे का मोह नहीं था, ये पुण्यात्मा के पुण्य का नियोग था कि परमात्मा की देशना भी खिर गई इसलिये अस्तित्वगुण; चाहे संयोग हो, किसी का चाहे वियोग हो, जिसने समझ लिया है ध्रुवसत्ता को वहाँ निहारना, असातावेदनीय होने पर असाता का वेदन न होने पाए। रति-अरति कषायभाव की सत्ता होने पर भी ये भाव उदय में न आ पाये वहाँ तुम्हारी दृष्टि आना चाहिये।

'स्यात् भावशून्योऽहम्।' मैं रति-अरतिभाव से शून्य हूँ। यहाँ तो सुन रहे हो, ये जब लगाना जब तुम्हारी एक करोड़ की जेब कट जाये तब कहना **'स्यात् भावरिक्तोऽहम्।'** वृद्ध पिताजी सौ वर्ष के ऊपर चले जायें तब दुःख नहीं हो रहा है। जब बाईस वर्ष का युवा अन्तिम श्वास भर ले तब कहना अपने आप से– **'स्यात् भावशून्योऽहम्।'** जितना बाहर के लिंग को धारण करने में कष्ट है उतना भीतर के लिंग को सुधारने में कष्ट है, **मोह को बदल लेना मुनिपना नहीं है, मोह को छोड़ देना मुनिपना है।** इतना तो आप बहुत अच्छे से जानते हो, सौ-दो सौ रुपये के प्रतिदिन तू फल लेकर आता है। कितनी मेहनत से कमाता है और हरे-हरे नोट साग मण्डी में जाकर सुबह देकर आता है। मेरे मित्र ! तू नोट देकर नहीं आया है, बदलकर लाया है इसलिये कोई विकल्प नहीं हुआ।

हे मुनीश्वर! गृह त्याग करके, परिग्रह त्याग करके आ गये, यहाँ भक्तों के राग में बैठ गये हो। ये तुम्हारा मोह का त्याग नहीं हुआ है, ये बदलकर आये हो। उस दिन कहना जिस दिन तुम्हारे नाम की न कोई संस्था, न कोई भवन और न ही कोई भक्त तुम्हें पूछे, चौके लगाने को भी कोई तैयार न हो तब निज के परिणाम देखना। **ज्ञानियो! जो मोह-राग से रहित है यही मुनि है,** जैनायतन है। **कषाय को बदल देना कषाय को परिवर्तित कर देना – ये बहुत बड़ी साधना नहीं है। कषाय को छोड़ कर बैठ जाना – ये बहुत बड़ी साधना है।** महाराज ! शिष्यों के बीच में आनन्द तो है, पर तुम्हारी आत्मा का धर्म नहीं है। निसंगता, निर्भयता, निशंकता – ये आत्मा के धर्म हैं।

मित्र ! जब तू ससुराल गया था तो बहुत सारा द्रव्य लेकर गया था। घर का पैसा लगाकर गया था और तुझे पता था कि जितना अच्छा ले जाऊँगा उतना अच्छा मिलेगा। ये बदलकर लाये हो ये कोई आश्चर्य नहीं है। जब सब विकारीभावों का परित्याग करके, बहिरंग परिग्रह से विमुक्त होकर, अंतरंग परिग्रह को दूर करने में संलग्न है और कोई भिन्न वस्तु प्राप्ति का लक्ष्य ही नहीं है जहाँ पर, फिर भी अभिन्न की अनुभूति आ रही है, ये मुनि ही नहीं, मुनि केवली है। यहाँ केवल से तात्पर्य अर्हन्तदेव नहीं, केवल निज में लीन हैं ऐसे निर्ममत्व, निर्मोही मुनि केवली, ज्ञानी हैं; कैवल्यज्ञानी नहीं, केवल आत्मज्ञानी हैं। अन्य किसी को जानने का उसका लक्ष्य ही नहीं है। कौन से मुनि की बात कर रहे हैं ? क्षीणमोही की।

इतना शक्तिमान सत्त्व है कि कोयल को बुलवाते नहीं, कोयल अपने आप कूकने लगती है। ऐसे ही पुण्यात्मा जीवों का इतना पुण्य प्रबल होता है कि प्रार्थना न भी करें तब भी प्रभु की देशना सहज खिरती है। कितने सारे काम, आप ऐसे भावों में उमड़ जाते हो आपसे न भी कहा जाये तब भी आपके मुख से शब्द निकलना प्रारम्भ हो जाते हैं। वर्गणायें आकर्षित कर रही हैं फिर भी मोह नहीं है। क्या अलौकिक दशा है।

दिव्यदेशना खिरते हुये भी दिव्य देशना देनेवाला अपने निज देश से भिन्न हुआ ही नहीं, च्युत नहीं हुआ। आज अपने मन में तो भाव आये कि देखो कैसे सुन रहे हैं, लोगों को अच्छा लग रहा है कि नहीं लग रहा है। ऐसा भाव भी वक्ता के मन में आ रहा है वो भी एक ममत्वभाव है, रागभाव है, आकांक्षाभाव है। लेकिन धन्य हो उन अर्हन्तदेव को जिनके मन में कोई भाव नहीं। जितने भाव आ रहे हैं वह सब मोह की सत्ता है। जो परिणमन है वह इच्छापूर्वक है वह सब मोह का कार्य है। उनके पास कोई मोह नहीं है। ये मात्र कल्पनायें तो नहीं चल रही हैं ? नहीं, भैया! ये सैतालीस शक्तियाँ आत्मा में हैं, काल्पनिक नहीं हैं, सत्ताभूत हैं, विद्यमान है, अविद्यमान नहीं हैं। बहुत सारी अवस्थायें, आपकी निजी शक्ति का आपको भान नहीं है।

भैया ! थोड़ा समय दे दो। मिट्टी के धुलने पर पानी के भीतर क्या मोती पड़े हैं पता नहीं चलता। पानी स्थिर हो जाये, मिट्टी उपशमित हो जाये तो पानी के अन्दर क्या पड़ा है दिखना प्रारम्भ हो जाता है। ये मैं पुनः पुनः संघ में भी बोलता रहता हूँ, थोड़ा समय स्वयं के लिये तो दे दो। भक्ति को दिया, प्रतिक्रमण को दिया, भगवान् को दिया, गुरु को दिया, शास्त्र को दिया, थोड़ा स्वयं के लिये तो दे दो। क्या ये सब स्वयं के लिये नहीं हैं ? हाँ, ये स्वयं के लिये तो हैं सब व्यवहार से है। ये सब तूफान चल रहे हैं कि ये करना, ये करना, शान्ति से न सोचूँ, न बोलूँ, न समझूँ। यदि मैं एक मिनिट भी सोचूँ या बोलूँ तो फिर तूफान खड़ा हो जायेगा।

मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिंतह किं वि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे झाणं।। 56/द्र.सं।।

मत चिन्तन करो, मत चेष्ठा करो। बस, समय दे दो। यथार्थ मानिये जो आज तक वेदन नहीं हुआ वह आपको मिल जायेगा। श्रेयांसगिरि की पहाड़ियों का बड़ा आनन्द लिया। वर्तमान में भौतिकता-शून्य भारत में कोई तीर्थ है अभी भी तो सीरा पहाड़ी (श्रेयांसगिरि) है। साधना करूँ, ये भी मत सोचो; विराधना करूँ, ये तो सोचना ही नहीं है। जब साधना को नहीं सोच पा रहा हूँ तो विराधना को कहाँ सोच पाऊँगा ?

मित्र! इस भवन को सिर पर रखकर इस जगह से दूसरी जगह पर रखकर आ सकते हो, इतनी ताकत तेरे पास है। पर दो मिनिट अपने आपको शांत करके बैठ जाओ, ये ताकत नहीं है। **भैया ! भटकन तभी तक रहेगी, जब तक दुनियाँ में अटके हो। अटकन हट जाये तो भटकन भग जाये।** विश्वास

मानना, उसी का चित्त भटकता है जो कहीं अटका होता है। भैया ! शादी हो गई क्या? इसी गाँव में रहते हो क्या ? तेरे बेटे की माँ कभी अपनी माँ के घर गई। हे मित्र ! जैसे आपके बेटे की माँ अपनी माँ के घर जाती है, उस समय बता तू कहाँ होता है ? भैया! इसका भटकना शुरू हो जाता है,क्यों ? क्योंकि अटका था। आप विश्वास मानना अभी आप बड़े अच्छे से सुन रहे हो। एक करोड़ रुपये का पैकेट बेटे ने आपकी जेब में रख दिया अभी और कहा कि ये शाम तक सुरक्षित रखना। जितनी चैन से सुन रहा था, जितने आनन्द से तू बैठा था वह तेरा आनन्द समाप्त, भटक गया क्योंकि एक करोड़ में अटक गया।

जिन जीवों को भटकन से बचना हो तो बुद्धिपूर्वक अटकन से दूर हो जाना चाहिये। भैया! यदि आप मुनि महाराज बन गये और कोई तीर्थ में अटक गये तो विश्वास मानना, ये नियम से भटकेगा। मैंने स्वयं एक मुनिराज को समझाया कि महाराज ! समाधि की साधना करो। तुम स्वयं मन्दिर हो और यदि ये तुम्हें करना ही था तो पहले कर लेते। एक घण्टे समझाया मैंने उस जीव को। लेकिन उसको कुछ समझ नहीं आया और मन्दिर के राग में चौबीस घण्टे एक भूत-सा सवार रहता है। मैं देख रहा था कि देखो कितना बेचारा दु:खी है जीव, वह बोला - मेरा एक ही तो सपना है। भैया ! तेरा एक ये सपना है। 'एकत्वविभक्तचिद्रूप' भगवान् को देखना, ये सपना होना चाहिये था। पर तू कहाँ का सपना देख रहा है। भैया! यदि एक मिनिट भी तुमने बाहरी आलम्बन लिया, अटके सो भटके। भैया! ये सूत्र याद कर लेना **'अटके सो भटके'।**

भैया! जब आपकी शादी नहीं हुई थी, माँ से, पिता से प्रीति से बात करते थे। जिस दिन किसी में अटक जाओगे उस दिन माँ को माँ कहने की भाषा बदल जाती है। जो माँ-माँ कहकर पुकारता था आज वही माँ से लड़ने को खड़ा है। माँ कहती है कि बेटा तू भटक गया है, लटक गया था इसलिये। ये तो आपको प्रतिदिन का अनुभव है, लटके सो भटके। मुमुक्षु! फिर भी लटके हो। किंचित् भी आप भिन्न में जाओगे, अभिन्न का आनन्द खो आओगे। तो पर की जिम्मेदारी लेना नहीं और निज की जिम्मेदारी से दूर भागना नहीं ! ये मोक्षमार्ग है। अभी आपको भगवान् दिखते हैं, मंदिर दिखता है, घर दिखता है। भोजन कर लिया, गुरु के पास आ गये और जैसे ही किसी मंदिर के अध्यक्ष बन गये, भैया ! पूरी शान्ति ही चली जायेगी। सोचते रहोगे कि अब क्या होगा ?

ज्ञानी! अध्यक्ष बनना तो श्रेष्ठ है। जो अध्यक्ष नहीं बनता वह सुखी हो ही नहीं सकता। तीनकाल में मात्र अध्यक्ष ही सुखी होता है। जो अध्यक्ष नहीं होता वह तो बहिरात्मा होता है। अध्यक्ष-अधि+अक्ष, अधि यानी पास, अक्ष यानी आत्मा। जो निज की आत्मा के पास होता है वही अध्यक्ष होता है और ऐसे अध्यक्ष बने बिना कोई सुखी हो ही नहीं सकता है।

भैया! प्रभुत्वशक्ति पर विचार करो। जिसने इसे समझ लिया वह सुखमय जीवन जी रहा है। क्लेश आनन्द है कि निराकुलता आनन्द है ? भैया! ठण्डे मस्तिष्क से सुनना और यदि ठण्डे मस्तिस्क से नहीं

सुनोगे तो तुम गर्म हो जाओगे। यदि आपने ममत्व रखकर मेरी बातें सुनीं तो आपका मस्तिष्क गर्म हो जायेगा और निर्ममत्वभाव से सुनोगे तो शीतल हो जाओगे। हे जीव! आप जैन हो, व्यापारिक समाज है, ये हानि-लाभ देखना चाहते हो। चम्बल नदी के अन्दर चाँदी निकली। भारत सरकार ने उस चाँदी को निकलवा लिया। माना कि एक किलो चाँदी निकलवाने में उनको पाँच पैसे का घाटा लगा। शासन ने चाँदी निकलवाना बन्द कर दिया। बोलो क्यों ? चाँदी अवश्य है पर ऐसे क्विंटलों चाँदी निकलवाऊँगा तो घाटा कितना बढ़ जायेगा। चाँदी निकलना बंद हो गया।

भैया ! एक किलो दूध है और ढाईसौ ग्राम घी है। दूध का बर्तन बड़ा और भारी है लेकिन घी का बर्तन छोटा और हल्का है। आप बड़े की ओर दौड़ोगे कि कीमत की ओर दौड़ोगे ? अर्थवान कौन है ? मित्र ! घी की कीमत अधिक है। उपशमभाव की कीमत अधिक है। संक्लेशता से बहुत धर्म का काम भी मिले तो उसे छोड़ देना। भैया! आपको चक्रवर्ती का पद मिल रहा है कल्पद्रुम विधान में, बोलियों में संक्लेशता बढ़ रही है, तो तू चक्रवर्ती बनना छोड़ देना। जितना बोल चुका है उसे कहीं दान में लगा देना। लेकिन जो शक्ति है उसे सुरक्षित पहले रखना। आज ही चौका लगाया और भाव आ गया कि महाराज को मेरे यहाँ आहार में आना चाहिये और यदि साधु नहीं पहुँच पाये तो ज्ञानी! जितनी तुम निर्जरा नहीं कर पाओगे, कभी-कभी साधु के प्रति भी अशुभभाव आ सकते हैं, उतना तुमने बन्ध कर लिया। मित्र! नहीं है सामर्थ्य तो उसी दिन चौका बन्द कर देना, लेकिन विशुद्धि का नाश मत कर लेना। चौका लगाना स्वाधीन है, पर साधु आना पराधीन है। चौका तुम्हारे मन से लगा है, साधु अपने मन से आयेगा। ऐसी जगह आप निमंत्रण भी नहीं दे सकते हो। यदि तू कहीं बोलकर आ गया और दस लोगों ने और सुन लिया तो साधु भी संक्लेशता में प्रवेश करेगा। अब मैं किसके यहाँ जाऊँ और आज ही का एक दिन है। करो महाराज उपवास। विधि लेकर निकलो। अब दोनों के भाग्य की परीक्षा होने दो। संक्लेशता क्यों बढ़वाओ।

प्रभुत्वशक्ति क्या कह रही है ? जो तुम्हारा निजी प्रभुत्व है उस पर लक्ष्य करो। **विशुद्धि स्थान की आप उतनी ही सुरक्षा करो जितनी कोई माँ घी की कौआ-बिल्ली से सुरक्षा करती है। विशुद्धि स्थान की रक्षा करो। आर्तध्यानरूपी श्वान, काकों से अपने धर्मध्यानरूपी विशुद्ध परिणामों की रक्षा करो। प्रभाव में मत जाओ। प्रवाह में रहो, प्रभाव हो जायेगा।** भैया! जितने एकान्त में तुम अच्छी साधना करोगे बाहर उतना ही तेरा प्रभाव फैल जायेगा। बाहरी प्रभाव के चक्कर में तुमने सामायिक में भी प्रवचन की तैयारी की तब भी तुम विफल हो जाओगे, निश्चित मानिये। कभी भी सामायिक में प्रवचन और पढ़ाई तो करना ही नहीं। ईमानदारी से सामायिक करो।

हमने चतुर्दिग्वन्दना तो कर ली और अब कोई बाहर के नक्शे चार्ट लेकर बैठ गये कि ये भवन कैसे बनना है ? मित्र! ये सामायिक नहीं है, संक्लेशता है। आप संक्लेशता का अर्थ तो समझो। लोग संक्लेशता का अर्थ नहीं समझे। वे समझते हैं कि रोने का नाम संक्लेशता है लेकिन रोने का नाम मात्र

संक्लेशता नहीं है, हँसने का नाम भी संक्लेशता ही है। भैया! अत्यंत प्रसन्नता से हृदयघात होता कि नहीं ? होता है महाराज ! और रोने से होता कि नहीं ? होता है। मित्र! दोनों ही संक्लेशतायें हैं, नाम अलग-अलग हैं, विषय अलग-अलग हैं। **विशुद्धि में न हास्य है, न शोक है, न भय है, कोई भाव नहीं है। विशुद्धि में तो एकमात्र शांतभाव है।** विशुद्धि की रक्षा करो। एक घण्टे की सामायिक में एक सेकेण्ड प्रमाण भी स्थिरता आ गई तो समझ लेना कि मेरे चौबीस घण्टे आनन्दमय हैं।

इतना धैर्य रखना जैसा गोपिका को होता है। पाँच लीटर दूध स्वच्छ भैंस का लाकर गोपिका जामन डालती है। उसे पता है कि खट्टा हो जायेगा, जम जायेगा, बुद्धिपूर्वक डाला उसने। जामन डालने के बाद कितना धैर्य है कि इसमें से घी निकालूँगी। बीच में बिल्ली खा जाये कोई नियत नहीं है पर धैर्य देखो, पाँच लीटर दूध को उसने जानकर बिगाड़ा हाथ से। हे योगी! पाँच इन्द्रियों के भोगों को तूने जानकर बिगाड़ा है पर गोपी को घृत दिख रहा था पाँच लीटर दूध में, कितना घी निकलेगा, आधा किलो मक्खन निकलेगा, तीनसौ ग्राम घी निकलेगा। यदि उस घी की कीमत न होती तो गोपिका जानकर दूध को न बिगाड़ती। अब पाँच लीटर दूध की कीमत कितनी है ? आज की तारीख में दौ सौ रुपये और पाँच सौ ग्राम घी कीमत तीन सौ रुपये। उस गोपिका को इतना मालूम है कि घृत का स्वाद, घृत की शक्ति, घृत की अनुभूति, घृत की गरिष्ठता दूध से अधिक है।

मुमुक्षुओ! दो घण्टे पूजा करनेवाला, पाँच घण्टे यात्रा करने वाला और पाँच मिनिट ध्यान करने वाला; इतना गरिष्ठ है ध्यान कि पाँच मिनिट में इतनी निर्जरा कर लेगा कि पाँच घण्टे पूजा की उससे भी कई गुनी निर्जरा ध्यान से होगी। जब कठिन विषय सुनने में माथा भारी होता है तो फिर एकाग्रता में कितना माथा भारी होगा। भाई! नासादृष्टि करो। सभी लोग एक मिनिट से ज्यादा नहीं बैठ सकते। बहुत से बहुत तीन मिनिट, नहीं तो उसका सिर फटता है। अहो ! धन्य हैं वे योगी जो सिर के बल खड़े होकर शीर्षासन में विराज करके लोक के शीर्ष को निहार रहे हैं। मेरी आत्मा का जो प्रताप है स्वतन्त्र लक्ष्य है। मैं पर से बाधित नहीं हूँ। मैं पर के वश नहीं हूँ। मैं निज में रमण कर रहा हूँ। न मैं किसी को बाधित कर रहा हूँ, न मैं किसी से बाधित हो रहा हूँ।

प्रभुत्वशक्ति; सारी शक्तियों का स्वामी मैं ही हूँ। जीवत्वशक्ति मेरे में ही है, चितिशक्ति, दृशिशक्ति, ज्ञानशक्ति, सुखशक्ति, वीर्यशक्ति भी मेरे में ही है इसलिये मैं प्रभुत्वशक्ति सम्पन्न हूँ। हे मुनिराजो! मत स्वीकारना अपने आप को कंगाल, मत स्वीकारना अपने आप को हीनदीन, आप तो प्रभुत्वशक्ति सम्पन्न हो। कोई समझे नंगा, कोई कुछ भी समझता रहे पर किसको मालूम है ज्ञानी! कि जिसके पास सर्वांग सम्पूर्ण अर्थों की सिद्धि का मार्ग प्रभुत्वशक्ति विराजती हो, जिसको तुम कंगाल समझ रहे हो, वो ही है मालामाल। **'किमन्यस्य परिग्रहेण'** उसके लिये अन्य परिग्रह की क्या आवश्यकता ? **'अचिन्त्यशक्तिः स्वयमेव दैवश्चिन्मात्रचिन्तामणिरेव यस्मात्'**। जिसको सम्पूर्ण अर्थों की सिद्धि करनेवाला परम

आकिंचन्य धर्म प्राप्त हो, प्रभुत्वशक्ति प्राप्त हो उसके लिये जगत् के अन्य परिग्रह की क्या आवश्यकता ? **'सर्व भावव्यापकैक भावरूपा विभुत्वशक्तिः'**। सम्पूर्ण भावों में व्यापक एकभाव उसरूप जैसे ज्ञानस्वरूपी भगवान् आत्मा। सब भावों में व्याप्त मेरा एकभाव है ज्ञानभाव, ज्ञायकभाव। मित्र ! जब बैठो तब कभी चेहरा उदास मत करना।

भैया! आप प्रदेश के बाहर निकल गये। आपकी जेब में सब कुछ है पर अपरिचित लोगों के बीच में घूम रहे हो। कभी-कभी सामनेवाला आदमी क्या सोचता है कि खड़ा होगा कोई आदमी भूखा प्यासा भुखमरा। पर आपको मालूम है कि मैं तो अपने नगर का नगर सेठ हूँ। भैया! ऐसे बनकर जीओ कि लोग वास्तव में ये ही समझें कि कुछ नहीं है इनके पास। पर आपको मालूम है कि मेरे पास क्या है। दूसरे नगर में जाने पर जैसे वहाँ का सेठ साहूकार क्या समझता है कि मेरे नगर में कोई दरिद्री आदमी घूम रहा है पर तुझे दरिद्रता की किंचित् भी अनुभूति हो रही है क्या ? ऐसे ही जगत् के मूढ़ प्राणी परिग्रही इन दिगम्बर योगियों को देखकर नंगा समझते हैं। वे यह नहीं समझते कि रत्नत्रयधर्म से विभूषित विभुत्वशक्ति, प्रभुत्वशक्ति से युक्त ये नंगे नहीं हैं, ये महान् चंगे लोग हैं। कौन समझे, कौन समझाये। मेरे मित्र! आपको मालूम होना चाहिये था 'अखण्ड चिन्मयी चैतन्यपिण्ड भावश्रुत का ज्ञाता' उसे आप कह रहे हो कि कुछ नहीं जानता था।

तुसमासो घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावो य।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुड जाओ।।53/भा. पा.।।

भावविशुद्धि से लबालब भरे हुये थे शिवभूति स्वामी। वे निहार रहे थे अपनी प्रभुत्वशक्ति, विभुत्वशक्ति को और एक अन्तर्मुहूर्त में मेरे भाई केवलज्ञानी हो लिये। इसलिये मत समझो किसी को हीन-दीन। पता नहीं कौन-सा योगी कब निज में लीन होकर केवलज्ञानी हो जाए और हम यही देखते रहें कि पता नहीं ये कैसे महाराज हैं ! सिंहासन की तरफ मत देखना, उनकी सिंहवृत्ति पर ध्यान देना। **जिसको चैतन्यधाम का आनन्द आ चुका हो वह जगत् की धातुओं में कहाँ दौड़ेगा ? जिसको चैतन्यधातु का आनन्द नहीं है वह कागज के और धातु के टुकड़ों पर दौड़ेगा।** पर जिसको चैतन्यधातु का आनन्द हो चुका है वह जगत् की अन्य धातुओं पर कोई दृष्टि नहीं डालेगा। जो निज की चैतन्य धातु को समझ लेता है उसके पास न भूमिगत परिग्रही धातु होती है न व्याकरण की धातु होती है। बाहरी धातुएँ तब-तक दिखती हैं जब-तक चैतन्यधातु नहीं दिखती और जिस दिन चैतन्यधातु दिख जायेगी उस दिन बाहरी सब धातुयें प्रत्यालोप हो जायेंगी। इसलिये भैया! निज की शक्ति का अनुभव करना।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।
आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।
भगवान् महावीर स्वामी की जय।

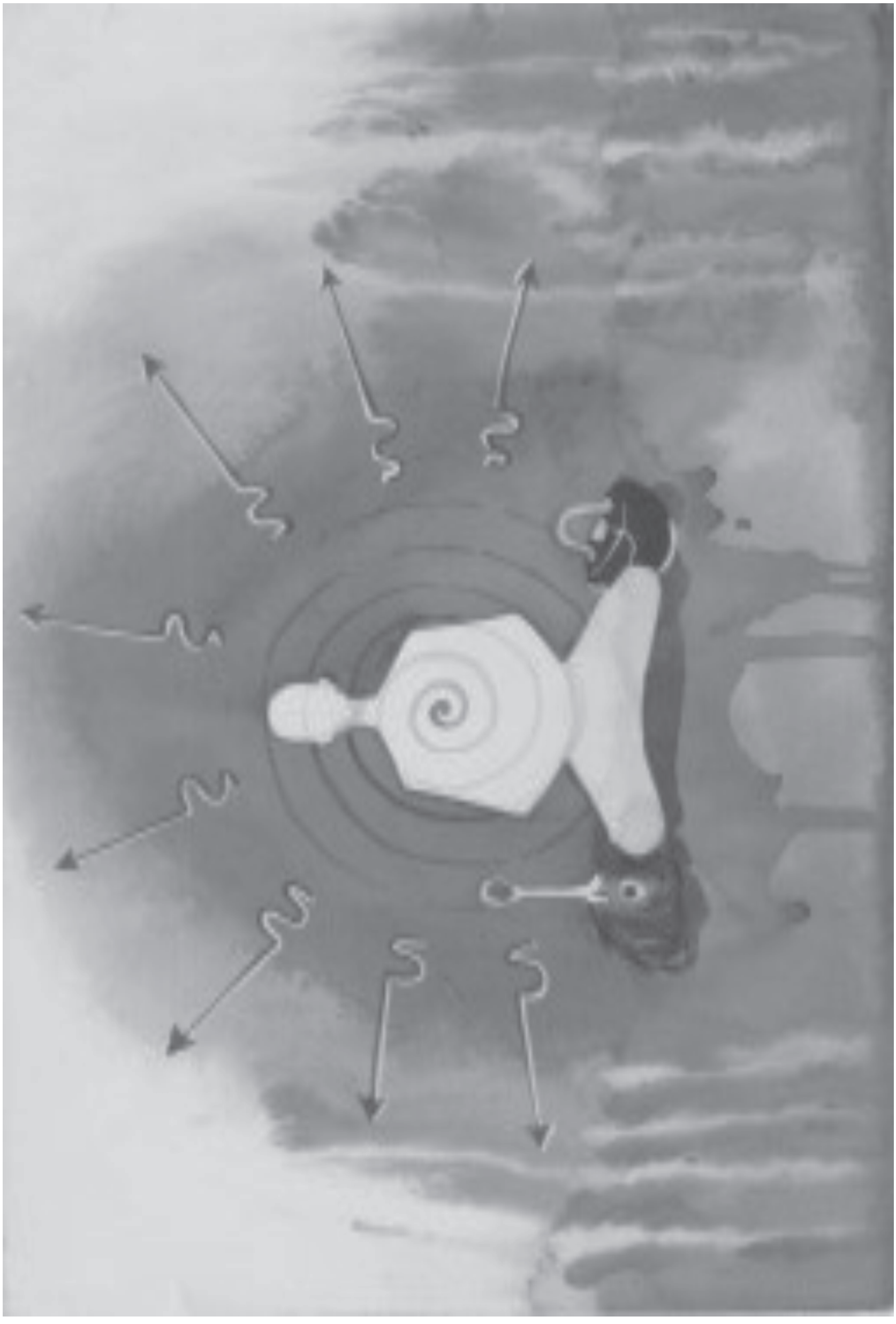

8

विभुत्वशक्तिः

‘‘सर्वभावव्यापकैकभावरूपा विभुत्वशक्तिः ।’’

सर्व भावों में व्यापक ऐसे एक भावरूप विभुत्व शक्ति है।
चैतन्य चैतन्य में भी अत्यन्ताभाव है अर्थात्, प्रत्येक चैतन्य स्वतन्त्र ही है।
प्रत्येक जीव द्रव्य स्वतन्त्र ही है और प्रत्येक जीव की विभुत्व शक्ति, प्रभुत्व शक्ति स्वतन्त्र ही है।

समय देशना

ज्ञानियो ! आत्मा में अनंत धर्म विद्यमान हैं। आत्मा अनन्तानंत शक्तियों का महापुञ्ज है। उस आत्मा का बोध कराने के लिए यहाँ आत्मा की शक्तियों का कथन किया जा रहा है। पूर्व में आत्मा की सात शक्तियों का व्याख्यान किया।

प्रथम जीवत्वशक्ति का वर्णन किया। पुद्गल द्रव्य का सद्भाव है, उसमें जीवत्व-शक्ति का पूर्ण अभाव है, परन्तु आत्म-द्रव्य में जीवत्व सर्वकाल में विद्यमान रहता है। जो जीता था, जी रहा है, और जीयेगा वही जीव द्रव्य है। आत्मा स्वयं में एक महाशक्ति है ।

दूसरी चितिशक्ति है। ज्ञानियो ! यदि आत्मा में चितिशक्ति न होती तो वह जड़मय हो जाती, आप जानोगे कैसे कि - यह आत्मा है, उसमें चेतना शक्ति हर-हमेशा जाग्रत रहती है। तीसरी दृशिशक्ति है और चौथी ज्ञानशक्ति है। पदार्थों के सामान्य अवलोकनरूप जो है वह दृशिशक्ति (दर्शन) है तथा पदार्थों को विशेष रूप से जानने वाली ज्ञानशक्ति है।

पाँचवी शक्ति, सुखशक्ति है। आत्मा की प्रतीति करते हुए उसमें लवलीनता होने पर श्रेष्ठ अनाकुल शान्त आह्लादरूप सुख का अनुभवन होता है। पर-पदार्थों से रहित, निराकुल निराबाध सुखशक्ति आत्मा में सदैव विद्यमान रहती है।

आत्मा की छठी शक्ति वीर्य शक्ति है। भैया ! प्रत्येक वनस्पति में औषध गुण होता है, प्रत्येक बूँद में सागर बनने की योग्यता होती है। वैसे ही प्रत्येक आत्मा में भगवान् बनने की शक्ति होती है। आत्मा शक्तिरूप से भगवत् सत्ता संपन्न है, त्रयकालिक अपने स्वस्वभाव से परिपूर्ण है परन्तु सम्प्रति पर्यायदृष्टि से स्वभाव से च्युत, विभावरूप परिणत अशुद्ध है, पर उसे पुरुषार्थपूर्वक परिपूर्ण शुद्ध किया जा सकता है।

हे मुमुक्षु ! अपने आपको सम्प्रति शुद्ध मानकर मत बैठ जाना, नहीं तो पुरुषार्थ-शून्य होकर संसारसागर में डूब जाओगे। एक कृषक को भी द्रव्यदृष्टि का बोध होता है तभी तो वह चमकते बीज को खेत की मिट्टी में डाल देता है और वह पुरुषार्थपूर्वक उसमें आवश्यक खाद-पानी छोड़ता है, फिर बाढ़ लगाकर पुरुषार्थपूर्वक उसकी रक्षा करता है। ऐसे ही **मित्र ! अपनी प्रभुता को प्रकट करना है तो पुरुषार्थ करना पड़ेगा। दुग्ध से घृत निकालना है, तो भी पुरुषार्थ करना होगा।** सातवीं शक्ति, प्रभुत्व शक्ति है।

आत्मा की आठवीं शक्ति, विभुत्वशक्ति है। आत्मा की विभुता का व्याख्यान यहाँ आचार्य भगवंत कर रहे हैं । सर्व भावों में व्यापक ऐसे एकभावस्वरूप विभुत्वशक्ति आत्म-द्रव्य में हर-हमेशा विद्यमान रहती है।

सर्व भावों में व्यापक एकभावरूप 'विभुत्व शक्ति' आत्मा में सदैव विद्यमान रहती है। आत्मा स्व के सम्पूर्ण गुण-पर्यायों में व्याप्त विभु है तथा उसका ज्ञानादि प्रत्येक गुण भी सर्व भावों में व्याप्त न हो,

तो अनन्तगुणों का अभेद पिण्ड अनुभव में नहीं आ सकता एवं सम्पूर्ण गुणों की अभेदता का आनन्द भी नहीं आ सकता है। ज्ञानियो ! **विभु का मतलब है व्यापक।**

हे मुमुक्षु ! आत्मा अलौकिक द्रव्य है। विभुत्वशक्ति से आत्मा 'विभु' है, इसलिए अपने सर्व भावों में व्यापक है। मुमुक्षु ! ऐसा अनन्त गुणों का विभुत्व जानना।

ज्ञानियो ! ध्यान दो, रागद्वेषादि में ऐसा विभुत्व नहीं है कि वे आत्मा के सम्पूर्ण भावों में व्याप्त हो जाएँ। मित्र ! आए राम, गए राम, परन्तु आत्माराम सदाराम। जो आता है, जाता है वह विभाव है; जो था, है और रहेगा वह ध्रुव-स्वभाव है। ज्ञानी ! पानी में मिट्टी घोल दो, पानी मैला दिख रहा है, परन्तु फिर भी मिट्टी, मिट्टी है और पानी, पानी है। दूध और पानी का मिश्रण कर दिया, एकमेकपना दिखाई दे रहा है, परन्तु तब भी पानी पानी है, दूध दूध है। आत्मा के साथ कर्मों का संबंध है, कब से है ?

अनादि सम्बन्धे च।।त.सू.।।

हे मुमुक्षु ! द्रव्यदृष्टि, पर्यायदृष्टि। दोनों दृष्टियों को निहारना होगा। द्रव्यदृष्टि से आत्मा अनादिकाल से कर्मों से बंधा हुआ है। मित्र ! बंधा होने पर भी आत्मा आत्मा है और कर्म कर्म है। आत्मा चैतन्यमयी है, कर्म जड़ हैं। तीन काल में भी कर्म चेतनरूप तथा चेतन कर्मरूप नहीं हो सकते हैं। हमारी दृष्टि में, हमारी सोच में दोष हो सकता है, परन्तु वस्तुव्यवस्था तो जो है सो है। तुम्हारी सोच से उस वस्तु-व्यवस्था में किंचित् भी परिवर्तन संभव नहीं है।

हे मित्र ! आत्मा के विभुत्व में राग-द्वेषादि विकारी भाव वास्तव में व्याप्त होते ही नहीं हैं, एक समय की राग-द्वेषरूप पर्याय स्वभावरूप गुणों में व्याप्त नहीं हो सकती है, यदि राग त्रिकाल गुण में व्यापक हो जाय तब तो वह कभी भिन्न होगा ही नहीं।

हे मुमुक्षु ! अपनी 'विभुत्व शक्ति' के वैभव को निहार, अपनी स्वात्म सम्पत्ति की सँभाल करो। **ओ हो ! जड़ सम्पत्तियों को कैसे पुरुषार्थपूर्वक सँभालते हो, यदि कोई आपके भवन पर अधिकार जमा ले तो आप बलपूर्वक, प्रशासन के सहयोग से अपने अधिकार में कर लेते हो, ऐसे अनादिकाल से तेरी आत्मसम्पत्ति पर विभावों ने, विकारों ने अधिकार जमाकर रखा है इसकी ओर दृष्टिपात करो।** हे मुमुक्षु ! अपनी शाश्वत 'विभुत्व शक्ति' को निहारो। जैसे शुद्ध परमात्मा सिद्धालय में विराजमान हैं वैसा ही परम परमात्मा तेरी देह में विराजमान है।

हे मित्र ! जिस दिन तुझे 'विभुत्व शक्ति' का बोध हो जायेगा उसी क्षण से रस भी नीरस जान पड़ेंगे। सरस भी नीरस प्रतीत होगा। जब स्वभाव पर दृष्टि जाती है, तो जगत् के सरस भोग, भोजन नीरस प्रतीत होने लगते हैं। शाश्वत स्वभाव पर दृष्टि आते ही राग-द्वेषादि विभावों के प्रति उदासीनता आ जाती है। ज्ञानियो ! कभी-कभी योगियों को भी निहार लिया करो, तुम सिद्ध बनो तब बन जना, पर योगियों का

ही ध्यान कर लिया करो। वे योगीश्वर ! उपसर्गों को कैसे सहन करते हैं ? परिषहों को कैसे सहन करते हैं ? जिसने अपनी 'विभुत्व शक्ति' को निहार लिया है वह कभी भी क्लेश को प्राप्त नहीं होता है।

हे मुमुक्षु ! वस्तुस्वरूप को समझो, आचार्य भगवन् यहाँ वस्तुस्वरूप का अलौकिक व्याख्यान कर रहे हैं। स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्ति-नास्ति; इन सप्त भंगों को, सप्त नयों को जिसने व्यवस्थित समझ लिया है वह कभी भी अपने जीवन में विसंवाद को प्राप्त नहीं होगा। जिसने अनेकांत, स्याद्वाद को व्यवस्थित नहीं समझा है वही क्लेश को प्राप्त होता है।

ज्ञानियो ! आत्मा लोक-अलोक में व्याप्त नहीं है, परन्तु अपने सम्पूर्ण भावों में व्याप्त है। आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, जीवत्वादि शक्तियाँ तो सम्पूर्ण गुणों में व्याप्त हैं।

ज्ञानियो ! **अखण्डित प्रताप और स्वतंत्रता से सम्पन्न होना है लक्षण जिसका; वह प्रभुत्व शक्ति है ।** प्रभु अर्थात् प्रभावशाली, परिपूर्ण बलवान, समर्थशाली। अनंत महिमावंत, अखण्डित प्रताप से सु-सम्पन्न एवं पूर्णतः स्वतंत्र पदार्थ जिसमें रंचमात्र भी हीनता-दीनता नहीं है, जिसे पर सहयोग की किंचित् भी आवश्यकता नहीं है, वही बलशाली, महाशक्ति सम्पन्न प्रभु कहा जाता है।

हे मुमुक्षु ! तू स्वयं ही भगवत् सत्ता से सम्पन्न है। प्रत्येक जीव प्रभुता से सम्पन्न है। अपनी निज निधि को पहचान, अपनी आत्म सत्ता पर दृष्टिपात कर, तू स्वयं सर्वशक्तिमान भगवानात्मा है। संसार का प्रत्येक जीव भगवत् सत्तासम्पन्न है। यही प्रभुता है, यही तेरी विभुत्व शक्ति है। अपनी विभुता का भान करके अपनी विभुता में लीन हो जाओ।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

9

सर्वदर्शित्वशक्तिः

‘विश्वविश्वसामान्यभावपरिणतात्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्वशक्तिः ।’

समस्त विश्व के सामान्य भाव को देखने रूप से अर्थात् सर्व पदार्थों के समूहरूप लोकालोक को सत्तामात्र ग्रहण करने रूप से परिणमित ऐसे आत्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्वशक्ति है ।

समय देशना

आचार्य प्रवर भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी समयसार जी ग्रन्थ में ध्रुव ज्ञायकस्वभावी भगवान्आत्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। त्रैकालिक टंकोत्कीर्ण परमपारिणामिक भावों से युक्त आत्म द्रव्य जगत् के सम्पूर्ण द्रव्यों से भिन्नत्वभूत है। वह भिन्नता अत्यन्त भावभूत है। चैतन्य द्रव्य भी अन्य चैतन्यों से अत्यन्त भिन्न है। मेरा आत्मद्रव्य परमात्मा के आत्मद्रव्य से अत्यन्त भिन्न है।

आत्मा जब परमात्मा से ही अत्यन्त भिन्न है फिर बहिरात्माओं से मेरा संबंध क्या ? अन्य अन्य आत्माओं से भी संबंध क्या ? मैं अपने द्रव्य को परमात्मा से भिन्न ही स्वीकारता हूँ। मैं परमात्मा की आराधना इसलिये नहीं करता हूँ कि मैं परमात्मा का अंश हूँ या फिर वे मुझे परमात्मा बनायेंगे। यदि मैं उनका अंश हो गया तो मेरी स्वतंत्रता का घात होता है। यदि वो मुझे परमात्मा बनाते हैं तो पर में मेरी कर्त्ता-बुद्धि आयेगी और जो मुझे परमात्मा बनाने आयेगा वह सच्चा परमात्मा ही नहीं होगा।

मैं परमात्मा को इसलिये नहीं पूजता हूँ कि वो मुझे परमात्मा बनायेंगे। मैं मात्र परमात्मा को इसलिये स्वीकारता हूँ कि वो हमारे शुभोपयोग के साधनभूत हैं, साध्य नहीं है और वह शुभोपयोग उपादान-दृष्टि से परमात्मा से प्रकट नहीं होता, उपादान-दृष्टि से मेरे परिणामों की ही विशुद्धि शुभोपयोग है, परमात्मा का होना इसमें साधन निमित्त कारण है। शुद्धोपयोग भी मेरी निज की ही दशा है, अशुद्धोपयोग भी मेरी निज की ही दशा है। त्रिविध परिणति परपरिणामों से नहीं हो रही है। त्रिविधि परणति निज परिणामी के निज परिणाम से हो रही है।

जो इस मान्यता को लिये बैठा है कि मेरे दो शरीर दिखते हैं पर मेरा इष्ट और मैं एक ही हूँ। कुछ अज्ञानी बोल पड़ते हैं कि मैं और मेरे मित्र, ये दो शरीर दिखते हैं पर मेरी आत्मा एक है। मैं और मेरे परमात्मा, ये दो शरीर दिखते हैं पर मेरी आत्मा एक है। मैं और मेरे गुरु; ये दो शरीर दिखते हैं पर मेरी आत्मा एक ही है। मैं और मेरी पत्नी के दो शरीर दिखते हैं, पर मेरी आत्मा एक ही है। ऐसी मान्यता जिसकी है वह बहिरात्मा जीव है। अनेक आत्माओं का एक शरीर तो हो सकता है, पर एक आत्मा के दो शरीर नहीं हो सकते। एक मरे तो अनन्त मरे, एक जीये तो अनन्त जीये, एक श्वास ले, तो अनन्त श्वास लें; साधारण वनस्पति। गोम्मटसार जीवकाण्ड से बोल रहा हूँ। एक ही शरीर को अनन्तजीव अपना देह बनाये हुये हैं, परन्तु एक आत्मा दो शरीर बनाकर रही हो ऐसा नहीं है। ये राग की तीव्रता का शब्द है कि मेरी आत्मा एक है और शरीर दो हैं। जिसके शब्दों में इतना राग टपक रहा है उसके भावों में कितना राग होगा? एक मात्र जैनदर्शन ऐसा है जो चैतन्य चैतन्य में भी अत्यन्ताभाव स्वीकारता है यानी प्रत्येक चैतन्य स्वतन्त्र ही है।

प्रत्येक जीवद्रव्य स्वतन्त्र ही है और प्रत्येक जीव की विभुत्वशक्ति प्रभुत्वशक्ति स्वतन्त्र ही है। इस आत्मीय आनन्द में कोई बँटवारा नहीं होता। मुमुक्षु ! पिता की सम्पत्ति का चार भाईयों में बँटवारा तो

हो सकता है। जिन सुख-सामग्रियों में बँटवारा होता है वे स्वाधीन होते नहीं और जिन सुख-सामग्रियों का बँटवारा होता है वे सुख का साक्षात् साधन होती नहीं। बहिर् सामग्रियों में बँटवारा हो सकता है और ऐसे सुख में जिसमें बँटवारा हो सकता है वह दुःखभूत है, यदि सुख ही प्राप्त करना है तो ज्ञानियो ! ऐसे सुख में लीन हो जाओ जिसे कोई बाँट ही नहीं सके। बाँट भी नहीं सकता कोई, बँटवा भी नहीं सकता कोई, पंचायत ही नहीं लग सकती। यहाँ तो आपने अपने बेटे को कम दिया तो पंचायत लग जायेगी, लोग कहेंगे कि और दीजिये, लेकिन इस जिन के सुख के भण्डार में तो कोई पंचायत भी नहीं लगती।

मित्र ! उसी सुख की आकांक्षा करो जिसको कोई बाँट भी नहीं सकता, छीन भी नहीं सकता, यहाँ तक कि कोई देख भी नहीं सकता, छीनेगा क्या। छिनता तब है जब दिखाई दे। जो किसी के दृष्टिगोचर ही नहीं है उसे छीनेगा कौन ? ऐसा सुखशक्तिस्वभावी भगवान् आत्मा है, निज विभुत्व-प्रभुत्व शक्तिस्वरूप भगवान् आत्मा है।

'विश्वविश्वसामान्यभावपरिणतात्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्वशक्तिः। विश्वविश्वविशेषभाव परिणामात्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्तिः। आत्मा की दर्शन-ज्ञान-शक्ति की व्याख्या आप कर चुके हो फिर यहाँ सर्वदर्शित्वशक्ति, सर्वज्ञत्व शक्ति अलग से क्यों ? दर्शनशक्ति और ज्ञानशक्ति में सामान्य क्षायोपशमिक ज्ञान की व्याख्या थी, वहाँ सर्वदर्शकत्व नहीं था, सर्वज्ञत्व नहीं था। वहाँ सिर्फ स्वदर्शनकत्व, स्वज्ञातत्व शक्ति की व्याख्या थी। ये सर्वदर्शित्वशक्ति, सर्वज्ञत्वशक्ति है।

ये उस स्नातक योगी के अन्दर उद्घाटित शक्ति है। स्नातक श्रमण-कैवल्य से युक्त दिगम्बर मुनि का नाम है स्नातक मुनि। पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ, स्नातक - ये पाँच प्रकार के मुनि हैं । श्रमण की चरम सीमा महामुनि; ये संज्ञा जो लगती है वह अर्हन्त मुनि के लगती है। महाभट्टारक, महामुनि, महाश्रमण, महायोगी ये सारे-के-सारे विशेषण किसके हैं ? अर्हन्त मुनि, स्नातक मुनि के। ये सामान्य मुनि के लिये विशेषण नहीं हैं । जो कैवल्य दर्शन, कैवल्य ज्ञान से युक्त हैं उनके विशेषण हैं। छद्मस्थों के ज्ञान और दर्शन क्रम से होगा। वहाँ ज्ञानशक्ति, चितिशक्ति, दर्शनशक्ति थी; वह छदमस्थ शक्ति थी। सर्वदर्शकत्व शक्ति; ये छद्मस्थ शक्ति नहीं है ये क्षायकदृष्टि है।

दंसणपुव्वं णाणं, छदुमत्थाणं ण दुण्णि उवओगा।
जुगवं जम्हा केवलि, णाहे जुगवं तु ते दोवि ।।44/द्र.सं.।।

छद्मस्थ जीवों के दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है। विषय-विषयी का सन्निपात दर्शन है, महासत्ता का अवलोकन दर्शन है, चिद्प्रकाश दर्शन है। छद्मस्थों के जब भी ज्ञान होगा तो पहले दर्शन होगा, लेकिन सर्वज्ञ के दर्शन और ज्ञान युगपत् होगा, न समय भेद होगा, न कारण-कार्य भेद होगा, पर छद्मस्थों के समय भेद भी है, कारण-कार्य भेद भी है।

दर्शन; ज्ञान का कारण होता है। बिन दर्शन के छद्मस्थों के ज्ञान होता ही नहीं है, पर यहाँ दर्शन से तात्पर्य सम्यक् दर्शन ग्रहण नहीं कर लेना, ये दर्शन-उपयोग का वर्णन चल रहा है। छद्मस्थ जीव जो भी जानेगा वह चक्षु, अचक्षु, अवधि; इन तीन दर्शनों से युक्त होकर ही जानेगा। केवली के मात्र, केवलदर्शन होता है यहाँ तक कि मनःपर्ययज्ञान भी होगा तो दर्शनपूर्वक ही होगा।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवलदर्शन है, पर मनःपर्यय कौनसा दर्शन है ? तो क्या मनःपर्यय में दर्शन होना चाहिये ? क्या बिना दर्शन के छद्मस्थों के ज्ञान होता है ? क्या छद्मस्थ जीवों के दो उपयोग युगपत् नहीं होते ? केवली के दो उपयोग युगपत् होते हैं । सिद्धसेन गणि 'सम्मइसुत्तं' (सन्मति सूत्र) नाम का जो ग्रन्थ है, इस ग्रन्थ की चर्चा आचार्य वीरसेन स्वामी ने धवला जी में की है। **जावदिया वयणवहा तावदिया चेव होंति णयवाया**। ये कारिका सिद्धसेन गणि के सम्मइसुत्तं की है। जैनन्याय पर, जैननय पर, जैनप्रमाण पर अगाध साहित्य है। प्रमाण पर जो लिखा गया है वह आचार्यों ने प्रज्ञा की छैनी पर कस करके अनन्त प्रमेयों को प्रमाण का विषय बनाया और व्याख्यान नय की शैली में किया। एक ओर मूल आगम ग्रन्थ बोल रहे हैं।

दंसणपुव्वं णाणं, छदुमत्थाणं ण दुण्णि उवओगा।
जुगवं जम्हा केवलि, णाहे हे जुगवं तु ते दो वि ॥44/द्र.सं.॥

छद्मस्थों के दो उपयोग युगपत् नहीं होते हैं और बिना दर्शन के ज्ञान नहीं होता। ज्ञानोपयोग के सामान्य से आठ भेद हैं। सम्यग्ज्ञान की अपेक्षा से पाँच भेद हैं, परन्तु दर्शनोपयोग के मात्र चार भेद हैं। बिना दर्शन के छद्मस्थों के ज्ञान कभी नहीं हो तो फिर आप बताइए मनःपर्यय ज्ञान में कौन-सा उपयोग होगा ? दर्शन मनःपर्यय नाम का कोई नहीं है, परन्तु कारण में कार्य की व्यवस्था भी आपके जिनागम में है।

मनःपर्ययज्ञान जब भी होगा वह मतिज्ञानपूर्वक होगा, मतिज्ञान जब भी होगा वह मनपूर्वक होगा। मनःपर्ययज्ञान संज्ञी के ही होता है। क्या बिना मतिज्ञान का आलंबन लिये संज्ञी प्राणियों के मनःपर्ययज्ञान हो सकता है ? **'तदिन्द्रियाऽनिन्द्रिय निमित्तम्'** ॥14/त.सू.। मतिज्ञान इन्द्रिय-अनिन्द्रिय के निमित्त से होता है। जो मन है वह जो भी चिन्तवन करेगा वह दर्शनपूर्वक करेगा कि सीधा करेगा, बिना दर्शन के ?

भो ज्ञानी ! मन में चक्षुदर्शन लगेगा क्या ? तो मन संबंधी मतिज्ञान में चक्षुदर्शन नहीं लगता है । मन संबंधी जो भी मतिज्ञान होगा, उससे जो चिन्तवन होगा वह अचक्षुदर्शन होगा, योगी पहले मन में विचार करेंगे, मनःपर्यय लगायेंगे तब उनके अचक्षु होगा। मनःपर्ययज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है। मतिज्ञान अचक्षुदर्शन पूर्वक होता है। कारण में कार्य के उपचार से मनःपर्ययज्ञान में अचक्षुदर्शन होता है। इसलिए मनःपर्ययज्ञान में अचक्षुदर्शन होता है। अब प्रश्न करो कि ये आपने घटित कर दिया है कि कोई प्रमाण है ?

श्रुतज्ञान भी जो हो रहा है वह ज्ञानी ! चक्षु-अचक्षु दर्शनपूर्वक ही होगा। परम्परा में भी चलेगा तब भी वहाँ दर्शन तो रहेगा-ही-रहेगा, अन्य कोई आलम्बन हो न हो, लेकिन बिना दर्शन के तो ज्ञान छद्मस्थों के होता ही नहीं। जो श्रुतपूर्वक श्रुत होता है उसकी भूमिका में दर्शन अपना काम करता है। देखो, ये जो आपने अचक्षुदर्शन की व्याख्या की है, मनःपर्यय ज्ञान में इसका कोई प्रमाण है कि यह निजी चिन्तवन है?

ज्ञानियो ! ये निजी चिन्तवन नहीं है **'दंसण पुव्वं णाणं'** इस गाथा की व्याख्या 'ब्रह्मदेवसूरि' ने वृहत् द्रव्यसंग्रह में जहाँ की है वहाँ पर इन्होंने बहुत अच्छे से समझा दिया। मित्र ! मनःपर्ययज्ञान में भी दर्शन होता है - अचक्षुदर्शन, पर चक्षुदर्शन मनःपर्यय ज्ञान में नहीं होगा। **'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'** और जो यहाँ व्याख्या चल रही है वह **'उपयोगो लक्षणं'** की चल रही है। ये सम्यक्-दर्शन-ज्ञान-चारित्र की व्याख्या है, **'दृष्टि मात्रं वा दर्शनं'** जो देखा वह दर्शन, परन्तु धातु की दृष्टि से दृश् धातु दृष्टि अर्थ में, लेकिन ऐसा प्रश्नकर्त्ता ने कहा कि दृश् धातु दर्शन अर्थ में है, पर जैनी यहाँ श्रद्धान अर्थ में क्यों कर रहे हैं ?

अरे भाई ! 'धातु नामानेकार्थः शब्दानामानेकार्थः' ऐसे ही। 'गम्' धातु गमन अर्थ में भी है, 'गम' ज्ञान अर्थ में भी है।

गो का रूढ़ि अर्थ गाय है। शब्द 'गो' को देखोगे तो गो का अर्थ गाय नहीं है। गो यानी गमन करने वाले प्राणी। जितने गमन करते हैं वे सब गाय हैं तो शब्द के तीन अर्थ हैं - यौगिक, रूढ़ि, योगिरूढ़ि। तो ये समभिरूढ़ नय से 'गो पशु' एक पशु विशेष पर गौ संज्ञा जोड़ी है। वास्तव में गौ का अर्थ पशुमात्र ही गौ है, प्रत्येक पशु गौ है और गमनमात्र को ग्रहण करोगे तो उसमें आप हम भी आते हैं। और जब हम जिनवाणी की ओर जायेंगे तो वहाँ गौ यानी वाणी। तो 'दृश्' धातु दर्शन के अर्थ में होने पर भी **'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः'** इस सूत्र की व्याख्या के काल में यहाँ पर मोक्षमार्ग का कथन है, इसलिये यहाँ पर दर्शन देखने के अर्थ में नहीं लिया। जो यहाँ व्याख्या कर रहा हूँ दर्शन की वह दर्शन सत्ता अर्थ वाला नहीं है, यह दर्शन विषय-विषयी का सन्निपात है, महासत्ता का ग्रहण। विषय-विषयी सन्निपात इति दर्शनं। तदन्तरं अवग्रह अवाय धारणा'। विषय-विषयी संनिपाते सतिं दर्शनं भवति। दर्शन पहले होता है फिर अवग्रह ईहा अवाय, धारणा अब देखो कैसे गहरे-गहरे विषय सब सामने आते हैं।

मित्र ! कभी-कभी न्याय के विषय को न्याय करके समझना चाहिये। यदि न्याय के विषय का न्याय नहीं करोगे तो अन्याय हो जायेगा। न्याय कैसा ? सन्निकर्ष, सन्निपात। स्पर्श किया, ये सन्निकर्ष हो गया। हम लोग विषय-विषयी के सन्निपात को दर्शन कहते हैं। भारत में एक ऐसा दर्शन है जो सन्निकर्ष को प्रमाण कहता है और यदि मैं सन्निकर्ष को प्रमाण मानता हूँ तो सर्वज्ञत्व शक्ति और सर्वज्ञायकत्व शक्ति; इन दोनों का लोप होता है। यदि न्याय का बोध न होता तो आज ये विषय खुल नहीं सकता।

स्पृष्ट, अस्पृष्ट; जब मतिज्ञान के भेद करोगे तो कैसे करोगे, 288 भेद करोगे तो कैसे करोगे ? तत्त्वार्थ सूत्र को आप क्या न्याय शास्त्र नहीं मानते हो ? जैनदर्शन के न्याय का विस्तार तो तत्त्वार्थ सूत्र के पहले अध्याय के छठे सूत्र से मिलता है **'प्रमाणनयैरधिगमः'** श्रोतृ; स्पृष्ट शब्द को सुनता है, नेत्र; अस्पृष्ट रूप को ही देखता है तथा घ्राण, रसना और स्पर्शन इन्द्रियाँ क्रम से स्पृष्ट गन्ध, रस और स्पर्श को ही जानती हैं। स्पृष्ट इन्द्रियाँ, अस्पृष्ट इन्द्रियाँ; कुछ इन्द्रियाँ प्राप्यकारी अप्राप्यकारी। नेत्र अप्राप्यकारी है, प्राप्यकारी नहीं है। प्राप्यकारी से तात्पर्य - ये पेन्सिल कठोर है, स्पर्श करके जाना, प्राप्यकारी स्पर्शन इन्द्रिय। इसका वर्ण लाल है तो ये पहले आँखों में ले जाऊँ, फिर तो अग्नि के अंगारे को आँखों में स्पर्श कराना पड़ेगा तब तुम जान पाओगे, तब-तक आँखें बचेंगी कि नहीं बचेंगी ? अप्राप्यकारी है चक्षु इन्द्रिय । शेष इन्द्रियाँ प्राप्यकारी भी हैं, अप्राप्यकारी भी हैं। मित्र ! चक्रवर्ती कितनी दूरी की आवाज सुन लेता है ?, 12 योजन दूर की ध्वनि को चक्रवर्ती सुन लेता है।

संभिन्न श्रोतृत्व ऋद्धि से युक्त महामुनिराज। चक्रवर्ती का कटक (सेना) बोल रहा है अनेक विभिन्न भाषाओं में फिर भी मुनिराज एक साथ सुनकर के बता देंगे कि किस व्यक्ति ने क्या कहा। सन्निकर्ष प्रमाण; कहीं ऐसा न हो जाये, मित्र ! कभी एकान्त में बैठकर न्याय मत पढ़ना। एक बार एक मुनिराज ने भगवान् के चरण स्पर्श कर लिये तो एक विद्वान् ने उनको कह दिया - मिथ्यादृष्टि यानी स्पर्श कर लिया तो सन्निकर्ष हो गया।

मित्र ! न्याय के विषय को सम्यक् दर्शन में लगा डाला, जबकि हम चर्मस्पर्श को चरणस्पर्श मानते हैं, स्पर्श इन्द्रिय का विषय मानते हैं न कि सन्निकर्ष प्रमाण मानते हैं। 2006 में गोम्मटेश में मस्तिकाभिषेक हुआ। जब हमारा प्रवेश हुआ तो वहाँ महाराजों ने प्रश्न किया कि 'चरण छूना मिथ्यात्व है कि सम्यक्त्व ? इसके साथ एक शब्द और बोल दिया कि माता-पिता के चरण छूना सम्यक्त्व है कि मिथ्यात्व ? पर ऐसा कुछ नियोग था उस समय संघ में , 'आप्त मीमांसा' का स्वाध्याय चल रहा था तो जैसे ही प्रश्न हुआ तो वहाँ बुद्धि स्पर्शित हो गई कि ये सामान्य विषय नहीं है, सामान्य प्रश्न के रूप में रखा जरूर जा रहा है ।

मैंने कहा – माता-पिता के चरण स्पर्श करना न सम्यक्त्व, न मिथ्यात्व। अब श्रावकों की बात तो छोड़ो, 250 पिच्छियाँ देखने लगी। मैंने कहा – सम्यक्त्व इसलिए नहीं है कि वे देवशास्त्र गुरु नहीं हैं और मिथ्यात्व इसलिए नहीं है कि वे कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु भी नहीं हैं, तो फिर क्या है ? लोकाचार, लोक-धर्म, लोक व्यवहार, पर व्यवहारधर्म नहीं है। मित्र ! अभी तू व्यवहारधर्म में नहीं है। क्या बताऊँ, आप जैसे लोग निश्चय-व्यवहार पर सन्निकर्ष कर रहे हैं । जबकि निश्चय तो छोड़िए आपके पास व्यवहारधर्म ही नहीं है।

हे मुमुक्षु ! आत्मा ज्ञानस्वरूप है; उसमें अनन्त धर्म हैं, इसलिए वह आत्मा अनेकान्तमूर्ति है। उस अनेकान्तमूर्ति भगवानात्मा के धर्मों में यहाँ सम्पूर्ण विश्व के सामान्य भाव को देखने रूप परिणमित हुए ऐसे आत्मदर्शनमयी **'सर्वदर्शित्व शक्ति'** है। पूर्व में 'दृशि' शक्ति का व्याख्यान कर चुके हैं , वहाँ तो 'अनाकार उपयोगमयी दृशि शक्ति है' ऐसा सामान्य वर्णन था अब 'सर्वदर्शित्व शक्ति' कहकर दर्शन के परिपूर्ण सामर्थ्य का विशेष वर्णन किया है। सम्पूर्ण पदार्थों के समूहरूप लोकालोक को सत्ता मात्र देखे; ऐसी अलौकिक सर्वदर्शित्व शक्ति है।

ज्ञानियो ! वस्तुव्यवस्था परिपूर्ण व्यवस्थित है, परन्तु अज्ञानी जीव व्यर्थ में ही कर्तापन स्वयं पर स्वीकार करके दुःखित होता है। **आत्मा में लोक-अलोक को देखनेरूप शक्ति है, जाननेरूप शक्ति है, परन्तु उसमें पर-पदार्थों को अपनेरूप करने की अथवा उन पदार्थों में फेरबदल करने की शक्ति किंचित् मात्र भी नहीं है।** जैसे नेत्र पर-पदार्थों को देखते हैं, परन्तु वह किसी भी द्रव्य में परिवर्तन नहीं करते हैं। ठीक वैसे ही आत्मा के दर्शन-ज्ञानरूपी नेत्र हैं, उनका स्वभाव सकल पदार्थों को देखने-जानने का है, परन्तु उनमें वह आत्मा किंचित् भी फेरफार नहीं करती है।

सर्वदर्शित्वपना अर्थात् केवलदर्शन; उस केवलदर्शनरूप परिणमित होने की शक्ति यदि मुझमें न हो तो केवलदर्शन का व्यक्त परिणमन कहाँ से होगा ? ज्ञानियो ! सर्वदर्शित्व शक्ति आत्मदर्शनमयी है।

हे मुमुक्षु ! भगवान् में जैसे सर्वज्ञता एवं सर्वदर्शिता की शक्ति है वैसी ही शक्ति तुम्हारे अंदर विद्यमान है, मात्र प्रकट करने रूप पुरुषार्थ की आवश्यकता है। जिन का जब-तक भान ही नहीं होगा तब-तक प्राप्त कैसे कर पायेगा, इसलिए अपने स्वस्वभाव पर दृष्टिपात कर, अपने स्वस्वरूप को निहार तभी शाश्वत सुख को प्राप्त कर पायेगा।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

10

सर्वज्ञत्वशक्तिः

‘विश्वविश्वविशेषभावपरिणामात्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्तिः’

समस्त विश्व के विशेष भावों को जाननेरूप से परिणमित ऐसे आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्ति है।

सम्पूर्ण विश्व के विशेष भावों को जाननेरूप परिणमित ऐसे आत्मज्ञानमयी ‘सर्वज्ञत्वशक्ति’ है। सबको विशेषरूप से जाने; ऐसी आत्मा की ‘सर्वज्ञत्वशक्ति’ है। यह शक्ति निकटवर्ती अथवा दूरवर्ती, भूत-वर्तमान तथा भविष्य के सम्पूर्ण पदार्थों को एक समय में जानती है।

समय देशना

अमृतचन्द्र स्वामी ने 47 शक्तियों के अन्तर्गत सर्वज्ञत्व और सर्वदर्शकत्व शक्ति का व्याख्यान पूर्व में किया। सम्पूर्ण विश्व के चराचर द्रव्यों को युगपत् जानने की क्षमता यदि किसी में है, तो सर्वज्ञ में है। परमात्मा के ज्ञान में अलौकिक सामर्थ्य है, जहाँ सम्पूर्ण ज्ञेय हस्तकमलवत्, जैसे हाथ पर रखा हुआ कमल दृष्टिगोचर होता है ऐसे ही विश्व का कोई भी ऐसा प्रमेय नहीं है जो सर्वज्ञ के ज्ञान का ज्ञेय न बनता हो। कितनी सामर्थ्य उस जीव ने प्राप्त की है ?

एक श्लोक के याद होने पर जीव अत्यन्त हर्षित होता है। जिस जीव को सारे जगत् के लोकालोक के ज्ञेय ज्ञान में आ रहे हों उस आत्मा के आनन्द का क्या कहना ? इस जीव को जब-तक कैवल्य प्रकट नहीं हुआ तब-तक सम्पूर्ण शक्तियाँ शक्तिरूप हैं। **जो क्षायिक गुण संबंधी शक्तियाँ हैं वो आत्मा में शक्तिरूप हैं और क्षयोपशमजन्य शक्तियाँ हैं वे अभिव्यक्तिरूप हैं, पर शक्तियों का अभाव नहीं है।** जब-तक कैवल्यज्ञान नहीं हुआ तब-तक छद्मस्थ आत्मा में जो सर्वज्ञत्व शक्ति है वह ऐसे ही है जैसे 8 वर्ष की बालिका, माता है। वह उदयभूत माँ नहीं है, शक्तिभूत माँ है, क्योंकि वही कन्या अपनी अवस्था में आयेगी, तो माँ बन जायेगी।

ऐसे ही ये आत्मा जब अपनी अवस्था में आयेगी तो यही आत्मा परमात्मा अर्हन्त बनेगी। उस योगी को निहारो जो ध्यानस्थ है, सारे विकल्प को शून्य करके देखना। धन्य है उस योगी को, चल रहा है चारित्र का परिणमन, उत्पन्न हो रहा है क्षायिकज्ञान। ये चारित्र गुण की महिमा है। क्षायिकज्ञान, ज्ञान के प्रभाव से कभी उत्पन्न नहीं हो सकता, क्षायिकज्ञान सम्यक् मात्र के प्रभाव से कभी उत्पन्न नहीं हो सकता। क्षायिकज्ञान जब भी प्रकट होगा तो ज्ञानी यथाख्यात चारित्र की सत्ता में ही होगा।

सर्वज्ञत्व शक्ति का उद्घाटन 13 वें गुणस्थान में होता है और 13 वें गुणस्थान में यथाख्यात संयम है वह भी सामान्य यथाख्यात नहीं है, परम यथाख्यात है। विश्व ज्ञायकत्व विराट् ज्ञान कभी अध्ययन करके उत्पन्न नहीं किया जा सकता। ज्ञानियो ! श्रेष्ठ और उत्कृष्ठ ज्ञान अध्ययन करके प्राप्त नहीं किया जा सकता। भैया ! बड़ी प्रीतिपूर्वक कह रहा हूँ आप से, द्वादशांग का ज्ञान भी अध्ययन करके प्राप्त नहीं किया जा सकता। द्वादशांग का ज्ञान इस मनुष्य पर्याय में मुनि बनकर अध्ययन करके प्रकट नहीं किया जा सकता। सम्पूर्ण द्वादशांग को इन आँखों से आलोडित (मंथन) नहीं किया जा सकता। जो श्रुतकेवली भगवन्त हैं, जो द्वादशांग के ज्ञाता हैं वे मुनिभगवन्त होते हैं। श्रुत का ज्ञान तो सर्वार्थसिद्धि के देवों को भी होता है, पर वे श्रुतकेवली नहीं होते, श्रुतकेवली संज्ञा मुनि को ही लगेगी।

लौकान्तिक देव भी श्रुत का ज्ञाता होता है, लेकिन कैवल्य संज्ञा चतुर्थ गुणस्थान में भी नहीं लगेगी, श्रुतकेवली संज्ञा चतुर्थ गुणस्थान में भी नहीं लगेगी। श्रुतकेवली संज्ञा तो छठे सातवें गुणस्थान से

ही प्रारंभ होगी यद्यपि जिनेन्द्र 'वर्णी' ने सिद्धि करनी चाही इस विषय की चतुर्थ गुणस्थान में। श्रुत-केवली आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने समयसार गाथा नं. 9, 10 में स्पष्ट कहा है –

जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा।।9।।
जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सव्वं जह्मा सुदकेवली तम्हा।।10।।

इन गाथा को लेकर कथन किया तो उन्होंने स्पष्ट कर दिया। जैसा शुक्ल-ध्यानपूर्वक आत्मधर्म की लीनता अभेद रत्नत्रय में होती है पूर्व में, वैसा वर्तमान में दिखाई देता नहीं और निश्चय श्रुत यानी अभेद रत्नत्रय, श्रुत की अखण्ड धारा जो है वह सातवें गुणस्थान से ही घटित होती है इसके पहले घटित नहीं होती है। तात्पर्य समझना, पञ्चपरमेष्ठी भी यदि हमारे ज्ञान के ज्ञेय बन रहे हैं तो अखण्ड श्रुत नहीं है, परमात्मा मेरे ज्ञान में आ रहे हैं, वह ज्ञान अखण्डित नहीं है, खण्डित है।

महाराज जी ! श्रुत भी खण्डित होता है क्या ? हाँ, श्रुत खण्डित होता है, अखण्डित होता है। यदि मेरे जीवन में अनन्त पर्यायों में एक बार अखण्डित श्रुत हो गया होता तो विश्वास रखना, पञ्चम काल के काले-कलूटे काल में नहीं आने को मिलता। अखण्डित श्रुत नहीं हो सकता, मित्र ! तुम अच्छे से आराधना करने भी जाओ तो लोग कहते हैं कि ये अहंकार कर रहा है। भगवान् सोमदेव सूरि ने एक बात कही कि **चतुर्थ काल का श्रमण एक हजार वर्ष तक तपस्या करे उतने ही कर्म की निर्जरा पञ्चम काल का श्रमण एक वर्ष तक तपस्या करे तो कर सकता है।** इसका रहस्य मेरी समझ में आ गया। चतुर्थ काल में सहज-साधन, स्वयं के परिणामों की अल्पता, विघ्न करने वाले लोगों की अल्पता और साक्षात् केवली श्रुतकेवली के पादमूल की उपलब्धि, धर्म का प्रत्यक्ष फल देवादि का आगमन – ये सब दिखाई देता था, तो उस युग में कोई समता से बैठ ले, बहुत कठिन नहीं था। यहाँ ये सब विषमता-ही-विषमता फिर भी अपने आपको सँभाल कर रख ले, इसलिये कर्म की निर्जरा अधिक होती है। अखण्ड श्रुत की धारा से तात्पर्य; एक क्षण को कषाय चतुष्क में से संज्वलन के अलावा अन्य किसी का उदय आ गया, अखण्ड श्रुत की धारा मात्र संज्वलन कषाय के मन्द उदय में ही होगी। (करणानुयोग)। संज्वलन कषाय के तीव्र उदय में अखंड श्रुत नहीं बचेगा, खण्डित ही होगा।

मात्र भाषाशैली का अन्तर है विषय वही है जो होता है। तात्पर्य क्या हुआ ? संज्वलन के तीव्र उदय में कभी सातवाँ गुणस्थान नहीं बनता, चितकबरा गुणस्थान ही बनता है और चितकबरे गुणस्थान से तात्पर्य कपोतवत् कबूतर के समान जो परिणाम चितकबरे हैं उसका नाम है प्रमत्त गुणस्थान छठा गुणस्थान। जहाँ 15 प्रमादों में से कोई न कोई प्रमाद घेरे रहता है उस गुणस्थान का नाम छठा गुणस्थान है। इस गुणस्थान में उत्कृष्ट पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है। तब वह पुरुष सातवें गुणस्थान में प्रवेश

करता है। दीक्षा के समय मुनि सीधा सातवें गुणस्थान में प्रवेश करता है, लेकिन छठे में आकर के पुनः सप्तम की प्राप्ति के लिये इस योगी को विपुल पुरुषार्थ की आवश्यकता है।

सर्वज्ञत्व शक्ति की व्याख्या कर रहे हैं। उसको उद्घाटित करने का बीज कहाँ से प्रारंभ होता है। छठे गुणस्थान में चारों संज्ञायें जाग्रत हैं। उन चारों संज्ञाओं के लिये बुद्धिपूर्वक नियंत्रित रखने का पहला पुरुषार्थ आहार हो ही रहा है छठे गुणस्थान में, विहार हो रहा है, भय भी सता रहा है, सभी संज्ञायें विद्यमान हैं, एक भी संज्ञा का अभाव छठे गुणस्थान में नहीं होता पर उस छठे गुणस्थान में संज्ञाओं के अभाव न होने पर भी संज्ञाओं की प्रवृत्ति नहीं करता; ये योगी का परम पुरुषार्थ है। जिसने नींव भरकर भवन खड़ा किया हो उसकी पीठ ठोकनी चाहिये। जिसको ऊपर की मंजिल मिली है उसके ऊपर एक और मंजिल खड़ी कर दे वह उतना ठीक है। अब छठे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान का शिखर खड़ा करना है। श्रमणो! ये हँसी-मजाक का मार्ग नहीं है। जिसे आप मात्र आहार, विहार, निहार में पूर्ण कर रहे हो; आहार, विहार, निहार के काल में भी निज का निहारना बन्द न हो जिसका, उसका नाम सच्चा श्रमण है। तब उस योगी के आहार लेते-लेते भी, कोई छद्मस्थ जहाँ भोजन कर रहा है, वे योगी एषणा समिति का पालन करके कर्म की निर्जरा कर रहे हैं।

अज्ञानी देखता है कि महाराज मलमूत्र क्षेपण कर रहे हैं, पर ज्ञानी देख रहा है कि ये उत्सर्ग समिति का पालन कर रहे हैं, प्रतिष्ठापन समिति का पालन कर रहे हैं। अज्ञानी देख रहा है कि वे चल रहे हैं, पर वे तो ईर्या समिति का पालन कर रहे हैं। अज्ञानी कह रहा है कि वे बोल रहे हैं एक घण्टे से पर वो तो भाषा समिति का पालन कर रहे हैं। समितियाँ पलायन कर गयीं तो मित्र! विश्वास रखना, तुम्हारे महाव्रत काम में नहीं आयेंगे, महाव्रत की रक्षा के लिये ही समितियाँ हैं।

ये भूल मत कर लेना कभी, यदि मुख में कफ आ जाये यदि अंदर गुटकते हो तो महापापी, अभक्ष्य खा रहे हो और खड़े होकर कहीं भी थूक दिया तो आपकी प्रतिष्ठापन समिति का क्या होगा? आपको तो जमीन देखकर मार्जन करके उसको बाहर करना पड़ेगा। मेरा आपसे प्रश्न है, मित्र। आप पूजा कर रहे थे और पूजा करते समय खँखार आ गई तो मित्र! क्या करोगे? यदि अन्दर ले जाते हो तो आपके 12 व्रतों का पालन नहीं हो रहा है, क्योंकि खँखार आदि श्लेष्मा ये सब अनुपसेव्य हैं और अनुपसेव्य का आपने सेवन कर लिया है तो अभक्ष्यसेवी का शेष व्रत का कहाँ पालन है।

अब छठे गुणस्थान में विराजते श्रमण, वह भी छठा गुणस्थान कब कहलायेगा? प्रवृत्तिमूलक की बात करो तो जब आप मूलगुणों का निर्दोष पालन कर रहे होंगे तब और करणानुयोग की दृष्टि से देखोगे तो अनन्तानुबन्धी, प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान; इन सर्वघाती प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय, इन्हीं का सदवस्थारूप उपशम और देशघाती प्रकृति संज्वलन के तीव्र उदय होने पर जो जीव के परिणामों की दशा है इसका नाम छठा गुणस्थान है। इन्हीं प्रकृति के छठे गुणस्थान जैसा होने पर मात्र संज्वलन के भेद उदय होने

पर जो जीव के परिणाम होंगे उसका नाम है अप्रमत्त गुणस्थान। अब यदि तुमने बुद्धिपूर्वक चिन्तवन नहीं किया कि मेरे व्रतों का निर्दोष पालन है कि नहीं, मेरी कषाय में मन्दता आ रही कि नहीं, मेरे परिणामों में भद्रता आ रही कि नहीं, मेरे परिणामों में भद्रता आयेगी कि नहीं ? यहाँ निमित्तों को नहीं खड़ा किया जायेगा। जो निमित्तों का नाश करके मुनि बनना चाहता है वह अज्ञानी तीन काल में मुनि बन नहीं सकता।

विश्व में पञ्चेन्द्रिय विषयों की कमी किसी भी क्षेत्र में नहीं है। प्रदेश-प्रदेश पर वैराग्य के हेतु हैं, तो प्रदेश-प्रदेश पर राग के हेतु हैं पर राग और वैराग्य परनिमित्तों में नहीं है, राग-वैराग्य तेरी दृष्टि का है। एक स्त्री को भगिनी कहकर पुकार रहा है, एक पत्नि कहकर पुकार रहा है, स्त्री तो एक है, पत्नि कह रहा है सो अब्रह्म में जा रहा है, भगिनी कह रहा है सो ज्ञानी ब्रह्मदृष्टि है। इसलिये ये किञ्चित् भी मत विचारना कि मैं निमित्तों का लोप कर दूँगा फिर मैं निर्ग्रन्थ मुनि बनूँगा।

ये आँख फोड़ने वाला दर्शन नहीं है। ये आँख खोलकरके आँख से परिपूर्ण नहीं देखने वाला दर्शन है। यदि आँख फोड़कर संयम पलता होता तो विश्व में जितने अंधे होंगे वे सभी ब्रह्मचारी हो जायेंगे। एक गाँव में एक पुरुष स्त्री दोनों अंधे थे, पर दोनों भीख मांगते रहते थे और एक दूसरे का हाथ पकड़कर चलते थे परन्तु दाम्पत्य धर्म का लोप नहीं किया उन्होंने, जो भीख मांग रही है माँ जिसको कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा है, वह भी बच्चे को आँचल पान करा रही थी। इसलिये गरीबी, इन्द्रियों का विकलपना; ये संयम का हेतु नहीं है। **इन्द्रियों का सशक्तपना होने पर भी जिसके चित्त में अनासक्ति है उसका नाम संयम है।** इसलिये जो श्रमण दीक्षा को प्राप्त हो चुके हैं उन्हें निहारना है अपने में कि मुझे देखकर के ये श्रावक मुनि-धर्म की पूजा का आनन्द लूट रहे हैं, मुझे देखकर मुनि की वैयावृत्ति करके कर्मों की निर्जरा कर रहे हैं ।

हे मुनिराज ! वैसी अनुभूति आप अपने मुनिपने की ले पा रहे हो कि नहीं ले पा रहे हो ? कहीं चन्दन के वृक्ष की सुगन्ध तो नहीं है, उस स्पर्शन इन्द्रिय मात्र का अनुभावक चन्दन वृक्ष सुगन्धमय सर्वांग जिसका है परन्तु अपनी सुगन्ध का किञ्चित् भी वेदन नहीं कर पाता, क्योंकि घ्राण इन्द्रिय नहीं है ऐसे ही हे मुनि ! तेरी दिगम्बर मुद्रा को चन्दन की सुगन्ध जैसे ये श्रावकगण तो नयनों से निहार-निहार करके आनन्द लूट रहे हैं और कहीं तुम्हारे अन्दर उपशम भाव की घ्राणेन्द्रिय का अभाव हो गया तो चन्दन के वृक्ष के समान तुम्हें निज की सुगन्ध किञ्चित् मात्र भी नहीं आयेगी। जगत् को व्यवस्थित करने में जीवन बर्बाद हो जाये, मैंने समाज को सुधारने का कोई संकल्प लेकर नहीं रखा कि पूरी समाज को सुधार कर रखूँगा। ये तो मेरी निज की समिति-गुप्ति के पालन के लिये मुनि दशा है और स्वाध्याय जो चल रहा है ये स्वयं की परिणति की निर्मलता के लिये है। इससे किसी श्रावक का अच्छा हो रहा है, होने दो।

यदि यही विकल्प आ गया कि मैं स्वाध्याय कराऊँगा और कहीं उस स्थान पर दूसरे सागर कराने लग गये तो तुम्हारे भाव बिगड़ जायेंगे फिर मालूम चलेगा कि बिना द्वन्द का जीवन भी जो निर्द्वन्द जीवन था उसमें द्वन्द छिड़ गया। दो साधु गुरु ने भेजे थे, वे एक-एक हो गये। किस बात पर ? भोजन तो श्रावक

दे रहे थे, रहने को भवन भी दे रहे हैं। ये सारी सेवा समाज कर रही थी, फिर तुम दोनों अलग क्यों हो गये, ये द्वन्द क्यों छिड़ गया ? निर्द्वन्द स्वभावी योगी मुनि का लक्षण सम्पूर्ण द्वन्दों से विमुक्त है। ये व्याख्या आदि भी मुनि का मूल धर्म नहीं है; आचार्य, उपाध्याय का काम है और मुख्यता है उपाध्याय परमेष्ठी की। सम्पूर्ण व्याख्या आदि के द्वन्दों से विमुक्त, जो मौन जीवन जी रहे हैं इसका नाम सच्चा यति है, मुनि है। इसलिये छठे गुणस्थान में पल-पल में समाधि की आवश्यकता है। यदि छठे गुणस्थान से ऊपर नहीं उठ पा रहा है तो छठा गुणस्थान भी नहीं है।

ज्ञानी ! ग्रन्थों में कैसे गूढ़ रहस्य भरे हैं और हम लोगों ने क्या है निर्ग्रन्थों को देखा, निर्ग्रन्थों के ग्रन्थों को देखा, नहीं तो निर्ग्रन्थ का असली रूप भी हम भूल जाते। साँचे निर्ग्रन्थ की परिभाषा करते हुये जब एक दिगम्बर मुनि को यहाँ भगवान् कहा जा रहा है, जो सर्वज्ञशक्ति से सम्पन्न हैं वे ही भगवान् हैं। जो मुनि भगवान् नहीं बन पाये वो सर्वज्ञशक्ति वाले भगवान् कभी नहीं बन सकते। हे श्रमणो ! श्रावक से भूल हो सकती है क्योंकि वे श्रावक हैं, लेकिन आपकी भाषा में भूल नहीं होना चाहिए, आप मुनि हो। श्रावक से चूक हो सकती है वो बेचारा नाना द्वन्दों में फँसा हुआ है, लेकिन आपसे चूक नहीं होना चाहिये क्योंकि आप निर्द्वन्द हो। नाना विकल्पों के आने से भाषा बिगड़ सकती है, हे निर्ग्रन्थ ! आप नाना विकल्प लेकर बैठे क्यों हो जिससे तुम्हारी भाषा बिगड़े।

हे मित्र ! कभी भी मुनि बनने के भाव आयें तो इस वाचना का स्मरण कर लेना। इसलिये मैं आपको बार-बार ज्ञानी कहता हूँ और इन श्रमणों को भगवान् और धरती के देवता कहता हूँ। हे श्रमणो ! **भिक्खं वक्कं** इन दो पर ही जोर क्यों ? रहस्य है, मेरे सामने जो भीड़ आती है वह दो समय ही आत है। ब्रह्माण्ड में एक समय तो सारे सम्प्रदायों में भीड़ आ सकती है पर दो समय भीड़ आना, ये बड़ा रहस्य है। जैनदर्शन में साधुओं के पास दो समय भीड़ आना, ये बड़ा रहस्य है। जैनदर्शन में साधुओं के पास दो समय भीड़ आती है। जगत् में किसी सम्प्रदाय के साधु को भो स्वामी ! नमोऽस्तु तीन बार पुकार करके, तीन प्रदक्षिणा लगाकरके, 8 द्रव्य से पूजा नहीं होती है, एक मात्र दिगम्बर सम्प्रदाय में होती है और उस समय मुनि की आहारचर्या के समय पञ्चाश्चर्य होते हैं। शेष साधना के काल में पञ्चाश्चर्य नहीं होते। क्या योगी के अन्तरंग की विशुद्धि और क्या दाता के परिणामों की विशुद्धि ? जब चकमक की दो बटैया आपस में घिसते हैं तो बीच में रुई में ज्योति उत्पन्न हो जाती है ऐसे ही जब दो विशुद्धियाँ टकराती हैं तो पञ्चाश्चर्य होने लगते हैं और यदि उस समय कहे कि हूँ-हूँ, भूत जैसे हूँकने लग गये तो ज्ञानी ! कहीं का लोटा, कहीं की थाली होती है, वहाँ रत्न कहाँ, वहाँ तो पत्थर ही बरसेंगे। आहार के समय और प्रवचन के समय भीड़ आती है, यहीं तुम्हारी वृत्ति देखी जाती है। प्रवचन के काल में जीवों को सम्यक् उत्पत्ति होती है तो दिगम्बर मुनि के आहार के काल में भी जीव को सम्यक् उत्पत्ति होती है। ये जो प्रवचन हैं, ये वचन के प्रवचन चल रहे हैं, चर्या के समय अन्तरंग के प्रवचन चल रहे हैं **'मोक्षमार्गमवाग्विसर्गं वपुषा**

निरूपयन्तं' । जिन निर्ग्रन्थों ने वचन का कर दिया उनका शरीर ही मोक्षमार्ग का उपदेश देता है - ऐसा सर्वार्थ सिद्धि ग्रन्थ में भगवन् पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है साधु की भिक्षावृत्ति और वचनप्रवृत्ति; ये दोनों मुख से होती है। अम्मा, अक्का। देखो, जो अम्मा में आनन्द है वह मम्मी मम्मी में नहीं है। अम्मा में पूरा कण्ठ खुल रहा है। सुन बिल्ली अपने बच्चे को उठाती है तो कौन से हाथ से उठाती है ? मुख से, तब बिल्ली क्या होती है ? अम्मा। ये आज के लोग क्या समझते हैं कि अम्मा तो देहाती शब्द है, जबकि अम्मा देहाती शब्द नहीं है, ये संस्कृत भाषा है। जब बिल्ली मुख से बच्चे को उठाती है तो माँ होती है और वही बिल्ली जब मुख से चूहे को उठाती है तब क्या होती है ? डायन होती है। उसका मातृधर्म कहाँ विलीन हो जाता है ? क्षणमात्र में हत्यारिन हो जाती है। ऐसे ही हे मुनि ! जब तुम्हारे मुख से भाषासमिति निकलती है तब तुम भगवान् होते हो, जब तुम्हारी भाषासमिति टूटती है तब अघवान होते हो। **'चिदानन्दरूपं नमो वीतरागं'**। इसलिये हे योगी ! नदियों के पुल टूट जायें, बाँध टूट जायें लेकिन दिगम्बर मुनि की भाषासमिति का बाँध न टूटे। यदि भाषासमिति का बाँध टूट गया, मित्र ! यदि बाँध टूटेगा तो नगर उजड़ेगा पर भाषासमिति का बाँध टूट गया तो पता नहीं कितने श्रद्धाओं के नगर उजड़ेंगे। परस्पर में भी मित्र ! वात्सल्यमयी भाषा का प्रयोग करना। जैसे अपरिचित पुरुष से भाषा अच्छी बोलते हो ऐसे ही साधुओं को सबसे अपरिचित होकर ही बोलना चाहिये – मृदु, मधुर, गम्भीर और मोक्षमार्ग उपदेशक। वाणी मृदु हो, मधुर हो और गम्भीर हो, उसमें मोक्षमार्ग का उपदेश हो, शेषकाल में मौन। जहाँ तक बने मुनियों के लिये आदेश है कि वे सामान्य मुनियों से भी मौन रहें, असाधुओं से तो मौन ही रहना, बोलने का ही नहीं, मात्र आचार्य से बात करो और आचार्य के लिये आदेश है मात्र व्रतियों से बात करें, विशेष कोई आवश्यकता पड़ जाए सामान्य श्रावक से तो धर्म और संघ की दृष्टि से उतनी बात कह कर तुरन्त भूल जायें।

मित्र ! पीत लेश्या के जघन्य परिणामों में भी; मध्यम अंश, उत्कृष्ट अंश की बात तो छोड़िये, जब पीत लेश्या के परिणाम जीव के होते हैं तब देवशास्त्रगुरु की भक्ति, पञ्चपरमेष्ठी की आराधना के परिणाम जीव के पीत लेश्या में ही होते हैं। आचार्यों के प्रति दृढ़ आस्था पीत लेश्या में ही होगी। कहाँ से बोल रहा हूँ ? गोम्मटसार जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, पञ्चसंग्रह; ये प्राकृत और संस्कृत दोनों भाषाओं में हैं। बड़े अलौकिक ग्रन्थ हैं। जो साधु शोधन करके चलता है, वचन को शोधन करके बोलता है, भोजन को शोधन करके करता है ऐसा साधु जिनेन्द्र के शासन में भगवान् कहलाता है। भैया ! लतायें चढ़ गईं, लोहे के गर्म आभूषण पहना दिये, सिगड़ी रख दी, तन में आग लगा दी, लेकिन जिनकी भाषा में आग न लगी, जिनके मुख की भाषा में अशुद्धि की आग न लगी वे निर्ग्रन्थ तपोधन वन्दनीय हैं और जहाँ आग लगी उसको भी सुन लो। दण्डकराजा ने 500 मुनियों को घानी में पेल दिया, शरीर चूर-चूर हो गया, हड्डियाँ चरमरा गईं पर उनकी समता में चरमराहट नहीं आई **'तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु**

महोत्सव भारी'। अभिनन्दन आदि 500 मुनियों को घानी में पेल दिया। वह तो राजा अहंकार में डूबा था उसको ज्ञान का मद था, मुनियों से शास्त्रार्थ करने जा रहा था और जैसे ही आचार्य परमेष्ठी के सामने हाथी से उतरा उसकी पूरी बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई।

भैया ! मैं तो यथार्थ बता रहा हूँ आपको, मैं तो अपने गुरु महाराज के पास भी जाता हूँ बहुत समय तक उनके कमरे में रुकता ही नहीं हूँ। मैं तो आचार्यवन्दना के समय जाता हूँ, स्वाध्याय के समय जाता हूँ, प्रायश्चित्त लेना हो उस समय जाता हूँ, शेष काल में जो उन्होंने कक्ष बताया कि वहाँ रहना है, वहाँ रहता हूँ, शेष मुनियों के कमरों में तो मैं जाता ही नहीं हूँ, इन मुनियों से पूछ लो। हाँ, कहीं जानकारी लेना हो, कदाचित् हो क्या रहा है, तो अचानक छापा डालता हूँ। अपना स्थान ही शोभा देता है, इसलिये अधिक जाने की आवश्यकता नहीं है। इतना समय भी नहीं है मेरे पास, लोग पता नहीं मेरे बारे में क्या सोचते रहते हैं। एक भैया वैयावृत्ति में कह रहे थे कि महाराज लोग तो कम-से-कम व्यस्त होंगे पर आप तो हम से ज्यादा व्यस्त हो। हम तो सेवा करने आये थे, पर आप तो ग्रन्थ ही नहीं छोड़ रहे। भैया ! निर्ग्रन्थ मुनि न हो जाओ तब तक ग्रन्थ मत छोड़ना। यथार्थ में निर्ग्रन्थ न हो जाओ, वास्तव में निर्ग्रन्थ कहाँ होंगे ? बारहवें गुणस्थान में और शुद्धोपयोग की दृष्टि से 7 वें गुणस्थान में। वह परिग्रह ग्रन्थ का स्वीकृत है जो तुम्हारा उपकरणभूत है, संयम का उपकार कर रहा है। जैसे नेत्रों में पलक; ये उपकरण है नेत्र की रक्षा के लिये, ऐसे ही हे श्रमण ! तेरी भावों की विशुद्धि की रक्षा के लिये ये जिनवाणी उपकरण है। तेरी सर्व दृशिशक्ति परम आनन्दभूत है।

जब क्षुल्लक अवस्था में प्रथम बार आदिनाथ स्वामी के दर्शन किये, परज्ञेय समय दीर्घ नहीं है निमेष मात्र में तो सब हो गया, पलक के ऊपर-नीचे होने में तो काम समाप्त हो गया। चक्षुज्ञान होने के पहले, जो सामान्य सत्ता का अवलोकन है उसका नाम चक्षुदर्शन। महासत्ता का अवलोकन, अवान्तरसत्ता नहीं, जो साकार उपयोगमयी है ऐसी ज्ञानशक्ति है । जिसमें किञ्चित् मात्र भी आकुलता है वह सुखशक्ति नहीं है इसलिये पञ्चेन्द्रिय के विषय तुम्हें जो-जो सुख दे रहे हैं वे एक भी सुखभूत नहीं हैं, क्योंकि सबमें आकुलता है। कहीं भी चले जाओ भैया ! तनक साता लेने दो, आकुलता मत करो। ऐसा ही बोलते हैं कि आकुलता में, 'तनकऊ सुख नईय' सुख तो निराकुलता में है। 'कितऊ चले जाओ आकुलता में सुख नईय सुख चाने है तो निराकुलता लाओ।'

आतम को हित है सुख सो सुख आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिव माहि न तातें शिवमग लागौ चहिये।।'3/1, छ.ढा.।।

मित्र ! अस्तिशक्ति का भी प्रयोग कीजिये और नास्तिशक्ति का भी प्रयोग कीजिये। विधेयात्मक का भी प्रयोग कीजिये और निषेधात्मक का भी प्रयोग कीजिये। विधेयात्मक-विधेयात्मक का प्रयोग करते रहोगे तब भी मिथ्यात्व फैल जायेगा और निषेध-निषेध का प्रयोग करोगे तब भी मिथ्यात्व फैलेगा। मैंने कहा कि

आपको अर्हन्त देव की वन्दना करना चाहिये और आप पढ़े-लिखे आदमी, आपने कहा कि मेरे गुरु ने तो आज तक नहीं कहा कि अन्य कि वन्दना नहीं करना चाहिये। तब समन्तभद्र स्वामी कह रहे हैं 'एवं विधि निषेधाभ्याम्'। ये विधि और निषेध दोनों ही अर्थक्रियाकारक के कारण हैं। यदि विधि-विधि का कथन करोगे तो आदमी कहेगा कि निषेध कहाँ है, प्रमाण दो। तो आपको विधि का भी कथन करना चाहिये और शीघ्र निषेध का भी कथन कर देना चाहिये कि ये प्रमाण है। अर्हन्त की उपासना कीजिये परन्तु ज्ञानी! अर्हन्त से तात्पर्य शब्द अर्हन्त का नहीं; जो वीतरागी, सर्वज्ञ दिगम्बर हैं उनकी उपासना करना । अर्हन्तदेव तो बहुत जगह उपयोग होता है। इसलिये एक-एक शब्द पर विशेष-विशेषण भाव का ध्यान रखा जाये। भेदविज्ञान में विधि-निषेध की ही प्रवृत्ति है। मित्र! पर वस्तु का निषेध, स्ववस्तु की विधि; यही तो भेदविज्ञान है।

अखण्ड श्रुत की धारा में लवलीन श्रमण के सारे विकल्प समाप्त हो चुके हैं। प्रमाण, प्रमाता प्रमिति; ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञप्ति; प्रमाण, प्रमेय, प्रमाता - इन सारे विकल्पों से जो शून्य हो चुका, एकमात्र निज ज्ञायक भाव में ही जिसका गमन चल रहा है वहाँ दूसरा कोई प्रवेश ही नहीं कर रहा है; ये अखण्ड श्रुत की धारा है। ऐसे अखण्डश्रुत की धारा को निज में निहारता हुआ श्रमण सप्तम से अपूर्वकरण, अपूर्वकरण से अनिवृत्तिकरण, अनिवृत्तिकरण से सूक्ष्मसाम्पराय और सूक्ष्मसाम्पराय में पहुँच करके एक ऐसा विशुद्धि का स्थान तैयार करता है, सूक्ष्मलोक का विघात करके, कषायों की सूक्ष्मकृष्टि नादरकृष्टि करके सीधे क्षीणमोह गुणस्थान में प्रवेश करता है और क्षीणमोह गुणस्थान में प्रवेश करते ही ये श्रमण, मुनि जो निर्ग्रन्थ अवस्था थी क्षीणमोह गुणस्थान में, जो निर्ग्रन्थ दशा थी उस निर्ग्रन्थ दशा से छलांग मारकर अन्तर्मुहूर्त मात्र काल में निर्ग्रन्थ स्नातक मुनि हो जाते हैं, सर्वज्ञत्वशक्ति प्रकट हो जाती है। सर्वज्ञत्व शक्ति भिन्न को एक बना रही है, भिन्न को झलका रही है। दर्पण में दूसरे की ही परछाई आ रही है। दर्पण में दूसरे का ही बिम्ब है। सर्वज्ञत्व शक्ति की व्याख्या करोगे तो जिनके ज्ञान में जगत् के सम्पूर्ण ज्ञेय आ रहे हैं वहाँ प्रकाशत्व शक्ति क्या कहेगी? दर्पण में दर्पण का ही परिणमन चल रहा है; निज स्वच्छता। नदी की रेत पारदर्शी दर्पण बन सकती है, सबको झलकाने वाला दर्पण बन सकती है। हे नदी की रेत कणों! इस संसार-सत्ता में जितने भव्य जीव हैं ये नदी की बालू की कण के सदृश्य हैं। जब बालू का कण दर्पण बन सकता है, तो ये सब ज्ञानी सर्वज्ञ भी बन सकते हैं, उतनी तपस्या चाहिये, जैसे बालू को दर्पण बनाने के लिये तापमान चाहिये।

मित्र! चारित्र से ज्ञान प्रकट होता है। मित्र! पढ़ने से कोई श्रुतकेवली, केवली नहीं बन सकता है । कितना पढ़ोगे आप श्रुत, श्रुत अगाध है, कोष्ठबुद्धि ऋद्धि, बीजबुद्धि ऋद्धि; ये ऋद्धियाँ पढ़ने से प्रकट नहीं होती हैं, ये ऋद्धियाँ तपस्या से प्रकट होती हैं। तपस्या करके योगी इन ऋद्धियों को प्राप्त करता है। **विशुद्धि से ज्ञान बढ़ता है, पढ़ने से ज्ञान नहीं बढ़ता, विशुद्धि नहीं है तो ग्रन्थ के पाठ-के-पाठ कर लो, क्षयोपशम नहीं बढ़ता है।** जिनको बहुत अच्छा ज्ञानी बनना है, विद्यार्थी भी क्यों न हो,

जिनके चित्त काम, क्रोध, मान, माया, लोभ से दूर रहते हैं वे अच्छे नम्बर लाते हैं और जिनके चित्त भगने लगते हैं उनके नम्बर कम आते हैं।

मित्र ! मैंने तो अपने गुरु से इतना सीखा है कि मुनि बनने के लिये मुनि नहीं बना जाता। जो माँ की गोद में खेलने वाला शिशु होता है, जिस दिन उसके समान तुम्हारी कषाय हो जायेगी उस दिन तुम सच्चे भावलिंगी मुनि हो जाओगे। ये तद्जन्य अविकारी भाव की दृष्टि का कथन है। हे जीव ! पिल्ले को नहीं देखा क्या ? एक श्वान का बच्चा जब छोटा होता है, वह सबको कितनी खुशी देता है उठा-उठाकर लोग खिलाते हैं उस पिल्ले को। मेरे मित्र ! बचपना कितना सुहावना होता है कि पिल्ले तक को भी उठा लेते हैं ? जब श्वान का पिल्ला इतना मधुर तो फिर इंसान का पिल्ला कितना मधुर, तो उस पिल्ले के सहजरूप में निर्ग्रन्थ दिखाई दे तो उनको तो क्या कहूँ, ये ही तो भावी अर्हन्त हैं।

मित्र ! ये मत समझना कि महाराज को पिल्ला बोल रहे हैं **'यथाजात स्वरूपोऽहम्'**। जैसा जन्म के समय निर्विकार होता है ऐसी सहज मासूमियत जिस योगी के चेहरे पर आ जाये तो यही मुनि की सत्य चर्या है। मित्र ! पर्याय की प्रत्यासत्ति होने पर भी चेहरे पर मासूमियत टपकती है। जब चिरोंजाबाई की बूढ़ी अवस्था में आँचल से दूध टपक सकता है तो वो मासूमियत भी टपकती है उसी मासूमियत को देखकर के जन्मजात बैरी जीव मुनिचरणों में बैठते हैं।

मित्र ! आपकी उम्र के अनेक चेहरे होंगे उनके चेहरों को देखो, आप अपनी साधना के चेहरे को देखो और यही चेहरा मुनिभेष में तो रहा पर मुनि-भावों से शून्य जीवन जीता रहा तो इस चेहरे पर कठोरता-ही-कठोरता आयेगी, मायाचारी वह कहलायेगी, भीतर में कठोरता बाहर में बगुला बनकर बैठो। जो बच्चे में मासूमियत है वह मायाचारी की नहीं है, ये भीतर की सरलता का प्रभाव है कि बाहर झलक रहा है। ऐसे ही हे जीव ! जब कषाय तेरी मन्द हो जायेगी तो सहज चेहरे पर झलकन प्रारंभ हो जायेगी और कषाय मन्द नहीं है तो तुम कितना ही प्रयास कर लेना, चमड़ी को मुलायम करने के लिये क्रीम पावडर लगा सकते हो, पर कषाय को मुलायम करने के लिये क्रीम पावडर काम में नहीं आयेगा। भावकर्म का प्रभाव नोकर्म पर पड़ता है। जैसे माँ की गोद में नग्न बालक लेटा रहता है उसे कोई भी उठा लेता है तो न तो उठाने वाले के मन में कोई विकार आता है और न ही उठाने वाले के मन में कोई विकार आता है। ऐसे ही निर्ग्रन्थ मुनियों को देखकर, ये धरती के आंगन में घूमते हैं, न देखने वाले को विकार आता है और न दिखाने वाले को आता है। वह **'यथाजात स्वरूपोऽहम्'**।

एक बार हल्का-सा पानी गिर गया, ठण्डी की अच्छी लहर चल रही थी दिन के 10 बजे हम लोग चर्या को निकले उसी समय कुछ महिलायें डाक्टर के घर अपने बच्चों का उपचार कराने आयीं। वे बोलीं - इनको कछु नहीं लग रहो इतनी ठण्डी में, कैसे घूम रहे हैं ? जो पञ्च महाव्रतों को धारण किये हुये हैं वे ही महर्षि हैं ऐसे महर्षि ही सर्वज्ञत्व शक्ति से युक्त होते हैं, वे ही जब तेरहवें गुणस्थान को प्राप्त हुये तो

चराचर को झलकाने वाली सर्वज्ञत्व शक्ति प्रकट हो गई। कहने का सार यह है कि संयमलब्धि को प्राप्त करो और संयमलब्धि प्राप्त होगी तो नियम से सर्वज्ञत्व शक्ति प्रकट होगी। इस भ्रम को निकाल दो कि बिना संयम के सर्वज्ञ बन सकते हैं, सम्भव ही नहीं है। क्षायोपशमिक ज्ञान जो विशुद्ध चारित्र को प्रकट कराता है वह क्षायोपशमिक ज्ञान संयम से ही प्रकट होता है।

आचार्य विरागसागर के संघ में मेरा जैसा अज्ञानी कोई शायद दूसरा होगा। मैं तो एक कोने में बैठा पढ़ता रहता था, आचार्य श्री जी पढ़ाते थे, मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आता था पर विश्वास रखता था इस बात का कि गुरु जो बोल रहे हैं वह सत्य होगा। विश्वास, श्रद्धा, आस्था, निर्मल परिणति, भावों की विशुद्धि, साधना की निर्दोषता आपके ज्ञान को बढ़ाने का साधन है। मित्र ! सही बताऊँ, मैं बहुत सारी साधना पर कम ध्यान देता हूँ, कषाय की मन्दता पर ज्यादा ध्यान देता हूँ, क्योंकि वही तो भगवान् बनायेगी। सत्रह प्रकार की निषधिकायें हैं, आप चेतन निषधिकाओं के सामने बैठे हो। इसलिये भैया ! कैसा भी मुनि हो, प्रथम अवस्था में देखना बड़ा आनन्द आता है तब वहाँ विशुद्धि बढ़ती कि नहीं ? निश्चित बढ़ती है। बस, सिर टेको, विशुद्धि बढ़ाओ।

जब हम लोग कर्नाटक की वन्दना को गये तो रास्ते में कई गाड़ियाँ रुकती थीं। लोग गाड़ियों से उतरे मुस्कराते आये जैसे कई वर्षों से परिचित हों। महाराज श्री नमोऽस्तु ! मुस्कराते हुये। ये विशुद्धसागर से परिचय नहीं था, उनका विशुद्ध दिगम्बर मुद्रा से परिचय था। एक दिन तो एक दम्पत्ति आया उसने बिल्कुल सामने अपनी गाड़ी खड़ी की, थैला खोला और हरे-हरे नोट गिने और बोला – महाराज श्री ! भेंट स्वीकार कर लो। हमने टीवी पर देखा, इस रूप के आज दर्शन हो रहे हैं मैंने उसको समझाया। हम दिगम्बर साधु हैं, कुछ लेते नहीं हैं। उसने जैसे ही सुना कि लेते नहीं हैं उसने नोट भी पटके, थैला भी पटका और साष्टांग हो गया **'नमस्तुभ्यं दिगम्बरो देवतां'**। ये अहिंसा परम् ब्रह्म है। ये आश्रम की विधि में पलता नहीं है। तृणमात्र भी साधु आश्रमविधि में लिप्त होता है तो आश्रमब्रह्म का नाश हो जाता है। वे इतने प्रभावित हुये और बोले - जब आपका आश्रम नहीं है तो खाना-पीना कैसे होता है ? मैंने कहा - ज्ञानी ! तू सुबह देखना क्या होता है ? वह बोला - लोग तो तरसते हैं कि दे दो, पर वहाँ तो लोग तरसते हैं ले लो कह-कहकर। बस, इतना ही अन्तर है भिखारी और भिक्षु में। भिखारी कहता है कि डाल दो और भिक्षु को सारी दुनियाँ देने को तरसती है कि ले लो। क्षपकश्रेणी पार की, क्षीणमोह गुणस्थान में गया, अब किसी की ताकत नहीं है कि रोककर रख सके। भावलिंगी श्रमण उग्र तपस्या करें। अभी तक तो अपन सुनते हैं, पढ़ते हैं कि केवली कैसे होते हैं फिर अपन देखेंगे अपने ही कैवल्य में अवलोकन करके फिर तो सर्वज्ञत्वशक्ति का आनन्द ही लूटेंगे।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

सिद्ध
जिनधर्म
आचार्य
जिनवाणी
उपाध्याय
अरिहंत
जिनबिम्ब
साधु
जिनालय

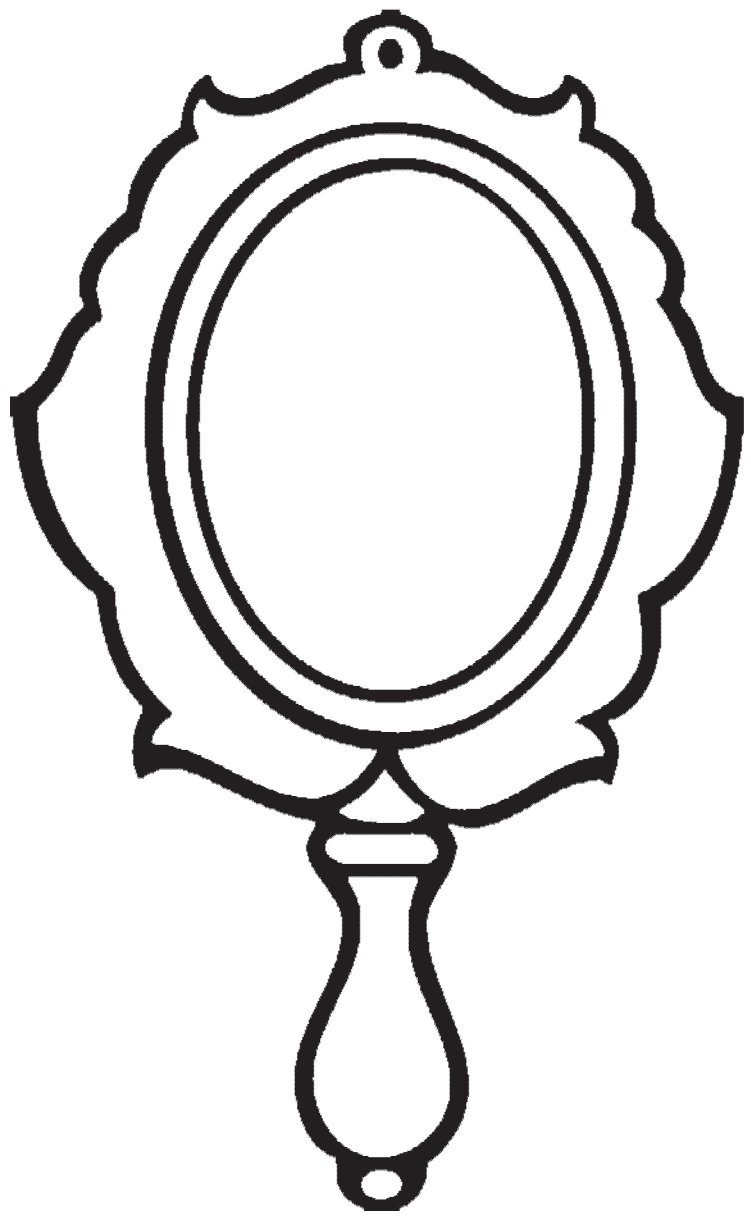

11

स्वच्छत्वशक्तिः

''नीरूपात्मप्रदेशप्रकाशमानलोकालोकाकारमेचकोपयोगलक्षणा स्वच्छत्वशक्तिः ।''

अमूर्तिक आत्मप्रदेशों में प्रकाशमान लोकालोक के आकारों से मेचक अर्थात् अनेक आकाररूप ऐसा उपयोग जिसका लक्षण है ऐसी स्वच्छत्वशक्ति है ।

जैसे दर्पण की स्वच्छत्वशक्ति से उसकी पर्याय में घट पटादि प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार आत्मा की स्वच्छत्वशक्ति से उसके उपयोग में लोकालोक के आकार प्रकाशित होते हैं।

समय देशना

आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी रचित अध्यात्म के सर्वोपरि ग्रंथरत्न 'समयसार' जी की टीका करते हुए आचार्य प्रवर श्री अमृतचंद स्वामी आत्मा की अनंत शक्तियों में से एक **'स्वच्छत्वशक्ति'** का यहाँ व्याख्यान कर रहे हैं।

ज्ञानियो ! ज्ञान का लक्षण है स्व-पर प्रकाशकपना। सम्यक्त्व का कार्य है निर्विकल्प प्रतीति। चारित्र का कार्य है एकाग्रता। ज्ञानियो ! ज्ञान की पूर्णता पर निर्वाण नहीं होता है, परन्तु जैसे ही चारित्र की पूर्णता होती है वहीं निर्वाण हो जाता है।

यहाँ 'स्वच्छत्वशक्ति' का व्याख्यान चल रहा है। प्रत्येक जीव को स्वच्छता अच्छी लगती है। जहाँ कर्मों से स्वच्छता हो जाती है वहीं सुख की प्राप्ति संभव है। आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं , उनमें एक 'स्वच्छत्वशक्ति' है। आत्मा में अनन्त गुण हैं और वे परस्पर में भिन्न ही हैं। मुमुक्षु ! समझो, वस्तुव्यवस्था को, जगत् के जड़ द्रव्यों की विश्व ने खूब खोज की, कर रहे हैं, परन्तु हमारे वीतरागी वैज्ञानिक निर्ग्रन्थ योगीश्वरों ने आत्म-स्वरूप, स्वद्रव्य, चेतन-रसायन का ही अन्वेषण किया है।

हे मुमुक्षु ! जिस प्रकार चेतन-आत्मा कभी जड़रूप नहीं होता है उसी प्रकार आत्मा का ज्ञानगुण कभी भी दर्शनरूप नहीं होता है, कोई भी गुण कभी भी किसी दूसरे गुणरूप नहीं होता है। **जिस प्रकार एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का अभाव है उसी प्रकार एक द्रव्य के अनन्त गुणों में भी एक गुण में दूसरे गुण का पूर्ण अभाव है।** आत्मद्रव्य तो पर से परिपूर्ण स्वतंत्र है तथा एक गुण दूसरे गुण से भिन्न ही है। अनन्त गुण परस्पर भिन्न ही हैं, गुणों की अपेक्षा अनन्तता और द्रव्यरूप से एकता - ऐसा अनेकांत यहाँ समझना।

हे मुमुक्षु ! अग्नि से उष्णता कब भिन्न होगी ? जल से शीतलता कब भिन्न होगी ? वैसे ही मुमुक्षु ! भिन्नता में अभिन्नता, अभिन्नता में भिन्नता को समझना पड़ेगा। आत्मा में ज्ञान दर्शन है। वह कब भिन्न होगा ? **'ज्ञानमेव आत्मा, आत्मामेव ज्ञान।'**

हे मित्र ! जिस दिन स्वात्म स्वतंत्रता का बोध हो जायेगा उस दिन से आप सभी बंधनों से छूटने का पुरुषार्थ प्रारंभ कर दोगे। स्वतंत्रता का बोध होते ही प्राणी स्वच्छता की ओर बढ़ता है। जितने भी जीव दुःखी हो रहे हैं, भविष्य में दुःखी होंगे, भूत में दुःखी हुए हैं, मात्रपरतंत्रता में। परतंत्रता ही दुःख है, परतंत्रता ही मलिनता है। कर्मों की मलिनता आत्मा के साथ न लगी होती तो तुम सिद्धालय में होते।

क्रोध की मलिनता में, मान की मलिनता में, माया की मलिनता में, लोभ की मलिनता में जीव अपने ध्रुव, ज्ञायक, त्रिकाली स्वच्छ भगवानात्मा को नहीं निहार पा रहा है। **निजनाथ को निहारना है, तो आत्म-शोधन प्रारंभ करो।**

ओ हो ! मित्र ! स्वच्छता के बिना तो तुम अपना पेट भी नहीं भर सकते हो। माँ ! आप रोटी बनाती हो, तो क्या बिना शोधन किए ही अनाज को पीस लेती हो ? नहीं। मित्र ! बिना शोधन के फसल भी नहीं उगती है, कृषक भी खर-पतवार, विकृत घासादि को खेत से अलग कर देता है। शोधन बहुत आवश्यक है। फल भी खाओगे तो पहले धोते हो, शोधन। वैज्ञानिक भी कोई अविष्कार करता है तो पहले शोध करता है। कोई कीमती सामग्री भी रखना है तो पहले बर्तनों को स्वच्छ करते हो। स्वच्छता के बिना जब तुम बर्तन में दुग्ध भी नहीं रखते हो, तो ज्ञानी ! सिद्धालय में स्थापित होना है, तो परिपूर्ण स्वच्छ होना होगा। अज्ञान, क्रोध-मान-माया-लोभ से स्वच्छ होना होगा। **आत्मस्वच्छता के बिना आत्मसिद्धि संभव नहीं है।**

ज्ञानियो ! दिगम्बर आचार्य वासनाओं से नग्न रहते हैं, परन्तु संयम, तप, त्याग, ज्ञान-ध्यान से परिपूर्ण लबालब भरे रहते हैं। **जहाँ लोक की सोच समाप्त हो जाती है, उससे बहुत आगे से दिगम्बर योगियों की सोच प्रारम्भ होती है।** विश्व में ऐसी कोई विधा नहीं जिस पर निर्ग्रन्थों ने अपनी लेखनी न चलाई हो। द्वादशांग जिनवाणी जयवंत हो, जयवंत हो वीतराग शासन।

जयदु भारदी, जयदु भारदी।
जिनवाणी सारदा, सुयदेवी सरस्सदी।।

श्रीजिनेन्द्र के मुख-कमल पर शोभित, जगत् कल्याणी जिनवाणी शारदा, श्रुतदेवी सरस्वती जयवंत हो।

जिणवयणमोसहमिणं विषय सुह विरेयणं अमिदभूदं।
जरामरण वाहिवेयण खयकरणं सव्व दुक्खाणं।।मूला./843।।

ज्ञानियो ! इस भूतल पर कोई अमृत है तो वह 'जिन प्रवचन' है। जिनवचन औषधि ही है जो कि विषय-सुखों का विरेचन करती है, अमृत स्वरूप है, जन्म-मरण तथा रोगों तथा सम्पूर्ण दुःखों का क्षय करती है।

आत्महित के लिए आत्मशोधन बहुत जरूरी है। आत्मबोध नहीं होगा तब-तक आत्मशोधन भी संभव नहीं है। आत्मशोधन का कोई उपाय है तो वह तप है, तप से ही आत्मा का शोधन संभव है। मित्र ! जगत् के लोग नदियों में नहाने से पवित्रता मानते हैं, परन्तु जैनदर्शन तप से ही शोधन मानता है।

णाणं पयासओ तओ, सोधओ संजमो य गुत्तियरो।
तिण्हं पि य संपजोगे, होदि हु जिण सासणे मोक्खो।।मूला./901।।

हे मुमुक्षु ! आत्मा का शोधन करना है, तो तप धारण करो। तीर्थंकर भी मुक्त हुए हैं तो तप के द्वारा शोधन करके ही शुद्ध हुए हैं। **ज्ञान प्रकाशक है, तप शोधक है, संयम रक्षक है और इन तीनों के मिलने पर ही जिन-शासन में मोक्ष-प्राप्ति होती है।**

हे ज्ञानी ! अपने में ऐसी स्वच्छत्वशक्ति है कि तेरे उपयोग-दर्पण में लोकालोक एक साथ ज्ञात हो जाय। जैसे तेरे शुद्धस्वरूप में तनिक भी मलिनता नहीं है, पूर्ण निर्मल दशा प्रकट होने पर उद्घाटित उपयोगमय ध्रुव चैतन्य की स्वच्छता में विकार का अंश भी नहीं ठहर सकता है। **अमूर्तिक आत्माप्रदेशों में प्रकाशमान लोकालोक के आकारों से मेचक अर्थात् अनेक-आकाररूप ऐसा उपयोग जिसका लक्षण है ऐसी 'स्वच्छत्वशक्ति' आत्मा में है।**

जिस प्रकार दर्पण की स्वच्छत्वशक्ति से उसकी पर्याय में पदार्थ प्रकाशित होते हैं; उसी प्रकार आत्मा की 'स्वच्छत्वशक्ति' से उसके उपयोग में लोकालोक के आकार झलकाने वाली स्वच्छता प्रकाशित होती है। आत्मा के उपयोग में लोकालोक ज्ञात हो ऐसा उसका स्वच्छ स्वभाव है। **बाह्य में शरीर के धोने से आत्मा की स्वच्छता नहीं हो सकती, स्वच्छता जो है वह आत्मा का ही गुण है, वह कहीं बाहर से नहीं आती है।** ओहो ! अज्ञानी पर्यायमूढ़ चैतन्य के स्वच्छ स्वभाव को भूलकर शरीर वस्त्रादि की स्वच्छता में ही धर्म मानते हैं और शरीर के अशुचि होने पर अपने त्रिकाली शुद्धात्मा में मलिनता हो गई हो ऐसा मानते हैं, परन्तु **आत्मा तो स्वयं स्वच्छ है, उसके उपयोग में लोकालोक ज्ञात होने पर भी मलिनता न लगे ऐसा उस आत्मा का स्वच्छ स्वभाव है।**

शरीर तो जड़ है, उसमें किसी को जानने की शक्ति नहीं है, आत्मा में ही ऐसी परम स्वच्छता है कि उसके उपयोग में सर्व पदार्थ ज्ञात होते हैं। स्वच्छता के कारण आत्मा का उपयोग ही लोकालोक के ज्ञान-रूप से परिणमित हो जाता है। शरीर स्वच्छ हो तो आत्मा के भाव निर्मल हों ऐसा नियामक नहीं है। ज्ञानियो ! शरीर की मलिनता में सर्वज्ञान - कैवल्य प्रकट हो सकता है, परन्तु भावों की मलिनता में कैवल्य प्रकट नहीं हो सकता है।

हे मुमुक्षु ! जगत् के सर्व पदार्थ मेरे उपयोग में ज्ञात होते हैं, परन्तु वह सर्व पदार्थ मेरी स्वच्छता को बिगाड़ने में समर्थ नहीं हैं। सर्व पदार्थों को जानता हुआ भी आत्मा अपनी स्वच्छता को नहीं छोड़ता है। जो योगीश्वर स्व-सम्मुख हो जाते हैं, वे ही परम स्वच्छावस्था कैवल्य को प्राप्त करते हैं। लोकालोक को देखने के लिए जीव को कहीं बाहर नहीं देखना पड़ता है, अपितु जहाँ ज्ञान का उपयोग स्वरूप में लीन होकर स्वच्छरूप से परिणमित हुआ वहाँ उसकी स्वच्छता में लोकालोक अपने आप झलकते हैं।

भैया ! सामने कैमरा लगा हुआ है, मैं बोल रहा हूँ। कैमरे में मेरा चित्र आ रहा है, परन्तु मैं कैमरे में नहीं हूँ। यदि मैं कैमरे में चला गया तो मेरा अस्तित्व नष्ट हो जायेगा। मैं मेरे में हूँ, कैमरा कैमरे में है। इस अलौकिक स्वतंत्रता के सिद्धांत को जिसने समझ लिया वह निश्चित ही कैवल्य को प्राप्त कर लेगा, फिर उस स्वच्छता को कोई मलिन नहीं कर सकता है। ऐसी अलौकिक 'स्वच्छत्व शक्ति' आत्मा में त्रिकाल है।

हे जीव ! ग्रंथों से ज्ञान नहीं होता है, यह तो व्यवहार की भाषा है। ज्ञानगुण आत्मा का है, ज्ञानगुण जड़-पुद्गल का नहीं है। **ज्ञान-ज्ञान की धुन लगाने से ज्ञान नहीं होगा, पढ़ने से भी ज्ञान नहीं होगा, अपितु चारित्र की निर्मलता से ज्यों-ज्यों परिणामों की विशुद्धि बढ़ेगी त्यों-त्यों ज्ञान प्रकट होगा,** इसलिए हे मुमुक्षु ! स्वरूपलीनता का अभ्यास करो, स्वभाव-सम्मुख होकर अपनी स्वच्छता के सामर्थ्य की प्रतीति कर तो लोक के सर्व पदार्थ तेरे ज्ञान में झलकना प्रारंभ हो जायेंगे।

ज्ञानियो ! मंदिर की वेदी पर कहीं-कहीं दोनों ओर दर्पण लगे रहते हैं, उनमें देखो तो जिनबिम्बों की लम्बी कतार दिखाई देती है, वहाँ दर्पण में जिन प्रतिमा नहीं है, परन्तु दर्पण की स्वच्छता का ही वैसा परिणमन है। उसी प्रकार आत्मा का ऐसा अलौकिक स्वच्छ स्वभाव है कि उसके उपयोग के परिणमन में लोकालोक का प्रतिबिंब झलक रहा है, अनंतानंत सिद्ध भगवन्त एक साथ ज्ञान में झलक रहे हैं, वहाँ ज्ञान में कहीं वे पर द्रव्य नहीं हैं, परन्तु ज्ञान की स्वच्छता का ही वैसा परिणमन है। हे मुमुक्षु ! ऐसा स्वच्छ ज्ञान-स्वभाव में कहीं पर का अवलम्बन, विकार या कमी है ही नहीं।

नगर के चौराहे पर एक बड़ा-सा दर्पण लगा हुआ है; उसमें चौराहे से निकलने वाले महिला, पुरुष, गाय-बैल, मोटर-गाड़ी सर्व पदार्थ दिखाई देते हैं, परन्तु दर्पण में कोई, किसी प्रकार का पक्षपात नहीं है कि वह किसी को झलकाये और किसी को न झलकाये; दर्पण तो स्वयं में स्थिर ही है, पदार्थ स्वयं ही उसमें झलकते हैं, उसी प्रकार आत्मा के चैतन्य-दर्पण में सम्पूर्ण विश्व के सर्व पदार्थ झलकते हैं। ऐसा उसका स्वभाव है।

आत्मा की स्वच्छत्वशक्ति में किंचित् भी विकार नहीं है तथा उस स्वच्छत्वशक्ति में अभेद होकर परिणमित होने से पर्याय में भी मलिनता नहीं रह सकती है। जिस प्रकार नेत्रों में एक बालू की कणिका भी नहीं रह सकती है, उसी प्रकार आत्मा के स्वच्छ उपयोग में विकार का अंशमात्र भी नहीं रह सकता है।

हे मुमुक्षु ! चेतन्य भगवानात्मा की अलौकिक महिमा है, जिसमें अनेकानेक शक्तियाँ हैं , आत्मा स्वयं ही प्रकाशमान है। ऐसी शक्तियों को उद्घाटित करना है तो ध्यान करो। ध्यान से ही निर्वाण होता है।

नास्ति ध्यान समो बन्धुर्नास्ति ध्यानसमो गुरुः।
नास्ति ध्यानसमं मित्रं, नास्ति ध्यान समं तपः ।। 25/ज्ञाना.।।

ज्ञानियो ! ध्यान के समान बंधु नहीं है, ध्यान के समान गुरु नहीं है, ध्यान के समान मित्र नहीं है और ध्यान के समान तप नहीं है।

ज्ञानियो ! जैनदर्शन की मूल साधना ध्यान है। ध्यान जैनदर्शन का प्राणतत्त्व है। ध्यान के बल से आत्मा अपने ऊपर आच्छादित सम्पूर्ण कर्म-कालिमा की मलिनता को दूर कर देता है। शान्ति प्राप्त करने का एक मात्र साधन सु-ध्यान ही है। ध्यान के द्वारा कषायों को छोड़ा जाता है। आत्माभिमुख होकर दुःख के कारणों का विलय करने में ध्यान सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

वैराग्यं तत्त्वविज्ञानं, नैर्ग्रंथ्यं समभावना।
जयः परीषहाणां च, पञ्चैते ध्यान हेतवः ।।42/ज्ञाना.।।

हे मुमुक्षु ! आत्मा में अनंत शक्तियाँ विद्यमान हैं , उनका वेदन करना है, उनको उद्घाटित करना है तो ध्यान का आश्रय प्राप्त करो। **जिस प्रकार मूल्यवान रत्नों में वज्र, चन्दनों में गोशीर्ष तथा मणियों में वैडूर्यमणि को सर्वोत्तम माना जाता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण व्रतों में ध्यान सर्वोत्तम है। उस ध्यान के लिए भव्य आत्मा में वैराग्य, निर्ग्रन्थ अवस्था, तत्त्वविज्ञान, समताभाव और परीषहजय होना अनिवार्य एवं आवश्यक है।**

हे मित्र ! जैसे स्वर्ण तपकर अपने साथ लगी किट्टिमा को अग्नि में भस्म कर शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा भी सम्यग्ज्ञान से स्वच्छ होकर शुद्ध हो जाता है। स्वच्छता को प्राप्त करना है तो सम्यक्-ज्ञान को प्राप्त करो। बोध के बिना शोध कहाँ संभव है ? जितना-जितना बोध होगा उतना-उतना शोधन का पुरुषार्थ होगा। आचार्य भगवन् अमितगति स्वामी ने ग्रंथ रत्न **'सुभाषित रत्न संदोह'** में कहा भी है कि –

ज्ञानाद्धितं वेत्ति ततः प्रवृत्ती, रत्नत्रये संचित कर्ममोक्षः।
ततस्ततः सौख्यमबाधमुच्चै स्तेनात्र यत्नं विदधाति दक्षः ।।

हे मुमुक्षु ! भव्यात्मा ज्ञान से अपने हित को जानता है, उससे उसकी रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र में प्रवृत्ति होती है और वह चारित्रलीनता उस के पूर्व संचित कर्मों का क्षय कर देती है उससे निर्बाध शाश्वत सुख प्राप्त होता है, इसलिए हे भव्यात्मन् ! सम्यग्ज्ञान को प्राप्त करो।

यहाँ पर आचार्य भगवन् ने आत्मा की अनंत शक्तियों में से अमूर्तिक आत्मप्रदेशों में प्रकाशमान लोकालोक के आकारों से मेचक ऐसा उपयोग है जिसका लक्षण उस **'स्वच्छत्वशक्ति'** का व्याख्यान किया।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।
आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।
भगवान् महावीर स्वामी की जय।

12

प्रकाशशक्तिः

''स्वयंप्रकाशमान विशद स्वसंवित्तिमयी प्रकाशशक्तिः।''

जो स्वयं प्रकाशमान है; विशद, स्पष्ट और निर्मल स्वसंवेदनमय स्वानुभव से युक्त है, स्वयं को स्पष्टरूप से जाने यानी आत्मा का अनुभव करे - ऐसी भी एक शक्ति आत्मा में है, जिसका नाम प्रकाशशक्ति है।

13

असंकुचित-विकाशत्वशक्तिः

''क्षेत्रकालानवच्छिन्नचिद्विलासात्मिकाऽसंकुचितविकाशत्वशक्तिः।''

क्षेत्र और काल से अमर्यादित चिद्-विलासात्मक अर्थात् चैतन्य के विलास-स्वरूप असंकुचितविकाशत्व नाम की शक्ति है। तात्पर्य यह है कि इस आत्मा के चैतन्य के विलास में क्षेत्र और काल संबंधी कोई संकोच, सीमा, मर्यादा नहीं है। इस शक्ति के कारण सभी गुण अपने-अपने स्वभावानुसार पूर्ण विकाश को प्राप्त होते हैं।

समय देशना

बन्धुओ ! आचार्य भगवन्त् कुन्दकुन्दस्वामी ग्रंथराज समयसारजी में ध्रुवज्ञायकस्वभावी भगवानात्मा के सहज स्वरूप का वर्णन कर रहे हैं । सम्पूर्ण द्रव्यों में वेद्य-वेदकभाव किसी द्रव्य में है तो मात्र जीव द्रव्य में है। लोक के छहों द्रव्यों में पाँच द्रव्य न स्वसंवेदी हैं, न परसंवेदी हैं; स्वपर-संवेद के भाव किसी में हैं तो वह एकमात्र जीवद्रव्य है। प्रकाशशक्ति इसी बात को यहाँ प्रकाशित कर रही है। स्वपरप्रकाशी विश्व में कोई द्रव्य है तो वह जीवद्रव्य है। प्रदीपवत् स्वसंवेदी भी है, परसंवेदी भी है।

इन्द्रिय और मन की सहायता लेने के कारण ''**आद्ये परोक्षम्**'' आदि के दो ज्ञान परोक्षज्ञान हैं, लेकिन यहाँ परोक्ष से तात्पर्य कोई आत्मा से भिन्न होकर नहीं है। कोई पर के माध्यम से नहीं जान रहे हैं या परोक्ष से तात्पर्य कोई मति-श्रुतज्ञान आत्मा से भिन्नभूत होकर नहीं जान रहे। सिद्धांत की व्याख्या करते समय न्याय का ध्यान रखा जाये, अध्यात्म का भी ध्यान रखा जाये। ''आद्येपरोक्षम्'' सूत्रकर्त्ता कह रहे हैं कि आदि के जो दो ज्ञान हैं, परोक्ष हैं। परोक्ष से तात्पर्य भिन्नभूत परोक्ष है। इन्द्रिय मन की सहायता लेने के कारण यहाँ परोक्ष कहा गया है और वह द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय; द्रव्यमन, भावमन - इन दोनों का ही आश्रय लेकर ही तो हो रहा है। जब भावमन भावेन्द्रिय का आश्रय लेकर मतिश्रुत ज्ञान होगा तो परोक्ष कैसा ? ''**लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्**'' लब्धि उपयोग भावेन्द्रिय है और भावेन्द्रिय जो है वह आत्मा की परिणति है। भावमन भी आत्मा की ही परिणति है इसलिए सिद्धांत से परोक्ष होने पर भी आत्मप्रत्यक्ष ही है। यदि इनको आप प्रत्यक्ष नहीं स्वीकारते तो बहुत बड़े प्रश्न सामने आ रहे हैं फिर आत्मा की अनुभूति परोक्ष ही होगी। शुद्धोपयोग परोक्ष ही होगा। स्वसंवित्ति परोक्ष ही होगी।

सिद्धांत की भाषा में, करणानुयोग की भाषा में बारहवें गुणस्थान तक मतिश्रुत ज्ञान की दृष्टि से परोक्षज्ञान है। कैवल्य ही साक्षात् प्रत्यक्षज्ञान है लेकिन जो बारहवें गुणस्थान तक जीव पहुँच रहा है, तेरहवें गुणस्थान तक पहुँच रहा है, वह किसके कहने से पहुँच रहा है ? इसलिये सूत्रकर्त्ता के सूत्र को एकान्त से मत समझ बैठना कि ये परोक्ष ही है। वो परोक्ष है इन्द्रियमन की सहायता के कारण, लेकिन ज्ञान आत्मा का गुण है। ज्ञान सामान्य की दृष्टि से आत्मा ही ज्ञान है और ज्ञान ही आत्मा है चाहे मतिश्रुतज्ञान हो, चाहे अवधि-मनःपर्ययज्ञान हो, चाहे केवलज्ञान हो। ज्ञायकत्वदृष्टि से ज्ञान सामान्य की दृष्टि से ज्ञान आत्मा में ही होता है। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान - ये ज्ञानगुण की पर्यायें हैं, लेकिन गुण ज्ञान है। यदि आत्मा का गुण मतिश्रुतज्ञान होता है तो फिर अवधि, मनःपर्यय के होने पर उस गुण का विनाश मानना पड़ेगा। केवलज्ञान होने पर चारों ज्ञानों का विनाश मानना पड़ेगा और गुण का विनाश मानना पड़ेगा। गुण जो होता है वह त्रैकालिक होता है। गुण का कभी विनाश नहीं होता है। इसलिए ये पाँचों ज्ञानगुण की ही पर्यायें हैं। ज्ञानगुण सामान्य ग्रहण करना। यदि आप कहो कि आत्मा का ज्ञानगुण कैवल्य है, कैवल्य को आत्मा का गुण मानते हो त्रैकालिक तो फिर जब-तक कैवल्य प्रकट नहीं होता

तब-तक आत्मा निर्गुणी रहती है क्या ? और निर्गुणी हो गई तो फिर ''**गुणपर्ययवद्द्रव्यं**'' गुणों से, पर्यायों से युक्त जो है उसका नाम द्रव्य है। गुण का अभाव मानते हो तो द्रव्य का भी अभाव होता है। एक भी क्षण ऐसा नहीं कि द्रव्य गुण-पर्याय से रहित हो, द्रव्य गुणपर्याय से शून्य हो।

प्रकाशत्वशक्ति जो है जिसकी हम व्याख्या प्रारम्भ कर रहे हैं यह बड़ी गहनतम शक्ति है, न्याय से परिपूर्ण है। सर्वज्ञत्वशक्ति को कल आपने देखा स्वच्छदशक्ति को देखा, सर्वज्ञता में पंख झलक रहे थे। अतन्मयीभूत पर प्रकाशत्वशक्ति जो है ये स्वसंवेदभूत है। स्वसंवेदभूत आत्मा को नहीं मानते हो तो आप सब नैयायिक हो जाते हो। जो आत्मा को स्वसंवेदी नहीं मानता है उसके लिए इष्टोपदेशभाष्य में विषय स्पष्ट किया है।

स्वसंवेदन सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यंत सौख्यवानात्मा लोकालोक विलोकनः ।।इष्ट./21।।

संवेदन जो शब्द है इसकी पहले व्याख्या होना चाहिए। भैया! आत्मा के अनंत गुणों की व्याख्या, अनंत गुणों की चर्चा बाद में होना चाहिए है। पहले आपको आत्मा का संवेदीपना स्वीकार करना चाहिए। यदि स्वसंवेदन को नहीं स्वीकार सके तो आत्मा पर का संवेदन कर रही है और पर का संवेदन कर रही है तो किससे कर रही है ? पर का जो संवेदन है वह स्व से ही है कि पर से है ? चाहे पर का संवेदन हो, चाहे स्व का संवेदन हो, आत्मा कभी पर से संवेदन नहीं लेगी स्व से ही लेगी। संवेद्य स्वानुभूति, ये स्वानुभूति जीव का गुण है, धर्म और स्वानुभूति गुण जहाँ पर विलीन हो गया तब जीवत्व का विनाश होता है।

घटमहमात्मना वेद्मि ।।प.मु.सू.।।

ये मूल सूत्र इसलिये कह रहा हूँ, मैं घट को अपनी आत्मा से वेदता हूँ। भैया! आपने शीत का वेदन किया? लोग कहेंगे कि स्पर्शेन्द्रिय से वेदन किया। स्पर्श इन्द्रिय चर्म को ही मान रहे हो कि आत्मा के भावेन्द्रिय को स्वीकार रहे हो। भावेन्द्रिय यदि नहीं होगी तो चर्म मात्र से स्पर्श का वेदन नहीं होगा। पर भाव के लिए द्रव्येन्द्रिय होना आवश्यक है। जो संवेदन है वह भावेन्द्रिय लब्ध्युपयोग क्षयोपशम 'लब्धन लब्धि' प्राप्ति उपयोग भावेन्द्रिय। वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम, स्पर्शेन्द्रिय नामकर्म का क्षयोपशम, नोकर्म का क्षयोपशम - ये सब सामग्री होगी और मतिश्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होगा तभी जीव स्पर्श का वेदन करेगा। जब-तक नोकर्म, वीर्यान्तरायकर्म, मतिश्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम नहीं होगा और स्पर्शेन्द्रिय का क्षयोपशम नहीं होगा तब-तक ये जीव किसी भी वस्तु का संवेदन नहीं कर सकता।

जितने यहाँ जीव विराजते हैं, भैया! अपनी शक्ति का दुरुपयोग मत करना। हर कार्य के लिए वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम चाहिये-ही-चाहिये पड़ेगा। जो आप सुन रहे हो इसमें भी वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम है। जिनके मंद है, वे अस्वस्थ हो जाते हैं। ये गर्मी जो सहन कर रहे हो इसमें भी

वीर्यान्तरायकर्म का क्षयोपशम चाहिये और जो जीव जिनागम की गूढ़ विद्या में प्रवेश किये बिना स्वानुभूति का खण्डन करने बैठ जाता है कि चतुर्थ गुणस्थान में स्वानुभूति नहीं होती है। ज्ञानी! स्वानुभूति तो प्रथम गुणस्थान में भी होती है और आप स्वानुभूति को नहीं स्वीकारते हो तो आप जीवत्व का घात कर रहे हो।

हमारे आचार्यों ने 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' जैसे ग्रंथ लिखे, अष्टसहस्री जैसे ग्रंथ लिखे। जिनमें स्वसंवेदन की सिद्धि लिखी है। भैया! आप कैसे जीव हो ? एक निश्चयाभाषी के द्वेष में स्वानुभूति का खण्डन करके बैठ गये हो। भैया! ये मालूम क्या हो रहा है ? जैसे अन्य दर्शनों ने एक दर्शन के खण्डन में इतनी ज्यादा दौड़ लगाई कि स्वयं का ही खण्डन कर गये। स्वानुभूति का खण्डन नहीं करना कभी जीवन में। भैया! इन सैतालिस शक्तियों पर अनेक बड़े विद्वानों ने बड़ी जगह पर प्रवचन किये हैं पर मूलगुणों का उन्होंने खुलासा किया है। वो अपने हिसाब से देखें। भैया! स्वानुभूति, स्वसंवेदन शब्द ध्यान रखना। शुद्धात्म-अनुभूति नहीं कह रहा हूँ, स्वानुभूति कह रहा हूँ। श्वानुभूति नहीं।

'इष्टोपदेश' ग्रंथ में पूज्यपादस्वामी ने क्या गहरा रहस्य खोला, माणिक्यनंदीस्वामी ने 'परीक्षामुखसूत्र' में उस परम रहस्य को खोलकर रख दिया। साकार, अनाकार; जो ज्ञानदृष्टि की व्याख्याएँ की हैं उसमें मीमांसा आदि सम्पूर्ण दर्शनों को कैसे लक्ष्य में रखा। जैसे वाहन-चालन के काल में चालक की ही मुख्य भूमिका होती है। उसके मस्तिष्क में लिखा है कि जाना कहाँ है? मुख्य बिन्दु मस्तिष्क में हैं और हाथ में पकड़े है स्टेयरिंग। इस काँच को भी देख रहा है, उस काँच को भी देख रहा है। सामने भी देख रहा है, पीछे भी देख रहा है और हाथ में पकड़े है स्टेयरिंग। विश्वास रखो, चक्के के नीचे कोई जीव न आ जाये। धोखे से ही घात होता है, जानकर घात नहीं करता। वह अज्ञानी होगा तो जानकर घात करेगा। चालक हार्न बजा रहा है इसका मतलब क्या है ? उसके अंदर में दया है। फिर भी देखा मुख्य लक्ष्य कहाँ है ? जहाँ पहुँचना है, पर बीच का तो किसी को ध्यान ही नहीं है कि ये और कौन-कौन से लक्ष्य लेकर चल रहा था। ऐसे ही हमारा मुख्य लक्ष्य जो है स्वात्मानुभूति, शुद्धोपयोग अनुभूति, रत्नत्रय मोक्षमार्ग। इनके बीच में जो मिथ्यात्व के कीड़े-मकोड़े हैं, अज्ञानता के एकान्तता के गति अवरोधक हैं, इन पर भी ध्यान रखते हैं हमारे आचार्य भगवन्। कुचलते नहीं और गति में मोड़ आये नहीं, अहिंसक शैली है। मिथ्यात्व का खण्डन हो जाये, सम्यक् का मण्डन हो जाये पर किसी के प्राणों का खण्डन हो न पाये - ये है स्याद्वादियों की शैली। किसी भी मिथ्यालिंग को, **किसी भी मिथ्याभेष को, किसी भी मिथ्याप्रतिमा को, किसी भी मिथ्याक्षेत्र को एक जैन मुनि कभी सिर नहीं झुकाते लेकिन किसी भी मिथ्यादृष्टिजीव की हिंसा की बात भी नहीं करते।** मिथ्यादृष्टिजीव की हिंसा की बात कर दी यदि जैन मुनि ने तो चींटी की रक्षा व्यर्थ हो जायेगी। मिथ्यादृष्टिजीव हिंसनीय नहीं है। निवृत्ति मिथ्याधारणा से होना चाहिए, मिथ्याश्रुति से होना चाहिए, मिथ्याचरण से होना चाहिए, मिथ्यादृष्टियों से नहीं। मिथ्यादृष्टियों का लोप करके तुम सम्यक् का पालन नहीं कर पाओगे। जो तुम्हारे जिनालय में भी विराजमान हैं भैया!

उनको आकार देनेवाला सम्यक्दृष्टि नहीं था, मिथ्यादृष्टि ही था। जो ये प्रतिमा; जिसकी बनी है, जिसको तुम सिर टेक रहे हो वो भी एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि ही है।

गोम्मटेश बाहुबली जयवंत हो, जयवंत हो पार्श्वनाथस्वामी ग्वालियर के गोपाचल में - ये दोनों प्रतिमायें बाहर निकली ही नहीं हैं, पृथ्वीकायिक ही है। मित्र ! जघन्य अवगाहना से युक्त एक बालू के कण में भी एकेन्द्रियजीव पृथ्वीकायिक हो सकता है कि नहीं ? इसलिये जो खदान से निकल आया है वह अचेतन ही है ऐसा नियत नहीं है। जो मंदिर में विराजे आदिनाथस्वामी हैं वे भी सचित चेतनभूत हो सकते हैं। ज्ञानी ! ये मैं अपने मन का नहीं बोल रहा हूँ। देवसेन स्वामी ने न्याय का एक महान् ग्रंथ लिखा 'तत्त्वस्वभावप्रकाश'। इस ग्रंथ में स्पष्ट लिखा हुआ है। जैसे ही इसका स्वाध्याय किया और संघ में हमने चर्चा की तो बहुत सारे त्यागीगण इस बात को झेल नहीं पाये। मैंने कहा - भाई ! तुम्हारे झेलने, न झेलने से आगम को हम झूठा नहीं कह पायेंगे। जब तुम झेलने लग जाओ तब इसको समझ लेना। नमक की डली को पीसने के बाद भी गर्म करने की क्या आवश्यकता है ? बिना प्रासुक, अग्नि-पक्व किये बिना, आप त्यागियों के आहार में वह नमक नहीं दे देना, क्योंकि जघन्य अवगाहना से युक्त उसमें जीव हो सकता है। पहला प्रश्न ये है। दूसरा प्रश्न, अड़तालीस मिनिट बाद उसमें अन्य जीव उत्पन्न हो जायेंगे, इसलिये प्रासुक नमक ही प्रयोग करें।

ज्ञानी ! जो जीव पाषाण में हैं। कोई ये कहे कि मैं सम्यक् को ही सिर टेकता हूँ। हम सम्यक् गुणों को ही सिर टेकते हैं यहाँ तक तो सफल हैं, पर हम मिथ्यात्व को सिर नहीं टेकते हैं; ये बात तुम्हारी सफल नहीं है। यदि दिगम्बर मुनि कहे, श्रावक कहे कि मैं मिथ्यात्व के सामने सिर झुकाता ही नहीं हूँ तो फिर तुम सम्मेदशिखर के पर्वत के पैर क्यों पड़ते हो? पूरा पहाड़ एकेन्द्रियमिथ्यादृष्टि है। पर्वत की प्रदक्षिणा क्यों लगा रहे हो ? मुमुक्षु ! ये पत्थर सिद्ध भगवान् है क्या? फिर तुम सिर किसको झुका रहे हो ?

भैया! बहुत सारे लोग ऐसे हैं, जब-तक आप श्रीजी को सिर पर रखे हो तब-तक वो नमस्कार नहीं करते, ऐसे अज्ञानी पाखण्डी लोग हैं। बोलते हैं कि यदि मैंने नमस्कार किया तो लोग समझेंगे कि पण्डितजी को नमस्कार कर लिया। उनकी शंकाओं का समाधान होना चाहिए। पर ये जिनवाणी है और कोई इसको पढ़ रहा है, बहुत सारे लोग जिनवाणी को नमस्कार नहीं करते, क्यों? पंडितजी बैठे हैं। ऐसे ही किसी तीर्थ में यक्ष-यक्षिणी के चित्र बने हुये हैं, उस पर बड़े भगवान् की विशाल प्रतिष्ठित जिन प्रतिमा है तब भी लोग उन्हें नमस्कार नहीं करते। बोले - यक्ष-यक्षिणी के उपर बैठे हैं। नैनागिरिजी में पार्श्वनाथ की प्रतिमा है उनका जो आसन है वह पूरा नाग का ही है। मैं ये क्यों कह रहा हूँ ? बहुत सारी प्रतिमायें बड़े-बड़े तीर्थों में उनके जो आसन हैं उनके दोनों तरफ यक्ष-यक्षणी बने हुये हैं। मूल विषय की बात करो आप। कुण्डलपुर में मुख्य जो आसन था उसमें शेर है कि नहीं ? तो जो शेर है यक्ष-यक्षिणी बने हुये हैं तो ज्ञानी! तुम इस अज्ञानता में मत चले जाना कि ये सिंहासन के शेर हैं।

आचार्य प्रवर भगवन्त अमृतचन्द्रस्वामी आत्मा की सैंतालीस शक्तियों में से प्रकाशत्वशक्ति की व्याख्या कर रहे हैं **'स्वयं प्रकाशमान विशद स्वसंवित्तिमयी प्रकाशशक्ति:'** जो प्रकाशशक्ति है वह स्वयं प्रकाशमान ज्योतिर्मय है यहाँ ज्योतिर्मय से तात्पर्य कोई औदारिकज्योति ग्रहण मत कर लेना। अन्यथा लोक में जैसे लोग दीपक की ज्योति को आत्मा का स्वरूप मानने लग गये। कोई आभामण्डल को आत्मा का स्वरूप मान रहे हैं और आत्मा का प्रकाश कहकरके दीपक की आराधना में लवलीन हो गये, जबकि ज्योति से तात्पर्य **'तज्जयति परं ज्योति:'** वह केवलज्ञान ज्योति है न कि दीपक की लौ है। आत्मा जाज्वल्यमान है, प्रकाशमान है इसका तात्पर्य ये नहीं है कि दिख गई। धवल है प्रकाशपुंज है। ज्ञानी! जिस प्रकाशपुंज की तुम व्याख्या कर रहे हो वह पुद्गल का परिणमन है वह पुद्गल की पर्याय है। आत्मा पुद्गल की पर्याय नहीं है।

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ।।स.सा.।।

जो अरस है, अरूप है, अगंध है, अव्यक्तव्य है, वह संसार से शून्य है, ऐसा जीव का भूतार्थ स्वरूप है। किन्हीं लोगों ने प्रश्न खड़ा कर दिया कि हम अखण्ड ज्योति को नमस्कार कर रहे हैं, प्रकाश को नमस्कार कर रहे हैं; आप जैनियों ने भी तो नमस्कार किया है प्रकाश को। बोले कहाँ ? आपका समयसार महान् ग्रंथ है, उस ग्रंथ के व्याख्यान में हजार वर्ष बाद आचार्य अमृतचन्दस्वामी ने कहा है।

नम: समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ।।1।।

अरे भाई! अमृतचन्द्रस्वामी ने जिस ज्योति को नमन किया है उसको आप समझ ही नहीं पाये। जो स्वानुभूति से प्रकाशमान है ऐसे सम्पूर्ण परभावों से भिन्न है, ऐसा वह कौन? जो चेतन-स्वभावभूतभाव है उस स्वभावभाव को नमस्कार है। वही समयसार है। किसी भी प्रकार के प्रकाश की वंदना नहीं है यहाँ। इसलिये प्रकाशत्वशक्ति से तात्पर्य यहाँ न सूर्य के प्रकाश की व्याख्या चल रही है, न दीपक के प्रकाश की व्याख्या चल रही है, यहाँ तो एकमात्र स्वसंवेदीज्ञान की व्याख्या है।

''स्वयं प्रकाशमान प्रदीपवत्'' दीपक जो है, स्वयं प्रकाशमान है। स्वयं प्रकाशमान दीपक से स्वयं को प्रकाशवान करने के लिए किसी दीपक की आवश्यकता नहीं है। जिस दीपक से पर का बोध हो रहा है वह दीपक स्वयं का भी बोध कराता है। अंधकार में कोई सामग्री है उसको ग्रहण करने के लिए देखने के लिये, हम दीपक लेकर जाते हैं उस दीपक के माध्यम से हमने भिन्न वस्तु का बोध किया। जो भिन्न वस्तु का बोधक है क्या वह स्वयं का बोधक नहीं है? जो भिन्न को प्रकाशमान करा रहा है, भिन्न का बोध करा रहा है, ये यहाँ पर अमुक वस्तु रखी हुई है, ये दीपक के प्रकाश में आपने देखी तो क्या उस दीपक को देखने को देखने के लिए दूसरा दीपक लेकर जाओगे ?

जैसे दीपक स्वपरप्रकाशी है ऐसे ही ज्ञान स्वपरप्रकाशी है। स्वयं को भी प्रकाशित करता है, पर को भी प्रकाशित करता है। वैशेषिकयोग ज्ञान ज्ञेय से भिन्न मानता है। ज्ञाता से, ज्ञान ज्ञाता से भिन्न है और वह पर ज्ञान से ही आत्मा जानती है और अनुभूति स्वयं से लेती है। वैशेषिकदृष्टि के अनुसार आत्मा भिन्न ज्ञान से जानती है, स्वयं से नहीं जानती है, स्वयं का संवेदन नहीं कर रही है। ऐसा बोल रहा है, लेकिन अनुभूति स्वयं से लेता है। जब अनुभूति स्वयं से ले रहा है आत्मा। स्वयं की ही अनुभूति ले रहा है वह किससे ले रहा है ? किसके द्वारा ले रहा है ? लोक में कितने प्रकार के भ्रम हैं और ऐसी बड़ी-बड़ी पोथियाँ लिखी हुई हैं, मोटे-मोटे ग्रंथ लिखे हैं हर दर्शन ने अपने आत्मा को जड़ सिद्ध करने के लिए। जड़दृष्टि-जीवों ने बड़े-बड़े मोटे-मोटे ग्रंथ लिखे हैं आत्मा को अज्ञानी सिद्ध करने के लिए। पूरे ज्ञान के क्षयोपशम का प्रयोग कर डाला।

यदि कोई जैन वर्तमान में आत्मा को ज्ञानी नहीं स्वीकारता तो वह जीव भी वैशेषिकयोगदर्शन में प्रवेश करता है। श्लोकवार्तिक, राजवार्तिक, अष्टसहस्री, न्यायकुमुदचन्द्र, प्रमेयरत्नमाला, सत्यानुशासनपरीक्षा - ये न्याय के परिपूर्ण ग्रंथ इस बात के लिये कह रहे हैं कि हे जीव! यदि आपने आत्मा को ज्ञानी नहीं स्वीकारा, आत्मा को संवेदी नहीं स्वीकारा तो आप योगदर्शन में प्रवेश कर जाओगे। ये अध्यात्म न्याय का विषय चल रहा है।

ज्ञानी ! न्यायदीपिका तो जैनदर्शन का न्याय के छात्रों के लिये कुंजीभूत ग्रन्थ है। जो जीव ज्ञान को आत्मा से भिन्न स्वीकार रहा है, आत्मा ज्ञान से भिन्न जानता है, ज्ञाता ज्ञान से जानता तो है परन्तु पर-ज्ञान से जानता है। ज्ञान और ज्ञाता इन दोनों के बीच में युत संबंध लगा रहा है जबकि इनके मध्य में युत संबंध नहीं है,अयुत संबंध है। समवायकरण जो है। जैन दिगम्बर समवायकरण को स्वीकारते हैं लेकिन हमारा समवायकरण जो है वह अयुत है। ये संज्ञा लक्षण प्रयोजन की दृष्टि से मात्र भेद करता है, लेकिन प्रदेशत्व की दृष्टि से गुण-गुणी में किंचित् भी भेद नहीं करता है। स्वसंवेदन प्रकाशत्वशक्ति, गुणस्थान को गौण करके व्याख्यान करेगा तो स्वसंवेदन है और गुणस्थान को प्रधान करके व्याख्यान करेगा तो स्वसंवेदन है। गुणस्थान त्रैकालिक रहनेवाली वस्तु नहीं है। यत्रतत्र कोई बाहर का प्रश्न नहीं करना, भीतर प्रवेश करिये। **गुणस्थान आत्मा का धर्म नहीं है, मार्गणास्थान आत्मा का धर्म नहीं है, जीव-स्थान आत्मा का धर्म नहीं है। ये विभावदशायें हैं, ये सौपाधिकदशायें हैं।** गुणस्थान नियम से भव्य जीवों के नष्ट होंगे। जब-तक गुणस्थान नष्ट नहीं होंगे तब-तक भगवान्, सिद्ध नहीं बनेगा। सिद्धपरमात्मा गुणस्थानातीत, मार्गणास्थानातीत, जीवस्थानातीत, संज्ञातीत, संसारातीत हैं।

जो ग्रंथ ये अपने सामने विराजमान हैं, ये अपने लिये मात्र निर्णायक हैं। निर्णय करा रहा है, निर्णय आप कर रहे हो, लेकिन ये भी ज्ञान का विषय चल रहा है। ये भी आपके ज्ञेय का विषय बन रहा है, प्रमेय बन रहा है, लेकिन प्राप्ति आपको करना पड़ेगी पुरुषार्थ-पूर्वक और जब-तक इस ग्रंथ को प्रमेय नहीं बना

रहे, अपना ज्ञेय नहीं बना रहे, तब-तक भैया! आपको वस्तुतत्त्व की स्वतंत्रता का बोध नहीं होगा। जब वस्तुस्वतंत्रता का बोध नहीं होगा तो निजआत्मा का शोध किस विषय पर करोगे ? अर्हन्त पर्याय त्रैकालिक नहीं है, सिद्ध पर्याय त्रैकालिक नहीं है। अर्हन्तपर्याय प्रकट हुई है, सिद्धपर्याय प्रकट हुई है - ये कर्मसापेक्षदशायें हैं और औदयिकभाव कर्मसापेक्ष है, क्षायिकभाव कर्मसापेक्ष है, क्षयोपशमिकभाव कर्मसापेक्ष है, एकमात्र पारणामिक भाव कर्म-निरपेक्ष है। जो संवेदन है वह त्रैकालिक ही है।

मुझे विश्वास है, जैसा मैं यहाँ बोल रहा हूँ काश! कोई विद्वान् बोलता तो हो सकता है उसको उठा दिया जाता। भैया! विद्वान् को चाहिये है बोलने के पूर्व विश्वास उत्पन्न करे और इतने गहरे में प्रवेश करके व्याख्यान करे। भूमिका पहले रख दे फिर इसके बाद चर्चा करे। स्वसंवेदन, सिद्धों तक के संवेदन की चर्चा कर लें, फिर आते हैं आपके संवेदन के पास। जीव का सामान्य धर्म, जीव का विशेष धर्म; जड़द्रव्यों की दृष्टि से देखेंगे, पौद्गलिक द्रव्यों की दृष्टि से देखेंगे, चेतनद्रव्यों की दृष्टि से, अचेतनद्रव्यों की दृष्टि से देखेंगे तो जीव का स्वसंवेदन विशिष्टगुण है, असाधारणगुण है। जीवों-जीवों की दृष्टि से देखेंगे तो निगोदिया से लेकर सिद्धों तक स्वसंवेदन साधारण गुण है। जब कर्मचेतना, कर्मफलचेतना और ज्ञानचेतना इन चेतनात्रयी की दृष्टि से देखेंगे तो जीव, संसारी जीवों का कर्मचेतना, कर्मफलचेतना साधारण गुण है और ज्ञानचेतना का संवेदन सिद्धों का असाधारण गुण है; शुद्ध ज्ञानचेतना।

अब ऐसा लगता है आपको कि मुझे घर चलाने में मेरे दिमाग में बहुत सारे विषय लेकर चलना पड़ता है। संसार की व्यवस्थाओं के लिए बहुत दिमाग चलाना पड़ता है। मित्र ! जैसे संसार के संचालन के लिये आपको बहुत सारे विषय मस्तिष्क में ज्ञेय बनाकर चलना पड़ते हैं, आज आपको अनुभूति में आना चाहिये है कि ऐसे ही सिद्ध बनने के लिये इस जीव को अपने ही भीतर के अनंतगुणों को ज्ञेय बनाकर चलना पड़ता है और एक-एक गुण पर घंटों-घंटों नहीं, अनन्तानन्तभव लगाना पड़ेंगे तब कहीं तू हे जीव ! परमज्ञायकभाव को प्राप्त कर सकेगा।

सम्यग्दर्शन एक बार प्रकट हो गया तो असंख्यातभव से भी काम चल सकता है। अर्द्धपुद्गल परावर्तनकाल में जीव असंख्यातबार जन्म-मरण कर सकता है। हे जीव! षट्गुण हानि-वृद्धिरूप में परिणमन है और वह कोई एक गुण का परिणमन नहीं है, अनंतगुण-स्वभावी आत्मा में अनंतगुणों का ही षट्गुण हानि-वृद्धरूप परिणमन चल रहा है। एक मेरे जीवत्व में असंख्यात लोकप्रमाण परिणामों की दशा चल रही है और जितने प्रकार के परिणामों की दशा है प्रत्येक परिणाम का षट्गुण हानिरूप परिणमन स्वतंत्र है। जैसे मेरे शरीर में सात धातुयें हैं, इन सातों धातुओं का उत्पाद-व्यय स्वतंत्र है। इनका षट्गुण हानिरूप परिणमन स्वतंत्र है और आठ प्रकार के कर्मों के माध्यम से जो आठ गुणों का आच्छादन चल रहा है उन आच्छादनपने का परिणमन भी स्वतंत्र है और आठ गुण जो प्रकट होंगे उन आठ गुणों का परिणमन भी स्वतंत्र है प्रत्येक गुण का, लेकिन तब भी ज्ञानी अखण्ड एक को देखेंगे तो अखण्ड आत्मा

एक है और अखण्ड द्रव्य को ग्रहण करोगे आप तब मात्र ज्ञायकस्वभाव को ग्रहण करना।

जो ज्ञानस्वभाव है वह परमभाव है, इसलिये असंख्यात लोकप्रमाण स्पर्धक का परिणमन चल रहा है। लक्ष्य एक-एक गुण पर जायेगा क्रम से, लक्षण एक-एक का करोगे क्रम से, परंतु काम सबका हो रहा है अक्रम से। एक-एक अंग का वर्णन कर पाओगे क्रम से, पर अंग अखंड हैं। अक्रम से एक क्षायोपशमिकज्ञान, एक करण, कर्मजन्य ज्ञान क्रम से हो रहा है। मेरा मतिज्ञान, मेरा श्रुतज्ञान कर्मजन्य है कि करणजन्य है ? स्यात् करणजन्य है, इन्द्रियजन्य है, कर्मजन्य है, कर्म के क्षयोपशम से है और कर्मकरण से युक्त है, लेकिन केवली का ज्ञान, न कर्मजन्य है, न करणजन्य है।

जो क्षायिकज्ञान है वह अक्रमभावी है। क्षायोपशमिकज्ञान है वह क्रमभावी है। अज्ञानता कहाँ आ रही है? तुम क्रमभावी से अक्रमभावीज्ञान को पकड़ना चाहते हो। आगम से परिभाषा तो जान सकते हो, आगम से उसका व्याख्यान तो कर सकते हो, लेकिन परोक्ष आगम से तुम प्रत्यक्ष कैवल्य की अनुभूति नहीं ले सकते हो। भूल ये चल रही है क्रमजन्यज्ञान से ये जीव अक्रमभावीज्ञान पर दृष्टि डाल रहा है। प्राप्ति का उपाय तो खोजिये, लेकिन अप्राप्य को प्राप्य मत मान लीजिये। जितनी संसार की पर्यायें जीव की हैं, वे शाश्वत पर्यायें नहीं हैं। सिद्धपर्याय भी जीव की शाश्वत पर्याय नहीं है, त्रैकालिक पर्याय नहीं है, उत्पन्न हुई है। सिद्ध शाश्वत हैं क्या ? आदि अनंत उत्पन्न हुये हैं, अब नाश को प्राप्त नहीं होंगे, लेकिन ऐसा क्या स्वसंवेदन जीव का उत्पन्न हुआ है जो शाश्वत वस्तु है, शाश्वत गुण है, शाश्वत स्वभाव है, उसे ही जीव नकार दे इससे बड़ी दुर्बुद्धि क्या होगी ?

स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, आगम; ये परोक्ष प्रमाण के पाँच भेद हैं। अब भैया! कॉलेज की स्मृति है, आप मंदिर कितने समय से आ रहे हो ? छोटे से। भैया! यही तो स्मृतिज्ञान है। आपको दस वर्ष की उम्र से मंदिर आने की स्मृति है, ये स्मृति स्व से है कि पर से है ? स्व से है तो आपको भूत का भी संवेदन होता है। आप स्वाध्याय में बैठे हो, आपको इसकी भी अनुभूति हो रही है। वर्तमान की अनुभूति आप ले रहे हो। कल फिर से आप मंदिर जाओगे, पूजा भी करोगे, दान भी दोगे। एक जीव देख रहा है मेरे घर के द्वारे पर मुनिराज खड़े हुये हैं। मैं दान दूँगा मुनिराज को , अभिषेक करूँगा, भगवान् की पूजा करूँगा। जिनवाणी का स्वाध्याय करूँगा। भविष्य की अनुभूति होती है कि नहीं ? भविष्य का संवेदन होता कि नहीं ? हे जीव! भूत का भी संवेदन होता है, वर्तमान का भी संवेदन होता है, भविष्य का भी संवेदन होता है। स्वसंवेदन त्रैकालिक है।

बच्चों को हमने ऐसा पढ़ा कर रखा है कि बेटा! इस विषय का तुमको खण्डन करना है। अब उसकी शैली बन गई खण्डन करने की और वाक्पटुता आ गई। ये लम्बी उम्र तक खण्डन करता रहेगा, लेकिन इस बालक को ये मालूम नहीं रहेगा कि मैं खण्डन तो कर रहा हूँ पर इसके आगे-पीछे कुछ है कि नहीं ? ऐसे ही कई लोग अपने आप को दार्शनिक घोषित कर गये और उन दार्शनिकों को आगे-पीछे का मालूम

ही नहीं था कि मैं जिस बात को कह रहा हूँ उसके नियम क्या हैं ? इसलिये निश्चय-व्यवहार अध्यात्म; इस सबको कहने के पूर्व आगम ग्रंथों का गहनतम पारायण करना होगा अन्यथा आप अपने ही मुख से अपना घात कर लोगे।

स्वसंवेदन, ये विषय आपको समझ में आ रहा है ? आत्मा का संवेदन त्रैकालिकधर्म है। अभी मैंने इसमें सम्यक् शब्द नहीं जोड़ा है, न मिथ्यात्व शब्द जोड़ा है, मात्र संवेदन। क्या मिथ्यादृष्टि को संवेदन नहीं होगा ?क्या सम्यग्दृष्टि को संवेदन नहीं होगा ? सम्यक् मिथ्यात्व - ये श्रद्धागुण का परिणमन है। परिणमन शब्द से पर्याय ग्रहण करना - विपरीत श्रद्धा ले तो मिथ्यात्व, सम्यक् श्रद्धा ले तो सम्यक्। मित्र! सम्यग्दर्शन के तत्त्व और मिथ्यादर्शन के तत्त्व बाह्य प्रमेय की दृष्टि से, व्याख्याताओं की दृष्टि से, स्वरूप परिभाषा बनानेवालों की दृष्टि से भिन्न हो सकते हैं, लेकिन सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन के तत्त्व भिन्न-भिन्न नहीं हैं, वही हैं।

आप लोग तो अभी प्रश्न कर सकते हो सम्यग्दर्शन के तो सात तत्त्व हैं। 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं'। सांख्य पच्चीस, वैशेषिक नौ, कोई सोलह तो फिर ये आप कह रहे हैं कि वही तत्त्व है, अच्छा विषय है। देखो, आपको आनंद आये या न आये पर मुझे तो आनंद आ रहा है। ये गणनाओं में भेद कर लिये, अपने चिन्तन में भेद कर लिये, अपनी परिभाषाओं में भेद कर लिये, मान्यताओं में भेद कर लिये, लेकिन वस्तु में क्या भेद है? जो पच्चीस तत्त्व हैं वे सांख्य के हैं। आपने कभी सिद्धचक्रविधान का नाम सुना। उसमें पच्चीस तत्त्वों को अर्घ्य चढ़ाया है, विपरीतता से युक्त होकर चढ़ाओगे तो सांख्य के मिथ्यात्व में चले जाओगे, क्योंकि हम पर्यायों की व्याख्या कर रहे हैं। यदि हम आपको इस बच्चे का पिता देखते हैं तो ये मुझे भिन्न दिखाई देगा और मैं आपको जीवतत्त्व देख रहा हूँ तो जीवतत्त्व की दृष्टि से ये त्रैकालिक मेरी श्रद्धा का विषय है, श्रद्धेय है। भैया! क्या आप मेरी श्रद्धा का विषय नहीं हो? क्या आप मेरे सम्यक् का विषय नहीं हो ? भैया! जीवतत्त्व जो लिखा है ग्रंथों में वह पुद्गल की पर्याय है-शब्द है और शब्द जो है वह पर का बोधक होता है, स्वयं का बोधक नहीं होता है।

भैया ! शब्द नाम की कौनसी वस्तु है यहाँ, जरा दिखाईये? एक लिखा हुआ शब्द है। एक व्यक्ति पर हम उपचार किये हैं, एक युद्धभूमि में विजय होती है और एक आपका नाम विजय है। भैया! विजय वस्तु नहीं है, एक द्वंद करके विजय कह रहा है, एक नाम रखकर विजय कह रहा है, एक ने प्रतिमा की स्थापना करके उसमें विजयदेव लिख दिया सो विजयदेव बन गया। इन सबको देखेगा, जितनी संज्ञायें हैं, उपचार किये जा रहे हैं, वे सारे-के-सारे उपचार आपको भेदों में डाल रहे हैं। एक व्यक्ति के लिये आपने विशुद्धसागर कहना प्रारंभ कर दिया है, दूसरे व्यक्ति के लिये आपने कोई दूसरा नाम दे दिया; ये सब संज्ञायें हैं।

मेरा एक प्रश्न है आप सबसे, तीन लोक में जितने जीवद्रव्य हैं, जबसे हैं तब से आज तक कितने और बढ़ गये, कितने और कम हो गये ? अब सुनना ध्यान से, न कम हुए हैं, न बढ़े हैं; पर्यायान्तर हुये हैं, क्षेत्रान्तर हुये हैं, लेकिन जितने हैं ये उतने ही हैं। भैया! मान लो, कोई आकाश नाम का लड़का खड़ा हुआ है। आपने उससे कहा कि तू आकाश है। भैया आकाश ! कमरे में ये संज्ञा है पर भाई मेरी प्रीति विजय नाम से है और आप से नहीं है। मानाकि मेरे मित्र! मेरी प्रीति आपसे नहीं है तो क्या आप जीवतत्त्व नहीं हो और जब मैं **'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं'** सूत्र पढ़ूँगा तो भैया! उसमें तू आयेगा कि नहीं आयेगा ? भैया! मुनि जब बनना, श्रावक तब बनना, पहले इस विषय को समझ लेना और ये विषय समझ में नहीं आया तो आप 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' तत्त्वार्थसूत्र में पढ़ते रहोगे, लेकिन सम्यग्दृष्टि नहीं हो पाओगे । आप मेरे ग्रुप का नाम लेकर परेशान हो रहे हैं, मैं आपके ग्रुप का नाम लेकर परेशान हो रहा हूँ, लेकिन 'तत्त्वार्थश्रद्धानं' में आपका ग्रुप आयेगा कि नहीं आयेगा ? जो बौद्ध हैं, सांख्य हैं, मीमांसक हैं, चार्वाक हैं, भाट्य हैं, कुमारिल हैं, जैन है, जैमिनीय है; इनमें सम्यक्त्व कहाँ ? इसलिये जिसकी पर्याय **'पज्जयमूढा हि परसमया'** जो पर्यायों में विमूढ़ हो रहे हैं वे परसमयी हैं। **'द्रव्यदृष्टि महेश्वराः, पर्यायदृष्टि नरकेश्वराः'**। जिनकी द्रव्यत्व पर दृष्टि है वे ही महेश्वर हैं और जो मात्र असमानजातिपर्याय में लिप्त होकरके अपने ज्ञानगुण को नाश कर रहे हैं, नाश होगा नहीं, विपर्यास कर रहे हैं वे जीव नरकेश्वर हैं। अहो नरकेश्वरो! बनो महेश्वरो। भैया! मेरा विश्वास मानो, जब स्वतंत्रता का वेदन हो जायेगा उस दिन तू किसी भी वंश का नहीं बचेगा। एक मात्र संसार की दृष्टि से पञ्चेन्द्रियजाति का तो कहलायेगा। जो ये जगत् की जातियाँ हैं तू किसी का भी नहीं है। स्वरूप में जायेगा तो पञ्चेन्द्रियजाति का भी नहीं होगा। एकमात्र जीवतत्त्व होगा, जीवाऽस्तिकाय होगा, जीवद्रव्य होगा।

एक सज्जन बोले मेरे से, महाराजजी! अमुक व्यक्ति ने मेरे से ऐसा बोल दिया। मैंने कहा - इधर आओ, वह जीवद्रव्य है कि नहीं, जीवाऽस्तिकाय है कि नहीं , जीव पदार्थ है कि नहीं? उस पर मैं श्रद्धान करता हूँ। तुमको मालूम आज चतुर्दशी है। अभी-अभी हम लोग दीक्षा लेकर आये हैं। देखो ये लोग हँस रहे हैं **'छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं'** अभी हम लोग बृहद् प्रतिक्रमण करके आये हैं। ये मैं बहुत अच्छे से कह रहा हूँ और लक्ष्य ये है कि हे भगवन् ! जब मेरी अंतिम समाधि हो तो मैं उत्तमार्थ प्रतिक्रमण करके जाऊँ। जीवन का अंतिम प्रतिक्रमण होगा वह।

आचार्यों के मिलन की बहुत बड़ी विद्या है ये। यदि मैं किसी आचार्य से मिलूँ अथवा वो आचार्य हम से मिले तो मैं सबसे पहले उनसे क्या पूछूँगा और वे मेरे से क्या पूछेंगे ? रत्नत्रय पूछने के बाद आपके प्रतिक्रमण पूरे हुये कि नहीं? जब भोजपुर में मैं आचार्यश्री के पास गया था, सब समाचार के बाद मुझे बड़ा आनंद आया कि मूलाचार की एक विद्या आज सामने आयी। आचार्यश्री बोले-क्यों, आपके सभी प्रतिक्रमण हो गये? मैंने कहा - आचार्यश्री! मैंने अपने जीवन में दीक्षा के इतने काल बीतने पर भी एक भी

प्रतिक्रमण को छोड़ा नहीं है। मैं दिन में तीन प्रतिक्रमण करता हूँ रात्रिक, दैवसिक, ईर्यापथ। आठ दिन में अष्टमी का प्रतिक्रमण अलग होता है। पन्द्रह दिन में एक पाक्षिक प्रतिक्रमण अलग होता है। पाँच वर्ष में युगप्रतिक्रमण अलग होता है और जब अंतिम श्वास का समय आयेगा उसकी तैयारी कर रहा हूँ कि श्वास जब निकले जब निर्यापकाचार्य के चरणों में पूरा प्रतिक्रमण कर लूँ।

गुरुमूले-यति-निचिते-चैत्य-सिद्धांत वार्धिसद्घोषे।
मम भवतु जन्म जन्मनि, सन्यसन् समन्वितं मरणम्।।स.भ.।।

जहाँ गुरुओं का पादमूल हो, यतियों का समूह हो, सिद्धांत के घोष बज रहे हों और चैत्यालय विराजमान हो, ये उत्कृष्ट स्थान हैं। ऐसे स्थान पर मेरा मरण हो जाये भगवान् और कुछ नहीं चाहिए। अब मुनि बनना पड़ेगा, ये पक्का मानिये, तात्पर्य मार्गणास्थानातीत, गुणस्थानातीत; ये तो आपने सैद्धांतिक-आगमिक भाषा का प्रयोग कर लिया। मित्र करिये, अलग वंशातीत, आम्नायातीत, परम्परायातीत, देहातीत, नामातीत, क्षेत्रातीत; नगर, पंथ, संस्था, आम्नाय इन सबसे भिन्न जो है। मैं इन सबसे भिन्न ही हूँ, जब-तक ये झलक नहीं आ रही है, मैं स्पष्ट कह सकता हूँ चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि इनको नय-विवक्षा से तो अपना कहेगा, लेकिन स्वरूप-विवक्षा से इनको नहीं मानेगा और जब-तक इनको मानता रहेगा तब-तक चतुर्थ गुणस्थान नहीं है।

ज्ञानी ! लोकव्यवहार के लिए संज्ञाओं को तो संज्ञापित रखेंगे लेकिन आत्मदृष्टि में इन सबको उतना ही भिन्न मानेंगे जैसे कि चन्द्रगिरि और विन्ध्यगिरि। गोम्मटेश बाहुबली में कभी-कभी पुराना नाम भी ले लिया करो नहीं तो भूल जाओगे। जैनबिद्री, मूलबिद्री; गोम्मटेश की प्रसिद्धी में तुम जैनबिद्री को भूल गये हो। जैसे जैनबिद्री में दो पर्वत हैं-एक चन्द्रगिरि है एक विन्ध्यगिरि है। विन्ध्यगिरि पर बाहुबली स्वामी खड़े हुये हैं और चन्द्रगिरी पर भगवान् भद्रबाहु की गुफा है, समाधिस्थल। पार्श्वनाथस्वामी की विशाल प्रतिमा है वहाँ तो जैसे चन्द्रगिरि और विन्ध्यगिरि; इन दोनों में अत्यन्ताभाव है, दूरियाँ हैं। ऐसेही ज्ञानियो! मेरी आत्मा में और मेरी जाति, मेरा कुल, मेरा वंश, मेरा संघ, मेरी परम्परा इन सब में चन्द्रगिरि, विन्ध्यगिरि जैसा भेद देखिये।

जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणं ति जाणिदुं चयदि।
तह सव्वे परभावे णाऊण विमुंचदे णाणी।।35/स.सा.।।

भैया! धोबी के घर में कपड़े धुलने गये और धोबी के घर में आपके और किसी दूसरे की चादर को एक साथ धोया और धोकर के आप के घर में वापिस कर गया, लेकिन आपका चादर बदल चुका था। दूसरे घर में पहुँच गया, सूखा हुआ वह चादर। शाम को विश्राम के लिये आप तैयार हुये। आपने उसको अपने शरीर पर ओढ़ लिया बाद में अचानक नींद खुलती है और थोड़ा प्रकाश हुआ। आपको चादर बड़ा सुन्दर लग रहा था। रात्रि में दुर्गन्ध नहीं आयी उसमें और जैसे ही सुबह आँखें खुलीं और चादर पर दूसरे

का नाम अंकित पाया उसको देखकर के तुरंत ही फेंक देता है, अरे! ये मेरा नहीं है किसी का उतरन है।

मित्र! जैसे कोई पुरुष परद्रव्य को जानकरके छोड़ देता है वैसे ही ज्ञानी जीव अपने रागादिक कुभावभावों को परद्रव्य मान करके छोड़ देता है। न मैं आपका हूँ, न आप मेरे हो। मेरा रागादिकभाव भी मेरा नहीं है । हम दुनियां को कहाँ लपेटकर बैठेंगे। भैया! सत्य यही है इसलिये घर छोड़कर अपन लोग आये हैं। इतने से निर्णय के लिए, घर में तो व्यक्ति एक सोचेगा, दूसरा दो सुना जायेगा तो उसके परिणाम बिगड़ जायेंगे। भैया! जगत् की कोई सफाई करने के लिए तुम नहीं आये। यहाँ मात्र निज के परिणामों की सफाई करने के लिए आये हो। व्यवहार की भाषा में आकर के व्यक्ति आक्रोशित हो लेता है, लेकिन सत्य ये है जैनत्व की प्राप्ति आपने निज की सफाई के लिये की है, पर की सफाई-पुताई के लिए नहीं और न तुम रजक हो, न जमादार हो, तुम तो दिगम्बर मुनि हो। न समाज की सफाई करना है, न गलियों की सफाई करना है मात्र आप अपनी आत्म-गली की सफाई कीजिये। इसमें रागद्वेष की कीचड़ तो नहीं भर रही है । ये व्यावहारिक भाषा सीख मत लेना। यदि आपने व्यावहारिक भाषा सीख ली तो आपका आपसे बड़ा कोई शत्रु नहीं होगा।

जीव के जो राग-द्वेष परिणाम हैं, वे भी स्यात् पौद्गलिक हैं, क्यों ? पौद्गलिक कर्म के सहचर से हो रहे हैं इसलिए। उन्हें आत्मीक मानते तो जीव की विभावदशा, पौद्गलिक मानते हो तो कर्मसापेक्ष। दोनों परिणामों से वे राग-द्वेष अवस्था द्रव्य हैं वे भी पदार्थ बन गये तो आपके तत्त्व बन गये। उनको भी ज्ञेय बनाइये, उनको ध्येय बनाईये, परंतु उनको ध्यान में मत लाइये। अब आप ऐसा कहो कि महाराज जी! जो आप बोल रहे हैं वह सम्भव कैसे है? भैया! जब तक आप समझना ही नहीं चाहोगे तो सम्भव की बात कैसे ? जब आपने ये विषय सुना नहीं था तब आपने सोचा था कि इतना गहरा विषय भी हो सकता है? वह तो आपके लिये अवस्तुरूप लग रहा था। जो विषय यहाँ खुल रहा है जिसको बोध नहीं है उसको तो मालूम ही नहीं कि वस्तु है कि नहीं।

इस कक्ष में टेलीविजन की कितनी तरंगें हैं। अमेरिका में क्या हो रहा है, रूस में, जापान में, चीन में, भारत में और विश्व में क्या हो रहा है। अभी तुम यहाँ केन्द्र से कनेक्शन जोड़ लो, टेलीविजन रख लो, सब दिखाई दे जाता है। वे तरंगें यहाँ हैं, प्रदेश-प्रदेश की क्रम से आ रही हैं। जब पुद्गल की सूक्ष्मशक्ति इतनी हो गई है जो दिखाई नहीं दे रही, पर है। यंत्र लगा दिये तो दिख गई। ऐसे ही हमारे परिणामों की धारा, हमारे संवेदन की धारा आपको समझ में नहीं आ रही है । यदि छोटा यंत्र लगाओगे तो शुद्ध श्रुतज्ञान, शांत चित्त का ध्यान कर लो श्रुत से तो बहुत सारी बातें समझ में आ जायेंगी। उससे नहीं आयेंगी तो अवधिज्ञान का यंत्र लगाना पड़ेगा। उससे भी नहीं आयी तो मन के भीतर जो मन:पर्ययज्ञान है उससे और किसी से भी समझ नहीं आयेगी तब कैवल्य के यंत्र से देखोगे तो सारे विश्व में किस में किस समय क्या परिणमन चल रहा है सब झलक रहा है।

आप लोग वैज्ञानिकों की बातें सुनकरके आश्चर्य करके छोड़ देते हो। मैं सुनकर के आश्चर्य करता नहीं हूँ। कोई नयी-से-भी नयी घटना घट जाये तो भी मैं आश्चर्य नहीं करता हूँ। एक भैया आया, चुटकुला सुना रहा था। वह बोला – आप हँसते क्यों नहीं हो? मैंने कहा – क्या हँसना। तेरे भीतर हास्यकषाय भरी थी सो तूने हँस लिया यानी लोक में जो कुछ भी तुमको नया-नया दिखाया जायेगा वह कुछ भी नया नहीं है। वर्तमान की पर्याय की दृष्टि से आज तक छह द्रव्य न कम हुये न अधिक हुये हैं। अब क्या आश्चर्य करना, कुछ नहीं।

ज्ञानी ! चौरासी खण्ड का भवन बनाकर रख दिया। आपने ये कौनसा नया काम कर दिया? ये तो तीर्थंकरों के भवन थे ही पहले से। ये कोई नया नहीं कर दिया आपने, फिर क्यों गद्गद् हो रहे हो और ये कोई बड़ा काम नहीं है। चौरासी खण्ड के राग से दूर होकर जीना दिखाओ तब मैं कहूँगा कि आपने कुछ नया काम किया है इस पर्याय में। भैया! आपने बहुत श्रम करके बहुत सारे पैसे कमा लिये हैं और मंच पर आकर कह रहे हो कि देखो! मैंने इतना बड़ा भवन बना लिया है, इतनी दुकानें खुलवाली हैं। क्या सुना रहे हो ? संसारातीत होने की बात बताने की भावना हो तो सुनाओ आप। इसमें क्या रखा है? दीमक होते हैं वो भी बड़े ऊँचे-ऊँचे टीले बना लेती हैं। भैया! चिड़िया भी एक घोंसला बनाना जानती है। ये कोई बहुत महत्त्वशाली बातें नहीं हैं। देश में विचरण करो जरा, सौ गिरे भी मिल जायेंगे और बने भी मिल जायेंगे।

भैया ! जब भी मुनि बनो तो एक बार झाँसी क्षेत्र के आस-पास जरूर विहार करना। उस क्षेत्र के श्रावक बड़े चतुर हैं। वे सुबह से आपको जहाँ छोटे-छोटे किले हैं वहीं ले जाते हैं शुद्धि के लिये। जब किले में ले जायेंगे। तब आप दोनों काम करो, अपनी समिति का भी पालन करो और वहाँ बैठकर तत्त्व का चिंतन करो। यहाँ कभी लोग विश्राम किया करते थे, भोजन किया करते थे, वहाँ मल छोड़ने आये हैं। सबके दिन एक से नहीं होते हैं। कुछ ऐसे भी भवन हैं, जहाँ भूत भी डरते हैं रहने को, भूत भी नहीं रहते वहाँ।

स्वसंवेदन प्रकाशत्वशक्ति **'घटमहमात्मना वेद्मि'** मैं घट को आत्मा से वेदन करता हूँ। यह जो वेदन किया है वह परसापेक्ष वेदन किया है पर आत्मा से ही किया है। जैसे घट को मैं वेदता हूँ ऐसे ही मैं 'मैं' को वेदूँ। सम्यग्दृष्टि अपने में 'मैं' को वेदता है तब उसको सम्यक्गुण का आनंद आता है। देशव्रती अपने में 'मैं' को वेदता है तब उसको देशव्रत का आनंद आता है और महाव्रती अपने में 'मैं' को वेदता है तब उसको महाव्रत का आनंद आता है। अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीव परम शुद्धात्मा के स्वभाव में लीन होकरके अपने 'मैं' को वेदता है तब उसको शुद्धोपयोग का आनंद आता है।

मित्र ! जब आप 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' से कथन करोगे तो धारावाहिक का खण्डन करोगे और जब समयसार से कथन करेंगे तब धारावाहिक का मण्डन करेंगे। **'चिन्मयी चैतन्य स्वरूपोऽहम्'** मैं चिन्मय ही हूँ, चिन्मय ही था, चिन्मय ही रहूँगा। न मैं अचिन्मय हुआ था, न होऊँगा। मैं चैतन्य ही हूँ, धारावाहिक

हूँ, वही-वही हूँ। भैया ! मिश्री खाओ मीठी है तो आनंद तो आयेगा-ही-आयेगा। मैं अनादि से मिथ्यादृष्टि था, मिथ्या परिणामों से पर्याय का घात हुआ। अनिवृत्तिकरण, अपूर्वकरण, अधःकरण परिणाम किये। जो पूर्व में कभी आनंद नहीं आया था वह आनंद आज मिथ्यात्व के खण्डन करने पर आया है। अपूर्वार्थ अर्थात् जो मैंने पूर्व में नहीं किया था।

अब मैं कैसे कहूँ कि चतुर्थ गुणस्थान में आनंद नहीं है, जो कभी जीव ने पूर्व में सम्यक् का आनंद नहीं लूटा था उसका संवेदन आज कर रहा है। इसका मतलब चतुर्थ गुणस्थान में भी आनंद है। जो देशव्रत का आनंद कभी नहीं लिया था वह देशव्रत का आनंद ले रहा है इसलिये देशव्रत में भी आनंद है, जो महाव्रत का आनंद पूर्व में कभी नहीं लिया था वो ले रहा है, जो श्रेणी आरोहण पूर्व में नहीं किया था वह आज कर रहा है। ऐसा करते-करते आप ले जाइये चौदहवें गुणस्थान तक और सिद्धपरमात्मा तक; अपूर्वार्थ, अपूर्वार्थ और प्रतिक्षण में परिणमन होता है। मित्र! बड़े विश्वास के साथ समझना जिसे तुम यहाँ समझ रहे हो और कहीं इसको समझने का प्रयास करने लग गये तो तुम्हारे पास अन्य काम के लिये कहाँ समय मिलेगा। यहाँ समझने के बाद घर में समझने का प्रयास किया शब्दों में नहीं, उस अनुभूति का आनंद लेते हुये वेदन करने का विचार किया तो फिर तुमको जगत् के अन्य कार्यों के लिये कहाँ समय मिलेगा। ऐसी अलौकिक तत्त्वव्यवस्था को न जानकरके भैया! पर्याय पूर्ण कर ली तो इस युग में आकर के तूने कुछ भी नहीं किया, इसलिये जो प्रकाशत्वशक्ति है उस स्वसंवेदनग्राही की व्याख्या कर रहे हैं। **स्वयं प्रकाशमान विशद स्वसंवित्तिमयी प्रकाशशक्ति है।** जंगलों में, पर्वतों पर, वृक्षों के नीचे, सरिताओं के तट पर कैसे जीवन निकालते थे ? रोते-रोते नहीं, हँसते-हँसते नहीं, आनंदित होते-होते। हम योगियों के भीतर के आनंद को तो जानें, ये मुनीश्वरों के भीतर का आनंद है। बाहर की दुनियाँ बाहर अलग है और भीतर की दुनियाँ भीतर अलग है।

ज्ञानी ! मैं लोक में रहता हूँ पर मैं लोक में नहीं हूँ, लोक में हूँ। हे जीव! छह द्रव्य का नाम ही लोक है। आकाश का नाम लोक नहीं है। आकाश भी लोक तो है पर आकाश ही लोक नहीं है। छह द्रव्य जहाँ हैं उस लोक का नाम लोकाकाश है। व्यवहारनय से मैं लोकाकाश में हूँ, निश्चयनय से निजलोक में हूँ। जब-तक निजलोक का अवलोकन नहीं है तब-तक परलोक में भ्रमण करते रहोगे। वैराग्य होने के बाद वैराग्य की आवश्यकता है। साधक को विरागी हो जाना चाहिए है, बेकार का हो जाना चाहिये। बेकार आदमी नहीं होगा तब-तक वैराग्य से नहीं जी सकता है। जो वस्तु बेकार हो जाती है, वह पड़ी रहती है अपने चतुष्टय में और जब-तक काम की है लोग उसको पीसते हैं। ऐसे ही हे मुनिराजो ! अपने आप को बेकार कर लो। समाज में आकर ऐसा जीवन जिओ कि समाज के काम में ही नहीं आओ और समाज के काम में नहीं आओगे तो आनंद से जीओगे। बेकार हो जाओ कोई नहीं पूछेगा फिर बस कोई नहीं पूछेगा, ये ही आनंद है। भैया! प्रमादपूर्वक नहीं, जैसा समयसार में लिखा है वैसा।

भैया ! ये युवा मुनिराज बैठे हैं। यदि ये बेकार न जियें तो मेरी शांति समाप्त हो जायेगी। यानी इतने अच्छे लोग हैं ये, सब हुनर होने पर भी साधना में जी रहे हैं। पर इनके मन में भाव आ जाये कि मैं भी कुछ करने लायक हूँ, ऐसा विकार निकाल दो। बेकार हो जाओ संसार से तो अपने आप सिद्धशिला पर पहुँच जाओगे। साइकिल को कबाड़खाने में आदमी तभी डालता है जब पूरी बेकार हो जाये। ऐसेही तुम जब-तक संसार के कार्य करते रहोगे, ये संसार के रागी-द्वेषी तुम्हें छोड़नेवाले नहीं हैं। शरीर बेकार हुआ और एक कोने में पटक दिये जाओगे, कोई भी पूछनेवाला नहीं होगा। भैया! अपन तो देख रहे हैं कि बड़े-बड़े लोग जिन्होंने देश चलाये हों, बड़े-बड़े रिकार्ड बनाये हों उन्हें भी कोई नहीं पूछ रहा है।

भैया ! जब मालूम ही है तो ऐसा काम कर डालो। क्षीण होने से पहले अक्षीण हो जाओ। आचार्य भगवन्तों के मुख से भी मैं सुन चुका हूँ। **पिता बूढ़ा हो जाये तो बेटे बात भी नहीं मानते।** एक बार एक सज्जन आये वो रोने लग गये। मैंने कहा - भैया! क्या हो गया ? वो बोले - महाराज जी ! गृहलक्ष्मी भी गई और लक्ष्मी भी गई, कंगाल हो गया। मैंने उससे कह दिया कि भैया ! तू तो मालामाल हो गया। सो वह घूर-घूर कर देखता है और कहता है कि आप मजाक करते हो। मैंने कहा - मैंने तो जीवन में कभी मजाक नहीं किया अब क्या करूँगा। मेरा तो मजाक करने का त्याग है। मैंने कहा - भाई! सुन तेरा क्या गया ? दो ही ऐसे हेतु थे जो जीव को फँसाकर रखते हैं - गृहलक्ष्मी और लक्ष्मी। स्त्री और श्री; इन दो के चक्कर में दुनियाँ घूम रही है। तेरे तो दोनों चले गये, अब तू स्वतंत्र है। साधु बन जा लेकिन भीख माँगकर खा सकता है पर भिक्षु बनकर नहीं रह सकता। भैया! भीख माँगते नहीं दिखते क्या लोग और इन्हें देखो ये जैन मुनि चले जा रहे हैं। भीड़ लग रही है, लोग इन्हें मना-मना कर आहार करा रहे हैं। आहार के बाद बैण्ड बजा रहे हैं। भिखारी भी तो सोच सकते हैं, चलो मैं भी वस्त्र फेंके देता हूँ। ज्ञानी! ऐसे बाजे नहीं बजते और ऐसा सोचकर फेंक मत देना भैया, नहीं तो काम बिगड़ जायेगा। जब भीतर का गुरु बोले तब फिर देर नहीं लगती।

क्षेत्रकालानवच्छिन्नचिद्विलासात्मिकाऽसंकुचितविकाशत्वशक्तिः।।

यहाँ पर क्षेत्र और काल की अमर्यादारूप चेतन का जो विलास है उस रूप असंकुचनविकाश नाम की तेरहवीं शक्ति है। न मैं संकुचित होता हूँ, न मैं विकास को प्राप्त होता हूँ, मैं तो जो हूँ सो हूँ। देहाश्रित विकास है, देहाश्रित संकोच है। कर्माश्रित विकास है, कर्माश्रित संकोच है। देखो, ये कपड़ा है कितना बड़ा, मुट्ठी-प्रमाण संकुचित हो गया। छोड़ दिया, फैला दिया, विकास को प्राप्त हो गया पर जो मुट्ठी से खुला हुआ है, न संकोच, न विकास। ऐसेही आत्मा का जो स्वभाव है वह अपने निजप्रदेशत्व में लीन है। एक-एक शक्ति पर चला जायेगा तो वैराग्य तो लबालब टपकेगा।

ये भैया कहते हैं कि मैं कितना लम्बा हूँ, दूसरा कहता है कि मैं कितना दुर्बल हूँ, कोई कहता है कि देखो मेरा भाग्य मैं चमकता हूँ, मोटा हो गया हूँ। अरे भाई! ये तुम क्या सोच रहे हो? ये संकोच, विकास;

ये देहाश्रित, पराश्रित, पर्यायाश्रित हैं। आश्चर्य तब होता है जब आप लोगों जैसे वैरागी कहें कि मैं सूख रहा हूँ यानी वैरागी होकर मोटा होना चाहता है। आज के रागी तो घूमने जा रहे हैं, पतले होने के लिये और वैरागी चाहते हैं कि मैं मोटा हो जाऊँ। जितने भी आते हैं वे एक भी नहीं कहते कि महाराज ! आप ठीक हो, सभी कहते हैं कि आप बहुत दुबले हो गये हो। ये मात्र शरीर-ही-शरीर देखते हैं दूसरा कुछ देखते ही नहीं हैं। संकोच-विकास-शक्तिशून्य है, ये आत्मा का धर्म है और इस पर लक्ष्य चला गया तो जो संकोच है, विकास है, वह देहाश्रित है। आत्मा कभी अपने असंख्यात प्रदेशों से आज तक किंचित् भी न्यून नहीं हुई है, अधिक नहीं हुई है। अपने ही क्षेत्र में परिणमन कर रही है ये आत्मा। स्वदेहदृष्टि से संकोच-विकाश है, लेकिन स्वभावदृष्टि से असंख्यातप्रदेशी है।

होंति असंखा जीवे, धम्माऽधम्मे अणंत आयासे।
मुत्ते तिविह पदेसा, कालस्सेगो ण तेण सो काओ।। द्र.सं.।।

भैया! भले ही कठिन हो तब भी चिन्तन करना। पर सत्य ये है इन विषयों पर प्रवेश चला गया तो आज देखा-भैया! ये विद्वान् लोग शांति से चुपचाप सुन रहे थे। इसका मतलब है इन जीवों को भी कुछ खुराक मिल रही है। इस भव में न सही पर ये आज का निर्णय जरूर सम्यक्त्व का कारण बनेगा, चारित्र का कारण बनेगा और निर्वाण का कारण बनेगा।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।
आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।
भगवान् महावीर स्वामी की जय।

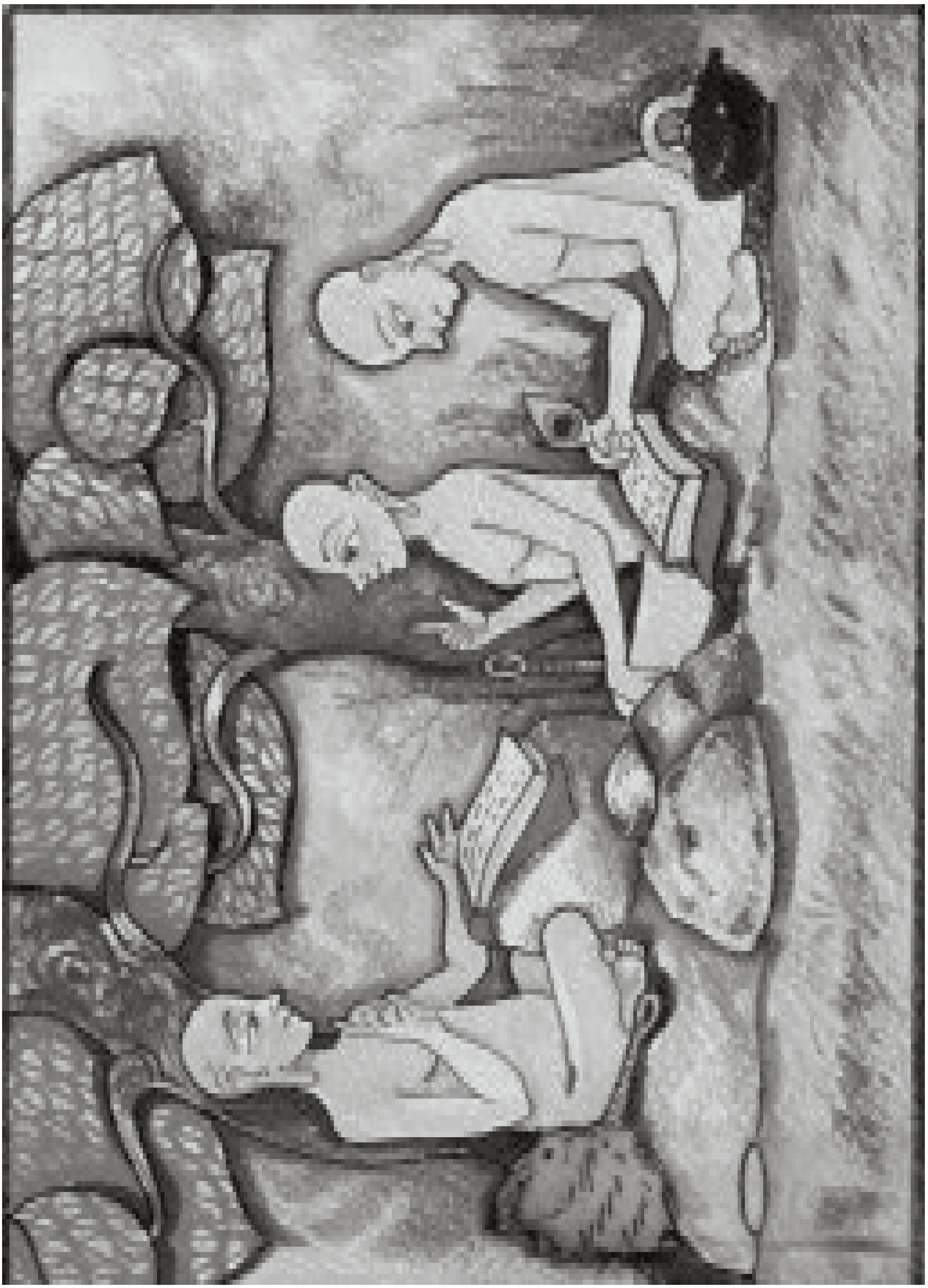

14

अकार्यकारणत्वशक्तिः

''अन्याक्रियमाणाऽन्याकारकैकद्रव्यात्मिका अकार्यकारणत्वशक्तिः।''

अन्य से न करने योग्य और उसका कारण नहीं ऐसा एक द्रव्य उस स्वरूप अकार्यकारणत्वशक्ति है।

15

परिणम्यपरिणामकत्वशक्तिः

''परात्मनिमित्तक ज्ञेयज्ञानाकार ग्रहण-ग्राहणस्वभावरूपा परिणम्यपरिणामकत्वशक्तिः।''

पर निमित्तक ज्ञेयाकारों के ग्रहण करने और स्वनिमित्तक ज्ञानाकारों के ग्रहण कराने के स्वभावरूप परिणम्य-परिणामकत्वशक्ति है।

16

त्यागोपादानशून्यत्वशक्तिः

''अन्यूनातिरिक्तस्वरूपनियतत्वरूपा त्यागोपादानशून्यत्वशक्तिः।''

जो न तो कम और न अधिक ही है - ऐसे सुनिश्चितरूप में रहने रूप है स्वरूप जिसका, वह त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति है।

समय देशना

बन्धुओ ! आचार्य प्रवर भगवन्त कुन्दकुन्दस्वामी ने अशरीरी भगवानात्मा के सहज स्वरूप का व्याख्यान करने वाला ये महान् ग्रंथ भारतीय तत्त्व मनीषा को प्रदान किया है। ऐसे अलौकिक ग्रंथ के ऊपर आचार्य अमृतचन्द्र ने अलौकिक टीकाग्रंथ लिखकर सारे जगत् को अवगत कर दिया कि लोक में जितने अध्यात्म के व्याख्याता हैं उन सम्पूर्ण अध्यात्म-व्याख्याताओं को आत्मख्याति टीका के अंदर अपने आप लघुता का साम्यदर्शन करा दिया है, उनकी लघुता स्वयमेव प्रकट हो चुकी है। इतना गहनतम सोच, गहनतम चिन्तन, अद्वैत की पराकाष्ठा की व्याख्या कहीं है तो आत्मख्याति टीका में है।

वेदान्त का अद्वैत, बौद्ध का अद्वैत, सांख्य का अद्वैत; ये सारे अद्वैत जो हैं, वे एकान्तभूत हैं। आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी का अद्वैत का प्ररूपण जो है, वह अनेकान्तदृष्टि से है। **विश्व में जितने भी द्रव्य हैं वे अद्वैत ही हैं, कोई द्रव्य द्वैत नहीं है। परद्रव्य का परद्रव्य में कभी परिणमन होता नहीं। परपर्याय का परपर्याय में परिणमन होता नहीं। परगुण का परगुण में परिणमन होता नहीं। निजस्वभावभूतदृष्टि से प्रत्येक द्रव्य अद्वैत है।** मेरा परभूत संकोच नहीं हुआ, परभूत विकास नहीं हुआ। द्रव्य अपने स्वभाव में व्याप्तिव्यापकरूप है। निजगुणों में व्याप्तिव्यापकभाव है। परगुणों में मेरा कोई व्याप्तिव्यापकभाव नहीं है।

जब मैं पर के व्याप्तिव्यापकभाव से शून्य हूँ, संकोच-विकाश से रहित हूँ, मेरी कभी हानि नहीं है, मेरी वृद्धि नहीं है तो मैं फिर बिलखूँ किस बात पर ? एक भी द्रव्य निजचतुष्टय से हानि-वृद्धिरूप नहीं हुआ। द्रव्यत्व को देखो, द्रव्यत्व को पहचानो, द्रव्यत्व को समझो, परमार्थदृष्टि से चिंतन करो - मेरी हानि नहीं हुई है, वृद्धि भी नहीं हुई, विकास भी नहीं हुआ, संकोचन भी नहीं हुआ फिर खिन्नता किस बात की, प्रसन्नता किस बात की ? विकास होता तो प्रसन्नता होती; नाश होता, संकोच होता तो खिन्न होते। खिन्नता भी कषायिकभाव है, प्रसन्नता भी काषायिकभाव है और बंध का कारण है। चित्त में खिन्नता न आने पाये ऐसा प्रयास करो, पुरुषार्थ करो। जब चित्त में खिन्नता नहीं आ रही है, ये तुम्हारा पुरुषार्थ पूर्ण हुआ। पुनः पुरुषार्थ करो, चित्त में प्रसन्नता भी नहीं आना चाहिए, आह्लाद आना चाहिए।

आत्म-अन्वेषी को, आत्म-हितैषी को, आत्म-सुखिया को कभी हर्ष नहीं आता है, प्रासाद आता है। आत्म-प्रासाद विशुद्धि, जो विशुद्धि है, वह आह्लाद है, गद्गद्भाव है, अपूर्व आनंद है, अनुभूति मात्र है। इसलिए हँसना, खिन्न होना, ये दोनों बन्धस्थान हैं। मोक्षमार्ग जो है परिपूर्ण निर्द्वन्द है। घट में पानी भर दिया, पानी हिल रहा है तब भी घट ठण्डा है। ज्ञानी ! नीर स्थिर हो गया, चंचलता समाप्त हो चुकी है, तब भी मटके के ऊपर सोंधापन दिखाई दे रही रहा है, शीतलता में कोई कमी नहीं है। घट के ऊपर सुहावनापन आ रहा है। पानी-विहीन घट सूखा हो जाता है और जिस घट में पानी भरा है वह घट दूर से दिखाई दे रहा है कि इसमें लबालब पानी भरा है, क्योंकि उसके अंदर स्निग्धता

है। ऐसे ही जब योगी ने योगों की सम्पूर्ण चंचलता का अभाव कराया है, अनुभूति का अभाव नहीं कराया है। ये पानी की स्निग्धता आने से जो झलकन हो रही थी वह समाप्त हो चुकी है लेकिन शीतलता आर्द्रता स्निग्धता घट के ऊपर बराबर झलक रही है। ऐसे जैसे ही आनंद की अनुभूति आयेगी, उस निर्ग्रन्थ तपोधन के चेहरे पर अपने आप वीतरागता की झलकन होगी और जो आत्मविशुद्धिमात्र है वही वीतराग सम्यक्त्व है।

प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य - ये सराग सम्यक्त्व के लक्षण हैं । आत्मविशुद्धि मात्र वीतराग जो आत्मा की विशुद्धि है, वही वीतरागता है। देशजिन संज्ञा चतुर्थ गुणस्थान से प्रारंभ हो जाती है, जिन छठे गुणस्थान से, जिनवर बारहवें गुणस्थान में, जिनवृषभ तेरहवें गुणस्थान में प्राप्त होती है। दूसरे आचार्य की विवक्षा है - देशजिन चतुर्थ से पाँचवें, छठे से बारहवें जिनवर, तेरहवें गुणस्थान में केवली भगवान् जिनवृषभ, चौदहवें गुणस्थान में तीर्थंकर केवली। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव के जिनसंज्ञा प्रारम्भ होगी, ये किस बात को जीत लिया? ये इसलिये जिन हो गये कि इन्होंने मिथ्यात्व को जीता है, अनन्तानुबंधी कषाय पर विजय प्राप्त की है।

क्षायिक सम्यग्दृष्टिजीव के लिये आचार्य अकलंकदेव स्वामी ने 'तत्त्वार्थराजवार्तिक' में वीतराग सम्यक्त्व कहा है। इस ग्रंथ में क्षायिक सम्यग्दृष्टिजीव को मिथ्यात्वकर्म की सात प्रकृतियों के क्षय की अपेक्षा से वहाँ वीतराग संज्ञा है, लेकिन चारित्र की अपेक्षा से अभी चारित्रमोहनीयकर्म का उदय है इसलिए सरागी है। वहाँ दर्शनमोहनीय कर्म का पूर्ण अभाव हो चुका है। वह क्षायिक सम्यक्त्व में अब कभी प्रकट नहीं होगा इसलिये वहाँ बीत चुका है दर्शनमोहनीयकर्म। इसलिये वीतराग। आत्मआह्लाद, आत्मप्रासाद, आत्मस्वसंवेदन; **जिसका मिथ्यात्व विगलित हो चुका है उस जीव के आनंद की लहर उसके भीतर न आये ऐसा नहीं हो सकता है।**

ज्ञानियो ! कुछ समय सामायिक के लिये भी निकाला करो और जिस धर्म को आप कर रहे हो उसकी अनुभूति भी तो लिया करो। मानाकि किसी पुरुष ने भोजन तो सुन्दर-से-सुन्दर बनाया है और स्वयं खाये न तो कैसे? भाई! आपने अभिषेक पूजन किया है, निर्ग्रन्थों को दान दिया है, जिनवाणी का श्रवण किया है; ये सब तो किया है। भोजन तैयार किया है पर उसका स्वाद क्या है वो भी तो लेकर बैठो शांति से। करने-करने तक कब-तक लगे रहोगे? हमारी करने की आदत रही, अनन्तपर्यायों में करते रहे, आपने करना बदल दिया है करना छोड़ा कहाँ है? पहले आप काम करते थे, अब यहाँ मुझे स्वाध्याय करना है, अब मुझे प्रतिक्रमण करना है, जाप करना है, प्रवचन करना है। अरे ज्ञानी ! क्या कर रहा है? ये सब उत्कृष्ट धारायें नहीं हैं। ये करने के भाव का अभाव कब करोगे ? जिसकी व्याख्या मैं कर रहा हूँ वहाँ जब-तब स्पर्श न कर पाओ तब-तक इस करनी को छोड़ मत देना। अरे ! पंचमकाल है, नहीं तो प्रमादी हो जाये जीव और वहाँ पहुँच न सके और ये पहले से छोड़कर बैठ जाये।

भैया ! साधना के मार्ग पर गतिमान होते हुये वर्धमान होना चाहिए कि हीयमान होना चाहिए ? एक सर्विस करनेवाला पुरुष जिसको वेतन पाँचसौ मात्र मिलता था वह आज पचास हजार ले रहा है। ऐसे भी लोग अभी भारत में जीवित हैं जिनकी सर्विस पाँचसौ रूपये से प्रारम्भ होकर पचास हजार पर समाप्त होती है। भैया! एक श्रावक तो कहता था कि महाराजजी! शासन कैसा पागल है? जब मैं काम करता था सो तनिकसा पैसा देते थे। आज मैंने काम छोड़ दिया है मेरे से शासन कोई काम नहीं लेता और पेन्शन हमको कई गुनी मिल रही है। शासन पागल नहीं है, कितना महान् शासन है, साधना में जब करने-करने का भाव था कर्म की निर्जरा कम होती है और साधना में करने का भाव समाप्त हो जाता है। **'यों चिन्त्य निज में थिर भये'** जब चित्त में स्थिर हो जाते हैं तो करने का भाव समाप्त हो जाता है फिर न करने में जो आनन्द की अनुभूति होती है, जो कर्मों की निर्जरा होती है, वह ज्ञानी! उस पेन्शन के समान है।

वर्धमान साधना होना चाहिये, हीयमान साधना नहीं होना चाहिये। आश्चर्य है, साधना के मार्ग पर चलते हुये चले ही नहीं, ऐसा लगता है वर्धमान साधना की ओर लक्ष्य नहीं जा रहा है। इतने काल के बाद वह जीव किसी दूसरे मार्ग पर जा रहा हो पर लगता है कि उसने टिकट जरूर लिया था पर दूसरी ट्रेन में बैठ चुके हो। पटरियाँ बदल जायेंगी, ट्रेन बदल गयी। जब तुम्हारा लक्ष्य रत्नत्राय धर्म था, सुखशक्ति पर लक्ष्य था, चितिशक्ति पर लक्ष्य था, वीरत्वशक्ति पर लक्ष्य था उस समय आप सर्वज्ञत्वशक्ति, दर्शित्वशक्ति को लक्ष्य लेकर चले थे, प्रभुत्वशक्ति पर लक्ष्य था, प्रकाशत्वशक्ति पर दृष्टि थी तो तुम स्वसंवेदन के स्थान पर परसंवेदन में क्यों लवलीन हो रहे थे ? भैया! अकार्यत्वकार्यशक्ति की ही भूमिका चल रही। आप दूसरी ट्रेन में बैठ गये हो, जहाँ वर्धमान चारित्र होना चाहिये था वहाँ तुम्हारा लक्ष्य निश्चयतीर्थ से भटककर व्यवहारतीर्थ में लिप्त हो गया। ये तुम्हारी वर्धमान चारित्र की दृष्टि को कर्तृत्वभाव की दृष्टि ने छीन लिया।

ज्ञानी ! अस्सी साल का वृद्ध भी आलू खाते देखा गया और पाँच साल का बच्चा आलू को फेंक देता है, ऐसे परिवार भी हैं। मेरे दादाजी ने कहा है कि इन्हें छूना भी पाप है। यदि अस्सी साल का वृद्ध आलू का सेवन कर रहा है तो आलू खाना प्रमाणित हो गया क्या? और पाँच वर्ष का बच्चा नहीं खाता तो क्या आलू को अभक्ष्य प्रमाणित किया जाये? ऐसे ही **ज्ञानी! साधना के क्षेत्र में, ज्ञान के क्षेत्र में, मोक्षमार्ग के क्षेत्र में, पर्याय की वृद्धता को मत देखना। यहाँ गुणों की वृद्धता को देखना।** नहीं तो कोई जीव कहे कि इतना वृद्ध साधक ये काम कर सकता है तो गलत थोड़े ही है। ये दृष्टि यहाँ नहीं है। यहाँ उस बच्चे को देखा जायेगा जो पाँच वर्ष का बालक आलू फेंक रहा है। आठ वर्ष का बालक दिगम्बरी दीक्षा ले रहा है और अस्सी-नब्बे साल का वृद्ध दीक्षा नहीं ले रहा है तो क्या कपड़े पहनना प्रमाणित किया जाये ? बिल्कुल नहीं किया जा सकता।

ऐसे ही जो निश्चय आत्मतीर्थ है उस आत्मतीर्थ से शून्य होकरके जीओ। यदि कोई व्यवहारतीर्थ में लिप्त होता है तो यहाँ आगम कह रहा है - नहीं, तुम भूल कर रहे हो। व्यवहारतीर्थ का आश्रय लेकरके निश्चयतीर्थ में प्रवेश करो। लोप दोनों का नहीं करना। **जो व्यवहारतीर्थ को हीन कह रहा है वह व्यवहारतीर्थ का शत्रु और जो तत्त्वज्ञान का निषेध कर रहा है वह निश्चयतीर्थ का शत्रु।** ऐसा आत्मख्याति टीका में अमृतचन्द्रस्वामी ने लिखा है; स्पष्ट लिखा है **जो जीव परमात्मतीर्थ को नहीं स्वीकारता, वह निश्चयतीर्थ का शत्रु है और जो व्यवहारतीर्थ को नहीं स्वीकारता वह व्यवहारतीर्थ का शत्रु है।** परमार्थ पर जब तक तुम नहीं पहुँचे हो तब तक व्यवहार का आश्रय लो, लेकिन लक्ष्य आपको परमार्थ पर ही रखना पड़ेगा। दिगम्बरयोगी की बात तो छोड़िये, अविरत सम्यग्दृष्टिजीव प्रतिक्षण प्रतिपल शुद्धोपयोग की भावना भाता है और वीतराग चारित्र के अविनाभावीभूत वीतराग-सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव शुद्धोपयोग की अनुभूति लेता है। अविरत सम्यग्दृष्टि देशव्रती। प्रमत्त-गुणस्थानवर्ती मुनि; वे हरपल हरक्षण शुद्धोपयोग की भावना भाते हैं और पुरुषार्थ में रत रहते हैं।

आम के वन में नीम के वृक्ष होने पर भी वह आम का ही वन कहलाता है। नीम के वन में आम के एक दो वृक्ष होने पर भी वन नीम का ही है। शुद्धोपयोग की भावना भानेवाला जीव, अविरतसम्यग्दृष्टिजीव शुद्धात्मा को, वस्तु की यथार्थता परोक्षश्रुतज्ञान के माध्यम से जानता है, कि नहीं जानता ? अविरतसम्यग्दृष्टिजीव को एकसौ अड़तालिस कर्मों से आत्मा के भिन्नत्व का बोध है कि नहीं ? यदि एकसौअड़तालिस कर्मों से आत्मा के भिन्नत्व का बोध नहीं है तो सम्यग्दृष्टि किस बात का? और अविरत सम्यग्दृष्टिजीव को कर्मपौद्गलिकधर्मी है और आत्मा चैतन्यधर्मी है इस बात का बोध होगा कि नहीं ? वह इस बात को जानता है कि नहीं कि मेरे किसी भी आत्मप्रदेशों में कर्मों का एकभूतपना नहीं है? अविरतसम्यग्दृष्टिजीव, मैं कर्मों से भिन्न हूँ; कर्म का धर्म स्पर्श, रस, गंध, वर्ण है, मेरा धर्म ज्ञान, दर्शन, चैतन्यभूत है - इस विषय को जानता है कि नहीं ? जानता है, स्वीकारता है।

हे जीव ! मिट्टी से मिश्रित पानी है फिर भी पानी स्वतंत्र है कि नहीं ? मिट्टी स्वतंत्र है कि नहीं ? इसे तू जानता है कि नहीं, मानता है कि नहीं? पीकर देख, कैसा लगेगा? फिर भी पीता है क्या? उसे यदि पी भी ले तो मुँह बिगाड़ेगा कि नहीं ? हे जीव! अविरतसम्यग्दृष्टिजीव इस बात को जानता है, इस बात को मानता है लेकिन कर्म की प्रकृतियाँ आत्मप्रदेशों में जैसे नीर में क्षीर मिश्रित है, ऐसे ही आत्मा के प्रदेश में प्रदेशबंध मिश्रित है। द्रव्यानुयोग की दृष्टि को करणानुयोग से बाहर नहीं ले जाना, अन्यून प्रवेश है। जैसेकि स्वच्छत्वशक्ति से ये जान रहा है कि नीर नीर है, मिट्टी मिट्टी है फिर इस बात को पहचान रहा है कि अभी मिट्टी मिली हुई है उसको अभी पीयेगा नहीं ऐसेही सम्यग्दृष्टिजीव इस बात को बहुत अच्छे से समझता है कि मैं परिपूर्ण शुद्ध हूँ। मैं त्रैकालिक व्यवहार एवं निश्चयपक्ष से परिपूर्ण शुद्ध हूँ। कैसा शुद्ध हूँ ?

एक द्रव्य दूसरे का अकार्यकारी है, कार्यकारी नहीं है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कारण भी नहीं है, कार्य भी नहीं है। मेरी स्वच्छत्वशक्ति मेरे में निहित है। ये कर्म का बंध अवश्य है आत्मा में, उस बंध के कारण मैं भ्रमण भी कर रहा हूँ, लेकिन फिर भी बंध ने मेरे चैतन्य का विघात आज तक किया ही नहीं। जैसे मेघों से सूर्य आच्छादित है ऐसी ही मेरी आत्मा का त्रैकालिक जो शुद्धात्मभाव है वह कर्मपटल से आच्छादित है। अब हमें कर्मपटल विगलित करना है। मेरा चैतन्यसूर्य तो जो है सो है। मैं आत्मा के अनन्त गुणों को कहीं से लेकर आऊँगा, किसी को दूँगा, किसी से लूँगा; इसका तात्पर्य क्या हुआ ? मैं अपनी आत्मा के गुणों को किसी से मांगने नहीं जाऊँगा। मेरी आत्मा में अनंत गुण जो सिद्धों में विराजते हैं वे मेरे भीतर हैं लेकिन कर्म से आच्छादित हैं। मैं पूर्ण कुम्भ हूँ, मेरे में किंचित् भी रिक्तपना नहीं है। सम्यग्दृष्टिजीव ऐसा ध्यान कर रहा है, ऐसा चिन्तन कर रहा है। इससे बढ़िया सामायिक को क्या विषय मिलेगा।

ज्ञानी ! मिथ्यादृष्टिजीव को ग्यारह अंग का ज्ञान होता है, लेकिन श्रद्धान एक अंग का भी नहीं होता है । जो मैं कह रहा हूँ वह ज्यों-का-त्यों व्याख्यान कर सकता है, लेकिन आस्था में कुछ भी नहीं है। यहाँ जो व्याख्यान चल रहा है ये स्वभावदृष्टि का है। कर्मोपाधिकनिरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिकनय से संसार के सभी जीव सिद्ध के समान शुद्धात्मा हैं। उसमें भव्य भी हैं, अभव्य भी हैं। अब मिथ्यादृष्टि की क्या बात करना? अभव्यजीव भी शुद्धात्मा है। तो वह अभव्य कैसा? जो अपनी आत्मा की शुद्धता को कभी प्रकट नहीं कर पायेगा इसलिये अभव्य है, लेकिन शक्ति के कारण अभव्य नहीं है। त्रैकालिक शुद्ध पर यदि लक्ष्य नहीं है और त्रैकालिक शुद्ध के विरोध में तुम चल पड़े।

मेरा आप से प्रश्न है, जब आपके बेटे की माँ को यह मालूम है तो फिर क्या बात करूँ, आपके बेटे की माँ कितनी ज्ञानी है एक बर्तन में दूध भरा हुआ है। उसमें नेत्रों से किंचित् भी घृत दिखाई नहीं दे रहा है, लेकिन तब भी कितना बोध है उसको, क्या दृष्टि? तपा रही है, जमा रही है, बिलो रही है, क्या पानी मंथन कर रही है। पानी का मंथन नहीं चल रहा है यानी उसको इस बात का ख्याल है कि इसके अंदर घी है। उस माँ ने घी को देखा कि नहीं और जब दिख ही गया था तो निकालने की क्या आवश्यकता और दिखा नहीं था तो निकाला क्या ?

ज्ञानी! मैं क्या कह रहा हूँ, अविरतसम्यग्दृष्टिजीव को, देशव्रतीजीव को, महाव्रतीजीव को निजदेह के भीतर विराजा अपना भगवान् समझ में न आये तो ये पुरुषार्थ किसके लिये कर रहा है और यदि प्रकट हो ही गया है तो पुरुषार्थ कर क्यों रहा है? निश्चय-व्यवहारदृष्टि, अविरतसम्यग्दृष्टि तो छोड़िये मिथ्यादृष्टिजीव को दिखना प्रारंभ हो जाता है। भद्रसम्यग्दृष्टि हुये बिना तीन करण परिणाम करेगा किसके बल पर ?

भैया! भद्रमिथ्यादृष्टिजीव देव-शास्त्र-गुरु के पास में आ जाता है, क्यों आया ? वह जानना चाहता है कि जिसे मैं नहीं जान सका वह क्या वस्तु है जिसके बल पर आप जी रहे हो, आनंदित हो रहे हो। हम लोग कितने खुश रहते हैं। कभी चटपटा मिले तो प्रसन्न, खुश रहते हैं। कभी खारा मिले तो, फीका मिले तो प्रसन्न रहते हैं। कभी स्त्री दिखाई देती है, कहीं पुत्र दिखाई देता है, कभी सम्पत्ति दिखाई देती है। अनेक प्रकार के परद्रव्य मुझे मिलते हैं तब हम लोग खुश रहते हैं। पर हे महाराज! आप तो नग्न हो, दिगम्बर हो, इन सब द्रव्यों को बुद्धिपूर्वक छोड़े हो तब भी आपके चेहरे पर मुस्कराहट किस बात की है ? तुम्हारा जो आनंद है वह अंत का है और योगी को जो आनंद है वह अनंत का है और उसने अनंत को अंत में ही देख लिया। अंत यानी धर्म।

इन योगियों को देखो, ये भी मुस्करा रहे हैं और इनसे पूछो, आनंद है क्या? हाँ, है। किस बात का ? जब आपने तनिक-सा ज्ञान प्राप्त किया उसको देने में तुम मुस्करा रहे हो तो जहाँ ये केवलज्ञान मिला हो उसको देने में कितना आनंद आ रहा होगा। जब आप तनिक से श्रुत को प्राप्त करके देने में आनंदित होते हो। बेटा ! माँ के द्वारा खिलाई गई मलाई-पूड़ी में जो आनंद नहीं आता है जब तुम शिविर में बच्चों को पढ़ा रहे होते हो और दूसरे तुमको सुनते हैं तब तुमको कितना आनंद आता है। अहा! ये जो रस ले रहे हो, ये रस मनकषाय से हटकरके लेना प्रारम्भ कर दोगे तो प्रवचन के काल में जो आनंद आता है, ज्ञानी! वही आनंद तुम्हें क्षायिक प्रवचन में बदल देगा।

आपको तो मालूम ही है जैन समाज में आओगे, सम्मान तो मिलना ही है, तिलक होना ही है-इन दोनों अवस्थाओं को गौण कर दो। जो होना है उस पर विचार करो। क्यों करूँ? ये तो पर की पर्याय के आश्रित है, लेकिन जो मेरे भीतर का ज्ञानगुण है वह स्वाश्रित है। भैया ! जिह्वा पर प्रत्येक वस्तु का स्वाद नहीं आता। नमक का स्वाद जहाँ आता है वहाँ मीठे का नहीं आता और जहाँ मीठे का आता वहाँ नमक का नहीं आता और जीभ आपकी है एक ही है निश्चित स्थान पर ही आता है। जब कड़वी दवाई खिलाती है तो माँ क्यों अंदर रख देती है। व्याख्यान करना बुढ़िया को आये न आये पर वस्तुव्यवस्था बूढ़ी माँ को भी मालूम है कण्ठ का स्वाद अलग होता है। ये दृष्टांत क्यों आया, कोई बतायेगा? आपने परवस्तु का स्वाद लिया नहीं, परवस्तु को जान ही सकता है, ग्रहण नहीं कर सकता।

आज तक मैंने परवस्तु का भोग नहीं किया। देखो भाई ! मैं समयसार से बोल रहा हूँ। आप अनाचार में मत चले जाना। तत्त्व को समझिये। आपके निर्णय से नहीं बोलूँगा। तत्त्व के निर्णय को सुनिये। भैया! दर्पण में अग्नि देखी गई और भैया! आज तक दर्पण में अग्नि नहीं लगी फिर भी दर्पण में अग्नि दिखी, दर्पण में अग्नि दिखने से तो फिर दर्पण ही नहीं बचता। ऐसे ही केवली के ज्ञान में आग लग जाती तो केवली का ज्ञान ही नष्ट हो जाता। चराचर द्रव्य केवली के ज्ञान में झलक रहे हैं। अभी तो मैं अपनी बात कर रहा हूँ, केवली तो बहुत दूर पहुँच गये हैं।

भैया! इस जीव ने आज तक किसी भी द्रव्य का भोग नहीं किया, मात्र जाना है। रसना पर जब नमक रखा तो कैसा लगा जाना ही तो है भोगा कहाँ है? स्पर्श से स्पर्श करके जाना, रसना से रस को जाना, घ्राण से गंध को, चक्षु से वर्ण को और कर्ण से शब्द को जाना मैंने जाना ही तो है। मैं जाननहारा ही हूँ, वेदनभाव तो निज का ही है। हे भाई! तुम जाननहारे ज्ञायकभाव परमार्थ से हो कि व्यवहारदृष्टि से? ऐसे ही हो परमार्थदृष्टि से। भैया! ये लोग कल क्या करनेवाले हैं। खाओ-पिओ मस्ती में मस्त रहो और कहो कि मैं जाननहारा हूँ फिर वहाँ कहेंगे कि नहीं ज्ञानी! तू वहाँ भोक्ता है। भोक्ता रस ले रहा है जो बंध का कारण है। हे जीव! दोनों स्थितियों को देखना। रागभाव भोक्ता है, ज्ञायकभाव तो ज्ञाता है। मोहभाव भोक्ता है।

भैया! जो-जो तू शुभाशुभ कर रहा है उस काल में इसने गलत किया सो तुमने जान लिया, देख लिया और हजारों को बोल दिया। ये बहुत सरल है उपगूहन-शून्य स्थितिकरण-शून्य मिथ्यादृष्टि, लेकिन जब तू कमरे में बैठा अशुभ कर रहा था उसे तू जान रहा था कि नहीं ? उसे तू देख रहा था कि नहीं ? वह करने लायक था क्या ? फिर भी कर रहा था। उसे करते हुये को जानो, देखो फिर आप देखो कि आप क्या हो। भैया! जो क्रिया कर रहा है उसे नहीं जानो-देखो, जो अशुभ क्रिया को करने के लिये तेरा ज्ञान चल रहा है उसे जानो-देखो। भैया! निज का ही ज्ञान पकड़ने में आयेगा, यही भेदविज्ञान क्रिया आँखों से दिख जायेगी पर क्रिया आँखों ने की नहीं है। जो क्रिया कर रहा है वह कर्त्ता है और जो कर्त्ता है उसका करण कौन है ? ज्ञान है।

ये शब्द निकाल देना अपने हृदय से कि मैंने अपने जीवन में अज्ञानता से अशुभ किया है। तुमने एक भी अशुभ कर्म अज्ञानता से नहीं किया, परिपूर्ण ज्ञान के साथ किया है। अज्ञानता से किया होता तो कमरा बंद कैसे किया और अज्ञानता से किया होता तो पचास के पाँच रुपये कैसे पकड़ाये दूसरे को ? बिना टिकिट के तुमने यात्रा कैसे की ? ये अज्ञान था आप का? कोई भी काम जीव ने अज्ञानता में नहीं किया। वेदन भी किया तो ज्ञान से किया है। अशुभ का भी और शुभ का भी अज्ञानता से कोई वेदन नहीं किया फिर अज्ञान क्यों ?

''मोहेन संवृतं ज्ञानं'' इस दृष्टि से अज्ञान है, वैसे कोई अज्ञान नहीं। जब से समझ में आया है कुछ भी तब-तक का चिंतन आज प्रारम्भ कर लेना। आपको सब तस्वीरें झलक जायेंगी। सब प्रमेय सामने आ जायेंगे कि मेरी करनी कैसी काली थी। अशरीरी भगवानात्मा के ये काम कैसे? निद्रा की ताकत ही नहीं होगी तेरे घर में आ जाये। उस दिन तत्त्व का निर्णय और अपनी करतूतों को बिल्कुल दृश्यमान देख रहा हूँ। भैया! बहुत सारी प्रदर्शनियाँ धारावाहिक रील जैसी चलती हैं। भैया! आठ वर्ष के बाद सोचना कि मैंने कितने अभक्ष्य खाये। भैया! बुरा-बुरा पहले देखना-सोचना। ज्ञानी! बुरे से ही अच्छा ढँका हुआ है। जो भी अच्छाईयाँ होती हैं वे बुरे से ढँकी होती ही हैं। बुरा भी बुरे से ढँका होता है। गन्ने के अंदर बूरा भरा हुआ है, लेकिन तोड़ के देखोगे दिख नहीं रहा है।

भैया! महाराष्ट्र में किलो-दो किलोमीटर तक ऐसी सड़ान आती है, अंदर बूरा है। ऐसे ही जो खोटे भावों की दशा है, खोटे परिणामों की दशा है इनके भीतर ही बुरेभूत भगवान्-आत्मा निहित हैं। आप बुरे को हटा दो, बूरे को निकाल लो। ऐसा नहीं है क्या ? ऐसा ही है। इसे भी जानो, इसे भी पहचानो। गेहूँ के अंदर दूध भी है। जिन युवाओं के माथे ज्यादा दर्द करते हों, ये इनकी निजी गलतियों से। ज्ञान तो छानता है पर जब ज्ञान में राग मिला होता है तब भोक्ता है, कौन? ज्ञानी। व्यवहार से।

भैया! वैद्य बहुत सारी तुम्हारी गल्तियाँ जानता है। उनके लिये औषधियों की आवश्यकता नहीं है। पर ये भी जानता है कि युवा हैं, गलती नहीं सुधारेंगे पर औषधि खायेंगे। बहुत सारे औषधि खाने को तैयार हैं पर औषधि क्यों खाना पड़ रही है उस बात को ठीक करने को तैयार नहीं हैं। नपुंसकता बढ़ रही है, मस्तिष्क दर्द कर रहे हैं, आँखें दर्द कर रही हैं, जल्दी-जल्दी चश्मा लग रहे हैं, स्मृति विस्मृत हो रही है। डॉक्टर जान रहा है कि तेरी आँखें गड्ढे में धँस रही हैं इसका मतलब है ब्रह्मचर्य तेरा नष्ट हो चुका है और चेहरे की चमक, उमंग, उत्साह, शक्ति क्षीण हो चुकी है। एक युवा अपने आप थकान महसूस कर रहा है। डाक्टर कहेगा कि अमुक औषधि खा लो सो आप खाने को तैयार हो जाओगे, लेकिन ज्ञानी! अपने भीतर की औषधि को बचा लो तो जगत् की कोई औषधियाँ खाने की जरूरत नहीं है।

ब्रह्माण्ड में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, कोई स्थान नहीं है जो जैनत्व-शून्य हो। आप तो जैन उसे मानते हो जहाँ जिनेन्द्र की प्रतिमा विराजमान हो। अरे भाई! सामान्य पत्थर पड़ा हुआ है वहाँ जैनत्व है कि नहीं ? **''वत्थु सहावो धम्मो''**। पुद्गल द्रव्य है, कोई कुलिंग का मंदिर भी है, आकार में कुलिंग है, स्वभाव में देखिये वो भी पत्थर की मूर्ति है। बहिर-प्रमेय में भेद है, भावप्रमेय को देखिये। इसलिये ब्रह्माण्ड में जो कुछ है अनेकान्तमय ही है। स्याद्वाद उसको कहने की शैली है। भैया! मेरा मन बार-बार कहता है कि इन युवा विद्वानों को देखो। ये अनेकांत, स्याद्वाद, दर्शनशास्त्र का स्वाध्याय-अध्ययन कर लें तो सारे विश्व में एकांत के सितारे कहाँ चमकेंगे ? **ज्ञाता बनने के लिए कभी बूढ़े मत होना। मुनि बनने के लिये कभी जवान नहीं होना।** अंतिम श्वास चले तब भी कोई कहे कि ये विषय आगम का ऐसा है, हाँ सुनाओ। क्योंकि मुझे मालूम है कि इस विषय का संस्कार ही मुझे केवली भगवान् बनायेगा।

ज्ञानी ! संकोच-विकास-रहित मैं पूर्ण हूँ। अकार्यकारणत्वशक्ति, ये शक्ति कह रही है। **'अन्याक्रियमाणाऽन्या-कारकैकद्रव्यात्मिका अकार्यकारणत्वशक्तिः'।** मैं कारण भी नहीं हूँ। अन्य का मैं कार्य भी नहीं हूँ। मैं किसी वस्तु के द्वारा रचा गया नहीं हूँ। मैं किसी व्यक्ति के द्वारा रचा गया नहीं हूँ। आप कह सकते हो कि महाराज जी! मैं माता-पिता से उत्पन्न हुआ हूँ। मेरे मित्र! माता-पिता से तेरा शरीर भी नहीं बना, तू कहाँ से बन गया ?

भैया! इस कर्तृत्त्वबुद्धि को छोड़ दो कि मैंने बेटे को जन्म दिया है। उस जीव ने मनुष्यायु कर्म का बंध किया था और ये जीव कहता है कि, मेरे वीर्य और मेरी पत्नी के रज से संतान उत्पन्न हुई है। हे जीव! वो

रज तेरी वस्तु नहीं है, वो वीर्य तेरी वस्तु नहीं, वो पौद्गलिक है। पुद्गल से चेतन का जन्म कब होता है? आपने अपने उपादान में संतान को उत्पन्न किया है कि काम-विकार को उत्पन्न किया है ? तेरे भीतर संतान नहीं जन्मी थी, तेरे भीतर तो विकार जन्मा था। आप काम-विकार के कर्त्ता हो, काम-पुरुषार्थ के कर्त्ता हो । संतान तो अपने पुण्य के नियोग से आयी है। आपके अंदर उपादान जो था चैतन्य के भीतर वह न रज था, न वीर्य था, न शरीर था वो तो मात्र तेरे भीतर काम-विकार था। जो तेरे से भिन्न नहीं था वह तेरा था। जो मेरा होता है वह मेरे से भिन्न नहीं होता है। तेरे से जो धातु का क्षय हुआ है वह तेरे से भिन्न है। भैया! शरमाने का विषय नहीं है, समझने का विषय है। हे जीव ! आपके भीतर तो मात्र अशुभ विकारीभाव उत्पन्न हुये हैं। उस परिणति का तू कर्त्ता है। इसलिये हे जीव ! तू मेरा कार्य नहीं है, तू मेरा कारण भी नहीं है। अपने से मिलकर कहो कि मैं संतान का कार्य नहीं हूँ। मैं तो विकारीभावों का कारण हूँ और विकारीभाव ही मेरे में कार्य हुआ है उसकी पूर्ति के लिये ठीक है। व्यवहार में बड़े सम्मान होते हैं पिताजी-पिताजी पर सही तो बोलें पिताजी।

भैया! तू निमित्त है अपने अशुभभाव करने का, अशुभ भोग का तू निमित्त है। अपने अशुभ भाव करने का, जो तूने भोग किये उससे अशुभ आस्रवबंध हुआ है। उससे अशुभ दुर्गति होगी उसका तू निमित्त है। तू पर का क्या निमित्त है ? अब चाहे सिर पटको, चाहे हाथ पटको, भैया! कौन किसका कर्त्ता है। परमार्थदृष्टि से जब कोई किसी का कर्त्ता नहीं है फिर भी ये जीव सिर पर राग की पुटरियाँ लिये घूम रहा है। 'मैं' 'मैं' 'मैं', बकरी होना है क्या ? मेरे बिना कुछ हो ही नहीं सकता है। अरे! तेरे बिना कुछ नहीं हो सकता ?

ज्ञानी ! तुझे पता होना चाहिये कि कोई किसी का कार्यकारण नहीं है। **एक भी द्रव्य किसी भी द्रव्य की उत्पत्ति में कार्यकारण नहीं है। क्योंकि द्रव्य की उत्पत्ति होती ही नहीं है और जिसकी उत्पत्ति होती है वह होता ही नहीं। अवस्तु की उत्पत्ति होती नहीं है और वस्तु की उत्पत्ति होती नहीं है। पर्याय का परिणमन होता है।** जीव ऐसे सारे जगत् में जैनत्व को फैलायें तो लोग सोचेंगे कि क्या जैनदर्शन है।

विद्वानो ! न्याय पढ़ो, न्याय। आलापपद्धति, न्यायदीपिका पढ़ो। कारण क्या है, पढ़ने के साथ लगाना आना चाहिये। उस विषय का तर्क है उसका प्रयोग कहाँ करना है। मैं अन्य से अक्रियमान हूँ। **मैं किसी से उत्पन्न नहीं हुआ हूँ इसलिये अकार्य, मैं किसी को उत्पन्न नहीं करता हूँ इसलिये अकारण।** जब तुम किसी के उत्पत्तिकर्त्ता नहीं हो, किसी को उत्पन्न करने के कर्त्ता नहीं हो तो फिर इस कर्त्तादृष्टि में उलझ करके क्लेश को क्यों प्राप्त हो रहे हो?। **परचतुष्टय का मैं कुछ भी कर सकता नहीं हूँ और परचतुष्टय मेरा कुछ भी कर सकता नहीं है; ये द्रव्यत्वदृष्टि है।** मेरे द्रव्य का परिणमन जो पर्यायभूत चल रहा है उसके भी आप कर्त्ता नहीं हो। ये कलम पुद्गलद्रव्य है इसमें परिणमन चल रहा कि

नहीं ? इसके परिणमन के आप कर्त्ता हो? मैं हूँ? कालद्रव्य है? कालद्रव्य परिणत हुये को बता तो रहा है कि ये पुराना हो गया है पर काल किसी को परिणत कराता नहीं और काल किसीभूत परिणत होता नहीं। परिणतभूत को बताता है, मात्र सर्वज्ञ जैसा।

भैया! इन लोगों ने क्या किया जो भगवान् कह गये वो होना है। **अरे मेरे मित्र! जो जैसा होना होता है वह भगवान् के ज्ञान में झलकता है। सर्वज्ञ मात्र ज्ञाता है, वक्ता है; सर्वज्ञकर्त्ता नहीं है। ऐसे ही कालद्रव्य जो परिणत हो रहा है उसका बोध करा देता है कि ये उन्नीस साल का हो गया, ये बीस साल का हो गया लेकिन उस कालद्रव्य ने न किसी को उन्नीस का किया, न बीस का किया, वह तो जो है सो है।** न काल लेने आता है, न काल छोड़ने आता है, द्रव्य का परिणमन अपने चतुष्टय में होता रहता है पर व्यवहार से कहा जाता है कि इतने साल में बेचारा चला गया। लेकिन काल नहीं ले गया। कालद्रव्य ने कुछ भी नहीं किया। कण-कण स्वतंत्र है, अणु-अणु स्वतंत्र है।

भैया! जिसे तुम चाक्षुष अवस्था में निहार रहे हो वो ही सर्वस्व नहीं। वृक्ष के तना, शाखा, पत्रादि इन सब को देखने की आँखें सबके पास हैं पर ये बोध होना चाहिये है कि जितना विशाल वृक्ष है उतनी ही विशाल उसकी जमीन में जड़ें हैं। जड़ को देखे बिना पुष्प, पत्र, तनादि पर जिसकी दृष्टि है वह वस्तुतत्त्व का बोध नहीं कर सकता है। धर्म तना मात्र नहीं है; धर्म पुष्प, शाखा, पत्रादि नहीं है; धर्म जड़ों से प्रारम्भ होता है। क्या पुष्पों के सिंचन से वृक्ष फलित होगा ? क्या तना, पत्र, शाखादि के सिंचन से वृक्ष फलित होगा ? वृक्ष फलवान तो तभी होगा जब उसकी जड़ों में पानी जायेगा। ऐसे ही जितनी लोक की क्रियायें हैं, पुण्यकर्म की व्यवस्थायें हैं - ये सब तने, पत्ते, पुष्प की भाँति हैं।

जो वस्तुस्वतंत्रता का बोध है, ये धर्म की मूल जड़ है और जिसको मूल का बोध नहीं है उसका सम्पूर्ण शोधन पत्र फूल पर चल रहा है। **जिस जीव ने समझ लिया है मैं पर का कार्य नहीं हूँ, मैं पर का कारण नहीं हूँ, मेरा पर कार्य नहीं है, मेरा भी पर कारण नहीं है, मेरा पर कार्य नहीं है, मेरा भी पर कारण नहीं है। ये अकार्यकारणत्वशक्ति है। मैं त्रैकालिक हूँ।** मेरी त्रैकालिकता पर कोई विघ्न नहीं कर सकता। मैं भी पर की त्रैकालिकता पर कोई विघ्न नहीं कर सकता हूँ।

हे जीव ! अज्ञानतावश तू किसी की पर्याय के विघात का परिणाम कर सकता है। हे जीव! अज्ञानतावश तू किसी पर उपकार के भावों को ला सकता है। ये ध्रुवसत्य है कि इस पर्याय का नाश भी अपघात-परघात नामकर्म की सत्ता के साथ है। यदि अकालमरण भी होता है तो अपघात-परघात नामकर्म का उसमें साथ होना चाहिये है और अपघात-परघात नामकर्म का उदय नहीं है तो आप कोटि-कोटि उपाय कर लेना किसी का घात नहीं हो सकता। यश:कीर्ति जिसकी प्रबल है उसके लिये तुम अयश करने की चेष्टा करोगे उसके विपरीत उसका यश ही फैलेगा। जिसके शक्त्यांश अधिक होंगे उस ओर ही परिणमन होगा। अयश:कीर्ति के शक्त्यांश अधिक हैं जीव के, कोई उसका यश भी करना

चाहेगा तब भी वह अयश में ही बदलेगा और जिसकी यश:कीर्ति अधिक है कोई कितना ही अयश फैलाये लेकिन वह यश में ही बदल जायेगा। सिद्धांत का ज्ञान जिसको हो चुका है वह समझ जाएगा। ऐसा मत समझना कि व्यक्ति मात्र द्रव्यानुयोग से ही तटस्थ होता है, सिद्धांत से भी तटस्थ हो जाता है। द्रव्यानुयोग ये कहेगा कि क्यों तुम पर में लिप्त हो? सिद्धांत कहेगा कि पर का विघात करने के पहले उसके शक्त्यांशों का बोध कर लो।

जब व्यक्ति देखता है कि मेरी सामर्थ्य नहीं है तो व्यक्ति संधि करता है और देखता है कि संधि नहीं हो सकती है तो दाम-भय देता है और शक्तिमान है तो सामनेवाले को दण्डित करता है और दण्ड से नहीं मानता है तो भेदकर देता है। **ज्ञानियो! अशुभभावों के साथ तो भेद करके जीना। जब-तक शुद्धोपयोग में नहीं पहुँच पाओ तब-तक शुभोपयोग से संधि कर लेना और भीतर-ही-भीतर इन्द्रिय कसना, दमन करना और निज के परिणामों की विशुद्धि के परिणामों से शुद्धोपयोग का दाम देना, जिससे तेरी विजय कर्म-शत्रुओं से हो सके क्योंकि लोकधारा जो है ये स्वकर्माधीन है करणानुयोग की दृष्टि से।**

अपनों के बीच रहकर के भी हम अपनों को सुखी नहीं रख पाते हैं। भैया! जब पिता आसन पर बैठा हो और सुन्दर भोजन कर रहा हो, ऐसे काल में उस पिता का बेटा किसी रोग से ग्रसित हो, तड़फ रहा हो तो पिता चाहता है कि मेरे बेटे को पीड़ा न हो। पिता चाह ही सकता है पर बेटे की पीड़ा को दूर नहीं कर सकता है। कितने पिताओं के साथ ऐसी घटना घटती है। देखते-देखते, बिलखते-बिलखते बेटा दम तोड़ देता है पर पिता बेचारा कुछ भी नहीं कर पाता है। ऐसा नहीं होता क्या ? होता है।

भैया ! लोगों ने यह सोच कर रखा है कि मात्र अकार्यशक्ति बोल दो इससे शक्ति का पूरा ज्ञान हो गया। आप अकार्यकारणशक्ति कहाँ-कहाँ स्पर्श कराओगे ? हे पिता! तुम बेटे को सुखी करने के लिये अकार्य हो, अकारण हो। भैया! बेटे को दुःखित - घटना ने ग्रसित कर लिया। बेटे का एक्सीडेण्ट हो गया। यदि ये तत्त्वज्ञानी न होता तो फूट-फूट कर रोता। उस बेटे को छोड़करके मेरे पास आ गया। मैंने कहा-क्यों कैसे आये ? बोले - महाराज! मैं बोलकर गया था उन वचनों को कैसे टाल सकता हूँ? उसने कहा - बेटे का एक्सीडेण्ट हो गया। बोले '**अलंघ्यशति र्भवितव्यतेयम्**' उसकी होनहार निर्मल होगी तो मेरे आने पर भी वह बचेगा और होनहार अच्छी नहीं होगी तो मेरे होने पर भी नहीं बचेगा। धन्य हो ऐसे पिता की दृढ़ता को।

ये अकार्यकारणशक्ति यहाँ विराजमान हो जायेगी। तब तुम वहाँ किसी को दुःखी करने का विचार भी नहीं लाओगे, सुखी करने का भाव भी नहीं लाओगे। भैया! हम चाह ही पायेंगे पर उसको सुखी कर नहीं पायेंगे। एक पक्ष। एक जीवद्रव्य के साता का द्रव्य दूसरे को प्रदान किया जा सकता है क्या ? एक जीव की साता प्रकृति को, सातावेदनीय को, क्या दूसरे जीव को भेंट स्वरूप दिया जा सकता है ? क्या किसी

दूसरे जीव की असाता को किसी को समर्पित किया जा सकता है ? **भैया! हम दुःखी होना चाहेंगे तो ही जगत् के द्रव्य दुःख के हेतु बनेंगे और हम दुःखी नहीं होना चाहें तो जगत् के द्रव्य मेरे दुःख के हेतु नहीं बनेंगे।**

भैया ! अब योगी के पास पहुँचो। साता-असाताकर्म की प्रकृतियों को सन्धि के उपरांत, उदय में आने के उपरांत भी योगी पुनः कहता है - ये साता का द्रव्य, ये असाता का द्रव्य मुझे सुखी-दुःखी करने में अकार्यकारणभूत है। जितने करणानुयोग के ज्ञाता होंगे वे कुछ और ही सोच रहे होंगे। साता-असाता का द्रव्य मेरे को सुखी-दुःखी करने में अकार्यकारणभूत है। जब जितने आयेंगे साता-असाता दोनों आयेंगे। **जिस जीव ने निर्णय कर लिया है कि नोकर्म मेरा द्रव्य नहीं है, द्रव्यकर्म मेरा द्रव्य नहीं है, भावकर्म भी मेरा द्रव्य नहीं है - ये कर्म का उदय सुख-दुःख देने के लिये आया है पर मैं दुःख को दुःख ही नहीं स्वीकार रहा हूँ, सुख को सुख नहीं स्वीकार कर रहा हूँ। आत्मा द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से भिन्न है, उसमें इनका अत्यंताभाव है।** जब मैं असाता को असाताभूत ही नहीं स्वीकार रहा हूँ, साता को साताभूत नहीं स्वीकार रहा हूँ। जब मैं निर्णय ही कर चुका हूँ तब ये मुझे सुखी क्या करेगा, दुःखी क्या करेगा ?

भैया! एक जीव निर्णय करके आया कि मैं अमुक का आज अपमान करके रहूँगा। वह व्यक्ति समयसार का स्वाध्याय कर रहा था। उसने निर्णय कर लिया था आज मेरे जीवन में कोई भी घटना घटेगी मैं उसे स्वीकारूँगा नहीं। सामने एक पुरुष आया उसने उसका अपमान करने की दृष्टि से भरी समाज के सामने उसको गाली दे दी। पर वह तो निर्णय किये बैठा था। वह सोचता है कि गाली जो है वह पुद्गलद्रव्य की पर्याय है। देनेवाला जो है वह जीवद्रव्य अवश्य है पर जिसके माध्यम से दे रहा है ओष्ठ-जीभ-तालु वो भी पुद्गल की पर्याय हैं और जो गाली देने का विचार कर रहा है, या बोल भी रहा है वह मेरे से अत्यंत भिन्न है। उसने अपने ही वीर्यान्तरायकर्म क्षयोपशम का, वचन-बल आदि क्षयोपशम का, ज्ञानावरणादि क्षयोपशम का दुरुपयोग किया है। ये उसका निजी उपाय है। ये उसके निजी उपादान की योग्यता है। वो अच्छा भी बोल सकता है, बुरा भी बोल सकता है इसमें मेरा गया क्या है ? और मुझे मिला क्या है ? मुझे किंचित्मात्र भी विकार हुआ नहीं, मैं स्वतंत्र ही हूँ और वह स्वतंत्र ही है। बताओ, अपमान कौन कर सका? मेरे चतुष्टय में किंचित्मात्र भी गाली ने प्रवेश नहीं किया।

जो तपोधन वर्षों-वर्षों तक निश्चल, निर्प्रमाद, निर्विकार अवस्था को प्राप्त हो रहे हैं वे किसके बल पर ? पिच्छी-कमण्डलु के बल पर नहीं। ये विषय कपड़े उतरने का नहीं है। ये भीतर का निर्णय कर रहे हैं। **मान उसका जहाँ मानकषाय है, अपमान उसका जहाँ मानकषाय है। मैं कषाय को अपना मानता ही नहीं हूँ तो मान-अपमान किसका ? जिसका चित्त विक्षोभ को प्राप्त नहीं हो, वहाँ मान न सम्मान।** जैसे सूखा ठूँठ चाहे पानी गिरे, अमृत गिरे; न सूख रहा है, न हरा हो रहा है, कैसा है?

जैसा है वैसा है। जिसने अपने जीवन को सूखे ठूँठ की तरह समझ लिया है उसका न मान है न अपमान है। भैया ! लोग क्या समझ रहे हैं, जितना तत्त्व है सम्पूर्ण तत्त्व को सप्तम गुणस्थान में रखते हैं। जब आप सप्तम गुणस्थान में रखने जा रहे हो पर इसकी सीढ़ी क्या है चढ़ने की? भैया! ये बड़ा आश्चर्य है, बड़ा भ्रम खड़ा कर दिया गया है विद्वानों के द्वारा और साधुओं के द्वारा कि जैसे ही तत्त्व की व्याख्या होती है हर विषय को वे सातवें गुणस्थान में जाकर विराजमान कर देते हैं। उनको मालूम होना चाहिये कि तत्त्ववस्तु, तत्त्वदृष्टि सप्तम गुणस्थान में है कि प्रत्येक गुणस्थान में है। जब **मिथ्यादृष्टिजीव सामान्य ज्ञान से जानेगा तभी श्रद्धान करेगा और जानेगा नहीं तो श्रद्धान कैसे करेगा और श्रद्धान नहीं करेगा तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कैसे होगा ?** मैं ये कह रहा हूँ कि सातवें गुणस्थान में माना कि चतुर्थ से जाये, पंचम गुणस्थान से जाये अथवा सातवें से आकर छठे में और फिर सातवें गुणस्थान में जाये या पहले गुणस्थान से जाये, जो पहले से सातवें गुणस्थान में गया है उस जीव की पीठ ठोकनी चाहिये कि नहीं ? भैया! जो जीव प्रथम गुणस्थान से सीधे सातवें गुणस्थान का स्पर्श कर रहा है वह किसके बल पर?

हे जीव ! द्रव्यलिंग चरणानुयोग पद्धति है। चरणानुयोग की प्राप्ति के लिये भी करण परिणाम ही सँभाले जाते हैं। बिना करण परिणाम सँभाले चरण भी पवित्र नहीं हो सकता। चरण उसी का पवित्र होगा जिसका करण पवित्र होगा। करण के लिये चरण करना चाहिये। चरण के लिये करण नहीं करना चाहिये। भैया! किसी ने कहा - मुझे उपवास चाहिये। मैंने कहा कि अभी गर्मी का मौसम है, बहुत धूप है, आप बाद में करना जब पानी गिरे। लेकिन वह जीव कहता है, वाह! उपवास भी नहीं देते हैं, तपस्या ही नहीं करने देते; ये तो कुछ नहीं करने देंगे मुझे। हे जीव! जब तेरे करण (परिणाम) बिगड़ रहे हैं तो चरण (आचरण) किसके लिये करने जायेगा। **जितना भी चरणानुयोग है मात्र करण को ही सँभालने के लिये है।**

भैया! यदि गर्मी है और उपवास करने की सामर्थ्य नहीं दिख रही है, संक्लेषता बढ़े तो तुम दो माला ज्यादा फेर लेना और शांति से शुद्ध आहार करके, भले ही अल्प करना, लेकिन संक्लेशता मत रखना। भैया! आहार करके आने के बाद भी कैवल्य हो जाता है और निर्वाण भी हो जाता है। यदि आप उपवास नहीं करते हो और सामर्थ्य है तो आप अपने वीर्यान्तराय के साथ डाका डाल रहे हो। **जो व्यक्ति सामर्थ्य होने पर तपस्या नहीं करता है वह तस्कर है। शरीर स्वस्थ है उपवास नहीं करेगा तो इन्द्रियों में विकार बढ़ेंगे, मोक्षमार्ग से च्युत हो जायेगा। तू भिन्न प्रकार की संक्लेशता में चला गया।**

यहाँ तो उसके लिये कहा जा रहा है कि संहनन असमर्थ है, संक्लेषता बढ़ सकती है क्षुधा के कारण तो आप भोजन कर लो और यदि संहनन परिपूर्ण है तो आप एक नहीं मासोपवास कीजिये। बाहुबली स्वामी-सा एक वर्ष का कायोत्सर्ग कीजिये। भैया! धीरे-धीरे अभ्यास करोगे तो तुम्हारी संक्लेशता में न्यूनता आयेगी। यदि न्यूनता की जगह संक्लेशता तीव्र बढ़ रही है और सामायिक के समय कहीं आपको

सोना पड़ जाये, लेटना पड़ जाये और किंचित् सामायिक ही न हो पाये, प्रतिक्रमण ही न कर पाओ तो भाई! आप आहार करके षडावश्यक अच्छे से पालते वो उपवास से अच्छा था। इसलिये भैया! ध्यान दो, मैं उपवास का निषेध नहीं कर रहा हूँ, न उपवास के लिये संक्लेशता को बढ़ाने की बात कर रहा हूँ।

जं सक्कइ तं कीरइ, जं च ण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
सद्दह माणो जीवो, पावइ अजरामरं ठाणं।।भ.आ.।।
कीजे शक्तिप्रमाण, शक्ति बिना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान, अजर-अमर पद भोगवै।।पूजा।।

ये जो पंक्तियाँ द्यानतराय जी ने लिखी हैं, ये भगवती-आराधना का पद्यानुवाद है। जितनी सामर्थ्य है उतना कीजिये और सामर्थ्य न हो तो श्रद्धा कीजिये। ज्ञानी! श्रद्धावान जीव अजर-अमर पद को प्राप्त कर लेगा। भैया! आपको तो ध्यान लगाने पर्वत की चोटी पर बैठना चाहिये। भैया! वर्तमान में एक घंटे में पर्वत की चोटी पर साधना करने में भी संक्लेशता बढ़ जायेगी। इसलिये यहीं बैठकर शान्ति से साधना कर लो, निर्णय करलो। **जैनदर्शन में, चरणानुयोग की प्रत्येक पद्धति में कथन अनेकान्तभूत है, एकांतभूत नहीं है। वे ज्यादा खिंचाव करते हैं जिनका स्वाध्याय नहीं है या गुरु आज्ञा में नहीं हैं। सोचते तो ये हैं कि अच्छी साधना करूँगा, अच्छा साधक बनूँगा लेकिन बिल्ली जैसी आवाज करके शून्य हो जाते हैं।** जैन-परम्परा कहती है कि साधु को नदी की धार में बहना चाहिये है। बिल्ली की आवाज में नहीं जीना चाहिये। ये भगवतीआराधना में लिखा हुआ है।

अमरकंटक से निकलती है नर्मदा तनिक से कुण्ड से और भेड़ाघाट में देखो, क्या रूप है उसका ? ऐसे ही हे जीव ! तू साधना कुण्ड की भाँति प्रारंभ कर और सागर की भाँति बढ़ा ले। बिल्ली जो होती है पहले तो जोर से बोलती है लेकिन बाद में धीमी हो जाती है ऐसे ही प्रारंभ में उपवास, नीरस आहार लिया, धूप में खड़े होकर साधना की और कुछ दिन के अंदर बिल्ली की आवाज जैसे शांत हो गया ? फिर यूँ शब्द निकले साधु के मुख से कि मैं ऐसी साधना करता था। भैया! आपकी साधना भूत में चली गयी। आपने जीत-जीते साधना को भूत में डाल दिया। इसका मतलब अब वर्तमान में तुम साधक नहीं हो। भैया! साधना कैसी हो? दूज के चन्द्रसम। वीणा के तार अधिक खींच दोगे तो टूट जायेंगे और नहीं खींचोगे तो आवाज नहीं आयेगी। इसलिये हे जीव! साधना के लिये न अधिक खींचो, न ही ढील डालो और आपको प्रतिपल प्रतिक्षण दिन-रात जागते रहना पड़ेगा और कर उतना ही पाओगे जितना तुम्हारे वीर्यान्तरायकर्म का क्षयोपशम होगा, अधिक खींचा तो टूट जायेगा। माँ! आपने पापड़ तो बनाये ही होंगे? माँ! पापड़ उतना ही फैलाती हो जिससे टूट न जाये, फट न जाये। ऐसे ही हे जीव! जैसा द्रव्य होगा वैसा ही विस्तार होगा। जैसी शक्ति होगी वैसी ही साधना का विस्तार होगा। इसलिये अनुभव-सिद्ध साधना करनी चाहिये है। प्रत्येक साधना का अनुभव लेते चलिये। **भैया! साधना के क्षेत्र में अभ्यास**

करने की आवश्यकता है। जो अभ्यास के अभाव में पहले ही अपने आप को असमर्थ मान लेते हैं वे भी साधनाविहीन हैं और जो अपनी सामर्थ्य को जाने बिना बहुत कर लेते हैं वे बेचारे घर में बैठ जाते हैं। इसलिये जो भी संघ से पृथक् होते हैं गुरु आज्ञा के बिना, वे या तो साधना से डर चुके हैं या साधना के खिंचाव में जाने की आकांक्षा रखते हैं। वे ही संघ से भागते हैं। प्रभावना को छोड़कर प्रभावना को जो दौड़ते हैं वे निश्चित अप्रभावना करते हैं।

आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रय तेजसा सततमेव।
दानतपोजिनपूजाविद्यातिशयैश्च जिनधर्मः ॥30/पु.सि.उ.॥

रत्नत्रय के तेज से अपनी आत्मा को प्रभावित करना चाहिये था। संघ में रहेंगे तो आचार्यों के अनुशासन में रहना पड़ेगा, हर काम समय पर करना पड़ेगा, प्रमाद नहीं कर पाओगे आप। जानकर भी जो कहते हैं कि मैं प्रभावना करने जाना चाहता हूँ यानी तुम अप्रभावित हो चुके हो जो तुम्हारे मुख से ऐसा निकलने लगा है। जब बाहर जाओगे तो अप्रभावना से समझौता करना पड़ेगा, असंयमियों से। इसलिये हे मटके! तू मत कह कि मुझे बाजार में बेच दो। बनते ही तू बिकने की बात करेगा तो तेरी कोई कीमत नहीं होगी और कोई ले भी गया तो एक बार के पानी में तू गल जायेगा और कुम्भकार जब पका लेगा तो स्वयं तुझे बाजार में बेचने पहुँच जायेगा। मटका बहुत अच्छा सुंदर लग रहा है क्योंकि कुम्भकार पकाने से पहले पोतता है लाल मिट्टी से। इसके बाद ठण्डे में सुखाकरके फिर तपाता है और कहीं लाल मिट्टी की चमक को देखकरके ही मटका सोच ले कि अब तो मैं परिपूर्ण हो गया हूँ, नहीं मटको! अभी तुम्हें भट्टी में और झुलसना पड़ेगा। अकार्यकारणत्व शक्ति।

साता-असाताकर्म से युक्त होते हुये भी साता-असाता मेरे संक्लेश परिणामों के लिये अकार्यकारण हैं। मेरे चारों ओर तूफान मंडरा रहे दुःखों के, पर हे असाता! तू हमें दुःखी करने के लिये अकार्यकारणभूत है। **कर्मोदय मेरे बंध का कारण नहीं है। कर्मोदय पर संक्लेशता मेरे बंध का कारण है।** यदि कर्मोदय पर संक्लेशता आप नियत मानते हो तो कभी कोई विश्व में केवली-भगवान् नहीं बन सकता फिर पार्श्वनाथ स्वामी पर असाता का उदय था कि नहीं? भैया! तेरहवें गुणस्थान तक असाता काम करती है।

'एकादश जिने' ग्यारह परीषह जो आ रहे हैं, वे असाता के उदय में हैं, साता के उदय में नहीं हैं लेकिन मोहनीयकर्म को क्षीण कर दिया है जिसने वहाँ साता-असाता करेगी क्या ? जिस व्यक्ति ने प्रतिमा धारण कर ली हो उससे पूछो कि चाय कैसी लगती है ? वह कहेगा कि स्वामी ! जहाँ चाय की चाह ही नहीं है उसको चाय कैसी लगती है? ये तो उससे पूछो जिसको चाय की चाह है। ऐसेही जिसने असाता की चाह को निकाल दिया है उसको असाता अकार्यकारी है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कामदेव तीन पद का धारी जीव, हे सम्राट् चक्रेश शांतिनाथ! आपके पास इतनी साता है कि भोजन भी स्वर्ग से आता है। छह खण्ड का

साम्राज्य है। छियानबे हजार महारानियों के स्वामी हो। अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी तब भी छोड़कर क्यों जा रहे हो ? ये सब आपको लाभान्तरायकर्म के क्षयोपशम से प्राप्त हुये हैं और एक भी आपको दुःखभूत परिणत नहीं हो रहा। तीव्र साता का उदय चल रहा है।

वैराग्य जगता है, वह सम्पूर्ण साम्राज्य, सम्पूर्ण वैभव जीर्ण तिनके के समान छोड़कर चल देता है उनके लिये साता भी कुछ नहीं कर सकी। वे दिगम्बर मुनि बनके विचरण करने लग गये। भैया! जो कर्मोदय है वह भोगना ही पड़ेगा क्या? यदि आपका एकांत यूँ चलता है कि कर्मोदय को भोगना ही पड़ता है तो विश्व में कोई साधु ही नहीं बन सकता है। भैया! पुण्योदय से सारा वैभव मिलता है तो तुम छोड़ने के भाव कैसे कर पाओगे? **हे जीव! कर्म अपना कार्य उसी को फलित कराता है जिसका तीव्र राग और द्वेष होता है और जब तीव्र पुरुषार्थ मोक्षमार्ग का होता है तो कर्म को शांत होकर बैठना पड़ता है।** यदि पुण्य को भोगना पड़ता है तो साधु कैसे बनोगे?

भैया! घर में क्या कमी थी? क्या एकासन एक समय का भोजन बचाने के लिए कर रहे थे? नहीं, महाराज! भोजन बचाने के लिये भोजन नहीं छोड़ रहा हूँ, मैं भोगों की लिप्सा को शांत करने के लिए भोजन छोड़ रहा हूँ। जब निधत्ति निकाचित जैसा विचित्र कर्म आयेगा उस समय क्या करेंगे? ध्यानस्थ तपोनिधि सनतकुमार मुनिराज विराजते हैं। सर्वांग सुंदर होने पर भी गलित कुष्ट हो गया। अकार्यकारणत्व शक्ति। भाई! द्रव्यदृष्टि से पकड़ना। हे जीव ! शरीर को देखेगा तो क्लेश के अलावा कुछ नहीं पायेगा, जो गला है वह गलनशील ही गला है। **जिसका धर्म है पूरण-गलन उसका नाम पुद्गल है। जो पुरुषों के द्वारा निगला जाता है उसका नाम पुद्गल है। जीर्ण-शीर्ण होना तो इसका स्वभाव है।** पर जिसे अज्ञानी कह रहे हैं कि सनतकुमार मुनिराज दुःखी हैं, दुःख शरीर में नहीं है, दुःख तो भावों की भावना में है। जब मैं क्षीण होने वाले को अपने से भिन्न ही स्वीकारता हूँ तो ये मुझे दुःखी क्या कर सकेगा।

'न मे मृत्युः कुतो भीतिर्' जब मेरी मृत्यु ही नहीं है तो भय कैसा **'न मे व्याधिः कुतो व्यथा'** जब मुझे व्याधि ही नहीं है तो व्यथा किस बात की। **'नाहं बालो न वृद्धोऽहं न युवैतानि पुद्गले'** यथार्थ में निर्ग्रन्थों को ऐसा जीवन जीने का समय भी आता है। भेदविज्ञान - अभेद पर भेदवृत्ति, भेद पर अभेदवृत्ति। इस शरीर के अंश-अंश में विशुद्धसागर नाम के व्यक्ति की आत्मा के सर्वप्रदेश हैं, किंचित् भी इससे भिन्न नहीं है। संश्लेष संबंध की दृष्टि से हर जगह संवेदना आ रही है, हे जीव! कहीं भी भेद नहीं दिख रहा है। जहाँ आत्मा के प्रदेश न हों, संश्लेष संबंध की अपेक्षा ये अभेद है। **अभेद में भेदवृत्ति का जिसको बोध नहीं वह कभी दिगम्बर मुनि बनकर जी नहीं सकता।** ये अभेद संश्लेष संबंध का है, ये स्वभाव का अभेद नहीं है।

मैं ज्ञानदर्शन स्वभावी हूँ - भेद में अभेदवृत्ति। मैं दर्शनज्ञान स्वभावी अवश्य हूँ फिर भी इनसे भिन्न नहीं हूँ, अखण्ड एकत्वभूत ही हूँ, एकमात्र। मैं ज्ञायक हूँ इसलिये देह का सड़ना-गलना मेरी संक्लेशता

के लिए अकार्यकारण है। संक्लेशता तभी होगी जब देह में मेरी ममत्वबुद्धि होगी। आप सारा विषय कहाँ ले जाते हो? सप्तम गुणस्थान में। आप इसका प्रारंभ चतुर्थ गुणस्थान से करिये। ये वृत्ति के विकल्प हैं। सातवाँ तो निर्विकल्प ध्यान की धारा है वहाँ पर कोई विकल्प नहीं है। आप ये सारे जो संहनन कर रहे हो वे छठे में कर रहे हो, छठे-सातवें में दोलन करोगे फिर भी विकल्प आयेंगे छठे में। इसलिये हे मुनिगणो! अब सामायिक के काल में मच्छर काटे तो जानकर बैठे रहना और वहाँ लगाना अभेद में भेदवृत्ति और संक्लेशताओं से मुक्त होकर अपने स्वरूप का चिंतन करो। जिसे काट रहा है वह मैं नहीं हूँ और जो मैं हूँ उसे मच्छर काट नहीं सकता। समझना पड़ेगा, सँभलना पड़ेगा हर विषय में, क्योंकि आचार्य तो सूत्र देते हैं, चिंतन अपना कीजिए। भैया! आपके सोले के कपड़े रखे हुए थे, उस पर एक बालक चढ़ गया, छू भी लिये और गंदे भी कर दिये। मित्र! सोचिये, चिल्लाने से क्या मिलेगा ? क्या वे शुद्ध और साफ हो जायेंगे ? मेरी संक्लेशता में ये वस्त्र और बालक अकार्यकारण है। **हम चाहें तो ही संक्लेशता होगी और नहीं चाहें तो नहीं हो सकती।**

ये सैंतालिस शक्तियाँ सुनने के लिए सुन रहे हो कि जीवन जीने के लिये सुन रहे हो? **भैया! जितनी सामर्थ्य हो, योग्यता हो उतना आगम को पढ़कर जीना सीखो।** मैं उस पर विश्वास नहीं करता हूँ कि भाषणबाजी लम्बी है और चर्या छोटी है और कदाचित् सामर्थ्य नहीं है और संक्लेशता के साधन बन भी रहे हैं तो सबसे पहले मैं विषमता को बाद मैं दूर करूँगा, संक्लेशता को पहले सँभालूँगा। बिना भद्र परिणाम के, बिना कषाय के मंद उदय के आप मुझे सुन भी नहीं सकते। भैया! जिससे आप जीते हो उस जगह का विचार करके मुझे सुनोगे तो संक्लेशता बढ़ जायेगी। भैया! उबलते पानी में चेहरा नहीं दिखता, जब पानी ठण्डा होता है उसी में चेहरा दिखता है। ये देशनालब्धि का नियोग है। ये देशना ही तुम्हारी देशनालब्धि में परिवर्तित होगी और यही देशनालब्धि विशुद्धिलब्धि को प्रदान करायेगी। विशुद्धिलब्धि क्षयोपशमलब्धि पर जायेगी, क्षयोपशमलब्धि करणलब्धि को प्रदान करायेगी, उससे निश्चयसम्यग्दर्शन होता है।

भैया! प्रश्न क्या है आपका कि द्रव्यपर्याय में तो द्रव्यगुण में तो अकार्यकारणभाव समझ में आ रहा है। अब ये पर्याय में कैसे अकार्यकारणभाव लगायेगा। भैया! पर्याय कोई भिन्न द्रव्य नहीं है, भिन्न वस्तु नहीं है। जितना जिनदेव को भाया उतना सबको भायेगा और जिनको जिनदेव का नहीं भाया उनने अभक्ष्य खाया। **मुमुक्षुओ! मुख का अभक्ष्य तो दुनियाँ छुड़ा देती है पर अपन को सुनने का भी अभक्ष्य छोड़ना चाहिये। जिनके प्रवचनों में जिनदेव के वचन न हों वे सारे प्रवचन अभक्ष्य हैं।**

जो पर्याय है वह किसका परिणमन है ? किसका विकार है ? **'गुण विकाराः पर्यायः' जो गुण का विकार है वही तो पर्याय है, जो द्रव्य का परिणमन है वही तो पर्याय है।** मित्र! शरीर के परिणमन के समय कौन कार्य बना है और कौन कारण बना है? आप कहो कि कालद्रव्य, तो वह तो अपने

चतुष्टय में परिणमन कर रहा है, वह परिणत हुए को बोध कराता है। भैया! जो पर्याय है उसमें भी पर कारण नहीं, पर कार्य नहीं, ये पर अकार्यकारण है। आप कहें कि यह व्यवहार से निमित्त दृष्टि है, पर सत्य यही है कि आपको प्रवचन तभी प्रभावित करेंगे जब प्रभावित होने की योग्यता रखते हो। यदि प्रभावित होने की योग्यता नहीं रखते हो तो प्रवचन आपको किञ्चित् भी सहकारी नहीं बन सकते हैं। क्यों ? जैसे महाराज जी! चुटकुला सुनो और हँसो। यदि हँसना चाहोगे तो चुटकुला उसको हँसा देगा, कार्यकारी बन जायेगा लेकिन जिसने निर्णय कर लिया है कि तुम सुनाओ चुटकुला, यहाँ तक कि बीन बजाओ मैं हिलनेवाला नहीं हूँ। यदि जगत् के निमित्त प्रभावित करते ही होते तो आज मैं मुनि बनकर नहीं बैठ पाता।

भैया ! आचार्य महाराज पढ़ा रहे थे मुझे और एक ज्ञानी आया उसने मेरे हाथ से ग्रंथ छीना और आचार्य महाराज की गोदी में ऐसे पटका और पकड़ा मेरा हाथ और खींचकर ले गया। मैंने कहा- मुमुक्षु! तू ग्रंथ छीन सकता है, हाथ पकड़कर खींच सकता है पर **जो मौन में शक्ति है वह विश्व में किसी के पास नहीं है।** मैंने वहीं मौन ले लिया। छह महिने पकड़कर रखा। मैंने कहा कि ग्रंथ को छीना है, निर्ग्रंथ को भी छीन लोगे क्या ? भैया! बाहर जाने को नहीं मिला। यहाँ तक कि शौच को जाने के लिए एक आदमी लगा दिया साथ में। जब देख लिया कि अब वश नहीं चलता तब हाथ पकड़कर सौंप गये महाराज के पास कि महाराज ये आपका है।

'परात्मनिमित्तक ज्ञेयज्ञानाकार ग्रहणग्राहणस्वभावरूपा परिणम्यपरिणामकत्वशक्ति:'

परिणाम-परिणामी, ज्ञेय-ज्ञानाकार - ये आत्मा में एक महान् शक्ति है। ज्ञेय ज्ञानाकार, ज्ञान ज्ञेयाकार। ये आत्मा ज्ञेय भी है, ज्ञाता भी है। इस आत्मा को दूसरे जानते भी हैं, यह आत्मा दूसरों को भी जानती है। मैं स्वयं ज्ञेय हूँ, मैं स्वयं ज्ञाता हूँ, मैं दूसरे के द्वारा जाना जाता हूँ, मेरे द्वारा दूसरा जाना जाता है फिर भी मैं दूसरे का होता नहीं हूँ, दूसरा मेरा होता नहीं है। जान ही सकता हूँ, जना ही सकते हो, मान ही सकते हो, मना ही सकते हो पर किसी के हो नहीं सकते हो। मोह में ज्ञान का विषय तो बना सकते हो पर निर्णय का विषय नहीं बना पा रहे हो।

भैया ! जितने संसारी राग-द्वेष दिखाई दे रहे हैं, ये निर्णय की शक्ति के अभाव के कारण। मानाकि एक पण्डितजी एक दादाजी से बोले - मुझे सवा करोड़ रुपये चाहिये आपसे। बोले - क्यों ? दान। वह दादाजी समझदार थे। बोले - हाँ, भैया! अवश्य दूँगा लेकिन इस वर्ष के पर्यूषण में मैं आपको बुलाना चाहता हूँ, आपके उपदेश सुनना चाहता हूँ और पण्डितजी ने भी स्वीकृति दे दी क्योंकि उन्हें सवा करोड़ दिख रहे थे। इसके बाद जैसे ही आकिंचन धर्म का दिन आया दादाजी पण्डित जी के सामने बैठ गये बिल्कुल शांत और जीव ने प्रवचन करना प्रारंभ किया।

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं।
बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्तो।। स.सा./23।।

जिसकी मति अज्ञान से मूढ़ हो चुकी है वह पुद्गल द्रव्य को मेरा कहता है। बद्ध को, अबद्ध को दोनों को मेरा कह रहा है। दादा धीरे से कहते हैं कि भैया! बहुत अच्छा आज आपने उपदेश दिया। आप सवा करोड़ का क्या करोगे? वह वैरागी जीव भ्रमित हो गया था। मैं अभी जानकार था, निर्णायक नहीं था लेकिन आज बोध हो गया जब मेरे नहीं है तो मांग किसको रहा हूँ। भैया! विश्वास मानना, निर्णय भीतर का विषय है। ज्ञान साकार है, दर्शन निराकार निर्विकल्प है। जिस दिन निर्णय हो जायेगा उस दिन अपने आप दूर हट जायेगा। चिन्ता से मुक्त होने के लिए, चिन्तवन के लिए यहाँ आया था। यदि चिन्ताओं में डूब गया तो मेरे चिन्तन का क्या होगा।

भैया! यदि सुखमय जीवन जीना हो तो जीवन में एक बार दिगम्बर मुनि बन लेना और ऐसे बनना कि जगत् के सब झमेलों से दूर होकर जीना। भैया! जो आनंद आयेगा अब मैं आपको हनुमान जैसा तो नहीं दिखा सकता हूँ पर भैया! मैं यथार्थ बोल रहा हूँ ऐसा आनंद जगत् में कहीं नहीं है। मैं जानूँ-पहचानूँ पर स्वीकारूँ नहीं किसी को। मैं बुन्देलखण्ड में रहना पसंद क्यों करता हूँ। यहाँ मुझे कभी ये नहीं सोचना पड़ता कि मेरे आहार कहाँ होंगे। मतलब समझो, हम उपदेश कर रहे हैं, आपने कमण्डल में जल भर दिया। हमने उठाया कमण्डलु और निकल गये अंजलि लगाकर और आकर के अपनी सामायिक को बैठ गये। नहीं सोचना पड़ रहा है कि ट्रस्टी लोग ध्यान रख रहे हैं कि नहीं चौके का। भैया! चौके छोड़कर आये हैं चौके में लीन होने के लिए नहीं। निजचतुष्टय को लिये चौका छोड़कर चले गये थे और चौके में ही चले गये तो चतुष्टय में कब जाओगे? भैया! यदि मन करे तो मुनि बन जाना लेकिन दिल्ली का मुनि नहीं बनना, बुन्देलखण्ड का मुनि बनना। दिल्ली जाने में कोई दोष नहीं है अपने हृदय की वृत्ति को सँभालो, क्षेत्र को दोष मत दो।

ज्ञानी! स्वचतुष्टय से, स्वद्रव्यत्व दृष्टि से जब हम द्रव्य की द्रवणशीलता को देखते हैं तो प्रत्येक द्रव्य अपने आप में अकार्यकारणभाव है। आत्मा किसी भी परद्रव्य पर द्रव्यत्वदृष्टि से पर से किया गया नहीं है। इसलिए मैं किसी का कार्य नहीं हूँ, मैं किसी का कारण नहीं हूँ। मैं पर का कार्य नहीं हूँ, कारण नहीं हूँ। इस प्रकार अकार्यकारणशक्ति की व्याख्या करने के उपरांत परिणम्य-परिणामिकशक्ति की व्याख्या करते हैं।

आत्मद्रव्य ज्ञेय है, ज्ञान है। आत्मा पर से जाना जाता है, आत्मा पर को जानता है, आत्मा निज को जानता है। जीव स्वयं से स्वयं का ज्ञेय है। स्वयं से स्वयं का ज्ञान है। जीव पर के लिये ज्ञेय है, ज्ञान भी है; अनात्मभूत। मैं दूसरे से जान जाता हूँ, मैं दूसरे को जानता हूँ, मैं स्वयं के द्वारा जाना जाता हूँ, मैं स्वयं को जानता हूँ, मेरे ज्ञायकत्व में कोई दोष नहीं है, मेरे प्रमेय में कोई दोष नहीं है, मेरी प्रमिति में कोई दोष नहीं है। मैं प्रमेय, प्रमाता, प्रमिति और फल हूँ। सम्यग्ज्ञान मेरे में है। मैं प्रमेय हूँ, मैं जानने लायक हूँ, मेरे में मेरी जानन क्रिया है। मेरे अज्ञान का अभाव हो रहा है। **'अज्ञान निवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम्'** ये

प्रमाण का फल है । **हेय को त्याग दीजिये, उपादेय को स्वीकार लीजिये और उपेक्षा की उपेक्षा - ये त्रिविधधारा ज्ञान की चलती है। उपेक्षा की चरम सीमा परम यथाख्यात चारित्र है।** उपेक्षा से संयम प्रारंभ होता है। उपेक्षा से मध्य भी होता है, उपेक्षा से चरम सीमा भी होती है, उपेक्षा बहुत कठिन है।

उपेक्षाभावनोत्कर्ष, पर्यन्ते शिव माप्नुहि ।।20/स्व.सं.।।

उपेक्षा की भावना का उत्कर्ष है शिव की प्राप्ति। जब-तक शिव की प्राप्ति नहीं हो जाती है तब तक उपेक्षा। **समता की रक्षा करना चाहते हो, चारित्र को संजोकर रखना चाहते हो, सम्यक् को सुरक्षित करना चाहते हो, ज्ञान को वृद्धिमान करना चाहते हो तो उपेक्षा को सीख लेना, समझ लेना, स्वीकार लेना।** भैया! सीख लेना, समझ लेना, स्वीकार लेना। भैया! माध्यस्थभाव उपेक्षा। आवश्यक नहीं कि सारे विश्व को मैं स्वीकारूँ पर मुझे नहीं स्वीकारने में भी उनका स्वीकारपना है। जो मुझे नहीं स्वीकारता इसका तात्पर्य यह है कि वह मुझे स्वीकार रहा है। इस विषय को समझ लिया तो आप महान् ज्ञानी हो जाओगे। मैं विशुद्धसागर को नहीं मानता हूँ इसका तात्पर्य है कि आप मानते हो जानते हो। यानी कि कोई विशुद्धसागर नाम की सत्ता भी है। उसके सत् का आपने लोप नहीं किया है। उसके सत् को आपने स्वीकार किया है।

कोई भिन्नमत वाला कहता है कि जैनदर्शन तो अभी महावीरस्वामी से बना है तो मैं उससे पूछता हूँ कि भाई! ये तो बताईये कि ये आपने जाना कैसे? वह बोला - हमारे ग्रंथों में है तो इसके आगे भी कुछ है। कुछ कह रहे हैं कि ऋषभदेव से शुरू हुआ है। ये कैसे जाना? हमारे वेदों में है, पुराणों में है। अच्छा, आपके वेद अपौर से हैं और शाश्वत हैं। शाश्वत में ऋषभदेव का नाम आ चुका है। इसका मतलब क्या हुआ कि पहले ऋषभदेव हुए थे कि तुम्हारे ग्रंथ लिखे गए थे। यदि ग्रंथ पहले लिखे गए थे तो ऋषभदेव कहाँ से आ गये और ऋषभदेव नहीं भी आये थे तो मैं मान भी लेता हूँ और आ भी गये हैं तो इसका तात्पर्य है कि पहले ऋषभदेव को होना चाहिये था फिर ग्रंथ लिखे गये इसलिये वे अपौर से नहीं, बचे। यदि कोई आपके लिये असत्ताभूत स्वीकारता है तो आप प्रसन्न रहो कि आपकी सत्ता है द्विचंद्रज्ञानवत्। द्विचन्द्रज्ञानवत् से तात्पर्य एक पुरुष को दो चन्द्रमा दिखते हैं आकाश में। आप कक्ष में हो और वह कह रहा है कि आंगन में दो चन्द्रमा उदित हुये हैं आज। तो आप ये तो समझ रहे हो कि दो चन्द्रमा उदित नहीं होते हैं, क्या ये पूरा असत्य है? नहीं है। दो चन्द्रमा उदित नहीं होते हैं इसका तात्पर्य है कि ये उसकी आँख का दोष है कि उसे चन्द्रमा दो दिख रहे हैं, लेकिन चन्द्रमा तो है। इसलिये अप्रमाणित बात को न मानने से सत्ता का अभाव नहीं होता है। विशिष्ट शक्ति के द्वारा विशिष्ट शक्ति का उत्सर्ग किया जा रहा है, उत्सर्जन किया जा रहा है।

जैनदर्शन की अलौकिक व्याख्यान की महिमा तो देखो आप के द्विचन्द्रज्ञान में भी उन्होंने प्रमाण खोज लिया और पर की सत्ता का नाश करने वाले के द्वारा भी उनने सत्ता को खोज लिया। ये मत कहना

कि आप अपने मन से कुछ भी कहते रहते हो। मैं 'लघीयस्त्री' ग्रंथ से बोल रहा हूँ जो आचार्य भट्टअकलंकदेव द्वारा रचित है। **जब-तक प्रमाण की प्रमाणता का बोध नहीं है तब-तक तुम्हारे प्रमाण का भूतार्थपना कैसा ? मैं ज्ञेय हूँ, पर के ज्ञान में आता हूँ, ज्ञाता हूँ, पर मेरे ज्ञान में आता है ये भी सत्य है। क्या मैं पर के ज्ञान का विषय नहीं हूँ ? क्या पर मेरे ज्ञान का विषय नहीं है ? यही आपकी परिणम्यपरिणामकत्वशक्ति है।**

अगली त्यागोपादान शून्यत्व शक्ति अंतस् में ले जानेवाली है। जब जीव निज के चिंतन में इसका विषय बना लेता है उस क्षण शायद ही आपकी मति कहीं अन्यत्र भ्रमित हो। कार्यकारणत्वभाव, वस्तुस्वतंत्रता, कर्मसिद्धांत; यदि इन पर लक्ष्य है साधक का तो वह साधक कभी किसी भी विषय पर अपने मस्तिष्क पर सिकुड़न नहीं ला सकता, भृकुटियों को नहीं तान सकता। **चेहरे का रक्त होना, अधरों का डसना, दाँतों का पीसना, मुट्ठियों का बँधना - ये सब रौद्रध्यान के बहिरंग चिह्न हैं।** त्यागोपादानशक्ति से युक्त जीव के ये कभी नहीं हो सकता। भीतर जब-तक कुभाव नहीं आयेगा तब-तक चेहरे पर लकीरें नहीं पड़ सकती। इसलिये जितने योगी पुरुष हैं, साधक पुरुष हैं, अंतरंग से उनके चेहरे चमकते मिलेंगे और सपाट शांत मिलेंगे। साधु के चेहरे पर सफेदी मिलेगी। अशुभ चिन्तक के चेहरे पर लालिमा-कालिमा मिलेगी। अशुभ चिन्तक के चेहरे पर अशुभ भाव आ रहे हैं, कहीं-न-कहीं आप किसी भिन्न द्रव्य से लिप्त हो। पर कर्तृत्व के अभाव में आपके बिगड़े भाव नहीं निकल सकते। जब भी भाव बिगड़ेंगे पर के कर्तृत्व में ही बिगड़ेंगे। मैं पर का कर्त्ता हूँ - चाहे लौकिक विषय पर हो चाहे धार्मिक विषय पर। जिसके मस्तिष्क में ये विकार है इसका मतलब आप अपने से भिन्न में प्रवेश कर चुके हो। जब-तक भिन्नत्व में प्रवेश नहीं होता तब-तक चेहरे की सौम्यता भिन्न नहीं होती।

माँ कहने लगती है बेटा! अब तू बदल गया। माँ! इस सत्य को कौन टाल पायेगा कि जब माँ! मैं आपकी थाली में भोजन करता था, जब आप परोसती थीं तब मुझे मात्र आप ही दिखती थीं। अब मेरे बेटे की माँ परोसने लगी है, जब भिन्न परोसेगा तो भिन्न क्यों नहीं देखूँगा। इसलिये माँ! आप विकल्प मत करो, इस भिन्नता को मैं दूर कर भी कैसे सकता हूँ क्योंकि रोटी भिन्न की खाना प्रारंभ कर चुका हूँ। भैया! आपने अनुभव किया होगा **जिसने अपने जीवन में दे दो शब्द का प्रयोग कर लिया उसकी लज्जा, सत्य, क्षमा ये तीनों विलीन हो जाते हैं।** भैया! मांगने से बड़ा कोई दुःख नहीं है, ब्रह्माण्ड में लज्जा नष्ट हो गई फिर उसको कोई दूसरा नहीं दिखता। भैया! आपकी दुकान पर बगल की दुकान का ग्राहक आ जाये तो अलग से चेहरा बनता है और आपकी दुकान का ग्राहक कहीं वहाँ चला जाये तो देखना। जबकि भिन्न वस्तु थी उसमें अत्यन्ताभाव था। कोई आपका निश्चित अधिकृत नहीं था वह। उस समय अपने भावों को देखना जब आपकी दुकान ग्राहक से शून्य हो और पड़ोसी की दुकान में खूब ग्राहकी हो रही हो। उस

समय परिणामों से पूछना कि क्या हो रहा है। अभी आप धोखे की साधना में थे। मित्र! आज समझ में आयेगा कि समता तेरे पास थी कि नहीं थी।

हे साधक! तेरे पास भीड़ लगी है श्रावकों की उस समय तू मुस्करा रहा है। ये समता की मुस्कराहट नहीं है, ये अंदर की मानकषाय की पुष्टि की मुस्कराहट है। जब सारे लोग चले जाँय और कभी तेरे पास आने का मन नहीं करें फिर तू कहे कि हाँ मैं स्वतंत्र हूँ और मुस्कुराहट उत्पन्न कर ले वह आपकी समता की मुस्कराहट होगी। **परसंबंधों से प्रसन्नता चेहरे पर प्राप्त कर लेना ये कोई महानता की सूचक नहीं है, परसंबंधों को हटाकर के फिर प्रसन्नता को प्राप्त कर लेना; ये साधु की साधना का प्रभाव है।**

वहाँ भीड़ लगी थी भिन्न दुकान पर उस समय परिणाम क्या हो रहे थे। ज्ञानी! उस द्रव्य के अर्जन की दृष्टि से मन में तो जीव कहता था **'सत्त्वेषुमैत्रीं गुणिषु प्रमोदं'**। 'मेरी भावना' की पुस्तकें भी छपवाकर बाँट दी। 'मेरी भावना' का पाठ भी कर रहा था। अब मेरी भावना को लाइये। जब बगल में दुकान दूसरों की चल रही हो तब सुखी रहे सब जीव जगत् के, एक-दूसरे की बढ़ती को देखकर के कभी ईर्ष्याभाव नहीं लाना। यहाँ खोजिये, त्यागोपादानशक्ति शून्य हो गया है जीव। किंचित् भी उस जीव पर करुणा नहीं बरस रही जब से इसकी बगल में दुकान खुल गई तबसे पता नहीं क्या हो गया है मुझे। ऐसे चौबीस घण्टे झुलसता रहता है दयाविहीन, सत्त्वविहीन, क्षमाविहीन। यदि किसी स्थान पर तुझे दान मिलता हो और किसी दूसरों को पता चल जाये और वह पहुँच जाये, वहाँ पर भिखारियों से झगड़ा हो जाये। भीख मांगकर खा रहे हैं तब भी झगड़ रहे हैं कि आप मेरे मोहल्ले में कैसे आये।

कर्नाटक में भट्टारक परम्परा चल रही है तो उनके यहाँ भी क्षेत्र बंधे हुये हैं। एक क्षेत्र का भट्टारक दूसरे क्षेत्र में नहीं घुसता। सम्मान भले ही हो जायेगा पर आज्ञा नहीं चलती, अपने क्षेत्र में ही आज्ञा चलती है। हे जीव! ये जितने हिस्से दिखाई दे रहे हैं, ये आपके भीतर त्यागोपादानशक्ति के अभाव की सूचना दे रहे हैं। आप आपके भीतर की त्यागोपादानशक्ति की सत्ता को स्वीकार नहीं कर पा रहे हो, जितना विषय यहाँ आपको सुनने में, समझ में आता है उतना ही घर में पहुँचने पर कठिन हो जाता है।

'त्यागोपादानशून्यशक्ति स्वरूपोऽहम्'। मैं त्यागउपादानशून्यशक्ति-स्वरूप हूँ, तो फिर कुछ भी ग्रहण के योग्य नहीं है, कुछ भी छोड़ने के योग्य नहीं है। ग्रहण कब किया जाये जब मैं न्यून हूँ। छोड़ा कब जाये जब में अधिक हूँ। मेरे परिपूर्ण ज्ञानघन आनंदकंद चैतन्यगुण में किंचित् भी कमी नहीं है तो मैं ग्रहण किसको करूँ और मैंने परभावों को स्वीकारा ही नहीं है कुछ अधिक मेरे पास है नहीं, इसलिये छोड़ूँ किसको। मैं 'मैं' में पूर्ण हूँ। मेरे में किंचित् भी कमी नहीं है इसलिए भगवान् आत्मा किसी द्रव्य को ग्रहण करती नहीं, मैं किसी को स्वीकारता नहीं हूँ। 'कूपनीरवत्'। गहरे कुएँ में कोई व्यक्ति डूब जाये, पानी ऊपर फेंक देता है। पानी अपने मध्य में किसी को

स्वीकारता नहीं है। भैया! सरोवर के बीच में आपने कितना कचरा देखा। ज्ञानी ! पानी अपनी लहरों से कचरे को उछाल देता है। सारा कचरा तट पर तो स्थित हो जाता है, लेकिन मध्य में पानी स्वच्छ है। ऐसे ही कि जीव ! अपनी स्वच्छत्वशक्ति को देखते हुये त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति पर लक्ष्य कर कि मैं अपने में पूर्ण हूँ। मैं किसी को क्यों स्वीकारूँ, पर को स्वीकारना भी मल है। मल जगत् में निज में होता ही नहीं । मल तो पर का ही होता है, पर से ही होता है, निज का कोई मल नहीं होता। भैया! वस्त्र में कालापन दिखने लगा है, ये वस्त्र की कालिमा नहीं है, ये भिन्न मल संगृहीत हुआ। जब भी मल होगा पर से ही संगृहीत होगा, इसलिये जितना परिग्रह अर्जित करोगे उतने ही समल हो ।

हे ज्ञानी! मन त्रैकालिक नहीं है पर शक्तियाँ त्रैकालिक हैं। मन प्रथम गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक ही काम कर पाता है इसके बाद मन का कोई काम नहीं रहता। अनंतकाल तक जीव मन से रहित आनंद लूटता है। **आत्मा का जो आनंद है उसमें मन का कोई कार्य नहीं है।** वीतरागदशा में, परमयथाख्यात में मन का कोई काम नहीं परंतु परमयथाख्यात तक ले जाने में मन सहकारी साधन है। मैं कम नहीं हूँ, मैं अधिक नहीं हूँ, **जब-तक मेरे में कमी होती है, तब-तक मैं संयम को ग्रहण करता हूँ। जब-तक मेरे में कमी होती है तब-तक मैं संयम को छोड़ता हूँ। मेरी कमी समाप्त हो गई है अब मैं किसको छोडूँ? त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति आत्माश्रित है। मैं त्याग करता हूँ, मैं स्वीकार करता हूँ। मेरे में कोई परवस्तु है ही नहीं, तो मैं किसे छोडूँ?** कम-से-कम सत्य को दूसरों को नहीं कह पाओ तो चलेगा पर अपने आप से तो कहदो कि सत्य क्या है? भैया! आप ये बताइये कि सिद्ध जो हुआ है शुद्ध चैतन्य आत्मा हुआ है, वह संसारी समझकर हुआ है कि मुक्त समझकर हुआ है ?

हे संसारियो ! तुम संसार के द्रव्य को हेय मानकर अपने शुद्ध चैतन्य को समझो फिर कहना **'त्यागोपादानशून्यत्वशक्तिः स्वरूपोऽहम्'**। संसारी जीव को ये समझने की आवश्यकता है कि परवस्तु मैं नहीं हूँ। भैया! पर की गलती समझो-न-समझो, निज की गलती पर को बताओ-न-बताओ, कम-से-कम अपनी गलती अपने को तो बता दो।

भैया! मैं अपने में पूर्ण हूँ, किसी से मुझे कुछ लेना नहीं है किसी को कुछ देना नहीं है। अपने में पूर्ण होने पर भी तू पर को अपना मानकर पूर्ण क्यों स्वीकार रहा है ? इस भूल को दूसरे के कान में न कह पाये कोई विकल्प नहीं करना, कम-से-कम इस भूल को अपने कान में अपने से कह दे कि मैं हूँ ऐसा और मान क्या रहा हूँ। हे जीव! स्वयं को ही छल रहा है तू। भैया! इतना स्वीकार ले कि स्वरूप तेरा ये है पर आप धार्मिकरूप में तो आ गये हो, धार्मिकरूप में क्यों नहीं आ रहे हो? राग क्यों नहीं छोड़ पा रहे हो ?

भैया! आदमी कहता है कि मैं सुखी हूँ, घर में सब कुछ है, मन भी धर्म में लगा रहता है। हे जीव! धर्म का उद्देश्य तेरा है, परंतु तूने अभी धर्म को जाना कहाँ है। **इधर-उधर भागने को तू धर्म मान रहा है।**

धर्म तो तेरे भीतर था उसे पहचान नहीं रहा है। भैया! ये आपके साथ धोखा चल रहा है निज के द्वारा निज का। हे जीव ! जितना परद्रव्य तेरे पास है धनादि, उसमें तू संतुष्ट हो रहा है, त्यागोपादानशक्ति से शून्य हो रहा है। महाराज! आजीविका के लिये तो चाहिये है ये द्रव्य। प्राणों को जीने के लिये तू अपने भाव प्राणों को बरबाद कर रहा है। यहाँ तो चैतन्य प्राणों पर लक्ष्य है, जिसकी मृत्यु ही नहीं है, जन्म ही नहीं है। लक्ष्य तुम्हारा वहाँ है । हे मुनिराजो ! एक सुख का थोड़ा तुम्हें भान हुआ, विचित्र दुःख, जिसे तुम समझ नहीं पा रहे हो आज। भैया! एक त्यागी त्यागमार्ग पर चल रहा है, उन त्यागियों की बात नहीं कर रहा हूँ, जो संघ में रह रहे हैं, इन्हें तो श्रावक ले जायेगा। तुम भोजन करके आ गये ये तुम्हारी बहुत बड़ी तपस्या नहीं है। एक त्यागी एकांत में निवास कर रहा हो और अपने हाथ से रोटी बनाकर खा रहा हो। उस समय जब सोले का बना लिया, जैसे ही खाना प्रारंभ किया कि प्रथम ही ग्रास में बाल आ गया। आप तो कहोगे कि शाम को पुनः चला जाऊँगा। छोड़ के भाग आओगे, दूसरों की भरी थाली। जिसने स्वयं बनाया था कोई सहारा आगे-पीछे नहीं दिख रहा है, उससे पूछना, भावों की दशा क्या चल रही है ? एक घंटे बनाने में लग चुका था और बनाते-बनाते थक चुका था, भूख बढ़ चुकी थी लेकिन तभी बाल आ गया। अब पूछो भावों से **'त्यागोपादानशून्यत्वशक्तिः स्वरूपोऽहं'**।

हे मुनिराजो ! तुमको बनाने का विकल्प नहीं है। भैया! किसी व्यक्ति का एक रोटी प्रमाण भी भोजन होगा और कोई बुलानेवाला नहीं दिखाई देता उस व्यक्ति को उस रोटी को बनाने का तद्जन्य द्रव्य का विकल्प आयेगा कि नहीं आयेगा ? हे श्रमणो ! तुम बहुत बड़े दुःख से मुक्त हो चुके हो, सोचते ही नहीं हो, समझते ही नहीं हो। इसलिये किसी श्रावक को परेशान मत करना, **जब-तक पूर्ण निर्णय न हो जाये, तब-तक अंतराय करने नहीं बैठ जाना, लेकिन तुमको शंका हो चुकी है और निर्णय नहीं कर पा रहे हो तो वहाँ अंतराय कर लेना, क्योंकि शंकित नाम का भी अंतराय है।** बहुत गिराना नहीं । भैया! श्रावक तो भावुकता में देता है पर तुम भावुकता में नहीं, विवेक में ले रहे हो। भैया! यदि थाली छोड़कर भागोगे तो तुम हिंसक कहलाओगे। मक्खियाँ, चीटियाँ उसमें आकर नष्ट होंगी, सम्मूर्च्छनजीव उसमें उत्पन्न होंगे। आप जाल फैलाकर आये हो।

धन्य है इन धरती के देवताओं को जो अंजलि में आहार लेते हैं, किसी की थाली का बिगाड़ते नहीं हैं। ये तो गोचरी करते हैं। **भैया! पुण्य के तीव्र उदय में जीव विवेकविहीन हो जाता है और तीव्र पाप का बंध कर लेता है, जितने जीव सातवें नरक जाते हैं वे प्रबल पुण्यात्मा होते हैं। जिसके पाप के उदय चलते हैं, उनको सातवें नरक जाने का अहोभाग्य नहीं है।** जो जीव वज्रवृषभनाराच संहनन सहित, संज्ञी पंचेन्द्रिय होते हैं, उन्हें ये पापोदय नहीं होता, ये पुण्योदय है पर पुण्योदय को जो पापरूप में भोगते हैं तब उनको सातवें नरक जाना पड़ता है। वज्रवृषभनाराच संहननवाला ही तीव्र संक्लेशता कर पाता है। क्या दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय सातवें नरक जायेगा ? नहीं जा सकता है।

भैया! सप्तम नरक जाने के लिए पुरुषवेद, कर्मभूमि और वज्रवृषभनाराच संहनन चाहिये है। भावपुरुष, भावस्त्री, भावनपुंसक-इन तीनों के वज्रवृषभनाराच सहनन हो सकता है।

हे श्रमणो ! परद्रव्य का किंचित्मात्र भी दुरुपयोग नहीं करना, स्वद्रव्य का भी दुरुपयोग नहीं करना। स्वद्रव्य से तात्पर्य तुम्हारे द्वारा कमाया हुआ पुण्य है। इतना प्रयास करना कि मैं किसी की संक्लेशता का निमित्त न बनूँ, लेकिन तब भी कोई संक्लेशित हो जाये तो मुझे बंध बिल्कुल भी नहीं होगा। ये भी ध्यान रखना कि मैं किसी को संक्लेशित नहीं कर रहा हूँ। पर मुझे देखकर कोई संक्लेशित हो रहा है, अकारण बैरी है, ये पूर्व का बैरी है, बंधु है। ये जिसमें अकारण शब्द लगता है ये वर्तमान पर्याय की अपेक्षा से है। भूत की अपेक्षा वो भी कारण ही है। अकारण बन्धु, अकारण बैरी मिलने पर भी न संतुष्ट हो, न संक्लेशित हो तो ये तुम्हारी समता है जिससे आगे सुरक्षित हो सकते हो।

'अन्यूनातिरिक्तस्वरूपनियतत्वरूपा त्यागोपादानशून्यत्वशक्तिः' न न्यून हूँ, अधिक भी नहीं हूँ; ये त्यागोपादानशून्य शक्ति है। शुद्धात्मा निज में पूर्ण है। उसको किसी को कुछ देना नहीं है, किसी से कुछ लेना नहीं है, ये सिद्धों का स्वरूप है, पर जो चिन्तन कर रहा है, वह शुद्धात्मा को देख रहा है, जान रहा है। **अशुद्ध अवस्था में ही शुद्ध अवस्था को जो पहचान लेता है, वही शुद्ध बनता है।** क्या यहाँ वर्तमान में बैठकर के त्यागोपादानशक्ति का ध्यान नहीं कर सकते हो, वेदन नहीं कर सकते हो ? कर सकते हो और करना ही चाहिये। चाहे अकारण बैरी मिले, चाहे अकारण बन्धु मिले; गजकुमार बन जाना, पार्श्वनाथ बन जाना दोनों एक साथ। वर्तमान पार्श्वनाथ की पर्याय की अपेक्षा तो अकारण बैरी कमठ और धरणेन्द्र पद्मावति अकारण बंधु। यदि अकारण बैरी पर कुपित होते तो कैवल्य प्रकट नहीं कर पाते। बैर निभाने के मधुर उपाय भी हैं, कोई आपका शत्रु है और आप दुःखी हो। उससे आप चाहते हो कि वह दुःखी हो जाये। यदि उसके गले में तलवार लगाओगे तब तो बड़ा अनर्थ हो जायेगा। एक काम करो उसको माला पहना दो।

माता-पिता को देखो, जब बेटा परेशान करे तो शादी करा दो जल्दी से। ये मधुर बैर का निर्वाह है। बेटा समझता है कि मुझे सुखी कर दिया, लेकिन अकारण बैरी। एक बार क्या हुआ, एक श्रावक को सूचना मिल गयी कि आचार्य विरागसागर, विशुद्धसागर को आचार्य बना रहे हैं। वह दौड़ा-दौड़ा मेरे पास आया और बोला – मैं अपने अच्छे महाराज को दुःखी नहीं करना चाहता हूँ और मैं जाता हूँ आचार्यश्री के पास और कहता हूँ कि आप इन अच्छे साधु को बिगाड़ मत दो। तुम अकारण बैरी मत बनो। उसका मतलब समझो। वह बोला – महाराज! जितने स्वतंत्र आप अभी रह रहे हो, जिनवाणी पिला रहे हो, वह तो जगत् के झमेले में पड़े आचार्यों को देखकर कह रहा था। वह बोला – जब से मैंने सुना मेरी तो नींद भंग हो गई, मैं तो जा रहा हूँ। मैंने कहा जरूर जाओ, वह गये लेकिन आचार्यश्री तो

आचार्य ही हैं, उन्होंने दो मिनिट में उनको समझा दिया सो वह फिर मेरे पास आ गये, महाराजश्री! ठीक है, ले तो लो।

पद्मनंदी महाराज और विमलकुमार सौंरया, बाबूलाल पण्डितजी आदि विद्वानों को मैंने इकट्ठा बैठाया और महाराज जी से भी पूछा। पद्मनंदी जी बोले – सुनो, तुम तनावमुक्त हो जाओ। कैसे जीना है आपको ये आचार्य पद के हाथ में है कि तुम्हारे हाथ में है। यदि आपके निमित्त से कोई साधना के मार्ग पर आता है सो आने देना, परंतु साधु बनाने का लोभ लेकर मत चलना। मैंने कहा – अच्छी बात है, पर दृष्टि ये है कि न ये मेरे हैं, न मैं इनका हूँ और जो ये सिंहासन लगा है ये भी मेरे से अत्यंत भिन्न है। अत्यंताभाव है। ये समाधि किंचित् भी साधन नहीं है, ऐसी अकाट्य श्रद्धा ही नहीं, चर्या में भी लेकर चलना होगा तभी समाधि हो पायेगी। आपको तो मैं समझा दूँगा पर परमार्थदृष्टि में जाइये, पिच्छी-कमण्डलु भी तुम्हारे बंध का कारण है।

अब इन श्रमणों को कलम चाहिये, डायरी चाहिये। अब विशुद्धसागर तुम भीख मांगकर लाओ। ये संघ के राग में संग कैसा? सोचना है कि आपको एक पिच्छी चाहिये थी परन्तु पर के राग से कितनी पिच्छियाँ श्रावक लेकर आयेगा और आप कह रहे हो कि ये वाली नहीं चाहिये, मुझे तो दूसरी चाहिये है।अब उसको बेचारे को मनाओ, भाई! जो है सो है। सोचो, ज्ञानी! इतना विकल्प बढ़वाया कि नहीं बढ़वाया। **भैया! कुछ अनुकूल शत्रु भी होते हैं, कुछ प्रतिकूल शत्रु भी होते हैं । प्रतिकूल शत्रु को तो आप शत्रु मानते हो पर अनुकूल शत्रु को शत्रु नहीं मान पा रहे हो।** यदि किसी व्यक्ति ने आपके धन का अपहरण कर लिया तो आप कहोगे कि ये मेरा प्रतिकूल शत्रु है। परंतु आपके बेटे की शादी हुई, आपके समधी ने एक करोड़ दे दिया। मुस्करा गया, आनंद आ गया पर तुझे पता नहीं मित्र! वह महान शत्रु था। अपना बहु आरंभ-परिग्रह तेरे सिर पर पटक गया और **'बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुष:'।** ये शत्रु जो धन ले गया है वह तो तुम्हें परिग्रह से मुक्त कर गया है। उसे तो तुम प्रतिकूल शत्रु मान रहे हो जबकि वह तो अनुकूल शत्रु है।

ज्ञानी! तेरे बेटे की माँ अनुकूल शत्रु। जितने लोग महाराजों को मीठा कहकर प्रपंचों में लगाते हैं वे सब अनुकूल शत्रु। ज्ञानी! दोनों ही महान् घातक हैं और सबसे ज्यादा घातक अनुकूल शत्रु। कम-से-कम प्रतिकूल में समझ में तो आता है कि शत्रु है, लेकिन अनुकूल में तो शत्रु को शत्रु भी नहीं मान रहा है और निज के भीतर निज में अनुकूल शत्रु, प्रतिकूल शत्रु हैं। हे जीव! तुझे लगता है कि आज तो आनंद आ गया, आज तो अच्छा खाने को मिलेगा। हे जीव! ऐसा भाव आ गया और हृदय मुस्करा रहा है। ये तेरे भीतर तेरा राग उत्पन्न हो रहा है - अनुकूल शत्रु। अमुक को तो देखूँगा भी नहीं, वह पड़गाहन भी करेगा तो नहीं जाऊँगा, ऐसा विचार जीव के मन में आ गया - प्रतिकूल शत्रु। तेरा ही भाव तेरे भीतर, ज्ञानी! इसे स्वीकारते रहे तब भी कल्याण हो जायेगा। हे जीव! लिप्त रहना शत्रुओं में और मुख भर से

कहते रहना प्रयोजन नहीं है। चैतन्यपिण्ड हूँ और अचेतन को भोग रहा है। शुद्ध चैतन्य पिण्ड हूँ और अचेतन को भोग रहा है। शुद्ध चैतन्य पिण्ड अचेतन में निवास कर रहा है तब-तक शक्तिमान शुद्ध चैतन्य पिण्ड है लेकिन वृद्धिमान नहीं है। दोष भी दिया तो कर्माधीन हो गया। **हे ज्ञानी! कुन्दकुन्ददेव कहेंगे- ईश्वराधीन मिथ्यादृष्टि, कर्माधीन जैन मिथ्यादृष्टि।** धीरे से कहता है कि ये कर्म का उदय है। मेरे मित्र ! कर्म का उदय होने पर भी भोग कर्म नहीं करता है तेरा चेतन करता है। कर्म के उदय से कषाय आने पर भी उन विकारों का जो फलदान है वह कर्म नहीं भोगता है। भोगती तो यह चैतन्य आत्मा ही है इतना समझ में आ जाये तो तू अपने आप कर्म से दूर होने का पुरुषार्थ करेगा। लोगों को कुंदकुंद का दर्शन, चिन्तन बहुत गहरे में समझने की आवश्यकता है। कर्म कर्म में पर के अकारण भी बंध होता है। भैया! आपके भीतर राग-द्वेष होता है कि कर्म होता है ? राग-द्वेष का ही तो जन्म होता है। हे जीव ! तू तो राग-द्वेष का ही कारण है। कर्म तो अपने आप सहज प्राप्त होकर के बंध को प्राप्त हो रहे हैं । रस्सी रस्सी में बंधी होने पर भी फँसी तो गाय है। ऐसे ही कर्म कर्म में बंधे होने पर भी उसमें आत्मा तेरी फँसी है। इसलिये रस्सी खोल, गाय की गर्दन को सुरक्षित कर। फँसे होने की दृष्टि से बंध है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

17

अगुरुलघुत्वशक्तिः

''षट्स्थानपतितवृद्धिहानिपरिणतस्वरूपप्रतिष्ठत्वकारण विशिष्टगुणात्मिका अगुरुलघुत्वशक्तिः।''

षट्स्थानपतितवृद्धिहानिरूप परिणत हुआ जो वस्तु के निजस्वरूप की प्रतिष्ठा का कारण विशेष अगुरुलघुत्वनामा गुण उस स्वरूप ''अगुरुलघुत्वनामा'' शक्ति है।

अगुरुलघुत्वशक्ति षट्स्थानपतित वृद्धि-हानिरूप से परिणमित स्वरूप प्रतिष्ठत्व का कारणरूप विशेष गुणात्मक है। न सिर्फ आत्मा में, अपितु प्रत्येक पदार्थ की प्रत्येक पर्याय में षट्गुणी हानि-वृद्धि निरन्तर हुआ करती है।

समय देशना

बन्धुओ ! आचार्य प्रवर भगवन्त कुन्दकुन्दस्वामीकृत समयसार जी जैसे महान् ग्रन्थ पर भगवन्त अमृतचन्द्र स्वामी ने जो आत्मख्याति टीका लिखी है वह अपने आप में अध्यात्म विद्या का एक अमृत है । स्याद्वाद अधिकार में आत्मख्याति टीका में सैंतालिस शक्तियों की प्ररूपणा में यहाँ त्यागोपादानशक्ति की व्याख्या की है। अब अगुरुलघुत्वशक्ति की व्याख्या प्रारम्भ करते हैं। इन सम्पूर्ण शक्तियों का हम श्रुतपान करें और आगम वचन ये है कि श्रुत सामान्यतया समझ में भी न आये, श्रुतपाठ करने मात्र से असंख्यात गुणश्रेणी कर्म की निर्जरा होती है।

एक विशिष्ट बात को समझना। मंत्रवादी मंत्र को जानता है। किसी जीव को कालिया नाग ने डस लिया। मंत्रवादी मंत्र का पाठ कर रहा है। मात्र बीजाक्षर के सुनने मात्र से उस कालिया नाग का जहर उतरना प्रारम्भ हो जाता है। अक्षरों का बोध नहीं है। क्या अर्थ है ह्रीं का, क्या अर्थ है श्री का, क्या अर्थ है ॐ का, उसे कुछ मालूम नहीं है। मात्र जान रहा है और उच्चारण कर रहा है। उसके उच्चारण करने मात्र से उसका जहर उतर रहा है। इसलिये कोई ये न सोचे कि मैं किसी को मंत्र सुनाऊँ तो क्या होगा। आप तो अपना काम करो, पुद्गल वर्गणा अपना काम कर रही है। निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। जड़ मंत्र के उच्चारण मात्र से भाव बदलते हैं। **जैसे कालिया नाग का जहर उतरता है मंत्र से, ऐसे ही श्रुत का उच्चारण करने मात्र से काले कर्मों का उतरना प्रारम्भ हो जाता है।**

जो हमारी पुरानी परम्परा थी श्रुतपाठ की, वह बड़ी निर्मल परम्परा थी। वृद्ध माताएँ जिनको मालूम नहीं तत्त्वार्थसूत्र में क्या लिखा है, लेकिन प्रतिदिन सुना करती थीं। **परिणामों की विशुद्धि, संक्लेशता की हानि श्रुत के उच्चारण करने मात्र से होती है।** जैसे गाली है, जरूरी नहीं है सभी गालियों का अर्थ मालूम हो। गाली किसी को भी दी जाये उसे बुरा लगता है की नहीं लगता? जैन मंत्रशास्त्रों में मुख्यतया मात्र चौबीस तीर्थंकर एवं पञ्च परमेष्ठी की आराधना सूचक मन्त्र हैं। अन्य जगह ऐसे मंत्र हैं जिसमें कुछ शब्द प्राकृत के हैं, संस्कृत एवं अपभ्रंश के भी हैं, यहाँ तक कि हिन्दी में भी मंत्र है और वह मंत्र ऐसे हैं कि सीधे-सीधे गाली दी जा रही है। अब किसी की हड्डी टूट गई। किसी का कुछ हो गया। अब वो बाहर ठीक कराने जा रहे हैं। उनमें ऐसे मंत्र हैं ?- 'तेरे इष्ट की कसम', 'हाड़ टूटे पैर फूटे, ठीक न भयो तो तेरे गुरु को मरण हो जाये ।' ये मंत्र हैं। गुरु का तात्पर्य - अमंत्र अवलोकीकरण आकर्षण। वही तो मंत्र है कि जिस शब्द को सुनकर के सामनेवाला हमारी ओर आकर्षित हो जाये। ऐसी भाषा का प्रयोग करके लोग उपचार कर रहे हैं।

जीव बहुत तनाव में है। भैया! आप विकल्प नहीं करो, ये सब ठीक हो जायेगा। इस तरह से आपने उसे समझा दिया। उसका माथा हल्का हो गया, यही तो मंत्र है। यथार्थ मानिये गृहस्थ जीवन में कोई स्तोत्र तो निश्चित ही पढ़ना चाहिये। कोई पाठ नियत कर लेना चाहिये कि मैं इसको पढ़ूँगा। कभी-कभी

आपको जो नाना प्रकार के विकल्प आते हैं वे अपने आप शान्त हो जाते हैं पाठ करने मात्र से। इसी प्रकार आप आगम ग्रन्थों का पाठ करने लग जाओ। गणधर परमेष्ठी एक मुहूर्त में द्वादशांग का पाठ कर लेते हैं। सूत्र पाठ की परम्परा नई नहीं है, प्राचीन है, सनातन है।

प्रत्येक द्रव्य शुभ परिणाम में परिणमनशील है। अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय - इन दो प्रकार की पर्यायों का आगम में कथन है। जो वक्तव्य है, चाक्षुष है वह व्यंजनपर्याय है। अवाच्य है, अचाक्षुष है वह अर्थपर्याय है। इसमें अलग-अलग आचार्यों के अभिमत हैं। किन्हीं आचार्यों की दृष्टि से अर्थपर्यायों को व्यक्त कहा है और किन्हीं आचार्यों ने अव्यक्त कहा है। गुणी और गुण का परिणमन है वह अर्थपर्याय है। अर्थपर्याय षट्गुण वृद्धि-हानिरूप है। अर्थपर्याय को आगमप्रमाण से ही जाना जा सकता है। आज तक कोई भी वक्ता अपने श्रुतज्ञान से इस अर्थपर्याय के बारे में पूर्ण व्याख्या नहीं कर सका और न कर पायेगा, क्यों? 'वाक्य अगोचरा:' वचन अगोचर हैं। इसकी व्याख्या आलापपद्धति में आचार्य देवसेनस्वामी ने की तो वहाँ उन्होंने एक श्लोक लिख दिया -

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं, हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञा सिद्धं तु तद्ग्राह्यं, नान्यथा वादिनो जिना:।। आ.प.।।

हे जीव! भगवान् जिनेन्द्र के तत्त्व इतने सूक्ष्म हैं कि किसी के द्वारा कुहेतुओं से खण्डित नहीं किये जा सकते। केवल्य के ज्ञान का विषय - भैया! जब मैं ही अपने ज्ञान में डूबूँ और अपने ज्ञान को जानूँ। जिस विषय में आपका तलस्पर्शी ज्ञान है और जिस व्यक्ति का तलस्पर्शी ज्ञान नहीं है उसे आपके ज्ञान में अंधकार दिखेगा। आपके ज्ञान के निमित्त से अपने में अंधकार दिखेगा; जैसे इस सभा में अपनी-अपनी भाषा का प्रयोग करें तो अपने शब्दों की ध्वनि तो सुन पायेगा, लेकिन अर्थ नहीं जान पायेगा।

अगुरुलघु जो गुण है, एक गुण में एक गुण अगुरुलघु नहीं होगा सभी गुणों में अगुरुलघु हैं। जैसेकि एक आत्मा में अनन्तगुण हैं और अनन्त गुणों के उत्पाद-व्यय भी अनन्त हैं। जिस भाषा का बोध मुझे नहीं है उस विषय को जानना बहुत आवश्यक है। जिस भाषा का बोध मुझे नहीं है उसे मात्र ध्वनिरूप में श्रवण तो कर लेते हैं, लेकिन अर्थरूप में नहीं समझते। भाषा का अर्थ मेरे द्वारा नहीं हो रहा है यह मेरे क्षयोपशम की कमी है कि भाषा में अर्थबोध का अभाव है? भाषा में अर्थबोध का अभाव नहीं है। ये मेरे अन्दर उस भाषा को समझने के क्षयोपशम का अभाव है अथवा यूँ कहिये कि क्षयोपशम का भी अभाव नहीं है, हमने उसको जानने का प्रयास नहीं किया। यदि जानना चाहते तो उसको भी समझ लेते हैं। इसी प्रकार से ये तो छद्मस्थ की व्याख्या कर रहा हूँ।

एक छद्मस्थ जीव अनेक छद्मस्थ जीवों में जब निहारता है तब उसके ज्ञान में तारतम्यता देखी जाती है। जब कोई एक श्रेष्ठ ज्ञाता अपने विषय का व्याख्यान देता है उस समय श्रोता उस विषय को श्रवण करते हैं। श्रवण करने के काल में कभी-कभी श्रोता इतने गहरे में डूब जाते हैं और ये समझने लगते हैं कि

अरे ! ये तो मैं कभी सोच नहीं सकता था, जान ही नहीं सकता था। अरे! वक्ता को कितना गहरा ज्ञान होगा कि इस विषय में इतना सोचा जा सकता है। जो सोच रहा है वह वस्तुभूत है कि अवस्तुभूत है? जो सोचा जा रहा है वह सोच वस्तु में चलती है कि अवस्तु में चलती है? ये जो सोच है वह ज्ञान का क्षयोपशम है ।

केवली का ज्ञान, ये एक लता के तुल्य है जैसे कि लौकी की बेल आश्रय को लेकर जाती है। यदि उस लता के लिये आश्रय नहीं मिलता तो वहीं रह जाती और आश्रय मिलता जाता तो आगे चली जाती है। ऐसे ही ज्ञानियो! आश्रय के अभाव में आश्रित ही वृद्धिमान नहीं हो रहा है। केवली का ज्ञान उस लता के तुल्य है जिसको स्तम्भ नहीं मिल रहा ऊँचा, नहीं तो और चढ़ जाती। ऐसे ही केवली के लिये और ज्ञेय नहीं मिल रहे हैं और ज्ञेय होते तो लोकालोक अनन्तलोकालोक भी होते तो वे भी केवली के ज्ञान में होते । एक अविभाग प्रतिच्छेद में केवली के ज्ञान में अनन्त लोकालोक झलकते हैं।

भैया! श्रद्धा में तो लाईये आप। जितना ज्ञान है जितना प्रमाण है उतने प्रमेय नहीं हैं। ये दो नेत्र देख रहे हैं। भैया! आप मुझे दिख रहे हैं, आप मुझे नहीं देख रहे हैं क्या? मैं जहाँ बैठा हूँ वहाँ मैं अकेला हूँ। आपकी दो आखें मुझे देख रही हैं। यदि यहाँ चार लोग और बैठे होते तो क्या उन्हें देख सकती थी? ये पञ्चमकाल के जीव हैं, भैया! इन्हें ऐसा सरल दृष्टान्त दे दो कि ये केवली पर शंका न कर पायें। इसी प्रकार से ज्ञानी ! जो कैवल्य ज्ञान है वह जितने लोकालोक आज हैं उसे जान रहा है । वह कैवल्य अनन्त लोकालोक और होते तो उन्हें भी जान लेता।

भैया! सोच बेल के समान है। कोई भी सोच अवस्तु पर नहीं चलती। कोई भी चिन्तन अवस्तु पर नहीं चलता। भैया! विपरीत चिन्तवन भी होगा तो वस्तु पर ही होगा। आकाशपुष्प शब्द भी आता है जबकि होता नहीं है। वह भी वस्तु पर आ रहा है। आकाश का फूल नहीं होता पर आकाश और फूल होता है। आकाश न होता, फूल न होता तो आकाशफूल की कल्पना नहीं की जा सकती थी। 'खर-विषाण' गधा भी है, सींग भी है। यदि गधा न होता, सींग न होते तो 'गधे के सींग' का अभाव न होता। गधे के सींग नहीं है इस बात को आपने जाना कैसे ? भैया! यदि आपने कभी जीवन में सींग न देखे होते तो क्या आप 'गधे के सींग' का अभाव कर सकते थे।

ब्रह्मांड में जो भी चिन्तन होता है वह वस्तु के सद्भाव में ही होता है। वस्तु के अभाव में कोई चिन्तन नहीं होता। आज अपन यहाँ बैठे हुये हैं, आप आराम से सुन रहे हो, मैं सुना रहा हूँ। यही विषय जो अपना चल रहा है, यह भूत में चला जाये और इतिहास के पृष्ठों पर कोई लिख के चला गया तो ज्ञानी लोग यही कहेंगे कि कोई दार्शनिक बोल रहा था और कितने श्रेष्ठ श्रोता थे वे सुन रहे थे। ऐसी उन स्मृतियों को मात्र सोच-सोचकर सोचेंगे जैसे मैं आज बैठकर सोचता हूँ कि हे कुन्दकुन्द भगवान्! आपका क्या क्षयोपशम होगा? कहाँ बैठकर आप लिख रहे होंगे? अमृतचन्द्रस्वामी आपने आत्मख्याति टीका लिखी। धन्य हैं वे सुधी श्रावक जिन्होंने अपने हाथों से कुन्दकुन्द मुनि के हाथ में ग्रास

रखा हो। धन्य हैं वे मुनि जिनकी दीक्षा कुन्दकुन्दाचार्य के हस्तकमलों से हुई हो। धन्य हैं वे योगी जिनकी चर्या कुन्दकुन्दाचार्य के निर्देशन में चल रही हो। कभी-कभी मैं तो इसे ही ध्यान का विषय बना लेता हूँ। आहार को जाते-जाते आप ध्यान कर सकते हो क्या? भैया! एक दिन में चर्या को निकला। जैसे ही चर्या को निकला पता नहीं क्यों मन एकदम विचलित हुआ। अरे! क्या है ये सब, वो ही आहार को चले जाना, चौबीस घण्टे वो ही क्रिया तो चल रही है। एक सेकेण्ड को ऐसा भाव आया, द्वितीय क्षण तुरन्त कोई बात नहीं। मालूम नहीं उदास भाव क्यों आ रहे थे मुझे, छिपा नहीं रहा हूँ स्पष्ट बता रहा हूँ। इसलिये उदासभाव आ रहे थे, क्योंकि उतनी अच्छी चर्या क्यों नहीं कर पाता हूँ जैसी महावीर ने की। भैया! विकल्प नहीं, कितना गहरा विकल्प था मुझे। जब-तक सराग हैं तब-तक सम्पूर्ण विकल्प हैं। मुझे और अच्छी चर्या करनी थी। दूसरे क्षण में उत्तर क्या आता है, कोई बात नहीं है। किसी को क्या मालूम क्या हो रहा है। भीतर का भाव चल रहा था। कम-से-कम आप ये तो विचार करो कि तीर्थंकर महावीर आहार को जाते होंगे तो ऐसे ही निकलते होंगे। आप कुछ नहीं कम-से-कम उन तीर्थंकरों की चर्या का बोध तो करा रहे हो बाहर में और भीतर ये भाव आ रहा है कि मुझे और अच्छा होना चाहिये है तो कभी-न-कभी तेरी परणति उस अवस्था तक पहुँच जायेगी।

ज्ञानी ! अच्छे होने के तीव्रराग में भावों की अच्छाई मत खो देना। ये उत्तर मिलते ही मैं आनन्द के साथ आगे चला। कभी-कभी ये होता है कि लम्बी पढ़ाई करने के राग में छात्र इतने तनाव से भर जाते हैं कि वर्तमान की पढ़ाई ही उनकी समाप्त हो जाती है। इसलिये जो है सो है, चिन्तन जो है, वह लता के समान कहा जा रहा है। आश्रयभूत चल रहा है। इससे आपने क्या पकड़ा। कोई भी चिन्तन अवस्तुभूत नहीं होता है, वस्तुभूत ही होता है। अन्तर ये होता है कि जिसने सम्यक् चिन्तन कर लिया है उसके लिये वह सम्यक् का हेतु बन जाता है और जिसने असम्यक् का चिन्तन किया है उसके लिये मिथ्यात्व का हेतु बन जाता है। वस्तु उसके चिन्तन में वही होती है। **जो ध्यान का विषय, ध्यान का ध्येय आपको सिद्ध परमात्मा की ओर ले जा रहा है, विश्वास रखना भैया! वही ध्यान का ध्येय तुमको सप्तम नरक में ले जाता है।** जैसेकि एक पुरुष जिनालय से निकलता है उसने तीर्थंकर ऋषभदेव की पवित्र प्रशान्त मूर्ति को देखा और भावों में विशुद्धि को प्राप्त हुआ। क्षुल्लक ध्यानसागर ने भेड़ाघाट के शान्तिनाथ के दर्शन किये, देखो जीव को वैराग्य हो गया। **'दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि।'**

प्रतिमा अलग-अलग थीं क्या? नहीं प्रतिमा एक ही थी पर अन्दर का ध्येय भिन्न-भिन्न था। इसलिये ये मत कहना कि एकसी सामग्री मिलने पर एकसा तुम्हारा परिणमन होगा। **सदृश्य सामग्री मिलने पर भी विसदृश्य परिणमन होता है। पिच्छी सबको समान मिली है, कमण्डलु सबको समान मिला है, दिगम्बरमुद्रा सबको समान मिली है, दीक्षा के संस्कार गुरु ने सबको समान दिये हैं। एक जीव उसको प्राप्त करके सिद्धत्व को प्राप्त कर रहा है और एक जीव उस मुद्रा को**

प्राप्त करके परिग्रह में लिप्त होकर के निगोद को प्राप्त कर रहा है। दिगम्बर मुनि तिलतुष मात्र भी परद्रव्य में मूर्च्छा से युक्त होकर के संग्रह करता है उसको अष्टपाहुड ग्रन्थ में निगोद का पात्र कहा है।

एकसमय में एक जैसे परिणाम, जीवन में परिणाम की दशा को निहारो। ये तुम्हारा निजी पुरुषार्थ कि कोटि-कोटि जीवों को सदृश्य देखने की क्षमता आ जाये। विश्व में छह द्रव्य हैं। छहों द्रव्यों को सदृश्यभूत साम्यदृष्टि से देखने की दृष्टि जिस दिन तेरे पास आ जायेगी उस दिन तू समदर्शी बन पायेगा। विपरीत अभिप्राय भी वस्तु में होता है, अवस्तु में नहीं होता। अपने पास मूल सूत्र क्या है ? छह द्रव्य और छह द्रव्य के बाहर विश्व में कोई चिन्तन होता ही नहीं है। कुलिंगधारण करके कुछ भी सोच रहा है वह छह द्रव्य के अन्दर ही सोचेगा। जिनलिंगधारण करके भी चिन्तन करेगा तो भी छह द्रव्य के अन्दर करेगा। शुक्लध्यान में भी जायेगा तब भी छह द्रव्यों में से आश्रय होगा। निजात्मा का भी आश्रय लेगा तो छह द्रव्य के अन्दर ही आयेगा।

ज्ञानी! आत्मद्रव्य, योगसंक्रान्ति, अर्थसंक्रान्ति, व्यंजन-संक्रान्ति; ये शुक्लध्यान का विषय जो संक्रान्तियाँ चल रही हैं, विचार चल रहे हैं। जो कुछ हैं ये सब द्रव्याश्रित हैं। आप ये कह सकते हो कि इतना क्यों आप जोर देकर बोल रहे हो इस विषय पर। इसलिये बोल रहा हूँ कि ज्ञानी! किसी भी द्रव्य के प्रति हीनदृष्टि, द्वेषदृष्टि मत रखना। मल भी मिल जाए तो उस पर निर्विचिकित्सा अंग का पालन करना। यहाँ तक कि कोई आपको गाल पर चाँटा भी मार जाये, कोई आपको गाली भी दे जाये तब भी ये ही कहना कि ये इसका भ्रम है पर मुझे तो जीवद्रव्य ही दिखाई दे रहा है। परनयनों में आप उलटे दिख रहे हो पर आप उलटे नहीं हो।

भैया! एक गाँव है जो छत्रसाल का जन्मस्थान माना जाता है। जिन्होंने कुण्डलपुर का गेट बनवाया था वो राजा छत्रसाल। उस गाँव में बड़े-बड़े दर्पण रखे हैं म्यूजियम में। उन दर्पणों में एक ऐसा है कि दुबला-पतला आदमी भी जाये तो बहुत मोटा दिखता है। एक दर्पण ऐसा है कि आदमी कितना ही मोटा हो दुबला दिखता है। एक ऐसा दर्पण भी है कितना ही ऊँचा आदमी हो बिल्कुल छोटा दिखता है। एक दर्पण ऐसा है कि कितना ही छोटा हो बहुत बड़ा दिखता है। ये जो हीनाधिकता दिख रही है, किसी का चित्र बढ़िया आ जाये, चाहे हो भले ही काला-कलूटा और कोई हो गोरा उसका चित्र काला निकल पड़े, ये दर्पण की महिमा है।

तीन सौ त्रेसठ जो मिथ्यामत हैं, वे लेंस हैं। इन तीन सौ त्रेसठ मिथ्यामतों ने वस्तु को ही देखा है अवस्तु को नहीं देखा। ठूँठ में पुरुष का बोध किसे होगा? भ्रम किसे होगा? अज्ञानी को कभी भ्रम नहीं हो सकता। जिसने कभी पुरुष को नहीं देखा हो उसे ठूँठ में कभी पुरुष दिखाई नहीं देगा। जिसने ठूँठ देखा है और पुरुष भी देखा है और दोनों को जो जानता है उसे ही ठूँठ में पुरुष दिखाई देगा। संशय तभी होगा जब आपने दोनों को जाना होगा और जब-तक दोनों को नहीं जानोगे तब-तक संशय नही हो सकता। **संशय**

द्वैत में होता है अद्वैत में नहीं। इसी प्रकार से तीन सौ त्रेसठ जो मिथ्यामत हैं, क्रियावादी, अक्रियावादी, बौद्धदर्शन आदि।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड में आचार्य भगवन्त नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने इन सबके भेदों का वर्णन किया है। नियतवादी, अनियतवादी सारे-के-सारे मिथ्याभेद हैं। इन लोगों ने क्या वस्तु को नहीं देखा। आप उनसे पूछो - आप कैसा बोलते हो? बोले - मैंने जानकर बोला है। बिल्कुल ठीक कह रहा है। रस्सी में साँप का बोध किया, उसने जानकर किया है बिना जानकर नहीं किया फिर भी अज्ञान है, क्योंकि तुम्हारा निर्णय सम्यक् नहीं था। हम जो भी निर्णय ले रहे हैं, धर्मज्ञों की वाणी को हम लोग निर्णय नहीं मानते। **धर्मज्ञों की बात को जिनशासन प्रमाण नहीं मानता। धर्मज्ञ अन्धविश्वास से दूषित होते हैं, धर्मज्ञ छद्मस्थ होते हैं। हम धर्मज्ञ की नहीं सर्वज्ञ की बात मानते हैं। जो धर्मज्ञ सर्वज्ञ हो चुका है, वही प्रमाण है, मात्र धर्मज्ञ प्रमाण नहीं है।**

सुगत को बौद्धदर्शन में पहले सर्वज्ञ नहीं कहा जाता था। जब देखा कि वर्धमान को सर्वज्ञ की सिद्धि हो गई तब बाद में लोगों ने उनको सर्वज्ञ बनाया। ऐसेही भैया! वर्तमान के वक्ताओं से कहना, आप अपने व्याख्यान में बीच-बीच में इतना जरूर बोलते जाना कि मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ पर सर्वज्ञ की वाणी को बोल रहा हूँ। एक समय ऐसा आयेगा कि आप कोई ग्रन्थ लिखकर चले गये। अन्धविश्वास इतना बढ़ जायेगा कि लोग आपको सर्वज्ञ मानने लगें।

जो-जो प्रभावी पुरुष हों, किञ्चित् भी सम्यक् की कणिका उनके अन्दर जग गई हो तो वे अपने भक्तों से अवश्य बोलें कि भाई! मैं साधू ही हूँ, आचार्य, उपाध्याय परमेष्ठी ही हूँ। मैं अर्हंत परमेष्ठी नहीं हूँ। अर्हंत, सिद्ध बनने का पुरुषार्थ कर रहा हूँ। आप मुझे भगवान् पञ्चपरमेष्ठी के रूप में तो स्वीकारना लेकिन अर्हंत, सिद्ध जैसा मत स्वीकारना। मैं भावी अर्हंत, सिद्ध तो हो सकता हूँ पर वर्तमान का अर्हंत, सिद्ध नहीं हूँ। भैया! इस बात को बार-बार बोलना पड़ेगा नहीं तो भक्ति के अतिरेक में लोग भूल जाते हैं इस बात को।

भैया! आप विदेश चले जाओ। वहाँ के लोग तो पैर पड़ेंगे आपके क्योंकि जैनदर्शन से आये हो और किसी ने बोल दिया आपको जैन साधु, तो आपने सोचा, ठीक है, ये तो ये बोल रहा है, मैं थोड़े-ही बोल रहा हूँ। वास्तव में आप जैनदर्शन से गये थे। आर्जव, मार्दवधर्म से आप युक्त हैं और यथार्थ में दिगम्बर जैन हैं तो स्पष्ट बोलेंगे- भाई! मैं जैन साधु नहीं हूँ। यदि वहाँ तुमने अपने आपको जैन साधु घोषित करा दिया तो जैन साधु का अवर्णवाद हो गया। लोग ये ही सोचेंगे कि ये ही जैन साधु है। यदि वस्त्रधारी जैन साधु हो गये तो दिगम्बरत्व का क्या होगा?

भट्टारक चारूकीर्ति से मेरी स्पष्ट बात हुई। मैं वहाँ पहुँचा उन्होंने कहा – महाराज जी! प्रवचन कर दो। मैंने सोचा बड़ा विद्वान् जीव होगा सो अपन ने तो न्यायमिश्रित द्रव्यानुयोग की व्याख्या कर दी।

भट्टारकजी प्रवचन के बाद मेरे पास आये और बोले। महाराजजी! क्षमा करना, एक बात पूछूँ, उत्तर भारत में क्या अभी भी विद्वान् साधु हैं। मैंने कहा - भट्टारकजी ! दक्षिण भारत हमारा ऋषि परम्परा का क्षेत्र है, उत्तर भारत तीर्थंकर, तीर्थ-परम्परा का क्षेत्र है। इसमें कोई शंका नहीं है कि ध्वनि का प्रादुर्भाव उत्तर में हुआ है। जिनेन्द्र की वाणी खिरी कहाँ? उत्तर में। रक्षा-क्षेत्र हमारा दक्षिण भारत है। मैंने देखा कि ऋजु परिणामी जीव है। उन्होंने मेरे से कहा कि महाराज हम लोग विदेश भी जाते हैं तो मैंने उनसे स्पष्ट शब्दों में बोल दिया - भट्टारकजी! यदि आप हमसे प्रभावित हैं तो इतनी सी बात मेरी मान लेना। आप विदेश जब भी जाओ अपने आप को जैन साधु मत कहना। अपने आप को दिगम्बर जैन भट्टारक ही बोलना। यदि आपने जैन साधु बोल दिया तो हमारे दिगम्बरत्व का क्या होगा? मानना पड़ेगा मृदुस्वभावी जीव था, बोला - मैं ऐसा ही करूँगा। मैं अपने आपको साधु नहीं कहूँगा। सत्य है कि नहीं ?

यदि समयसार की दृष्टि से देखते हो आप तो यही पाखण्डीलिंग देहाश्रित है। मोक्षमार्ग तो परिणामों की अकर्तृत्वदृष्टि आत्मविशुद्धि है और वह जो आत्मविशुद्धि है वह अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह के परित्याग किये बिना सम्भव नहीं है। **जो दिगम्बर अवस्था है वह तो निर्वस्त्र देहाश्रित है और दिगम्बरत्व है वह आत्माश्रित है।** भाव अर्थ में बनायेंगे भाववाची **'मनुष्य से मनुषत्व, पुरुष से पुरुषत्व'** किसमें जा रहा है? भाव में। **'तत्त्वौ भावे'** ये कातन्त्र का सूत्र है। यह भाव अर्थ में जाता है। इसलिये बहुत अच्छे से समझना, तत्त्व को समझने के लिये व्याकरण का ज्ञान भी अनिवार्य है। न्याय का ज्ञान अनिवार्य है। न्याय-व्याकरण का ज्ञान नहीं होगा तो द्रव्यानुयोग को नहीं समझ पाओगे। वो तो सुनने की धारा में रहते हो आप वास्तव में यहाँ कोई न्यायाचार्य बैठा होगा, व्याकरणाचार्य बैठा होगा वो पकड़ लेगा कि देखो, अब कहाँ ले गये विषय को? और मेरा इन मुनिराजों से कहना है कि यदि श्रेष्ठ वक्ता बनकर आना है आपको इस भूतल पर तो प्रथमानुयोग का गहनतम अध्ययन करना होगा।

ये वर्तमान में जो छोटी-छोटी कथायें बनायी जा रही हैं इनसे तुम वक्ता नहीं बन सकते। जो वर्तमान में इतने मोटे पद्मपुराण को छोटीसी पुस्तक बना रहे हैं उनसे तुम अध्ययन नहीं कर सकते हो, सार समझ सकते हो। जब आप मूल महापुराण को पढ़ोगे, जब जिनसेनस्वामी एक बादल को दूत बनाकर के अहिक्षेत्र भेजेंगे पारसनाथ स्वामी के पास और विदिशा से निकलकर जायेंगे। जिनसेनस्वामी के काल में भेलसा का नाम विदिशा आ चुका था। मैं, पण्डित जी! यह सब जानकर बोलता हूँ। लोग समझें कि कालिदास ने मेघदूत लिखा है तो हम जैनियों के पास भी कुछ है उसका नाम 'पार्श्वअभ्युदय' है। कालिदास ने मेघों को दूत बनाकर भेजा था तो जिनसेनस्वामी ने भी मेघों को दूत बनाकर भेजा है, कहाँ? अहिक्षेत्र में पार्श्वनाथ के पास। जब उन्होंने भेलसा का वर्णन किया तो इतना वर्णन किया। कालिदास क्या लिखते हैं कि तुम उनसे पूछ लेना, ऐसा कर लेना। वह तो अपनी कान्ता के पास भेज रहे थे मेघों को। परन्तु यहाँ तो कान्त के पास भेजा है मेघों को, जो मुक्तिवधू के कान्त हैं वे पार्श्वनाथ, उनके पास भेजा है।

भाषा का सौष्ठव, वाणी का माधुर्य, ओज, लोच; ये सब साहित्य के अध्ययन से होता है। कहाँ आपको जोर देना, कहाँ उतार, कहाँ चढ़ाव; ये सब आपको साहित्य में मिलेगा।

मेरा सभी श्रावकों से कहना है कि भले ही तुम्हारा स्वाध्याय में मन लगे या न लगे, लेकिन घर में जिनवाणी विराजमान करो। भैया ! जितना साहित्य आज वर्तमान में आपके घर में है उसको और बढ़ाओ। सुबह से जगकर के जिनवाणी को सिर भी टेक लिया तब भी आनन्द आयेगा। पता नहीं जिनवाणी घर में रखी रही और कौन ऐसा जीव तुम्हारे घर में उत्पन्न हो गया जो आगे चलकर उसे आगे बढ़ायेगा। पर जिनवाणी को उचित स्थान पर रखना, अविनय न हो।

ज्ञान लता की भाँति है, चिन्तन लता की भाँति है, आसरे पर चलता है; विपरीतता भी होगी तो आसरे पर होगी और सम्यक्पना भी होगा तो आसरे पर होगा। जो अगुरुलघु का परिणमन है वह प्रतिक्षण चल रहा है। अर्थपर्याय का परिणमन प्रतिक्षण चल रहा है। पर सैंतालिस शक्तियों में जिस अगुरुलघुत्व की व्याख्या कर रहे हैं वह कितना महान् है। **सिद्धों में अगुरुलघुत्व, नामकर्म की प्रकृतियों में अगुरुलघुत्व और द्रव्य के स्वभाव में अगुरुलघुत्व।** एक अगुरुलघुत्व नामकर्म की प्रकृति - न अधिक हल्की, न अधिक भारी। ये अगुरुलघु नामकर्म की प्रकृति का उदय है। सिद्धों में अगुरुलघुत्व किस कर्म के अभाव से होता है? न ऊँचा है न नीचा। जब गोत्रकर्म का क्षय करेगा जीव तब सिद्धों में अगुरुलघुत्व होता है। यहाँ जो वर्णन चल रहा है ये गोत्रकर्म के क्षय वाला अगुरुलघुत्व नहीं है, ये नामकर्म का नहीं है, ये अर्थपर्याय का परिणमनवाला स्वभावभूत अगुरुलघुत्व है। ज्ञानी! षट्गुण हानि, षट्गुण वृद्धि। षट्स्थानपतित वृद्धि-हानि परिणत। षट्स्थानों में वृद्धि और हानिरूप परिणत 'स्वरूप-प्रतिष्ठत्व', स्वरूप में प्रतिष्ठित 'विशिष्ट गुणात्मिका', 'विशिष्ट गुणात्मक', 'अगुरुलघुत्व शक्तिः' अगुरुलघु शक्ति है। **मैं क्षीण भी नहीं हूँ, मैं अधिक भी नहीं हूँ, मेरा द्रव्य अगुरुलघु गुण से युक्त है। मेरी आत्मा अगुरुलघुगुण से युक्त है। मैं अपने स्वभाव से नष्ट होनेवाला भी नहीं हूँ। मैं परस्वभाव में आनेवाला भी नहीं हूँ। मैं हल्का भी नहीं हूँ, मैं भारी भी नहीं हूँ। क्षीणाक्षीणशक्ति से शून्य हूँ।** अनन्तभाग वृद्धि, असंख्यातभाग वृद्धि, संख्यातभाग वृद्धि, संख्यातभाग हानि, असंख्यातभाग हानि, अनन्तभाग हानि; ये षट्हानि - वृद्धिरूप जानना चाहिये। आचार्य भगवन् स्वयं कह रहे हैं कि केवली से पूछो। क्योंकि अर्थपर्याय में श्रुतज्ञान का गहनतम प्रवेश नहीं है। आगम के प्रमाण से जान लेना चाहिये। जिनदेव ने कहा है वही स्वीकार है।

भैया! बहुत सारा ऐसा विषय है जिसे तुम अपने ज्ञान-श्रद्धा का ही विषय बना सकते हो। ज्ञान में परिपूर्ण नहीं जान सकते हो। अब देखो, भावों की दशा का भी कथन है। इस पुद्गल की दशा का भी कथन है। जितने आपकी आत्मा में गुण हैं उन सभी गुणों में ये कथन लगेगा। ऐसा एक भी गुण नहीं है आपकी आत्मा में जिसमें षट्हानि-वृद्धिरूप परिणमन न होता हो। जब द्रव्यों की व्याख्या करोगे तब, **'धर्माधर्म**

नभः कालः, अर्थपर्यायगोचरः' धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य इनमें मात्र अर्थपर्याय का ही परिणमन होता है, व्यंजनपर्याय का परिणमन नहीं होता।

जो द्रव्य कभी विभाव को प्राप्त नहीं होते हैं, स्वभाव-स्वभाव में ही रहते हैं उनका अर्थपर्याय मात्र का परिणमन होता है। जीव, पुद्गल; ये जब समान अवस्था को प्राप्त होते हैं उस समय उनका शुद्ध व्यंजनपर्याय का परिणमन होता है। जब यही आत्मा कर्मातीत चिद्रूप एकमात्र शुद्धज्ञान चेतना में लीन होता है उस समय शुद्ध अर्थपर्याय का परिणमन चलता है और व्यंजनपर्याय मानोगे तो शुद्धद्रव्यव्यंजन पर्याय है जो आपके कथन का विषय बन रहा है।

सिद्ध पर्याय और सिद्ध परमात्मा के अन्दर जो अगुरुलघु का परिणमन चल रहा है वह शुद्ध अर्थपर्याय का परिणमन है। **'चरमशरीरात् किञ्चित्न्यून'** जो पर्याय है वह जीव द्रव्य की स्वभाव द्रव्यव्यंजनपर्याय है और जो कर्म से युक्त हैं, नरकादि चार गति रूप जो भ्रमण चल रहा है ये जीव द्रव्य की विभाव द्रव्यव्यंजन पर्याय है। रस रसान्तर, गन्ध गन्धान्तर, वर्ण वर्णान्तर; ये पुद्गल द्रव्य की विभावगुण व्यंजनपर्याय है। एक रस, एक गन्ध, एक वर्ण, दो स्पर्श; ये पुद्गल द्रव्य की स्वभावगुण व्यंजनपर्याय है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान - ये जीव द्रव्य की विभावगुण व्यंजनपर्याय हैं। अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, केवलदर्शन; ये जीव द्रव्य की स्वभावगुण व्यंजनपर्याय हैं।

ये विषय समझ में आ गया तो फिर आप कभी नहीं कह पायेंगे कि महाराज! मैं भी अभी सिद्ध हूँ। इसलिये नहीं कह पायेंगे, क्योंकि मैं धीरे से पूछूँगा कि हे भाई! ये तो बता तेरी स्वभावगुण व्यंजनपर्याय क्या चल रही है? स्वभाव द्रव्यव्यंजनपर्याय क्या चल रही है? तो फिर इस जीव को बोलना ही पड़ेगा स्वामी! अभी तो मेरी द्रव्यगुण व्यंजनपर्याय अशुद्ध है। विभाव अवस्था के होने पर स्वभाव का नाश नहीं है, स्वभाव का गौणपना है।

हे मेघ! आप सूर्य को आच्छादित करने की सामर्थ्य रखते हो पर सूर्य का नाश करने का सामर्थ्य नहीं है। हे कर्म! आप मेरी आत्मा के अनन्त गुणों को ढँकने की सामर्थ्य रखते हो, पर अनन्त गुणों के नाश की सामर्थ्य आप में नहीं है। इसलिये एक ही द्रव्य में हे जीव! इस देह का उत्पाद-व्यय भिन्न चल रहा है और ये अन्दर बैठा भगवानात्मा का उत्पाद-व्यय भिन्न चल रहा है। आप शरीर के उत्पाद-व्यय को देखकर हर्ष-विषाद कर रहे हो। पर मेरे भीतर दो उत्पाद व्यय चल रहे हैं - देह का भिन्न और देही का भिन्न। आपने देह का उत्पाद-व्यय भिन्न और देही का उत्पाद-व्यय भिन्न समझ लिया तो यही भेदविज्ञान, यही सम्यक् का कारण।

जीव 70, 80, 90, 100 साल का हो जाये तब भी इस चर्म को देखकर के शोक स्वभाव को प्राप्त नहीं करेगा, क्योंकि जो मैं हूँ उसका उत्पाद-व्यय भिन्न है और जो यह देह है उसका उत्पाद-व्यय भिन्न है। उसे रोकने की ताकत किसमें है? चाहे मट्ठा महेरी खाये वे भी बूढ़े हो गये, चाहे दूध रबड़ी खाये वे भी बूढ़े

हो गये। न मट्ठा महेरी उत्पाद-व्यय रोक पाये, न दूध मलाई भी उत्पाद व्यय रोक पाये। इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र, तीर्थंकर वे तो मेरे से अत्यन्त भिन्न हैं, उनका मेरा तो संश्लेष सम्बन्ध भी नहीं है वे मुझे क्या रोक पायेंगे। मेरा और मेरी देह का संश्लेष सम्बन्ध है और वह देह ही मेरी नहीं हुई तो जगत् की देह मेरी क्या होगी? ब्रह्म का जो घात किया है, कभी पर की देह को देखकर किया है, तो कभी निज की देह को देखकर के भी किया है। भाई! दर्पण के सामने नहीं जाते हो क्या? और जाते हो तो जितने क्षण तुम दर्पण को देख रहे हो उतने क्षण तुमने ब्रह्म का नाश किया है। समयसार जी कहता है कि तुम अब्रह्म में जी रहे हो। पर की आँखों को इन आँखों से देखा, पर के गालों को देखा; अपनी आँखों को, गालों को देखने के लिये दर्पण पर लगाकर बैठा है। कितना रागी है, यही अब्रह्म है।

भैया! ब्रह्म ब्रह्म ही है, जो ब्रह्म को निहार रहा है वह अब्रह्म क्यों देखेगा? ब्रह्म आत्मा है और जो आत्मा है **'ब्रह्मनि आत्मनि चरतीति ब्राह्मण:'** हे ब्राह्मणो ! यहाँ पर 15 ब्राह्मण बेठे हुये हैं। ये सच्चे व वीतरागी दिगम्बर तपोधन स्वात्मा की अनुभूति लेते हैं। ये ही साँचे ब्राह्मण हैं। हे ब्राह्मणो! यहाँ ये जो कथन चल रहा है ऐसा जिनसेन स्वामी ने महापुराण में कहा है, हे द्विज! हे द्विजन्मा ! एक बार माता-पिता से तूने जन्म लिया है, दूसरे तू गुरु से संस्कार को प्राप्त है; द्विजन्मा। चार द्विज होते हैं। मुख में द्विज। भैया! दूध के बचे हैं क्या? एक बार दूध के दाँत आते हैं वे गिर जाते हैं फिर दुबारा आते हैं इसलिये दाँतों का नाम द्विज है। पक्षी द्विज होते हैं। माँ के उदर से जब निकलते हैं तो अण्डे में आते हैं फिर अण्डे को भेदकर बच्चा निकलता है, ये द्विज हैं। तीसरा द्विज ब्राह्मण जाति की अपेक्षा से और चौथा द्विज जो ब्रह्म है वह त्रैकालिक है। ऐसा परम ब्रह्म है तो अशरीरी सिद्ध भगवान् अद्वैत हैं। निज स्वभाव में प्रत्येक द्रव्य अद्वैत ही होता है। यहाँ ब्रह्म से तात्पर्य कोई काल्पनिक ब्रह्म नहीं, कोई भिन्न ब्रह्म नहीं, यहाँ ब्रह्म से तात्पर्य–

मलरहिओ णाणमओ, णिवसइ सिद्धीए जारिसो सिद्धो।
तारिसओ देहत्थो, परमो बंभो मुणेयव्वो ॥26/त.सा.॥

मल से रहित ज्ञानमयी जैसा सिद्ध परमेश्वर सिद्धशिला पर विराजा है वैसा ही परम ब्रह्म इस देह-देवालय में विराजा है। उस परम ब्रह्म को देख, पर के जगत् के ब्रह्मों से कोई प्रयोजन नहीं है।

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत् ॥35/इष्टो.॥

जैसे विज्ञ को कोई अज्ञ नहीं बना सकता, अज्ञ को कोई विज्ञ नहीं बना सकता है, जैसे गगन में सहकारी धर्मद्रव्य है ऐसे ही गुरु सहकारी साधन तो है, लेकिन कार्यकारी तो उपादानदृष्टि ही है।

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानि समाश्रय:
ददाति यत्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्धमिदं वच: ॥23/इष्टो.॥

इष्टोपदेश कारिका का जो अर्थ आप कर रहे हो मित्र! ये वो नहीं है। इन सबने निश्चय की भाषा को व्यवहाररूप में उतारकर रख दिया है। इष्टोपदेश ग्रन्थ को आप द्रव्यानुयोग का ही रहने दो। ये द्रव्यानुयोग का नीति ग्रन्थ है, इसे चरणानुयोग में मत बदल देना। इस कारिका को आपने कहाँ लगाया। हम अज्ञानी की उपासना करेंगे तो अज्ञान मिलेगा, ज्ञानी की उपासना करोगे तो ज्ञान मिलेगा। जिसके पास जो होगा वही तो देगा, अर्थ इतना ही है। हे जीव! इस जड़ देह की उपासना करेगा तो तू अज्ञान में ही रह जायेगा और आत्मा ज्ञानी, आत्मा पण्डित इसकी उपासना करेगा तो हे ज्ञानी! तू ज्ञानी हो जायेगा। जिसके पास जो होगा वह वही तो देगा। जड़ शरीर में लिप्त होगा तो जड़बुद्धि हो जायेगा और चैतन्य भगवानात्मा को देखेगा तो भगवान् जैसा सिद्ध बन जायेगा। इसका यथार्थ अर्थ ये है, उद्देश्य पूज्यपाद स्वामी का ये है। पर इसको लोग व्यवहार में लगा करके बोले - पण्डित जी के पास बैठने से पण्डित बन जायेंगे, अज्ञानी के पास बेठोगे तो अज्ञानी बन जायेंगे। भगवन् पूज्यपाद स्वामी का व्यवहार अर्थ का उद्देश्य नहीं था अगुरुलघुशक्ति। इस प्रकार से यहाँ पर सैंतालीस शक्तियों में से अगुरुलघुत्व शक्ति का व्याख्यान हुआ।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

18

उत्पादव्ययध्रुवत्वशक्तिः

''क्रमाक्रमवृत्तवृत्तित्वलक्षणोत्पादव्ययध्रुवत्वशक्तिः।''

क्रमवृत्ति और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन है लक्षण जिसका, वह उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वशक्ति है।

19

परिणामशक्तिः

''द्रव्यस्वभावभूतध्रौव्यव्ययोत्पादालिङ्गितसदृशविसदृशरूपैकाऽस्तित्वमात्रमयी परिणामशक्तिः।''

द्रव्य के स्वभावभूत उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से आलिंगित सदृश और विसदृश एकरूपवाली अस्तित्वमयी परिणामशक्ति है।

20

अमूर्तत्वशक्तिः

''कर्मबंधव्यपगमव्यंजितसहजस्पर्शादिशून्यात्मप्रदेशात्मिका अमूर्तत्वशक्तिः।''

यह अमूर्तत्वशक्ति कर्मबंध के अभाव से व्यक्त सहज स्पर्शादिशून्य आत्मप्रदेशात्मक है। अमूर्त्तत्वशक्ति के कारण यह आत्मा रूप, रस, गंध और स्पर्श से रहित अमूर्त पदार्थ है।

समय देशना

श्रमण परम्परा में भगवान् महावीर के सिद्धांत को प्ररूपित करनेवाले आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी हुए, जिन्होंने वस्तुतत्त्व की गवेषणात्मक व्याख्या की। द्रव्य की द्रव्यता को इस प्रकार से व्याख्यायित किया है। सारे विश्व में अध्यात्म का वर्तमान में यदि कोई महान् ग्रंथ है, तो वो है समयसार। कुन्दकुन्द स्वामी ने अथवा तीर्थंकर भगवन्तों ने व्याख्यान किया है इसलिए सत्यार्थ है भूतार्थ है ऐसा नहीं है। वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है इसलिए व्याख्यान किया है। तत्त्वदृष्टि को, वस्तुव्यवस्था को, किसी सम्प्रदाय से न जोड़ा जाये। जहाँ सम्प्रदाय से जुड़ जाता है, वहाँ लोग सत्य को समझना बन्द कर देते हैं। **तत्त्व साम्प्रदायिक नहीं है, तत्त्व तत्त्व है।** पानी शीतल है। यह जैनदर्शन बोलता है इसलिए शीतल है, कि सांख्यदर्शन बोलता है इसलिये शीतल है, मीमांसक बोलता है इसलिए शीतल है, जैमिनि बोलता है, चार्वाक बोलता है, बौद्ध बोलता है इसलिए शीतल है। समझना ध्यान से क्योंकि जो व्याख्यान आप बोल रहे हो वह समयसार का व्याख्यान नहीं है। पानी शीतल है यह किसी पुरुष के द्वारा कहा गया है इसलिए शीतल है कि पानी का स्वभाव शीतल ही है। ज्ञानियो! पानी शीतल है - यह किसी के कहने से शीतल नहीं हुआ है। पानी का स्वभाव ही शीतल है। वह जिसने कहा है वो पानी की शीतलता को देखके कहा है। **धर्म किसी व्यक्ति की व्याख्या नहीं है, धर्म वस्तुस्वभाव की व्याख्या है। जो वस्तुस्वभाव है वो त्रैकालिक है, वो तात्कालिक नहीं है।** तीर्थंकरों ने कहा है इसलिए सत्य नहीं है। सत्य है इसलिए तीर्थंकरों ने कहा है। यहाँ आत्मा की सैंतालीस शक्तियों की व्याख्या चल रही है। उन सैंतालीस शक्ति में अठारहवीं शक्ति है उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वशक्ति।

क्रमाक्रमवृत्तवृत्तित्वलक्षणोत्पादव्ययध्रुवत्व शक्तिः।

समझ में न आये तो इतना समझ लेना, कि समझ में नहीं आ रहा, इतना भी समझ लिया तो समझ लेना, समझ में आ रहा है। किसी के पुचकारने से आँखों के आँसूओं को पोंछ लेना ये सत्यता नहीं है। निज के विचारों से निज के दुःख को विलीन करना ये सत्यता है। पर के समझाने से समझ में आ जाना ये समझ नहीं है, पर के समझाने से कभी समझ आती भी नहीं है। विश्वास रखना, समझ स्वयं के समझ से ही आती है, दूसरा निमित्त बन सकता है, उपादान नहीं। जो भी आप कर रहे हो लगता ऐसा है पर के निमित्त से ऐसा कर लिया है पर सत्य यही है कि मैं करना चाहता हूँ इसमें दूसरे का सहयोग है। लज्जावश, अहम्वश, लोकाचार के वश व्यक्ति कहता है कि अमुक ने कहा सो मैंने ऐसा कर लिया।

भैय्या! पिताजी ने कहा था, इसलिए आपने शादी की है कि तेरे भीतर शादी करने का भाव था, झूठ मत बोलना? भीतर की सत्यता को पकड़ो। किसी के माता-पिता शादी कराने के कर्त्ता नहीं हैं। वे मात्र मेरे घर में बहू आ जाये ऐसे भावों के कर्त्ता हैं, पर तेरे भीतर वासना की पुष्टि के कर्त्ता नहीं हैं। हे जीव! किसी के जनक-जननी किसी बेटे के भीतर कामनाओं को जन्म नहीं देते। माता-पिता मात्र संतान के शरीर के

निमित्त तो हैं पर माता-पिता भीतर के संस्कारों के कर्त्ता नहीं हैं। माता-पिता के शरीर से, कर्म-नोकर्म से, रज-वीर्य के संयोग से शरीर की उत्पत्ति तो व्यवहार से मानी जा सकती है, लेकिन जो संतान जन्म ले रही है, उस संतान के कर्त्ता माता-पिता किंचित् मात्र भी नहीं हैं, क्योंकि संतान-संतान स्वतंत्र हैं जनक-जननी स्वतंत्र हैं।

कभी भी जीव जीव का कर्त्ता नहीं होता, कभी जीव पुद्गल का भी कर्त्ता नहीं होता। छहों द्रव्य अपने आपमें स्वतंत्र हैं। पिता सुखी देखा जाता है, बेटा दुःखी भी देखा गया है। बेटा सुखी है, पर पिता दुःखी भी देखा गया है। यदि पिता का कर्म बेटे में होता तो ऐसी विषमता क्यों होती ? इसलिए बड़े विवेक से तत्त्व को समझना, क्योंकि दूसरे के हाथ फेरने से समझाने से तुम्हें समझ में आ रही है। इसे ऐसा मान कर चलना अग्नि के ऊपर राख है, अग्नि का अभाव नहीं है। इसलिए पर के द्वारा दिया गया उपदेश मेरे कल्याण का कर्ता नहीं है, जिन से उत्पन्न हुआ उपदेश ही मेरे कल्याण का कर्त्ता है। जो मैं आपको उपदेश कर रहा हूँ, वह तो सत्यभूत है। जो आपके भीतर स्वयं के भाव प्रगट हो रहे हैं वह भावभूत हैं। इसलिये द्रव्यआगम निमित्त तो है पर कल्याण भावआगम से ही होगा।

भैया ! धर्म की प्ररूपणाओं को न समझा हो, कर्म की प्ररूपणाओं को तो समझे हो। ये पेंसिल तो मेरे हाथ में है, उठाने के भाव किसके हाथ में हैं। ये इतनी दूर है, इसे उठाने के परिणाम तुम्हारे भीतर चल रहे हैं, इन परिणामों का कर्त्ता कौन है ? भगवान, ईश्वर, माता-पिता, कौन ? स्वयं। आप तो कह रहे थे समझ में नहीं आ रहा है। इतना ही तो समझना इस पेन्सिल के उठाने के जो परिणाम चल रहे हैं वो किसके अन्दर चल रहे हैं । ज्ञानी! इस पेंसिल को नहीं उठाऊँगा ऐसे भाव हो गये वो किसके भीतर होंगे। परवस्तु को ग्रहण करने के परिणाम भी पाप हैं, परवस्तु को छोड़ने के परिणाम भी पाप हैं – यही धर्म है।

विश्व में जितने प्रकार के पाप होते हैं ये सब परवस्तु के ग्रहण करने के बिना होते ही नहीं हैं। बेटा ! डाकू कब कहलायेगा, चोर कब कहलायेगा, तस्कर कब कहलायेगा? जब दूसरे की वस्तु को उठा लेगा। विश्व के जो शासन हैं, चाहे किसी देश की सरकार हो उसी को दण्ड देगी, उसको पकड़ेगी। यदि तुम उसको छीन ले गये मुझसे तब तो जज साहब आपको कोर्ट में खड़ा कर देंगे। लेकिन इस पेन को देखकर के इसको उठाने के जो तुम्हारे परिणाम चल रहे हैं इस बारे में जज साहब तुम्हें कुछ नहीं कहेंगे, पूछलो आप उनसे। लेकिन धर्म कह रहा है, जैनदर्शन कह रहा है कि कोर्ट के जज तो मात्र उठाने वाले को ही दण्ड देंगे लेकिन सिद्धांत कहता है कि तूने उठाने के जो परिणाम किये थे, धर्म कह रहा है कर्म का दण्ड उसे उसी समय से प्राप्त हो गया। **चाहे तुम पाप शरीर से कर पाओ न कर पाओ पर परिणाम कर लिये हैं तो कर्म का बंध उसी समय कर लिया।** अगर ऐसा सोच लिया कि परवस्तु को उठाने के परिणाम से बंधे कर्म को भोगना ही पड़ेगा तो पाप कर लो, वस्तु को उठा ही लो, तो और अधिक कर्म भोगना ही पड़ेगा।

जो परकृत बोध है वह तुम्हारे कल्याण में सहकारी तो हो सकता है। अंतरंग में जो सहकारी कारण है वो निज से निज का भेद-विज्ञान जो है वही कल्याणकारी है। वह कैसा होगा उसके लिए ये अठारहवीं शक्ति कह रही है। इस कलम को ही देखते चलो। इसमें परिणमन हो रहा है कि नहीं हो रहा है ? इसमें परिणमन हो रहा है। क्यों ? भैया! जब आपका जन्म हुआ था, तब इतने ही बड़े थे, ये दाढ़ी-मूँछ सहित जन्मे थे आप? बाद में आई है। तो जैसे जन्मे थे वैसे ही बच्चे हो आप, और जैसे आज हो वैसे बचोगे क्या ? नहीं बचोगे, यह सत्य है। जैसे जन्मे थे वैसे नहीं हो, जैसे अभी हो वैसे भविष्य में रहोगे क्या? उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य; क्रम से, अक्रम से, क्रमाक्रम। जो पर्याय का परिणमन चल रहा है वह क्रम से चल रहा है। गुणों में जो परिणमन चल रहा है वो अक्रम से चल रहा है। ऐसा लक्षण जिसका है उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्व शक्ति है।

मैं जीवद्रव्य हूँ, मनुष्य मेरी पर्याय है, ज्ञानदर्शन मेरा गुण है। मैं जीवद्रव्य हूँ। आत्मा को त्रैकालिक मानते हो कि नहीं ? **आस्तिक्यवादी यदि हो, तो पहले परमात्मा की सत्ता को मानने के साथ आत्मा की सत्ता को स्वीकारिये और जो आत्मा की सत्ता को स्वीकरेगा उसी के यहाँ सारी व्यवस्थाएँ घटित होंगी। जो आत्मा की सत्ता को ही नहीं स्वीकारेगा, उसके यहाँ पुण्य-पाप, धर्म की व्याख्या करने की क्या आवश्यकता? इहलोक-परलोक को मानेगा, उसी के लिए तो धर्म है।** जो इहलोक-परलोक को ही नहीं स्वीकारता है उसके लिए धर्म करने की क्या आवश्यकता है ?

आज के वर्तमान में युवा पीढ़ी को धर्म की बहुत सारी बातें बाद में बताना चाहिए। पहले इन बालकों के अंदर एक श्रद्धा उत्पन्न करना चाहिए। बेटा ! तुम्हारी आत्मा की सत्ता त्रैकालिक है। ये मंदिर जाना, पूजन पाठ करना - इनका उद्देश्य क्या है ? अच्छे लग रहे हो इसलिए कर रहे हो, या पूर्व में कर्म किया इसलिए या अभी अच्छा करूँगा तो भविष्य में अगली पर्याय में अच्छा भोगूँगा। जब आत्मा को तू त्रैकालिक मानेगा तभी तो अगली पर्याय को मानेगा। जो आत्मा को त्रैकालिक ही नहीं मानेगा वह अगले भव की क्या व्याख्या करेगा? जिस दर्शन में आत्मा क्षणिक है, जिस दर्शन में नैरात्म भाव है उस दर्शन में पुण्य-पाप की व्याख्या की क्या आवश्यकता है? भारतभूमि पर कितने सारे नास्तिक्य दर्शन हुए हैं जिन्होंने आत्मा की सत्ता का ही लोप कर दिया। पर ध्यान रखना, किसी व्यक्ति के कहने से, वो जज साहब बैठे हैं, हो सकता है आपने इनको प्रभावित कर लिया, वो अपराध आपका है वो दण्ड आपने दूसरे को दिलवा दिया, ये सम्भव है। लोक की बात कर रहा हूँ पाप आपने किया था, पर दण्ड आपने दूसरे को दिलवा दिया। लेकिन ध्यान रखना, क्या किसी को दण्ड दिलवाने से तुम्हारे अपराध का अभाव हो गया? इतनी से बात बताइए। वह तो उसका अशुभ कर्म आया था सो वह उलझ गया लेकिन मैं आपसे पूछ रहा हूँ और जज साहब भी जब दण्ड की घोषणा कर रहे थे, उस समय उसके पास भाव में द्वैतभाव था। एक भाव में

उसके वह व्यक्ति बैठा था इसे मुझे बचाना है निर्दोष सिद्ध कराना है। एक भाव में बैठा था यह दूसरा व्यक्ति निर्दोष है पर उसे दण्ड दिलाना है। भैय्या! ऐसा भाव नहीं बनता क्या ? जब यह जीव दण्ड की घोषणा कर रहा था, तब शांत भाव से बैठता है तब ध्यान रखना जैसे दीवाल घड़ी लगी हुई है आप मात्र उसे देखना तो काँटों की आवाज सुनाई पड़ती है। शून्य कक्ष है, रात्रि का समय है, घड़ी के काँटों की आवाज सुनाई पड़ती है। ऐसे ही हे जीव! किंचित्मात्र भी ज्ञान का प्रकाश हो गया, कषाय शांत हो गई फिर तू बैठकर देखेगा तो दृश्य दिखाई देगा कि निर्दोष को सदोष कैसे घोषित किया, सदोष को कैसे निर्दोष घोषित किया? क्या मेरी घोषणा से वह निर्दोष घोषित हो गया, क्या उसको कर्म छोड़ देंगे? शासन, भारत सरकार की दण्ड संहिता से तुम बच सकते हो, पर कर्म-सिद्धांत की संहिता से बच नहीं सकते हो। चौबीस घण्टे में कम-से-कम पाँच मिनट अपने लिए दे दिया करो, मात्र इस बात को देखने के लिए कि आज दिन-भर मैंने क्या किया है? किसी के प्रवचनों की आवश्यकता नहीं पड़ेगी फिर वो ताली पिटने वाले प्रवचन सुनने नहीं जाना पड़ेगा। **कषायों की कड़ियाँ टूटने लग जायें यही प्रवचन है।**

आप लोग प्रवचन सुन रहे हो कि ध्यान कर रहे हो? ऐसी शून्य दशा तो ध्यान कक्ष में होती है। सुनले मेरे मित्र! ऐसी शून्य दशा तो ध्यान केन्द्र में आती है। ये तो प्रवचन चल रहा है। आपको बोध होना चाहिए ध्यान है कौन-सी वस्तु ? **ज्ञान की समरसता, ज्ञान की तीव्रता ही ध्यान है।** इसलिए यही ध्यान है। अब आप उस स्थान तक पहुँच चुके हो। अब समझिए विषय को। जब ये बालक जन्मा तब छोटा-सा था, युवा हो गये दाढ़ी-मूँछ आ गई। शिशु अवस्था का व्यय हो गया, युवावस्था की उत्पत्ति हुई है पर है वही जो जन्मा था। ये ध्रौव्य है।

जगत् में मेरा कोई कर्त्ता नहीं है, हर्त्ता नहीं है, जगत् में मेरा कोई रक्षक भी नहीं है। अब आप दर्शन की गहराई में प्रवेश कर रहे हो। तत्त्व के प्रति इतना गहरा भ्रम है लोगों में, **मुमुक्षु ! अस्त्र को छाती में भोंकने वाला व्यक्ति मात्र मेरी देह का नाश करता है पर जिसने पंथ में मुझे जकड़ के रखा है उसने मेरी श्रद्धा का घात किया है।** मुझे बन्दी बनवा के रखा है। जज साहब ने किसी व्यक्ति को जेल भेज दिया, मित्र! माना कि आजन्म कारावास भी दे दिया हो तब भी वह व्यक्ति एक ही भव में जेल में रहेगा, अगले भव में आपके जेल में नहीं होगा ।

भैया ! यदि आपने जिस पंथ में, जिस आम्नाय में जन्म लिया हो; जिस व्यक्ति ने आपको किसी सम्प्रदाय में जकड़ के रखा है, वह पंथ, आम्नाय व्यक्ति आपको भव-भव में जेल में डाले हुए है। तन का कारागृह आयुप्रमाण है पर विपरीत अभिनिवेश, विपरीत अभिप्राय का जो कारावास है श्रद्धा को मोड़ के रख देता है। ये कारावास बहुत बड़ा है इसलिए **सबसे बड़े हिंसक वे लोग हैं जो लोगों को विपरीत मिथ्यात्व में लगा के रखे हुए हैं।** बहुत सारे लोगों को हमारे परमात्मा से भी प्रयोजन नहीं है। उनको मात्र प्रयोजन है कि, जैसे कि विशुद्धसागर चाहें पूरा समाज पूरा महाराष्ट्र मेरा भक्त बनके रहे और मैं

आपको ऐसे छड़ी घुमाके रखूँ, जहाँ मैं इंगित करूँ वहीं तुम चलो। ज्ञानी! आपको मैंने बन्दी बनाके रखा है। इस सत्य को भी सुन लो, आपको बन्दी बनाके रखा है। मुर्गे की भाँति उसके पास पंख हैं वह चाहे तो उड़के उस हिंसक से दूर चला जाये पर भैय्या! वह चारों ओर मोहल्ले में घूम आयेगा पर जहाँ उसका घात होने वाला है लौट के उसी घर की टोकनी में आता है। **जो व्यक्ति पंथ सम्प्रदाय की टोकनी में आ रहा है उसका कुक्कुट जीवन है।** बुरा लगे तो लग जाये, अच्छे से लग जाये।

वह सत्य को समझना ही नहीं चाहता, जब कि सत्य सबसे परे है। पानी की शीतलता, अग्नि की उष्णता - ये किस सम्प्रदाय का सिद्धांत है ? बेटा! पढ़ाई कर रहे हो। **बेटा! रस्सी से बंधा व्यक्ति तो तोड़ के भाग सकता है पर स्नेह से बंधा व्यक्ति, प्रेम वात्सल्य और मिथ्यात्व से बंधा व्यक्ति रस्सी नहीं तोड़ पाता।** जहाँ तेरी आँख चली गई है और दूसरे की आँख से तेरी आँख मिल गई है, बेटा! तू माता-पिता को छोड़ देगा पर जहाँ आँख लगी है उसे नहीं छोड़ेगा। ये किससे बन्धा? ये राग ने बाँधके रखा है। ऐसे ही व्यक्ति स्वयं ही पानी में डूबना पसंद करता है। आप मानिए काशी-करवट (काशी का वह स्थान जहाँ अगले जन्म की अपनी कामना पूरी करने के लिए लोग आरे के नीचे अपनी गरदन कटवाते थे) अग्नि में कूदकर स्त्रियाँ सती होती थीं, ऐसी विपरीताएँ थी भारत की भूमि पर हैं। ये किसके वश थी? ये अज्ञान के वश में थीं। जिसने जैसा घुमा के रखा उसने वैसा कर लिया। सत्य को समझिए, मेरे से जुड़ के रहना कोई धर्म नहीं है। यह कहने के लिए भी ताकत चाहिए। निज से जुड़ के रहना, ये तुम्हारा धर्म है।

जैनमुनि इसलिए नहीं बना जाता है कि सबको जोड़ लो। जैनमुनि इसलिए बना जाता है कि तुम निज से जुड़ जाओ। जो निज से जुड़ने के उपदेश देनेवाले थे वे खुद में जोड़ने लगे। तुम निज में कहाँ जुड़ा रहे हो, तन से जुड़ा रहे हो। ये श्रमण परम्परा नहीं है। श्रमण-परम्परा तो विचार से आचार की परम्परा है। जब से लोग प्रचार को धर्म मानने लग गये, तब से आचार-विचार नष्ट हो रहे हैं। विश्वास मानिए, प्रचार में जिनका विश्वास आ चुका है वो आचार-विचार को हीन कर चुका है। **जब-तक प्रचार के भाव नहीं थे तब-तक तुम्हारे आचार-विचार बहुत अच्छे थे।** तुम अभी शान्त बैठे हो अभी मन में भाव आ जाये कि गोंदिया में मेरा प्रचार होना चाहिए। तुम्हारे अन्दर के विचार भ्रष्ट होना शुरू हो गये, क्षण मात्र में शांति भंग होना शुरू हो जायेगी।

आपने भक्तिपूर्वक निर्मल भजन गाया तो आनंद आयेगा और पूछा कि श्रोताओं को कैसा लगा तो तेरा आनंद समाप्त हो जायेगा। जहाँ परमात्मा की भक्ति भी पररूप ढलना प्रारंभ हो जाती है वहाँ आनंद समाप्त हो जाता है। प्रथम गीत गाया था तो भगवान् को देखकर गया था। दूसरा गीत गाया तो भक्तों को देखकर गाया। भगवान् को देखकर गाया था उसमें आनंद था। भक्तों को देखकर गाया उसमें मान था। ऐसा नहीं होता क्या ? ऐसा होता है। भक्ति के सुर अलग निकलते हैं और मान के सुर अलग निकलते हैं। इसी को ज्ञेय बनाइए। ज्ञेय यानी जानने योग्य विषय। इसी को ज्ञेय बनाइए, इसी को प्रमेय बनाइए। ये न्याय की भाषा है, प्रमेय बनाइए।

प्रत्येक द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्व बैठा हुआ है। वत्स! सन् 1999 में मैं गोंदिया आया था जब जैसे बाल तेरे थे वैसे बाल मेरे थे। विश्वास मानना, जैसा चेहरा तेरा चमक रहा था वैसा मेरा भी चमक रहा था पर मैं वही हूँ पर वे बाल नहीं बचे वो चेहरा भी नहीं बचा। काले बालों का व्यय हो गया सफेदी का उत्पाद हो गया पर सिर वही है, ध्रौव्य। इस व्यवस्था को रोक पाओगे क्या? और क्या मैं रोक पाया हूँ। यह सिद्धांत त्रैकालिक है कि नहीं है? तो फिर मैं मैं को क्यों देखूँ? उत्पाद को क्यों देखूँ? मैं देख रहा हूँ ध्रुव को। जो है सो है।

मनुष्यपर्याय का व्यय होगा, देवपर्याय का उत्पाद होगा, आत्मा वही है जो थी। ध्रौव्य। घटपर्याय का विनाश हुआ, कपालपर्याय की उत्पत्ति हुई, मिट्टी वही है जो घट में थी, वही कपाल में है। जो घट को बना हुआ देखेगा वह देखकर मुस्कराता है, फूटा देखता है तो रोता है। मिट्टी को देखता है, न हँसता है, न रोता है। वो क्या कहता है, जो है सो है। मिट्टी है कि नहीं। ऐसे ही तत्त्वज्ञ ज्ञानी जीव हर अवस्थाओं में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को देखता है। गरीबी थी, अमीरी आ गई। विषादपर्याय गई हर्षपर्याय उत्पन्न हुई है **आप ज्ञाता-दृष्टा बनके निहारिये। गरीबी भी तेरा स्वभाव नहीं है, अमीरी भी तेरा स्वभाव नहीं है। परवस्तु का संग्रह बढ़ गया सो आप अपने आपको अमीर कहना प्रारंभ करने लगे। परवस्तु का अभाव तेरे घर में हो गया तो तू अपने आपको गरीब मानने लगा है।** पर तेरे भीतर गरीबी है कि अमीरी है? दादा! बोलो - सत्य है कि नहीं ? है।

बेटा ! ये पेन तुम ले जाओ। जैसे ही ले जाओगे तुम कहने लगोगे मेरा पेन है, महाराज ने मुझे दिया। शब्द लग गया 'मेरा पेन'। दोस्त ने छीन लिया तेरा पेन। अब तू क्या करेगा? तू रोयेगा। जब मैंने तुम्हें पेन नहीं दिया था, तब रोना-हँसना तेरे पास था क्या? परवस्तु के आने से रो भी लिया, हँस भी लिया। जैसे पहले पेन नहीं था अब भी नहीं है, ऐसा सोच लेता तो क्यों हँसता, क्यों रोता ? जो है सो है।

जो-जो परवस्तु को ग्रहण करेगा उसको हँसना पड़ेगा, रोना पड़ेगा। परवस्तु ग्रहण नहीं करेगा उसे न हँसना पड़ेगा, न रोना पड़ेगा। **अपने स्वभाव में रहेगा तो जैसे परवस्तु के उत्पत्ति-विनाश होने पर आप शान्त हो रहे हो, ऐसे ही जो निज के शरीर के उत्पत्ति-विनाश को होते देखकर अपनी आत्मा को ध्रौव्य देखता है वही सच्चा वीतरागी, सच्चा निर्ग्रन्थ योगी होता है।** चाहे शाम की बेला हो, चाहे संध्या की बेला हो, चाहे दोपहर हो, घड़ी के काँटे एक नहीं हो रहे हैं, वे चलते रहते हैं। एक रहे क्या? चलते रहते हैं, स्थिर नहीं हैं। धुरी पर तीन काँटे चल रहे हैं, देखो, एक प्रतिक्षण आपको घूमता दिखाई दे रहा है वह सेकण्ड का, फिर मिनट का उससे धीमे, फिर घण्टे का बहुत धीमे चलता है। ज्ञानी! तेरे साथ भी यही घटित होता है। जो मृत्यु का काँटा होता है वह घण्टे का काँटा होता है। जो प्रतिक्षण चल रहा है जिसे तुम समझ नहीं पाये वह आयुकर्म का सेकेण्ड का काँटा है। अब तुम बेटा! सत्तरह के हो गये, तुम दिखाई दे रहे हो वह मिनट का काँटा है। पर चल किस पर रहे हो। धुरी पर। मैं शिशु हूँ, मैं किशोर

हूँ, मैं वयस्क हूँ, मैं युवा हूँ; ये सारी अवस्थाएँ जिसमें चल रही हैं वह ध्रुव है। तो उत्पाद-व्यय व्यवस्था है वह ध्रौव्य में है। आयुप्रमाणकाल तक ये अवस्थाएँ तुम्हारी दिखाई देंगी, जिसमें अवस्थाएँ घटित हो रही हैं वह जीवद्रव्य ध्रौव्य है।

जिसने सत्य को समझ लिया है वो चाहे दर्पण देखे चाहे न देखे, चाहे काला हो, चाहे गोरा हो तटस्थ होकर देखेगा। जिसका बदलना नियत है, इसलिए मैं क्यों बदलूँ? जिसका बदलना नियम है उसके लिए मैं क्यों बदलूँ। बराबर जिसको बदलना है उसके लिए मैं क्यों बदलूँ। जिसको बदलना है उसे क्या रोक पाओगे। जो अविनाशी है उस पर ही रुक जाओ। जो ध्रुवत्वशक्ति है उसे ही देखो। उत्पाद-व्यय को देखते हुए भी क्रम-अक्रम से फिर भी अपने अविनाशी द्रव्यत्व का लोप नहीं कर रहा है। ये अठारहवीं शक्ति है।

उन्नीसवीं जो शक्ति है वह बहुत गहरी शक्ति है उसकी भूमिका में बता चुका हूँ। अब आप लोग भी बिल्कुल ध्यानस्थ हो चुके हो, इसे समझो। ज्ञानी इसमें ही स्थिर हो जाये, तो इससे बड़ा कोई ध्यान नहीं है। वो अलग से ध्यान कह-कहके ध्यान भंग कर दिया। विश्वास मानिए, उन्नीसवीं शक्ति बहुत गहरी है उसका नाम है **परिणाम शक्ति**। भावों की मुरझाहट उन्हीं के चेहरे पर होती है जो परिणामिक शक्ति को नहीं समझता। दादा कि मृत्यु हो गई तो क्या रोना चाहिए? भैय्या ने जन्म ले लिया तो क्या हँसना चाहिए? ये कौनसा नया काम हुआ है? जिसको जन्म लेना था उसने जन्म ले लिया, जिसको मरण करना था उसने मरण कर लिया, इसमें हँसने-रोने का विषय क्या बनता है? पागलों की भीड़ है जो हँसते रहते हैं, रोते रहते हैं, समझदार मध्यस्थ रहता है।

अभी मैं जब गोंदिया आ रहा था तो ये मुमुक्षु चर्चा कर रहे थे। मैं आम के वृक्ष के नीचे से गुजर रहा था जैसे ही मैंने – बोला आम के फल, कि आम नीचे गिरा क्योंकि वह पक चुका था। फल पक जायेगा तो नीचे गिरेगा कि ऊपर जायेगा? नीचे ही क्यों गिरता है। आप लोग तो पढ़े हुए हो। यह किसका सिद्धांत है? गुरुत्वाकर्षण का। यह सिद्धांत किसने बनाया ? ये भैय्या बोल रहा है कि पका हुआ फल जमीन पर ही गिरता है गुरुत्वाकर्षण के कारण। यह सिद्धांत किसका है? न्यूटन का। ये ठीक बोल रहा है। अब इस से प्रश्न करो, जब न्यूटन का जन्म नहीं हुआ था तो जो फल गिरते थे, वे कहाँ गिरते थे? ऊपर कि नीचे? जब न्यूटन का जन्म नहीं हुआ था तो फल आकाश में उड़ते थे क्या? तब भी फल जमीन पर गिरते थे। यह सिद्धांत न्यूटन का नहीं था। यह सिद्धांत त्रैकालिक है। यह न्यूटन का नहीं है उन्होंने तो अन्वेषण किया है, खोजा है, जाना है।

सिद्धांत किसी के नहीं होते, सिद्धांत तो त्रैकालिक होते हैं। जो है सो है। अभी तो भारत में रहनेवाले जैन लोगों को भी नहीं मालूम कि जैनसिद्धांत क्या है? जैनदर्शन को पूरा विश्व समझ लेगा तो जैनदर्शन से ईर्ष्या समाप्त हो जायेगी। सापेक्षता का सिद्धांत किसने दिया? बहुत सारे लोग मेरी सभा में

बोलते नहीं हैं। बोलूँ तो फँसेंगे। बेटा! तुम बताओ सापेक्षता का सिद्धांत किसने बताया? जितने वैज्ञानिक हुए हैं ये सब सिद्धांत बताते रहे हैं, बनानेवाले नहीं हैं। अपन जैसे ही भक्त अज्ञानी हो जाते हैं। वक्ता के सिर पर वस्तुव्यवस्था रख देते हैं। यह बहुत बड़ी अज्ञानता है। वक्ता ने कुछ कहा तो उसको हमने भगवान् बना डाला। बात बतानेवाला भगवान् नहीं बन जाता। भारतीय संस्कृति इतनी श्रद्धावान है कि कोई वक्ता आये तो उसे भगवान् घोषित कर देते हैं। वक्ता वक्ता है, भगवत्ता तो जब केवलज्ञान प्राप्त होता है तभी होती है। तो सापेक्षता का सिद्धांत बताने के लिए किसी वैज्ञानिक का नाम लेने की जगह वीतराग-विज्ञान – स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्ति-नास्ति, स्यात् अस्तिवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य, स्यात् अस्तिनास्ति अवक्तव्य - यह कहो।

कथंचित्, किसी अपेक्षा। यह सिद्धांत किसी का बनाया नहीं है, यह त्रैकालिक है। बेटा! आप बड़े कि आपका दोस्त? बेटा! तेरे दादा बैठे हैं यहाँ, ये बताओ घबराना नहीं? एक व्यक्ति है उसके दादा की उम्र अस्सी वर्ष है और उस व्यक्ति की उम्र सत्रह वर्ष है। कौन बड़ा, कौन छोटा? देखो भाई! न्याय की कक्षा में बैठे हो, न्याय तो आना ही चाहिए। दादा बड़े कि पोता? सुनो भाई! ये ही तो सापेक्षता का सिद्धांत है। अस्सी साल की उम्र देखेगा तो दादा बड़ा है पर जियेगा ज्यादा कौन? पोता। तो छोटा कौन? दादा। इसलिए स्यात् छोटा, स्यात् बड़ा। उम्र को ढलते देखेंगे, तो दादा बड़े हैं। उम्र को वृद्धिमान देखेंगे तो पोता बड़ा है। पर सम्मान कौन किसका करेगा? लोकव्यवहार में, भारतीय परम्परा में पोता दादा का सम्मान कर लेगा, लेकिन पोते का सम्मान दादा को करना चाहिए। यदि नहीं करोगे तो लोटा में पानी कौन पिलायेगा? उसका भी सम्मान होना चाहिए। उसने चरण छुए, दादा का कर्तव्य है उसके सिर पर हाथ रख दे, यही उसका सम्मान है। सापेक्षता का जो सिद्धांत वह किसी वैज्ञानिक का नहीं है, ये वस्तुव्यवस्था है। इस विषय को कोई वैज्ञानिक सुनेगा तो वह कहेगा मेरा नाम तो नष्ट हो जायेगा। अरे! तुम्हारा नाम कब से है, कब तक रहेगा? रखा गया नाम कब तक चलेगा? जब तक आयु है और महाराज बन गया तो वो भी नहीं चल पायेगा, नाम बदल जायेगा। इसी प्रकार से जो वर्तमान की पर्यायों की संज्ञा है, नाम है उसे त्रैकालिक मानने लगा है, यह भ्रम है, परभूत है; परिणामिकशक्ति कह रही है

द्रव्यस्वभावभूतध्रौव्यव्ययोत्पादालिङ्गितसदृशविसदृशरूपैकाऽस्तित्वमात्रमयी परिणामशक्तिः।

एक ही वस्तु एक ही समय में सदृश्य भी है, विसदृश्य भी है, ध्रौव्यभूत है। बेटा! खड़े हो जाओ, हाथ जोड़ लो केमरे के सामने। भैय्या से पूछो तुम्हारा चेहरा आ रहा कि नहीं ? आ रहा है। क्यों जो तुम बैठे थे वही हो? क्यों यह वही बालक है जो बैठा था? वही है। तुम्हारी आँखें सत्य को नहीं देख पा रही हैं। दाढ़ी बनाई एकाध बार, फिर बाल कब आये थे? चार दिन में आ गये। क्यों, यह सत्य बोल रहा है? चार-पाँच दिन बाद ये बाल दिख रहे हैं, ये सही बोल रहा है। बेटा! जब तू दाढ़ी बना रहा था तभी बाल

भी आ रहे थे। एक दिन में इतने बड़े बाल हो गये क्या? प्रतिक्षण उत्पन्न हो रहे थे। कितना गहरा तत्त्व चिंतन है। इतना तुमको विवेक नहीं है। जब बना रहे थे तब आ भी रहे थे। अब पुनः बताइए, ये बालक बैठा था वही है क्या? नहीं, ये प्रतिक्षण बदल रहा है कि नहीं बदल रहा है? बदल रहा है। कभी ये बदलते-बदलते युवा बूढ़ा हो जायेगा।

जिसे लोग उत्पत्ति मानते हैं उसमें तू विनाश को भी देख। वही शांति का जीवन जी पाता है जो उत्पत्ति के काल में विनाश को देख रहा है और विनाश के काल में भी उत्पत्ति को देख रहा है, उत्पत्ति-विनाश को देखते हुए भी वह अविनाशी को देख रहा है। देह बदलेगी बदल गई, बदल रही है, बदल जायेगी, परन्तु जो देह को स्वीकार किये है वो कौन है? आत्मा। वह आत्मा कब से है? आत्मा तुम्हारी कब से है? कब तक रहेगी? अनादि से अनंत काल तक रहेगी।

ये कलम है, जड़द्रव्य है, मिटेगा कि नहीं मिटेगा? मिटेगा। रस्सी है, रस्सी जल गई, रस्सी नष्ट हो गई बदल गई? रस्सी यदि राख हुई है तो बदल गई कि नष्ट हो गई? मिट गई होती तो राख किसकी? तो ऊर्जा का विनाश होता है कि परिणमन होता है? परिवर्तन होता है ये सिद्धांत किस का है? न्यूटन नहीं था तब भी परिवर्तन वस्तु में होता था। मैं यह इसलिए बता रहा हूँ कि आपने वक्ताओं के सिर पर वस्तुव्यवस्था रख दी है। जब न्यूटन का जन्म नहीं हुआ था तब वस्तु नहीं परिणमती थी क्या?

बेटा! जो उर्जा है वो वस्तु है। वस्तु जो है नष्ट नहीं होती है, बदलती है। मेरी आत्मा अभी मनुष्य की देह में है, मृत्यु हो जायेगी तो जैसे कर्म किये हैं जैसा कर्म करोगे, बुरा करोगे तो नरक पहुँच जायेगी, मायाचारी करोगे तो पशु बन जाओगे, और भद्र परिणाम रखोगे तो मनुष्य बन जाओगे और सम्पूर्ण पापों से शून्य होकर रहोगे तो भगवान् बन जाओगे, परन्तु रहोगे वही आत्मा। यही समझने के लिए मात्र भारत में जन्म लिया है। भारत के बाहर यह नहीं मिलेगा समझने को और भारत में जन्म लेकर नहीं समझ पाये तो भारत में जन्म लेना व्यर्थ है। कैसे खाना चाहिए, कैसे पीना चाहिए विश्व में ये तो बता देंगे, पर आत्मा का आनंद कैसे मिलता है ये भारत ही बता पायेगा।

द्रव्य स्वचतुष्ट्य में सत् रूप है। जो सत् है वह त्रैकालिक है। **'सत्ता सव्वपयत्था'** सम्पूर्ण पदार्थों की जो सत्ता है वह त्रैकालिक है। विश्व में सभी वस्तुयें सनातनकाल से सनातन ही हैं। एक भी द्रव्य कम नहीं हुआ है, एक भी द्रव्य अधिक नहीं हुआ है। पर्यायान्तरण स्थानान्तरण, पर्यायान्तरण स्थानान्तरण - ये दो अवस्थाएँ हो रही हैं। ये कलम है इसको तोड़कर शिल्पकार ने खिलौना बना दिया, पर्याय परिवर्तित हुई है पर द्रव्य का नाश नहीं हुआ है। स्थानान्तरण, जो पेन इस स्थान पर रखा है वह यहाँ आ गया है, क्षेत्रान्तरण तो हुआ है, पर्यायान्तरण तो हुआ है लेकिन द्रव्य का विनाश नहीं हुआ है। इसलिए जो ज्ञाता है, ज्ञानी है, तत्त्वविज्ञ है वह वस्तु के सत् को देखता है और जो सत् को देखता है कभी क्लेश को प्राप्त नहीं होता, अशांति को प्राप्त नहीं होता। भाव का कभी अभाव नहीं होता, पदार्थ का कभी विनाश नहीं होता। पर्याय का परिणमन है।

जो संघ सिवनी में था, अब सिवनी में देखने आओ वहाँ संघ का अभाव है। गोंदिया में कोई देख रहा है यहाँ मुनिसंघ का सद्भाव है। क्षेत्र की अपेक्षा से अभाव-सद्भाव है। लेकिन मुनि संघ का अभाव कहाँ है? ये वही मुनिसंघ है जो कुछ दिन पूर्व सिवनी में विराजमान था? हे जीव! तू जिस घर में जन्मा है, बेटा! किसी घर को रुला के नहीं आया क्या? जिस घर में लोग रो रहे हैं उन्हें बोध होना चाहिए कि ये किसी घर में मुस्करा रहा होगा। पर्यायान्तरण हुआ है, क्षेत्रान्तरण हुआ है लेकिन जीव का विनाश नहीं हुआ है। अज्ञानी पर्यायान्तरण होने में बिलखता है, क्षेत्रान्तरण होने में बिलखता है। जो वस्तु के सत् को देखता है वह हर समय मध्यस्थ रहता है। वस्तु का विनाश नहीं है। **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्।** उत्पाद-व्यय से युक्त है वही सत् है। जो सत् है वही अपरिणामी है, पर सत् में हो रहा है परिणमन। देखो भाषा कठिन है, समझने का प्रयास करो। विषय भी कठिन है।

जो अनुज नाम का बालक है, गोंदिया में विद्यार्थी है, यही विद्यार्थी पूर्ण पढ़ने चला जाता है तो पूना कालेज का मुखिया प्रसन्न होता है कि आज मेरे कॉलेज में नया विद्यार्थी आया। पर घर के सदस्य के चेहरे मुरझा रहे हैं कि आज मेरा बेटा बाहर जा रहा है। पर जिसने बेटा देखा है, चाहे पूना हो चाहे गोंदिया हो, बेटा तो वही है, न वह हँसेगा न रोयेगा। वस्तु जो है वह अविनाशी है। पिता की मृत्यु होती है तो अज्ञानी रोयेगा और जो ज्ञानी है वह कहेगा **'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्'** उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से जो युक्त है उसका नाम सत् है। सत् जो है **'सत् द्रव्यलक्षणम्'** सत् द्रव्य का लक्षण है। मृत्यु जो हुई है वह जीव का विनाश है कि पर्याय का परिणमन है? ये जीव का विनाश नहीं है, ये पर्याय का परिणमन है, जीव तो वही है। यदि त्रस हुआ तो त्रस नाली के बाहर नहीं जायेगा। एकेन्द्रिय आदि निगोदिया स्थावर हुआ तो तीन लोक के बाहर नहीं जायगा।

कोई किसी की मृत्यु पर हँसता नहीं, न किसी की मृत्यु पर रोता है। अपने स्वार्थों की पूर्ति होते नहीं दिखती इसलिए रोता है। स्वार्थों की पूर्ति दिखती है इसलिए मुस्कराता है। व्यक्ति के लिए कोई हँसना-रोना है ही नहीं, कोई किसी के लिए नहीं हँसता, **कोई किसी के लिए रोता नहीं है। जिससे आपके स्वार्थ की पूर्ति होते दिखती है उसके लिए आप रो रहे हो।** जीव के लिए नहीं रो रहे हो, शरीर के लिए भी नहीं रो रहे हो। दादा! जिस दिन तुम जाने लग जाओ और बेटा रोने लगे उसे एक बात मेरी तरफ से बोल देना, आज ही बोल देना। बेटा! तुम्हें पता होना चाहिए आज में समयसार में परिणामशक्ति सुन के आया हूँ और परिणामशक्ति मैं समझकर आया हूँ।

द्रव्य त्रैकालिक है, आत्मा त्रैकालिक है। मेरी मृत्यु होगी नहीं बेटे! तो तू रोता क्यों हैं? और मेरे लिए रोता है तो विश्वास रखना मैं त्रैकालिक हूँ, मेरा मरण नहीं होता है और मेरे शरीर के लिए रोए तो शरीर मैं लेकर नहीं जाऊँगा, यहीं छोड़ के जाऊँगा। ज्ञानी! यदि आत्मा के लिए रोते हैं बेटे तो आत्मा का कभी विनाश नहीं होता है और शरीर के लिए रोते हैं तो शरीर कोई लेकर नहीं जाता है, तो अब बोलो,

रोते क्यों हो, पूछ लेना क्यों रोते हो? देह के लिए रोते हो तो सजाकर रखना, श्मसान में नहीं ले जाना। आत्मा के लिए रोते हो तो आत्मा त्रैकालिक है उसका विनाश नहीं होता है। जो भी रुदन है वह उसके स्वार्थ की पूर्ति नहीं हो रही है इसलिए रोता है। ये शुद्ध तत्त्व है, जिनागम का सार है। जो जिनागम का सार है वही समयसार है। कुछ नहीं, निज के भीतर ही राग पर्यायें उत्पन्न होती हैं, निज के भीतर ही द्वेष पर्यायें उत्पन्न होती हैं। कोई किसी को राग-द्वेष उत्पन्न कराने का कर्त्ता नहीं है।

निज के भीतर ही तेरे ही ज्ञान में, अशुद्ध ज्ञान में रागपर्याय जन्म लेती है। तेरे ही ज्ञान में द्वेषपर्याय जन्म लेती है, तू परवस्तु के राग-द्वेष का कर्ता नहीं है। सँभलकर सुनना, परवस्तु मेरे राग-द्वेष का कर्ता नहीं है, किसी वस्तु का विनाश नहीं होता है। जब वैराग्य होता है तो वस्तु का विनाश कहाँ होता है? दृष्टि ही तो बदलती है। जो तुमको प्रिय लगते थे, आपको सुहावने लगते थे, वे असुहावने लगने लग गये। भाई। किंचित् किसी से तुम्हें द्वेष हो गया, वहाँ आपकी प्रीति समाप्त हो गई। उनमें प्रीति समाप्त नहीं हुई है तेरे भीतर राग की जगह द्वेष खड़ा हो गया है। वस्तु नहीं बदली, व्यक्ति भी नहीं बदला, परिणामों की पर्याय बदली है, परिणामी वही है; पर्याय बदली है परिणामी वही है। **'तद्भावाऽव्ययं नित्यम्'** जिसमें व्यय-उत्पाद हो रहा है वह तो नित्य है। जो नित्य है उसमें उत्पाद-व्यय होता है। जो नित्य ही नहीं है वो तो अवस्तु है उसमें उत्पाद-व्यय कहाँ से होगा? समझो विषय, पूरा रसायनशास्त्र चल रहा है।

जो है वही तो बदलेगा, जो है ही नहीं वह क्या बदलेगा। पहले सत् स्वीकारना होता है। पहले वस्तु को स्वीकारना होता है। वस्तुत्व को स्वीकारना होता है। जो होता है उसी में होता है। जो होता नहीं है उसमें कुछ भी नहीं होता है। क्या आप हँसोगे? क्या आप रोओगे? चेहरा होगा तो हँसते भी दिखेगा, चेहरा होगा तो रोते भी दिखेगा। जिसका चेहरा ही समाप्त हो गया है वह हँसेगा कि रोयेगा? देखो उस ज्ञानी को, इसका चौबीस घण्टे चेहरा ऐसा लगता है कि रो रहा है, हँस भी रहा होगा तो लगेगा रो रहा है। क्या करे उसका नाम ही ऐसा है। एक साथ रोइए, एक साथ हँसिए, संभव है?

एकसमय में एक ही पर्याय होगी। एकसमय में एक द्रव्य में दो पर्याय नहीं होगी; शुद्ध पर्याय होगी उस समय अशुद्ध पर्याय नहीं होगी। अशुद्ध पर्याय होगी उस समय शुद्धपर्याय नहीं होगी। जब हर्ष होगा उस समय विषाद नहीं होगा, जब विषाद होगा उस समय हर्ष नहीं होगा। इसलिए यहाँ पर कह रहे हैं उत्पादव्यय ध्रौव्यत्वशक्ति। ये अठारहवीं शक्ति को समझते हुए उन्नीसवीं परिणामशक्ति को समझिए। द्रव्य ध्रौव्य है, परिणमनशील है, द्रवणशील है। वही द्रव्य है, जिसमें परिणमन चल रहा है। जो परिणामी है वही द्रव्य है। परिणमन होने पर भी अपरिणमनशील है वही ध्रौव्य द्रव्य है। परिणमन हो रहा है, बदल रहा है, बदल तो रहा है पर नष्ट नहीं हो रहा है। बदल रहा है इसलिए परिणमनशील है। नष्ट नहीं हो रहा है इसलिए अपरिणमनशील है। समझ में आ रहा है? स्वर्ण मुकुट है, मुकुट को खण्डित कर पाया तो कुण्डल बनवाया। परिणमनशील है तभी तो मुकुट टूट करके कुण्डल बना

है, पर किसका बना? जो अपरिणमनशील है। पर्याय बदली है, परिणमन हुआ है द्रव्य में। द्रव्य में परिणमन तो हुआ है पर द्रव्य का अभाव हुआ नहीं है। स्यात् परिणामी, स्यात् अपरिणामी। कथंचित् परिणामी, कथंचित् अपरिणामी।

आप यह सुन रहे हो, यह जैनदर्शन का तत्त्व है, इसलिए भी सुनना चाहिए है कि भगवान् तीर्थंकर सर्वज्ञ ने, अपने कैवलज्ञान में द्रव्य को कैसे जाना, कैसे पहचाना, कैसे समझा, कैसे व्याख्यान किया? वर्तमान की पीढ़ी यही समझ रही है कि तिलक लगाना, धोती-दुपट्टे पहनना अथवा कपड़े उतारकर बैठ जाना - इसका नाम जैनदर्शन है। ये जैनदर्शन का आचरण पक्ष है। जो आप समझ रहे हो, जो आप सुन रहे हो वह जैनदर्शन का तात्त्विकपक्ष है। यह जैनदर्शन का तात्त्विकपक्ष है ऐसा कहकरके इसे जिनेन्द्र देव ने बनाया है ऐसा मत कह बैठना। ये जिनदेव ने जाना है, ये जिनदेव ने पहचाना है, पर जिनदेव ने बनाया नहीं है।

'स्वतंत्रतः कर्ता', प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतंत्र है। मान्यता मेरी और जज साहब की अलग-अलग हो सकती है, परन्तु ये मान्यता तो बदल सकती है। जो जीवत्व उनके पास है वैसा मेरे पास है। जो मेरे पास है वह उनके पास है। **एकसा जीवत्व होने पर भी प्रत्येक जीव स्वतंत्र है। मेरी आत्मा परमात्मा की आत्मा नहीं है। परमात्मा की आत्मा मेरी आत्मा नहीं है और मेरी आत्मा का अंश परमात्मा नहीं है, परमात्मा की आत्मा का अंश मैं नहीं हूँ। मेरी आत्मा स्वतंत्र है, परमात्मा की आत्मा स्वतंत्र है।** समझ में आ रहा है कि नहीं? यही समझना है, नहीं तो आप परमात्मा के अंश बनकर बैठ जाओगे और परमात्मा के अंश बन गये तो अंश कर क्या रहे हैं ? एक गाय को पूज रहा है, एक गाय की हत्या कर रहा है, ये दोनों परमात्मा के अंश कैसे? इसलिए दोनों का स्वतंत्र परिणमन है, कही हुई व्याख्या नहीं समझना। मस्तिष्क के साथ में चिन्तन लेकर चलना। आपको कुछ वैज्ञानिकता नजर आ रही है कि नहीं आ रही है ?

कोई परमात्मा का अंश होता नहीं, प्रत्येक आत्मा स्वरूप में प्रतिष्ठित है। कोई भी आत्मा पररूप होती नहीं है। यह अज्ञानियों की भाषा है कि हम दोनों के शरीर अलग-अलग दिखते हैं आत्मा दोनों एक हैं। यह राग की तीव्रता बोल रही है। अज्ञानता को निकाल देना। यदि तू ऐसा मानता है तो तेरा बेटा जब रोये तब तुझको भी रोना पड़ेगा। बेटा हँसे तब तुझे भी हँसना पड़ेगा। बेटा विषय-सेवन करे तब तुझे भी करना पड़ेगा, जबकि तू मन्दिर में पूजा कर रहा होता है। दोनों की क्रियाओं में अन्तर क्यों? कुछ अज्ञानी शिष्य उत्पन्न हो जाते हैं, बोले - मेरे और मेरे गुरु की आत्मा एक ही है, शरीर दो हैं। ये मिथ्यात्व को छोड़िये, अज्ञानता को छोड़िये, तू नरक जाएगा तो गुरु को साथ ले जायेगा क्या? कण-कण स्वतंत्र है, अणु-अणु स्वतंत्र है, परमाणु-परमाणु स्वतंत्र है।

बेटा! लड्डू खाया, लड्डू में किसमिस, काजू, बादाम होता है कि नहीं, उस लड्डू में शक्कर है कि नहीं, आटा है कि नहीं, घी है कि नहीं; ये सब लड्डू हैं क्या? इन सबका समूह लड्डू नहीं हैं क्या? ये सब लड्डू नहीं है फिर भी कहा जाता है कि लड्डू का स्वाद चख रहा हूँ यद्यपि प्रत्येक द्रव्य का स्वाद अलग-अलग ही है। घृत का स्वाद आटा नहीं होता, आटे का स्वाद घृत नहीं होता। काजू का स्वाद किसमिस नहीं है, किसमिस का स्वाद छुआरा आदि नहीं है। मिले दिखते हैं तो संज्ञा सबकी एक है- लड्डू। पुनः बिखेर दीजिए तो सारा मसाला अलग दिखेगा कि नहीं? दिखेगा। ऐसे ही संसार में कितने ही द्रव्य परस्पर में मिल जायें, पर लड्डू के समान प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। ऐसे ही कितने ही जीव निगोद में जाकर मिल जायें, परस्पर में सिद्धालय में जाकर मिल जायें, लेकिन फिर भी अपने-अपने स्वभाव का त्याग नहीं करते। दूध का स्वाद पानी में आ सकता है क्या? पानी का स्वाद दूध में आ सकता है क्या? बेटा! तुम दूध ही पीते हो क्या? इतनी भोली तेरी माँ नही है जो तुझे शुद्ध दूध पिलाती हो। एक तो ग्वाला पानी मिला के लाता है और इन माताओं की आदत होती है कितना ही ग्वाला पानी मिला के लायेगा पर ये घर में पानी डालेगी ही। इतना भाग्य नहीं जो शुद्ध दूध मिल जाये तुझे, पर क्या बोलती है माँ - लो बेटा! दूध पी लो। तुम तो ठीक हो, महाराज तक को बोलती दूध है, भरा पानी है। तुम तो श्रावक हो, श्रावक तो महाराजों को भी ठग लेते हैं। महाराज! दूध, ये कोई नहीं बोलता - दूध-पानी, क्या बोलते दूध। कम-से-कम सत्य तो बोला करो दूध और पानी, क्या बोलते हो दूध। ये पीने-खाने की बात नहीं चल रही, विषय को समझना। जैसे दूध में पानी के मिश्रण होने पर स्वाद लेनेवाला बोलता है - दूध पी रहा हूँ पर सत्य ये है दूध का स्वाद दूधभूत है, पानी का स्वाद पानीभूत है। पर दूध के शक्त्यांश अधिक होने के कारण दूध समझ लेते हो, दूध का स्वाद आ रहा है। जैनदर्शन कितना गहरा है उसको समझो। प्रत्येक द्रव्य एक दूसरे में मिले होने के उपरान्त भी अपने-अपने स्वभाव का त्याग नहीं करते। इसलिये प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र हैं, कभी अपने स्वभाव का त्याग नहीं करते।

जिनालय में अष्टधातु की प्रतिमा विराजमान होगी, कभी-कभी अष्टधातु के आप कड़ा भी पहन लेते हो। कड़ा संज्ञा एक, मूर्ति संज्ञा एक; सप्तधातु का कड़ा या अष्टधातु की प्रतिमा हो पर प्रत्येक धातु उसमें स्वतंत्र है, एक भी धातु भिन्नधातुरूप परिणत नहीं हुई है। ऐसे ही लोक में जितने द्रव्य हैं वे एक साथ मिले होने पर भी, एक साथ रहने पर भी अपने स्वभाव का त्याग नहीं करते। जब सिद्धशिला पर सिद्ध विराजते हैं, एक में अनेक विराजते हैं। वह सिद्ध एक में अनेक जरूर हैं पर स्वतंत्र ही हैं। एक सिद्ध का अनुभवन दूसरा सिद्ध नहीं लेता। एक साथ थाली में बैठकरके अनेक भोजन करें फिर भी विश्वास रखना, भोजन एकसा हो सकता है पर स्वाद सबका एकसा नहीं हो सकता है। भोजन एकसा हो सकता है, पर मुख की लार सभी की एकसी नहीं होती है। गटागट की गोली किसी को अच्छी लगती है, किसी को मिश्री

अच्छी लगती है। ये अन्तर क्यों आ रहा है? समझ रहे हैं आप, ये तुम्हारे मुख के स्थान है, जिह्वा के स्थान हैं, कोशिकाएँ हैं, उन सबमें भिन्नत्व है।

एक गुणस्थान में अनेक मुनिराज विराजते हैं। माना कि ये छठे गुणस्थान में विराजते हैं। छठे गुणस्थान में चौदहके-चौदह होने पर भी इन सबकी अनुभूति एक-सी नहीं है। जिस दिन एकसी अनुभूति होगी उस दिन मोक्ष होगा। ये सामान्य दृष्टान्त है। बेटा! पच्चीस माताएँ कड़ाही पर लड्डू बना रही हैं। कड़ाही कुछ छोटी, कुछ बड़ी, कुछ बीच की; कुछ पीतल की, कुछ लोहे की, कुछ ताँबे की हैं। ये माँ लड्डू बनाएगी तो चासनी बना रही है; कड़ाही की अवगाहना में अन्तर है, धातु में अन्तर है लेकिन मेरा प्रश्न ये है, जब लड्डू बनाओगी तो चासनी का तार कैसा टूटना चाहिए, पूछो इन माताओं से। पच्चीस कड़ाहियों में जो चासनी बन रही है उनका तार एकसा टूटेगा वो विसदृश्य होगा कि सदृश्य होगा? अलग-अलग होगा तो लड्डू बनेगा, कि लपसी बनेगी, कि कसार बनेगा, क्या बनेगा? अलग-अलग चासनी का तार होगा तो लड्डू बनेगा क्या? तो क्या बनेगा, या तो लड्डू बनेगा, हलुआ बनेगा या पंजीरी बनेगी। सुनो लड्डू कैसे बनेगा? कड़ाही कैसी भी हो पर सभी कड़ाही की चासनी का तार एकसा ही टूटेगा।

ज्ञानी! ये भारत की भूमि पर ढाई द्वीप में जितने भी मुनि विचरण कर रहे हैं, महाराज चाहे तुम छोटे कद के हो, चाहे बड़े कद के, चाहे मोटे हो, चाहे दुबले हो, चाहे पुराने दीक्षित हो, चाहे नए दीक्षित हो, कैसे ही हो, लेकिन मोक्ष तभी होगा जब एक परिणाम होगा। बिना एक परिणाम हुए मोक्ष किसी का होता ही नहीं है। जब-तक ढील-ढाल रहेगी तारों में तब तक लपसी जैसे परिणाम होंगे, हलुआ जैसे परिणाम होंगे, कसार जैसे परिणाम होंगे, लेकिन लड्डू जैसे परिणाम नहीं होंगे। मोदक चारों ओर से मीठा है, ऐसा निर्वाण लाडू चाहिए तब चौदहवें गुणस्थान में जायेगा। उस समय परिणामों की अवस्था क्या होगी, बेटा! वहाँ लक्ष्य रखना। लोग समझ नहीं रहे, लोग सोचते हैं कि महाराज ने विषय बदल दिया, ये बदला नहीं, मित्र! ये वस्तुस्वरूप है। मैं छोटा, मैं बड़ा, कड़ाहियाँ कैसी ही हों, सबका तार तो एकसा होगा तभी लड्डू बनेगा। ऐसे ही चाहे सवा पाँच सौ धनुष की अवगाहनावाले बाहुबली स्वामी हों , चाहे सात हाथ के महावीर स्वामी हों, चाहे साढ़े तीन हाथ के अवगाहनावाला मुनि हो, इन सम्पूर्ण मुनियों के भावों की दशा मोक्ष जाने के लिए एकसी होगी।

बर्तन मत देखो, चाहे सोने के लोटे में पानी भरो, चाहे पीतल के, चाहे ताँबे के में भरो। बर्तन में मत देखो, पानी का वर्तन देखो। पानी का स्वाद क्या है, वह शीतल ही है। कपड़े उतारनेवालों को भी सोचना पड़ेगा। कपड़े उतारने वालों को भी बहुत भीतर उतरना पड़ेगा पर कपड़े उतारे बिना उतर भी नहीं सकते हो। गंगा नदी में स्नान करने जायेगा तो पहले क्या करेगा ? कपड़े उतारेगा, तभी तो तैर पायेगा, बिना कपड़े उतारे नदी में नहीं उतर पाता। मुमुक्षु! कपड़े उतारे बिना चैतन्य-नदी में कैसे उतर पायेगा? डुबकियाँ लगाना है तो कपड़े उतारना पड़ते हैं।

ज्ञानी! परिणामशक्ति, बेटा समय कम है चाहे सम्यक् तत्त्व का चिंतन करलो, चाहे परिग्रह का चिंतन करो असम्यक्। चेहरे को भी चमका सकते हो, चेहरेवाले को भी चमका सकते हो। शरीर को चमकाने में लग जाओगे तो शरीर जिसका है वह नहीं चमकेगा। बेटा! तुझे तो प्रश्न करना चाहिए कि सारे जगत् के गुरु तो कपड़े पहन कर रहते हैं और हमारे गुरु कपड़े उतार के रहते हैं। मित्र हँसी करते हैं कि तुम्हारे गुरु नंगे क्यों घूमते हैं ? एक प्रश्न करना चाहिए। क्या कपड़े उतारने का शौक है, क्या शर्म नहीं लगती कपड़े उतारने में? ये युवा लोग कपड़े उतारकर घूम रहे हैं। कोई बच्चा होता, कोई बूढ़ा होता तो ठीक है पर ये तो युवा हैं, इन्हें तो नहीं उतारना चाहिए।

ज्ञानी! कपड़े उतारने के लिए मुनि नहीं बना जाता। धन्य है यह निर्ग्रन्थदशा, जो स्वसमय में लीन हैं वे कपड़े उतारने-पहनने में समय को नष्ट नहीं करना चाहते, पहनेंगे उतारेंगे, कितना समय बर्बाद होगा? उतना स्वसमय में लगना चाहिए है। नाड़ा खोलने में समय लगता है कि नहीं, नाड़ा बांधने में समय लगता है कि नहीं? धन्य है निर्ग्रन्थ की दशा जो नाड़ा खोलने-बाँधने के समय को भी बर्बाद नहीं करते हैं। फिर जो दुनियाँ के पेपर पढ़ने में समय नष्ट करे, वो योगी कैसा? ये है वस्तुस्वरूप, बेटा! अब कोई प्रश्न करे तो तुम उत्तर दे सकते हो।मुनि अपने में इतना निर्विकल्प हो चुका है, निर्विकार हो चुका है। **जिसके भीतर वासनाएँ होती हैं वे वसन पर दृष्टि रखें, जिनकी वासनाएँ ही उतर चुकी हैं उन्हें कपड़े पहनने की आवश्यकता क्या है?** कोई भेष नहीं बनाना चाहिए। हम लोगों ने कोई भेष नहीं बनाया, बनावट को उतार कर अलग किया है। जो बीच में बनावटीपना था, जो रागियों ने ओढ़ा दिये थे उनको हटा दिया है।

जब जन्मे थे तो ऐसे ही जन्मे थे। तुम कैसे जन्मे थे? कपड़े पहनकर कि कपड़े उतार कर, बोलो? बिना कपड़े के। जब मृत्यु होती है पूछना दादा से, संस्कार करने जाते हैं, बेटा! सारे कपड़े खोल देते हैं एक भी छोड़ते नहीं हैं, सब उतार देते हैं। आया तब नंगा था, जायेगा तो नंगा फिर बीच में दंगा क्यों कर रहा है। समझ गये, हमने कोई भेष नहीं बनाया, जो था वही है। जो है सो है। **हमने कोई भेष नहीं बनाया, प्रकृति का रूप प्रकृति के साथ है, कितना सुहावना है। कपड़ेवाले प्रकृति के साथ नहीं हैं। अपने दोषों को छुपाने के लिए कपड़े पहनते हैं, अन्यथा ये तुम अपनी कषाय वासनाओं को कहाँ छुपाओगे?** कितना विश्वास का भेष है, यहाँ सब खुला है। सत्यार्थ, भूतार्थ, तात्त्विक प्ररूपणा करना चाहिए।

समझ में आ रहा है आप सबको? जगत् का कोई तर्क नहीं लगता स्वभाव पर। पानी शीतल क्यों है, अग्नि उष्ण क्यों है? **'स्वभावो तर्क गोचरः' स्वभाव पर तर्क नहीं लगता है, जो है सो है।** तर्क तो विभाव पर ही लगता है। पानी उष्ण क्यों हो गया, इसमें तर्क लगेगा हेतु दीजिए। पानी शीतल क्यों है, इसमें तर्क नहीं है, स्वभाव है। इसलिए बेटा! सुन, पढ़ने में मन न लगता हो, कमाते न बनता हो इसलिए जैन मुनि कभी नहीं बनना। वास्तव में मुनि तो उसे ही बनना चाहिए है जिसकी प्रज्ञा तेज हो। जो बुद्धि के

पागल हैं, जिनसे घर के काम नहीं बनते तो यहाँ समाज के भार बनके नहीं बैठना। सोच रहा है कि चार-छह साल घर में और रह लूँ फिर मुनि बन जाऊँगा। पर मेरा इस जीव से प्रश्न है - ये कैसा जीव है बढ़िया पके-पकाये आम को खा रहा था। जो टोकनी में सड़ गये सो चद्रप्रभ स्वामी को चढ़ा आया। बोले- भगवान् ! ये आपको समर्पित। जब सड़ गये तो भगवान् को। जब आम अच्छे थे तो खा रहा था जीव।

हे जीव! सुन्दर सुहावना शरीर था तब भोगों में लगा दिया और जब सड़ गया तो कहता है साधु बना दो। अब कहोगे क्या, जो है सो है। संसार ऐसा ही है जब चमकता शरीर है तब तुम मुनि बनो, लोग तुम्हें देखकर कहें कि तीर्थंकर महावीर स्वामी ऐसे ही होते होंगे। आगम को समझने के लिए कितनी प्रज्ञा चाहिए? कितने सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विषयों की आगम में प्ररूपणा है। छद्मस्थों के ज्ञान का निर्णय करना सरल है। केवली के ज्ञान से उद्घाटित जिनवाणी की गहराईयों का निर्णय करने के लिए स्वस्थ चित्त चाहिए, स्वस्थ शरीर चाहिए। साधक का न शरीर अस्वस्थ होना चाहिए न चित्त अस्वस्थ होना चाहिए। श्रावकों का कर्तव्य होता है कि जैसे तुम सुबह-शाम साधु की सेवा करते हो ऐसे ही इन साधुओं के चित्त की भी वैयावृत्ति करो।

भैय्या! पान की खेती देखी आपने ? पान की खेती ऐसे नहीं होती जैसे धान्य की होती है। धान्य में तो ऊपर पानी भरा नीचे सब खुला हुआ। पर पान की खेती के लिए भीतर पानी ऊपर से छाँव चाहिए पड़ता है। पूरा बंद होता है कहीं धूप न लग जाए नहीं तो कुम्हला जायेंगे। ऐसे ही साधु के चित्त को इतना विशुद्ध रखो जिससे तत्त्व का निर्णय करें और निज के भगवान् को प्रगट कर लें। कभी उन्हें अपने घर की बात तो सुनाने ही नहीं जाना, क्योंकि यही सुनना होता तो ये घर छोड़ कर यहाँ आये क्यों हैं। ये तो कभी पूछने ही नहीं जाना कि दुकान कैसे चलेगी मेरी। इनकी इतनी बुद्धि चलती होती तो दुकान छोड़के क्यों भाग आये। इनको कभी अपना मानना मत। कोई के होते तो जन्म देनेवाले माता-पिता को छोड़ के न आते। जब ये उनके न हुए तो तुम्हारे क्या होंगे। इनको तो मात्र साधु मानना। कभी इन पर विश्वास नहीं करना, श्रद्धा करना, ये कोई के होते नहीं हैं और सबके होते हैं।

आगम कहता है 'मूर्तिमैव' मूर्ति किसी को अपना नहीं मानती। चन्द्रप्रभ स्वामी किसको अपना मानते हैं ? किसी को नहीं मानते। पर कौन उनको अपना नहीं मानते? सब अपना मानते हैं; ऐसे ही हे मुनि! सब आपको अपना मानें पर तुम किसी को अपना नहीं मानना। यही तुम्हारा मोक्षमार्ग है। अब जो है सो है। कम-से-कम इतना तो सीख ही जाओगे। कुछ भीतर हो रहा है, बहुत कुछ हो रहा है, घरवालों की चिन्ता मत करना।

ध्रौव्य स्वभावभूत, ध्रौव्य द्रव्य का स्वभाव है। ध्रौव्य में चल रहा है व्यय-उत्पाद, सदृश्य-विसदृश्य, समान-असमान। ध्यान दो, जो व्यय है वह उत्पाद नहीं है, जो उत्पाद है वह व्यय नहीं है। इसलिए व्यय उत्पाद से विसदृश्य है। उत्पाद व्यय से विसदृश्य है। परन्तु उन दोनों के मध्य में जो ध्रौव्य है वह सदृश्य है।

ज्ञानी! योगी जब अपने स्वरूप में लीन होता है तब अपने भीतर से परिणामों में निर्णय कर रहा होता है। ये मत समझना कपड़े उतार के, पिच्छी-कमण्डलु लेकर हो गया मुनि। बस नहीं, नहीं आप मुनियों को हँसते-मुस्कराते देख करके ये मत मान बैठना कि ये सच्चे भावलिंगी मुनि, इनका यही काम है। मात्र धर्मस्थानों में शांति से जीवन निकालना है, ऐसा नहीं समझ बैठना। ज्ञानी! सुनो ध्यान से इस विषय को। ये परिणामशक्ति क्या बोल रही है? आपने आँखों के मुनिराजों को अनंतबार देखा है। ये आँखों के मुनियों कि व्याख्या नहीं चल रही है। ये आत्मा के भीतर क्या हो रहा है उसकी व्याख्या चल रही है।

माँ! जैसे खीर बनाई आपने। माँ! बटलोई दिखाई देती है, नीचे अग्नि दिखाई देती है। आपने बटलोई पर ढक्कन रख दिया है, उसके भीतर क्या हो रहा है? क्या बटलोई खीर बन रही है? अग्नि खीर बन रही है क्या? अग्नि के सहयोग से बटलोई के अधिकरण से भीतर खीर बन रही है। ये देह तो बटलोई है, इसे तुम मुनि मत मान बैठना, ये तो भेषमात्र है। जो भीतर खीर बन रही है उस चावल से पूछो- वह बटलोई के अन्दर कितनी बार ऊपर, कितनी बार नीचे हो रहा है जो परिणमन सहन कर रहा है। उस ताप को सहन करने के बाद खीर बनी है। ऐसे ही योगी अपने भीतर के परिणामों में निर्णय कर रहे हैं। मैं उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभावी सत् द्रव्य हूँ, सत् मेरा लक्षण है। उत्पाद व्यय - असमान जाति, समान जाति, उभय। वह पर्यायों में चल रहे हैं। गुणों का उत्पाद व्यय भिन्न है, द्रव्य का उत्पाद व्यय भिन्न है, भिन्न होने पर भी अभिन्न है।

भैया! उत्पाद का अधिकरण भी ध्रौव्य है, व्यय का अधिकरण भी ध्रौव्य है। समझ में आ रहा है क्या ? उत्पाद का अधिकरण भी ध्रौव्य है। इधर देखो। ये अंगुली है। ठीक है, ये अंगुली है। इसकी पर्यायें सीधी हैं अब टेढ़ी कर दी, वह सीधी अंगुली को ही तो टेढ़ा किया है, जिसमें सीधापन था उसमें ही टेढ़ापन आया है। सीधेपन का व्यय, टेढ़ेपन का उत्पाद, अंगुली वही है। समझ रहे हैं, व्यक्ति उत्पाद व्यय होते हुए भी ध्रौव्य को देख रहा है कि मेरी आत्मा में अनंतभाव उत्पन्न हो रहे हैं, अनंतभाव व्यय को प्राप्त हो रहे हैं, परन्तु ध्रुव भगवानात्मा टंकोत्कीर्ण ज्ञायकस्वभावी, परमपारिणामिक, स्वभाव से एकत्वभूत है, अविनाशी है। इस परम सत्य को समझिए। भैया! भगवान् का आश्रय लेने से आज तक कोई भगवान् नहीं बना। सब चेहरे बना सकते हैं उनकी मुझे कोई परवाह नहीं है। जगत् के चेहरों को देखोगे बेटा! तो सत्य कभी नहीं बोल पाओगे। भगवान् का आश्रय लेने से आज तक कोई भगवान् बना ही नहीं और बन भी नहीं पाएगा। सोचो सोचो फिर में बताता हूँ।

भगवान् का आश्रय लेने से आज तक कोई भगवान् नहीं बना, पर भगवान् का आश्रय लिए बिना आज तक कोई भगवान् नहीं बना। जब-तक भगवान् का आश्रय लिये रहेगा तब-तक भगवान् बन ही नहीं सकता। श्रावको! स्त्री में आनंद नहीं है, पुरुष में आनंद नहीं है। इस विषय को समझना गंभीरता से, आप गृहस्थ हो, मेरी बात जल्दी समझ लोगे। हे जीव! स्त्रीसुख की भी तू अनुभूति लेता है

वह स्त्री का सुख भी तेरी अनुभूति नहीं है। तेरी ही शरीर की धातु का क्षरण होता है तब तुझे सुखानुभूति होती है। यह तो स्त्री के सहयोग से उसकी गर्मी से तेरी शक्ति का क्षरण हुआ है। पर स्त्री में सुख नहीं था और स्त्री के लिये पुरुष में सुख नहीं था। इन्द्रियसुख भी तेरे भीतर था, सुनते जाना। जो पुरुष शक्ति-विहीन हो चुका है, नपुंसक हो चुका है उस व्यक्ति से पूछना - स्त्री सहयोग में तुझे सुख मिलता है क्या? समझ रहे हो मैं क्या बोल रहा हूँ? चेहरा बनाने की आवश्यकता नहीं है।

तत्त्व को समझिए, जो सुख है इन्द्रिय का उसकी शक्ति भी तेरे भीतर ही है। अब कहो, **अज्ञानी श्वानवृत्ति से युक्त होता है। सूखी हड्डी को चबानेवाला श्वान, क्या रक्त का स्वाद ले रहा है हड्डी से? हड्डी के चबाने से उसकी कठोरता से उसी के मसूढ़े कट रहे हैं और उनसे रक्त निकल रहा है। उस रक्त को वह श्वान हड्डी का रक्त समझ रहा है। ऐसे ही अज्ञानी पुरुष स्त्री में सुख समझता है।** अज्ञानी नारी पुरुष में सुख समझती है, पर वास्तव में वह सुख स्त्री-पुरुष के स्वयं के भीतर ही होता है। इसी प्रकार से हे जीव! ये परमात्मा की जो प्रतिमाएँ हैं, भगवान् हैं, इनमें भक्ति नहीं है, भक्ति के भाव भी तेरे भीतर होते हैं और तेरे भीतर भक्ति के भाव नहीं तो मूर्तियाँ कुछ आनंद देती नहीं। समझ में आ रहा है, **भगवान् का आश्रय लेते रहोगे तब तुम देव तो बन सकते हो, लेकिन मोक्ष नहीं जा सकते हो। मोक्ष जाने के लिए स्व के अंदर जो भगवत्शक्ति विराजमान है उसको तत्त्व-निर्णय से उद्घाटित करना पड़ेगा।**

एक गोपिका दूध को मटकी में भरे है। भैया को दूध दिख रहा है, पर उसको उसके अंदर मक्खन दिख रहा है। मक्खन है, दूध में किसका आश्रय लेने से दही बनेगा, किसका आश्रय लेने से मक्खन बनेगा, किसका आश्रय लेने से घृत बनेगा? कोई परवस्तु का आश्रय है क्या? उस दूध के भीतर ही घृत प्रगट होता है, परन्तु अपने तत्त्वज्ञान से, निर्णय से वो प्रक्रिया करती है ग्वालिन, कि बहते हुए दूध से जमा हुआ दूध निकाल लेती है। ऐसे ही योगी इस भटकती हुई आत्मा को तत्त्वनिर्णय से, भेद की अग्नि से और ध्यान की अग्नि से इतना निज को तपाता है उसके भीतर के भगवान् को प्रकट कर लेता है और भगवान् से भी दूर हो जाता है।

क्या अद्वैत, क्या वेदान्त, क्या उपनिषद, ब्रह्मसूत्र; यह अद्वैतधारा है। इसमें परमेष्ठी का आलम्बन भी समाप्त हो जाता है। **निज का आनंद निज में प्रगट होता है और निज के भगवान् को प्रगट करने की जो कला है उस कला का नाम भेदविज्ञान है।** बेटा! तू नहीं समझ रहा है कि ये कथन करने में ताकत लग रही है कि नहीं? मेरा प्रश्न है - आपको सुनने में ताकत लग रही कि नहीं? और जिनको समझ में नहीं आता है उनके सिर भन्नाने लगते हैं, सिरदर्द करते हैं। जब समझने में इतनी ताकत लग रही है तो प्रगट करने में कितनी ताकत लगेगी। इसलिए भक्तिमार्ग सरल है, उसमें अपना कुछ नहीं लगता। मजीरे

उठाये बजा लिए पर बिना बाजे के, बिना मजीरे के, बिना संगीत के, निज का भगवान् प्रगट करलो - यह बहुत कठिन है। ज्ञानधारा है, यही तत्त्वदृष्टि है।

ज्ञान से दूसरे को जान लेना बहुत सरल है। अपने ही ज्ञान से अपने को जान लेना बहुत कठिन है। देखो मेरा चेहरा, अपना चेहरा देखना, दूसरे के चेहरे को देखकर सिर झुका लेना सरल है। अपने चेहरे को देखना कठिन है, जब तुम अपना चेहरा नहीं देख सकते हो भगवान् को देख लेना सरल है। वो तो भिन्न वस्तु को देख रहा है, पर निज के भगवान् को देखना ये कठिन है। अपना चेहरा देखने के लिए दर्पण रखना पड़ता है। मुमुक्षु! निज के, भीतर के भगवान् को देखने के लिए जिनागम चाहिए पड़ता है। निर्णय करना तत्त्व का निर्णय, ज्ञानदर्पण, **'यद्विद्या दर्पणायते'**।

जो परिणमन होने पर भी अपने आपका नाश नहीं होने दे रही है-परिणामशक्ति। द्रव्य की द्रव्यता को नित्य रख रही है परिणामशक्ति। उत्पाद-व्यय नहीं होगा तो ध्रौव्य नहीं होगा, ध्रौव्य नहीं होगा तो उत्पाद-व्यय नहीं होगा। अपरिणामी-अपरिणामी वस्तु होगी तो अर्थक्रियाकारित्व का अभाव होगा। अर्थक्रियाकारित्व का अभाव होगा तो वस्तु का ही अभाव होगा। परिणामशक्ति अर्थक्रियाकारित्व को विद्यमान रख रही है। **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत्।** ध्रौव्यत्वशक्ति और परिणामशक्ति, दोनों एक नहीं हैं क्या? एक-सी लगने पर भी एक नहीं हैं। वहाँ कहा है उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य। जो ध्रुवत्वशक्ति थी - क्रमाक्रमवर्ती; गुण अक्रमवर्ती, पर्याय क्रमवर्ती। उनमें उत्पाद-व्यय का व्याख्यान किया है।

सदृश-विसदृश, समान-असमान अवस्था से युक्त होने पर भी अपने-आप से जो युक्त है वह परिणामशक्ति। व्यय भी चल रहा है, उत्पाद भी चल रहा है, ध्रौव्य अखण्ड है। न गुण की व्याख्या कर रहे हैं, न पर्याय की व्याख्या कर रहे हैं, अखण्ड की व्याख्या कर रहे हैं। यह ध्रुवसत्य है। इस तत्त्व के निर्णय में लीन हो जायेगा योगी, उसको दूसरे काम करने के लिए समय नहीं, दूसरे काम करने में लगा है इसका मतलब ही समझिए, तत्त्व का निर्णय नहीं है। उम्र का लिहाज मत गिनना, ज्येष्ठता-श्रेष्ठता की कोई बात यहाँ नहीं करना। तत्त्व का निर्णय भिन्न विषय है, खोज करो। जिस विषय को आप इतनी उम्र में नहीं समझ पाये, आपका पोता आपको तुरन्त बता दे, तो यहाँ यह नहीं देखना चाहिए मेरे बाल सफेद हो गये। ये प्रज्ञा का विषय है। भाई! देखा जा रहा है वर्तमान में पिता कम्प्युटर चलाना नहीं जानता और बेटा फट-फट काम कर लेता है। अब इसमें पिता को नहीं रोना चाहिए। मैं बड़ा होने के बाद भी कुछ नहीं जानता हूँ। अरे ! जानता है उसका क्षयोपशम प्रबल है। इसी प्रकार से तत्त्व-निर्णय को समझना।

वस्तुतत्त्व की विशद व्याख्या सारे विश्व में कहीं देखी गई है तो केवलज्ञान में है। जिसके पास ज्ञान ही छद्मस्थ है वह सम्पूर्ण व्याख्या को करने में समर्थ हो ही नहीं सकता। आवृतज्ञान में सकलज्ञान की सकल पर्यायों का व्याख्यान असंभव है। क्रमाक्रमवर्ती सम्पूर्ण अवस्थाओं को युगपत् कहने की सामर्थ्य,

जानने की सामर्थ्य, देखने की सामर्थ्य यदि कहीं है तो निरावरण क्षायिकज्ञानी में है। पदार्थ एक ही समय में क्रमवर्ती है, अक्रमवर्ती भी है; पर्यायदृष्टि से क्रमवर्ती है, गुणदृष्टि से अक्रमवर्ती है। **''सहभुवोगुणाः, क्रमवर्तिनःपर्यायाः''** गुण सहभावी होते हैं , पर्याय क्रमभावी होती है। क्रमाक्रम परिणमन जो है एक के बाद दूसरी पर्याय नियत है । जैसे मणियों की माला, मोती की माला हाथ में है, एक के बाद दूसरा मोती आयेगा, ऐसे ही एक साथ एक द्रव्य में एक अवस्था में अनंत पर्यायें नहीं हो सकती हैं।

एक समय में, एक द्रव्य में, एक पर्याय होगी। जिस समय बेटा! तू हँसेगा उस समय रोयेगा नहीं, जिस समय रोयेगा उस समय हँसेगा नहीं। नरकपर्याय के काल में देवपर्याय नहीं हो सकती। देवपर्याय के काल में मनुष्य-पर्याय नहीं हो सकती है। बन्ध और सत्ता इनकी व्याख्या नहीं है, उदय की व्याख्या है। सत्ता में, बंध में दूसरी पर्यायें हो सकती हैं। मनुष्य-पर्याय को भोगनेवाला जीव मनुष्य-पर्याय का बन्धक हो सकता है और जो बन्ध कर चुका है उसकी कर्म की सत्ता हो सकती है। ये व्याख्यान बन्ध का नहीं है, ये व्याख्यान सत्ता का नहीं है, ये व्याख्यान उदय का है। माना कि पच्चीसों कषाय इस आत्मा में हैं, परन्तु एक समय में पच्चीसों कषाय का उदय नहीं होगा। गुण व्यञ्जनपर्याय, द्रव्य व्यंजनपर्याय। जब गुण व्यञ्जनपर्यायें होंगी वह स्वभावभूत होंगी उस समय विभावभूत नहीं होंगी, जब विभावभूत होंगी उस समय स्वभावभूत नहीं होंगी। द्रव्य व्यञ्जनपर्यायें स्वभावभूत होंगी उस समय विभावभूत नहीं होंगी। विभावभूत होंगी उस समय स्वभावभूत नहीं होंगी।

एक पुरुष स्थूलरूप से देखा जाये तो तीन पर्यायों को देख चुका है। एक वृद्ध पुरुष ने अपनी शिशु अवस्था को देखा है। उसने अपनी युवा अवस्था को देखा है और स्वयं की वृद्ध अवस्था वर्तमान में देख ही रहा है। एक पुरुष अपनी तीन अवस्थाओं को देख रहा है। तीन अवस्थाएँ एक पुरुष में हैं। विषय की गहराई को स्पर्श करो, तीन अवस्थाएँ पुरुष में हैं। तीन अवस्थाएँ पुरुष नहीं हैं, स्यात्। यदि पुरुष शिशु ही हुआ तो युवा नहीं हो सकता, युवा ही हुआ तो वृद्ध नहीं हो सकता। जो शिशु, युवा, वृद्ध अवस्थाएँ हैं, ये असमानजातिपर्याय में हैं।

जीव-पुद्गल के संयोग से संसार है। मिश्रधारा ही संसार है। मिश्रधारा ही क्लेश है, मिश्रधारा ही अशांति है, मिश्रधारा ही बंध है, मिश्रधारा ही दीर्घसंसार है। विश्व में जितने संकट दुःख हैं सब मिश्रण में हैं। अब आप सबसे भिन्न होकर रहो, अलग आनंद है। संक्रमण में रोग होते हैं, चाहे मौसम की संधि बेला हो, चाहे भावों की संधि बेला हो, चाहे चातुर्मास की संधि बेला हो। संक्रमण में विकल्प है, परिवर्तन में विकल्प है, संसरण में विकल्प है। **जहाँ-जहाँ मिलावट होगी वहाँ-वहाँ क्लेश होगा। जब-जब किसी से मिलोगे आप निश्चित मानिए क्लेश को प्राप्त होगे।** हर्ष भी संक्लेशता है। विषाद को तो संक्लेशता दुनिया कहना जानती है। हर्ष भी संक्लेशता है इस बात को

डाक्टरों को बताना चाहिए। यदि आप सच्चे डाक्टर हो तो बताइए हर्ष भी संक्लेशता है। हृदयघात विषाद में ही नहीं होता, प्रसन्नता में भी होता है। हर्ष के अतिरेक में हृदयघात होता है कि नहीं? होता है।

आयु का क्षय संक्लेशता से होता है। जिनको अपनी पूरी आयु भोगना हो तो मित्रो! ध्यान से सुनना - ये आगम है। **संक्लेश परिणामों से आयु का क्षय होता है। सौ वर्ष जीनेवाला व्यक्ति तनाव करना प्रारंभ कर दे तो वह दस पंद्रह वर्ष में चला जायेगा, बीमार हो जायेगा तनाव से।** इसलिए कुन्दकुन्ददेव का जो उद्देश्य था - मिश्र में अवस्थित द्रव्य में अमिश्र को बता देना। दुग्ध में घृत है - मिश्रण है। दुग्ध की बहती अवस्था में घृत को बता देना - ये ज्ञानी मिश्र में अमिश्र का बोध है। असमानजाति पर्यायें जो हैं वे कर्मसापेक्ष हैं। मनुष्यादी पर्यायें हैं वे कर्मसापेक्ष हैं। ये आत्मा का वास्तविक धर्म नहीं हैं। पर जैसे शीतलपानी मिट्टी के मिश्रण से विकार को प्राप्त हो जाता है। पानी शीतल ही है वही पिया जाता है। पेटाकाश का पानी ग्लासाकाश में आता है और ग्लासाकाश का पानी पेटाकाश में जाता है। फिल्टर करके आप सन्तुष्ट हो जाते हो। मित्र ! विश्व में कोई वस्तु है ही नहीं, होगी भी नहीं, जो छः द्रव्य के बाहर हो। जो भोजन तेरी थाली में सजकर आया है उसका भोग तू कितनी बार कर चुका है? जो थाली में सजा था द्रव्य पेट में गया, पेट का द्रव्य खेत में गया, खेत में खाद बनके वे ही परमाणु धान्य बनके उत्पन्न हुए। वे ही थाली में सजकर फिर से आ गये। नया तूने क्या खाया?

ऊर्जा का विनाश नहीं होता है, द्रव्य का विनाश नहीं होता है, द्रव्य का परिणमन होता है। द्रव्य उतने ही हैं, नये आयेंगे कहाँ से? जिस शरीर का उपभोग विशुद्धसागर कर रहे हैं वर्तमान में उस शरीर का कई जीव उपभोग कर चुके हैं। जिस शरीर का भोग, परमाणुओं का भोग मैं कर रहा हूँ उन परमाणुओं का भोग जीव अनंतबार कर चुके हैं। इसलिए ये न समझें मेरे शरीर से सुन्दर किसी अन्य का शरीर नहीं है। जो शरीर है वह राख होगा कि नहीं? होगा। राख होकर के उसमें घास उगेगी की नहीं ? उगेगी। वही राख खाद बनेगी फिर उस राख को दूसरे भोग करेंगे कि नहीं? करेंगे। उस राख का पिण्ड ही कर्मनोकर्म वर्गणाएँ हैं। वे वर्गणाएँ तेईस प्रकार की हैं। उन तेईस प्रकार की वर्णनाओं में मात्र पाँच वर्गणाएँ ग्राही हैं शेष अग्राही हैं।

गोम्मटसारजीवकाण्ड ग्रन्थ में तेईस प्रकार की वर्गणाओं की व्याख्या है। किसी के शरीर से पसीने की दुर्गन्ध आ रही हो, तो नाक मत सिकोड़ना। उन वर्गणाओं को भी तुम भोग चुके हो। नाली में घूमते प्राणी को देखकर नाक मत सिकोड़ना। उस शरीर को मत देखिए, जो असमानजाति पर्याय में, उस तिर्यञ्च गति में दिखाई दे रहा है। वो जो घूम रहा है वह तिर्यञ्च नहीं है, तिर्यञ्च शरीर है। बैठा वही है जो सिद्धशिला में सिद्ध जैसा है। उसके शरीर में भी भगवान् हैं। **कहीं मुनि बनने के, त्यागी बनने के परिणाम आयें तो घर के द्वारे पर बैठने वाले श्वान में भी भगवान् दिखने लग जायें तो मुनि बनना।** यदि नहीं दिख पाये, तुम्हें भगवान् न दिखें तो तुम मुनि बन भी गए, पर तुम मुनि में भगवान् नहीं

देख पाओगे, साधु में भगवान् नहीं देख पाओगे। **जिसको श्वान में भगवान् दिख पाये वही इंसान साधु बनने लायक है।** मिश्र को क्यों देख रहे हो ? **साधु जीवन जीना है तो मिश्र में अमिश्र को देखो और यदि संसारी जीवन जीना है तो आप जैसा जीना चाहो वैसा जी सकते हो। नाना पर्यायों में आना है तो नाना परिणामों के लिए खुली छूट है। नाना पर्यायों से विमुक्त होना है तो एकत्व-विभक्त में लीन होना पड़ेगा।**

कुछ देर पहले कैसा हल्ला चल रहा था, वे ही पुरुष हैं, वे ही मुख हैं जो हल्ला कर रहे थे, अब शान्त हो गये। ज्ञानी! अ, इ, उ, ऋ, लृ ,इतने अक्षर प्रमाणकाल में निर्वाण हो जाता है। संस्कार तो डाल लो। एक-एक क्षण को व्यर्थ में मत जाने दो। समझो, मैं क्या कह रहा हूँ। एक मौसम बनता है मौसम, माँ! कुकर में मौसम बनता है तो भात बन जाता है, खीर बन जाती है। जिस समय मौसम बना था सीटी बजने का समय था उसी समय कुकर फट जाये अथवा आप उस ढक्कन को खोल दो। दूसरे कुकर में बनाओगे वो भोजन स्वदिष्ट नहीं बनेगा, क्योंकि उसमें एक बार बाहर की हवा लग चुकी है। जो औषधी वेष्ठित (पेक) हो चुकी है उसे खोलकर मुख में रखो और आपने पाँच मिनट बाहर खोलकर रखी है वो असर नहीं करेगी। इसी प्रकार से जब योगी अपने ध्यान में लीन होता है और निज के योगों को सँभालकरके ध्यान की अग्नि से वाष्प बनता है उस समय विभाव द्रव्यव्यंजनपर्याय, विभाव गुणव्यञ्जनपर्याय - इन दोनों पर ऐसे आँच देता है कि जैसे काले कोयले को सफेद करने की क्षमता किसी में है तो अग्नि में है, ये पौद्गलिक अग्नि में है।

मुमुक्षु! काले कर्मों को निर्जीण करके और विभावभूत ज्ञान को स्वभावभूत करने की क्षमता किसी में है तो मेरी ध्यान-अग्नि में है। क्षायोपशमिकज्ञान, क्षायिकज्ञान - ये आत्मा के धर्म नहीं हैं। क्षायिकभाव आत्मा का धर्म है। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवलज्ञान - ये ज्ञानगुण की पर्यायें हैं जो उत्पन्न होती हैं, नष्ट होती हैं; त्रैकालिक है वह है - ज्ञान सामान्य। जो ज्ञान सामान्य है उसका कोई क्रम नहीं है, इसलिए अक्रमभावी, अक्रमवर्ती , सहभावी। ये आत्मा चाहे नरकपर्याय में हो, चाहे स्वर्ग में हो, चाहे पशुगति में हो, चाहे मनुष्यगति में हो, ज्ञान कहाँ तक रहेगा? हर अवस्था में ज्ञान रहेगा, हर अवस्था में दर्शन रहेगा।

गुण, द्रव्य में हर समय त्रैकालिक रहते हैं, परन्तु पर्यायें संतान अपेक्षा से त्रैकालिक हैं। पर्यायें परिणमन की अपेक्षा त्रैकालिक नहीं हैं। एकसमयवर्ती पर्याय भिन्न समय में नहीं बचती है। जब आप यहाँ आये थे आप वे नहीं बचे। पर हम सुगत जैसा क्षणिक भी नहीं मानते। हाँ, सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय की दृष्टि से वे नहीं बचे। भाई! जब तुम दुर्ग से चले थे वो समय गया। उन्नीस सौ सत्तानबे में दुर्ग आया था, जब आप जैसा ही था। दुर्गवाले मालूम क्या बोलते थे, इतनी दूर बुन्देलखण्ड से लेकर आये छोटे से महाराज को, ये क्या करेंगे? अरे! माताएँ बतियाँ रही थीं आपस में। अरे! ये बालक-से महाराज को लेने के लिए इतनी मेहनत की है। जो रास्ते में विहार करा रहे थे उनसे लोग पूछते थे। कैसे महाराज हैं, कितने बड़े हैं, कैसा

क्या है? बोले - कुछ नहीं, चौबीस साल की उम्र है उनकी। असमानजातिपर्याय को देखेंगे तो उनको चौबीस साल दिखेगी और समानजाति पर्याय को देखते हो तो मैं सनातन हूँ, मैं त्रैकालिक हूँ। तुम्हारे आदिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर हुए हैं पर में हुआ ही नहीं हूँ। मैं नहीं हुआ, मैं अहेतुक हूँ, अकार्य हूँ, अजन्मा हूँ; ये पर्यायें हुई हैं, परन्तु मेरी आत्मा आज तक हुई ही नहीं है।

मैं त्रैकालिक हूँ। इसलिए कल मैंने कहा था - परमात्मा का आश्रय लेनेवाला परमात्मा नहीं बनता। जो मैं हूँ, जो हुआ नहीं हूँ उसी का आश्रय लेगा वही परमात्मा बनता है। वही अपनी परमात्म पर्याय को प्रगट कर लेता है। वह परम सत्य है। अद्वैतसत्ता पर दृष्टि जाना चाहिए है। ये शुद्ध वेदान्त चल रहा है, ये वेद की व्याख्या नहीं चल रही। वेद में कथाएँ हैं, क्रियाकाण्ड है पर वेदान्त में शुद्ध आत्मा की बात है। यही वेदान्त है। समयसार को वेदान्त क्यों कहा मैंने? अन्त यानी धर्म, विद् धातु यानी ज्ञान। अर्थ - जो अपने अनन्त धर्मों का वेदन करे उसका नाम वेदान्त। इसलिए ज्ञान अक्रम, गुण अक्रम, अक्रम का अक्रम होने पर भी उत्पाद-व्यय चल रहा है और पर्याय क्रमवर्ती उनका उत्पाद-व्यय क्रम से चल रहा है।

बालक! शरीर बूढ़ा होगा कि नहीं ? होगा। मैं बूढ़ा कब होऊँगा? देह-आश्रित अवस्था को देखेगा तो मैं भी बूढ़ा दिखूँगा। पर जिसने देह को भिन्न देख लिया है, वह आत्मद्रव्य को ही देख रहा है। साँचा साँचा तो होता है पर साँचा साँचा नहीं होता है। गुझिया का साँचा, साँचा गुझिया नहीं है। जो गुझिया साँचे में बनाई जाती है मसाला भरकर मावादि डालकर, परन्तु साँचे में तो गुझिया आकार लेगी, परन्तु स्वाद किसमें आयेगा, स्वाद गुझिया में आयेगा साँचे में नहीं, साँचा तो साँचा है। साँचे की दृष्टि से साँचा है, पर आत्मद्रव्य की अपेक्षा से शरीर साँचा है। पर वह साँचा नहीं है, सत्य नहीं है। वे अज्ञानी हैं जो साँचे को चबा रहे हैं, दाँत तोड़ेंगे; साँचे को नहीं खाया जाता, साँचे में गुझिया को निर्मित किया जाता है। ऐसे ही मुमुक्षु! इस तन को मत देखो। तन तो साँचा मात्र है। इस तन में भगवानात्मा है वो निर्मित हो रही है। उसमें प्रगट होगा परमात्मा। जीवन में ध्यान रखना, किसी बच्चे के गाल पर चाँटा नहीं मारना, ये सब भविष्य के भगवान् हैं।

महाराज चातुर्मास कर लो, कितनी प्रार्थना चल रही है? और बच्चे के गाल पर चाँटा मारते हो। वही महाराज बनके आ गया तब क्या करोगे? जिनकी आँखें खोटी हैं वे मात्र असमानजातिपर्याय को देखती हैं, जिनकी आँखें साँची हैं वे भीतर के भगवानात्मा को देखती हैं। समझ में आया। इसलिए जो गुण है वह अक्रमभावी, सहभावी। पर्याय क्रमभावी है, पर उत्पाद-व्यय दोनों पर चलता है। सहभावी में भी चलता है और क्रमभावी में भी चलता है। गुझिया के भीतर का परिणमन स्वतंत्र है और आत्मा का परिणमन स्वतंत्र है। एक आत्मा में अनंत उत्पाद-व्यय होते हैं।

भैया! एक आत्मा में अनंत उत्पाद-व्यय हैं, कैसे ? जितने गुण हैं, प्रत्येक गुण का स्वतंत्र परिणमन है। एक गुण का परिणमन दूसरे गुण में नहीं होता है। ज्ञान ज्ञान ही है, दर्शन दर्शन ही है, सुख सुख है, वीर्य

वीर्य है, उन सम्पूर्ण गुणों का परिणमन स्वतंत्र होता है। आपके शरीर में कितने अवयव ऐसे हैं, गोरे आदमी के शरीर में काले अंग हैं, काले पुरुष के शरीर में भी गोरे अंग हैं। एक ही शरीर में अनेक रंग हैं। प्रत्येक अंग का परिणमन स्वतंत्र है, अखण्डरूप से शरीर में परिणमन है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यशक्ति और परिणामशक्ति ध्रुव जो है वो अविरुद्ध है। उत्पाद व्यय विरुद्धधर्म हैं, इसलिए असदृश्य हैं। व्यय यानी नाश है, उत्पाद यानी उत्पत्ति है, ध्रौव्य सदृश्य है। **दोनों अवस्थाओं में ध्रौव्य है यही परिणाम है और परिणाम नहीं होगा तो द्रव्य की द्रव्यता का बोध नहीं होगा। द्रव्य को त्रैकालिक रखनेवाला है वह परिणाम गुण है।** ये ध्रुव अध्यात्म को जिसने समझ लिया है। उसको कभी क्लेश नाम की वस्तु नहीं आ सकती है कोई प्रशंसा कर रहा है, यश:कीर्ति नामकर्म पर छोड़ दो। कोई निन्दा कर रहा है, अयश:कीर्ति नामकर्म पर छोड़ दो; दोनों कर्म-प्रकृतियाँ हैं। मैं दोनों ही नहीं हूँ, इसलिए हर्ष किस बात का, विषाद किस बात का? मैं तो अपने भीतर की अखण्ड अवस्था को देख रहा हूँ। **अपयश किसका? अयश:कीर्ति प्रकृति का। यश किसका? यश:कीर्ति प्रकृति का।** तुम दोनों को तटस्थ होकर देखो, क्लेश किस बात का?

बेटा! यदि तू मेरी निन्दा करता है तो मुख तेरा, भाव तेरे, मैं मेरे में खोजता हूँ। मैं जो हूँ सो हूँ। यदि तुम मेरी प्रशंसा करते हो, हाँ कर लो प्रशंसा। तुम्हारी भक्ति उमड़ी है कर लो प्रशंसा, पर में प्रशंसनीय नहीं हूँ, मैं निन्दनीय नहीं हूँ, मैं तो जो हूँ सो हूँ। इस बात को समझने के लिए, इस बात को अवधारणा में लाने के लिए ज्ञानी! उपवास की जरूरत नहीं है। कषाय का उपवास करने की जरूरत है।

भोजन से उपवास कर लेना बहुत सरल है, पर कषाय का उपवास कर लेना बहुत कठिन है। भोजन का उपवास भी तभी कर पाओगे जब कषाय मंद होगी। जिसकी आहार संज्ञा तीव्र है वह भोजन का उपवास क्या कर पायेगा? सुबह खा लिया, शाम को नहीं मिला तो ऐसे भटकता है जैसे चींटियाँ भटकती हैं इधर-उधर। चौबीस घण्टे चींटी को क्या काम है और पेट कितना-सा बिचारी का। जरा-से पेट के पीछे कितना घूमती रहती है। दिन-भर खाने वालों की भावी पर्याय चींटी है। वह किसी चीज को नहीं छोड़ती। सर्वभक्षी प्राणी, मिश्री छोड़ दो उसमें लग जाये, मल हो उसमें लग जाये, जीवों का पिण्ड हो उसमें लग जाये। कैसा कर्म का बंध किया उस जीव ने जो दिन को भी न देखे, रात को भी न देखे, भक्ष्य को भी न देखे, अभक्ष्य को भी न देखे। ऐसे क्रूर भोगी जीव, तीव्र खानेवाले रागी जीव की भविष्य की पर्यायें चींटी हैं। बुरा लगे तो मत खाओ। जो लाल चींटी होती है, वो चिपक जाये तो वो मरना पसंद करती है पर छोड़ती नहीं है। ऐसे ही जो तीव्ररागी जीव होते हैं वैसे ही उनसे भोजन नहीं छूट सकता, वही बनेंगे चींटी। बुरा तो नहीं लग रहा आपको पर जो है सो है, क्या कर सकते हैं।

भैया! जिसने बन्ध नियत कर लिया हो उसे कौन रोक सकता है? विशुद्धसागर क्या हैं, महावीरस्वामी नहीं रोक सके और महावीर स्वामी क्या हैं वे स्वयं को नहीं रोक पाये मारीच की पर्याय में, स्वयं को नहीं

सँभाल पाये तो मुझे क्या सँभालेंगे। जब भी जीव समझेगा वह स्वयं के उपादान से ही समझेगा। निमित्त तभी कार्यकारी होगा जब उपादान प्रबल होगा। मेरे लिए नहीं आये आप, आपके मन में था इसलिए आये हो। भाई ! मेरे से मत कहना कि - मैंने इतना श्रम किया। देखो, भाई ! मेरे लिए नहीं किया, तुम्हारे मन में था इसलिए किया। हाँ, अपन तो 'कण-कण स्वतंत्र' में जीने वाले हैं। मैं तो ये भी नहीं मानता हूँ कि मेरे आहार हुए किसी श्रावक के घर। वह कहता है कि- मैंने बहुत अच्छे से महाराज के आहार कराये। ज्ञानी! तू क्या करायेगा मेरे आहार, क्या तेरे में ताकत है आहार कराने की? मेरा पुण्य का उदय न होता तो तुम बनाकर रखते कैसे? मेरा पुण्य का उदय नहीं है तो तुम हाथ पर रख दोगे तब भी बाल आ जायेगा। आप बनाने के कर्ता हो, हाथ पर ग्रास रख सकते हो, पर मुझे आनंद देने के कर्त्ता नहीं हो। मेरा भोगान्तराय का क्षयोपशम नहीं है तो हाथ में रखी सामग्री छोड़ना पड़ जाती है। महाराज! मैं तो कमा के लाया, अरे! तुम कमा के लाये, मैं कमा चुका हूँ। जिसका जो दाना जहाँ नियत है वहाँ भोग करना पड़ेगा।

बात समझो पर्यायदृष्टि, गुणदृष्टि, द्रव्यदृष्टि। स्वप्रतिष्ठित निश्चय की दृष्टि से प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र है। चरणानुयोग की दृष्टि से, आचारांग की दृष्टि से विश्व में जितने शिष्य ऊर्ध्वगमन कर रहे हैं मैं बहुत गारण्टी से कह सकता हूँ मात्र उनके साथ गुरुभक्ति निहित है। आचार्य विद्यासागर जी आज भारत की भूमि पर ही नहीं विश्व की भूमि पर यदि देखे जा रहे हैं, तो उनकी अपने गुरु के प्रति भक्ति देख लो। उन्होंने अपने गुरु आचार्य ज्ञानसागरजी की समाधि के समय अद्भुत सेवा की थी। आचार्य विमलसागरजी के शिष्य आचार्य भरतसागर हुए इस भारत की भूमि पर वे पहले मुनि हैं जिसने दीक्षा के बाद सल्लेखना भी हो गई पर गुरु का साथ नहीं छोड़ा।

बेटा! ध्यान से सुनना, जब चरणानुयोग की पद्धति से बात करेंगे तब गौतम को गौतम दुनिया कहती रहेगी, पर स्वामी शब्द उनके तभी लगा जब उन्होंने महावीर स्वामी को गुरु बनाया। भैया! कभी-कभी मैं लिखता था तो उदास हो जाता था कि अनंत चौबीसी निकल गईं, अनंत ग्रन्थ लिख चुके, वे नहीं बचे तो विशुद्धसागर तुम्हारा ग्रन्थ क्या शाश्वत बचेगा? फिर कभी मन करता था कि जब एक मुनिराज अपने गुरु को छोड़कर एकल विहार करने लग गये। उनको किसी श्रावक ने पुरुषार्थ देशना नाम का ग्रन्थ दे दिया, उन्होंने वो ग्रन्थ पढ़ा और पढ़ने के बाद नमोऽस्तु भेजा, समाचार भेजे, महाराज! आपका ग्रन्थ पढ़ने के बाद मैं अपने गुरु के पास जा रहा हूँ, क्यों ? बोले - मैं समझता था कि मैं सब कुछ कर लूँगा। जब 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय' में 'गुरुवो भवन्ति शरणम्' की व्याख्या पड़ी तो लगा मैंने क्या कर डाला। स्वयं गुरु तो बन जाओगे पर गुरुभक्ति की अनुभूति का वेदन नहीं कर पाओगे। इसलिए जीवन में कितनी ही उँची उड़ान भर लेना, पतंग! तुम कितनी उड़ना पर मञ्जा का ध्यान रखना, मञ्जा उलझ गया और जिसके हाथ में मञ्जा आया उसने छोड़ दिया कहीं तो तुम किसी भी झाड़ी में उलझ जाओगे। आप लोगों की जो भक्ति है वह किसी से कम नहीं है। इसलिए अपने जीवन में उस धारा में लीन हो जाना, कहाँ? क्रम-उपक्रम परिणामशक्ति।

बीसवीं शक्ति **अमूर्तत्वशक्ति** है। अमूर्तत्वशक्ति ही तो सर्वस्व है जो स्वभाव है मेरा अमूर्तत्वशक्ति को प्राप्त करना है, गीला सूखा फिर गीला, समझना पड़ेगा। जमीन को देखो, वह गीली हो रही है बरसात के कारण। कुआ पानी के लिए खोदना है, पर उसकी पूजा पानी से ही करना है। जैसे सूर्य की आरती दीपक से उतारते हो, ये लोकनीति है। समुद्र की पूजा भी पानी से करते हो। ऐसे ही जब कुआ खोदते हैं तो पानी समर्पित करते हैं। जमीन गीली होने पर उसका खनन करोगे तो विश्वास रखना, पहले भीतर सूखा निकलेगा, जितना खोदते चले जाओगे फिर गीला ही गीला। जैसे अभी जो हो रहा था, वह गीला था उसके बाद फिर होता सूखा फिर गीला ही गीला।

यानी की आत्मा की जो धारा है, गुणों की प्रगटता वह पहले भक्ति से ही प्रारंभ होती है तो वह गीली होती है। अब वह साधक अद्वैत में प्रवेश कर जाता है तो फिर भगवान् भक्त कुछ भेद नहीं होता है। मात्र 'अहमिक्को' एक आत्म-ब्रह्म सूखा-ही-सूखा है, महा सूखा, और भीतर चले जाते हैं और भीतर चले जाते हैं तो वो सूखापन समाप्त हो गया। जो प्रथम गीलापन था चन्द्रप्रभ स्वामी दिख रहे थे। भगवान् ये गीलापन था निज में गये तो भगवान् सूख गये तो सूखापन हो गया और जब भीतर प्रवेश कर गये जो चन्द्रप्रभ थे वो मैं ही हो गया। अब गीला ही गीला है। बाहर कोई सूखापन नहीं है, बाहर का कोई गीलापन नहीं है, भीतर का ही गीला है।

आम खानेवाले बड़े मुस्कराते हैं। फलों का राजा आम। बच्चे-बूढ़े सभी आम चूसते हैं, पर अज्ञानी आम को चूस कर फेंक देते हैं। आम को चूस के फेंका फिर हुए फोड़े। जितना खाओगे आम उतने ही होंगे फोड़े। पर आपको बोध होना चाहिये था कि आम के खाने पर जो फोड़े होते हैं उसे ठीक करने की दवाई आम में ही होती है। तुम तोड़ो गुठली, गुठली में गोई है उसे खाओ, उसे ही लगाओ तो फोड़े ठीक हो जायेंगे। ऐसे ही पहले तुमने कपड़े उतारे तो तुम बन गये महाराज। यश का, कीर्ति का आम का दल मिल गया उसमें ही लिप्त हो गये तो फिर होंगे कर्म के फोड़े, निगोद जाना पड़ेगा। अब कपड़े उतारने के बाद फिर मोह राग की गुठली फोड़ो, अन्दर से फिर मिलेगी शुद्धात्मा की मिगी, अब आनंद-ही-आनंद है। अब कोई फोड़ा होनेवाला नहीं है, ये है वस्तुस्वरुप।

ज्ञानी! शुद्धात्म द्रव्य निज परिणामशक्ति से युक्त है। प्रत्येक द्रव्य अपने सहज स्वभाव में परिणमनशील है। जीव रागादिक अवस्था को प्राप्त हुआ परकर्तृत्व में अपनी दृष्टि को ले जाता है, फिर भी पर का हर्ता बन नहीं पाता है, पर कर्ता बन करके कर्तृत्व के भार से युक्त अवश्य हो जाता है, मिथ्यात्व से युक्त। द्रव्य की द्रवणशीलता, द्रव्य की परिणमनशीलता जब सहज त्रैकालिक चल रही है उस अवस्था से अनभिज्ञ हुआ जीव धर्मध्यान, शुक्लध्यान इन धाराओं से निज को भिन्न करता हुआ, आर्त्तध्यान रौद्रध्यान इन दोनों धाराओं से निज को जोड़ता हुआ, मोक्षमार्ग को उपचार से स्वीकार करता हुआ संसार-मार्ग में डूब रहा है। किञ्चित्मात्र भी पर के परिणामाने का भाव तेरे भीतर निहित है, मोह की तीव्रता

में, राग की तीव्रता में उस समय जीव मस्तिष्क में भूतार्थज्ञान का विवेक नहीं रख पाता है।

क्रोधादि कषाय के आवेश में जो निर्णय जीव ले बैठता है। इसके बाद स्वयं की कषाय जब शांत हो जाती है वह क्रोध के आवेश में लिया गया निर्णय उसको स्वयं असत्य दिखाई देने लगता है। किसी भी कषाय के आवेग में जब जीव निर्णय ले चुका होता है, स्वयं की कषाय शान्त हो जाती है तब अपना निर्णय अभूतपूर्व दिखता है। ऐसे ही राग की तीव्रता में जो कर्तृत्वपने का निर्णय लिए बैठा है, जब उसका राग शान्त हो जाता है तब समझ में आता है, नहीं मैं जगत् का कर्ता नहीं हूँ। **निज की पर्याय के राग में जितने परिणाम खराब नहीं किये उतने पर की पर्याय में परिणाम खराब किये हैं। स्वबंध पर जितना नहीं बंध रहा है परबंध पर उससे कई गुना बंध रहा है। स्वबंधोदय में फिर भी शांति बरत लेता है, पर परबंधोदय में कितना बिलख रहा है?**

दुःखियों के बीच में निवास करोगे तो दुःख ही लेकर जा पाओगे। वह पुण्यात्मा भी अशुभ उदय को प्राप्त है जो स्वयं में स्वस्थ, निरोग, धनपति होने पर भी उनका पूरा परिवार दुःखी, रोगी, शोकी दिखाई दे रहा है। वे भी दुःखिया ही हैं। उन लोगों के बीच में रहते हुए तुम अपनी निरोगता का आनंद नहीं लूट पा रहे हो। उन लोगों के बीच में रहके भी तुम अपनी स्वस्थता का आनंद नहीं लूट पा रहे हो। तुम उनके बीच रहकर के अपने धन का, अमीरी का आनंद नहीं लूट पा रहे हो।

मुमुक्षु! समझना योगियों के बीच क्यों रहना चाहिये? योगियों को योगियों के बीच क्यों रहना चाहिये? जो योग से भरे हैं वे योग ही दिखायेंगे। जो तत्त्व से भरे हैं वे तत्त्व ही बरसायेंगे। रागियों के बीच में रहोगे तो तुम योगी का आनंद नहीं लूट पाओगे, आपको राग का आनंद ही आयेगा। इसलिए साधकों को साधकों के बीच ही समय निकालना चाहिये। अनुभव करो, सुखियों के बीच रहोगे तो तुम दुःखी नहीं रह पाओगे। तात्पर्य, यदि सभी आप जैसे पुण्यात्मा जीव हैं, किसी से कुछ माँगते नहीं हैं उनके बीच में तुम रहोगे तो जो मागँनेवाला तुम्हारे द्वारे पर आता है उस समय जो कष्ट आता है तुम्हारे मन में, विश्वास मानिये, दया भी आ रही है वो भी कष्ट है। नहीं देना चाह रहे वो भी कष्ट है।

तुम शांति से बैठे हुए थे, स्वाध्याय कर रहे थे। एक भिखारी द्वारे पर आ गया। भाई! तेरा भला हो, मैं बहुत दिन से भूखा हूँ तो तेरे अन्दर एक दया उमड़ी। जैसे ही दया उमड़ी, ग्रन्थ बन्द हो गया, उसको देने के भाव आ रहे हैं तो जो एक लहर आ रही थी आनंद की उसमें विघ्न आया है। और गहरे में जाओ, जो नहीं समझेंगे वे कहेंगे, महाराज बोल क्या रहे हैं? वो भिखारी तुम्हारे द्वारे पर आया और दो रोटियाँ तुम्हारे घर बनीं थीं, अब तुम्हारा मन कहता है कि मैं भी भूखा हूँ यह भी भूखा है पर द्वारे पर खड़ा हुआ है कुछ देना तो पड़ेगा ही। ऐसे जो मन में भाव आ रहे हैं यह संक्लेशता है, आनंद नहीं है, दुःख है।

जो समयसार का आनंद है वो कुछ हटके ही है जिसमें न देना पड़ता है, न लेना पड़ता है, निज में मगन होना पड़ता है। उसका नाम समयसार का सुख है। इसलिये दिगम्बर मुनि अपने पास

कुछ नहीं रखते, जिससे देना न पड़े, क्या गजब है? बेटा! तुम कहाँ माँगोगे और मैं कपड़े से रहित हूँ तो जो भिखारी भी आयेगा वह क्या माँगेगा? बहुत बड़े कष्ट से बच गया नहीं तो मेरे यहाँ भिखारियों की भीड़ लगी रहती। अब उनके दुःखी चेहरों को देखकरके दुःखी होना पड़ता। अरे! माँगनेवाले तो यह भी नहीं छोड़ते, बोलते - महाराज ! एक पंखा देदो। हाँ समझो, ये निर्वस्त्र क्यों रहते हैं? भिखारी भी समझदार है जिसके जेब ही नहीं है वह मुझे क्या देगा? इसलिये जैन मुनियों को आगम का आदेश है ऐसा कोई उपकरण न रखें जिसकी चोरी हो जाये। ऐसा कोई उपकरण न रखें जिसको किसी के माँगने के भाव हो जायें। सोने चाँदी की माला रखोगे तो किसी के चुराने के भाव हो सकते हैं और चुरा ले गया तो तुम उसकी चोरी करने के लिए निमित्त बने हो। तुम्हारी सामग्री चुरा ले गया फिर तुम्हारे परिणाम संक्लेशित होंगे।

हे मुनिराज! उपकरण रखना चाहिये वस्तु नहीं रखना चाहिए। जिससे आत्मा का उपकार हो, उसका नाम उपकरण है और जिससे संक्लेशता बढ़े, वह वस्तु है। बहुत सुन्दर पेन रख लिया, बहुत सुन्दर घड़ी रख ली, बहुत सारी सामग्री रख ली फिर कोई उठा ले जाये फिर देखो कैसे परिणाम संक्लेशित होते हैं। आत्म-घड़ी को देखो फिर घड़ी रखने की आवश्यकता क्या है? कठिन लग रहा है, नहीं, कठिन नहीं है कितना सहज है। लगता ऐसा है सब साम्प्रदायिक भेष हैं। ये साम्प्रदायिक भेष नहीं हैं, ये वैज्ञानिक रहस्य है। आप निर्वस्त्र होकर जीयोगे, क्योंकि वस्तुवाले से वस्त्रवाले के माँगने के परिणाम हो सकते हैं। माँगनेवाले दुःखी होते हैं वे दुःखिया द्वारे पर आयेंगे, दुःख ही देकर जायेंगे, सुख नहीं देकर जायेंगे।

वस्त्र स्वीकारोगे तो तुमको भी माँगना पड़ेगे और माँगना बहुत खोटा काम है। माँगते ही सम्मान का विनाश हो जाता है। श्रेष्ठ पुरुष होगा वो भी माँगेगा तो सम्मान समाप्त हो जायेगा। जीवन में कभी माँगना मत सीखना और जिस व्यक्ति ने एक बार माँगने की आदत डाल ली वह निर्लज्ज हो जाता है। उसकी लज्जा पलायन कर जाती है फिर वह हर जगह माँगता है। अभ्यास यही करना बेटा! कि पिता से भी माँगने का भाव मत बनाना। माँ से नहीं माँगेगा तो वो भी भोजन अच्छे से परोसेगी। कहीं तूने कहा - चटनी नहीं है, तो लाकर देगी, कह देगी ये रखी है खा लो। अब उसकी भाषा बदल गई और शांति से भोजन कर रहा है तो माँ सोचेगी मेरा बेटा माँगेगा नहीं इसलिए उसका विशेष ध्यान रखेगी, विशेष लाड़ दुलार देगी और माँगनेवाले के प्रति कोई दुलार नहीं होता। जीवन में कभी माँगना मत।

श्रमणो ! माँगने का त्याग हो जायेगा तो बहुत सारे प्रपंचों से तुम सुरक्षित हो जाओगे। इसलिए मुनियों के बाईस परीषह में एक याचनाजय परीषह है। याचना धर्म नहीं है, अयाचना तुम्हारा परीषहजय है इसलिए मुनियों की अयाचकवृत्ति होती है, नहीं माँगते हो यह व्रत है तुम्हारा। मैं किसी से कुछ माँगूगा नहीं, बहुत सारे द्वन्दों से सुरक्षा है तुम्हारी। जो माँगता है वह पहले अपने व्रतों को तोड़ता है, व्रतों को तोड़के संयम को तोड़ता है। किसी को बँटवाकर संग्रह करवाना भी तुम्हारी याचकवृत्ति में दोष है। **किसी**

के सम्मान के लिये किसी के लिए बोलना यह तुम्हारी याचकवृत्ति में दोष है। इसका श्रीफल शाल से सम्मान कर दो, यह कहना भी दोष है। कोई कहे कि - महाराज! इतना चलकर आया है, चलकर आया वो तुम्हारी शाल-दुशाला के लिए नहीं आया है। वह तो उसके घर में बहुत पड़ी हैं। वह मात्र आपको नमोऽस्तु करके अपनी अशुद्ध मन की चादर को शुद्ध करने आया था। तुम उसे हाथ से आशीर्वाद दे दो, हो गया उसका सम्मान। समझो इस सार को, कहाँ तुम माँगने की बात में लग रहे हो। **परिणामशक्ति क्या बोल रही थी, निर्द्वन्द्व, निर्ग्रन्थ। जहाँ निर्द्वन्द्वपना है वहीं निर्ग्रन्थपना है, जहाँ निर्ग्रन्थपना है वहीं निर्द्वन्द्वपना है। जहाँ दो हैं वहाँ द्वन्द्व है, एकत्व-विभक्त में कोई द्वन्द्व नहीं है।** एक हजार रुपये का सिक्का भी तू जेब में डाल लेगा, दौड़ पड़ेगा, कोई आवाज नहीं आयेगी। बेटा! पर एक-एक रुपये के दो सिक्के डाल लेना, आवाज आयेगी, खनकेगी। जहाँ दो होते हैं वहाँ खनकते हैं। जहाँ एक होता है वहाँ कोई खनकन नहीं होती।

मित्रो! जब-तक तुम एक हो तब-तक जी लो। ये सौभाग्य है तुम्हारा। जिस दिन दो हो जाओगे उस दिन पिताजी से पूछना, क्या होता है। **द्वन्द्व आत्मा का धर्म नहीं है। एकत्व-विभक्त चिद्रूप परमज्ञायकभाव ही आत्मा का स्वभाव है।** विडम्बना करने की जिसकी परिणति हो वे द्वन्द्व को प्राप्त हो, निज की आत्मा की विडम्बना करना हो वे द्वैत को प्राप्त हो जायें और जिनको आत्मा को उद्धार करना हो वे द्वन्द्व से हट करके एकत्व को प्राप्त हो जायें। भैय्या! देखो, उस जीव का अभी नाम ले लूँ तो अभी आँख से आँसू टपका देगा इतना भावुक जीव है। द्वन्द्व (युगल) न होता तो जगत् में द्वन्द्व (कलह) न होता। घोड़ी पर क्या चढ़े कि घोड़ा अधमरा हो गया। बुरा तो नहीं लगा, बेटा! बहुत अच्छा निर्णय किया आपने। जितने घोड़ी पर चढ़ते हैं सबकी घोड़ी के पैर टूटते हैं, समझ गये। क्या समझ गये? जिनके पैर टूट गये अब क्या उनसे मिलो, जिनके नहीं टूटे वे सँभल के रहो।

जितना क्लेशमुक्त होगा, संक्लेशमुक्त होगा वही ज्ञानी सम्यक् तत्त्व का निर्णय कर सकेगा। संक्लेशता में तत्त्व का निर्णय सम्यक् नहीं होता। हे श्रमणो! आपको निर्वस्त्र निस्परिग्रही, निःकांक्षित अवस्था में रखा गया है जिससे कि आप उसका निर्णय करो जो जगत् का निर्णय करा रहा था। हे योगी! जो जगत् का ज्ञान करा रहा था, वो कौन था? उस ज्ञानी को पकड़ो, वही आत्मा है। आत्मा कौन है? शुद्धात्मा कौनसी वस्तु है? जो सारे द्रव्यों को जानने का पुरुषार्थ कर रही है, जो सारे जगत् को जना रही है, जो सारे जगत् को पहचान रही है, ज्ञानी! उसे ही पहचान लो, वही है आत्मा। समझ रहे हो बालको! जिससे हम सबको जान रहे हैं, जो सबको जान रहा है उसे ही जानलो। **सबको जानने के लिए आँख खोलना पड़ती है और जाननहारे को जानने के लिए आँख बन्द करना पड़ती है। जाननहारे को जानना है तो आँख नहीं खोलना।** जिननाथ को देखना है वे चन्द्रनाथ विराजते हैं यहाँ जिनालय में, चन्द्रप्रभस्वामी यहाँ में विराजते हैं - इन चन्द्रप्रभ स्वामी को देखोगे तो मित्र! आँख खोलना पड़ेगी।

जिननाथ को देखने के लिए निज की आँख खोलना पड़ती हैं। निजनाथ को देखने के लिए आँख बन्द करना पड़ेगी। निजनाथ को निहारें। जिननाथ को देखने के लिए बहुत विकल्प करना पड़ते हैं। निजनाथ को देखने के लिए निर्विकल्प होना पड़ता है। जिननाथ के अवलोकन के लिए मन्दिर बनवाना पड़ता है। जिननाथ के अवलोकन के लिए प्रतिमा रखनी पड़ती है। निजनाथ को देखने के लिए मन्दिर से बाहर बैठना पड़ता है। वो निजनाथ कैसा है? निज में सदृश्य-विसदृश्य परिणमन कर रहा है। विरुद्ध उत्पाद-व्यय से युक्त होने पर भी अविरुद्ध ध्रौव्य में लीन है, वही निजनाथ है। द्रव्यानुयोग की भाषा है।

जो जगत् के ज्ञेयों को गौण करके निज ज्ञेय में ही लवलीन है, उसको परज्ञेयों को जानने के विकल्प का अभाव हो चुका है। वही शुद्धात्मा है, जिसके ज्ञान में परज्ञेय झलकते मात्र हैं। परज्ञेयों को जानने के भाव का भी अभाव कर चुका है ऐसा ध्रुव अखण्ड चैतन्य पिण्ड जो है वो ही शुद्धात्मा है। चिद्-चिद् मात्र, चैतन्य स्वरूपोऽहं मात्र, चैतन्यस्वरूप हूँ।

अमूर्तत्वशक्ति कह रही है कि हमने उसका आनंद ही नहीं लिया, जो आनंदकंद है। जो पर का आनंद ले रहा था उसका आनंद ही नहीं लिया, जो पर का आनंद ले रहा था वह कौन था? आत्मा। उसमें आनंद है कि नहीं? पर का आनंद लेनेवाले का भी आनंद है, वो कौनसा है? आनंदकंद।

शकरकन्द देखा? वो कन्द है, खाना नहीं, बात समझो। उस शकरकन्द के अन्दर मिठास किसने भरी? जिसमें जो होता है उसमें वो ही होता है। एक ही खेत में बगल-बगल में मूली और शकरकन्द भी लगी है जमीन के भीतर। मूली चरपरी हो रही है और शकला मीठी होती है, मिट्टी वही है। मूली का स्वाद भिन्न है, शकला का स्वाद भिन्न है और गुहिंया तो कोई काम की नहीं है तब भी लोग छोड़ते नहीं हैं, वहीं अदरक है उसका स्वाद और भिन्न है, भूमि वही है।

एक ही तेरे मोहल्ले में बैठे हैं गोरे-गोरे लोग, देख लो कितना बड़ा सेठ बैठा है, ये जीव इसी मोहल्ले में रहता है। वहीं एक भिखारी रह रहा है। गोंदिया में दोष है कि गुण है? गोरे को देखेगा तो कहेगा गोंदिया में गोरे लोग रहते होंगे, वहीं किसी काले को देख लिया तो कहेंगे काले ही रहते हैं। अरे! गोंदिया में कुछ नहीं है। जैसा बीज बोते हैं वैसे वृक्ष होते हैं। वही शकला है, वही मूली है, वही अदरक है, वही सारे कंद उसी भूमि में लगे हुए हैं, लेकिन सभी कंदों के स्वाद अलग-अलग हैं, भिन्न-भिन्न हैं।

क्षेत्र को दोष मत देना, काल को दोष मत देना, परिणति को समझना। जिनका साता का उदय है वह श्मसान में भी मुस्कराते हैं, जिनका आसाता का उदय है वे महल में भी रोते हैं। सबके उदय एक से नहीं हैं। तू आनंदकंद है। सम्पूर्ण ओर से मिठास-ही-मिठास है। उसका नाम है शकरकंद जैसे शकरकंद ऊपर नीचे मध्य में सभी जगह मीठा लगता है, वैसे ही उसमें आनंद को मिठास को किसने भरा ? सहज है।

ज्ञानियो! शकला के छिलके को हटाओ, अन्दर कंद-कंद आनंदकंद है। ऐसे ही मुमुक्षु! ये वस्त्रों के छिलके हटाओ, वासना कषाय के छिलके को हटाओ, तेरे भीतर आनंदकंद भगवान् विराजमान है, उसमें आत्मा का घना आनंद है। आत्मा आनंदकंद स्वभावी है। क्या करें, समय ही नहीं देते आप लोग, शेष सुखों के लिए पर्याय की पर्याय न्योछावर कर दी। उस आनंदकंद निज के लिए पाँच मिनट भी नहीं दे पाते हो।

द्वैतभक्ति पर आलंबनभूत चलती है, अद्वैतभक्ति स्वावलम्बनभूत है, आनंदकंद है। अहो भाग्य मानिए आप इस पर्याय में कि - आपको जिनागम के गूढ़ शब्दों को, अर्थों को सुनने का अवसर मिल रहा है। जीवों की पूरी पर्याय निकल जाती है, पर इन शब्दों को सुनने तरस जाते हैं। बेटा! क्या तुमने सोचा था कि हमारे धर्म में ऐसी भाषा है। ये जैनदर्शन की अध्यात्म विद्या है। कौनसी विद्या चल रही है? इस विद्या की वो महिमा है कि खूँटों से रस्सी बाँध कर रखा जाये तब भी सिर हिला देगा। पर यहाँ न खूँटा, न रस्सी, न बाँधा जाता है तब भी भव्य जीव शांत बैठे रहते हैं, यही अध्यात्म विद्या है। जब बन्दर जैसा चित्त बालकों का, वे शान्त हो सकते हैं तो हे श्रमणो! तुम मुनि बनके शांत न हो सके तो अध्यात्म विद्या किस बात की।

मुमुक्षु! भीतर कुछ हो रहा है कि नहीं? जो भीतर परिणमन स्वभूत चल रहा है वही मोक्षमार्ग में सहकारी बनेगा। देखो, न चढ़ाने का विकल्प, न हटाने का विकल्प। वहाँ मन्दिर में शांतिधारा में कलश छूने को न मिले तो अशांतिधारा प्रारंभ। एक का मन करता है कि कलश मैं ही पकड़े रहूँ, दूसरा कहता है तुम कौन होते हो मुझे ही पकड़े रहने दो। कलश छोड़ने-पकड़ने के चक्कर में, जो अशांति थी वो चली गई, धारामात्र बची। इसलिए भैय्या! कोई सहज कहे तो कर लेना, छीना-झपटी मत करना। मैं शांतिधारा देखने आया हूँ। धारा मात्र देखने नहीं आया समझ रहे हो, धारा मात्र मत देखना, शांतिधारा देखना।

हे योगियो! धारा मात्र न बची रहे, भीतर हो तेरी शांतिधारा। समझो, मैं क्या कह रहा हूँ, भेष मात्र धारा न रहे, भाव में रहे शांतिधारा। बेटा! चमत्कार देखा क्या? सभा में माताएँ मौन। शांतिधारा में पता नहीं कितनी बार आपको हाथ जोड़कर कहना पड़ता है - माताओ ! तनक शान्त रहो, सुन लेने दो पर यहाँ महसूस ही नहीं हो रहा कि यहाँ माताएँ भी बैठी हैं, क्यों? यहाँ पुरुष नपुंसक स्त्री का वर्णन ही नहीं चल रहा है, यहाँ तो मात्र पुरुष का वर्णन है। ध्यान दीजिए, अमूर्तत्वशक्ति की व्याख्या चल रही है। यहाँ स्त्रीवेद की व्याख्या नहीं है, यहाँ पुरुषवेद की व्याख्या नहीं है, यहाँ नपुंसक वेद की व्यख्या नहीं है। यहाँ मात्र पुरुष की व्याख्या है, **'अस्ति पुरुषश्चिदात्मा'**।

ये त्यागियों के संयोग चलते-फिरते रहते हैं। ये नियोग हैं। जितना मिले उतना ले लो। बेटा! ये जिनदेव तो तुम्हारे पास हैं ही। जिनवाणी माँ है। मैं उस माँ की बात कर रहा हूँ जो अपने ऋजु आँचल से अपने लाल को दूध पिला रही है। वह बच्चा बाजार में गुम जाये, बेटा! उसको तुम चाहे गोलियाँ दो चाहे

खिलोने दो, कुछ भी दो तब भी रोता रहता है। माँ कुछ भी न दे, मात्र उठा के आँचल से लगा लेती है तो बेटा तुरन्त चुप हो जाता है।

जो माँ के आँचल में दुग्ध-धारा है उसमें जो आनंद है वह जगत् के दूसरे दूध में नहीं है। ये जिनवाणी माँ के आँचल का आनंद लूट रहे हो। तुम्हें जिसने जन्म दिया था उसने मात्र दो आँचल का पान कराया था, पर मैं जिस माँ की बात कर रहा हूँ उसके चार आँचल हैं। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग। ये जो माँ है जन्म देनेवाली वो दूध पिलाके सुलाती है। ये ममता की माँ है। पर ये जिनवाणी माँ है वह चार-चार आँचल से पिलाती है और कहती है – जाग जा बेटा! जाग जा; तू वीर है, वीर महावीर है। तो आज से क्या करोगे? बेटा! ये माँ तो निश्चित समय में दूध पिलाती है। मैंने देखा है स्वयं तुमने नहीं देखा, दूध पिलाने के बाद फिर जाओगे तो दूर रख देती है अब नहीं पिलाना। गाय भी अपने बछड़े को अलग कर देती है अब नहीं पिलाना, लेकिन माँ जिनवाणी ऐसी है वो कभी मना नहीं करती है। तुझे जब पीना है तब पीले, रात्रि को बारह बजे, जब पीना तब पीले, आँचल खोले है और कभी नहीं सुलाती है। ऐसी भगवती माँ जिनवाणी है। उस माँ को छोड़ दोगे क्या आप? नहीं छोड़ोगे न।

'अस्तिपुरुषश्चिदात्मा' जो सूत्र है वह 'पुरुषार्थसिद्धिउपाय' ग्रन्थ का है। 'पुरुषार्थसिद्धिउपाय' एक अलौकिक ग्रन्थ है। जब आनंद आ ही चुका है तो स्वेच्छा से अध्ययन आज ही शुरु कर देना, फिर देखो इसी गाँव से विद्वान् निकलेंगे, इसी नगर से साधु निकलेंगे। **'अस्तिपुरुषश्चिदात्मा' यहाँ न स्त्रीवेद, न पुरुष वेद, न नपुंसकवेद की व्याख्या है, यहाँ तो मात्र पुरुष की व्याख्या है, कौन पुरुष? अस्तिपुरुष चिदात्मा, जो चैतन्य आत्मा है वही पुरुष है।** वेदों को देखोगे तो पुरुष को विकार आयेंगे, पुरुष को देखोगे तो स्त्री को विकार आयेंगे, नपुंसक को दोनों को देखकर विकार आयेंगे और विकार आयेंगे तो विकार्य होंगे, परन्तु मात्र 'अस्तिपुरुष चिदात्मा' जो अस्ति पुरुष है उसमें कोई वेद ही नहीं है, तो क्या है?

कर्मबंधव्यपगमव्यंजितसहजस्पर्शादिशून्यात्मप्रदेशात्मिका अमूर्तत्वशक्तिः॥20॥

कर्मबन्ध से रहित जो सहज स्पर्श, रस, गंध, वर्ण इनसे रहित जो है वो अमूर्तत्व है, वही है मेरी आत्मा जिसमें स्पर्श रस गंध वर्ण कुछ भी नहीं है। **'अस्तिपुरुष चिदात्मा' जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से युक्त है, गुण-पर्याय से युक्त है उसका नाम चैतन्य आत्मा है।**

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं॥49/स.सा.॥

जिसे तुम देख रहे हो, वो जीव नहीं है, जिसे तुम जान रहे हो वो जीव नहीं है। जड़ को देख रहे हो, जड़ को जान रहे हो। ध्रौव्य है जीव वो तो किसी को दिखाई ही नहीं देता है। पुरुष का अनुभवन जिसने किया है वही शुद्धात्मा का ध्याता है। वर्तमान में तू शुद्ध आत्मा है कि नहीं? **अशुद्धता कर्मसापेक्ष है,**

अशुद्धता बन्धयुक्त है, शुद्धता कर्मनिरपेक्ष है। वर्तमान में दूध में घी है कि नहीं? जैसे वर्तमान में दूध में घी है, अदृश्यमान है, उठाके नहीं दिखा पा रहे हो फिर भी गोपिका को दिख रहा भीतर की दृष्टि में, नहीं दिखता होता तो दुग्ध में प्रक्रिया क्यों करती होती। ऐसे ही अशुद्धात्मा, जो कर्मबन्ध से युक्त आत्मा कह रहे हो वह अशुद्धात्मा जो है वही है निज में शुद्धता, तभी प्रयत्न करेगा वही पुरुष शुद्धात्मा को प्रगट करेगा।

जिसको निजशुद्धात्मा पर श्रद्धान नहीं है, जिसको निजशुद्धात्मा का ज्ञान नहीं है, निजशुद्धात्मा पर विश्वास नहीं है वह व्यक्ति निजशुद्धात्मा के लिए साधु बनेगा ही क्यों? और जिस श्रमण को निजशुद्धात्मा का विश्वास नहीं है उसका पिच्छी-कमण्डलु लेकर घूमना मात्र परिग्रह को धारण करके भटकना मात्र है। उसका मोक्षमार्ग किंचित् भी नहीं है। लक्ष्य क्या है? बन चुके भगवान् को बनाना लक्ष्य है कि निज के भगवान् को प्रगट करना लक्ष्य है? और जिस व्यक्ति को निज शुद्धता सुनते ही चिढ़ आती हो उसका मुनिपना नग्नपना है, नग्नत्व-शून्य है।

हे जीव! आप से पूछ रहा हूँ कि आप मुनि बने क्यों हो? क्यों माताओ ! आटा पीसने के लिए आटा पीसती रहती हो कि पेट भरने के लिए, रोटी बनाने के लिए आटा पीसती हो, बोलो ? और रोटी बनाने का लक्ष्य ही न हो, पीसो आटा। जैसे लक्ष्यविहीन माँ आटा पीस रही है तो उसको कोई उठा करके रोटियाँ बनाकर खा ले पर तू तो भूखा-का-भूखा ही रहेगा। ऐसे ही कोई जीव निर्ग्रन्थ मुनि बनके शुद्धात्मा के उपदेश तो दे लेता है, पर निजशुद्धात्मा पर कोई लक्ष्य नहीं है वह उस माँ के समान है जो आटा पीसनेवाली माँ है, आटा की रोटी खानेवाली माँ नहीं है। जगत् में, भारत में कितनी माँ हैं जो घर-घर का आटा पीसती हैं, पर उस आटे की रोटी खाने को नहीं मिलती हैं, वह दूसरे का ही होता है।

जो मुनि आगम का अभ्यास करके प्रवचन-कला को प्राप्त हो जाये और निज के लिए चर्या में कुछ भी नहीं उतार रहा है वह आटा पीसनेवाली माँ के समान है जो मात्र दूसरे को ही रोटी खिलायेगी और स्वयं भूखी रहेगी। इसलिए **निर्ग्रन्थ का लक्ष्य शुद्धात्मा होता है।** शुद्धात्मा शब्द को सुनकरके ये अमुक गढ़ी, ये अमुक गढ़ी कह करके ज्ञानी समयसार अपने हाथ से मत खो देना। ये ग्रन्थ सम्प्रदाय का नहीं है। ये ग्रन्थ निज आत्मा की उपलब्धि के लिए है। भूल क्या हुई है, आपने किसी को दे दिया, बोले - ये तो उनका है। ये उनका नहीं है। ये जिनदेव की वाणी है। निजदेव को प्रगट करने के लिए यह है।

अमूर्तत्वशक्ति कैसी है? जब आप लोग स्वाध्याय करोगे तो दो मिनट देखना आँखें बंद करके फिर देखना। जिसने इतना ग्रन्थ पढ़ लिया, समझ लिया वो कौन है, बस उस दिन तुमको समझ में आ जायेगा कि और भी कुछ है जो शरीर के भीतर है। वो शरीर नहीं है, शरीर में है पर शरीर नहीं है। क्या है? **अरस है, अरूपी है, अगन्ध है, अस्पर्शी है, अवक्तव्य है, अलिंगी है, संस्थान-शून्य है। वही जीव का सत्यस्वरूप भूतार्थ है, वही स्वभाव है और कुछ नहीं।**

बेटा! मैं भगवान् से मिलने के लिए मुनि नहीं बना, मैं भगवान् बनने के लिए मुनि बना हूँ। भगवान् से मिलके क्या होगा? किसी धनपती के यहाँ चले जाना आज उनसे मिलके आना, तो क्या तुम्हें उस धनपतिपने का आनंद आ जायेगा? ऐसे ही भगवान् से मिललो, तो इनसे मिलने से क्या भगवान् का आनंद आ जायेगा? धनपति का सम्मान करलो, उतनी खुशी मनालो ऐसे ही भगवान् से मिललो, उतनी खुशी मनालो, लेकिन आनंद जब आयेगा जब हम स्वयं भगवान् बनके बैठेंगे।

मैं तो दिन में तीन-चार बार भगवान् के दर्शन करने जाता हूँ, भावों की विशुद्धि के लिए जाता हूँ, उनसे मिलने के लिए नहीं जाता हूँ। लक्ष्य एक है; मुझे भगवान् बनना है। किसी का लक्ष्य होता है डाक्टर बनना, इंजीनियर बनना, नौकर बनना। क्यों, तुम क्या पढ़ रहे हो, क्या बनोगे? धिक्कार हो, धिक्कार हो, वह भी घबरा रहा है धिक्कार सुनके। अनंतकाल से व्यापार किया है और फिर उसी व्यापार के लिए पढ़ाई कर रहा है। अरे! पाँच पाप में लिप्त होने के लिए पढ़ने की जरुरत नहीं है वो तो वैसे ही सीख लेता है। पूछो, अपने दादा से कितना पढ़े हैं, देखलो बिना पढ़े-लिखों के यहाँ नौकर लगे हैं पढ़े-लिखे। भाई! अनपढ़ के यहाँ पढ़े-लिखे नौकर लगे हैं। मोक्षमार्ग में बढ़ने के लिए, पर को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे ही पाँच पाप करने के लिए पढ़ाई की क्या जरूरत है। पढ़ना है तो परमात्मा बनने के लिए पढ़ो। भैया! डण्डे-कण्डे के साथ भगाया जाये, इसकी अपेक्षा पिच्छी-कमण्डलु लेकर भगचलो। **ये अमूर्तत्वशक्ति कह रही है कि आत्मा जो है पौद्गलिक धर्मों से शून्य है, निर्मल स्वभावी है, वही ध्रौव्यत्व है, वही उपादेय है; शेष ज्ञेय है, हेय है। आत्मा ही परम उपादेय है। परमात्मा के चरणों में भी जाओ तो निज आत्मस्वभाव की उपलब्धि के लिए जाना। परमात्मा से मिलने के लिए नहीं, परमात्मा में मिलने के लिए नहीं, परमात्मा बनने के लिए जाना।**

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।
आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।
भगवान् महावीर स्वामी की जय।

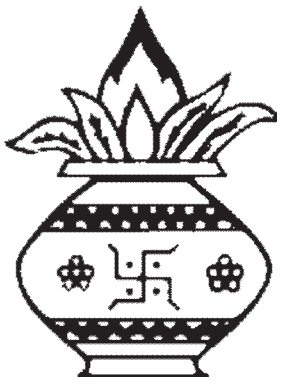

21

अकर्तृत्वशक्तिः

''सकल कर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामकरणोपरमात्मिका अकर्तृत्वशक्तिः।''

ज्ञानभाव से भिन्न कर्मोदय से होनेवाले रागादि विकारीभावों के कर्तृत्व से रहित होने रूप अकर्तृत्वशक्ति है। इसी के कारण ही आत्मा रागादिभावों का कर्ता नहीं है।

सब कर्मों से किये गये ज्ञातापने मात्र से भिन्न परिणाम उनके करने के अभावस्वरूप 'अकर्तृत्वशक्ति' है।

समय देशना

ज्ञानियो! आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी समयसार ग्रन्थ में शुद्ध ज्ञायकस्वभावी भगवान् आत्मा के सहज स्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी स्याद्वाद अधिकार में सैंतालीस शक्तियों में से इक्कीसवीं अकर्तृत्वशक्ति की व्याख्या कर रहे हैं। यह आत्मा व्यवहारनय से पौद्गलिक कर्मों का कर्ता है। अशुद्ध निश्चयनय से रागादिभावों का कर्ता है। शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध चैतन्य भावों का कर्ता है। परम शुद्ध निश्चयनय से ये मात्र ज्ञाता है, ज्ञाता से अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। मैं मात्र ज्ञाता हूँ। ज्ञानशक्ति से भिन्न मेरा कुछ है ही नहीं, दर्शनशक्ति से भिन्न मेरा कुछ है ही नहीं, मात्र में ज्ञाता-दृष्टा हूँ। ज्ञाता-दृष्टा ही हूँ, जानता ही हूँ, देखता ही हूँ। **जो जानता ही है, देखता ही है, कर्ता नहीं है वही बनता है भगवान्। जो जानने-देखने के स्थान पर कर्तृत्व को लिए बैठा रहता है वह मन्दिर जाने पर भी भगवान् बन नहीं सकता।**

रागादि भावों को आप जानिए, रागादिक भाव को भी आप पहचानिए, करिए आत्मचिंतन। परमज्ञानी योगी अपने भीतर प्रतिदिन विभाव-भाव के उत्पाद-व्यय को ज्ञाता बनके ही देखता है, जानता है, दृष्टा बनकर ही देखता है, पर उनमें कर्तृत्व लेकर प्रवेश नहीं करता। **किंचित्मात्र भी शुभाशुभ भावों का कर्तृत्वभाव, इस जीव के अन्तस् में निहित है तो निज भगवान् आत्मा को प्रगट नहीं कर सकेगा, निज भगवान् आत्मा को नहीं समझ सकेगा, निज भगवान् आत्मा को नहीं पहचान सकेगा।**

मस्तिष्क पर, चेहरे पर सिकुड़न तभी आती है जब भीतर की विशुद्धि सिकुड़ चुकी होती है। मस्तिष्क पर सिकुड़न तभी आ सकती है जब भीतर की विशुद्धि सिकुड़ेगी। विशुद्धि तभी आयेगी जिसका भीतर गद्गद् है उसका चेहरा चमकता है। **चेहरे पर कालिमा का आना, चेहरे पर सिकुड़न का आना-ये तुम्हारे भीतर की कषाय का प्रमाणपत्र है। कर्तृत्वदृष्टि का प्रमाणपत्र है।** करने के लिए भ्रमण है, कर्ता विभ्रमण ही करता है। हो चुका अकर्ता, मिट गया भ्रमण। गमन तभी तक है, भ्रमण तभी तक है जब-तक कर्तृत्व का भ्रम निहित है। तब-तक मैं हूँ तब-तक यह हो सकता है, मैं सबकुछ कर सकता हूँ - ऐसा विकल्प तुम्हारे अन्तस् में है तब-तक तुम्हारा भ्रमण है। **जब-तक कर्तृत्व-दृष्टि से सहित है, तब-तक संसार में भम्रण है।**

जिसका कर्तृत्वभाव का अभाव हो चुका है उसका जगत् का भम्रण नष्ट हो गया है। स्वभाव पर लक्ष्यपात करो। मैं मात्र ज्ञाता हूँ। भाई! व्यवहार में माथा ले जाओगे तो यह विषय समझ में नहीं आयेगा। अपना घर देखोगे, गृहस्थी देखोगे तो कुछ भी समझ में नहीं आयेगा। संघ देखोगे, श्रावक देखोगे तो कुछ भी समझ में नहीं आयेगा। ये चेला-चेलियों के सँभालने का विषय नहीं चल रहा है। ये चित्त को सँभालने का विषय चल रहा है।

हे श्रमण! सचित्त, अचित्त, मिश्र - ये त्रिविध परिग्रह हैं। मुनिराज! ये त्रिविधि परिग्रह का कर्तृत्वभाव जब तक तुम्हारे अन्तस् में विराजता रहेगा तब-तक तुम निज में नहीं विराज पाओगे। शिष्य-शिष्याएँ सचित्त परिग्रह हैं। पिच्छी-कमण्डलु अचित्त परिग्रह हैं। इन से युक्त चेला-चेली मिश्र परिग्रह हैं। हे आचार्य भगवन्! जब-तक आपकी भी दृष्टि शिष्यों की दीक्षा आदि कर्तृत्व पर निहित रहेगी, तब-तक आपका भ्रमण भी बन्द नहीं होगा। शिक्षा-दीक्षा; यह भी कर्तृत्वदृष्टि। जिस सीमा तक पहुँच रहे हो वहाँ झाँकिये, शुभोपयोग की क्रिया ही है। हो सकता है शुभोपयोग हो, पर शुद्धोपयोग नहीं है, वहाँ संसार का अभाव नहीं है। **संसारातीत होना है तो शुभाशुभ के कर्तृत्व से अतीत होना पड़ेगा। अशुभ तो अशुभ ही है, शुभ भी तुम्हारे लिए अशुभ ही है।**

हे श्रमण ! अशुभ तो अशुभ ही है, शुभ भी आपके लिए अशुभ ही है। कोई सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर की वंदना के लिए जाना चाहता है और तेरी दृष्टि किसी कन्या में लगी है, अशुभ है। ठीक है, उसके राग में तू चाहते हुए भी जा नहीं रहा है। उस दृष्टि को तूने हटा लिया वो तो अशुभ थी लेकिन माँ कहती है - बेटे! तू अभी नहीं जायेगा, अभी घर में कोई काम करनेवाला नहीं है इसलिए बाद में चले जाना। माँ तो माँ थी, उस कन्या की अपेक्षा से अशुभ नहीं है, माँ तो माँ है। जैसे सम्मेदशिखर जाने के लिए वह कन्या का राग तुझे बाधक था, अशुभ राग था वैसे ही बेटा! आज तेरी माँ का राग भी सम्मेदशिखर जाने से रोक रहा है। ऐसे ही हे श्रमण! अशुभ तो अशुभ ही है, विषय-कषाय तो विषय-कषाय ही है वह तुझे सिद्धालय नहीं भेज पायेगा। कन्या का राग तो तुझे रोके रखे था, परन्तु माँ का राग अशुभ नहीं था वो तो माँ का अनुराग था, पर सम्मेदशिखर की वंदना उस माँ के राग में भी कहाँ कर सका। जैसे सिद्धभूमि की वंदना के लिए माँ का राग भी बाधक हो गया, ऐसे ही हे मुनीश्वरो! परमात्मा का राग भी तुम्हें सिद्धशिला में जाने में बाधक ही रहेगा।

समझ में आ रहा है? इसलिए आपकी दृष्टि क्या हो? न शुभ न अशुभ, एक मात्र शुद्ध। छठे गुणस्थान तक तो शुभ राग रहेगा, शुभोपयोग रहेगा। पंचम गुणस्थान तक शुभाशुभ रहेगा, सप्तम गुणस्थान में न शुभ, न अशुभ, शुद्ध अप्रमत्त दशा, कोई प्रमाद नहीं। क्या होगी उस योगी के लिए अखण्ड निज ध्रुव आत्मा की चैतन्य लीनता? उसकी अनुभूति, उसका आनंद उसमें ही है। कोई उपमा नहीं, अकर्तृत्व भाव। ज्ञेय आपके नेत्रों के सामने है, चलते दिख रहा है, आते दिख रहा है जाते दिख रहा है जिसे आप देख ही रहे हो, जान ही रहे हो; कि पकड़ रहे हो?

जगत् के शुभाशुभ द्रव्यों को ज्ञेय बना लेना, जान लेना, देख लेना, पहचान लेना - इसमें कोई बन्ध नहीं है। जगत् के द्रव्यों में राग कर बैठना, द्वेष कर बैठना- ये बन्ध का ही कारण है। अब ये तो इस पर द्रव्य को देख करके व्याख्यान कर रहे हो। इसमें राग मत करो, द्वेष मत करो ऐसा तो बहुत सारे ज्ञानी बता देंगे। यह व्याख्यान इस बात का नहीं चल रहा। भैय्या! समझो समझो गम्भीर विषय है।

बेटा! मित्र के चेहरे पर राग मत करो, द्वेष मत करो - ये विषय नहीं चल रहा। ये तो पागलपन की भाषा है, बहुत पुरानी हो गई। तो फिर क्या है? जैसे ये पेन ज्ञेय बन रहा है हटा दिया।

तेरे भीतर जो परिणाम चल रहे हैं, ये राग के, ये द्वेष के, ये लोभ के, ये क्रोध के, ये मान के, माया के; स्पर्श इन्द्रिय के, रसना इन्द्रिय के, घ्राण इन्द्रिय के, चक्षु इन्द्रिय के, श्रोतृ इन्द्रिय के, पाँचों इन्द्रिय के; हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद, मिथ्यात्व आदि जो भंग तुम्हारे मस्तिष्क में चल रहे हैं; ध्यान दो, कुछ भी सामने नहीं है फिर भी कषाय के परिणाम जो चल रहे हैं उन परिणामों को, उन कषाय के परिणामों को देखते हुए उनके कर्ता न होते हुए मुनिराजो! उन निज भावों के ही ज्ञाता हो जाइए। उन निज भावों को जानते हुए ये भाव आ रहे हैं, ये भाव जा रहे हैं, पर मैं इनमें नहीं जा रहा हूँ। जीव इन भावों में अपने ज्ञान को नहीं ले जा रहा, मात्र ज्ञेय बना के निहार रहा है। देखो, मेरे अन्दर भी क्रोध परिणाम आ रहे हैं, उन क्रोध परिणामों को जरा देखिये, वेदन कीजिए। कोई भी कषाय निज के अन्दर चल रही है, उसका वेदन करो आप।

भैया! विश्वास रखना, जगत् के ध्याताओं ने ध्यान को ही नहीं समझा। ज्ञानी! जब आप अपने भीतर उत्पन्न हुए क्रोध कषाय को ज्ञेय बना के बैठोगे वे परिणाम कितने दिन तक टिकेंगे? ध्यान दो, मन्दिर बराबर आना, पूजन-भक्ति बराबर करना। आज युवा पीढ़ी से प्रश्न आता है कि जो धर्म करते हैं वे क्रोधी क्यों दिखते हैं? स्पष्ट बोल रहा हूँ मैं आपके अज्ञानमयी धर्म-प्रवृत्ति के कारण धर्मात्मा शब्द उपहास का पात्र बन रहा है। बड़े विवेक से सुनना, जितने सोले वाले हैं, जितने त्यागीव्रती हैं, आपकी प्रतिमा की पालना की आराधना देख करके असंयमी बालक से वृद्ध तक आपके संयम को सिर टेके ऐसी प्रवृत्ति करना। आपने अपने संयम के लिए संयम धारण किया है दूसरे के भावों को बिगाड़ने के लिए संयम धारण नहीं किया है।

हो क्या रहा है, जितने त्यागी-व्रती हैं इन्होंने बिना समझे द्रव्य-त्याग पर लक्ष्यपात किये हैं। मैंने जो व्रत लिया है वो द्रव्य के लिए नहीं लिया है भाव के लिए लिया है। ऐसा भाव नहीं बना पा रहे हैं उनको संक्लेशता बनती है। उनको दिखता है ये मुझे सताता है, ये मुझे दुःखी करता है। जगत् में जब तू किसी का कर्ता नहीं है तो तेरे दुःख का कर्ता कोई कैसे हो गया? मात्र मैं अपने भावों में ही अशुभ भाव का कर्ता हूँ। उन्हीं भावों के द्वारा तू दुःख का कर्ता बनता है। अपने उन्हीं भावों से तू अपने अशुभ को निकाल देता है तो ब्रह्माण्ड में ऐसी कोई की सत्ता नहीं है जो तुमको दुःखी कर सके।

सम्पूर्ण लोक में ऐसी द्रव्य की कोई सत्ता नहीं है जो किसी भी जीव को दुःखी कर सकती हो। आपके दुःखी होने का कारण आपके भीतर ही है। जैसे की कोशे के कीड़े को मारने के लिए कोई दूसरा नहीं आता, मकड़ी को फँसाने के लिए कोई दूसरा नहीं आता है; कोशा अपने ही शरीर से अपने आप ऐसे रेशे को निर्मित्त करता है उसी रेशे में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। मकड़ी अपनी लार से

ताना-बाना बुनके उसी में उलझ करके मृत्यु को प्राप्त हो रही है। इसी प्रकार से जगत् का प्राणी अपने भीतर में विकारी भाव को उत्पन्न करके उसी से दुःखी होता है। पर वस्तु दुःख देती ही नहीं है।

आप चाहते थे कि मेरी शादी अमुक कन्या से हो जाये। उसके पिता ने मना कर दिया मैं ऐसे लड़के को अपनी बेटी नहीं देता हूँ। अब सिर पकड़ के रो रहा है। बेटा! सच्चा जैनी है कि नहीं, अरहंत का भक्त है कि नहीं, निर्ग्रन्थ का भक्त है कि नहीं? यदि है तो इतना ध्यान रखना तेरे घर में दिगम्बर मुनि का पड़गाहन होता रहे ऐसा काम करना। ऐसा काम मत करना कि तेरे घर में दिगम्बर मुनि न आ पायें। इसका मतलब ये हुआ कि विजातीय विवाह नहीं करोगे। नियम ले लो बेटे-बेटी दोनों, कायोत्सर्ग कर लो। बात ऐसी है समयसार की व्याख्या की रक्षा तभी होगी, जब समाज की रक्षा होगी। घर में साग बनाने की जगह मछली छीलने वाली आ गई तो तुम्हारे जैनत्व का क्या होगा? ये खास कर बेटियों से कह रहा हूँ जो विवेक खोकर पहुँच तो जाती हैं ऐसे घर फिर जीवनभर आँसू टपकाती हैं। माता-पिता से स्पष्ट कहना है, माँ! जन्म देने के साथ शिक्षा भी दिया करो। अब सुनो, उस कन्या ने तुम्हें दुःख दिया। जिस कन्या से तुम शादी करना चाहते थे उस बेटी ने बोल दिया – मैं अपनी पिता की अनुमति के बिना शादी नहीं करूँगी, और उसके पिता ने भी स्पष्ट बोल दिया कि मैं इस लड़के के साथ अपनी बेटी की शादी नहीं करूँगा। उस काल में बताइए उस बेटी ने तुम्हें कष्ट दिया क्या ?

हे ज्ञानी अज्ञानी ! उस बेटी ने तुझे कहाँ कष्ट दिया ? यदि वो बेटी तुझे कष्ट दे रही थी तो उस बेटी को जितने देखने वाले थे सबको कष्ट होना चाहिए था। हे जड़ बुद्धि! ये तू क्यों नहीं बोलता है कि उस बेटी ने तुझे कष्ट नहीं दिया। कन्या की प्राप्ति के राग ने तुझे कष्ट दिया है। तुझे कोई द्रव्य कष्ट देता ही नहीं है। तेरे भीतर बेटी का जन्म हुआ है कि उस कन्या के प्रति अशुभ भाव का जन्म हुआ है? कामभावों ने जन्म लिया। कष्ट किसने दिया ? परभाव परभाव को दुःखी करते नहीं। निजभाव ही निजभाव के दुःख के कर्ता हैं। परभाव परभाव को सुख के कर्ता हैं नहीं। निजभाव ही निजभाव के सुख के कर्ता हैं।

ये समयसार है। ये मत कहना ये बच्चों का समयसार कैसा? बच्चे ही तो समयसार हैं, **'यथाजात स्वरूपोऽहं'** जैसा जन्मा था वैसा ही जीवन जीये यही तो समयसार है। बेटे! माँ की गोदी में नंगा खेला था कि नहीं? बस वैसा ही जीवन प्रारंभ हो जाये, वही साधुपना है।

सिवनी में अभी की घटना है, आहार करके हम लोग आ रहे थे। रास्ते में एक माँ अपने घर से निकलती है और जोर से बोलती है - महावीर की जय हो, महावीर के भेष रखने वाले की जय हो, यह महावीर जा रहे हैं। लोग बोले - महाराज! ये थोड़ी पागल है, भले पागल हो, लेकिन उसने पागल होने पर पत्थर तो नहीं फेंके। दिगम्बर मुनि को देख करके यही तो कहा - महावीर की जय हो। अमरावती में एक महाराष्ट्रीयन बालक अपने मकान के बाहर खड़ा हुआ था, वहाँ से संघ निकला वो बेटा क्या बोलता है - आई! आई! लवकर (शीघ्र) आ,जैनियों के भगवान् जा रहे हैं। उस बालक को नंगा नहीं दिखा, साधु बाबा नहीं दिखे, उसको जैनियों के भगवान् दिखाई दिए।

दृष्टि को शुद्ध कीजिए, वस्तु को शुद्ध मत कीजिए। वस्तु जो है सो है। माँ! आपकी वृत्ति को देखकर के हर युवा का सिर श्रद्धा से झुकना चाहिए है। पर आप व्यवहारधर्म को व्यवहार में भी नहीं जी रहे हो। सोले के वस्त्र पड़े हुए थे, किसी बालक ने छू लिऐ तो क्या किया आपने? कपड़े फिर से धो लेती, पर बच्चे को धोने चली गई। जब चर्या का समय होता है तो लोग कैसे छू-छू करते हैं। अरे! सोले वाले को स्वयं बचकर रहना चाहिए। कोई छू जाये तो गुस्सा करते हो। फिर मेरे जैसा तटस्थ रहना चाहिए। इनके कपड़े मात्र सोले के, इनके भाव तो बिल्कुल असोले के हैं। अरे माँ! उस बालक ने छू भी लिया तो आप पुनः शुद्ध कर सकते हो। लेकिन आपने कषाय की है, विशुद्धि में असोला किया है उसे कौन-सी बाल्टी में धोने जाओगे? कर्तृत्व-दृष्टि से धर्म चल रहा है।

बहुत अच्छा होता उस वस्त्र को शुद्ध कर लेते फिर कहते बेटा! ये पुनः इतना पानी बहाना पड़ा, कितनी हिंसा हुई। आपको कपड़े नहीं छूना था, तो बेटा पैर छूता, माँ! मेरे से भूल हो गई है। आपको परेशानी हुई क्षमा कर दो। पर आपने पहले ही गाल पर दो चाँटे मारे, वो कहेगा देख ली आपकी शुद्धि। इसलिए ये जो धर्म कर रहे हैं ये ज्ञानभाव से नहीं कर रहे, ये श्रद्धाभाव से नहीं कर रहे, ये क्रियाभाव से कर रहे हैं। ज्ञानभाव से, श्रद्धाभाव से, चारित्रभाव से यदि आप सोला करोगे तो मन कहेगा कपड़े तो अशुद्ध हो ही गये हैं, मैं स्वपर का भाव अशुद्ध क्यों करूँ। इतना धैर्य हो तो व्रती बनना, इतना धैर्य न हो तो व्रतियों के चरण छूना। पड़गाहन हुआ। नया बालक खड़ा था पड़गाहन में, वह बड़े हर्ष से सिर पर कलश लिए खड़ा था। महाराज पड़ग गये। अब भक्ति में, भड़भड़ी में कलश गिर गये। ये महाराज लौट गये। चौका लगाते तब मालूम चलता है कितनी श्रद्धाभक्ति है। मैं यदि होता तो लौटता नहीं, मैं वहीं खड़ा रहता। मैं कहता उठा ले बेटा! तू रख ले सिर पर।

एक बार मेरे साथ ऐसा हुआ। एक मुमुक्षु भाई थे, वे मुमुक्षु मण्डल के अध्यक्ष थे। जब उपदेश मेरा हुआ तो वे प्रवचन छत से सुनते थे। छत से सुनते- सुनते मन्दिर के चबूतरे पर आ गये, और चबूतरे से एक दिन सभा में भी आ गये। मुझे मालूम चल गया ज्ञानी जीव आ गया, पहले दिन हाथ बांधे आया, पाँचवें दिन पैरों पर सिर टेक दिया। अब एक दिन मेरे से वो क्या बोलते हैं, महाराज श्री! आँख खुल गई। क्या मैं आहार दे सकता हूँ? मैंने कहा जानकर के कि जैन नहीं हो क्या? फिर आहार क्यों नहीं दे सकते हो। अच्छा तो मैं पड़गाहन करूँगा क्या? हाँ, करो न। अब जिसने साठ वर्ष की उम्र में कभी पड़गाहन नहीं किया, पड़गाहन कैसे होता है जाना नहीं, वह व्यक्ति पड़गाहन करने के लिए खड़ा हो गया कलश लेकर। मैंने देख लिया मुमुक्षु खड़ा है, मैं सीधे उसके पास जाकर खड़ा हो गया, जैसे ही खड़ा हुआ उसके पूरे कलश नीचे गिर पड़े, अब लोग चिल्लाये - महाराज लौट जायेंगे, लौट जायेंगे। मैंने कहा - वे लौटें जिनको लोटावान न दिख रहा हो, मैं तो खड़ा रहा, वह बेचारा फिर से उठाता है, फिर रखता है फिर टपक गये। तुम चिन्तामत करो मैं खड़ा हूँ। अरे! लोटे ही तो गिर रहे हैं, तेरे भावों का लोटा तो सीधा हो रहा

है। भैया! उनके यहाँ अच्छे से आहार हो गये। फिर कहता है अब महाराज! मैं तो आचार्य विरागसागर के पास जाता हूँ। मैंने कहा – क्यों? मैं इसलिए जाता हूँ कि मैं आपको अपने गाँव में रोकूँगा, मैंने कहा - ठीक है चले जाओ। वो तीन गाड़ियाँ करके आचार्य श्री के पास पहुँचा। बड़े महाराज ने जैसे ही देखा, यह कैसे आ गया सोनगढ़ी? उसने कहा - महाराज! अब मैं सोनगढ़ी नहीं हूँ, मुनिभक्त हूँ। मुनिभक्त कब से हो गये? जब से महाराज हमारे लोटा गिरते ही नहीं भगे तब से हूँ। तो भाई! ऐसा है, **असंयमी असंयम बरत सकता है, पर संयमी को अपना संयम नहीं छोड़ना चाहिए।**

कितना भी काम बिगड़ जाये पर व्रतियों के चेहरे पर सिकुड़न नहीं आना चाहिए। उस व्यक्ति को समझ में आ जाये, हाँ, ये वास्तव में व्रती बने हैं, नहीं तो आप कहो - महाराज! निमित्त ऐसे हों तो सिकुड़न क्यों नहीं आयेगी। अरे! ये क्या बोल रहे हो, निमित्तों का अभाव कभी नहीं होगा, तो तुम्हारा उपादान फिर कभी नहीं सुधरेगा। **निमित्तों का अभाव करके मोक्षमार्गी नहीं हुआ जाता, निमित्तों से अपने नैमित्तिक को दूर करके मोक्षमार्गी हुआ जाता है। निमित्तों का विनाश करके मोक्षमार्गी नहीं हुआ जाता।** तुम घर की नारी छोड़के भाग जाओगे तो विश्व में नारियाँ नहीं मिलेंगी क्या? गोंदिया छोड़के चले जाओगे जहाँ आहार करने जाओगे वहाँ वैसी ही व्यवस्थाएँ होंगी।

ज्ञानी! बाहर से छोड़ने के साथ भीतर से भी छोड़ना पड़ेगा। यदि आपको वैराग्य हो रहा हो तो ये मत कहना - जो घर बसाया है वह घर मिट जाये तो मुनि बनूँ। घर को मिटा के मुनि मत बनना, घर के राग को मिटा के बन जाना। जैनधर्म हिंसा नहीं सिखाता है, अहिंसा सिखाता है। भाई! ये जैनत्व की अन्तरंग दशा है। हाथ तुम्हारा किसी के गाल की तरफ जाये तो हाथ, गाल और भाव - इन तीनों को पहले ज्ञेय बना लेना। देखिए, मैं क्या करने जा रहा हूँ। विश्वास रखना, हाथ गिर जायेगा।

जगत् की किसी भी पुस्तकों को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है, जिनागम में भरपूर भरा हुआ है इसको पढ़ो। जिनवाणी के बाहर क्या है? उलट-पुलट के ही लिख सकते हो। जो जिनागम पर दृष्टि ले जायेगा उसको बाहर का कुछ भी पढ़ने की जरूरत नहीं है, कुछ नहीं पढ़ना।

जीवन में इन आँखों का प्रयोग मात्र जिनागम के लिए करना, इतना आगम है। आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी, जो दो क्लास पढ़ी हैं उन्होने श्लोकवार्तिक, राजवार्तिक की टीका लिखी है। वो बड़ा काम करके गई हैं। आगम पर आँख उसी की जायेगी जो प्रपंचों से आँख हटा लेंगे। कौन-से संघ में क्या हो रहा है, कौन-सा संघ क्या कर रहा है, संघ में कौन क्या कर रहा है - यह दृष्टि जिसकी रहेगी वह आगम को न जी पायेगा, न आगम को लिख पायेगा। आदिमती, सुपार्श्वमती, ज्ञानमती, जिनमती, विशुद्धमती - इन पाँच आर्यिकाओं के नाम तो ये युग नहीं भूल पायेगा। साहित्य के क्षेत्र में इन आर्यिकाओं ने वो काम किया है जो बड़े-बड़े आचार्य नहीं कर पाये।

बुद्धि को एक जगह ही लगाया जा सकता है। समाज सुधार, राष्ट्र सुधार - ये निर्ग्रन्थ की बुद्धि नष्ट कर देंगे। बेटा! तुम्हारे पिताजी कहाँ हैं ? बेटा! पूछना पिताजी से - पिताजी! आपने मुझे इतना बड़ा क्यों किया? पिता का हृदय सच्चा होगा तो कहेगा-जैसा मेरे पिता ने मेरे लिए किया था और कहा था जिनशासन की परम्परा को आगे बढ़ाना, इसलिए मैंने आपको जन्म दिया और बड़ा किया है। कहीं तू स्त्रीधन में लिप्त हो गया तो तेरा जीवन जिनशासन के लिए कुछ नहीं कर पायेगा। विदेश में रहकर आत्मदेश को मत भूल जाना, आत्म-धर्म को नहीं भूल जाना। पिता ने तुम्हें इसलिए इतना बड़ा किया है जहाँ भी रहो वहाँ नमोऽस्तुशासन को जयवंत करते रहना। दूसरी दृष्टि, जो तुम्हारे दादा ने कमा के रखा उसको पिता ने सँभाल के रखा। दादा की सम्पत्ति को सुरक्षित रख के राज्य धन वैभव को, उस वंश की सम्पत्ति को तुम सुरक्षित रख सको, इसलिए तुम्हें बड़ा किया है।

ज्ञानी! जैसे कि पिता अपने बेटे से वंश, समाज और धर्म; इन तीनों की रक्षा की भावना रखता है ऐसे ही दिगम्बराचार्यों ने अपने शिष्यों को जिनश्रुत, जिनआगम की परम्परा को सुरक्षित करने के लिए दीक्षित किया है। आप समाज और देश में उलझ करके, जिनशासन से दूर होकर के, जिनशासन की परम्परा को आगे नहीं बढ़ा रहे हो, तो तुम उसी पिता के बेटे तुल्य हो जो स्त्री और धन में रहकर अपना जीवन नष्ट कर लेता है। इसलिए जिन मुनियों का क्षयोपशम जिस विषय में हो, जिनकी प्रवचन में पकड़ है वे प्रवचन करें आगम का। जिनको लेखन में रुचि है वे लेखन करें, चिंतन करें। जिनको पढ़ाने में रुचि है पढ़ाएँ। जिनको स्वात्मलीन होने का वे स्वात्मा में लीन रहिए। लेकिन प्रपंच में गये तो उस अभागे बेटे के तुल्य हो जो स्त्री और धन में लिप्त होकर के अपना जीवन नष्ट करता है। क्या करोगे समाज का उद्धार? जिनवाणी का उद्धार हो गया तो समाज का उद्धार हो गया। कुन्दकुन्ददेव ने समाज का उद्धार नहीं किया था, जिनवाणी लिखी थी, आज समाज का उद्धार हो रहा है कि नहीं हो रहा है? सोचो-सोचो, बहुत से ज्ञानी कहते हैं कि अध्ययन से क्या होता है? स्वात्मोपलब्धि होती है।

बोधिः समाधिः परिणाम शुद्धिः स्वात्मोपलब्धिः शिव-सौख्य सिद्धिः।
चिन्तामणिं चिन्तित वस्तु दाने, त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि॥ सा. पा./11॥

जब-तक कण्ठ में प्राण रहें, तब-तक आगम ग्रन्थ ही आश्रय है। जब तेरा कोई नहीं बचेगा, जब कोई नहीं मानेगा, कोई मित्र भी नहीं स्वीकारेगा उस समय तो मात्र जिनवाणी कल्याण करेगी। ये सब वैभव देखकर कभी गद्गद् मत होना कि विशुद्धसागर महाराज कितने सुखमय जीवन जी रहे हैं। मैंने दुनियाँ के इतने दिन देखे हैं, साधु भी साधु को नहीं सुहाता, फिर कौन होगा तुम्हारा?

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि
केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

विशुद्धसागर जी! आज जो आपका नाम लेते हैं यदि तुम्हारा पुण्य नहीं होगा तो वे भी नाम नहीं लेंगे। विशुद्धसागर! वो भी दिन मैंने देखा है, प्रेक्टीकल में देखा है। जब सब विनय छोड़ दें तुम अपनी विनय नहीं छोड़ना। गुरु भी कह दें-भगो, तुम नहीं भगना। तुम्हारा काम भगाना है फिर भी नमोऽस्तु करूँगा। फिर तुम देखना, जमीन में बीज फिर चाहे किसान जान के डाले, चाहे धोखे में टपक जाये, अंकुरित होगा कि नहीं? होगा। ज्ञानी! चाहे कोई पुकारे, चाहे पुचकारे, अपनी विनय मत छोड़ना, वो अंकुरित होगी फलित होगी, गुरु महाराज आशीर्वाद भी नहीं दें तब भी नमोऽस्तु करना।

भगवान् को नमोऽस्तु करते हो, वे कौन आशीर्वाद देते हैं? मैं तो अपने ऋजु भाव से, आर्जव-मार्दव परिणामों से अपनी कषाय को मन्द करने के लिए नमस्कार कर रहा हूँ। मैंने थोड़े आपके आशीर्वाद के लिए नमोऽस्तु किया। वो तुम्हारे भाव तुम जानो, मैंने तो अपने भावों से नमोऽस्तु किया है सच्चे वीतरागी भावलिंगी मुनिराजों को। द्रव्यलिंगियों को कोई नमस्कार नहीं, सच्चे वीतरागी भावलिंगी को नमोऽस्तु है।

अब आप कह सकते हो कि महाराज! आप भ्रमित करके जा रहे हो हम सबको। हमारे गाँव में जो भी मुनिराज आयेंगे हम क्या करेंगे। मैं क्या बोल रहा हूँ - सच्चे वीतरागी भावलिंगी। एक सौ के नोट में दस का नोट होगा कि नहीं? जब मैंने भावलिंग बोल दिया है तो उसमें द्रव्यलिंग होगा कि नहीं? समझ जाओ, भावलिंग को नमस्कार तब ही होगा जब द्रव्यलिंग होगा। लेकिन नमस्कार भावलिंग को और बिना द्रव्यलिंग के भावलिंग हो नहीं सकता इसलिए द्रव्यसहित भावलिंग।

जो मुनिराज विदेह में विराजे हैं वो मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं क्या? मैं यहाँ से नमोऽस्तु करूँगा तो क्या मेरी कर्म-निर्जरा नहीं होगी, उससे फल नहीं मिलेगा क्या? ऐसे ही कोई आशीर्वाद न भी दे तब भी नमोऽस्तु करो। मैं तो निर्ग्रन्थ की वंदना कर रहा हूँ, मैं कषाय की वंदना नहीं करता। तुम वंदना की बात कर रहे हो, मैं कषायी को आशीर्वाद भी नहीं देता। यदि कषायी को आशीर्वाद दे दूँगा, वह फलित हो गया तो क्या फलित होगा? कषाय। और अकषायी को भी आशीर्वाद नहीं देता हूँ। अकषायी वंदना करता नहीं है, इसलिए भद्रपरिणामी मंद कषायी को आशीर्वाद दिया जाता है और सभी जीवों को एक-सा आशीर्वाद नहीं दिया जाता। कैसे दिया जा सकता है? कोई विधर्मी आ जाये, मिथ्यात्व का पूजक, क्या उससे कह दूँ मैं 'धर्मवृद्धिरस्तु'। मैंने क्या आशीर्वाद दे दिया कि मिथ्यात्व की वृद्धि हो। उसको क्या आशीर्वाद देंगे? 'दर्शन विशुद्धि', तेरे सम्यक्त्व की विशुद्धि हो। कोई चाण्डाल कषायी आ गया तो क्या आशीर्वाद दोगे? उन सबको कहना- 'पापक्षयोऽस्तु', तेरे पापों का क्षय हो। कोई श्रावक ने नमस्कार किया तो क्या देंगे? 'सद्धर्म वृद्धिरस्तु' तेरे धर्म की वृद्धि हो, मुनिराज बनो आगे। मुनिराज ने नमस्कार किया तो क्या आशीर्वाद देंगे? समाधिरस्तु आपकी समाधि हो।

भैया! सबको एक-सी वंदना नहीं होती है, सबको एक-से आशीर्वाद नहीं होते, आगम की व्यवस्था है। ऐलक क्षुल्लक हों तो इच्छामी, माताजी हों तो वंदामी, मुनिराज हों तो नमोऽस्तु। मात्र पंचपरमेष्ठी को

नमोऽस्तु होती है और किसी को नमोऽस्तु नहीं होता है। ये भूल मत कर लेना कि भक्ति के अतिरेक में तुम ऐलक क्षुल्लक को नमोऽस्तु बोलने लगो, भट्टारकों को नमोऽस्तु बोलने लगो, माताजी को नमोऽस्तु बोलने लगो ? नहीं, नमोऽस्तु मात्र पंचमेष्ठी को। वंदना और आशीर्वाद में भी भेद है। व्यवहार से पंचपरमेष्ठी वंदनीय हैं। परम शुद्ध निश्चय नय से न कोई वंद्य है, न वंदनीय। जो है सो है। ज्ञानी! समझ में आ रहा है? पूरा समझ में आ रहा है। समझ में आ रहा होता तो यहाँ से उठकर घर क्यों जाते? ज्ञानी! कौन किसका कर्ता है? सैंतालीस शक्तियों में इक्कीस नम्बर की शक्ति कह रही है - अकर्तृत्व भाव को देखो। ज्ञानी ! जगत् में राग ही कर पायेगा, राख ही हो पायेगा, राख कुछ भी नहीं पायेगा? ये घर में बोलना आज जाकर। आनंद है, घना आनंद है, घनाघन स्वरूपोऽहं। आनंद तो ज्ञान में ही है, कर्तृत्व भाव में कोई आनंद नहीं।

सकल कर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामकरणोपरमात्मिका अकर्तृत्वशक्तिः।।

यहाँ पर कह रहे हैं – सम्पूर्ण कर्म के होने पर सम्पूर्ण कर्मकृत अवस्था को छोड़कर के मात्र ज्ञाता मात्र हूँ। ऐसा कर्तृत्व से अतिरिक्त होकर के ऐसा परिणाम का जो अनुभव है ऐसा अनुभव जो परिणात्मक है वह अकर्तृत्वशक्ति पर परिणामों से जो करणपना है उस करणपने से रहितपना है यही अकर्तृत्वभाव है, यही अकर्तृत्वशक्ति है। घटना को मात्र ज्ञायक भाव से देखना और जानना। देखो, जानो, जाने दो।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

22

अभोक्तृत्वशक्तिः

''सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामानुभवोपरमात्मिका अभोक्तृत्वशक्तिः।''

सकल कर्मों से किये ज्ञातापने मात्र से भिन्न जो परिणाम उनके
नहीं भोगनेरूप अभोक्तृत्व शक्ति है।

ज्ञानभाव से भिन्न कर्मोदय से होने वाले रागादि विकारी परिणामों के अनुभव से, भोक्तृत्व से रहित होने रूपअभोक्तृत्वशक्ति है। इसी शक्ति के कारण आत्मा रागादि का अभोक्ता है।

समय देशना

भव्य बन्धुओ ! आचार्य प्रवर भगवद् कुन्दकुन्दस्वामी समयसार जी ग्रन्थ में परम ज्ञायकभाव की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं। अमृतचन्द्र स्वामी सैंतालीस शक्तियों में अभोक्तृत्वशक्ति की यहाँ व्याख्या कर रहे हैं। कर्त्तापन आत्मा का धर्म नहीं है। बाह्य द्रव्यों का कर्तृत्व तो भिन्न है। योगी ज्ञातृत्वभाव से युक्त है। जब ज्ञातृत्वभाव से निहारता है तो ज्ञाता ज्ञाता ही दृष्टिगोचर होता है। वहाँ राग का कर्तापन नहीं देखता, वहाँ द्वेष का कर्तापन नहीं देखता। जब राग-द्वेष का कर्तापन नहीं निहार रहा है तब मात्र ज्ञातृत्व भाव से युक्त है। **आत्मा शुद्ध होगी तो कर्तृत्व से नहीं होगी, ज्ञायकत्व से होगी। आत्मा शुद्ध अखण्ड परम पारणामिक भाव को प्राप्त करेगी तो कर्तृत्व से नहीं करेगी ज्ञायकत्व से करेगी। कर्त्तापन में कषाय है, कर्तापन में संकल्प-विकल्प है। जितने भी संकल्प-विकल्पों का पालन हो रहा है वो कर्तापन की गोद में ही होता है।**

भैया! संकल्प-विकल्पों के पालनहारे जननी कोई है तो कर्तापन, बाकी कोई नहीं। संकल्प-विकल्प के संतान से अपने आपको मुक्त रखना चाहते हो तो कर्तापन की जननी को हटाना पड़ेगा। स्वरूपस्थ-दृष्टि से समझना, कल्याण-दृष्टि से समझना, आनंद-दृष्टि से समझना, भार को मुक्त करके समझना, भार से मुक्त होने के लिए समझना, निर्ग्रन्थ होकर समझना, अरहंत होने के लिए समझना, सिद्ध होने के लिए समझना; न संघ का वजन लेकर समझना, न श्रावकों का वजन लेकर समझना, न समाज राष्ट्र राज्य के वजन लेकर समझना। यहाँ तो मात्र निर्ग्रन्थ होकर अरहंत जैसे होने के लिए समझना। कर्तापन में संकल्प है, कर्तापन में विकल्प है। मैं मेरा ही कर्ता नहीं हूँ। मैं पर का कर्ता कैसे हो सकता हूँ? मैंने अपने अहेतुक आत्मा को उत्पन्न नहीं किया।

विश्व में कोई भी द्रव्य किसी भी द्रव्य को उत्पन्न करता ही नहीं है। प्रत्येक द्रव्य अपने पारिणामिक भाव में परिणमन का कर्ता है। तेरे में वस्तु उत्पन्न नहीं होती है, जीव तेरे में राग-द्वेष परिणति उत्पन्न होती है।

जीव राग-द्वेष का कर्ता बनकर संसार में परिभ्रमण कर रहा है। उस रागद्वेष परिणति का कर्ता न बनकर, उस राग-द्वेष परिणति का भी ज्ञाता बन जा; यही पकड़ना है। हे श्रमण! हे निर्ग्रन्थ! हे धरती के देवता! हे वीतरागी श्रमण तपोधन! आप राग-द्वेष को राग-द्वेष के कर्ता बनकर मत देखो, आप राग-द्वेष को भी ज्ञाता बनकर देखो। मैं पर के राग-द्वेष का देखनहारा नहीं हूँ, मैं पर के रागद्वेष का जननहारा नहीं बनना चाहता हूँ। मैं तो मेरे अन्दर जो विभावदशा में, आत्मदशा में रागद्वेष परिणतियाँ राग-द्वेष व्यय को प्राप्त हो रही हैं उनका ज्ञाता बनके देखना चाहता हूँ। मैं उनका ज्ञाता हूँ।

कामविकार कैसे आ रहे हैं मस्तिष्क में, देखो वासना की दशा कैसी आ रही है मस्तिष्क में ? उसके ज्ञाता बन जाओ, उसके कर्ता मत बनिए। कर्ता बनोगे तो भोक्ता बनना पड़ेगा। भोक्ता बनोगे तो विषयों में

लिप्त हो जाओगे। धन्य है निर्ग्रन्थ तपोधन, कोटि-कोटि नमोऽस्तु स्वामी! आपके उस ज्ञातापन को नमस्कार है। कर्तापन को मेरा कोई नमस्कार नहीं है। आपके ज्ञातापन को नमस्कार है । कर्तापन की मैं कोई वंदना नहीं करता हूँ। कर्तापन में जीने वाला बंधक होता है, बधिक होता है। दो शब्दों को प्रयोग किया है यहाँ, बंधक बधिक। भाई! आप सुनते चलो मेरे साथ, मैं भी सुना रहा हूँ सुनाने वाले को। कर्तापन से युक्त बंधक होता है, बधिक होता है। कर्तापन होगा राग-द्वेष चलेगा, राग-द्वेष से बंध होगा। कर्तापन चलेगा, राग-द्वेष चलेगा तो अशुद्धभावों का बंध होगा, फिर वहाँ क्या कहेगा **'अप्पाणं हणदि अप्पेण'** अपनी आत्मा को अपनी आत्मा से हनन कर रहा है कषायिक जीव। इसलिए मैं राग-द्वेष का भी ज्ञाता हूँ। पाँच इन्द्रिय-विषयों का ज्ञाता हूँ, मन की परिणति का ज्ञाता हूँ, रतिभाव का ज्ञाता हूँ, क्रोधादि सोलह कषाय का ज्ञाता हूँ, पर मैं उनका कर्ता नहीं हूँ। ये तो विभाव का परिणमन चल रहा है मैं कर्ता नहीं हूँ। यह कर्मसापेक्ष कषाय है, कर्म की अपेक्षा नष्ट हो जायेगी, कषायिक भाव का अभाव हो जायेगा। मैं तो ज्ञाता था, ज्ञाता हूँ, ज्ञाता ही रहूँगा।

ज्ञानी! ज्ञानगुण की पर्यायें बदलें, दर्शनगुण की पर्यायें बदलें, पर मैं तो ज्ञाता था, ज्ञाता हूँ, ज्ञाता ही रहूँगा। क्या योगी की तटस्थ दशा है ये विषय नहीं चल रहा है। ये पर की बुद्धि में प्रवेश कराने को विषय नहीं चल रहा है, ये सुबुद्धि का विषय है। निहारिए, मैं अपने शुभोपयोग का भी ज्ञाता ही हूँ, मैं अपने अशुभोपयोग का ज्ञाता ही हूँ। यहाँ तक मैं अपने शुद्धोपयोग का भी ज्ञाता ही हूँ; ये परिणतियाँ हैं, मेरी आत्मा का ध्रुवस्वभाव नहीं है। ज्ञाता मेरी आत्मा का ध्रुव स्वभाव है, वही अचल है, वही अनुपम है, वही अखण्ड है। ज्ञातापन चलायमान नहीं होगा, ज्ञातापन खण्डित नहीं होगा, ज्ञातापन में पर की कोई उपमा नहीं है; अचल है, अनुपम है, अखण्ड है, त्रैकालिक है।

कैसे विराजता है निर्ग्रन्थ योगी, कैसे बैठता है शुद्धोपयोगी, कैसे निकालता है अहोरात्रि को ? ज्ञानियो ! दुनिया को दिन-रात दिखते हैं, ज्ञातापने को मात्र ज्ञायकभाव ही दिखता है। मैं कालद्रव्य की पर्यायों को देखकर के अपने ज्ञातापने से विमुख नहीं होना चाहता हूँ। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश, काल,पुद्गल मेरे से भिन्न इन परिग्रहों से भी मेरा ज्ञाता शून्य है। इन्द्रिय के परिग्रहों से मेरा ज्ञाता शून्य है। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष - इन तत्त्वों की व्याख्या के ममत्व से भी मेरा आत्मा जीवतत्त्व भिन्न है। मात्र ज्ञाता समझ में आ रहा है। यह कोई निमंत्रण आमंत्रण निंदा स्तुति का विषय नहीं चल रहा है। उस जीव की व्याख्या है जो जीते-जीते मात्र ज्ञायकभाव में जी रहा है और किसी में नहीं जी रहा। जिसकी व्याख्या चल रही है वह अभी संसारी ही है। ये मुक्त जीव की व्याख्या नहीं कर रहा हूँ, संसारी जीव की व्याख्या चल रही है। संसार अवस्था में जो अपने राग-द्वेष का कर्ता होने की जगह ज्ञाता बनकर जीता है वही मुक्त होता है। राग-द्वेष का कर्ता बनोगे तो उसका प्रयोग करोगे। जो जिसकी सिद्धि

करेगा उसका उपयोग करेगा। जो खड्गसिद्ध करेगा वो खड्ग प्रयोग करेगा। जो तलवार को सिद्ध करेगा वह तलवार का प्रयोग करेगा। जो बाण को सिद्ध करेगा वो बाण का प्रयोग करेगा। जो वाणी की सिद्धि करेगा वो वाणी का प्रयोग करेगा। जो जिसकी सिद्धि करेगा उसका प्रयोग करेगा और जो ज्ञाता बनके रहेगा, कर्ता बनेगा ही नहीं तो प्रयोग करेगा क्यों? ये अन्दर की साधना चल रही है, ये भीतर की साधना चल रही है। जब इस साधना में उतर जायेगा तो **'त्याग-उपादानशक्तिशून्यस्वरूपोऽहं।'** ग्रहण ही नहीं है तो त्याग किसका? मैं ग्रहणशून्य हूँ, मैं त्यागशून्य हूँ, मैं तो मात्र ज्ञाता हूँ। जगत् का कोई पदार्थ इस विद्या से मुझे विचलित नहीं करता।

बेटा! जितने भी मुनि बैठे हैं वे यह अनुभूति ले रहे हैं। उतने ही सच्चे मुनि हैं भारत की भूमि पर जितने पिच्छी कमण्डल लेकर विचरण कर रहे हैं। निज के राग-द्वेष के कर्ता बनके जो जीते हैं, वे असंयमी हैं। जो निज के भीतर गुणस्थानजन्य ज्ञाता बनके जी रहे हैं वे सच्चे संयमी हैं उनको मेरा त्रिकाल नमोऽस्तु। उनकी मैं वंदना करता हूँ। मैं तो मुनिभाव को खोजता हूँ। उसमें मैं खोना चाहता हूँ। मैं साधु के भेष की खोज कर ही नहीं रहा हूँ, साधु के भाव की खोज कर रहा हूँ। स्वयं के भीतर खोज रहा हूँ कि मेरे में साधु कितना है, असाधु कितना है? साधु की खोज कर रहा हूँ।

योगियो ! श्रमणो! स्वयं को भीतर खोजो। जो निर्ग्रन्थ में बसते हों उस ग्रन्थ निर्ग्रन्थ में खोजो स्वयं को। निर्ग्रन्थ बनके खोजो, निर्ग्रन्थ में खोजो। ये सुहावनी पर्याय, घर में होता तो किसी बाला को लुभाता। यहाँ आकर के निज के मन को लुभा लो तो मुक्तिकन्या आकर के तेरे गले में वरमाला डाल देगी। जगत् के रागियों को लुभाने के लिए शरीर सुन्दर करना पड़ता है, सम्पत्ति जोड़ के रखना पड़ती है। बेटा! कोई कन्या ऐसे ही वरमाला नहीं डालती भिखारी को। उसका स्टेण्डर्ड देखती है तब वह चुनती है। वह कन्या संसार की नारी, जिसके साथ मैं रहूँगी वो कैसा होना चाहिए, उसके घर का स्टेण्डर्ड क्या है? तो मुक्तिकन्या कहती है मेरा कान्त रत्नत्रयधर्म से युक्त है कि नहीं, इसका मन सुन्दर है कि नहीं, इसका कर्तृत्व भाव का व्यसन नष्ट हुआ कि नहीं? शील की कण्ठी से जिसका कण्ठ है उसके गले में हमारी वरमाला है। ये मुक्तिकन्या की माला है।

मुनिराजो! ये स्वयंवरमण्डप मानिए। स्वयंवरमण्डप में अनेक राजकुमार देश-विदेश के आते हैं पर कन्या एक होती है, वे अपना सिर ऊँचा करते हैं कि मुझे देखले। वह मृगनयनी कन्या उसी को चुनती है भला है भाल जिसका और भला है भाग्य जिसका। ऐसी ये मुक्तिकन्या पुनीत है, वह उसी के गले में वरमाला डालेगी जिसका मन भला, भाव भले हैं। इधर-उधर की बातों में कभी आने वाली नहीं है। ये पुनीत कन्या ऐरे-गेरे के गले में वरमाला डालने वाली नहीं है। मुमुक्षु! जब संसार की कन्या का सुख छोड़ ही दिया है तो हम दृढ़ होकर निर्णय करें, प्राप्त करके ही रहूँगा मुक्तिकन्या को। कितने ही भव लग जायें

उसकी चिन्ता नहीं है मुझे, पर विश्वास मेरा है यदि मैं भावलिंगी हूँ तो अधिक भव लगने वाले नहीं हैं। बत्तीस भव के अन्दर-अन्दर मुझे मुक्तिकन्या मिलेगी और सल्लेखना-सहित मरण किया है तो सात-आठ भव अथवा दो-तीन भव के अन्दर-अन्दर उसको वरमाला डालना ही पड़ेगी। जिसका समाधिपूर्वक मरण होता है वह सात-आठ भव से ज्यादा संसार में रह ही नहीं सकता, नियम है।

श्रावको! आपने जीवन तो जी लिया, अब मरण को सुधार लो। वह आपके हाथ में है। औषधि खाने के बाद औषधि का त्याग कर दिया करो। जन्म पराधीन था कहीं भी उत्पन्न हो गये, लेकिन मरण मेरा स्वाधीन है। मैं जहाँ मरना चाहूँगा वहाँ मरूँगा। घर में तड़प-तड़प के मरेगा, कि हॉस्पीटल में छेदन-भेदन करके मरना चाहेगा कि निर्ग्रन्थ गुरु के चरणों में णमोकार पढ़के समाधि करेगा - ये तैयारियाँ आज से करना पड़ेंगी। बुद्धि का व्यायामवाला ज्ञान भिन्न है और आत्मस्थ होकर अकर्तृत्व दृष्टि से ज्ञातृत्व में जीने वाला ज्ञान भिन्न है।

पदार्था अन्यथा लोके, शास्त्रं स्यादिदमन्यथा।
अन्यथा मोक्षमार्गश्च, लोक: क्लिश्यति चान्यथा।।10/ज्ञानां.।।

अर्थ - लोक में पदार्थ अन्य प्रकार है, यह शास्त्र अन्य प्रकार है और मोक्षमार्ग अन्य प्रकार है। यह जीव अन्य प्रकार से क्लेश उठा रहा है।

अन्यथा वेद पाण्डित्यं, शास्त्र पाण्डित्यमन्यथा।
अन्यथा परमं तत्त्वं, लोका: क्लिश्यन्ति चान्यथा।। 23/प. प्र.टी.।।

वेद पुराणों का पाण्डित्य भिन्न है, शास्त्रों का पाण्डित्य भिन्न है और आत्मा का पाण्डित्य भिन्न है। लोग तो पर के ज्ञान में क्लेश को प्राप्त हो रहे हैं। ज्ञायक भाव ही मेरी आत्मा का पाण्डित्य है। बेटा! इतना तो महसूस कर कि महाराज जो बोल रहे हैं कि ऐसा भी कोई ज्ञान है जिस ज्ञान में कुछ होता दिखाई नहीं देता पर होता सब कुछ है।

ज्ञायकभाव; जैसे ये आवाजें आ रही हैं, आ रही हैं मुझे क्या प्रयोजन? मैं ज्ञायकभाव से देख रहा हूँ, कर्तादृष्टि से नहीं, ज्ञानी! ये है साक्षीभाव ज्ञायकभाव। इधर देखो, ये हाथ का पञ्जा है। इसमें आपका क्या है ? कुछ नहीं है। आप तो दर्शक हो, देख लो; देख रहे हो इसमें न हरणपने की दृष्टि, न कर्तापने की दृष्टि, न भोक्ता-दृष्टि, मात्र ज्ञातादृष्टि। भाई! जैसे तू पर की हस्तरेखाओं को निहार रहा है, कर को निहार रहा है, परन्तु चाहे इसमें फोड़ा हो चाहे फुंसी, चाहे इसमें मोती जड़े हों, चाहे गलित अवस्था हो फिर भी तू मात्र ज्ञाता ही है, कर्ता नहीं है,भोक्ता भी नहीं है। ऐसे ही जीव! जो तेरे भावों के भीतर शुभाशुभ धाराएँ बह रही हैं उनको तू इस हाथ के समान जान, देख, उनमें कर्तापन मत ला, भोक्तापन मत ला - यही अभोक्तृत्वशक्ति है।

अमृतचन्द्र स्वामी समयसार ग्रन्थ पर, अशरीरी भगवान् आत्मा के स्वरूप के कहने वाले ग्रन्थ पर, आत्मख्याति टीका यदि नहीं लिखते तो ऐसे महान् ग्रन्थ के भीतर क्या रहस्य भरे हैं ये समझ में नहीं आता। व्यवहारदृष्टि से देखें तो ये हमारे आचार्यों के अनंत उपकार हैं, इनको स्वीकारिए। नींव की ईंट को मत भूल जाना। आचार्य समन्तभद्र, कुन्दकुन्द, अकलंक, विद्यानंदस्वामी, धरसेनस्वामी, पुष्पदन्त-भूतबलीस्वामी जैसे महान् आचार्यों को भूल मत जाना। ये नहीं होते तो आज तुमको कोई सागर दिखाई नहीं देते। आगम ही धर्म की रक्षा करता है।

बेटा! तूने एक ग्रन्थ पढ़ लिया। मैं बहुत खुश हुआ वो ग्रन्थ तेरी हृदय-अलमारी में विराजमान हो गया। जब-तक तेरा जीवन रहेगा तब-तक ये ग्रन्थ इतने दिन तक सुरक्षित रहेगा। जिनालय हो और दर्शन करने वाले न आयें तो धर्म की रक्षा क्या?

जिनवाणी हो पढ़नेवाले न हों तो आगम की रक्षा क्या? इसलिए जैसे पूजन की परम्परा को आगे बढ़ाया है उतनी स्वाध्याय की परम्परा को भी आगे बढ़ाईए। स्वाध्याय की परम्परा का यदि कहीं विच्छेद हो गया तो धर्म का विच्छेद मानिए, क्योंकि तीर्थंकर का शासन, तीर्थंकर की प्रतिमा से प्रारम्भ नहीं होता। तीर्थंकर का शासन तीर्थंकर की दिव्यध्वनि से प्रारंभ होता है। भगवान् तीर्थंकर महावीर स्वामी को कैवल्य तो हो चुका था, लेकिन शासन प्रारंभ नहीं हुआ था। वीरशासन जयन्ती क्यों मनाते हैं? क्योंकि उस दिन महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि खिरी थी। जिस दिन से ध्वनि खिरी थी उस दिन से शासन प्रारंभ हुआ था। इसलिए शासन को, व्यवहारतीर्थ को सुरक्षित रखना चाहते हो, तो स्वाध्याय बढ़ाना पड़ेगा।

बेटा! सम्पत्ति की रक्षा कैसे करना पड़ती है ये तो तेरे पिता समझा देंगे, लेकिन सनातन धर्म की रक्षा कैसे करना पड़ती है ये बालक-बालक के हृदय में रहना चाहिए है। **ज्ञायकभाव को समझने के लिए आगम ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक है। द्रव्यतीर्थ की रक्षा भी आगम से ही होगी। जब तुमको ज्ञान होगा तभी तो तुम धर्म के प्रति अनुराग रखोगे। इसलिए सतत् प्रतिक्षण प्रतिपल आगम ग्रन्थों का पारायण होना चाहिए।** चलते-फिरते, उठते-बैठते सारे काम करते हुए भी अपने ज्ञायकभावपने से दूर नहीं होना चाहिए है। खाते-खाते भी दिगम्बर मुनि कर्मों की निर्जरा करता है-असंख्यात गुणश्रेणी। यहाँ तक कि मल-विसर्जन करता है मुनि तब भी निर्जरा करता है, पूछो, कैसे? निर्जन्तुक भूमि होना चाहिए है, घास आदि नहीं होना चाहिए। जीवों को देखकर उनकी रक्षा करते हुए मल-विसर्जन करते हैं, वहाँ पर भी जीवदया विराजमान है, अहिंसाधर्म विराजमान है। अहिंसाधर्म का पालन कर रहे हैं वहाँ कर्मों की निर्जरा होगी कि नहीं होगी? होगी। आहार लेने गये हैं। उनके लक्ष्य में बैठा हुआ है कि देह का आलंबन रहेगा तो साधना निर्दोष होगी और मैं एषणा समिति का पालन कर रहा हूँ।

कहीं अशुद्धि न हो इसलिए अपने संयम की रक्षा के लिए, प्राणों की रक्षा के लिए, तप की रक्षा के लिए दिगम्बर मुनि आहार करते हैं। **'न बलष्टं न तैजष्टं'**, न बल के लिए, न तेज के लिए, न इन्द्रियों को बलवान करने के लिए आहार करते हैं। ये दृष्टि है, आहार को जाते हुए भी अभोक्ता। **'अनशन स्वरूपोऽहं'** अशन आत्मा का धर्म नहीं है, अनशन आत्मा का धर्म है। सेवन करते हुए भी मैं ज्ञाता हूँ।

भोक्तृत्व भाव में ज्ञातृत्वभाव कैसा? मैं भोक्ता कहाँ हूँ, मैं तो ज्ञाता ही हूँ। पाँच इन्द्रियों से मैं जानता ही तो हूँ। रसना से रस को जाना, घ्राण से गंध को जाना, स्पर्शन से स्पर्श को जाना, चक्षु से वर्ण को जाना, कर्ण से शब्द को जाना। जाना ही तो है, ज्ञाता ही तो हूँ, भोक्ता कहाँ हूँ ? समझो, मैं क्या बोल रहा हूँ - रस को जानोगे तो रसना पर ही तो रखा जायेगा, उसको जानो, मैं ज्ञाता हूँ, नमक खारा है जान रहा हूँ, मिश्री मीठी है, ज्ञान ही तो कर रहा हूँ, मैं तो ज्ञाता हूँ। रागी भोगता है, वैरागी जानता है। बहुत सहज में पहुँचने का विषय है, मैं ज्ञाता हूँ। जाननपने में राग-द्वेष नहीं होता, भोक्तृत्व में राग-द्वेष होता है, कर्तृत्व में राग-द्वेष होता है।

भाई ! गोंदिया में ही सब-कुछ क्यों? अन्य जगह क्यों नहीं ठहरता। तेरा कर्तृत्व है, तेरा भोक्तृत्व है इसलिए स्थान दिख रहा है। मेरा कर्तृत्व नहीं है, भोक्तृत्व नहीं है, वहाँ मुझे कोई स्थान से मतलब नहीं है। यहाँ कुछ होता है तो तुझे हर्ष होता है, यहाँ कुछ होता है तो विषाद होता है पर निर्ग्रन्थ को कहीं भी कुछ होता है तो हर्ष न विषाद, क्योंकि वह छोड़ चुका है हर्ष-विषाद। बेटा ! आनंद कहाँ है? पकड़ के रहोगे तो फँसे रहोगे। हाथ-पैर से खुल के रहना पसंद करते हो, किसी की समस्याओं का सुनना पसंद नहीं होगा। तुम्हारे घर का क्या होगा इससे कोई प्रयोजन नहीं है। संघ का क्या होगा कोई प्रयोजन नहीं है। है ही नहीं संघ तो प्रयोजन क्या ? किसी के यहाँ कोई समस्याओं का सुनना नहीं होगा। तुम्हारी विषमताओं से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।

जो मेरी आत्मा का रत्नत्रयधर्म है, जो अनंतगुण हैं, वही मेरा संघ है। 'गुण संघो हि संघो', मैं कभी एकल विहारी होता ही नहीं हूँ। मैं तो संघ के साथ ही त्रैकालिक रहता हूँ। आत्मगुणों का संघ ही मेरे साथ है - परमार्थ दृष्टि। व्यवहार से पंचम काल में ऐलक क्षुल्लक के साथ रहेगा तब भी एकल विहारी। व्यवहार-नय से तो मुनियों के साथ रहना ही आगम-वचन है। ऐलक क्षुल्लक आर्यिकाओं के साथ यदि एक मुनि रहता है, पचास क्षुल्लक ऐलक हों, आर्यिका हों तब भी मुनि एकल विहारी कहलाएगा। मात्र मुनि के साथ मुनि ही होना चाहिए है। मेरा शत्रु भी क्यों न हो एकल विहार मत करना, ये आगम वचन है। पंचम काल में, व्यवहार-दृष्टि, एकल विहारी पर विश्वास नहीं जमता, जैसे बिना शादी के युवा घूम रहे हैं उन पर विश्वास नहीं जमता, बड़े शहरों में किराये पर मकान नहीं मिलते युवाओं को। या तो तुम विद्यार्थी हो तो मिल सकता है और विद्यार्थी नहीं हो और साथ में पत्नी नहीं है तो विश्वास नहीं होता।

इसी प्रकार से जिनागम कहता है कि एकल विहारी साधु पर विश्वास नहीं होता। इसलिए व्यवहारनय से तो आपको मुनियों के साथ ही रहना चाहिए। ऐलक क्षुल्लक का तो संघ ही नहीं होता उनको नियम से गुरु के पास ही रहना चाहिए और परमार्थ-दृष्टि से मेरा एकल विहार ही नहीं होता। निश्चयनय से कभी एकल विहार ही नहीं होता, क्यों?' गुण संघो हि संघो' जो मेरी आत्मा के गुणों का समूह है वही मेरा संघ है, उससे पृथक् कब हुआ? पर **जो अपने आत्मगुणों को नहीं निहार रहा है वह संघ में रहकर के भी एकल विहारी है। जो परमार्थदृष्टि से अकेला कक्ष में बैठा है, आत्मगुणों को निहार रहा है, वह संघ के साथ है।**

बेटा! तुमने माँ का दूध पिया क्या, कितने साल तक, याद है क्या ? अपना याद नहीं है तो गाय के बछड़े को देखा होगा। माँ के आँचल में जब-तक सिर नहीं मारता दूध नहीं निकलता, बछड़ा गाय के आँचल में सिर मारता है तभी गाय के आँचल में दूध भरता है, मुख में आता है। मेरे मित्र! गाय खड़ी है, दुग्ध उसके अन्दर है जब-तक बछड़ा मुख से थन नहीं पकड़ेगा, सिर नहीं मारेगा तब-तक गाय का दूध बछड़े के पेट में कैसे जायेगा? मेरे मित्र! ये गाय, गऊ, जिनवाणी - ये चार थन इसके, जब-तक इसमें सिर नहीं मारेगा तब-तक तत्त्व का दूध कहाँ पिला पायेगी। अरे! तुझे इसके पास बैठना पड़ेगा, समझना पड़ेगा, आना पड़ेगा। गाय का दूध मुख से पीना पड़ता है, परन्तु इस गऊ का दूध कर्ण-अंजलि से पीना पड़ता है। कानों की अंजलि से। गऊ यानी जिनवाणी।

प्रथमं भारती नाम, द्वितीयं च सरस्वती।
तृतीयं शारदा देवी, चतुर्थं हंसगामिनी।।
पंचमं विदुषांमाता, षष्ठं वागीश्वरि तथा।
कुमारी सप्तमं प्रोक्तं, अष्टमं ब्रह्मचारिणी।।
नवमं च जगन्माता, दशमं ब्राह्मिणी तथा।
एकादशं तु ब्रह्माणी, द्वादशं वरदा भवेत्।।
वाणी त्रयोदशं नाम, भाषा चैव चतुर्दशं।
पंचदशं च श्रुतदेवी, षोडशं गौर्निगद्यते।।4-7/स.स.।।

सोलह नाम वाग्वादिनी सरस्वती के हैं। इनमें सोलहवाँ नाम है गौ; गौ यानी वाणी, सरस्वती। गाय का दूध पीकर के तन बलिष्ठ होता है और माँ जिनवाणी का पान करने से चेतन बलिष्ठ होता है। बेटा! तेरा तन बलिष्ठ हो ही गया, बेटा! इतने सुन्दर शरीर को तुम क्या भोगों की भट्टी पर झुलसाओगे? कैसे झुलसायेगा ? तू चिन्ता मत कर पिताजी की, सब परद्रव्य हैं। मेरा कहने का लक्ष्य था, कह दिया। विषयों की भट्टी में अनंत पर्यायें झोंक चुका है। कम-से-कम विवेक मिला तो इस पर्याय को ज्ञायकस्वरूप के लिये, भगवती जिनवाणी के लिये सौंप दें।

जगत् की अनुभूति के बारे में अपने जनक-जननी से पूछ सकते हो। ये केले के स्तम्भ; जितने छीलते जाओ, छीलते जाओ अंत में क्या निकलता है ? कुछ नहीं । ऐसे ही तुम्हारे पिताजी का सुख है, कुछ नहीं निकाल पाओगे। पानी को मथने से मक्खन नहीं निकलता है, बालू के पेलने से तेल नहीं निकलता है। भोगों की लीला में लीन होने से स्वानुभूति प्रकट नहीं होती है। मक्खन निकालना है, दही जमाना है, तो दूध को जमाना पड़ेगा, दही से छाछ बनाते हैं तब मक्खन बनता है। ऐसे ही इस आत्मा को पानी की भाँति मत बहा देना, दूध बनाके जमाना। कुछ नहीं है, बहुत-से-बहुत पचास साल की उम्र तक, उसके बाद तो ढलान है। क्या है, आयु ने झकोरे मारे, चिन्ता ने डस लिया, रोगों ने घेरा सो चमकते चेहरे कैसे हो गये? विश्वास न हो तो मंदिर में एक चित्र बना है, संसार-दर्पण। उसमें एक वृक्ष है, हाथी पकड़े हुये है, ऊपर दो चूहे बैठे हुये हैं और नीचे चार साँप, बीच में अजगर मुख फाड़े हुये हैं। आकाश में एक विमान है, उसमें विद्याधर-विद्याधरी बैठे हैं। एक पुरुष पेड़ की डाल पकड़े लटका है। मुख ऊपर किये है। उसके मुख में शहद की एक बूंद आ रही है। विद्याधरी कहती है अपने स्वामी से कि इसकी रक्षा करो, ये गिर जायेगा बेचारा। ये दो चूहे डाल को काट रहे हैं, डाल टूटेगी तो नीचे कुआ है उसमें चार साँप हैं, बीच में अजगर है। विद्याधर कहता है - प्रिये! ये नहीं मानेगा। नहीं, नहीं, स्वामी! आप करुणा करो। कहता है विद्याधर उससे - चलो भाई! आओ विमान में बैठ जाओ तो कहता है हाँ अवश्य आता हूँ, पर एक बूंद और आ जाने दो। बोले - अब आ गई चलो, तो वो कहता है कि एक बूंद और। उधर हाथी वृक्ष को हिलाता है, दिन-रात के वे काले चूहे, वे कुतर रहे थे डाली को। उधर चार गतियों के नाग बैठे हैं और बीच में निगोद का अजगर है। विद्याधरी कहती है अपने पति से वह मानता ही नहीं है। अर्हंत देव समझा रहे हैं, भगवती जिनवाणी समझा रही है, तब भी नहीं मानता है, अभागा है और चूहे डाली को काट देते हैं, हाथी वृक्ष को जोर-जोर से हिलाता है और वो अभागा चार गति और निगोद में जाकर टपक जाता है। ये सबके साथ होनेवाला है, मान लो, नहीं तो जो है सो है। अभी भी असर नहीं पड़ा।

जीवन के किसी भी पल में वैराग्य उमड़ सकता है। भाव संजो के तो रखना, आगे पढ़ लो फिर पर्याय रही तो विचार करेंगे। तीर्थंकर ऋषभदेव का सौधर्मइन्द्र अभिषेक करके लाया पाण्डुकशिला से और पिताजी के आंगन में विराजमान कर दिया और ताण्डव नृत्य किया। उसी काल में महाराजा नाभिराय पधार गये उन्होंने बालक को देखा और आँखें बन्द कर लीं तो सौधर्म इन्द्र कहता है - हे तात्! मैंने तो इनको देखने के लिये हजार नेत्र बना लिये और आपने आँखें बन्द कर लीं। सौधर्म इन्द्र! रहस्य को रहस्य रहने दो। नहीं, नहीं, आपको बताना पड़ेगा। बोले - बात ऐसी है अब मैंने इनको देख लिया है कि ये जिनदेव हैं। अब मैं नहीं चाहता हूँ इनकी छवि के बाद दूसरे की छवि प्रवेश कर जाये, इसलिये आँखें बन्द करलीं। जब समयसार जैसे वस्तुस्वरूप की व्याख्या समझ में आ जाये तो जगत् के सम्पूर्ण बाहरी ज्ञानों

से अपने कानों को बन्द कर लेना। कहीं दूसरे शब्द अंतस् में गूँजने न पायें। मात्र अकर्तृत्वस्वरूप होना चाहिये। अभोक्तृत्वस्वरूप ही होना चाहिये।

सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामानुभवोपरमात्मिकाअभोक्तृत्वशक्तिः।

सकल परिणामों से किये गये ज्ञातापने से भिन्नभाव उनके करने से बाईसवीं शक्ति में कर्तृत्वपने का अभाव था, वही यहाँ भोक्तृत्वपने का अभाव कर दो। दोनों शक्तियों में कोई अंतर नहीं है। सकल ज्ञानपने से प्राप्त भिन्न जो परिणाम हैं, नहीं भोगनेरूप अभोक्तृत्वशक्ति है। मैं मात्र ज्ञातृत्वरूप हूँ, मैं परकृतभावों का भोक्ता नहीं हूँ। स्वयं के रागादि भावों का भी ज्ञाता ही हूँ, उनका भोक्ता नहीं हूँ। ऐसा अनुभव कर रहे हैं वे परम योगीश्वर।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

23

निष्क्रियत्वशक्ति

''सकलकर्मोपरमप्रवृत्तात्मप्रदेशनैष्पन्द्यरूपा निष्क्रियत्वशक्तिः।''

सब कर्मों के अभाव से प्रवृत्त हुआ जो आत्मा के प्रदेशों का निश्चलपना उस स्वरूप अर्थात् आत्मा कर्मोदयजन्य आत्मप्रदेशों के कंपनरूप योगों से भी रहित है, अकंपस्वभावी निष्क्रिय है, यह निष्क्रियत्व शक्ति है।

24

नियतप्रदेशत्वशक्तिः

''आसंसारसंहरणविस्तरणलक्षितकिंचिदूनचरमशरीर परिमाणावस्थितलोकाकाश-सम्मितात्मावयवत्वलक्षणा नियतप्रदेशत्वशक्तिः।''

अनादि संसार से लेकर संकोच-विस्तार से लक्षित है और किंचित् ऊन चरम-शरीर-प्रमाण से अवस्थित ऐसे दोनों भावों को लिये हुए लोकाकाश परिणामस्वरूप अवयवपना जिसका लक्षण है, वह नियत प्रदेशत्वशक्ति है अर्थात् असंख्यात प्रदेश आत्मा के हैं, वे नियत हैं।

समय देशना

आचार्य प्रवर भगवन् कुन्दकुन्दस्वामी ग्रन्थराज समयसार जी में ध्रुव ज्ञायकस्वभावी भगवान् आत्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। आत्मा की सैंतालीस शक्तियों में कर्तृत्व-भोक्तृत्वशक्ति को जाना। निष्क्रियत्व शक्ति की व्याख्या यहाँ आचार्य भगवन् कर रहे हैं। जीव और पुद्गल। इन द्रव्यों में क्रियावती शक्ति पाई जाती है। क्षेत्र से क्षेत्रान्तर होना यह क्रिया है, लेकिन यहाँ उस क्रियावती शक्ति की व्याख्या नहीं है, क्षेत्र से क्षेत्रान्तर होने का निषेध करने की दृष्टि यहाँ नहीं है। **कर्मों के संयोग से आत्मा के प्रदेशों में जो परिस्पंदन चल रहा है, हलन-चलन है वह क्रिया, उस क्रिया से शून्य जो है वह निष्क्रिय।** ऐसी क्रिया जिस क्रिया के अभाव में आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है, यह प्रगट परमात्मा की दशा है। अशरीरी भगवान्, अरहंत भगवान् को भी यहाँ निष्किय नहीं कहा गया, क्योंकि अरहंत भगवान् के आत्मप्रदेशों में परिस्पंदन है। उनके अभी कर्मों की सत्ता है। जो कर्मों की सत्ता से रहित हो चुके हैं, वह निष्किय अवस्था है।

सम्पूर्ण कर्मों से अभाव अवस्था-**सकलकर्मोपरम प्रवृत्तात्मप्रदेशनैष्पन्द्यरूपा निष्क्रियत्व-शक्तिः** ॥23॥ सम्पूर्ण कर्मों से रहित जो प्रवर्त्तमान आत्मा के प्रदेश हैं स्पन्दता से रहित, वह है आत्मा की निष्क्रियत्व शक्ति। आत्मा की शक्तियाँ हैं। शक्तिरूप से जगत् के प्रत्येक प्राणी में निष्क्रियत्व शक्ति विराजती है। निहारिये, यदि इस निष्कियत्व शक्ति की उपलब्धि चाहिए है, तो योगों को सँभालने का पुरुषार्थ प्रारंभ कीजिए। पुद्गल में जो क्रिया का कारण है वह काल है, और जीव में क्रिया का कारण है वह कर्म है। **पुद्गल कालकृत परिणमन कर रहा है। जीव कर्मकृत परिणमन कर रहा है।** जैसे-जैसे कर्म की सत्ता ढीली होती जायेगी, योगों का स्पन्दन मंद होता जायेगा। श्वास रोकी नहीं जाती हमारी, श्वास रुक जाती है। प्राणायाम किया नहीं जाता, हो जाता है। नेत्रों में पलकों की टिमकार को रोका नहीं जाता, रुक जाती है। जितना गहरा सोचोगे, उतनी गहरी शांति होगी। जो क्रिया को रोकना चाहते हैं, यही परिस्पंदन है। आप लोग रोकने में परिस्पंदन कर रहे हो, रोकने में भी अस्थिरता है।

धन्य है उन जैन योगियों की धारा, उतर गये सो उतर गये। उतारने का भी भाव जिसमें न हो, जितने निज में उतर गये हैं, उनके ऊपर-नीचे बाहर के सब विकार उतर गये। जो निज में नहीं उतर पाये वो उतरने के बाद भी नहीं उतर पाये। उतारो, कि उतरो। उतारो, उतर जाओगे, उतर जाओगे तो तर जाओगे। निष्क्रियत्वशक्ति, मेरी आत्मा में निष्क्रियत्व, कोई परिस्पंदन नहीं। **आत्मप्रदेशों में परिस्पंदन होता है; द्रव्यकर्म, भावकर्म नोकर्म के सहचर से। द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का जहाँ अभाव हो चुका होता है, वहाँ कोई परिस्पंदन नहीं होता। हलन-चलन जहाँ है वहाँ पूर्ण परमात्मा नहीं है। जो पूर्ण परमात्मा है वहाँ कोई हलन-चलन नहीं है।**

मंगलाचरण की व्याख्या चल रही है, निष्क्रियत्व शक्ति तक मंगलाचरण की व्याख्या। क्या आश्चर्य **'वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं'**। जो निर्मल है, अमल है, अचल है ऐसे अशरीरी परमात्मा और हम जिनकी भी आराधना कर रहे हैं, वे चाहे भूत की चौबीसियाँ हों चाहे भविष्य की चौबीसियाँ हों, चाहे वर्तमान की चौबीसियाँ हों, हम इनकी संसार की पर्याय की आराधना कर ही नहीं रहे हैं। जो नरक में पड़ा जीव भविष्य की चौबीसी में बनने वाला परमात्मा है, उसकी नरक पर्याय की वंदना नहीं है, उसकी भविष्य की अशरीरी पर्याय की वंदना है। केवली की ध्वनि में खिर चुका है - ये भविष्य का भगवान् है। उस भविष्य के भगवान् की पर्यायों की वंदना चल रही है। उन गुणों के प्रगटीकरण की वंदना चल रही है। नरक में पड़े नारकी के शरीर की पूजा नहीं है, नरक में पड़े नारकी शरीर का जीव भविष्य में भगवान् बनेगा उस भविष्यता की पूजा है।

पर्याय की प्रत्यासत्ति पर ध्यान दीजिए, अन्यथा अनर्थ हो जायेगा। पर्याय की प्रत्यासत्ति यह 'अष्टसहस्री' का शब्द है। भाई! अष्टसहस्री जैन ग्रन्थों का वो ग्रन्थ है जिसको ग्रन्थकर्ता स्वयं कह रहे हैं; कष्टसहस्री। आज भारत की भूमि पर चन्द लोग उसे समझने वाले हैं, क्योंकि चुटकुला युग चल रहा है। उस चुटकुले युग में तत्त्व कहाँ ? पर आज प्रवचन हॉल में बैठकर आपको अपनी श्रद्धा को बदलना पड़ेगा। शास्त्री जी! सम्प्रति प्रवचनकार अपनी भाषा का स्तर गिरा चुके हैं इस बात पर कि श्रोताओं को समझ में नहीं आयेगा। जब कि सत्य ये है, वो बिचारे सुनने की आकांक्षा से तो आते हैं। तुम जैसा परोसोगे, वैसा ही चखेंगे। वक्ताओं को अपनी दृष्टि ठीक कर लेना चाहिए, क्योंकि वे प्रचारक हैं। जगत् के प्रवचनों के नहीं, प्रचारक तो जिनदेव के शासन के हैं। इसलिए व्याख्या मात्र जिनवाणी की ही होना चाहिए है। निष्क्रियत्व शक्ति, प्रगट निष्क्रियत्व शक्ति, वो प्रत्यासत्ति पर्याय की, सिद्ध अवस्था। प्रत्यासत्ति शब्द का अर्थ है निकटता। इस शब्द को नहीं समझ पाये विद्वान्। जितने भी विद्धान् हैं, तत्त्व को सुनने वाले हैं उन सबको बुला लो। मुमुक्षु! जो तू दो वर्ष की उम्र में चेष्टा करता था वो आज करके दिखा सकता है क्या? यदि वैसी चेष्टा करने लग गये, तो ये सभा बिना हँसे बच सकती है क्या? आपकी वर्तमान पर्याय में ही तीन पर्याय बदल चुकी हैं। आप शिशु थे, किशोर हुए, युवा हुए, अब चौथी पर्याय की ओर जा रहे हो। इन चारों पर्यायों को आपने वेदन किया है, पर चारों पर्यायों में आप भिन्न-भिन्न थे, फिर भी एक थे। द्रव्यदृष्टि से एक थे, पर्यायदृष्टि से भिन्न थे। जब पर्यायदृष्टि से भिन्न हो तो मात्र शरीर ही भिन्न नहीं था, परिणाम भी भिन्न थे।

पण्डित जी! इतने युवा मेरे पास आते हैं, नयनों में नीर बहाकर कहते हैं – महाराज! जो भावों की विशुद्धि चार वर्ष पहले थी, अब क्यों नहीं है। बेटा! तेरे पर्याय की प्रत्यासत्ति है। जैसे-जैसे उम्र ढलती है, वैसे-वैसे आपको परिणाम सँभाल लेना चाहिए। उम्र ढलने के काल में परिणाम नहीं सँभाल पाये, तो विश्वास रखना पर्याय नष्ट होगी तो साथ में तेरे परमात्मा का परिणमत्व भी नष्ट हो जायेगा।

निष्क्रियत्व स्वभाव आत्मा का त्रैकालिक है। ये त्रैकालिक निष्क्रिय स्वभाव होने पर जब ये जीव जिस पर्याय में होता है उस पर्याय में वैसे परिणाम होते हैं। यदि भिन्न पर्याय में भिन्न परिणाम नहीं स्वीकार करोगे, तो फिर संकर नाम का दोष खड़ा हो जायेगा। द्रव्यानुयोग से हम कहेंगे न कोई स्त्री है, न कोई पुरुष है, न नपुंसक है, ये वेद का परिणमन है। निश्चय नय। वहीं उसी स्थान पर आपको तीनों वेदों की व्याख्या करना पड़ेगी और तीनों वेदों के व्याख्या के काल में एक वेद की अनुभूति दूसरे वेद में नहीं होती है।

यदि एक वेद की अनुभूति दूसरे वेद में होने लग गई, यदि एक वेद का कार्य दूसरा वेद करने लग गया तो पुरुष भी संतान को जन्म देने लग जायेगा। तिर्यंच की अनुभूति तिर्यंच को होगी, मनुष्य की अनुभूति मनुष्य को होगी, नारकी की अनुभूति नारकी को होगी, देव की अनुभूति देव को होगी। भिन्न पर्याय की अनुभूति भिन्न पर्याय में नहीं होती। यदि भिन्न पर्यायों की अनुभूति भिन्न पर्यायों में होने लगी, फिर मनुष्य पर्याय का सुख कहाँ कहलायेगा? तिर्यंच पर्याय का दुःख कहाँ कहलायेगा? और नरक के दुःख में अन्तर कैसे होगा? और देव के सुख में अन्तर कैसे होगा? ये अज्ञानी जीवों की भाषा है कि घर में किंचित् क्लेश हुआ तो फिर लोग कहने लगते हैं कि कोई नरक नहीं होता, मेरा घर ही नरक है। ज्ञानी! ये घर नरक नहीं है। अभी तो मनुष्यगति के दुःख की अनुभूति है, इससे कोटि-कोटि गुना नरक के दुःख हैं। जीव को सुख मिल गया वह कहता है-भैया! मैं स्वर्ग नहीं जानता हूँ, मेरा घर ही स्वर्ग है। तेरा घर ही स्वर्ग नहीं है, स्वर्ग स्वर्ग है। जो अज्ञानी वर्तमान के दुःख को नरक कह रहा है, वर्तमान के सुख को ही सुख कह रहा है वह दो गति का नाश कर रहा है देवगति और नरकगति।

प्रवचन की धारा में इतने मत बह जाना कि आप वर्तमान के सुख-दुःख में ही स्वर्ग-नरक देखने लग जाओ। वर्तमान के सुख-दुःख में स्वर्ग-नरक देखने लग गये, तो आपका सम्यक् दर्शन नष्ट हो रहा है, क्यों? इसलिए कि **'देवाश्चतुर्णिकाया'**: देव चार प्रकार के होते हैं, आगम सूत्र है। नारकी, देव, तिर्यंच , मुनष्य-ये चार गतियाँ हैं। यदि आपने अपने ही सुख-दुःख को नरक-स्वर्ग मान लिया तो आपने अरहंत के वचन का घात किया, **अरहंत-वचनघाती यानी मिथ्यादृष्टि।** वर्तमान के अशुभ कर्म के वजह से पुरुष पर्याय में इतना क्लेश हो सकता है, दुःख हो सकता है, तो नरक में कितना दुःख होगा, ऐसा सोचना चाहिए।

वर्तमान की पर्याय के दुःख को देखकर के तू आत्मघात करने का परिणाम कर रहा है तो तू महाअज्ञानी, घोर पापी। आत्मघात, ये तेरे कर्म के नाश का कारण नहीं है। आत्मघात तेरी समस्या की पूर्ति नहीं है। यहाँ तुम प्राणों का वियोगकर भी लोगे तो अगली पर्याय में भोगने को तैयार हो जाओ। इसलिए कभी ये मत सोचना कि मैं कष्ट नहीं सहन कर पा रहा तो मरना ही श्रेयस्कर है। मरना कभी श्रेयस्कर नहीं है। कितनी भी विपत्ति जीवन में आ जाये, लेकिन तब भी धैर्य से सहन कर लेना। तुम नगर छोड़ के जा सकते हो, पर्याय छोड़ के जा सकते हो, पर परिणाम छोड़ के कहाँ जाओगे? कर्म न तीर्थंकर को देखता है, न मुनि को

देखता है। कर्म न विद्वान् को देखता है, न सामान्य जीव को देखता है। कर्म तो सबके साथ बराबर कार्य करता है। इसलिए पर्याय की प्रत्यासत्ति को समझना। हम त्रैकालिक शुद्धात्मा हैं-ये कर्मोपाधी - निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से कथन है।

वर्तमान की पर्याय में आपको बंध स्वीकारना पड़ेगा। बंध के अभाव से ही मोक्ष होता है। जब बंध ही नहीं है तो मोक्ष कैसा? लेकिन बंध के होने पर बंध ही मत मान बैठना। यदि बंध ही धर्म हो गया तो मोक्ष किसका? बालको ! बंधे हुए आदमी को छोड़ा जाता है कि छूटे हुए को छोड़ा जाता है? बंधे हुए को। तो मुमुक्षु! जो कर्म से बंधा होगा उसी का ही तो मोक्ष होगा। जो कर्म से छूटा ही होगा उसका क्या मोक्ष होगा। **'कृत्स्न कर्म विप्रमोक्षो मोक्षः'** सम्पूर्ण कर्मों का वियोग होना ही मोक्ष है।

ज्ञानी! ज्ञानसाधना के साथ आत्माराधना। निष्क्रियत्व होना है तो कर्मोपरंभ होना पड़ेगा और कर्मोपरंभ होना है तो करनी से उपरंभ होना पड़ेगा। करनी से उपरंभ नहीं हो तो कर्मोपरंभ नहीं हो और कर्मोपरंभ नहीं हो तो निष्क्रियत्वपना प्रगट नहीं हो सकेगा। जो-जो खोटी करनी हैं, जो-जो अशुभ प्रवृत्तियाँ हैं, जो-जो अशुभ मानसिकताएँ हैं, जो-जो अशुभवाचनिकताएँ हैं, जो-जो अशुभ कायक्रियाएँ हैं; इन सबसे पहले उपरंभ हो जाओ।

ज्ञानी! गलत आदत छोड़ते ही कुछ महसूस होता है कि नहीं, हृदय से बोलना। खोटी आदत पड़ जाये फिर छूट जाये तो आनंद आता है कि नहीं? आता है। सिद्धालय के आनंद की बात बाद में करेंगे, पहले आपके आनंद की बात करते हैं। एक घण्टे के लिए तुम घर के खूँटे से छूटकर आये, तुम्हें यहाँ आनंद आ रहा है कि नहीं? जब एक घण्टे छोड़ने पर आनंद आ सकता है तो पूरा छोड़ने पर कितना आनंद आयेगा ? लोगों ने हऊआ बनाके रखा है कि समयसार बहुत कठिन है, जबकि सबसे सरल तो समयसार ही है। सारे प्रश्नों का समाधान समयसार में ही है। हम जिसकी पूजा कर रहे हैं, अशुद्धपर्यायों में बैठा भविष्य का शुद्ध परमात्मा, उसी की पूजा कर रहे हैं। किसी अशुद्ध पर्याय से परिणत, वो अशुद्ध पर्याय की परिणति के साथ, अशुभ परिणति से युक्त, अशुभ परिणामों से युक्त प्रत्यासत्ति जिसकी चल रही है, उन परिणामों की कोई पूजा नहीं है, नहीं तो द्रव्यदृष्टि के साथ बहुत बड़ा अवर्णवाद हो जायेगा। व्यभिचारी की भी तुम पूजा करने पहुँच जाओगे, क्यों? द्रव्यदृष्टि से भगवान् आत्मा है। हाँ, द्रव्यदृष्टि से भगवान् आत्मा तो है, पर्यायदृष्टि से भगवान् आत्मा नहीं है।

पूजा द्रव्यदृष्टि की नहीं होती है, पूजा द्रव्य से युक्त पर्याय से युक्त द्रव्य की होती है। पूजा द्रव्यदृष्टि की नहीं होती, पूजा द्रव्य-पर्याय से युक्त जो होता है उसकी होती है। तात्पर्य समझिए, ये मुनिराज बैठे हैं इनके गृहस्थ अवस्था के फोटो रखे होंगे घर में, ये तो मुनिराज हो गये हैं। उनकी फोटो की आरती-पूजा कर सकते हो क्या? नहीं कर सकते। आप तो गृहस्थों की फोटो का निषेध कर रहे हो, भगवान की ये तस्वीर आदि भी कोई पूज्य नहीं है, प्रतीक हैं। चाहे भगवान् की तस्वीर हो, चाहे आचार्य-

मुनि की तस्वीर हो। मंदिर की वेदियों पर अप्रतिष्ठित तस्वीर को अर्घ्य मत चढ़ाना। गुरु को भी अर्घ्य चढ़ाना है तो आप प्रभु के सामने वैसे ही दे लो, पर तस्वीर को लक्ष्य करके मत देना। ये तस्वीर पूज्य हो गई होती, तो पंचकल्याणक प्रतिष्ठा की क्या आवश्यकता? कैसा मिथ्यात्व जन्म चुका है लोक में, क्योंकि आगम खोलना नहीं है और आँख खोलना नहीं है। थोड़ा ऊपर उठो।

एक राजहंस पक्षी था। वह मानसरोवर से समुद्र की ओर जा रहा था, शाम हो जाती है। वह एक कुए के पास बैठ जाता है। अब सहज आदत लोगों की होती है कि बैठे हैं तो झाँक कर देखते हैं क्या है? कितना ही समझदार होशियार हो वह भी झाँकेगा। हंसपक्षी ने भी ऐसा ही किया और जैसे ही झाँका उसकी परछाई नीचे पड़ गई। वहाँ एक कछुआ बैठा था, उसने जैसे ही परछाई को देखा और नीचे से आवाज आई, आप कौन हो और कहाँ जा रहे हो? राजहंस पक्षी उत्तर देता है मैं राजहंस पक्षी हूँ और मैं मानसरोवर जा रहा हूँ। कछुआ ने पूछा – क्यों, मानसरोवर कितना बड़ा है? राजहंस बोला – बहुत बड़ा है, तो उसने हाथ फैला दिए, इतना बड़ा होता है? नहीं-नहीं बहुत बड़ा होता है। उसने दोनों टांगें फैला दीं, बोला – इतना बड़ा होता है? नहीं-नहीं बहुत बड़ा होता है, उसने पूरा शरीर फैला दिया – इतना बड़ा होता है? नहीं, बहुत बड़ा होता है। उसने एक कोने से दूसरे कोने में छलाँग लगाई, इतना बड़ा होता है? बोले – नहीं होता। वह कछुआ कवि था, वह बोलता है-

हाथ पसारे, पैर पसारे और पसारा गात्र।
इससे बड़ा समुद्र है, कहन सुनन की बात॥

मैंने हाथ फैला दिया, पैर फैला दिये, पूरा शरीर फैला दिया। इससे बड़ा भी समुद्र होता है यह कहने-सुनने की बात है। हे कूपमण्डूक! जब-तक तू कुए के अन्दर बैठा है तब-तक तू कुए को ही समुद्र मान रहा है, जरा निकल के तो आ। समुद्र बहुत बड़ा होता है, ऐसे ही जो जीव एक कक्ष में, एक पंथ में, एक आम्नाय में बैठे हुए हैं, उन्हें पता ही नहीं है कि जिनागम का सागर कितना विशाल है। अपनी एकांतदृष्टि से, एकांताग्रह से आपको मुक्ति पाना पड़ेगा। तत्त्व का निर्णय करना है तो दर्शनशास्त्रों का अध्ययन करना पड़ेगा।

कुशला कुशलं कर्म परलोकश्च न क्वचित्।
एकान्तग्रह रक्तेषु नाथ! स्वपर वैरिषु॥ 8/आ.मी.॥

हे नाथ! हे वर्द्धमान!उन लोगों का यहाँ न पुण्य-कर्म घटित होता है न पापकर्म। कुशल यानी पुण्यकर्म, अकुशल यानी पापकर्म। परलोक भी घटित नहीं होता। किनके यहाँ? जो एकान्ताग्रह से ग्रसित हैं। नवग्रह के खूब हवन करवाये, पं. जी ! खूब मोती बिकवाये। अरे ! ये परिग्रह उतर जाये तो काहे के ग्रह उतारने की जरूरत है। नगों से, धागों से, ये ग्रह उतर जाते होते, तो जगत् में कोई दुःखिया ही न मिलता। आप डाक्टर हो, जिसकी आयु शेष है उसके लिए आपकी औषधि काम कर सकती है, जिसकी आयु शेष नहीं

है उसके लिए आपकी औषधि कोई काम की नहीं है। जिनका पुण्य शेष है, उनके सारे ग्रह की पूजा काम में आ जाती है और जिनका पुण्य ही नष्ट हो चुका है उनके कोई ग्रह की पूजा काम में नहीं आती। पर सत्य यह है कि जितने भी ग्रहों की पूजा करा रहे हैं वो कर्मग्रहों को मजबूत करा रहे हैं।

उस सत्य सत्ता को समझो। भगवत् भक्ति करो। आपको मालूम होना चाहिए कि कर्म, ग्रह, प्रभु, विभु, ईश्वर, हरि, हर, यम- ये सारे के सारे नाम कर्म के ही हैं।

कहाँ तुम दूसरे ग्रहों की कल्पना कर रहे हैं। विधि यानी मेरा कर्म शांत है तो सारे लोक प्रसिद्ध हैं, इसलिए सारे विकल्प छोड़ दो।

एसो पंच णमोयारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम्।।

कहीं जाने की भी आवश्यकता नहीं है आपको। किंचित् भी शंका है तो सम्यक्त्व में दोष है। कौनसा देव, कौनसी देवी तेरा घर भरते हैं ? परमात्मा की भक्ति करने से निधत्ति-निकाचित जैसे कर्म निजीर्ण होते हैं, तो उसी द्वारे पर जाना, जगत् के द्वारे पर क्यों जाना, जबकि हम कर्म के नाश के लिए आये हैं। आप अभूतार्थ भक्ति कर लेते हो। हे नाथ! अष्टकर्म का नाश हो मेरा, ऐसा बोल रहे थे। धूप चढ़ाते समय बोल रहे थे 'अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा' और उसी समय बिचारे के घर में डाका पड़ गया। अब जैसे ही डाका पड़ता है और उसको मालूम चलता है, भीतर क्या कहता है काहे की पूजा। हम यहाँ पूजा कर रहे हैं और वहाँ सब पूजा हो गई यानी यह जीव शास्त्रज्ञानी था, तत्त्वज्ञानी नहीं था।

'अष्टकर्म दहनाय' जो आठकर्म को दहन कर रहा था, उसमें पुण्यकर्म होता है कि नहीं? होता है। मोक्ष तो जब मिलेगा जब पुण्यपाप दोनों का दहन हो जायेगा। इसके पहले मोक्ष मिलने वाला नहीं है। टीकमगढ़ में विद्वत्गोष्ठी चल रही थी, तो विद्वान् लोग अपने कक्ष में बोले-महाराज को सुनो तब तो अच्छो लगत् पर इनके सुनने से जी नहीं सकते। अब ये बातें पचती कहाँ हैं। अब एक विद्वान् मेरे पास आकर बोले- महाराज ! हम लोगों में ऐसी चर्चा चल रही थी, कि इनकी बातें सुनने में बड़ी अच्छी लगत् पर उनकी बातों में जी नहीं सकते।

ज्ञानियो! जिनको जीना हो वे मेरी बातें कभी न सुनें और जिनको जीवन-मरण से रहित होना हो, वो जरूर सुनें। यह तत्त्व जीने के लिए नहीं है। ये तत्त्व जन्म-मरण से रहित करने के लिए है। सब जीने की कला सिखाते हैं, पर यहाँ तो जन्म-मरण से रहित होने की कला सिखाते हैं। कब तक जीओगे? ध्रुव सत्य है, **मनुष्य पर्याय भोगों के लिए नहीं, भगवान् बनने के लिए है।** वे अज्ञानी जीव हैं, जिनको सुन्दर पुष्प दिया था, बेटा ! तुम परमात्मा के चरणों में चढ़ा के आना। उसने उस पुष्प का हार बनाकर मात्र राग बढ़ाकर के बंध कर लिया। ऐसे ही ये पर्याय, ये तुझे पुष्प मिला है। इस पुष्प को ज्ञानी ! चारित्र के परमात्मा की वेदी पर चढ़ा देना तो तेरा भगवान् प्रगट हो जायेगा। तूने क्या किया, इसे भोगों के गले में डाल दिया।

आज नहीं तो कभी न कभी जीवन के किसी क्षण में यह समझ में आयेगा कि मैंने भूल तो की है। धन्य हैं, देखो इन्हें जो छोटी उम्र में दिगम्बरत्व प्राप्त कर लिया। ऐसी दिगम्बर दशा को प्राप्त करके भी जीव अपने स्वरूप का बोध न कर सके फिर मानना चाहिए, कोटि-कोटि हीरे दिये थे जिसे तूने कौओं के भगाने में लगा दिये।

ये जिनमुद्रा अर्थ कमाने की मुद्रा नहीं है। नंगे होकर बिना थैली डाले, फिर भी भीख माँग रहे हैं इससे बड़ा भिखारी कौन हो सकता है? जिनमुद्रा तो अयाचकवृत्ति है। इसलिए कभी मुनि बनने के भाव आयें, तो सेठों के पीछे चक्कर मत काटना। पैसे के लिए सामायिक के समय की कटौती करके बैठे रहना - यह जिनमार्ग नहीं, उन्मार्ग है। **श्री श्रीमति से दूर मति जिसकी है वही बनेगा श्री जी।**

सत्य यही है, जो कुछ धर्मसाधना कर रहे कर्मक्षयार्थ करो, बाहर का द्रव्य अपने आप बरसता है। पंडित जी ! मैं तो ये मानता हूँ कि आपने दीपक जला के रख दिया और आपने कहा – तेरे घर में कैवल्य का दीप जल जायेगा। तो मैं यही कहूँगा तूने उसे छल लिया। आप यूँ क्यों नहीं कह रहे थे कि इस दीपक को जलाते समय तुम्हारे अन्दर जो परिणामों की विशुद्धि बनेगी, उससे तेरे ज्ञान का क्षयोपशम बढ़ेगा, तेरे लिए कैवल्य की प्राप्ति होगी। सीधा-सीधा उपदेश क्यों नहीं करते हो।

भैया! पंडित जी ने तुम्हारे घर में कलश रखवा दिया और कहा – ये कलश तुम्हारे घर में रखोगे तो संपत्ति बढ़ेगी। अब यह जितना भगवान् को अच्छे से नहीं देखता उतना आते-जाते कलश को देखता है। पंडित जी ! आपने उसकी दृष्टि कलश पर टिका दी। आपको तो कहना चाहिए था कि जैसे कलश मांगलिक द्रव्यों से भरा है ऐसा तेरा आत्मघट अनंत चतुष्टय से भर जाये। वह कुंभ कलश आनंद का प्रतीक है। पंडितजी ! परिभाषा बोल दिया करो।

विकल्पों से शून्य है, कर्म-नोकर्म से शून्य है। वह आत्मा की शून्यत्व शक्ति है। कर्तृत्व-भोक्तृत्व एक मल है। उस मल से रहित हो गये सिद्ध परमात्मा, इसलिए अमर हैं। कर्म का संबंध आत्मप्रदेशों में चंचलता खड़ी कर रहा था, स्पंदन करा रहा था। अब स्पंदन से रहित हो चुके हैं। इसलिए निष्क्रियत्व शक्ति कह रही है कि वह सिद्धपरमात्मा अचल है। निष्क्रियत्व शक्ति पर ध्यान दीजिए। निष्क्रियत्व शक्ति कह रही है अचल है अचल है, अचल है। माताओ ! ऐसे भजन की पंक्तियाँ गाकर के मिथ्यात्व की पुष्टि मत करना।

चले आना प्रभुजी चले आना।
कभी वीर बनके, महावीर बनके, चले आना।
करते हैं मेरे गुरुवर मेरा नाम हो रहा है।
आपकी कृपा से सब काम हो रहे हैं,
क्या मिथ्यात्व फैला रखा है।

अरे ज्ञानी! जिनवाणी का सार अकर्तृत्व भाव है। जो परमात्मा अशरीरी सिद्ध हो चुका है, कृत-कृत्य हो चुका है उस परमात्मा को तुम कर्ता बना रहे हो, कितना दुःख है। बड़े-बड़े ज्ञानी कह रहे हैं कि मैं धर्म का प्रचार कर रहा हूँ। तुम धर्म का घात कर रहे हो। जैन-सिद्धांत का तुमको बोध नहीं है। क्यों शास्त्रीजी! तुम्हारे भगवान् कब उतरके आयेंगे, बोलो ? नहीं आयेंगे। निष्क्रियत्वशक्ति। महावीर कुन्दकुन्द नहीं हुए, कुन्दकुन्द स्वतंत्र हैं महावीर स्वतंत्र हैं। ये वो परम्परा नहीं है जो ऊपर जायें फिर नीचे आ जायें, गये सो गये। इसलिए भक्ति की भाषा में सम्यक्त्व का ध्यान रखना। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने भी तो भक्ति की है, उन्होंने कहाँ उतारा भगवान् को। तुम क्या भक्ति कर पाओगे ? लड्डू खाये, नमस्कार नहीं किया, चन्द्रप्रभु स्वामी प्रगट कर दिये, ये भक्ति की है।

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचि गौरं चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वन्देऽभिवन्द्यं महता मृषीन्द्रं जिनं जितस्वान्तकषायबन्धम्॥8/ स्व. स्.॥

इतना बोलना था कि चन्द्रप्रभ स्वामी प्रगट हो गये। आप ऐसे भक्त बन रहे हो कि मेरे निष्क्रियशक्ति से सम्पन्न भगवान् को तुम क्रियाशील बनाना चाहते हो। यह आपका निजी मिथ्यात्व हो सकता है, निजी अज्ञानता हो सकती है, परन्तु निष्क्रिय परमात्मा सक्रिय होने वाले नहीं हैं। ठीक है, क्योंकि पूरे जिनागम का सार कर्तृत्वपने का अभाव और उसमें ही कर्ता खोजने लगे। माताओ ! समझ में आया कि नहीं, जरासा सिरदर्द हुआ, पता नहीं कहाँ-कहाँ सिर टेकने लगती हो। भगवान् का तो पता ही नहीं चलता आपके सामने। अमुक चबूतरे पर जाओ, अमुक चबुतरे पर जाओ। परिवार नष्ट होना इतना घातक नहीं है, जितना सम्यक्त्व का नाश होना घातक है। पता नहीं कौनसे भव में कौन सा पुण्य किया होगा, जो मनुष्य पर्याय, जिनवाणी, निर्ग्रन्थ गुरु, वीतरागी देव वंदना के भाव मिले हैं। कहीं तुम अब छोड़ बैठे, तो आगे भविष्य अंधकार में है।

छठा काल आने वाला है। अभी पंचम काल की बाल अवस्था चल रही है, जिस दिन युवा होगा उस दिन क्या होगा, देखना? जब बाल अवस्था में इतना अनाचार फैल चुका, इसकी युवा अवस्था में क्या करोगे? मित्र! मेरी बात मान लो, शांति से निकल चलो। विकल्प छोड़ दो कौन क्या कर रहा है, किसका क्या होगा ? **'णाणा जीवं णाणा कम्मं'**। नाना जीव नाना कर्म हैं सभी के अपने-अपने क्षयोपशम हैं। इसलिए वचन भी स्वसमय-परसमय से छोड़ना ऐसा कुन्दकुन्द भगवन् का आदेश है नियमसार जी ग्रन्थ में। वर्तमान में क्षयोपशम तो कम है। मैं तो अहोभाग्य मानता हूँ जहाँ मैंने दीक्षा ली वहाँ मेरा मस्तिष्क जिनवाणी मैं लगवाया। कोई दूसरे काम में लगवा देते, तो आज जो तत्त्वचर्चा कर रहे हैं वह नहीं कर पाते। पण्डित जी ! मैं अपनी पर्याय का अहोभाग्य मानता हूँ कि जब आप पुद्गल के पिण्डों के साथ बच्चों को गोद में खिलाते हो, उनका मल बटोरते देखता हूँ तब सोचता हूँ इन हाथों से मुझे भी ऐसा

करना पड़ता, यदि मेरे हाथों में जिनवाणी नहीं आती तो। इस पर्याय का कोई उत्कृष्ट फल है, वह है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र।

पण्डित जी! नरदेह का पंचमकाल में आनंद लूटना हो, तो सच्चे भाव लिंगी मुनि बनकर बैठ जाओ। कुछ नहीं है सब जगह भटक के देख लो। भीख माँगना और भीख देना दोनों में क्लेश है, नोट कर लेना। भीख माँगना और भीख लेना दोनों ने क्लेश है। भिखारी को कोई मन से भीख नहीं देता, देना पड़ता है। माँगने वाले को कब आनंद आता है? कभी नहीं आता। जैन मुनि भिखारी नहीं हैं, वो भिक्षुक हैं। ये भीख नहीं माँगते, ये चर्या को जाते हैं, एषणा समिति पालन करते हैं। ये माँगते नहीं हैं, इन्हें कोई डालता नहीं, इनका पड़गाहन करते हैं। इस पड़गाहन वाली मुद्रा को माँगने की मुद्रा कभी मत बनाना।

श्रावको ! कभी तुमको वैराग्य आ जाये, तो आज की तारीख नोट कर लेना, इस तारीख के दिन तुमने कुछ सुना था। सल्लेखना कर लेना, पर जिनमुद्रा में ये मत कहना मेरे लिए चौका लगाओ। पर मेरा विश्वास है कि ऐसे दृढ़ हो जाओगे आप तो ऐसा दिन भी देखने को नहीं मिलेगा कि आपको ऐसा कहना पड़ जाये।

निष्क्रियत्व शक्ति को प्रगट करने के लिए कितनी क्रियाओं से उपरंग होना पड़ेगा। ज्ञानियो ! विश्वास रखो, ऐसे प्रवचन से दूर होना पड़ेगा। निज प्रवचन में लीन होना पड़ेगा। पण्डित जी ! ये अन्दर का विषय है, आपको इसलिए सुनाये देता हूँ कि कभी आप मुझे टोक सकते हो। आपने कहा था महाराज ! कभी मुझे इस प्रवचन से भी दूर होना पड़ेगा। प्रवचन से कभी दूर नहीं होना, व्याख्यान से दूर हो जाना, प्रवचन में लीन हो जाना। समाधि के काल में ये व्याख्यान भी काम में नहीं आयेगा। भारत की भूमि पर किसी भी गली में तुमको जिनमुद्रा दिख जाये, सबसे पहले नमोऽस्तु करना। पंचास्तिकाय ग्रन्थ में लिखा है, पूछा - स्वामी ! मोक्षमार्ग क्या है? तो आचार्य भगवन् कहते हैं-रत्नत्रयधर्म। स्वामी ! मुझसे रत्नत्रयधर्म नहीं पलता तो क्या करूँ? बोले - वत्स! यदि तुम रत्नत्रयधर्म को धारण नहीं कर सकते हो तो जो रत्नत्रयधर्म को धारण किये हैं और रत्नत्रयधर्म के फल को प्राप्त हो चुके हैं उनकी भक्ति करो वही तुम्हारा मोक्षमार्ग है । ये श्रावक के लिए है। श्रमण से कहा - आप ज्ञान-ध्यान में रत रहो।

दाणं पूया मुक्खं सावयेधम्मे ण सावया तेण विणा।
झाणाज्झयणं मुक्खं जइ धम्मं तं विणा तहा सो वि ॥11/र.सा.॥

ध्यान करना, अध्ययन करना; ये यति का मुख्यधर्म है। यदि यति ध्यान-अध्ययन को छोड़कर के अन्यकर्मों में लीन होता है तो सौभाग्य को प्राप्त नहीं होता, ऐसा रयणसार जी में लिखा हुआ है। यह निष्क्रियत्व शक्ति है। वह चलायमान नहीं होती, अचल है अचल ही रहेगी।

आसंसारसंहरणविस्तरणलक्षितकिंचिदूनचरमशरीरपरिमाणावस्थित-
लोकाकाशसम्मितात्मावयवत्वलक्षणा नियतप्रदेशत्वशक्तिः ॥ 24 ॥

आगे की शक्ति है **नियत प्रदेशत्वशक्ति।** अनादि काल से यह जीव संकोच और विस्तार से चिह्नित था, क्योंकि जीव शरीरप्रमाण है। कितने भी बड़े शरीर में आत्मा जायेगी, तत्प्रमाण। लोक के प्रदेश, आत्मा के प्रदेश असंख्यात हैं। इन प्रदेशों में न न्यूनता आयेगी न अधिकता आयेगी। प्रदेशत्व की दृष्टि से हम सभी एकत्वभूत हैं और स्वप्रदेशत्व की दृष्टि से हम भिन्नत्वभूत हैं। श्रावको ! हर समय दो बातें निहारना।

1. **स्वरूपअस्तित्व**
2. **सादृश्यअस्तित्व**

आपको मेरी भाषा कठिन और नवीन लगती है। स्वाध्याय आपने नहीं किया पर अब आपको समझ में आने लग गया। मेरा यह सोच है कि व्याख्यान में सबसे पहले कठिन शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिए। जिससे कि वर्तमान की पीढ़ी को बोध हो जाये कि मेरी भाषा अलग है और आगम की भाषा अलग है। **मात्र वर्तमान की भाषा में उपदेश देना प्रारंभ कर दिया आपने तो आगम की भाषा का लोप हो जायेगा और जैनत्व की प्राचीनता का हनन हो जायेगा। जैसे तुम्हारे प्राचीन मन्दिरों की रक्षा तुम्हारी संस्कृति के लिए अनिवार्य है ऐसे ही प्राचीन भाषा की रक्षा आपकी संस्कृति के लिए अनिवार्य है।**

वास्तु के नाम पर जो नवीनीकरण का भूत चढ़ा है ये इतिहास का घातक है। ये लोग कर्म- सिद्धांत को नहीं देखते। जितना धन था वो वास्तु के नाम से उस पण्डित को पकड़ा दिया और वास्तु भी ठीक नहीं हुआ और वस्तु भी गई। ऐसा नहीं कि मैं वास्तु को नहीं मानता, वास्तु के और भी उपचार हैं। मात्र तोड़ा-तोड़ी उपचार नहीं है। जैनत्व का घात मत करो, समाज को कंगाल मत करो। जब लोगों को आगम के विरुद्ध बोलने में डर नहीं लगता, तब मुझे आगम बोलने में डर क्यों लगना चाहिए? वास्तु को वास्तु तक रखिए।

जिनके पुण्य होते हैं, उनको श्मसान घाट पर संपत्ति मिल जाती है। जिनके पापकर्म आते हैं उनको राज्य के बदले मुहूर्त में वनवास हो जाते हैं।

एक दिन नागपुर का एक भैया रो रहा था, मैं मुस्करा रहा था। अरे ! वस्तुस्वरूप का बोध था। किसी के तिलक के समय जंगल हो जाते हैं उसमें क्या आश्चर्य? जो है सो है। सब नियत है। इनको कुछ और दिख रहा था। हमें कल्याण दिख रहा था। देखो, ये प्रवचन हॉल में बैठे-बैठे मुस्करा रहे हैं। अच्छा लग रहा है, क्योंकि तत्त्व समझ में आ रहा है।

वस्तुस्वरूप समझो। जो है, सो है। ये है सूत्र, ये है सत्य और कहीं मैं आपकी बात मान लेता तो पूरी समाज सत्य के बोध से शून्य रहती। देखो, आगम के पृष्ठों में क्या है और लोक के पृष्ठों पर क्या लिखा है। माँ ! मैं तो ये भी नहीं मानता हूँ कि आप मुझे आहार कराते हो। बहुत कठोर बोल दिया, पर आपको

मानना पड़ेगा। अच्छा, ये बताओ आप गंगवाल के घर जन्मे हो तो इनसे बोल के आये थे ? इस जीव से आप अपरिचित थे कि नहीं। दादाजी ! आप बेटे से अपरिचित थे कि नहीं, पता नहीं कौन से घर से आया फिर भी गोदी में खिलाया, इतना बड़ा किया और आज सम्पत्ति भी प्रदान कर दी है। तुम्हें शर्म नहीं आई, अपरिचित आदमी को सब कुछ दे दिया। जब अपरिचित को ये सब कुछ दे सकता है, तो बेटा ! तू चिन्ता मत कर, पिता ने तुझे क्या दिया है, तू लेकर आया है उसे ही इन्होंने सौप दिया है। भाग्य में न होता तो कौन तुझे क्या देता?

जो बुद्धिपूर्वक घर-द्वार छोड़कर निकल जाते हैं कितना धैर्य, बुद्धिपूर्वक निकलते हैं। यहाँ तक दीक्षा के एक दिन पूर्व हाथ में आहार कराये जाते हैं। उस दिन उनसे कहा जाता है आप आज से करपात्री हो। तुम्हारा बर्तन में भोजन करने का त्याग। वो जीव बुद्धिपूर्वक बर्तन का त्याग कर देता है। सब कुछ छोड़ के आये। क्या नियत था कि लोग तुमको भोजन देंगे ? पर मित्र ! तुम वस्त्र छोड़के आये हो, घर छोड़के, परिवार छोड़कर आए हो परन्तु पुण्य छोड़कर नहीं आए हो। मैं क्यों मुस्कुराता रहता हूँ ? मुझे मालूम है छोड़ के आया हूँ, पर पुण्य छोड़के नहीं आया। फिर जहाँ जाओगे उसमें आनंद आयेगा। भैया! सबकुछ पकड़ लो और पुण्य हमारे पलड़े में नहीं है जो मालूम घर बैठे आँसू डालोगे, कोई पोंछने वाला नहीं मिलेगा।

भगवान् ! भले कर्मों से मेरा भवन भरा हो, पर मैं विकारों से खाली होऊँ; यही मोक्षमार्ग है। समझो! अनादि संसार में जीव क्या कर रहा है? संकोच-विस्तार। ऐसे लक्षण से किंचित् न्यून, चरम शरीर से किंचित् न्यून सिद्धपर्याय। जो सिद्धालय में सिद्ध विराजमान हैं वे चरम शरीर से किंचित् न्यून हैं। ये शरीर पोला है, बहुत जगह इसमें आत्मा के प्रदेश नहीं हैं; पेट खाली है, नाक बीच में पोली है कि नहीं और जितना हिस्सा पोला है, छेद है उसमें कोई आत्मा के प्रदेश नहीं। जब आत्मा के प्रदेश ठोस हो जाते हैं, तो किंचित् न्यून। ऐसे किंचित् न्यून परिणाम वाला, लोकाकाश लोक के प्रदेश आत्मा के प्रदेश इस पर लक्ष्य हो ऐसी चौबीसवीं शक्ति नियतप्रदेशत्वशक्ति है। ये आत्मा के प्रदेश नियत हैं। चाहे मैं छोटा हो जाऊँ, चाहे बड़ा हो जाऊँ, चाहे मोटा हो जाऊँ, चाहे दुबला हो जाऊँ; ये सब असामान्यजाति पर्यायों की अवस्थाएँ हैं, परन्तु मेरी आत्मा का प्रदेशत्वपना है, वो असंख्यात प्रदेशी है, वो ही रहेगा, वो ही है। सोने की शलाका, सोने की चूड़ी, सोने के बिस्कुट, सोने का कुछ भी हो, जिसने तोल लिया है कि एक तोला सोना है। जिसको एक तोला सोना दिख रहा है मात्र वह न शलाका पर रोता है, न चूड़ी पर हँसता है उसे तो मालूम है मेरा एक तोला सोना पक्का है। ऐसे ही ज्ञानियो ! चाहे मैं किसी भी पर्याय में चला जाऊँ मेरा असंख्यात प्रदेशी सोना, जो है सो है। अब मत रोना, हँसना भी नहीं फिर क्या करें, मध्यस्थ रहना। हँसना कषाय है, रोना कषाय है।

एक प्रदेश भी आत्मा का न वृद्धि हुआ है, न ह्रास को प्राप्त हुआ है। पद्मरागमणि दुग्ध में क्षेपण करने पर उसकी आभा दुग्धप्रमाण हो जाती है इसी प्रकार आत्मा जो है जिस शरीर में प्रवेश करती है उस शरीर प्रमाण है, लेकिन फिर भी आत्मा के प्रदेशों का ह्रास नहीं है और वृद्धि नहीं है। अज्ञानी जीव कभी छोटा मानता है, कभी बड़ा मानता है, यह देह की अवगाहना का छोटा-बड़ापना है, आत्मा अणुप्रमाण है, आत्मा महान् विशाल है। जब ये निगोदिया शरीर में होती है आत्मा तब अपने उत्पत्ति के तृतीय समय में सर्वजघन्य अवगाहना जीव की है। लब्ध्यपर्याप्तक अवस्था में जब यह जीव तृतीय समय में होता है तब उसकी जघन्य अवगाहना होती है। यही आत्मा जब महामच्छ के शरीर में होती है तब यह वृद्धिमान अवगाहना को प्राप्त होता है। एक हजार योजन लम्बा, पाँच सौ योजन चौड़ा, ढाई सौ योजन मोटा, जो महामच्छ होता है उसके शरीर में जो आत्मा होती है तब वृद्ध अवस्था को प्राप्त होती है।

आत्मा चाहे लघुरूप हो, गुरुरूप हो, प्रदेशत्व की दृष्टि से असंख्यात प्रदेश ही है। ध्यानस्थदशा में विराजा योगी न अणु पर्याय को देख रहा है, न गुरु पर्याय को देख रहा है, वह मात्र असंख्यात प्रदेश को देख रहा है। यही जीव जब लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त होता है तो सम्पूर्ण लोकप्रमाण होता है। ऐसा आकाश का एक भी प्रदेश अवशेष नहीं बचता जहाँ आत्मा के प्रदेश व्याप्त न हों। अहो आश्चर्य ! अनंतानंत सिद्ध भगवन्त हुए हैं वे सभी भगवन्त अरहंतपूर्वक ही हुए हैं, केवली भगवन्त ही बने हैं। अनंतानंत केवली भगवन्तों के आत्मा के प्रदेश मेरे आत्मा के प्रदेशों से स्पर्शित हो चुके हैं। लेकिन तब भी ज्ञानी ! किंचित् भी उन आत्मप्रदेशों की मुझे अनुभूति नहीं हुई। अढ़ाईद्वीप में कोई न कोई भगवन्त समुद्घात कर रहे होंगे। हमको विषय-कषाय, आरंभ-परिग्रह से समय नहीं मिल रहा है कि ऐसा भी वेदन कर सकें।

अशरीरी सिद्ध परमात्मा, उनके आत्मा के प्रदेश भी यहाँ व्याप्त हैं, जैसे कि एक टेलीविजन की ही नहीं अनेक टेलीविजनों की वर्गणाएँ यहाँ व्याप्त हैं। पर जब आप टी.वी. चलाते हो और जो भी चैनल देखना है वह देखते हो। क्या उस स्थान पर दूसरे चैनल की वर्गणाएँ नहीं हैं, तरंगें नहीं हैं ? देखने की दृष्टि किसके प्रति है हमारी ? जब कोई व्यक्ति अशुभ गन्दे चैनलों को देख रहा होता है, तब कुछ चैनलों में आचार्य, मुनियों के प्रवचन भी चल रहे होते हैं, धार्मिक अनुष्ठान भी दिखाई देता होगा। उसी क्षेत्र में वे वर्गणाएँ भी हैं, लेकिन पापी जीव उन्हें देखने के भाव ही नहीं करता है सो उनको दिखाई नहीं देता है, यही दृष्टि समझना। जैसे तुम जो चैनल खोलना चाहते है वो चैनल के चित्र आपको दिखते हैं, वो शब्द सुनाई पड़ते हैं। ऐसे ही जिस जीव का अन्त:करण जैसा होता है उसको इसी कक्ष में अनन्त सिद्धों की अनुभूति का आनंद आ सकता है। परोक्षभूत। इसी कक्ष में आचार्य, उपाध्याय, साधु के ध्यान का आनंद तुम ले सकते हो, लेकिन सत्य यह है कि अन्त:करण तुम्हारा जैसा होगा वैसा आप कार्य करोगे।

साधु बनने के लिए कोई भिन्न प्रदेश नहीं होता और रागी बनने के लिए कोई भिन्न प्रदेश नहीं होता। अशुभ चित्रों की तरगों को फैलाने के लिए कोई भिन्न प्रदेश नहीं है और शुभ चित्रों की तरंगों को फैलाने के

लिए कोई भिन्न प्रदेश नहीं है। विशेषता समझना, जो वर्तमान का विज्ञान कह पा रहा है इसको कुन्द-कुन्द भगवन् जैसा योगी कह चुका है और कुन्दकुन्द ने जो कहा है वह कुन्दकुन्द के होने से नहीं बना है, यह शाश्वत नियम है।

अण्णोण्णं पविसंता देंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वि णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति ।। 7/पं.का.।।

एक-दूसरे में प्रवेश करने पर भी, एक द्रव्य-दूसरे को अवकाश देने पर भी अपने स्वभाव का त्याग कोई जीव नहीं करता। अनेक प्रकार की तरंगें यहाँ भरी-हुई हैं, जो जिस स्वभाव में हो उस स्वभाव में है। पण्डित जी! कितना सारा समय इस जीव ने नमक, खटाई मिर्च में लगा दिया है; कर्म-नोकर्म की पुष्टि में ही लगाया है। कर्म-नोकर्म से रहित होने का पुरुषार्थ यदि जीव कर लेता तो आप आज वहीं होते, जहाँ अनंत भगवंत विराजते हैं। बुद्धि ही नहीं चली, विवेक ही नहीं जगा, ज्ञान का प्रयोग परार्थ में लगा दिया हमने। तत्त्वज्ञ ज्ञानी जीव ज्ञान का प्रयोग स्वार्थ में लगाता है। एक साबुन से स्नान करते समय कोई दूसरा व्यक्ति दिख जाये तो आप तुरन्त अपना साबुन साबुनदानी में रख देते हो, क्यों? वह पानी में घुल न जाये, नहीं तो व्यर्थ में नष्ट हो जाएगा, दूसरा लगा लेगा तो व्यर्थ में समाप्त हो जाएगा। वो ज्ञानी दस-पन्द्रह रूपये के साबुन पर तुम्हारा इतना लक्ष्य रहता है कि दूसरा प्रयोग न कर ले, कहीं पानी में न घुल जाए, पर तेरी पूरी की पूरी पर्याय पर में घुल रही है, तुझे विवेक नहीं जग रहा है कि मैं कर क्या रहा हूँ?

जो धर्म है वो पक्षों से अतिक्रांत है। जो वास्तविक धर्म है वह पक्षों से अतिक्रांत है, नयों से अतिक्रांत है, वह समयसार है। इसलिए नियतदृष्टि पर दृष्टिपात करो नियतशक्ति कह रही है, मैं नियत हूँ। **नियतशक्ति कह रही है मैं नियत हूँ, मेरा चैतनत्व नियत है, मेरा जीवत्व नियत है, मेरा अस्तित्व नियत है, मेरा वस्तुत्व नियत है, मेरा प्रमेयत्व नियत है, मेरे साधारण गुण, मेरे असाधारण गुण, मेरे साधारणासाधारण गुण नियत हैं। एक भी गुण मेरा अनियत नहीं है।** क्षायोपशमिक ज्ञान जब राग से, कषाय से मिश्रित होता है, तब परगुण परद्रव्य परपर्याय इसमें लिप्त होते हैं, परन्तु कितने भी लिप्त हो जाओ, आप समझ न पाओ, आप जान न पाओ, आप देख न पाओ लेकिन तब भी नियत ही है। पुनः कहूँ, सामने श्रीफल रखा हुआ है, उस श्रीफल को कोई दूर से देखे और बेल का फल कहे, हाँ आप कह सकते हो। कोई बेल ही माने, हाँ मान सकते हो, लेकिन श्रीफल को बेल बना नहीं सकते हो।

मुमुक्षु! तुम्हारा जानना, देखना, सुनना विपरीत हो सकता है, लेकिन वस्तु का स्वभाव विपरीत नहीं हो सकता, कोई विपरीत नहीं कर सकता। कितने रागी जीव हैं कोई आपको विद्वान् कहता है, कोई आपको दामाद कहता है, कोई आपको पिता कहता है, कोई आपको मित्र कहता है, यहाँ तक कि कोई आपको शत्रु भी कहता है, कोई आपको मातुल कहता है, कोई भानजा कहता है, कोई चाचा कहता है। जगत् के रागी जितने संबंध तेरे में देखना चाहते हैं वे सारे संबंध लगा रहे हैं। पर हे जीव! तुम भूल मत कर

लेना। ये रागियों के निज के राग के संबंध हैं, पर तू तो नियत है, मात्र असंख्यातप्रदेशी जीवद्रव्य ही है। इस पर्याय में ही देख चुका हूँ कितने लोग मेरे से क्या बोल चुके हैं। पर सत्य ये है, न मैं उनका था, न हूँ, न रहूँगा। जैसा लोग मुझे समझ रहे हैं, यह समझ आपकी है कि मेरी? आपकी है।

क्या प्रमेय परप्रमेय हो सकता है? क्या मैं प्रमाता परप्रमाता हो सकता हूँ? क्या प्रमीति परप्रमीति हो सकती है ? मेरा प्रमेय मैं ही हूँ, मेरा प्रमाता मैं ही हूँ और मेरी प्रमीति मैं ही हूँ। मेरा ज्ञान मैं हूँ, मेरा ज्ञेय मैं हूँ, मेरी ज्ञप्ति मैं हूँ और मेरा ज्ञाता मैं हूँ। परमार्थ दृष्टि की व्याख्या है। इस ध्रुवसत्य को नहीं जानने के कारण मुझे आप अपना मान लेते हो और कोई अपना नहीं मानते हो। अरे भाई ! तुम दोनों ही अज्ञानी हो। जो मुझे अपना मान रहा है वो अज्ञानी है ही, जो अपना नहीं मान रहा वह महाअज्ञानी, बोले - क्यों? आपने ऐसी मानसिकता बनाई क्यों? आपका राग से दूषित चित्त है, राग-द्वेष से दूषित ज्ञान की धारा चल रही है, मैं तो अपने स्वभाव में नियत हूँ।

मुमुक्षु! ये ज्ञानी कह रहा था अब क्या होगा? मैंने कहा - क्या होगा कुछ भी तो नहीं होगा, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव, स्वपरिणमन के अलावा जगत् में कोई भी द्रव्य का परिणमन होता नहीं, स्वचतुष्टय में ही हूँ, स्वचतुष्टय में ही रहूँगा, स्वचतुष्टय में ही था, ऐसा त्रैकालिक है।

श्रीफल बेलफल नहीं बनता, बेलफल श्रीफल नहीं बनता। एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में अत्यंताभाव है। ध्रुव सत्य यह है, कैमरे वाले भैय्या ! आपके कैमरे में यह मेरा हाथ आ रहा है क्या, मेरा चेहरा आ रहा है क्या ? पण्डित जी! इस भाई के कैमरे में, मैं प्रवेश कर गया, या तो कैमरे को चैतन्य हो जाना चाहिए या मैं जड़ हो जाऊँगा और जब मैं उसमें प्रवेश कर चुका हूँ तो यहाँ कौन है जो बैठा है, वह कौन है?

ज्ञानी! व्यवहार से यह कहा जा रहा है कि कैमरे में महाराज का चेहरा आ रहा है, पर सत्य कुछ और ही है। उसके लेंस ही तद्रूप परिणत हो रहे हैं। मैं उसरूप परिणत हुआ नहीं हूँ न वह मेरे में प्रवेश हुआ है। कोई भी ज्ञेय किसी के ज्ञान में प्रवेश नहीं करता। प्रत्येक ज्ञेय परज्ञान से भिन्न होता है। ज्ञान का ही परिणमन ज्ञेयरूप होता है, निज ज्ञान ही परिणमन करता है। ध्यान दो! इस बात को समझना फिर आगे की शक्ति की व्याख्या कर रहा हूँ और शायद यह विषय समझ में आ गया तो देश का ही नहीं विश्व के प्रत्येक प्राणी को समझ में आ जायेगा। श्रावक से लेकर श्रमण को भी समझ आ जाएगा कि मैं कितने भ्रम में डूबा हूँ। पण्डित जी को आप अच्छे नहीं लग रहे हो, परन्तु अपने बेटे को आप अच्छे लग रहे हो, तो आप अच्छे हो कि बुरे हो? शीघ्र उत्तर दो? न अच्छा न बुरा, फिर क्या हो? जो है सो है।

आप अपने बेटे को अच्छे लग रहे हो। हो सकता है चारित्र की दृष्टि से देखे, महाव्रत की दृष्टि से देखे। कहाँ से अच्छे हो? कहीं से अच्छे नहीं हो, फिर भी बेटे को अच्छे लग रहे हो और यह ज्ञान की दृष्टि से देखे तो आप अच्छे हो पण्डित जी को फिर भी आप बुरे लग रहे हो। कहाँ से आप बुरे हो, समझो विषय को। बड़े-बड़े तपोधन, बड़े-बड़े ज्ञानी जीव इस विषय से निज को दूर किये बैठे हैं। ज्ञानी! आपको

जो बुरा लग रहा है, मित्र! सत्यता कुछ और है। उसमें आपको दोष दिख रहे हैं। आपका अस्मद और युष्मद तत्। व्याकरण में तीन शब्दों पर ध्यान दीजिए।

जिस व्यक्ति को जिनागम समझना हो, उसे व्याकरण तो समझना ही पड़ेगा। आगम के रहस्यों को समझना है तो न्यायशास्त्र, व्याकरणशास्त्र इन दो के अभाव में जो द्रव्यानुयोग समझना चाहता है वह गाय के सींग से दूध निकाल करके वन्ध्या के बेटे को दूध पिला रहा है। जो न्याय, व्याकरण, सिद्धांत के अभाव में द्रव्यानुयोग समझना चाहता है वह बिलखते वन्ध्या के बेटे को आकाश के पुष्पों का दोना बना करके और गाय के सींग से दूध निकाल करके, कछुओं के पीठ के बालों की रस्सी बनाकर के उसको पिला रहा है। यदि सारी चीजें असंभव हैं तो द्रव्यानुयोग का ज्ञान भी सिद्धांत, न्याय, व्याकरण के अभाव में असंभव है।

शास्त्री जी! जो आप बुरा देख रहे हो, यह आपके अन्दर बैठी बुराई है उसे देख रहे हो कि सामने वाले में बुराई है। ध्यान दीजिए, कैमरे के लेंसों का ही परिणमन है। मुकुर मुकुर है। मुकुर यानी दर्पण। मयूर मुकुर में प्रवेश करता नहीं, मुकुर मयूर में प्रवेश करता नहीं पर मयूर दर्पण में प्रवेश नहीं है। दर्पण की स्वच्छता के कारण ही मयूर दर्पण में झलक रहा है, परन्तु मयूर का प्रवेश नहीं है। मुकुर में मयूर ऐसे ही आपके ही ज्ञान में आपके ही ज्ञेय, आपका ही ज्ञान आपका ही विपर्यास कर रहा है। आपकी बुद्धि ही विपरीत चल रही है। आपकी बुद्धि की विपरीतता से आपको पर के दोष दिख रहे हैं, पर सत्य है पर के दोष तेरे में किंचित् मात्र भी प्रवेश नहीं करते, पर के गुण भी प्रवेश नहीं करते। बुरे लग रहे हैं, इसका तात्पर्य है इसके अन्दर द्वेष-कषाय काम कर रही है। उनके बेटे का जो काम कर रहा है, तो वो अच्छे लग रहे हैं। जीव न बुरा है न अच्छा है। वो तो जो है सो है। जब भी आपके अन्दर किसी के दोष दिखेंगे, ध्रुव सत्य है वो तुम्हारे भीतर हैं, खोज कीजिए। आज रात्रिभर सो नहीं पाओ तो विकल्प मत करना। ये खोज के रखना कि वास्तव में मैंने दूसरे में दोष देखे हैं, वे थे किसमें ? समझो, समझो।

ज्ञानी ! सुनो इतने से मोबाईल की आवाज तुम सुनना नहीं चाहते, उस आवाज से जो तुम्हें विघ्न हुआ है, इस आवाज को सुनकर आप कितने असंतुष्ट हो रहे हो। मित्र ! विश्वास रखना, जिस दिन स्वरूपदृष्टि बन जायेगी उस दिन राग-द्वेष की बात सुनने में इतना ही असंतोष होगा। क्या सुन्दर है, क्या असुन्दर है? नीम अच्छा है कि बुरा है? आपके लिए नीम कड़वा है, बुरा है पर ऊँट के लिए मीठा है। 'किं सुन्दरम् किं असुन्दरम्' **जिसको जिससे राग की पुष्टि होती है वही द्रव्य उसके लिए सुन्दर लगता है और जिससे राग की पुष्टि नहीं होती है, वही वस्तु असुन्दर लगती है। पर वस्तु न सुन्दर है न असुन्दर है, जो है सो है।**

कम-से-कम इतना निर्णय हो जाये जब मैं आपके पक्ष में रहूँगा तो आपको में बहुत अच्छा लगूँगा। यदि मैं दूसरे पक्ष में चला जाऊँगा तो मैं आपको बहुत बुरा लगूँगा। मैं न बुरा था, न अच्छा था। सत्य ये है, तुम्हारे राग की पुष्टि का कारण नहीं बना तो मैं आपके लिए बुरा हो गया। मैं आपके लिए राग की पुष्टि

का कारण बन जाता तो आच्छा हो जाता। अब समझ में आ गया है। कभी किसी के अच्छे होने की कोई आवश्यकता नहीं है। विश्वास रखो, मुमुक्षु! जब-तक तुम घर में कमा के दे रहे हो तब-तक तुम बेटे की माँ के लिए बहुत अच्छे हो। कुछ दिन कमाना बंद कर दो, घर में बैठकर खाना प्रारंभ कर दो, फिर देखना, बेटे की माँ कितने सत्कार से देखती है ? कम-से-कम परीक्षा ही कर लो एक दिन। बराबर है फिर भी अभागा बैठा रहता है वहीं, बुरा तो नहीं लग रहा लगे तो लग जाये, जो है सो है। वस्तुव्यवस्था ऐसी है, पर की कमियाँ मेरे में नहीं होतीं। सारे दोष मेरे ही भीतर होते हैं, सारे गुण मेरे भीतर होते हैं। बेटा! तुम मेरे सामने बैठे हो और तुम्हारा मित्र टीकमगढ़ में बैठा है। उसको आपकी याद आ गई, लगा मैं मिलूँ पर तू तो मेरे पास बैठा तत्त्व उपदेश सुन रहा है। उसके अन्दर संकल्प-विकल्प हो रहे हैं तो ये संकल्प-विकल्प मित्र में तू उत्पन्न कर रहा है कि मित्र में ही हो रहे हैं, उसके भीतर ही हो रहे हैं। विश्वास रखना, संकल्प-विकल्प, परवस्तु को जो विकल्प बना रहे हैं वे विकल्प कहने के लिए परवस्तु के हैं। सत्यता यह है कि व्यक्ति के भीतर ही उत्पन्न हो रहे हैं।

इस विषय पर इतना ध्यान रखना, आपके अन्दर किसी को सताने के, दुःखी करने के परिणाम नहीं हैं फिर भी आपके कारण कोई परेशान हो रहा है। आप तनाव में नहीं जीना, उसकी निज की बुद्धि है। कोई आपसे कहे भी कि आपके कारण ऐसा हो रहा है, यह भी उसकी दुर्बुद्धि है। मैं उसके सुख का कर्ता नहीं हूँ, मैं उसके दुःख का कर्ता नहीं हूँ, समझ में आ रहा है ! आज समझ में न आये तो किसी न किसी भव में समझ लेना, क्योंकि मैं इस प्रयास में नहीं रहता कि ये अभी समझ में आ जाये। मैं तुम्हारी समझ का कर्ता नहीं हूँ।

मैं अपने विषय को बोलने का कर्ता हूँ, व्यवहार से ! यदि मेरे कहने से सभी समझ गये होते तो यहाँ सभी आर्यिकाएँ मुनि बन गये होते। जब तीर्थंकर भगवंतों के समझाने से तुम्हें समझ नहीं आई तो मेरे समझाने से तुम क्या समझ पाओगे ? ये अज्ञानी की भाषा है कि मैंने इतने लोगों को व्रती बना दिया, इतने लोगों को त्यागी बना दिया। पर सत्य ये है, जो बनना चाहता है उसी के लिए आप निमित्त बन सकते हो, जो बनना नहीं चाहता है उसके लिए आप निमित्त नहीं बन सकते हो। एक ही वस्तु सम्यक्त्व का साधन है, वही वस्तु मिथ्यात्व का साधन है, इसे स्वीकारते हो क्या आप लोग ? एक ही वस्तु सम्यक्त्व का कारण है और जो मेरे सम्यक्त्व का कारण है वही दूसरे के लिए मिथ्यात्व का कारण है। मानते हो क्या, नहीं मानते हो क्या? आपके नहीं मानने से वस्तुव्यवस्था भंग हो जायेगी क्या? नहीं।

तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।। त.सू. ।।

तत्त्वार्थ पर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है और तत्त्वार्थ पर श्रद्धान नहीं करना मिथ्यात्व है।

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं-सम्यग्दर्शनमस्मयम् ।। र.क.श्रा. ।।

भगवान् समन्तभद्र स्वामी रत्नकरण्ड श्रावकाचार में लिख रहे हैं। ये परमार्थ शब्द को छोड़ के मात्र श्रद्धान शब्द को पकड़ लेते हैं वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। सभी गुरुओं पर श्रद्धान करना सम्यक्तव न हीं है, सभी शास्त्रों पर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन नहीं है, सभी देवों पर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन नहीं है। क्या हुआ महाराज? अरे! मतलब समझिए।

परमार्थभूत जो देव हैं उन पर श्रद्धान करना; परमार्थभूत जिनवाणी चाहे प्रथमानुयोग हो, चाहे करणानुयोग हो, चाहे चरणानुयोग हो, चाहे द्रव्यानुयोग हो उन सम्पूर्ण द्वादशांग जिनवाणी पर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। परमार्थभूत गुरु जो विषय-कषाय आरंभ-परिग्रह से रहित हैं, जो ज्ञान-ध्यान-तप में लीन हैं, उन सभी मुनियों पर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। आज हम परिभाषा को छोड़कर के सम्यक्त्व की खोज कर रहे हैं, पण्डित जी! परिभाषा को छोड़कर के तुम व्यक्ति में परिभाषा लगा रहे हो, यह तुम्हारा पहला मिथ्यात्व है। परिभाषा को परिभाषित कीजिए। जो विषय-कषाय, आरम्भ-परिग्रह से रहित है, जो ज्ञान-ध्यान-तप में लीन है उसे आप क्या मानते हो? बोलो न मुख से – साधु परमेष्ठी, सच्चा गुरु। ऐसी परिभाषा जहाँ दिख रही हो उसे गुरु मानना चाहिए कि नहीं मानना चाहिए? मानना चाहिए, तब भी तुम नहीं मानते हो तो तुम्हारा एकान्त-मिथ्यात्व है न कि पहचान है। अठारह दोषों से रहित जिसमें देवत्व दिख रहा है उस देवत्व को न मानकर के मात्र तुम महावीर स्वामी को ही मानते हो तो उनको नहीं मान रहे हो, तुम एकान्त-मिथ्यात्व में डूब रहे हो, वह सम्यग्दर्शन नहीं है।

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण, सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन, नान्यथा ह्याप्तता भवेत्॥ र.क.श्रा. ॥

जो आप्त के द्वारा कथित हो और दूसरे से उल्लंघनीय न किया जा सके, खोटे मार्ग का खण्डन करने वाला हो इसका नाम शास्त्र है। ऐसी परिभाषा जिसमें घटित हो रही है तब भी तुम नहीं मानते हो। यदि आप कहते हो कि – मात्र मुझे पद्मपुराण ही अच्छा लगता है। कोई कहता – मुझे मूलाचार अच्छा लगता है। मात्र मुझे समयसार ही अच्छा लगता है – यह आपकी अज्ञानदृष्टि है। रुचि किसी विषय की हो सकती है, पर परिभाषा रुचि की नहीं बनेगी, वस्तु की बनेगी। जो परिभाषा कुन्दकुन्द में घटित हो रही है वही समन्तभद्र में आ रही है तो हमारे लिए दोनों गुरु स्वीकार हैं। पण्डित जी! सम्यग्दर्शन की महिमा तो गाई जा रही है, पर सम्यग्दर्शन में लगाया नहीं जा रहा है। पण्डित जी! ये ज्ञानी, सम्यग्दर्शन की, तत्त्व की व्याख्या करने के लिए तैयार हो जाते हैं लेकिन अपनी पर्याय में चिपका रहे हैं, परमार्थ दृष्टि से लोगों को दूर कर रहे हैं। यदि मैं नागपुर की समाज को नियम दिला दूँ कि मात्र मेरे पास ही आना, विश्वास मानना, मेरे से बड़ा मिथ्यादृष्टि कोई नहीं होगा। मैं इन लोगों को मात्र अपनी पर्याय में ही चिपकाना चाहता हूँ। इन बिचारों के परमार्थ का घात कर रहा हूँ। पर सत्य ये है - समन्तभद्रस्वामी ने तीन श्लोक लिखे हैं। इन तीन श्लोकों के साथ जो घटित न हो रहे हों, उनसे मध्यस्थ हो जाना। न निंदा न

स्तुति, मध्यस्थ हो जाना। निंदा करोगे तो नीचगोत्र का आस्रव होगा, स्तुति करोगे तो विपरीतता की पुष्टि होगी, इसलिए मध्यस्थ हो जाना। जो है सो है।

सभी लोग चल कर नहीं आ सकते, अतः आपका कर्तव्य बनता है कि ये सब बातें घर में जा के दोहराया करो, इससे लाभ यह मिलेगा कि आपका विषय तैयार हो जायेगा और जो नहीं आया था क्या पता कौन सा शब्द कान में पड़ जाये उस तोते की भाँति कल्याण हो जाये। संक्षेप में कथा सुनाता हूँ। पण्डित जी प्रवचन सुन रहे थे। इन्होंने पिंजरे में एक तोता पाल रखा था। पर सम्यग्दृष्टि जीव कभी अपने घरों में तोते कबूतर पालता नहीं है, बन्धन में किसी को डालता नहीं है। जिनके घरों में श्वान, बिल्ली आदि हिंसक जानवर पलते हैं वे जीव अपने सम्यक्त्व के बारे में विचार कर लें। मैं कुछ नहीं कह रहा, मैं तो संकेत मात्र करता हूँ। हिंसक जानवरों के पालने वाले के घर में साधु के आहार करा दोगे तो पाप का बंध होगा। एक तोता पिंजरे में था। पण्डित जी बोले - आज नगर में महाराज जी पधारे हैं, मैं उनके उपदेश सुनने जा रहा हूँ। तोते में एक विशेषता होती है, वह बात कर लेता है मनुष्यों जैसी। वो कहता है – जो महाराज जी बताएँ वो आप मुझे अवश्य सुनाना। प्रवचन चल रहा था कि त्याग करने से जीव बंधनमुक्त हो जाता है। अब पण्डित जी ने रोज की तरह तोते को उपदेश सुना दिया कि त्याग करने से जीव बंधनमुक्त हो जाता है। तोते ने सोचा **'नान्यथा मुनि भाषणम्'** मुनि के वचन अन्यथा (झूठे) नहीं हो सकते। उस तोते को पण्डित जी समझ नहीं पाये, उस तोते के लिए सोने की कटोरी में काजू-किशमिस की खीर रखी। तोते ने सोचा, देखूँ तो आज होता क्या है? उसने बिल्कुल भी नहीं देखा कटोरी की तरफ और भोजन नहीं किया, पानी भी नहीं पीया तो उसका मुख मुरझा गया। जब मलिनता आ गई चेहरे पर तो वह शांत होकर लेट गया। पण्डित जी ने देखा, यह क्या हुआ ? तोते का स्वास्थ ठीक नहीं है। कहीं ऐसा न हो जाये पंचेन्द्रिय जीव की हत्या का दोष मेरे सिर पर आ जाये, ये न खाना खा रहा है न पानी पी रहा है, ये हो क्या गया इसको। उन्होंने पिंजरा खोलकर देखना चाहा, जैसे ही पिंजरा खोला पक्षी उड़ गया और जाकर के भवन की मुंडेर पर बैठ कर कहता है - ज्ञानी ! पण्डित जी ! **त्याग करने से जीवबंधन मुक्त हो जाता है।** एक दिन का उपदेश सुनकर ही तोता बंधनमुक्त हो जाता है। क्यों समझ में आया? त्याग करने से जीव बंधनमुक्त हो जाता है। तोता कहता है, पण्डित जी! आपने सामान्य में ले लिया था, पर मैंने विशेष देखा।

ऐसे ही जगत् के जितने भी विषय हैं उन्हें सामान्य में मत देखो विशेष में देखो। यह निष्क्रियत्व शक्ति और नियत प्रदेशत्व शक्ति की व्याख्या हुई।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

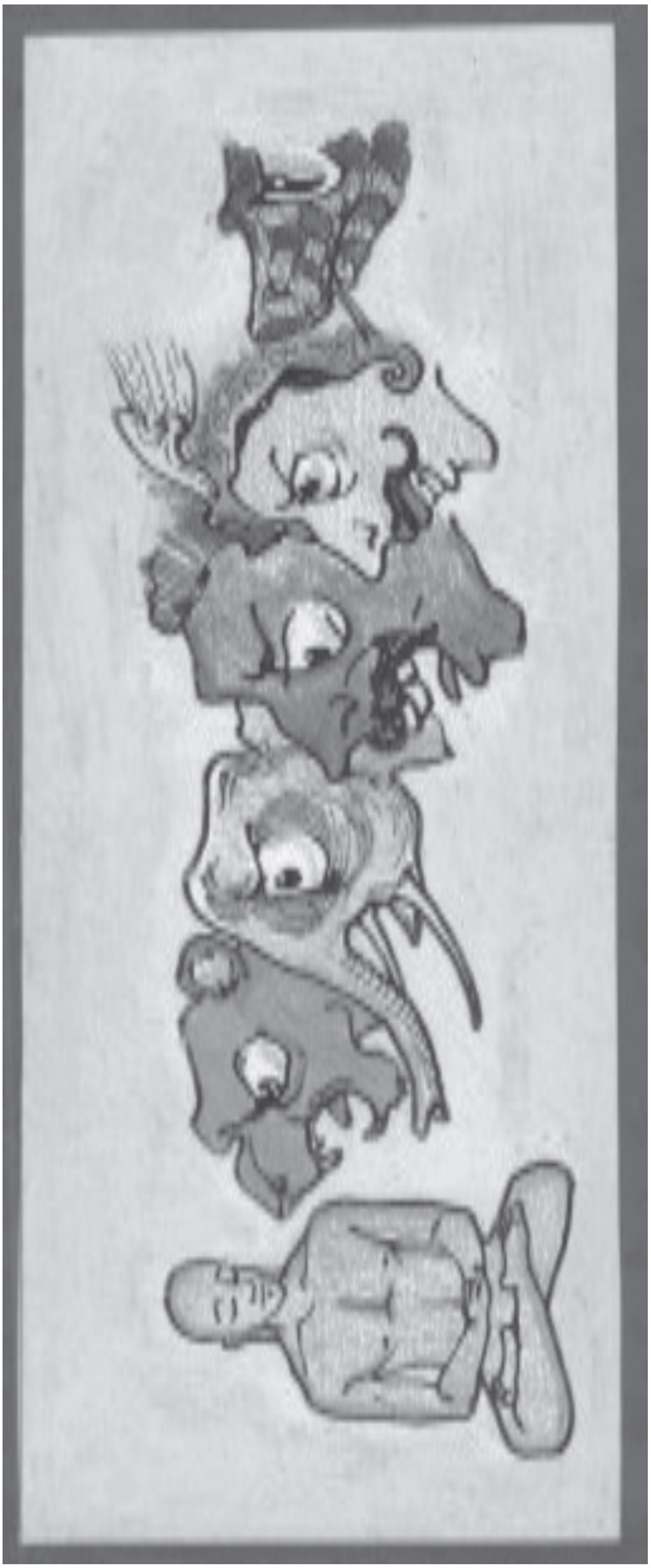

25

स्वधर्मव्यापकत्वशक्तिः

''सर्वशरीरैकस्वरूपात्मिका स्वधर्म व्यापकत्वशक्तिः।''

सब ही शरीरों में एक स्वरूप रहना, पर शरीर के धर्मरूप न होना और अपने धर्मों में व्याप्त होना-यह स्वधर्मव्यापकत्व शक्ति है।

26

साधारण-असाधारण-साधारणासाधारणधर्मत्वशक्तिः

''स्वपरसमानासमानसमानासमानत्रिविधभावधारणात्मिका साधारणासाधारणसाधारणासाधारण धर्मत्वशक्तिः।''

स्व और पर दोनों में परस्पर समान, असमान और समान - ऐसे तीन प्रकार के भावों के धारण करने रूप यह साधारण-असाधारण-साधारणासाधारण धर्मत्वशक्ति है।

27

अनन्तधर्मत्वशक्तिः

''विलक्षणानन्तस्वभावभावितैकभावलक्षणा अनन्तधर्मत्वशक्तिः।''

परस्पर लक्षणों वाले अनंत स्वभावों से भावित ऐसा एक भाव है लक्षण जिसका - ऐसी अनंतधर्मत्व शक्ति है। विभिन्न लक्षणों के धारक, विभिन्न अनंतगुणों को धारण करने की शक्ति का नाम ही अनंत धर्मत्व शक्ति है।

समय देशना

भव्य बंधुओ ! आचार्य प्रवर भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज समयसारजी में ध्रुवज्ञायक स्वभावी आत्मा के सहज स्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। अब पच्चीसवीं बहुत-बहुत समझने लायक शक्ति है, **स्वधर्मव्यापकत्व शक्ति।** आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं।

सर्वशरीरैकस्वरूपात्मिकास्वधर्मव्यापकत्वशक्तिः ॥

अनेकानेक शरीरों में रहने पर भी स्वधर्म व्यापकत्व से युक्त हो। आज तक मेरी आत्मा ने अनंतानंत शरीर धारण किये हैं। जैसे एक दीपक हाथ में लो। उस दीपक को आप किसी कक्ष में ले जाओ, उस कमरे को प्रकाशित कर रहा है। फिर निकल जाओ, दूसरे कक्ष में ले जाओ, उसको प्रकाशित करेगा कि नहीं करेगा? कोटी-कोटी कक्षों में दीपक लेकर चले जाओ, लेकिन दीपक प्रकाशित तो करता रहेगा पर कमरेभूत नहीं होगा। दीपक दीपक ही रहता है, दीपक कक्ष नहीं हो जाताहै। ऐसे ही मुमुक्षु! ये मेरी आत्मा दीपक के तुल्य अनेक देहों को प्रकाश देती रही, अनेक देहों में प्रवेश करती रही लेकिन फिर भी दीपक की ज्योति के समान अपने ज्योतिगुण को नष्ट नहीं कर पाई। ऐसे ही मेरी आत्मा अनंत देहों में प्रवेश करने पर भी अपने ज्ञायकभाव का नाश नहीं कर पाई। समयसार को समझने के लिए मोह छोड़ना पड़ेगा। समयसारभूत बनने के लिए मोह त्यागना पड़ेगा।

भैया ! ममत्वदृष्टि की व्याख्या करते रहोगे, तो मतिष्क में वही भर जायेगा फिर आपको वही दृष्टिगोचर होगा और निर्ममत्व बुद्धि की व्याख्या करोगे तो आपको वही समझ में आयेगा। सम्पूर्ण शरीरों में रहकर, अनेक शरीरों में एकरूप रहकर भी आत्मा शरीरभूत नहीं हुआ। यह गुण आपकी आत्मा में है कि नहीं? है। विश्वास रखना, इसको भूल मत जाना कितने कमरे बदल चुके हो, पर कमरेभूत नहीं हुए हो।

मैं गोरा हूँ, मैं साँवला हूँ, मैं गुरु हूँ, मैं शिष्य हूँ, मैं कुछ नहीं हूँ, जो है सो है।

न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तन्द्रा,
चिदानंद रूपं नमो वीतरागं ॥6/वी.स्.॥

न मैं कृष्ण हूँ, न मैं शुक्ल हूँ, मैं तो मात्र चिदानंदभूत हूँ। चिद्चिद्एव, मैं तो मात्र चैतन्य धातुमय ही हूँ। ये भी आनंद है, इस आनन्द को जिसने एक बार चख लिया, सारे जगत् के आनंद दूर हो जायेंगे। चिद्चिद् स्वचैतन्य-चैतन्यमात्र है, स्वधर्मभूत है। जब भी मुनि बनना, मात्र चैतन्य को चैतन्य में लगाने के लिए मुनि बनना, अन्य कोई काम करने के लिए जैनमुनि बनने की आवश्यकता नहीं है। विश्वास रखना, मैं बहुत अच्छे से कह रहा हूँ। जगत् के सम्पूर्ण पदार्थों की अनुभूति अनेक पर्यायों में की जा सकती है पर चैतन्य से चैतन्य की अनुभूति के लिए मात्र एक दिगम्बर मुद्रा है। अन्य विषयों की अनुभूति तो आप

तिर्यंच पर्याय में भी कर चुके हो पर चैतन्य भगवान् आत्मा की अनुभूति के लिए मात्र दिगम्बर मुद्रा है। विद्वानो ! इसकी ये महिमा बताओ, अन्य कार्यों में लिप्त होकर के उस कार्य की पुष्टि के लिए निर्ग्रंथ की महिमा मत बताइये।

यों चिन्त्य निज में थिरभये, तिनअकथ जो आनंद लह्यौ।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाहीं कह्यौ ।।6/11, छ.ढा.।।

पं. दौलतरामजी जो लिख रहे हैं ये पूरी की पूरी पंक्तियाँ परमात्म प्रकाश में लिखी हैं। इनको पण्डित जी ने पद्यानुवाद कर दिया है।

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन माहिं त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते।।4/5, छ.ढा.।।

पण्डित जी ! आप अर्थ करते तो क्या करते ? केवल ज्ञानी के छिन माही की बात करते और त्रिगुप्ति की बात ही नहीं करते। फिर ज्ञानी कहाँ लगाते? मैं और सभी पंडित ज्ञानी महान्, तुम करो तपस्या। आप जितने कर्म खपा पाओगे, उतने हम शास्त्र पढ़कर सब खपा लेते हैं। मेरे मित्र ! इसका यह अर्थ है ही नहीं। ये प्रवचनसार की गाथा है। इसका पद्यानुवाद किया है दौलतराम जी ने -

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसय सहस्स कोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि उस्सासमेत्तेण ।। 238/ प्र.सा. ।।

जिन कर्मों की क्षपणा अज्ञानी जीव हजार वर्ष, करोड़ वर्ष में कर पाता है उन कर्मों की क्षपणा ज्ञानी जीव तीन गुप्तियों से कर लेते हैं ऐसा वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन क्षणमात्र में क्षय कर लेता है। देखो, पूछ लेता हूँ - सोलह मुक्की न्याय जानते हो? जो बिना गवाही के बात करे वो सोलहमुक्की न्याय के सोलह घूँसा खाये। तात्पर्य- एक बालक अनुशासनहीन था। उसका पिता परेशान हो गया। पिता ने उसे घर से भगा दिया। वह भागते-भागते इन्दौर होते हुए निमाड़ चला गया। वहाँ मिर्च की खेती होती है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी जीभ बंद नहीं होती, चले फिर सो बोलते ही रहते हैं। वह बालक क्या बोलता है – यहाँ तो मिर्चों के ऐसे ढेर लगे हैं जैसे हमारे यहाँ चने के ढेर लगे रहते हैं। वहाँ के पटेल को गुस्सा आ गया। बोले – ऐसा कहीं होता है कि चने के ढेर होते हैं, उसे गुस्सा आ गया, उसे लगा मेरी हँसी कर रहा है। बालक के पास कोई गवाही तो थी नहीं कि चने के ढेर होते हैं। उस पटेल ने पहलवान बुलवाया और कहा – इसको आठ घूँसे लगाओ। उसे आठ घूँसे लग गये। अब वहाँ से पिट कर वह अपने यहाँ बुंदेलखण्ड आ गया। उसकी बोलने की आदत थी। बोला – देखो, कितने चने के ढेर लगे हैं जैसे मिर्चों के ढेर लगते हैं। तो वहाँ के पटेल ने पकड़वा लिया, बोले – पकड़ो इसे और आठ घूँसे लगाओ। कितने घूँसे लगे? सोलह। ये सोलह घूँसे क्यों लगे? बिना गवाही के। बिना प्रमाण के बोलोगे तो सोलह मुक्के खाने पड़ते हैं।

जो आचार्य भगवन्तों ने कहा है उसमें कोई शंका नहीं है। स्वधर्म व्यापकत्व शक्ति; निज धर्म का द्रव्य में अभाव होता ही नहीं है, वो त्रैकालिक है। नियत है स्वधर्म। मेरा धर्म मेरा ही है, आपका धर्म आपका ही है। स्वरूप-अस्तित्व से मेरा अपना कोई अस्तित्व है। सादृश्य-अस्तित्व से जैसा मैं हूँ ज्ञान-दर्शन स्वभावी, वैसे आप हैं ज्ञान-दर्शन स्वभावी। सादृश्य-अस्तित्व से एक होने पर भी आपका-हमारा स्वरूपअस्तित्व भिन्न ही है। भाई! जैसा निगोदिया का ज्ञायकत्व है वैसा सिद्धों में ज्ञायकत्व है; जीवत्व दृष्टि। परन्तु सिद्धों का ज्ञायकत्व शुद्ध ज्ञायकत्व भाव है, निगोदिया का ज्ञायकत्व अशुद्ध ज्ञायकत्व है। शुद्ध ज्ञान-चेतना, अशुद्ध ज्ञान-चेतना। ज्ञान-चेतना को भी आप दो रूप में देखिए। यदि ऐसा नहीं स्वीकार पाओगे तो फिर मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ज्ञान का अभाव करना पड़ेगा। इसलिए ज्ञानगुण की पर्याय शुद्ध भी होती है, अशुद्ध भी होती है। स्वभावगुणव्यंजनपर्याय, विभावगुणव्यंजनपर्याय। मति श्रुत अवधि मनः पर्यय - ये जीव द्रव्य की विभावगुण व्यंजनपर्याय हैं और केवलज्ञान, केवलदर्शन - ये जीव की स्वभावगुणव्यंजनपर्याय हैं।

आलाप पद्धति, नय चक्र - इन दो का अच्छे से अध्ययन कर लो फिर द्रव्यानुयोग का खूब आनंद लूटो। जो आलाप पद्धति को नहीं समझ पाये और सीधे समयसार सुनते हैं वे भ्रमित हो जाते हैं। फिर वे कहते हैं - मेरे में और सिद्धों में कोई अन्तर नहीं है। अरे भाई ! सादृश्य-अस्तित्व से अंतर नहीं है। स्वरूप-अस्तित्व से महान् अंतर है। मेरा स्वरूप भिन्न है, उनका स्वरूप भिन्न है। तिर्यक् सामान्य, ऊर्ध्वता सामान्य। **सामान्यं द्वेधा तिर्यगूर्ध्वता भेदात्** ॥ प.मु.सू.॥

विश्वास मानना, जीव में इतनी बुद्धि नहीं है कि अनेक विषयों को एक साथ समझ पाये, संसार की अनुभूति भी लेता रहे और तत्त्व का निर्णय भी करता रहे। पण्डित जी ! अभी भी इतना आगम अपने पास है कि पूरी पर्याय लगा दो तब भी नहीं समझ पाओगे। बिल्कुल स्वतंत्र होकर बैठना पड़ेगा।

साधु ज्ञानी क्यों हो जाते हैं ? साधु ज्ञानी क्यों नहीं बन पाते ? **जो साधु समाज के प्रपञ्चों, राजनीति और समाजनीति में लिप्त हो जायेगा उसका आध्यात्मिक क्षेत्र शून्य हो जायेगा। आध्यात्मिक जीवन जीना है तो समाज और राजनीति से अपने आपको पृथक् रखना पड़ेगा।** अग्नि के पास मक्खन का पिण्ड रखोगे तो पिघलेगा। राजनीति समाजनीति में बैठोगे तो निज के स्वभाव से दूर हो जाओगे।

स्वपरसमानासमानसमानासमानत्रिविधभावधारणात्मिका साधारणासाधारणसाधारणा साधारणधर्मत्वशक्तिः ॥ 26 ॥

समान, असमान, समानासमान; साधारण धर्म, असाधारण धर्म और साधारणासाधारणधर्म। ये तीन धर्म हैं मेरी आत्मा में।

अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वमगुरुलघुत्वं, प्रदेशत्वं, चेतनत्वमचेतनत्वं, मूर्तत्वं, अमूर्तत्वं द्रव्याणां दश सामान्य गुणाः।

मेरी आत्मा में अस्तित्व गुण है। अस्तित्व गुण मेरी आत्मा में है। इसे समझिए, अस्तित्व यानी विद्यमान सत्ता। जिस जीव को अस्तित्व का बोध हो चुका है वह कभी चेहरे को मलीन नहीं कर सकता। ज्ञानियो! मेरा नाश कब होगा, बता सकते हो? बता दो, मैं बिल्कुल गुस्सा नहीं करूँगा। अनंतभव गुस्सा करते-करते निकल गये, अब गुस्सा करने से क्या लाभ? पंचमकाल में आत्मा की रक्षा करना है तो कषाय करना छोड़ दो। माँ! जिस दिन अस्तित्व गुण समझ में आ जायेगा तू कभी अपने बेटे के गाल पर चाँटा नहीं मार सकती। पर जान लेना अलग विषय है, समझ लेना अलग विषय है।

एक ग्लास में दूध भरा है। उस ग्लास को तुम्हारे बच्चे ने जमीन पर गिरा दिया। आप सत्य बताना, बेटे को कितने प्रेम से देखोगे, दुलार से सिर पर हाथ फेरोगे? महाराज! हाथ फेरना तो छोड़ो, जम के गाल पर एक लगाऊँगा। माँ! धिक्कार हो तेरी दृष्टि को, जो ग्लासाकाश में दूध था वो सामान्याकाश में गिर गया है। दूध के अस्तित्व का विनाश कहाँ हुआ है? वो जो था वो है कि नहीं? बेटे के गाल पर चाँटा क्यों मारा, शीघ्र उत्तर दो। दूध के कारण मारा तो दूध सामने दिख रहा है। जिस दूध से तेरे राग की पूर्ति होने वाली थी वह नहीं हो पाई। उस राग ने तेरे बेटे के चेहरे पर चाँटा पड़वा दिया। ज्ञानी! दूध भी गया, पूत भी गया। दूध के अस्तित्व का नाश हुआ क्या? आपके इष्ट का वियोग हो गया, मृत्यु हो गई। उसकी आत्मा का नाश हुआ क्या? उसके अस्तित्व का नाश हुआ क्या? फिर क्यों रोते हो? **वस्तु के लिए जगत् में कोई रोता ही नहीं है, वस्तु के लिए जगत् में कोई हँसता ही नहीं है। अपने राग के लिए रोता है, अपने राग के लिए हँसता है, सब स्वार्थ का संसार है।**

अनंत गुणों से मण्डित ये भगवान् आत्मा अपने त्रैकालिक चिद्रूपस्वभाव से युक्त है। सैंतालीस शक्तियों में साधारण, असाधारण, साधारणासाधारण। साधारण धर्म आत्मा में है, असाधारण धर्म आत्मा में है और साधारणासाधारण धर्म आत्मा में है। अस्तित्वगुण जो है साधारण धर्म है। प्रत्येक द्रव्य में अस्तित्व गुण है। जीव में अस्तित्व गुण है। **जो गुण सभी द्रव्यों में समान हो उसका नाम साधारणगुण है।** अस्तित्वपना पुद्गल में भी है; अस्तित्वपना धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन द्रव्यों में भी है और अस्तित्वपना जीव द्रव्य में भी है। अस्तित्वधर्म की दृष्टि से, वस्तुत्वधर्म की दृष्टि से, प्रमेयत्वधर्म की दृष्टि से इन द्रव्यों के ये धर्म हैं। इनकी अपेक्षा से आत्मा साधारण धर्मी है। **ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य - ये आत्मा के असाधारण धर्म हैं। चैतन्य जो भाव है, चिद्रूपता जो है, ज्ञान-दर्शन जो है वह आत्मा को छोड़करके अन्य द्रव्य में नहीं पाया जाते, इसलिए असाधारण हैं।**

एक-एक गुण से मण्डित आत्मा नहीं है, इसलिए एकरूप से जो आत्मा को समझता है वह आत्मा को क्या समझ पायेगा? **आत्मा अनेकरूप है, साधारणधर्मी भी है और असाधारणधर्मी भी है।**

अमूर्तत्व आत्मा में साधारण धर्म है, मूर्तत्व असाधारण धर्म भी है। पुद्गल में नहीं पाया जाता, इसलिए आत्मा में अमूर्तत्व असाधारण धर्म है। धर्म, अधर्म, आकाश, काल में पाया जाता है इसलिए साधारण धर्म है। एक ही समय में साधरणधर्मी है, एक ही समय में असाधारण धर्मी भी है और एक ही समय में साधारणासाधारणधर्मी भी है, ऐसे गुणों से युक्त आत्मद्रव्य है।

जिसने त्रिगुणात्मक आत्मा को सामान्य, असामान्य, सामान्यासामान्य - ये त्रिलक्षणात्मक आत्मा के धर्म को जान लिया है; वह जीव कभी अपने अस्तित्व को निहारता है, कभी अपने असाधारण धर्म को देखता है, कभी अपने साधारण धर्म को देखता है, कभी साधारणासाधारण धर्म को देखता है। **'अस्तित्वं सत्रूपत्वं'** अस्तित्व यानी सत्रूपत्व। मैं अस्तिधर्मी हूँ, सत् मेरा धर्म है, सत् द्रव्य का लक्षण है। नाश मेरा हुआ नहीं, नाश मेरा होगा नहीं, नाश मेरा हो रहा नहीं, मैं अपरिणामी हूँ। नाश मेरे में हो रहा है, नाश मेरे में होगा, नाश मेरे में हो रहा था - परिणामी धर्म। **ये द्रव्य स्यात् परिणामी, स्यात् अपरिणामी।** निज द्रव्य गुणों का परिणमन चल रहा है, निजत्वभूत ही चल रहा है इसलिए परिणामी है। पर मेरे सत् का विनाश नहीं होगा, मैं जीवत्वभूत ही रहूँगा, जीवत्वभूत ही था, जीवत्वभूत ही हूँ– त्रैकालिक। इस समय अपरिणामी हूँ। एक ही समय में द्रव्य परिणामी भी है। एक ही समय में द्रव्य अपरिणामी भी है। जो द्रव्य को परिणामी ही मानता है वह अनित्यवादी बौद्ध। जो द्रव्य को अपरिणामी ही मानता है वह नित्यवादी सांख्य। **जैनदर्शन द्रव्य को स्यात् परिणामी, स्यात् अपरिणामी मानता है।** हम क्षणिक एकान्तवादी नहीं हैं, हम नित्य एकान्तवादी नहीं हैं। अपरिणामी ही होगा, तो वस्तुत्व घटित नहीं होगा। परिणामी ही होगा तो वस्तुत्व घटित नहीं होगा। जीव में भव्यत्वशक्ति, अभव्यत्वशक्ति; ये त्रैकालिक है। पारिणामिक भाववाला भव्यत्व अभव्यत्व यहाँ नहीं समझना। आलापपद्धति में वर्णित जो इक्कीस भाव हैं वहाँ से ग्रहण करना।

भव्यत्व भाव नहीं होगा तो आत्मा कूटस्थ हो जाएगी। अभव्यत्व भाव नहीं होगा तो आत्मा क्षणिक हो जाएगी, इसलिए भव्यत्व भाव भी है अभव्यत्व भी है। **क्लेश कहाँ है, अशांति कहाँ है? पर के अस्तित्व में निज का अस्तित्व खोजना - ये तुम्हारे दु:ख का कारण है।** निज के अस्तित्व को पर के अस्तित्व में देखना - ये तुम्हारे अशांति का कारण है। मित्र! **जिसने वस्तुस्वरूप को समझ लिया है वह साम्यभावी है।** पण्डित जी! मैं आपके यहाँ से निकला, आपने प्रणाम किया? नहीं किया। यदि आपने मुझे प्रणाम नहीं किया और मैं कहूँ - पण्डित जी ने मुझे नमस्कार क्यों नहीं किया? महाराज! यही तुम्हारे तत्त्व की भूल है। पर हे मुनिराज! साम्यभाव तुम्हारा धर्म है। पण्डित जी की विनय से तुम मुनि नहीं बनोगे। पण्डित जी विनय नहीं करेंगे तो तुम्हारे मुनिपने का विनाश नहीं होगा। यदि तुम्हारे अन्तस् में कषाय की चौकड़ियाँ– अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ– इन सर्वघाति प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय, देशघाति

प्रकृति का उदय होने पर हे जीव ! जो तेरे परिणामों की धारा है उसे कोई रोकने वाला नहीं है। किसी की वंदना से, किसी की अवंदना से मुनिधर्म का प्रगटीकरण होता नहीं है। मेरे प्रमत्त-अप्रमत्त सत्ता का अस्तित्व मेरे में है।

आप मुनि होकर भी दुःखी हो सकते हो, कब? मैं आपके यहाँ आया, आपने मेरी वंदना क्यों नहीं की? महाराज! आपने अपने मुनिपने के अस्तित्व को पर की वंदना में खोजा है इसलिए आप क्लेश को प्राप्त हो रहे हो। आप अपने द्वारा अपने आप में वंदनीय हो फिर आपको पर की वंदना का प्रयोजन क्या? समझ में आ रहा है ? देखो, द्रव्यानुयोग के भंग बहुत सूक्ष्म हैं और इन भंगों को जिसने समझ लिया उसकी विशुद्धि कभी भंग नहीं हो सकती है और जो इन भंगों को नहीं समझ पाया वह घर गृहस्थी को भग्न करके तो भग आयेगा, लेकिन संयम को निर्विघ्न नहीं रख पायेगा।

'संक्लेश मुक्त मनसा'। अपने मन को संक्लेशता से मुक्त रखने के लिए दिगम्बरी दीक्षा धारण की जाती है। कर्मों से मुक्त होने के लिए तुम माला फेर रहे हो और संक्लेशता से तुम मुक्त नहीं हो पा रहे हो, माला तुम्हें मोक्ष नहीं भेजेगी। संक्लेशता से मुक्त मनसा ही तुम्हें मुक्ति देगा। जहाँ श्रमण पर गुणों में निहारेगा वहाँ श्रमण कभी श्रमणत्व को प्राप्त नहीं कर सकेगा। जो सच्चा श्रमण होगा, भावलिंगी योगी होगा, वह योगी पर अस्तित्व में निज के अस्तित्व की खोज नहीं करेगा। मेरा अपमान कहाँ, मेरा सम्मान कहाँ? मैं श्रमण से बात कर रहा हूँ। **हे श्रमण! तेरे अन्तस् में मूलोत्तर गुण विद्यमान नहीं हैं यही तेरा तेरे द्वारा अपमान है।** हे श्रमण !! हे श्रावक ! जो तेरे धर्म का लक्षण है वह लक्षण तेरे में निहित नहीं हो पा रहे हैं और तू उन लक्षणों में खरा नहीं उतर रहा है तो तेरे द्वारा तेरा ही अपमान है। निज गुणों से मण्डित है तो तेरा तेरे द्वारा ही सम्मान है। **निज सम्मानीय होने से मोक्ष मिलेगा, पर सम्मानीय होने से अहंकार भी आ सकता है। पर सम्मान पराधीन है, निज सम्मान स्वाधीन है। पर सम्मान वचन का विषय है पर सम्मान वाणी का विषय है; निज सम्मान अवाच्य है, अनुभव गम्य है।**

अहो धरती के देवताओ ! श्रमणो ! श्रावक के द्वारा की गई पूजा पर्याय की है, पर निज की पूजा निज के द्वारा कर लेना; ये परिणामों की है। कहीं क्लेश नहीं है। निज चतुष्टय से हट करके कोई पुरुष कोई क्रिया करता नहीं है। स्वचतुष्टय से शून्य होकर के किसी भी द्रव्य में परिणमन नहीं होता। स्वभाव-परिणमन भी होगा तो स्वचतुष्टय में होगा, विभाव-परिणमन भी होगा तो स्वचतुष्टय में ही होगा। सत् है; स्वगुण में मैं सत् ही हूँ, पर-गुण में मैं असत् ही हूँ। द्रव्यदृष्टि से समझना, सुनना मात्र नहीं। आपको लग रहा है कि मैं मात्र बोल रहा हूँ, मैं चल रहा हूँ। उसके भीतर आप भी चलो। स्वचतुष्टय में मैं सत् ही हूँ, पर-चतुष्टय में मैं असत् ही हूँ। मैं यदि ईमानदार हूँ, मैं सत्यवादी हूँ, मैं अहिंसावादी हूँ, मैं ब्रह्मवादी हूँ, मैं ब्रह्मचर्य में हूँ, मैं अपरिग्रहवादी हूँ।

हे ज्ञानी! पर के सम्मानों में अपनी नियति मत ले जा। व्यभिचारी हुए बिना पर में विचार जाता नहीं। निज ब्रह्म से हटे बिना पर में विचार जाता नहीं, निज ब्रह्म से च्युत होना व्यभिचार है। स्त्री-पुरुष के व्यभिचार तो पशुवत् हैं, यानी निज के परिणामों को पर में ले जाना ही व्यभिचार है। इसलिए जो परम ब्रह्म है, जो समयसार है वह ब्रह्म ब्रह्म ही है। कोई जगत् कर्ता ब्रह्मा ग्रहण नहीं कर लेना। ये जगत्-ब्रह्मा की बात नहीं है, ये चैतन्य भगवती आत्मा ब्रह्मभूत है उसकी व्याख्या है। **निज ब्रह्म से हट के जो भी है, व्यभिचार ही है। पर की वस्तु को झाँक-झाँक कर देखना, यही तो चोरी है।** निज द्रव्य को छोड़कर पर को देख रहे हो चोरी है।

निज की सत्ता को छोड़ करके पर सत्ता में अपनी पूज्यता देख रहे हो, यही तो असत् जीवन है। मित्र ! पर से अपनी पूजा के परिणाम रख रहे हो तो क्लेश को प्राप्त हो रहे हो। संक्लेश भाव ही तो हिंसा है। इन सब भावों में तेरा जो ममत्व बैठा है यही तो परिग्रह है। भगवान् गौतमस्वामी ने प्रतिक्रमण सूत्र में सूत्र दिया है। गौतमस्वामी ने कहा है – वोस्सरामि। हे श्रमणो ! दिन में, अहोरात्रि में; पाक्षिक, चातुर्मासिक, वार्षिक, सांवत्सरिक, युगप्रतिक्रमण, उत्तमार्थ, ईर्यापथ कितने प्रतिक्रमण कर रहे हो ? एक प्रतिक्रमण में भी तुम्हारी दृष्टि लग गई तो समझो **'ममत्तिं वोस्सरामि, निम्ममत्तिं उवसंपज्जामि।'** विश्वास रखना, जब यह दृष्टि बनती है तो जगत् की सारी चेष्टाएँ पागलवत्, उन्मत्तवत् दिखाई देती हैं।

ज्ञानी! सब झलकता है। हम पर-चतुष्टय में निज को प्रतिष्ठापित कर रहे हैं इसलिए क्लेश है। हम स्वचतुष्टय में ही स्वचतुष्टय को देखने लगेंगे तो क्लेश नाम की कोई वस्तु नहीं है। आप अपने परिणामों में स्वतंत्र हो। जब मैं अपने परिणामों में स्वतंत्र हूँ तो आप भी तो हो। भूल कहाँ चल रही है ? हम अपने परिणामों को तो बदलना चाह नहीं रहे और दूसरे के परिणामों को अपने प्रति बदलना चाह रहे - ये कष्ट है। समझो, ये मात्र यहाँ के लिए नहीं समझना, अपने को जीवन पर्यन्त के लिए भी नहीं समझना है, जब-तक संसार है हमारा तब-तक के लिए समझना है। आप जो विषय सुन रहे हो यहाँ वो आज के लिए नहीं सुन रहे, इस भव के लिए नहीं सुन रहे हैं, जब-तक भवावलियाँ हैं तब-तक के लिए सुन रहे हैं।

निज के अस्तित्व को तुम पर से गिन रहे हो और मेरे लिए नहीं स्वीकारा जायेगा तो मेरा अस्तित्व क्या बचेगा? समझो, कषाय के अस्तित्व की रक्षा के लिए अपनी निज रक्षा का विषय बना रहा है जीव। क्या मैं आपको दिख नहीं रहा हूँ? मैं इतना महान् हूँ, आप मेरे अस्तित्व को नहीं समझते हो? मेरा अस्तित्व मिटाने को ही बैठे हो। यही तुम्हारे तत्त्व की पहली भूल है, घोर मिथ्यात्व है। तुम अपने अस्तित्व का विनाश मान रहे हो। **असत् का जन्म नहीं होता, सत् का विनाश नहीं होता है।** आपने अपने अस्तित्व का विनाश मान कैसे लिया? मेरे अस्तित्व का नाश होता ही नहीं है, होगा क्या? जो अभी सुन रहे हो, अभी उपशान्त भाव से युक्त हो इसलिए समझ में आ रहा है। ये कषाय की तीव्रता जीव

को समझने नहीं देती। उसको यही लगता है मेरे अस्तित्व को मिटा के रख रहे हैं। अरे ! मैं इस क्षेत्र में नहीं होऊँगा तो किस क्षेत्र में होऊँगा ?

'अस्मिन भूतले घटं नास्ति' बार-बार न्याय का प्रयोग हो रहा है। जिन प्रवचन, अरहंत की देशना न्याय ही है। जगत् के मिथ्या अन्यायों से आत्मा की रक्षा करे, यही तो न्याय है। 'अस्मिन भूतले घटं नास्ति'। इस भूतल पर घट नहीं है इसका तात्पर्य घट नहीं है क्या? आप बुद्धि लगाइए, इस भूतल पर घट नहीं है इसका तात्पर्य कहीं न कहीं घट तो है तभी तो इस भूतल पर घट नहीं है ऐसा कहा जा रहा है। इस भूतल पर नहीं है पर कहीं न कहीं अवश्य है। मैं आपको मुनि नहीं मानता हूँ। जब मैं मुनि हूँ नहीं तो मुनि कहने की क्या आवश्यकता और तुम कह रहे हो तो कहीं न कहीं तुम मान भी रहे हो। आप समझो न्याय को। यह ज्ञानी कह रहा है - महाराज! मैं आपको मुनि नहीं मानता हूँ। जब मैं मुनि हूँ ही नहीं तो तुम परेशान क्यों हो ?

अज्ञानियों की भीड़ तो देखो। वर्षों व्यतीत हो गये स्वाध्याय करते-करते, वर्षों-वर्षों व्यतीत हो गये श्रमणचर्या का पालन करते-करते लेकिन यह कह रहा है कि मैं आपको मुनि नहीं मानता हूँ। इसका तात्पर्य क्या हुआ? यदि वो मुनि नहीं है तो तुमको परेशानी क्यों? और मुनि है तो तुमको परेशानी क्यों? तू दुःखी क्यों हो रहा है? कहीं न कहीं तेरी कषाय का अस्तित्व तुझे परेशान किये है। तू मुझे मुनि नहीं मानता है इसका तात्पर्य यह हुआ कि अभी तेरी आत्मा में उत्तम आर्जव, मार्दव पर्याय का अभाव है। क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय पर्याय का सद्भाव है। तू मुझे मुनि नहीं मानता, उपाध्याय नहीं मानता, साधु नहीं मानता, नहीं मानो, आपके नास्तिधर्म से किसी का अस्तिधर्म नास्ति नहीं हो सकता है। आपके द्वारा नास्ति में अस्तिधर्म से नास्ति, अस्ति नहीं हो सकता। ऐसा जिसका त्रैकालिक श्रद्धान नहीं है वह सम्यग्दृष्टि हो ही नहीं सकता, ऐसा ही है ये द्रव्यदृष्टि का निर्णय। तत्त्व-निर्णय करके जो श्रद्धान होगा वही सच्चा श्रद्धान होगा और तत्त्व-निर्णय से रहित होकर के मात्र सबने किया सो हमने किया यही दृष्टि है तो 'बाबा वाक्य प्रमाणं', यहाँ नहीं चलता।

गहरा तत्त्व का निर्णय करना पड़ेगा। **मात्र धर्म के भेष में आ जाना धर्मात्मा की पहचान नहीं है।** जो भी पर-सम्मानों में पर-अपमानों में अपना सम्मान-अपमान खोज रहे हैं उसे स्व अस्तित्व गुण का बोध नहीं है। माँ! आपकी बहू ने आपका सम्मान नहीं किया तो आपको कैसा लगेगा? बुरा लगेगा। हे मिथ्यादृष्टि! आपकी बहू ने आपका सम्मान नहीं किया। उसने आपसे क्या छीना? कुछ छीना, कुछ आपका गया? सत्यता कुछ और है। निज की कषाय ने ही निज का क्लेश बढ़ाया। बहू ने तो कुछ भी नहीं किया। इसको तो समझना ही पड़ेगा।

कहीं भी तत्त्व का निर्णय नहीं हो पा रहा है। दुःखी होकर रो रहे, क्लेश को प्राप्त हो रहे - मेरा क्षेत्र, मेरा प्रदेश, मेरी भूमि, मेरा नगर, मेरा प्रभावना क्षेत्र, मेरा तीर्थ, मेरा मठ; सब पागलपन है। स्व अस्तित्व-गुण का बोध नहीं है। वर्तमान निवास स्थान क्षेत्र। षट् खण्डागम जैसे ग्रन्थों का पारायण करो।

सत्संख्या क्षेत्रस्पर्शन कालान्तर भावाल्प बहुत्वैश्च ।। त.सू. ।।

इस सूत्र की व्याख्या समझ में नहीं आई। ऐसा लोक में कौन-सा क्षेत्र है, प्रदेश है जहाँ तूने परिवर्तन न किया हो, ऐसा कौन-सा पुद्गल खण्ड है ? किसे तू अपना मान बैठा है ?

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः ।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य मम विज्ञस्य का स्पृहा ।। 30/इष्टो. ।।

हे जीव! ऐसा कोई पुद्गल का पिण्ड नहीं बचा जिसे तूने बार-बार स्वीकार न किया हो। उच्छिष्ट का ही सेवन कर रहा है। उतारने के बाद भी मैं उच्छिष्ट को देखूँ, वमन करके चाटना श्वान को देखा गया पर मनुष्य को नहीं देखा गया। जिस द्रव्य को तुम छोड़के आये हो उस द्रव्य में पुनः आँखें फिर रही हैं, क्योंकि आँखें फिर गईं वैराग्य से। इतनी धन-प्रियता बढ़ चुकी है कि गरीब को तो आशीर्वाद ही न मिले। श्रमणों में इतनी धन-प्रियता बढ़ चुकी है, गरीब पचास बार नमोऽस्तु करे, फिर भी आशीर्वाद न मिले। धन को क्यों धिक्कार ? धन पर रागदृष्टि को धिक्कार। धन तो वस्तु है, धन को क्यों धिक्कार?

अज्ञानी वैरागियों की भाषा बताऊँ। ये शरीर असार है, यह धन अनर्थ का कारण है, ये घर स्त्री पुत्र दारा सब आत्मा के घातक हैं। ये अज्ञानी वैरागियों की भाषा है। अरे ! सीधा क्यों नहीं बोलते हो? अरे ! जिसे तुम नारी मानते हो वह वस्तु है, जीवद्रव्य है। तुम जीवद्रव्य मानना प्रारंभ कर दो। व्यभिचारी दृष्टि को मोड़ दीजिए। जिस धन को तुम बुरा कह रहे हो, वह धन ही श्री जी की स्थापना कर रहा है। जिस धन को तुम बुरा कह रहे हो, वही तो तीर्थनिर्माण के लिए है। तुम यह क्यों नहीं कहते जिस धन पर रागदृष्टि है वह रुलाने वाला है।

यह शरीर रुलाने वाला है। अधिकतर जितने वैरागी देखे वे शरीर को गाली देते देखे। क्या अज्ञानी लोग हैं शरीर को गाली दे रहे हैं। अभी तुम्हें वैराग्य का बोध नहीं है। द्वेष करना वैराग्य नहीं है। तुम अपने ही शरीर को दोष दे रहे हो कि शरीर ने ऐसा कर लिया। शरीर ने ऐसा नहीं किया, शरीर न होते तो तुम मुनिराज बने कैसे हो? कूरे को कूरा समझते हो, घूरे को घूरा समझते हो, अरे ! कुरा-घूरा में कुछ होता है क्या? मेरी भाषा समझ में आ रही है क्या, मैं क्या बोल रहा हूँ ? कूरा जानते हो, घूरा जानते हो ? कूरा कचड़े का ढेर, कूरे का ढेर घूरा। वो घूरा हेय है कि उपादेय है? अरे मुमुक्षु! जिसे आप घूरा-कूरा कह रहे हो, किसान से पूछो, वह पैसे देकर खरीदता है घूरे-कूरे को और खाद बनाकर के बढ़िया फसल उगाता है। अब बोलो – घूरा कैसा था? जब घूरे के कूरे से और कूरे के घूरे से फसल उगा सकते हैं तो देह को गाली मत दीजिए। देह से तुम निर्ग्रन्थ होकर के भगवान् को प्रगट कर सकते हो। वैराग्य का तात्पर्य ये था। इस देह को तुम सजा रहे थे इत्र, तेल, फुलेर, सेण्ट आदि का प्रयोग कर रहे थे, चौबीस घण्टे दर्पण में चेहरा लगाये थे उस राग को छोड़िए। इस शरीर को गाली मत दीजिए।

अब तो वैरागियों को भी सीखना पड़ेगा कि वैराग्य धारण कैसे किया जाये ? सुना है कि शरीर असार है इसने नाश कर दिया। शरीर ने नाश नहीं किया, तुम्हारी रागदृष्टि ने ही शरीर का ही नाश कर दिया। आज आप सबको उल्टा लग रहा है, भूतार्थ मानिए यही सीधा है। मित्र ! देखा देखी संयमी नहीं बनना, तत्त्व-निर्णय करके संयमी बनना।

अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं - अज्ञानपूर्वक चारित्र को धारण कर लेना यह समीचीनिता नहीं है। ज्ञानपूर्वक चारित्र को धारण करना फिर कभी आपका अपमान नहीं होगा। यह सभी समीचीनता है। क्यों? जो विनय नहीं कर रहा है वह अविनय गुण तुम्हारे भीतर है कि उसके भीतर? उस जीव के अन्दर। आर्जव-मार्दव गुण की सत्ता का अभाव चल रहा; पर्याय का, सद्गुणों का और मान आदि कषायों का सद्भाव चल रहा है, तो जहाँ जिसका अस्तित्व होगा वहीं तो फलित होगा। उसने गलत क्या किया तुम्हारे साथ।

मुमुक्षु ! तू दूध पी रहा था। श्याम गाय का, काली गाय का शुद्ध दूध और कोई आया उसके हाथ में नींबू का रस था वह दूध में गिर गया, तो दूध का क्या होगा? खराब होगा। तो नींबू ने क्या किया? नींबू ने गलत कुछ किया ये आपकी मानसिकता है। आपको दूध पीने नहीं मिल पा रहा इसलिए नींबू को गाली देना प्रारंभ कर दिये हो पर नींबू ने कुछ नहीं किया है। वो तो अपने स्वभाव में खट्टा था। यह किसको पता नहीं है। नींबू खट्टा होता है। अरे! तुम खट्टे नींबू के साथ दूध रखोगे तो दूध बिगड़ेगा ही। नींबू का गुण खट्टापन है ही। यह दोष तुम्हारा है तुम उसे विपरीत मान रहे हो। जब तुम्हें पहले से मालूम है कि नींबू खट्टा है और तुम जानकर डाल रहे हो। तो दूध खराब होगा ही।

ज्ञानी माँ होती है वह कुनकुने मधुर दूध में जामन दही जमाने के लिए डालती है। उसे दूध में घृत पर्याय दिख रही है, दूध बिगड़ नहीं रहा है। ऐसे ही आपको लगता है कि ऐसा क्या क्यों? अरे! उसको समझ में आ रहा है कि यहाँ तो घृत पर्याय प्रगट होगी। जिसको दूध पीने का राग है वह कहेगा, आपने अच्छा नहीं किया कि आपने दूध में खटाई डाल दी है, जामन डाल दिया। लेकिन जिसको घृत बनाना ही था वह कभी नहीं कहेगा मैंने गलत किया। **जगत् की दृष्टियों को अपनी दृष्टि बनाने की चेष्टा ही अज्ञानवृत्ति है।** हर व्यक्ति अपने ज्ञान से जो कर रहा है वह अपने लिए अच्छा ही कर रहा है। मिथ्यादृष्टि जीव भी जो मिथ्याप्रवृत्ति कर रहा है वह उसकी अज्ञान प्रवृत्ति में उसको वो ही अच्छा लग रहा है। पर जब सम्यक् निर्णय हो जायेगा तो उनको वो विपरीत लगने लग जायेगा।

'आत्मप्रवादपूर्व' कितना विशाल होगा। कुन्दकुन्द स्वामी ने तो अंशमात्र का व्याख्यान किया है। समयसार जी ग्रन्थ में जो आत्मा की व्याख्या है वो अंशमात्र है। इसमें कोई शंका मत करना। **वर्तमान विश्व में समयसार से बड़ा द्रव्यानुयोग का व्याख्यान करने वाला कोई ग्रन्थ नहीं है। इस युग में भारतभूमि में जन्म लेकर इस ग्रन्थ को नहीं समझ पाये तो आपको मनुष्य पर्याय को प्राप्त**

करना कोई सारभूत नहीं है। निर्ग्रन्थों को तो बिल्कुल समयसार में लग जाना चाहिए। समयसार में लग गये तो जगत् के सारे असार कार्यों से तुम स्वयं दूर हो जाओगे। क्या आँखों से नहीं दिखता कितने असार कार्य हो रहे हैं ? कोई गंडा-ताबीज में लगे हैं, कोई ईंट-चूने में लगे हैं, कोई पर के आलोचना में लगे हैं। सब विपरीत भाव हैं। निज के अस्तित्व गुण पर दृष्टि हो गई तो समय ही नहीं है दूसरों के लिए।

बहू ने अपमान किया ? नहीं किया। दुःखी क्यों हूँ ? क्योंकि हम उसके अस्तित्व को अपने अस्तित्व में देखना चाहते हैं। **गंभीर तत्त्व का चिंतन, गंभीर तत्त्व का निर्णय जिस दिन हो जायेगा न उस दिन कुछ भी देखने की आवश्यकता नहीं है।** यह क्या है? हाथ। इस प्रदेश पर हाथ के पास-पास आत्मा के प्रदेश हैं। अखण्डत्वदृष्टि से एक आत्मा। पर प्रत्येक प्रदेश पर आत्मा का क्षयोपशम भिन्न-भिन्न है। अनेक रूप हैं। ये आँखें कहे कानों से हम विश्राम करना चाहती हैं, आप देखने का काम कर देना। कान कहेंगे, मित्र ! सुन तेरा काम तू कर, मेरा मैं, मैं अहमिन्द्र हूँ। जैसे अहमिन्द्र किसी को आज्ञा नहीं देता, किसी की आज्ञा में नहीं रहता है। ऐसे ही इन्द्रियाँ अहमिन्द्र के समान हैं, ऐसा गोम्मटसार जीवकाण्ड जी में आचार्य नेमिचन्द्र ने व्याख्यान किया है।

उन्नीस सौ नब्बे में मैंने ललितपुर टीकमगढ़ में देखा, नगर में साधू हो या न हो पर दिन के तीन बजते थे तो वहाँ की माताएँ बड़े-बड़े ग्रन्थों का मन्दिर में सामूहिक स्वाध्याय करती थीं। तब मेरे से तो कुछ नहीं बनता था। आज खुशी इस बात की हुई नागपुर में गोम्मटसार की वाचना चल रही है। सोलापुर, नातेपुते, आदि में देखा - इधर अध्यात्म और न्याय के प्रति रुचि है। सोलापुर में चातुर्मास में मैंने 'अष्टसहस्री', 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' का स्वाध्याय किया। अब जब ऐसे महान् ग्रन्थों को समझ लिया तब कोई मेरे से कहे कि आप जगत् की क्रियाओं को स्वीकार लो, तो कहाँ से स्वीकार लूँ? नहीं स्वीकारूँगा। पर्याय छिद जाये, भिद जाये, पर सत्य की परिणति को छेदने की ताकत किसी में नहीं है।

'पियधम्मो दढ धम्मो !' प्रियधर्मी हो, दृढ़धर्मी हो तो 'गोम्मटसार जीवकाण्ड' में आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत-चक्रवर्ती कह रहे हैं - जैसे अहमिन्द्र होता है वैसे इन्द्रियाँ होती हैं। चक्षु इन्द्रिय का अस्तित्व भिन्न है, कर्ण इन्द्रिय का अस्तित्व भिन्न है। आपकी ही इन्द्रियों का अस्तित्व भिन्न-भिन्न आप में ही दिख रहा है और आपकी एक इन्द्रिय का काम दूसरी इन्द्रिय नहीं कर सकती है, कितना ही प्रयास कर लेना। जब आप अपनी एक इन्द्रिय से दूसरी इन्द्रिय का काम नहीं करा सकते हो तो दूसरे के द्वारा अपना काम कराने की चेष्टा क्यों कर रहे हो?

आत्मा में ज्ञानगुण है, आत्मा में दर्शनगुण है, आत्मा में सुखगुण है, आत्मा में वीर्यगुण है। क्या ज्ञानगुण का परिणमन दर्शनगुण में करा सकते हो? दर्शनगुण का परिणमन सुखगुण में करा सकते हो क्या? दो गुणों को मिश्र कर सकते हो? क्या किसी गुण की सत्ता का नाश कर सकते हो?

मुमुक्षु! इस देह में विराजा देही उसका उत्पाद-व्यय भिन्न है और देह का उत्पाद-व्यय भिन्न है। शरीर में जो उत्पाद-व्यय चल रहा है वह शरीर का है। आत्मा में जो उत्पाद-व्यय चल रहा है वह आत्मा का है। एक आत्मा में अनंत गुण हैं और अनंत गुणों में उत्पाद-व्यय चल रहा है। फिर भी अज्ञानी जीव पर को बदलने की चेष्टा कर लेता है, चेष्टा ही कर सकता है पर बदल नहीं सकता। सुधार के भाव लाओ पर सुधार के कर्ता मत बनो।

ज्ञानी ! एक शब्द को हृदय की डायरी में नोट कर लेना, **'ज्ञाता बनो, ग्राहक मत बनो'**; मैं ज्ञाता हूँ, ग्राहक नहीं हूँ। मैं जगत् को जानता हूँ पर किसी को ग्रहण नहीं कर सकता हूँ। ज्ञानियो ! जैसे घर के द्वार पर शुभ-लाभ लिखते हैं वैसे ही लिख देना; 'ज्ञाता ही है, ग्राहक नहीं हैं'। भाई ! तू पोस्टर और बैनर में जितने पैसे खर्च कर रहा है उतने पैसे में तो यह लिख दे 'ज्ञाता ही है, ग्राहक नहीं' समझ में तो आये। ग्राहक बनके निज की विडम्बना कर रहे हो। ज्ञाता बन गये तो भगवान् बन जाओगे।

ये तो सैतालीस शक्तियाँ हैं। जिस जीव ने समझीं उसको अमृत पीने को मिल गया। मध्यकाल में जितनी व्याख्याएँ हुईं वे व्याख्याकार नय और न्याय को और समझ लेते, निग्रन्थता की सत्यता को समझ लेते तो आज हमारी समाज में खण्ड-खण्ड न होते क्योंकि आप जिस कुल में जन्मे हो, उस कुल की प्रत्यासत्ति से देखा जाये, तो बहुत सारी बातें कुलकी प्रत्यासत्ति से सीखी नहीं जाती, सीखने को मिल जाती हैं। समझ में आया कुछ? जिस भारत की भूमि पर जन्मे हो, वहाँ सीखी नहीं गईं बहुत सारी बातें, सीखने मिल गईं। 'निर्ग्रन्थ जितना विहार करेगा उतना विवादों से दूर रहेगा। जो मुनि अपने दीक्षा काल में कम विहार करता है वह तो विवादों में ग्रसित हो जाता है। उसका कारण है कि जिस क्षेत्र में निवास कर रहा है वह उतना ही सबकुछ मान बैठा। पूरे देश में भ्रमण करता तो बुद्धि ठीक हो जाती।

डाक्टर साहब ! किसी का सिर दर्द करे तो तुरन्त गोलियाँ मत दे देना। उससे पूछना - तुम रहते कहाँ हो? कक्ष कितना बड़ा है? जिस कमरे में तुम रहते हो, उसमें खिड़कियाँ कितनी हैं? जिसको हवा न मिलती हो, दवाई खिला दो, जल्दी ऊपर चला जायेगा। सत्यता यह है सिर दर्द कोई और कारण से नहीं हो रहा। उसे कमरे में ठण्डी हवा नहीं मिल रही। डाक्टर का क्या है; तुम दवाई खाओ, पैसा दे जाओ। सही नहीं है क्या? सही है। सोलापुर में एक घटना घट गई। 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' की वाचना चल रही थी। एक वृद्ध ने कुछ बोला। मैंने कहा – ठहरो, पहले इसका निर्णय करो फिर आगे पढ़ूँगा। तीन दिन हो गये मैंने आगे नहीं पढ़ने दिया। तीसरे दिन उसने कह दिया – हाँ; आप बराबर बोल रहे हो। क्या मतलब ? मेरे सामने बैठकर के तुम विपरीत प्ररूपणा को सही कह दोगे तो कल प्रमाण क्या होगा कि विशुद्धसागर ने तो सुन लिया था। तुम प्रमाण-पत्र बनाओगे। **स्वभाव में सरल रहना, का पर सिद्धांत में कठिन।** स्वभाव में सबके लिए सरल रहो पर सिद्धांत में, साधना में कठोर रहना।

चौबीस घण्टे ऐसे रहो कि कोई पागल रह रहा है, पर सिद्धांत की व्याख्या में सीधे नहीं रहो। हमारे आचार्य ऐसे सीधे हो जायें तो जैनत्व ही दिखने को नहीं मिलेगा। अकलंक स्वामी, समन्तभद्र स्वामी विद्यानंद स्वामी; इन बड़े-बड़े आचार्यों को देखो, इन्होंने क्या लिखा है। कभी-कभी उन ग्रन्थों के दर्शन ही कर लिया करो। 'सत्यशासनपरीक्षा' ग्रन्थ घर में विराजमान कर लो। इस ग्रन्थ के स्वाध्याय में मुझे बहुत मेहनत करनी पड़ी। पण्डित जी दो पंक्तियाँ पढ़ायें और बातें करने लगें। मैंने कहा- आगे बढ़ो। **कुछ सीखना है तो सहन करना पड़ेगा। कुछ सीखना है तो ऋजु बनना पड़ेगा। मिट्टी न ठुके वह मटका कैसे बनेगी।** जो बिना ठुके-पिटे बाजार आ जाते हैं, वह वापिस हो जाते हैं या एक बार पानी भरेगा और गया काम से।

विलक्षणानन्तस्वभावभावितैकभावलक्षणान्तधर्मत्वशक्तिः ।।

परस्पर में, आपस में भिन्न लक्षण-स्वरूप एक ही आत्मा, एक ही द्रव्य में परस्पर अनेक लक्षण - दर्शनगुण भिन्न है, ज्ञानगुण भिन्न है, चारित्रगुण भिन्न है, सुखगुण भिन्न है। भिन्न लक्षण हैं पर सब विराजमान हैं एक आत्मा में। ऐसे विलक्षण भिन्न परस्पर अनेक स्वभाव में मिला हुआ एक भाव जिसका लक्षण है, अनंत भावों में एक भाव। एक बार भाव का अर्थ लेना। पदार्थ अनंत भावात्मक है, एक भाव अनंत गुणात्मक है। एक द्रव्य में ऐसी सत्ताईसवीं जो शक्ति है उसका नाम है-अनंत-धर्मत्वशक्ति। मैं अनंतधर्मों से युक्त हूँ। धर्मी-धर्म, गुण-गुणी। धर्मी धर्म से रहित नहीं होता है। धर्म धर्मी से अलग नहीं होता; संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन के द्वारा जितने भेद हैं, अधिकरण की दृष्टि से भेद हैं। ऐसे अनंतगुणों का जो पिण्ड है – ये आत्मद्रव्य है। मैं कभी गरीब हुआ नहीं, कभी गरीब होऊँगा नहीं, मैं अनंतशक्ति से युक्त हूँ।

अचिन्त्यशक्तिः स्वयमेव देवश्चिन्मात्रचिन्तामणिरेष यस्मात्।
सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण ? ।।144/अ.अ.क.।।

जिसमें अचिंत्यशक्ति है, चिन्तामणी चैतन्यशक्ति जहाँ है; अन्य द्रव्य की, अन्य परिग्रह की वहाँ आवश्यकता क्या है? **अन्य परिग्रह में वे लिप्त हों जिन्हें अपनी अचिंत्यशक्ति का बोध नहीं है।** ऐसा अनुपम अमृत भरा है अमृतचन्द्र स्वामी ने। क्या जगत् के अन्य वेदान्त आदि अद्वैत की व्याख्या कर पायेंगे, जो अमृतचन्द्र स्वामी ने अद्वैत की व्याख्या की है। सारे जगत् के जितने दर्शन हैं अपन ने सबको देखा-जाना पर माना मात्र उसे है जिसे जिनदेव ने कहा है। मैंने अन्य दर्शनों को इसलिए पढ़ा था कि समझें तो ये क्या कहना चाह रहे हैं, लेकिन अरहंत की वाणी के सामने कोई दर्शन समझ में नहीं आते। **एक-एक अंश पर व्याख्या करने वाले अनेक लोग हुए हैं, पर नय-प्रमाण की व्याख्या करने वाला कोई हुआ है तो सर्वज्ञदेव हुआ है** वस्तु की सिद्धि चाहिए तो कैसे होगी?

नय प्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धि इति सिद्धासिद्धान्ता।।न्या.दी।।

नयप्रमाण से ही वस्तु की सिद्धि होती है ऐसा सिद्धांत सिद्ध है। ये व्याख्या 'न्याय दीपिका' ग्रन्थ में की है। अभिनवयति महाराज ने न्यायदीपिका ग्रन्थ लिखा है। इसे पढ़ना पड़ेगा, छोड़ो सारे विकल्प। अपने पास इतना श्रुत है जो सम्यक् सोच है, वह श्रुत है। दे दो एक पर्याय जिनवाणी के लिए नहीं तो नष्ट-भ्रष्ट हो ही जाना है। कोई के पास सोने का पिटारा हो, उसमें कंकर-पत्थर भरे उससे अभागा कौन होगा ? अरे ! ये मस्तिस्क स्वर्ण का पिटारा है, इसमें सम्यक्बोधि और बोध दोनों भर लो। क्यों तुम व्यर्थ में दुनियाँ की बातों में जीवन व्यतीत कर रहे हो ? **निज की बुद्धि को छलना है दूसरों की बातों में लगना।** कितना विशाल ज्ञान है; मनुष्य के पास, अपने पास चुटकी भर नहीं है; तनक-सा, थोड़ा-सा भी नहीं है, नैक-सा भी नहीं है। मिलो, केवली भगवन्तों से जिनके ज्ञान में चराचर पर्यायें झलकती हैं। **'दर्पणतलइव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र** ॥1॥पु.सि.उ.। उस कैवल्य की अनुभूति को लेना है तो श्रुत में लीन होना पड़ेगा।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव पर भावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

***

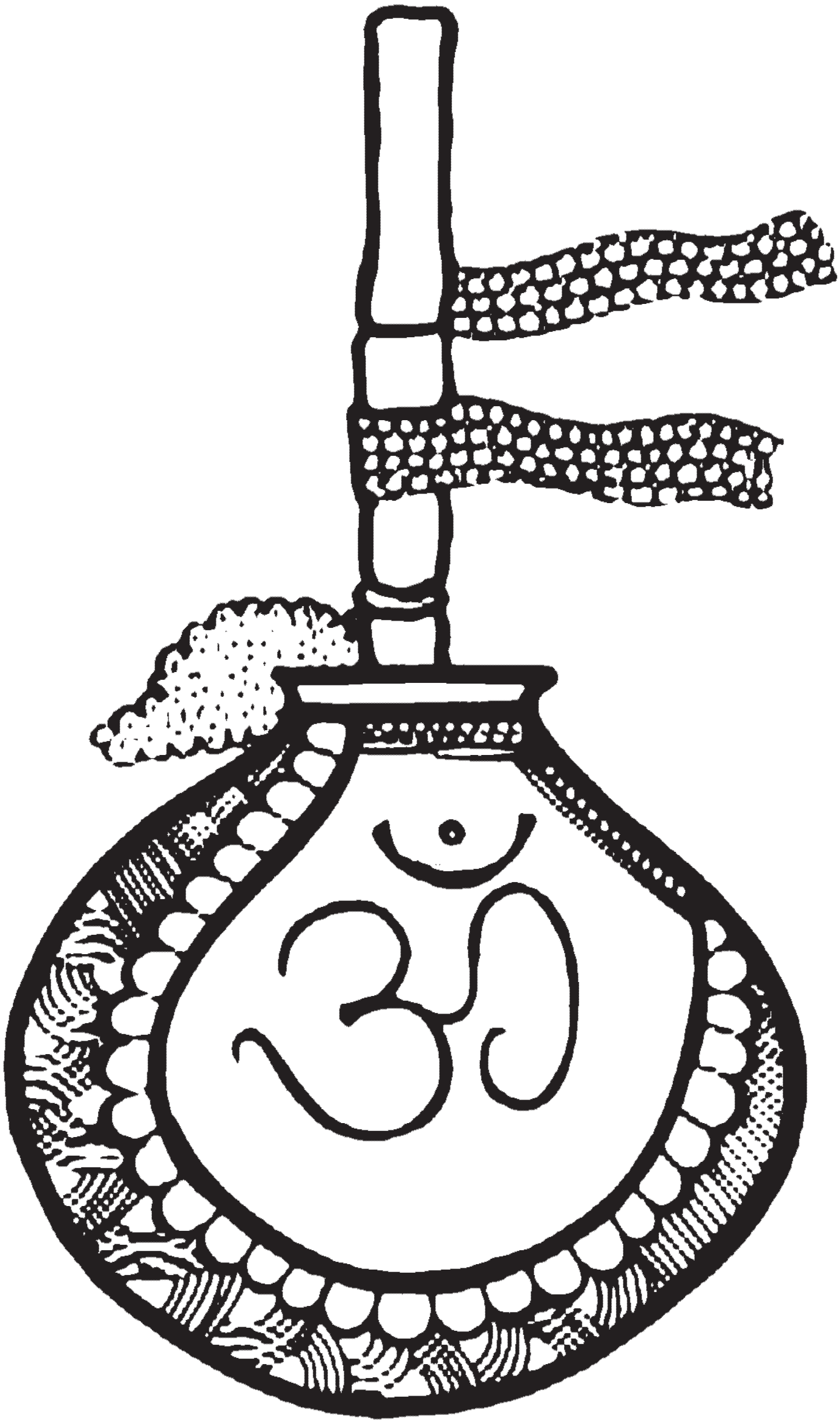

28

विरुद्धधर्मत्वशक्ति

‘‘तदतद्रूपमयत्वलक्षणा विरुद्धधर्मत्वशक्तिः।’

तद्रूपमयता और अतद्रूपमयता जिसका लक्षण है,
उस शक्ति का नाम विरुद्धधर्मत्वशक्ति है।

‘‘वस्तु में तद्रूपत्व, अतद्रूपत्व; दोनों धर्म युगपत् हों,
उसका नाम विरुद्ध धर्मत्व शक्ति है।’’

समय देशना

भव्य बंधुओ ! आचार्य प्रवर भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज समयसारजी में ध्रुवज्ञायकस्वभावी आत्मा के सहज स्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। **अनंत धर्मात्मक द्रव्य में दो विरुद्ध धर्म युगपत् विद्यमान हैं। यही स्याद्वाद शैली, अनेकांतदृष्टि है।** वह यही दृष्टि है जो दो विरुद्ध धर्मों को युगपत् देखे, दो विरुद्ध धर्मों को एक साथ वस्तु में देखे; दो विरुद्धधर्मों को एक साथ व्याख्यायित करे। ये अनेकांत स्याद्वाददृष्टि है। एक ही समय में विरुद्धधर्म भी हैं, एक ही समय में अविरुद्धधर्म भी है। द्रव्य में एक ही समय में तत्त्वरूपता है, एक ही समय में अतत्त्वरूपता है। सैंतालिस शक्तियों में जो विरुद्धधर्मत्व नाम की शक्ति है, इस शक्ति को जो जीव समझ लेता है, वह सारे जगत् से अपने को भिन्न स्वीकार लेता है।

जीव; मोह से कितना मोहित हुआ, अतत् में तत् को देख रहा है। तत् में अतत् को देख रहा है। जब कि तत्-तत् ही है अतत्-अतत् ही है, तत् कभी अतत् हो नहीं सकता, अतत् कभी तत् नहीं हो सकता। समझना, तत् तत् है, अतत् अतत् है। स्वचतुष्टय में द्रव्य तत्भूत है, परचतुष्टय में द्रव्य अतत्भूत है। सत् को कौन नहीं स्वीकारता, स्वचतुष्टय से। असत् को कौन नहीं स्वीकारता, पर चतुष्टय से। मैं परचतुष्टय से असत् हूँ। मैं स्वचतुष्टय से सदा सत् हूँ। जब मैं असत् होता हूँ तब मैं अवस्तु नहीं होता हूँ, वस्तु ही हूँ। ध्यान देना, असत् से तात्पर्य सत् का अभाव नहीं लेना, अपितु परभाव का निजभाव में अभाव है, निजभाव का परभाव में अभाव है, ऐसा समझना।

मेरा चतुष्टय मेरे में है, आपका चतुष्टय आप में है। एक द्रव्य की अनुभूति दूसरा द्रव्य नहीं ले सकता। एक द्रव्य दूसरा द्रव्य नहीं हो सकता, एक गुण दूसरा गुण नहीं हो सकता, एक पर्याय दूसरी पर्याय नहीं हो सकती है। द्रव्यदृष्टि से मैं पर से अतत् हूँ, पर्यायदृष्टि से तत् से अतत् हूँ। द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों ही दृष्टि से मैं पर में अतत् ही हूँ; न मैं पर में तत् हुआ हूँ, न मैं पर में तत् होऊँगा, न मैं पर में तत् हूँ, न था। ये त्रैकालिक है।

ममत्वदृष्टि, निर्ममत्वदृष्टि भी तत् नहीं है। ज्ञायकदृष्टि ही तत् है। निर्ममत्वदृष्टि भी परसापेक्ष है, ममत्वदृष्टि भी परसापेक्ष है। पर से ही ममत्व हटाया है तब निर्ममत्व हुए हो। पर में ही ममत्व गया है तब ममत्व हुए हो। ये दोनों मेरा तत्स्वरूप नहीं है। तत्स्वरूप त्रैकालिक होता है, अविनाशी होता है, तत्स्वरूप का विनाश नहीं होता है। इसलिए राग भी आत्मा का तत्स्वरूप नहीं है, स्यात्। द्वेष भी आत्मा का तत्स्वरूप नहीं है, स्यात्। स्वभावदृष्टि से, विभावदृष्टि से आत्मा में ही राग-द्वेष है लेकिन तत्स्वरूप नहीं है, कर्मसापेक्ष राग-द्वेष है।

क्या तुम भूमि में अपनत्व देखते हो? क्या तुम भवन में अपनत्व देखते हो? क्या तुम पुत्र में अपनत्व देखते हो? क्या तुम पत्नी में अपनत्व देखते हो? क्या तुम वैभव में अपनत्व देखते हो? गृहस्थ अपेक्षा।

क्या तुम पिच्छी-कमण्डलु में अपनत्व देखते हो? क्या तुम दिगम्बर मुद्रा में अपनत्व देखते हो? क्या तुम चेला-चेली में अपनत्व देखते हो? क्या तुम तीर्थभूमि में अपनत्व देखते हो? श्रमण अपेक्षा। हे जीव! तू विरुद्धधर्म को, अतत् को क्यों स्वीकार रहा है। ज्ञानगुण में दर्शनगुण का अतत् है, दर्शनगुण में ज्ञानगुण का अतत् है। ज्ञानदर्शनगुण में सुखगुण का अतत् है, सुखगुण में दु:खगुण का अतत् है। वीर्यगुण का सुखगुण में अतत् है। एक गुण का दूसरे गुण में अतत् है। विरुद्धधर्म हैं। एक गुण दूसरे गुण का विरुद्ध है। **यदि विरुद्धधर्म नहीं स्वीकारोगे तो अनंतधर्म घटित नहीं होंगे।** आत्मा के अनंत गुणों में प्रत्येक गुण में विरुद्धत्वशक्ति है। आत्मा में विरुद्धत्वशक्ति को नहीं स्वीकारोगे, संकर नाम का दोष बनेगा। विरुद्धत्वशक्ति नहीं स्वीकारोगे तो सिद्धों में आठ गुण नहीं बनेंगे। विरुद्धत्वशक्ति नहीं स्वीकारोगे तो अर्हन्तों के छियालीस गुण भी घटित नहीं होंगे।

विरुद्धशक्ति नहीं स्वीकारोगे तो निर्ग्रन्थों के अट्ठाईस मूलगुण भी घटित नहीं होंगे। आचार्यों के छत्तीस, उपाध्याय के पच्चीस गुण घटित नहीं होंगे। विरुद्धत्वशक्ति कह रही है; प्रत्येक द्रव्य में विरुद्धत्वशक्ति है, तत्-अतत्। समझ में आ रहा है ? अज्ञानी की दृष्टि देखो मैं तत् हूँ, आप अतत् हो। ये किसमें लगा रहे आप? मैं मनुष्य तत् हूँ, आप मनुष्य मेरे से अतत् हो। ज्ञानी! स्थूल विषय। इसको तो मिथ्यादृष्टि भी कहना जानता है। इस विषय को तो सांख्य भी कहना जानता है, वेदान्त भी कहना जानता है। मैं आपके शरीर से भिन्न हूँ, मैं आपसे भिन्न हूँ। ज्ञानी ! मैं मेरे शरीर से भी भिन्न हूँ। शरीर स्पर्श-रस गंध-वर्ण धर्मी है, मैं ज्ञानदर्शनधर्मी हूँ। मेरे में शरीर का अतत्पना है। मैंने आयुकर्म को अपना माना था, वो भी मेरे में अतत्पना है, मैंने यश को अपना माना था वो भी अतत्पना है।

तुम पापप्रकृतियों को अतत् कहना जानते हो, लेकिन पुण्य-प्रकृतियों को अपना कहते हो। पुण्य-प्रकृतियों को भी अतत् कहना सीखो, पाप-प्रकृतियाँ पर तो हैं ही। जैसे पाप-प्रकृतियाँ पर हैं वैसे पुण्य-प्रकृतियाँ भी पर ही हैं। यहाँ विषय इस बात का नहीं चल रहा कि फलदान क्या मिलेगा ? हम फलदान को बाद में देखते हैं, हम पहले यह देखते हैं कि निजवस्तु है क्या? **'विपाकोऽनुभवा'** विपाक ही अनुभव है, फलदान है। पुण्य-प्रकृतियाँ पुण्यरूप में फलित हो रही हैं, पाप-प्रकृतियाँ पापरूप में फलित हो रही हैं, परन्तु जब जीव पुण्य-पाप दोनों का भोक्ता नहीं होता है, तब परमात्मा होता है। पुण्य-पाप दोनों प्रकृतियों का भोक्ता बनकर, जब-तक जीता रहेगा, तब-तक तो परमात्मा होना त्रैकालिक असंभव है। कर्म का उदय विपाक के काल में आयेगा। **कर्म का उदय का आना, शुभाशुभ उदय का होना, ये नियत नहीं है कि मुझे भोगना ही होगा। कर्म के उदय को भोगना यदि नियत मानते हो, तो मोक्षमार्ग का अभाव।** मैं उन्मत्त होकर नहीं बोल रहा हूँ। ज्ञानियो ! यदि कर्म के फल को भोगना नियत है कि भोगना ही होगा तो मोक्षमार्ग का ही अभाव है। पंडितजी ! क्या निर्ग्रन्थ मुनियों के पुरुषवेद का अभाव हो गया, क्या आर्यिकाओं के स्त्रीवेद का अभाव हो गया? अभाव तो नहीं हुआ है। **वेदकर्म का**

सद्भाव होने पर भी वेदकर्म की प्रवृत्ति में प्रवेश नहीं करना; इसका नाम संयम है। क्या चक्रवर्ती के पुण्यकर्म का क्षय हो जाता है दीक्षा लेने के लिए ? यदि पुण्यकर्म को भोगना ही होगा तो चक्रवर्ती कभी जैनेश्वरी दीक्षा नहीं ले सकता। तीर्थंकर शान्ति, कुन्थु, अरह से पृच्छना कीजिए, प्रभु ! आप कामदेव, आप तीर्थंकर, आप चक्रवर्ती, सारे साम्राज्य को, राज्य को आपने सड़े हुए तिनके के समान छोड़ दिया। लक्ष्मी वैभव को जिन्होंने जीर्णतृण के समान छोड़ दिया है; यही मुमुक्षु का लांछन - चिह्न है। तो क्या कर्म के उदय को भोगना पड़ता है ? बिल्कुल नहीं। पुण्य के उदय को, पाप के उदय को भोगना कोई नियत नहीं है। फटे कपड़े पहने है, दरिद्री है, घर फूटा है, पाप का उदय चल रहा है कि नहीं? गरीबी है। ज्ञानी ! तू दिगम्बर मुनि बन जा, अब गरीब कहलायेगा क्या? गरीबी कहाँ चली गई। ज्ञानी! अतत् की सत्ता को आप तत्भूत स्वीकार रहे थे, अतत् में तत्भूत स्वीकार रहे थे। अतत् की अतत् स्वीकार लो। न मैं गरीब हूँ, न मैं अमीर हूँ, पुण्य के फल को क्या तुम देख रहे हो ? एक जीव कह रहा है कि - महाराज ! ये सब भवन मेरे हैं, ये मेरे पुण्य से प्राप्त हुए हैं। हे अज्ञानी ज्ञानी! मैं तेरे पुण्य को ही तेरा नहीं मानना फिर भवन तेरा क्यों मानूँ। सुनो भाई! मैं तेरे पुण्य के द्रव्य को ही तेरा नहीं मानता हूँ। पौद्गलिक हैं पुण्य-प्रकृतियाँ, पौद्गलिक हैं पाप-प्रकृतियाँ। इनमें आपकी आत्मबुद्धि बैठी है; यह अज्ञानदशा है।

ज्ञानी! अतत् में तत् बुद्धि; बहिरात्मदृष्टि है। मेरा क्या है? चैतन्य धातु को छोड़ के अवशेष मेरा कुछ नहीं है। चित्-चित् एव; यह विषय आँखों से दिखाई नहीं देगा, आँखों से स्पर्शित नहीं होगा, यह विषय घ्राण से सूँघा नहीं जा सकता, कानों से सुना नहीं जा सकता। ये विषय तो विषयी का वेदक भाव है, ज्ञाता की ज्ञानानुभूति है। जो-जो रसपान कर रहे हो, रसना इंद्रिय के अभाव में भी रसपान होता है। **मुमुक्षु ! जितना आँखों से रसपान किया है उतना रसना से रसपान नहीं किया। रसना से तो फल का ही रस पी पाता है, आँखों से तूने कितने रसपान पी डाले ? कहीं नारी का रसपान किया, कहीं नारी को देखा, कहीं माँ को देखा, कहीं बेटी को देखा, कहीं भवनों को देखा, कहीं प्रदर्शिनी को देखा। किस-किस को देखकर आनंद नहीं लूटा है ? ये आँखों का रसपान था,** जितना तूने पैसा देकर के नहीं, बिना पैसे के किया। जितना समाज, जाति, कुल, राजा ने स्वीकृत नहीं किया उतना स्वच्छन्दी होकर किया है। बाजार में एक सेबफल खरीदने गया, पैसा एक का देकर आया; पर साग मण्डी में कितने ठेलों को देखा, उनमें अच्छे-बुरे की दृष्टि ही तेरी बन्धदृष्टि है। बिना राग के तुझे अच्छा दिखा कैसे? बिना द्वेष के तुझे बुरा दिखा कैसे?

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ॥ 150/स.सा.॥

हे जीव! बंध को कराने वाला तेरा राग है, विरागता की सम्पत्ति ही राग छुड़ा पायेगी; ऐसा जिनेन्द्र का उपदेश है। इसलिए कर्म में राग मत कर, **बंध में अबन्ध को देख; यही द्रव्यदृष्टि है।** बीज में वृक्ष

को देखना किसान भी जानता है, पहचानता भी है। दूध में मक्खन को देखना एक गोपिका भी जानती है। एक ग्वालिन दूध में घृत देख सकती है तो तुम बंध आत्मा में निर्बन्ध भगवान् क्यों नहीं देख रहे हो? मित्र ! जो आँखों से नहीं देख पाओगे वो आत्मा से देखोगे। ये चाक्षुष विषय नहीं है, वेदकर्म का विषय नहीं है। यह व्याकरण की विद् धातु का विषय है। विद् वेदन के अर्थ में। चाक्षुष बहुत सीमित द्रव्य है, अचाक्षुष असीम है। न क्लेश है, न दुःख है, न अशांति है। तत्-अतत् देखो दो, विरुद्ध धर्म मेरे भीतर हैं। निज गुणों में ही मेरी विरुद्धता है। ये विरुद्धत्वशक्ति बोल रही है। ये सिद्धों के जो आठ गुण; सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, अव्याबाधत्व हैं; ये गुण परस्पर विरुद्ध हैं। यदि इनमें परस्पर में विरुद्धधर्म नहीं मानोगे तो सिद्धों के आठ गुण घटित नहीं कर पाओगे। मेरा निज गुणों में ही विरुद्धपना है फिर परगुणों में मेरा अविरुद्धपना कैसा? मैं विरुद्धधर्म से युक्त हूँ, इसलिए ईश्वरत्व शक्ति, अद्वैतब्रह्म, वेदांत, ब्रह्मसूत्र, उपनिषद, सांख्यदर्शन, गीता आदि में अनेकान्तदृष्टि से समझा ही नहीं गया। हे जीव! आपने अद्वैत को समझा ही नहीं है। अद्वैत के व्याख्यान में चले गये पर अद्वैत को नहीं समझ सके, क्यों? ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जो द्वैत हो, सारा ब्रह्माण्ड अद्वैतभूत ही है, यह मैं अर्हत्दर्शन से बोल रहा हूँ। आपका अद्वैत अज्ञानता से पूर्ण है। **'एकं खलु ब्रह्म द्वितीयो नास्ति'** यह ब्रह्मअदैतवाद का सिद्धांत है ।

एक मात्र ईश्वर की सत्ता का ही परिणमन चल रहा है, दूसरी कोई सत्ता नहीं है। आप ऐसा अद्वैत मानते हैं। यदि ऐसा अद्वैत मैं स्वीकारता हूँ तो चेतनद्रव्य जड़ हो जाते हैं और जड़ द्रव्य चेतन हो जाते हैं। जबकि एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में व्यवहार दिखाई नहीं देता है। समझो, यदि मैं सांख्य का अद्वैत कहता हूँ तो सांख्य के अद्वैत में जो है वे मात्र ईश्वर की सत्ता को स्वीकार रहे हैं, सारे विश्व को एकत्वभूत मान रहे हैं। ऐसा एकत्व अद्वैत नहीं है। स्याद्वाद दर्शन में अद्वैत कैसा है? यहाँ तो प्रत्येक जीव में अद्वैत ही कहा है। मैं एक जीवद्रव्य हूँ, स्वतंत्र जीव हूँ। आपका एक जीव ईश्वर से परतंत्र है। एक रोये तो दुनियाँ को रोना चाहिए, एक हँसे तो दुनियाँ को हँसना चाहिए, एक मरे तो दुनियाँ को मरना चाहिए। निगोदियावत् सृष्टि हो जाएगी। गोम्मटसार-जीवकाण्ड में साधारण शरीर की क्या परिभाषा है - एक मरे तो अनंत मरे; एक जन्मे तो अनंत जन्में; यही है तो फिर सब निगोदवत् हो गये। सारा विश्व अद्वैतभूत है। व्यवहार पक्षवालों से मेरा कहना है कि व्यवहारक्रिया के साथ-साथ द्रव्यत्व को समझें; निश्चयपक्ष से मेरा कहना है कि द्रव्य की द्रव्यत्वशक्ति समझते हुए प्राप्ति का उपाय भी समझें। ठीक है, क्रिया कर रहे हो, उस पर लक्ष्य नहीं है फिर प्रयोजन क्या? और लक्ष्य को समझ लिए हो, और प्राप्ति का उपाय नहीं जानते हो, तो लक्ष्य से प्रयोजन क्या? मैं अद्वैत हूँ। आज सामायिक भी करना पड़े, 'पड़े' शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ, तो अद्वैत पर दृष्टि डालना और सामायिक करो तो अद्वैत मिल ही जायेगा। मैं क्या बोल रहा हूँ? यदि सामायिक करोगे आप तो अद्वैत मिल ही जायेगा। सामायिक करना पड़े तो अद्वैत पर चिन्तन करना। दो, द्वन्द्व, युगल, युग्म; ये

सब दो के नाम हैं – नाममाला में। जहाँ द्वन्द्व है वहाँ द्वैत है और जहाँ द्वैत है वहाँ द्वन्द्व है। मेरा द्रव्य, क्या कभी मेरा एक जीवद्रव्य, क्या मैं तीर्थंकर महावीर बनूँगा ?

मैं भगवान् तो बनूँगा, लेकिन मैं भगवान् नहीं बनूँगा। सुनो ! मैं क्या बोल रहा हूँ। मैं भगवान् तो बनूँगा पर भगवान् नहीं बनूँगा। मैं सिद्धों में मिलूँगा पर सिद्धों में नहीं मिलूँगा, सिद्ध बनके रहूँगा। तात्पर्य समझ में आ रहा है क्या? अलग-अलग समझाऊँ; मैं सिद्ध बनूँगा, मैं अरहंत बनूँगा, लेकिन मैं जो सिद्ध-अरहंत बनूँगा तो जो बन चूके अरहंत हैं वही नहीं बनूँगा। वैसा ही अरहंत बनूँगा, वैसा ही सिद्ध बनूँगा पर जो सिद्ध बन चूके हैं उनमें नहीं मिलूँगा; मैं स्वतंत्र सिद्ध बनूँगा, अद्वैत। मुझे ऐसा मोक्ष नहीं चाहिए, मुझे ऐसा परमात्मा नहीं चाहिए जो मेरी सत्ता का नाश करा दे। मैं ऐसे परमात्मा से मिलना पसंद करता ही नहीं। अपनी सत्ता का नाश कर देना, मुझे नहीं चाहिए तुम्हारा मोक्ष। मैं नैयायिकवादी सुगत नहीं हूँ, मैं शून्यवादी नहीं हूँ।

चैतन्यशक्ति को उद्घाटित करने के लिए, **चैतन्य की चैतन्यता का प्रगटीकरण करने का उपाय मोक्षमार्ग है और शुद्धता का प्रगट हो जाना मोक्ष है। चैतन्य की शुद्धि का जो उपाय है वही रत्नत्यधर्म है, वही मोक्षमार्ग है; चैतन्यता का शुद्धिकरण प्रगटीकरण हो जाना इसका नाम मोक्ष है।** संक्षेप में इतना-सा व्याख्यान है, शुद्धिकरण कीजिए। पुद्गल के परिणमन में आप बहुत सहकारी हो लेते हो। वैद्य के पास जहर को शुद्ध करने की विद्या होती है, कुचला, संखिया; ये जहर हैं। इनको मैंने अपनी आँखों से शुद्ध होते देखा है। गाय के घृत में, काँसे की थाली में जहर शुद्ध कर लेता है वैद्य और वही जहर निरोगता का कारण बनता है। विधि से जहर को शुद्ध किया जा सकता, पर विधि विधि होना चाहिए।

माँ ! चावल का एक पकवान बनता है उसका नाम मालूम है आपको, 'इंदरसे'। सभी बना लेते हो? मैं इंदरसे खाने की बात नहीं कर रहा। मेरा तो चावल खाने का त्याग है, नहीं तो सोचो कि महाराज अपनी व्यवस्था बनवा रहे हैं। मैं तो इनको समझा रहा हूँ। इंदरसे जो होता है, उसे प्रत्येक माँ की बनाने की ताकत नहीं है; या तो दाँत तुड़वाओगे या कड़ाही में ही बिखर जायेगा। वह इंदरसा जो होता है बड़ा सुन्दर पकवान होता है। बड़ा मधुर पकवान होता है, लेकिन हर व्यक्ति नहीं बना पाता। उसको भी लोग गुप्तरूप से बनाते हैं। यदि किसी की दृष्टि पड़ जाये तो जड़ पर जड़ की नजर। वह बहन क्या कह रही है कि उनका नाम भी नहीं लिया जाता। क्या रासायनिक परिणमन है ? इस पकवान का नाम लेने से ही बिखर जाता है। ठीक कह रहे हो। ऐसे ही जिस जीव ने नाम ले दिया, सागर मोक्षमार्गी, वह बिखर गया, वह तो शुद्ध एकान्त की रासायनिक क्रिया है।

ज्ञानियो ! विषय को सुन लेना भिन्न विषय है, विषय को समझ लेना भिन्न विषय है। वस्तु को अन्तस् में प्रगटीकरण कर पाना भिन्न विषय है। हो सकता है पण्डित जी मुनिचर्या के बारे में

बहुत सुन्दर व्याख्या करते हों, लेकिन व्याख्यान की शैली भिन्न है। मेरे साथ मुनि बनके चौबीस घण्टे रहो फिर मैं देखता हूँ कैसी चर्या करते हो। कक्ष से निकलते समय तुमने पिच्छी से मार्जन नहीं किया, मैं समझूँगा गड़बड़ आदमी है। ग्रन्थ पढ़ रहे थे और ग्रन्थ को पिच्छी से मार्जन नहीं किया, तो तुम वहीं पकड़े जाओगे, तुम कितने सतर्क थे। धूप से छाँव में आ रहे थे, जा रहे थे और पिच्छी दबा के चल दिये उससे मार्जन नहीं किया, यहीं तुम पकड़े गये कि तुम्हारी अहिंसा पर दृष्टि कितनी है। तब मालूम चलता है **व्याख्यान भिन्न विषय है, प्रवृत्ति भिन्न विषय है और अनुभूति भिन्न विषय है।**

भैया ! व्रत सबके एक-से हो सकते हैं; पर वृत्तियाँ सबकी एक-सी नहीं हो सकतीं। भारत भूमि में ही नहीं, ढाई द्वीप में जितने भी वीतरागी तपोधन हैं इन सबके व्रत एक से हैं पर वृत्तियाँ एक-सी नहीं हैं, अनुभूतियाँ एक-सी नहीं हैं और मोक्ष तभी मिलेगा जिस दिन वृत्तियाँ-अनुभूतियाँ एक-सी हो जायेंगी। ये नियत मानकर चलना, **जब-तक व्रत, अनुभूति, वृत्तियाँ; तीनों एक नहीं होंगी तब-तक मोक्ष नहीं मिलेगा।** एक दृष्टांत को दोहरा देता हूँ। नागपुर की माताओ ! लड्डू बनाना है। पचास कड़ाही अलग-अलग रखी हैं, अलग-अलग कड़ाही, अब कौनसी कड़ाही की चासनी के तार टूटेंगे? कमजोर होगी चासनी तो कब बनेंगे लड्डू?

'बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च' ॥ त. स्. 5/37 ॥ स्निग्ध-रूक्षत्वाद् बन्धः ॥ त.स्. 5/33॥

चासनी एक-सी बनेगी सभी कड़ाही की तब एकसे लड्डू बनेंगे। ऐसे ही मुमुक्षु! चाहे आदिनाथ के समय के मुनिराज हों, चाहे वर्द्धमान स्वामी के शासन के मुनिराज हों; इन सबके परिणाम एक सदृश्य होंगे। **चाहे साढ़े तीन हाथ के मुनिराज हों, चाहे वह सवापाँचसौ धनुष की अवगाहना वाले हों, जब-तक एक सदृश्य परिणाम नहीं होंगे तब-तक मोक्ष नहीं मिल सकता।** कड़ाही चाहे किसी भी गण की हो, किसी भी संघ की हो, लेकिन तार तो एक से टूटेंगे तब ही लड्डू बनेंगे। ऐसे ही ये मोक्षमार्ग है; ये पात्रों को नहीं देखेगा, परिणामों को देखेगा। पात्र छोटा भी हो सकता है, बड़ा भी हो सकता है; उत्कृष्ट अवगाहना सवा पाँच सौ धनुष की जघन्य अवगाहना साढ़े तीन हाथ की। इसलिए ज्ञानी! वे सभी सिद्ध बनने की योग्यता से युक्त हैं। परिणामों की धारा – अपूर्वकरण परिणाम अनिवृत्तिकरण परिणाम; इन परिणामों को भी समझना पड़ेगा। विरुद्धोपलब्धि, अविरुद्धोपलब्धि। जो विषय अभी चल रहा है वह द्रव्यानुयोग, न्यायशास्त्र का है। न्यायशास्त्र कौन से अनुयोग में आयेगा? वह द्रव्यानुयोग का ही विषय है। बहुत से लोगों की मानसिकता है कि करणानुयोग कठिन है, विश्वास मानिए; जैसे करणानुयोग कठिन है, वैसे ही द्रव्यानुयोग अधिक कठिन है। कठिन कुछ भी नहीं है, क्योंकि इन ज्ञानियों ने क्या समझ लिया कि शुद्धात्मा कह लो, निश्चय कह लो, व्यवहार कह लो। बोले - मैं द्रव्यानुयोग को जानता हूँ। भाई ! मुझे पच्चीस वर्ष लग गये अन्दर के विषय को समझते-समझते, ये अन्दर की बात कर रहा हूँ। ज्ञानी ! मुझे अनंतपर्याय लग गईं यहाँ तक आते-आते, ये अहोभाग्य है कि भले ही पंचमकाल में आकर निर्णय किया

हो, ये आनंद का विषय है। वस्तुतत्त्व का निर्णय हो तो गया। पर्याय में, पर्याय के उपचार को लोग धर्म स्वीकारने लगे। इससे संक्लेशता बढ़ती है जीव की।

माताओ ! समझो, आज यहाँ कोई कार्यक्रम हुआ, फोटो खींच लिये गये, एलबम बन गया; सबसे पहले आप क्या देखोगे? अपना फोटो। **'पज्जयमूढा हि परसमया'** तब देखना मैं चैतन्य को देख रहा हूँ कि पर्याय की पर्याय को देख रहा हूँ? पर्याय में पर्याय का उपचार - देखो, मैं कितना सुन्दर लग रहा हूँ। तू असुन्दर है इसलिए कह रहा कि सुन्दर लग रहा हूँ। क्या पर के द्वैत में, पर के पर्याय में, पुद्गल के परिणमन में तू सुन्दर हो जायेगा? अरे भाई! सुन्दर तो तेरा एकत्वविभक्त रूप है **'सव्वत्थसुन्दरोलोए' सम्पूर्ण लोक में कोई सुंदर है तो एकत्वविभक्त रूप है, वही सुन्दर है; यह जैन आगम का अद्वैत है जो विभक्त है।** दर्शनशास्त्र पढ़ें आप, षट्दर्शन पढ़ें, तो सुनो, सांख्य का एकत्व, जैन का एकत्व। सांख्य अद्वैत को एकत्वमानता है, विभक्त नहीं मानता; सांख्यदर्शन अद्वैत एकत्व देखता है और छः द्रव्यों का उसमें विनाश हो जाता है। जैनदर्शन अद्वैत देखता है विभक्त करके। तात्पर्य समझिए, कभी भी एकत्व-एकत्व की व्याख्या मत कर देना। एकत्वविभक्त शब्द का ध्यान रखना।

अध्यात्म के क्षेत्र में स्वीकार कर ही लिया गया है कि कुन्दकुन्द का समयसार श्रेष्ठ है। जैन परम्परा में जितनी भी परम्पराएँ हैं, सारी-की-सारी परम्पराएँ, इस बात को स्वीकारती हैं कि द्रव्यानुयोग का सर्वोपरि ग्रन्थ समयसार है। यह नियोग है, पण्डित जी ! जैसे, जन्मघुट्टी बच्चे को पिलाते हैं ऐसा ही संस्कार और संयोग मिला, कि मुझे तो लोगों ने जन्म से ही समयसार दे दिया। एक अस्सी साल के बब्बा आये थे, मैं पढ़ रहा था महापुराण। उन्होंने पूछा - क्या पढ़ रहे हो ? मैंने कहा - महापुराण, बोले - समयसार पढ़ो। मैंने सोचा मैं छोटा-सा सात-आठ वर्ष का बालक पता नहीं उनकी क्या दृष्टि लगी, उन्होंने मुझे अपने घर से समयसार पहुँचा दिया। मैं सोचता था कि कोई वस्तु तो होना चाहिए। एक दिन मैंने आचार्य महाराज से दीक्षा के बाद कहा कि मुझे समयसार पढ़ना है, सो उन्होने मुझे डॉट कर बिठा दिया सो मैं घबरा गया। फिर मैंने तीन साल तक समयसार को हाथ ही नहीं लगाया। चौथे वर्ष आचार्य श्री का स्वयं समाचार आ गया कि विशुद्धसागर से बोल दो कि समयसार पढ़ ले। मैंने कहा – दूध का जला छाछ को भी फूँक कर पीता है, कोई गड़बड़ी हो जायेगी। पुनः पत्र आया, उस समय आपका गोम्मटसार जीवकाण्ड-कर्मकाण्ड का अध्ययन पूरा नहीं था, इसलिए मना किया था। अब तुम पढ़ लो नहीं तो बनारसीदास जैसी हालत हो जायेगी। समयसार की गूढ़ता को समझना है तो आपको पहले पंचास्तिकाय अध्ययन करना चाहिए। पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार इसके बाद समयसार।

एकत्व-विभक्त, मैं एक हूँ। अपने शरीर में ही आ जाओ। मैं एक हूँ पर विभक्त हूँ। मैं एकही चैतन्यद्रव्य, मैं एक जीव द्रव्य हूँ, परपरमाणु से विभक्त हूँ। इसलिए अणु-अणु स्वतंत्र है, परमाणु-परमाणु स्वतंत्र है। भैय्या! मैं अमिश्र हूँ जो मिश्र है वो सत्य नहीं है, अमिश्र ही सत्य है। मगद का लड्डू क्या

है? मिश्र है कि अमिश्र? लड्डू संज्ञा एक अवश्य है, मोदक संज्ञा अवश्य है। घृत, शक्कर, बेसन जब इन द्रव्यों का मिश्रण करके ही रखा तब लड्डू संज्ञा दे रहे हो, लेकिन स्वतंत्र होकर देखोगे, तो घृत भिन्न है, बेसन भिन्न है, शक्कर भिन्न है, अशुद्धता मिश्रदशा; शुद्धदशा विभक्तदशा, अमिश्रदशा। वैज्ञानिक पुद्गल के विभक्त-अविभक्त को तो समझ लेता है पर वीतराग वैज्ञानिक आत्मा के विभक्त-अविभक्त को समझता है। कितनी खोज कर रहे हैं वैज्ञानिक तब भी परमाणु की खोज नहीं कर पाये। जो आपने परमाणु खोजके रखा है वो परमाणु है ही नहीं, वो स्कन्ध ही है।

खंधं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसो त्ति।
अद्धद्धं च पदेसो परमाणु चेव अविभागी।।75/पं.का.।।

आगम की कुछ ऐसी गाथाएँ हैं जो दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानक तीनों में मिलती है, जैसे-

धम्मो मंगल-मुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तं णमंसंति जस्स धम्मे सया मणो।। 8/वी.भ.।।

यह गाथा सब जगह मिल जायेगी, क्योंकि जो मूल आगम है वह सब जगह बिखरा हुआ था, बाद में संगृहीत हुआ। अब जिसने जो संग्रह कर लिया। आगमों में मिश्रण बहुत हुआ है, पर कुंद-कुंद की दृष्टि पर आप जाते हो तब लक्षित होता है, इन्होंने कुछ खुलकर लिखा है। ऋषभदेव से लेकर के भगवान् महावीर पर्यन्त, जो भी लिखा गया हो वो तो अपने पास उपलब्ध नहीं है, परन्तु **सांख्यदर्शन के निरसन पर सबसे पहले इस युग में कोई महान् ग्रन्थ लिखा गया है तो उसका नाम समयसार है।** पण्डित जी तो उसे आत्मा का ही ग्रन्थ मानते हैं पर यह आत्मा का ही ग्रन्थ नहीं है। ग्रन्थकर्ता को छः बातों का ध्यान रखना पड़ता है। मंगल, निमित्त, हेतु, परिणाम, नाम, कर्त्ता। पाँच बातों का भी ध्यान रखते हैं- 1.शब्दार्थ, 2.मतार्थ, 3.नयार्थ, 4.भावार्थ, 5.आगमार्थ। जो मतार्थ है उसमें सारे दर्शन आ जाते हैं।

लोक में ब्रह्म अद्वैत आदि के बारे में विपर्यास हुए हैं। वेद वेद को भोग रहा है, मैं तो भोक्ता नहीं हूँ। तब कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं हे सांख्यमति शिष्य! वेद वेद को भोग रहा है, पर वेद के वेद का वेदन कौन कर रहा है? बोले – ज्ञान। ज्ञान किसका गुण है? बोले-आत्मा का। तो भोग कौन कर रहा है? आत्मा। वेद को वेद का भोक्ता एकान्त से कह देगा फिर ब्रह्मचर्य की कोई व्यवस्था ही नहीं होगी, इसलिए कर्म कर्म का भोक्ता नहीं है। आत्मा ही कर्म से बद्ध होकर के आत्मा ही भोक्ता है; व्यवहार से, अशुद्ध निश्चयनय से। शुद्ध निश्चयनय से आत्मा चैतन्य भावों का भोक्ता है। परमशुद्धनिश्चयनय से न कर्ता है न भोक्ता है। इसलिए नय विवक्षा को तो समझना ही पड़ेगा अन्यथा अन्याय हो जायेगा, किसमें? आगम में नहीं स्वयं में। आगम में तुम क्या अन्याय करोगे ?

लोगों की क्या मानसिकता बन गई है, भैया! अच्छे से चलना नहीं तो धर्म का नाश हो जायेगा। अरे भैया! तुम त्रैकालिक धर्म का क्या विनाश करोगे, तुम मिथ्यात्व में डूब जाओगे। एक व्यावहारिक भाषा

बना ली लोगों ने, भैया! अच्छे से धर्म करो नहीं तो धर्म का लोप हो जायेगा। धर्म का लोप कभी हो ही नहीं सकता है। धर्म के विरुद्ध तुम प्रवृत्ति करोगे, तो तुम्हारे सम्यक्त्व का लोप हो जाएगा, धर्म का नहीं होता, वो तो जो है सो है। सब सरल है, कठिन तो नरक जाना है। मैं सत्य बोलता हूँ तो तुम हँसते हो। मोक्ष जाना कठिन है ? मोक्ष जाना कितना सरल है, इसमें कुछ करना ही नहीं पड़ता है। अकर्तृत्व दृष्टि बनके, हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ जाना। **पाँच पाप करना पड़ेंगे, परिग्रह जोड़ना पड़ता है; हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह करना पड़ते हैं तब कहीं नरक जाने को मिलता है।** सिद्ध बनने के लिए कुछ नहीं करना पड़ता **'अकर्तृत्व स्वरूपोऽहं', 'ज्ञायक स्वरूपोऽहं'** अपने घर में बैठकर चिंतन करना। तुम्हारा पुरुषार्थ इसमें है। भगवान् बनना कठिन नहीं है, भगवान् बनने के लिए कुछ करना ही नहीं पड़ता, जो किया है उसे और छोड़ना पड़ता है।

यथार्थ समझिए, मैं मुनि इसलिए बना हूँ कि ये करना-करना छूट जाये। अज्ञानी वे लोग हैं जो करने में लगे हैं। ज्ञानी वे लोग हैं जो कर्तृत्व से शून्य होते हैं, इतना करना छूटा और करना छूट जायेगा। एक दिन वो आना चाहिए। पिच्छी कमण्डलु का उठाना भी छूट जायेगा, आहार लेना भी छूट जायेगा, निज में निज का रमण होगा; यही मोक्ष प्राप्ति का उपाय है। दृष्टि तो बनाना पड़ेगी, परिवर्तित हो जाना, परिवर्तित कर लेना - ये सरल है, छोड़ पाना कठिन है, क्यों? साग खरीदने जाते हो। भाई ! सुबह से घर की पेटी से पैसे निकाल करके, आप लोग तो व्यापारी हो, बोहनी कराने जाते हो ? आप अपने घर से पैसे लेकर दूसरे की बोहनी कराने जाते हो, तो आपको ऐसा नहीं लगता कि मेरे पैसे समाप्त हो रहे हैं, खुशी से देकर आ जाते हो। कोई जेब काट दे तो ? सँभल के सुनो, कुछ रहस्य है। बदल देना कठिन नहीं है। सुबह से अपनी पेटी के पैसे तुम कुञ्जड़े की दुकान पर देकर आते हो लेकिन फिर भी रो कर नहीं आते हो, क्यों? क्योंकि बदले में आपको फल मिले हैं, साग मिली है।

ज्ञानी! बदल देना कठिन नहीं है, छोड़ देना कठिन है। तुमने क्या किया? घर को बदल कर किसी आश्रम में रहने लग गये। अपने बेटों के साथ रहते थे, अब छात्रों के साथ रहने लग गये। मेरे मित्र! तुमने राग छोड़ा कहाँ है, राग बदला है। **राग छोड़ना अलग विषय है, राग बदल देना अलग विषय है।** सारे लोक में राग को बदलना मोक्षमार्ग मान बैठे हैं, ये सब परिवर्तन को मोक्षमार्ग मान बैठे हैं। त्याग नहीं कर पाए, झुपड़िया छोड़करके महल बनाने में लग गये हो तुम, ऐसा ही है। मैं तो उसे मोक्षमार्गी मानता ही नहीं हूँ, शुद्ध बात कह रहा हूँ उस व्यक्ति को किंचित् मात्र भी मोक्षमार्गी नहीं मानता हूँ। क्या मतलब? पण्डित जी ! घर में रहते थे तो कम लोगों में राग होता था, अब तो विस्तरित हो गया। पण्डित जी ! बुरा मत मानना अब जो है सो है। आप स्वीकार कर लो महाराज ठीक कह रहे हो। आप मेरे से बोलो - आप मुनिराजों के बीच बैठे हो, इतने ब्रह्मचारी बैठे हैं । ये परम सत्य है कि इनके प्रति राग जाता है तो

बंध का ही कारण है, मोक्ष का कारण नहीं है। मोक्ष का कारण मात्र मेरा भेदाभेद रत्नत्रयधर्म मात्र है। ये अपने मोक्षमार्ग में लगे हैं, इनके लगने से मेरा मोक्षमार्ग प्रशस्त नहीं होता है

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं।
बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्तो॥ 23/स.सा.॥

जिसकी मति अज्ञान से मोहित है, वह जीव बद्ध, अबद्ध दोनों को अपना स्वीकारता है, पर ज्ञानी जीव कहता है – सुद्धो। 'अहमेदं एदमहं' भाव मेरा निज स्वभाव नहीं है। **'अहमिक्को खलु सुद्धो।'** क्षायोपशमिक ज्ञान के विषय में **शब्दज्ञान को समझ लेना भिन्न विषय है और आत्मतत्त्व को समझना भिन्न विषय है।** भूतार्थदृष्टि बनाइए। पण्डित जी! कुछ लोग सोचते हैं कि ये लोग सोनगढ़ की भाषा बोलते हैं। इन पण्डित जी को तो मैंने कभी महाराज के पास देखा नहीं था ये तो रोज आ रहे हैं, क्या होगा ? पडिण्त जी के पक्ष के लोग कह रहे होंगे कि हमारे पण्डित जी तो बिगड़ गये और कुछ लोग कह रहे होंगे कि सुधर गये। ज्ञानी ! न पण्डित जी बिगड़े न सुधरे', जो है सो है।

जब मैं ये कहूँ, भूतार्थदृष्टि से बोलिए, तो आप कहते हैं - महाराज ! कहाँ की भाषा बोलते हैं। यदि आपको सर्राफे की दुकान पर बैठा दिया जाये तो आप कैसे बोलोगे ? अच्छा बताओ, रेलगाड़ी में मूमफली की पोटली दे दी जाये तो आप कैसे बोलेंगे, 'मूमफली ले लो'। भाई ! सागमण्डी में साग बेचने वाला साग कैसे बेचता है, कैसे बोलता है, बताओ, 'सब्जी ले लो'। हाँ। बेटा ! सराफे की दुकान पर ऐसे चिल्लाता है क्या? नहीं, तो फिर क्या करेगा ? भाषा नहीं, ये समयसार की भाषा है। जब सागमण्डी में जाओगे तो वैसी भाषा होगी। ऐसे ही आगम की भाषा अलग होती है, अध्यात्म की भाषा अलग होती है। करणानुयोग की भाषा अलग है, चरणानुयोग की भाषा अलग है, प्रथमानुयोग की भाषा अलग है, द्रव्यानुयोग की भाषा अलग है। न्याय ग्रन्थों की भाषा अलग होती है। सबसे जटिल भाषा है वह न्याय ग्रन्थों की भाषा है।

भैया ! बात ऐसी है सर्राफ की दुकान पर जाओगे तो उसमें ले लो सुनने को नहीं मिलेगा। ऐसे ही द्रव्यदृष्टि का जो व्याख्यान है उसमें सोपाधिक दशा का व्याख्यान नहीं करना। ये निरुपाधिक दशा की व्याख्या है। व्यवहार कहेगा – पानी गरम है, अंगुली जल गई पानी में। परमार्थ कहेगा – पानी कभी अंगुली नहीं जलाता, गर्मी की उष्ण सोपाधिक दशा के कारण अंगुली जली है। तुम्हारे घर में झगड़ा हो गया, यदि तुम्हें सोपाधिक दशा, निरुपाधिक दशा का ज्ञान हो गया, तो तुम्हारे घर में कभी झगड़ा नहीं हो सकता। पूर्ण सत्य कह रहा हूँ, सोपाधिक दशा निरुपाधिक दशा का ज्ञान हो गया तो कभी विसंवाद नहीं होगा। जितने भी विसंवाद होते हैं, जीवों को सोपाधिक दशा निरुपाधिक दशा का बोध नहीं है इसलिए होते हैं, इसलिए विवाद है।

'तदतद्रूपमयत्वलक्षणा विरुद्धधर्मत्वशक्तिः'। 28।

वस्तु में तद्रूपत्व, अतद्रूपत्व; दोनों धर्म युगपत् हों, उसका नाम विरुद्धधर्मत्व शक्ति है। जैसेः- अग्नि उष्ण है, जहाँ अग्नि है वहाँ उष्णता का सत् है, अनुष्णता का असत् है। पानी शीतल है; शीतलता का सत् है, अशीतलता का असत् है। द्रव्य में सत्पना भी है असत्पना भी है; तत्पना भी है अतत्पना भी है। ये विरुद्धधर्मत्व शक्ति है। **'वत्थु सहावो धम्मो'** बेटा संयम! नाम संयम, स्थापना संयम कि भाव संयम? नाम संयम षट्खण्डागम की भाषा है। करणानुयोग की प्ररूपणा जब भी होती है निक्षेप से होती है। नाम संयम; संयम! एक ग्रन्थ को समझने के लिए अनेक ग्रन्थ को समझना पड़ता है। जब तुम अनेक ग्रन्थों को नहीं समझोगे तब-तक एक भी ग्रन्थ समझ में नहीं आये गा। **जो वस्तु का भाव है वही तत्त्व है।** मनुष्य मनुष्यत्व; मुनि मुनित्व, उष्ण उष्णत्व; इनमें जो त्व प्रत्यय है; त् और त्व; ये भाव अर्थ में है, भाववाची। तत्त्व; जो वस्तु का स्वभाव है वह तत्त्व है। जो तद्रूप है, अपने उस रूप ही है वही तत्त्वशक्ति है। तत् शक्ति में अतत्पने की प्रधानता नहीं है, यहाँ अपने स्वभाव की ही प्रधानता है, ये तत् शक्ति है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।
आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।
भगवान् महावीर स्वामी की जय।

***

29

तत्त्वशक्तिः

''तद्रूपभवनरूपा तत्त्वशक्तिः।''

अपने ज्ञानस्वभाव के रूप से सद्रूप होना तत्त्वशक्ति है। आत्मा के ज्ञानस्वभाव की दर्शक तत्त्वशक्ति है। इस शक्ति के साथ आत्मा का तादात्म्य सम्बन्ध होने के कारण आत्मा अपने स्वभाव से कदापि च्युत नहीं होता है; यह तद्भवनरूप 'तत्त्वशक्ति' है।

30

अतत्त्वशक्तिः

''अतद्रूपाऽभवनरूपा अतत्त्वशक्तिः।''

अतद्भवनरूप अतत्त्वशक्ति है। अपने ज्ञानस्वभाव को छोड़कर अन्य पदार्थ के स्वभाव के रूप से परिणत नहीं होना 'अतत्त्वशक्ति' है।

समय देशना

भव्य बंधुओ! आचार्य प्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज समयसारजी में ध्रुव ज्ञायकस्वभावी ज्ञायकस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी परम आत्मा के वैभव का व्याख्यान करते हुए सैंतालीस शक्तियों में तत्त्वशक्ति की व्याख्या कर रहे हैं। तत्त्वशक्ति जो है वह आत्मा के आत्मभूत शक्ति की व्याख्या कर रही है। आत्मा, आत्मा ही है। **जो द्रव्य जैसा है उस द्रव्य को वैसा ही कहना, उस द्रव्य का वैसा ही रहना; ये तत्त्वशक्ति है। मेरा चैतन्यद्रव्य चैतन्यभूत ही है, चैतन्यद्रव्य चैतन्यभूत ही था, चैतन्यद्रव्य चैतन्यभूत ही रहेगा।** जो शक्तियाँ हैं वे बहिर्भूत व्याख्यान के लिए नहीं हैं, सम्पूर्ण शक्तियाँ अन्तर्भूत तत्त्व का व्याख्यान करने वाली हैं। तत्, तत् ही है।

हे श्रमण! हे योगीश्वर ! आप तत् में ही लीन हो जाओ, तत् को ही समझो; तत्रूप ही हूँ, तत्स्वरूप ही हूँ - तत्शक्ति। मेरे ज्ञानदर्शन में कभी विपर्यास हुआ ही नहीं है, मेरा ज्ञाता ज्ञाता ही है, मेरा ज्ञान ज्ञान ही है। मैं रागरूप नहीं हूँ, मैं द्वेषरूप नहीं हूँ; मैं मान, माया, क्रोधादिरूप नहीं हूँ। द्रव्यकषाय मेरा तत्स्वरूप नहीं है, स्यात् भावकषाय भी मेरा तत्स्वरूप नहीं है। जो तत्स्वरूप है वह त्रैकालिक है। आत्मत्व, ज्ञायकत्व, ध्रुवत्व; ये सब मेरे त्रैकालिक हैं। द्रव्यकषाय, भावकषाय - ये सब नष्ट होने वाले हैं, भावकषाय भी त्रैकालिक नहीं है, द्रव्यकषाय भी त्रैकालिक नहीं है। उत्पन्न होनेवाली अवस्थाओं को तुम तत् क्यों मान रहे हो, वे निज में तत् हैं, पर वे मेरे निजस्वरूप में तत् नहीं हैं। अन्यथा इतने मत बह जाना, उनको निज में तत् कहना बंद मत कर देना, अन्यथा कषाय नाम की कोई वस्तु नहीं होगी, अवस्तु हो जायेगी। मेरी कषाय निज में तत् है, लेकिन कषाय मेरा स्वरूप नहीं है, ध्रुवस्वरूप नहीं है, त्रैकालिक स्वरूप नहीं है, शुद्धस्वरूप नहीं है इसलिए मेरा तत्स्वरूप नहीं है। पर है विभाव, है विभावस्वभाव। **कषाय विभावस्वभाव है, कषाय स्वभाव में अतत् है।**

यह जीव बहुत मायावी है। संसार में किसी भी पाप-प्रवृत्ति को करते रहेंगे, कषायभाव को प्राप्त होते रहेंगे और ये कहेंगे अतत् है। अतत् है स्वभावदृष्टि से, तत् है विभावदृष्टि से। कर्म मेरे में अतत् है, कर्म मेरा निजस्वरूप नहीं है इसलिए अतत् है पर कर्म, कर्म में तत् हैं। **यदि कर्म को कर्मभूत नहीं मानोगे तो अवस्तु हो जायेंगे,** यही तो जैनधर्म की महान् प्रज्ञा है। अविद्या, माया; ये जो माया है वह तत् है कि अतत् है? यह जगत् की माया है, तत् है। जगत् स्वप्नवत् है, मैं बैठा यहाँ हूँ लेकिन ज्ञान का क्षेत्र यहाँ नहीं बैठा। जगत् के ज्ञेयों में ज्ञान भ्रमण कर रहा है फिर भी ज्ञान, ज्ञान में ही है। कभी ये ज्ञान अपना ज्ञेय जिनवाणी को बना लेता है। कभी ये ज्ञान अपना ज्ञेय वेद-वेदान्त को बनाता है।

कुछ वैराग्य की भाषा में इतने आगे बढ़ गये कि मिथ्यात्व में बदल गये। ये तुम्हारा तीव्र पुण्य का उदय है कि इतनी छोटी उम्र में तुम इतने गहरे विषय को सुन रहे हो। सुनिए फिर से, वैराग्य की भाषा में इतने डूब गये जीव, कि मिथ्यात्व में डुबकियाँ लगाने लगे। सारा जगत् माया है, भ्रम है; अवस्तुभूत है, कि

वस्तुभूत है? अवस्तु **'किम् स्थाणो किम् पुरुष'।** यह स्थाणु है, ठूठ है या पुरुष है - यह संशय चल रहा है, भ्रम चल रहा है। यह भ्रम किसको होगा? जिसने पूर्व में ठूठ को भी जाना है और पुरुष को भी जाना है उसे ठूठ में पुरुष का भ्रम होगा। जिसने रस्सी को भी देखा है, साँप को भी देखा है, उस पुरुष को ही रस्सी में साँप का भ्रम होगा। जिस व्यक्ति ने मसानघाट को देखा है वह उस स्थान को प्राप्त करने में भयभीत होगा। जिसने उस स्थान को श्मसान के रूप में जाना ही नहीं था, अचानक वहाँ निवास करने लग जाये, उसे वहाँ डर नहीं लगेगा। डर कब लगता है? जब तुमने जाना है। हम लोग तो कितनी बार श्मसान में विश्राम कर चुके। अपन भूतनाथ के भक्त हैं, तो भूत क्या करेंगे? आप भूतनाथ के भक्त नहीं हो क्या? भगवान् आदिनाथ को भक्तामर स्तोत्र में भूतनाथ लिखा है।

भैया! वैराग्य की भाषा में मिथ्यात्व कैसा, इसका निर्णय करो फिर आगे चलेंगे। बहुत गंभीर विषय है। वैराग्य की भाषा में मिथ्यात्व कैसा? वस्तु के नाश करने का नाम वैराग्य है कि वस्तु से उदास होना वैराग्य है, कि द्रव्यदृष्टि में वैराग्य है ? द्रव्यदृष्टि में वैराग्य नहीं होता, पयार्यदृष्टि में वैराग्य होता है। **वस्तु का नाश वैराग्य नहीं है, वस्तु से उदासता वैराग्य है।** उदासता का नाम चेहरा लटकाना नहीं है। उदासता का नाम है विरक्ति का होना। ज्ञानियो! जिस जीव ने भीतर से वैराग्य को प्राप्त न किया हो और उसने पढ़ कर रखा था, सुनकर रखा था कि वैरागी लोग उदास होते हैं तो विचारा अपने जीवन का आनंद ही समाप्त कर देगा। अब वो चौबीस घण्टे उदास बनकर बैठा रहता है। बोले - क्यों? वैरागी उदास होते हैं। जबकि ये वैराग्य का अर्थ ही नहीं है, ये वैराग्य की परिभाषा ही नहीं है। उदास होना, चेहरा लटकाना; ये कहाँ से वैरागी की परिभाषा हो गई? उदास होना, चेहरा लटका लेना-ये वैराग्य की परिभाषा नहीं है।

भैया! 'उदास' कितना गंभीर शब्द है? आपने समझ लिया कि कोई दिख गया तो आँख बंद कर लो, मैं किसी से बोलूँगा नहीं। किसी से बोलने की आवश्यकता ही नहीं है। वैरागी आप अपने में बात करो, तो दूसरे से बोलने का समय कहाँ? मैं किसी को देखना नहीं चाहता, ये व्यर्थ का सोच लाये क्यों? आप जिनवाणी पढ़ो, दूसरों को देखने की आवश्यकता ही नहीं। आज किसी के बारे में कुछ नहीं सोचना चाहता, ये व्यर्थ का सोच क्यों रहे हो? आत्मचिंतन करो। समझो, मैं क्या बोल रहा हूँ; ये शीघ्र दीक्षित हो जाना, शीघ्र दीक्षितों से प्रभावित हो जाना और भीतर का वेदन किये बिना भेष को प्राप्त हो जाना। ये चेहरा लटकानेवाला वैराग्य है। किंचित् द्रव्य तेरे पास होता है तो चेहरे में दमक आ जाती है। बेटा ! जरा से कोई पैसे दे दे वो चेहरा अलग ही दिखता है। जब जगत् के पुद्गलों के टुकड़ों के हाथ में आने पर चेहरे पर दमक आ सकती है फिर जिस जीव ने रत्नत्रय के रत्न प्राप्त कर लिए हों उसके चेहरे पर दमक न आये, यह नहीं हो सकता है।

'उपेक्षा भावोत्कर्ष' जो उपेक्षाभाव की उत्कृष्टता है, इसका नाम उदासता है, वैराग्य है। शिवत्व को वही प्राप्त कर सकता है जिसके पास उपेक्षाभाव है। न वस्तु में मेरा राग है, न वस्तु में

द्वेष है। मैं वस्तु को वस्तुभूत मानता हूँ। फिर वैराग्य क्या है? क्या पदार्थ का नाश करना वैराग्य है ? क्या पदार्थ को नित्य मानना वैराग्य है ? क्या पदार्थ को अनित्य मानना वैराग्य है ? नहीं। पदार्थ को नित्य एकांत से मानना मिथ्यात्व है, पदार्थ को अनित्य एकांत से मानना मिथ्यात्व है। फिर अध्रुव भावना क्या होगी? अनित्व भावना क्या होगी? जब तीर्थंकर को वैराग्य होता है तो संसार शरीर भोग के बारे में अनित्यता का चिंतन करते हैं। अनित्यता का चिंतन करते हैं किस दृष्टि से? इस समय आप जैनदर्शन के सिद्धांत को सुन रहे हो, वैराग्य सिद्धांत का नाशक नहीं है।

तीन शब्द पर दृष्टि रखना- 'माया, मिथ्या, भ्रम'। अन्यमत में तीन बातों को लेकरके आप ऐसे हो गये जैसे किसी को करंट लग जाये और जमीन पर गिरे, उसे जगत् में कुछ दिखाई नहीं दे रहा है। क्या आपको मिथ्यात्व का करंट लग गया जो सारे जगत् को माया, मिथ्या, भ्रम बोलते हो? आप भी तो कहते हो, अध्रुव है। यथार्थ मानिए, किसी विषय का ज्ञान किसी को देना हो तो सर्वांगीण देने की आवश्यकता है। सामने वस्तु दिख रही है और आप कह रहे हो कि सब भ्रम है। अब पता नहीं मैं भ्रम में हूँ कि आप भ्रम में हो। ये पेन्सिल है, कहो ये भ्रम है। भाई ! ये पेन्सिल है, इसका भ्रम मुझे हो रहा है कि तुझे हो रहा? जो वस्तु को सामने देख रहा उसे आप कह रहे भ्रम है। सामनेवाला कहेगा तू ही भ्रम में है, वस्तु तो है। बोले - अविद्या है, अज्ञान है? इन शब्दों का प्रयोग तो किया गया है, लेकिन कुछ सत्य होना चाहिए। सुनिए, ये भ्रम है, मैं जैन बनके बोल रहा हूँ। इसे तुम भ्रम कहते हो कि कुछ भी नहीं है। क्या ये सुगत का शून्य है? क्या बौद्ध का शून्य है? क्या अन्य का भ्रम अविद्या मात्र है ब्रह्म सूत्र का? जैनधर्म कह रहा है-हे जीव! ये मेरे निज के चतुष्टय से अतत् है, विरुद्ध है; मैं तत्भूत हूँ। इस अतत् में तत् बुद्धि का होना भ्रम है न कि पेन का होना भ्रम है। समझिए, एक पर्याय नहीं, अनेक पर्यायें लग जायेंगी; ये तत् समझ में नहीं आयेगा विश्वास मानिए।

तुम भेष बनाकर स्वर्ग जा सकते हो, पर मोक्ष नहीं जा सकते हो। किंचित्मात्र भी तत्त्व के निर्णय में कमी रह गई तो सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता है और जब-तक सम्यग्दर्शन नहीं होगा तब-तक मोक्षमार्ग बन ही नहीं सकता। भ्रम है, अतत् है, अविद्या है। पेन को पेन मानना अविद्या नहीं है, पेन को निजभूत मानना अविद्या है। ऐसी अविद्या के संस्कार से जीव अनादिकाल से भटकता रहा ऐसा कह रहा है कि ये सब भ्रम है, माया है, कुछ भी सत्य नहीं है। सत्य नहीं है तो **'त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कं'** - ये क्या है ? ये जो द्रव्यानुयोग है यह यथार्थ में दार्शनिक पक्ष है। यदि आप विषय को पकड़ रहे हो तो आपको समझ में आ रहा होगा कि महाराज कौन-कौन से दर्शन को स्पर्श कर रहे हैं और फिर धीरे से जैनदर्शन में आ जाते हैं।

एक ग्रन्थ है आचार्य समन्तभद्रस्वामी का **'आप्तमीमांसा'** और यह जैनदर्शन का सम्पूर्ण दार्शनिक ग्रन्थ है। जैन परम्परा में दर्शन को बढ़ाने वाले हैं अकलंक स्वामी, समन्तभद्र स्वामी, विद्यानन्द स्वामी

आदि। ये ऐसे समर्थ आचार्य हुए हैं जिन्होंने जैनधर्म को चोटी पर रख दिया। समन्तभद्र स्वामी की शैली रही है - कर रहे स्तुति, चल रहा दार्शनिक पक्ष।

नित्यत्वैकान्त पक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते।
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलम् ॥ 37/आ.मी. ॥

आचार्य समन्तभद्र की वह शैली नहीं रही है कि तेरी कृपा से सब काम हो रहे हैं। नित्यएकांतपक्ष में भी विक्रिया संभव नहीं है। अनित्यएकांत पक्ष में भी विक्रिया संभव नहीं है। आप नित्यपक्षी नहीं हो आप अनित्यपक्षी नहीं हो; आपने नित्यानित्य की व्याख्या की इसलिए आपको मेरा नमस्कार हो। **'मुनींद्र तव शासने'** हे मुनीन्द्र! आपके शासन में स्याद्वाद के विद्वेषी हैं उनके यहाँ कोई नय घटित होता ही नहीं है। लेकिन आप ध्यान रखना, आप स्याद्वादी हो तो मस्तिष्क को विशाल करके रखना। जगत् में जितने दार्शनिकपक्ष हैं वे सभी दर्शन जो भी व्याख्या कर रहे हैं; छः द्रव्य, पंचास्तिकाय, सात तत्त्व के बाहर जगत् में कोई व्याख्या होती ही नहीं है।

बालक! एक दीपक रखा है, आप इस दीपक को दीपक मानिए। ठीक है, यदि तुम दीपक का प्रयोग पूजन के लिए कर रहे हो और कोई व्यक्ति दीपक की ही पूजा प्रारंभ कर देता है। दीपक जो यहाँ रखा हुआ है वह तो मात्र आप अपने इष्टदेव की आराधना के लिए रखे हो, लेकिन ऐसे भी व्यक्ति मंदिर में हैं जो मान लेते हैं कि यह भी कोई देव होना चाहिए और दीपक की पूजा प्रारंभ कर दी। सामान्य वक्ता को देख करके उसका इतना तो उपकार स्वीकारो, उपदेश दे रहा है। कहीं तुम उपदेष्टा को ही देव मानकर पूजने लगे तो तुम मिथ्यात्व में चले गये। **मात्र जैनदर्शन इस बात से सुरक्षित था कि हर किसी को परमात्मा नहीं मानता था। हर व्यक्ति के चबूतरे नहीं बनाता था। आज ये स्थिति बनी है कि किसी ने तुम्हारा थोड़ा भी उपकार कर दिया तो उसे तुम भगवान् मानकर बैठ गये। ये तुम्हारा मिथ्यात्व है।** समझो ध्यान से, जो दीपक है वह पुद्गलद्रव्य है, तो यह जो पुद्गलद्रव्य है इसको कोई भिन्नमतवाला देवता मान करके, अग्निदेव मानकरके उस एकेन्द्रिय की पूजा प्रारंभ कर रहा है। अहो! भो अग्नि देवताय आहूताय-आहूताय स्वाहा। तुमने एकेन्द्रिय अग्नि को ही देव समझकर पूजना प्रारंभ कर दिया। जो पूजा चल रही थी, हम जैनदर्शन से कहेंगे, जो अग्नि जल रही थी, वह एकेन्द्रियदेव था। तुमने उसे एकेन्द्रिय स्वीकारा है। यह कैसा तुम्हारा देव है जो लोहार के घन से पिटता है ? लोक में क्या हुआ, इस प्रकार से पूजन प्रारंभ हो गई। तो जो पूजन है, जो मिथ्यात्व है वह व्यक्तिगत प्रवृत्ति है, वस्तुगत नहीं है। जो मिथ्यात्व है, अज्ञान है, अविद्या है, भ्रम है - ये सब व्यक्तिगत प्रवृत्तियाँ हैं, वस्तुगत प्रवृति नहीं है। सबसे पहले जगत् की सम्पूर्ण श्रद्धाओं को तोड़कर रखना पड़ेगा और जब-तक तुम जगत् की सम्पूर्ण श्रद्धाओं को तोड़कर नहीं बैठोगे, तब-तक सत्य का बोध होना असंभव है। जितना हम समझ चुके हैं, विपरीतता से अलग होकर समझ पाये हैं, ज्ञानी! उन सारी विषमताओं को एक किनारे कर लो।

ये जो दीपक की पूजन थी वह व्यक्तिगत थी। जिस एक ने अपनी जैसी आस्था बना ली उसने वैसा देखना प्रारंभ कर दिया। एक जीव बैल को बैल स्वीकारता है और एक जीव देवता मानकर पूज रहा है। एक जीव हाथी को हाथी मानता है और एक व्यक्ति उसे देवता मानकर पूज रहा है। एक जीव गाय को गाय स्वीकारता है। वह एक तिर्यंच जीव है उस पर दया करुणा कीजिए; एक जीव उस पर भगवान् और देवताओं का वास मान रहा है और तैतीस करोड़ देवताओं का वास मानने के बाद भी वृद्ध होने पर कसाई के हाथ सौंप दिया। अब तुम्हारे तैतीस करोड़ देवता कहाँ गये? इसलिए अन्दर का विषय समझना, हम रूढ़िवादी नहीं हैं। जो अज्ञानमयी रूढ़ि है उस रूढ़ि को स्वीकार नहीं करता हूँ। जिनेन्द्रदेव के द्वारा तत्त्व की जो प्ररूपणा है वह रूढ़ि ही हमें स्वीकार है। **जिससे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की हानि न हो वह रूढ़ि स्वीकार है** और जिससे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की हानि होती है वह सम्यक् हो ही नहीं सकता।

पहले वस्तु को खोजिए। डाक्टर साहब ! आपका बेटा है क्या? हे जीव! तेरे जैसा तत्त्वज्ञ ज्ञानी जीव तू बेटे को बेटा समझकर डॉट रहा है। इधर कहता है कि **'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं'** तेरा बेटा पहले है कि वह जीवतत्त्व है, जीवद्रव्य है, जीव पदार्थ है? उसे जीवतत्त्व के रूप में क्यों नहीं देखते हो, जीव पदार्थ के रूप में क्यों नहीं देखते हो, जीवास्तिकाय के रूप में क्यों नहीं देखते हो? आपने बेटे के गाल पर चाँटा मारा तो आपने जीवास्तिकाय की विराधना की कि नहीं की? जीव पदार्थ की विराधना की कि नहीं की?

बहुत गहरे में बैठकर कोई सोच नहीं पा रहा है। हम शीघ्र ही किसी को शत्रु मानकर बैठ जाते हैं। ये शत्रु व्यक्ति है कि वस्तु है या मेरे भीतर का अशुभभाव है ? मेरे अन्दर का अशुभ भाव शत्रु है। हमने तो अपने भीतर जैनधर्म की अहिंसा को समझा है। हम तो प्राणीमात्र पर करुणा करने वाले हैं तो फिर मैं घात किसका करूँ? खोजते-खोजते तुम कहाँ पहुँचोगे कि ये व्यक्ति तो हिंसक नहीं है, हिंसक तो मेरे भाव हैं। क्या आप शेर को मार सकते हो? वो तो भक्षण करने को दौड़ता है। क्या तुम अजगर को मार सकते हो? वो निगलने दौड़ता है। यदि तुम सच्चे जैन हो तो अपनी रक्षा करोगे, पर उसका घात नहीं करोगे।

कभी-कभी संयमी भी असंयम में उतर जाते हैं, उनको मालूम नहीं चल पाता कषाय के उद्वेग में कि भेष तो मेरा संयमभूत है, भाव तो मेरे नीचे उतर गये हैं। रेलगाड़ी पटरी से उतरती है कि चक्के उतरते हैं? गाड़ी वहीं रखी रहे पटरी पर, पर चक्का उतर गया। दूर से दिखेगा तो यही दिखेगा कि गाड़ी तो रखी है लेकिन चक्का उतर गया है। ऐसे ही ज्ञानियो ! भेष तो रखा है, भावों का चक्का उतर गया है, समझ में आ रहा है क्या? अविद्या जिसे आप कह रहे हो, भ्रम जिसे कह रहे हो वह अवस्तु नहीं है, वस्तु है। आपने क्या किया, भ्रम को अभावभूत देख लिया। वैरागी क्या बोलते हैं - दिख रहा है पर है नहीं, यह माया है। कोई माया नहीं है। तेरा राग पर में है यह माया है। तेरा द्वेष पर में है यह माया है।

सब वस्तु अनित्य हैं। तीर्थंकर भगवान् ने वृक्ष को गिरा देखकर चिन्तन किया कि ये सारा संसार अनित्य है, क्षणभंगुर है। ये तीर्थंकर ने देखा है, इसे मात्र पढ़कर निर्णय मतकर लेना। जो उनने देखा है वह द्रव्यदृष्टि से नहीं देखा है; वैराग्य द्रव्यदृष्टि से नहीं होता है, वैराग्य पर्यायदृष्टि से होता है। पर्याय अनित्य है, वो भी कौन-सी पर्याय सादि-सांतपर्याय अनित्य है, अनादि-सांतपर्याय अनित्य है। ज्ञानियो! सादि अनंतपर्याय अनित्य नहीं है, अनादि नित्यपर्याय अनित्य नहीं है। समझ रहे मैं क्या बोल रहा हूँ ? यदि आप अनादि नित्यपर्याय को अनित्य मान लोगे तो नंदीश्वरद्वीप, सुमेरुपर्वत अकृत्रिम जो हैं वे सब अनित्य हो जायेंगे। आप पर्याय क्यों कह रहे हो, द्रव्य क्यों नहीं कह रहे ? पर्याय इसलिए कह रहे हैं कि, उनमें भी परिणमन चल रहा है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य उनमें भी चल रहा है, लेकिन नष्टभूत नहीं, परिणमनभूत चल रहा है। वे पर्याय पूर्ण नष्ट नहीं होंगी, फिर भी परिणमन उनमें चल रहा है। क्या सिद्धों में परिणमन नहीं है? सिद्धों में स्वभाव-स्वभावभूत परिणमन है। असिद्धों में विभावभूत परिणमन है। असिद्धों का परिणमन अनित्य ही है, क्यों? ये बदलेगा।

स्वभाव-स्वभाव परिणमन; स्वभाव कभी विभाव में नहीं जायेगा इसलिए नित्य है। विषय कठिन है, तत्त्व का निर्णय कठिन-कठिन कहकर छोड़ मत देना। कौन-से भव में समझोगे? जो भी वैराग्य है पर्यायदृष्टि का है, द्रव्यदृष्टि का नहीं है। पुनः समझिए, **राग भी आपको पर्यायदृष्टि पर है, द्रव्यदृष्टि पर नहीं है। आपको अपने बेटे की माँ की पर्याय पर राग है, द्रव्य पर कोई राग नहीं है।** उसके द्रव्य का भोग नहीं करते, उसकी पर्याय का भोग कर रहे आप। ये जीव उसकी पर्याय के राग में अपने परिणामों का घात कर बैठा। जो भी अब्रह्म को प्राप्त हो रहे हैं, होंगे, हो चुके हैं वे सब पर की पर्यायों में लिप्त हुए हैं। भैया! विश्वास रखना, पर्याय में ही लिप्त हुआ है जबकि पर की पर्याय में सुख था नहीं, सुख तेरी ही पर्याय में था तेरे लिए। पर की पर्याय में लिप्त हुआ है पर परपर्याय में तेरे लिए सुख था नहीं, तेरे लिए सुख तेरी ही पर्याय में था, साता के उदय में था। तेरे शरीर में जो धातु-उपधातु भरी है वह क्षीण हो जाती, अभाव हो जाता, तो नारी की पर्याय तेरा सुख का साधन कैसे बनती? नारी की पर्याय तेरे लिए सुख का साधन नहीं, नर की पर्याय से नारी को सुख नहीं होता है। सत्यता कुछ और है, इन दोनों को सुख की अनुभूति का जो राग बैठा है, तेरे ही शरीर का जो सुख है शुक्र का; उस शुक्र को, उस रज को हे जीव! पर के संघटन से अपने शरीर से पृथक् करने को तू सुख मान रहा है। तेरा सुख तेरे ही भीतर था, नारी में सुख कहाँ था? श्वानवत्। अब लगाना पड़ेगा, हड्डी को चबाने वाले श्वान को हड्डी में स्वाद नहीं होता, स्वयं के मसूड़े छीलने पर जो रक्त झरता है वह मानता है हड्डी में स्वाद है। ऐसे ही पुरुष के धातु का क्षय होता है वह मानता है कि नारी में सुख है, यह अज्ञान है। यह बात सत्य है कि नहीं? सत्य है। पर इतना तीव्र राग जीव को है, वह मोह से इतना आवृत्त हो जाता है।

मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान्पदार्थानां, यथा मदनकोद्रवैः ।।7/इष्ट.।।

जैसे उन्मत्त पुरुष कोदों को खाकर विवेक को भूल जाता है, मद से युक्त हो जाता है ऐसे ही जिसका ज्ञान मोह से आवृत है वह वस्तुस्वरूप को समझ नहीं पाता है।

आचार्य कार्तिकेय स्वामी ने अनित्यभावना की व्याख्या की है। वस्तु की अनित्यता का व्याख्यान किया, पर्यायदृष्टि से किया है।

जं किंचि वि उप्पण्णं तस्स विणासो हवेइ णियमेण।
परिणाम-सरुवेण वि ण य किंचि वि सासयं अत्थि।। 4/का.अ. ।।

जो कुछ भी उत्पन्न होता है, उसका नियम से विनाश होता है। पर्यायदृष्टि से कोई भी द्रव्य शाश्वत नहीं है। तीर्थंकर भगवंतों का जन्म किसी झुपड़िया में नहीं होता है। चौरासी खण्ड के महल में हुआ, एक भी खण्ड दिखाई नहीं दे रहा है। जिसकी रचना सौधर्म इन्द्र के आदेश से हुई हो, जिसकी रचना कुबेर ने की हो, देवों के द्वारा निर्मित किये गये भवन नहीं बचे, फिर क्यों तुम जगत् के भवनों में राग करके आत्मभवन को भग्न कर रहे हो ? जिस खण्डेलवाल भवन में आप प्रवचन सुन रहे हो, वहाँ पर कितनी बार भवन खड़े हो चुके होंगे, कितने बार नष्ट हो चुके होंगे। मुनि बनके आना चाहते हो तो यह दृष्टि आपको लाना पड़ेगी, अन्यथा तुम सोचोगे भवनों में मेरा नाम चलेगा। चौरासी खण्डों के भवन नहीं बचे तो तुम्हारे ईंट-चूनेवाले भवन क्या शाश्वत बचेंगे ?

माताओ! आप सबका जन्म यहीं हुआ नागपुर में? अभी भी आपको मेरी बात समझ में नहीं आई तो भगवान् महावीर आपको समझाने नहीं आ रहे। माँ ! आप सभी का जन्म इसी नगर में हुआ है क्या? इस भव में एक गाँव के नहीं रह पाये हो तो भव-भव में कहाँ तुम एकके रह पाओगे? क्या नारी पर्याय है, जन्म कहीं होता है। जन्म जहाँ होता है वहाँ मरण कभी हो नहीं पाता, विरला ही कोई जीव का होता है। आपकी लीला कितनी विचित्र है ? जिस घर में जन्मे थे, उसे अपना घर नहीं कहते हो। बेटी की विदा हो, वह रोने लग जाये, उससे प्रभावित नहीं होना। कुछ दिन रुक जाइए, ये झूठा रोना है। एक दो बार ससुराल से घर आये उससे कहना और रुक जाओ। उसी के मुख से निकलेगा-घर छोड़ दो। तब सोचना क्या बोल रही है बेटी – पिताजी ! मुझे अपने घर छोड़ दो। तात्पर्य समझो, वह तुम्हारे घर को घर नहीं मान रही है, इसलिए **जगत् में कोई घर होता नहीं है। जिस घर में राग की पूर्ति होती है वही घर हो जाता है।** क्या देख रहे हो, यदि आप आर्यिका भी बन गये और वस्तुस्वरूप को नहीं समझे तो महल बनाने में लग जाओगे, पंडितजी ! ऐसा ही है।

आचार्य भगवान् कह रहे हैं कि हे जीव! जो वैराग्य है, पर्यायदृष्टि है द्रव्यदृष्टि का नहीं है और जो मेरी वर्तमान जाति की पर्याय है वह अतत् है, तत् नहीं है। अतत् से तत् में रखने के लिए वैराग्य की व्याख्या

है। सब नष्ट हो रहा है। यदि सब नष्ट हो रहा है तो ध्यान किसका करोगे, स्थिर किस पर होंगे? आत्मद्रव्य पर स्थिर होंगे कि नहीं? होंगे; इसलिए पर्याय नष्ट होनेवाली है, द्रव्य नष्ट होने वाला नहीं है। आश्रय द्रव्य का लेकर चलो। आश्रय पर्याय का लेकर चलोगे तो आपको क्षण-क्षण में रोना पड़ेगा।

बेटा! आज अपनी फोटो खिंचवा लेना। क्यों? आप तो कहते रहे कि पर्याय की पर्याय में मूढ़ होते हो और आज कह रहे हो कि फोटो खिंचवा लेना। कोई रहस्य तो होगा, इसलिए खिंचवा लेना। दस वर्ष बाद उस फोटो को देखना, फिर दस वर्ष बाद और खिंचवा लेना, फिर दस वर्ष बाद देखना, आपको समझ में आ जायेगा कि क्यों खिंचवा लेना। यदि तू पर्याय का आश्रय लेगा जो मासूमियत आज आपके चेहरे पर झलक रही है दस वर्ष बाद वो मिलेगी नहीं, तुझे तू खोजता रह जायेगा। वो कोमलता का शरीर था वह कहाँ गया? विलीन हुआ। यदि वर्तमान के शरीर को भविष्य में देखना चाहेगा, तुझे रोने के अलावा कुछ नहीं मिलेगा। यदि तू वर्तमान के शरीर को भविष्य में न देखकर के तू वर्तमान के जीव को ही भविष्य में देखेगा, तो कभी नहीं रोयेगा, क्योंकि वह शाश्वत है। इसलिए **साधना पर्याय पर आलम्बित नहीं होती है, ध्यान पर्याय पर आलम्बित नहीं होता है, ध्यान द्रव्य पर आलम्बित होता है। पर्याय पर ध्यान तो वैराग्यभूत अवस्था है।**

एकत्वशक्ति, अनेकत्वशक्ति की व्याख्या हो रही है। सैंतालीस नय की प्रवचनसारजी में आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने व्याख्या की है, और सैंतालीस शक्तियों की प्ररूपणा आत्मख्याति टीका समयसार में की है। इन सैंतालीस नय, सैंतालीस शक्तियों को यदि साधक अच्छे से समझ लेता है, तो उसके प्रारंभ के दिन जैसा ही अन्तिम दिन रहेगा। जो साधना तुम्हारी नागपुर में है, वैसी ही जबलपुर में होना चाहिए। तुम्हारा शरीर बदल सकता है, पर साधना और संयम के भाव में परिवर्तन नहीं आना चाहिए। जो लोगों की आम धारणा है कि जो दीक्षा के समय परिणाम थे वे बाद में नहीं रहते; यह पूर्णसत्य नहीं है। जो दीक्षा के समय विशुद्धि थी, वह बाद में नहीं रहती है; ये अज्ञानता की भाषा को विराम दीजिए। इससे तुम्हारा ह्रास होगा, विकास नहीं। यदि तुमने सीख लिया कि जो तुम्हारे प्रथम दिन भाव थे वे आगे नहीं बन रहे हैं तो ये तेरे पुरुषार्थ की कमी है, तेरे निज की कमी है। यदि तुम ऐसा ही बोलते रहोगे तो कैवल्य कैसे प्रगट करोगे? श्रेणी-आरोहण कैसे करोगे? और अपूर्वकरण परिणाम; जो परिणाम पूर्व में कभी प्राप्त नहीं किये हों, ऐसे अपूर्व-अपूर्व परिणामों का होना इसका नाम अपूर्वकरण परिणाम है, फिर अपूर्वकरण परिणाम कैसे बनेंगे ?

कुछ साधक कहते हैं कि जो विशुद्धि घर में होती है वह यहाँ नहीं होती है; यह भी तुम्हारी अज्ञानता बोल रही है। इसका मतलब तुम सुख-सुविधाओं की अनुभूति को आत्मशांति मान रहे थे। यहाँ वैसी सुविधाएँ नहीं हैं, विषमताएँ ही विषमताएँ हैं। **पग-पग पर विषमता मिलेगी उसमें तुम समता बनाके रखो, उसका नाम वैराग्य है।** सुख के दिनों को तुम समता कह रहे थे। भैया! वो समता नहीं थी, वो

सुख की अनुभूति थी। **विषमताओं के आने पर भी, अपमान के होने पर भी, सम्मान प्राप्ति के भाव मन में नहीं लाना; इसका नाम समता है।** इसलिए पुरुषार्थ जाग्रत करो और उसको प्राप्त करने का लक्ष्य बनाओ जिसे मैंने जीवन में अनंत पर्याय में प्राप्त न किया हो, उस समता की खोज करो। क्यों मुमुक्षु! जब खदान से सोना निकलता है तब कैसा होता है? काला। तुमने हीरा देखा, जो पन्ना की खदान में हीरा निकलता है, तो ऐसा नहीं कि मखमल की डिब्बी में निकलता हो। वह हीरा पत्थरों में मिट्टी में निकलता है और मटमैला रहता है। वही हीरा बम्बई, सूरत आदि में पहुँचता है तो तराशा जाता है। तराशा हीरा। अब कोई कहे कि चमक पहले से थी, चमक पहले अंदर में थी पर प्रकट नहीं थी, जब तराशा गया, कसा गया तब प्रकट हुई। जब सोने को तपाया जाता है तो धवलता आती है, हीरे को तराशा जाता है तो और धवलता आती है। ऐसे ही ज्ञानियो! समयसारजी में लिखा है कि **जैसे मन्द धोंकनी में धोकने से सोने की किट्टिमा को अलग किया जाता है ऐसे ही ध्यान की धोंकनी में धोंकने पर आत्मा की कर्म-किट्टिमा को अलग कर दिया जाता है, फिर आत्मा शुद्ध परमात्मा बन जाती है।**

जो विषमताओं के दिन हैं वे मेरे भीतर नहीं हैं, वे बाहर हैं। अच्छा, आपने मुझे गाली दी, माना कि बेटे ! जो तू मुझे गाली दे रहा है वह गाली तू दे रहा है। गाली देने के भाव तेरे में हैं, तो मेरा और तेरा अत्यंताभाव है, ये मेरी मानसिकता बनेगी तो गाली लगेगी क्या? नहीं; यदि मेरी मानसिकता पवित्र है तो। क्या तुमको पता नहीं है कि आज दिनभर से पानी गिर रहा है, अभी भी गिर रहा है और तू सूखा बैठा है, ऐसा क्यों? आपको मालूम है कि मैं भवन में बैठा हूँ। ऐसे ही निर्ग्रन्थ तपोधन जगत् में विषमताओं के आँधी-तूफान कितने भी चलें जो समता के भवन में बैठे रहते हैं वे सूखे ही रहते हैं। राजकुमार पर सिगड़ी रखी वो जले नहीं, भगवान् पारसनाथ पर ओले-शोले गिरे पर भगवान् की आत्मा में कषाय उत्पन्न नहीं हुई।

साधको! प्रवृत्ति पर ध्यान दो, निवृत्ति पर ध्यान दो, दोनों में तत् अतत् खोजिए। आपका मेरे में अतत्पना है, मेरा आपमें अतत्पना है। विश्वास मानिए, जैनदर्शन सूखा है। जितने भी तीर्थक्षेत्र मिलेंगे पर्वतों पर मिलेंगे, नदी के किनारे नहीं मिलेंगे। कुछ हो सकते हैं पर मुख्यतया पर्वतों पर ही क्यों? यहाँ गीले की आवश्यकता नहीं है, सुखाने की है, हमें तो कर्मों को सुखाना है।

जे झाया झाणग्गिए कम्म कलंक डहेवि।
णिच्च णिरंजण णाण-मय ते परमप्प णवेवि ।।प.प्र.।।

अंटी की विद्या, कण्ठी में दाम अवश्य काम में आते हैं। नवीन सकोरा, उस पर पानी की बूंद टपका दो, दिखेगी क्या? नहीं दिखेगी, पर धीरे-धीरे दिखने लगेगी। ऐसे ही विषय यह अभी न भी समझ में आये पर सुनते चलो, धीरे-धीरे झलकने लगेगा। इसलिए पढ़ो, समझो, विषय समझ में न आये तो

ज्यादा समझने की कोशिश मत करना, नहीं तो पागल हो जाओगे। शांति से सुनते जाओ नहीं तो मस्तिष्क के तन्तु बहुत कमजोर हैं वे चंचल हो जायेंगे, धीरे-धीरे सुनते जाओ, क्षयोपशम बढ़ेगा सब समझ में आयेगा।

1990 में टीकमगढ़ में षट्खण्डागम की वाचना चल रही थी, तब मैं क्षुल्लक था। एक वर्ष भी दीक्षा को नहीं हुआ था। षट्खण्डागम जैन आम्नाय का सर्वोपरी ग्रन्थ है। उसमें बड़े-बड़े विद्वान्, मूर्धन्य पण्डित, दरबारीलाल कोठिया, प्रकाश हितैषी दिल्ली वाले भी आया करते थे। मैं तो बैठा-बैठा देखता रहता था। पंडितजी कोठियाजी अर्थपर्याय को समझा रहे थे, और यही दृष्टांत दे रहे थे, मुझे आज तक याद है। नया सकोरा, उस पर पानी की बूँद डालते जाओ तो धीरे-धीरे पानी दिखना प्रारंभ हो जाता है। उस दिन मैंने उसे हृदय में रख लिया कि नये सकोरे पर पानी की बूँदें डालो तो धीरे-धीरे गीला दिखने लगता है। मैंने तनाव करना बंद कर दिया और ज्यादा समझने का प्रयास नहीं किया। धीरे-धीरे सब समझ में आता है। उस समय का पढ़ाया, अब समझ में आता है। उसी प्रकार आज आप सुन रहे हो वह भविष्य में समझ में आयेगा।

नरक के नारकियों को भी श्रुत देशनालब्धि का कारण बन सकता है, फिर तुम तो मनुष्य हो, इसलिए प्रवचन कभी नहीं छोड़ना, यही श्रुत तुम्हारे लिए देशनालब्धि का कारण बनेगा। अवधि, मनःपर्ययज्ञान से केवलज्ञान प्रगट नहीं होता, श्रुतज्ञान से प्रगट होता है। शुक्लध्यान भी बनता है तो श्रुतज्ञान से, बारहवें गुणस्थान तक। एकत्ववितर्क, पृथक्त्ववितर्क, जो दो शुक्लध्यान हैं वे श्रुतज्ञान के ही परिणमन हैं। जब-जब समय मिले, चलते-फिरते, उठते-बैठते श्रुत का चिंतन करो। लोग कहते हैं कि समय नष्ट हो रहा है। अज्ञानी का समय नष्ट होता है, ज्ञानी तो कभी ज्ञान से अलग होता ही नहीं है। चलते-चलते श्रुत का चिन्तन करो। लम्बे समय तक खाली मत छोड़ना, अध्ययन करो, शास्त्र का चिंतन करो। खाने के बाद गाय जुगाली करती है। जितना तुम सुनते-पढ़ते हो उसकी जुगाली भी किया करो। यदि गाय जुगाली न करे तो पेट फूल जाए। तत्त्व का चिन्तन करो। यदि लम्बे समय तक पढ़ते रहे बिल्कुल खाली नहीं छोड़ा तो विश्वास रखना समझ में आना बंद हो जायेगा, इसलिए खाली छोड़ो बीच-बीच में, इस बात का ध्यान रखना।

समाधिकाल में कुछ लोग क्या कहते हैं – सुनाओ, सुनाओ। अरे ! तुझे ही कोई सुनाये तो तू थक जायेगा। अन्तिम श्वास का समय चल रहा है, थोड़ी विश्रान्ति तो लेने दो। ध्यान रखना भाई, जिसे तुम सुना रहे हो उसने जीवनभर दुनियाँ को सुनाया था। उसे अपना सुनाओगे और मुख से निकल गया अब रहने दो। थक गये थे इसलिए मना किया था, पर तुम खोटा प्रचार करोगे कि उनकी तो समाधि बिगड़ गई। क्यों बिगड़ गई? मैं उन्हें णमोकार सुना रहा था, तो उन्होंने कहा – हल्ला मत करो, शांति पकड़ो। यूँ कभी नहीं कहेगा कि मेरी अज्ञानता इतनी चल रही थी, उनकी अवस्था को देखकर नहीं सुना रहा था। देख मेरे

साथ ऐसा उपद्रव मत करना, नहीं तो कल कहोगे कि महाराज की असमाधि हो गई, थोड़ा शांति लेने देना। पंचमकाल है, सब बातें स्पष्ट कर देना चाहिए। श्रद्धानी लोग कम हैं, अश्रद्धानी ज्यादा हैं।

'अतद्रूपाऽभवनरूपा अतत्त्वशक्तिः'

अगली शक्ति है- **अतत्शक्ति।** मैं निजरूप हूँ, यहाँ तक का व्याख्यान आपने समझ लिया। मैं निजरूप हूँ यह तो तत्शक्ति से जान लिया, **अतत्शक्ति कह रही है – मैं पररूप नहीं होऊँगा। जड़ चेतन नहीं हो सकता, चेतन जड़ नहीं हो सकता है।** जैसे नाली में पड़ा सोना कभी कीचड़ नहीं हो सकता, ऐसे ही कर्मों के मध्य में पड़ी आत्मा भी कभी कीचड़, कर्मभूत नहीं होगी। आत्मा, आत्मा ही होगी, आत्मा जड़ नहीं हो सकती। इस दृष्टि से आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है। किसी दृष्टि से एक द्रव्य पर-द्रव्यरूप परिणत नहीं होता है, निजस्वभाव में ही परिणत होता है। इस दृष्टि से कोई भी द्रव्य परभूत नहीं होता है अपने स्वभाव में होता है। असमानजातिपर्याय **'अनादिसम्बन्धे च'**। यह जीव विभावपर्याय में होने के कारण अशुद्ध है, लेकिन अपने द्रव्यत्व का नाश नहीं करता है इसलिए अशुद्ध नहीं है। द्रव्यत्वदृष्टि से कुछ गाथाएँ ऐसी हैं जिनको प्रतिक्षण कण्ठ में रखना -

अण्णोण्णं पविसंता देंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वि णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति॥ 7/पंचा.॥

ज्ञानियो! एकद्रव्य दूसरे द्रव्य में प्रवेश करने पर भी अन्योन्य - परस्पर अवकाश देते हैं, फिर भी अपने स्वभाव का त्याग नहीं करते हैं, ऐसा पंचास्तिकाय ग्रन्थ में भगवन् कुंदकुंद देव ने लिखा है। इसलिए अतत्रूप नहीं होना जिसका स्वभाव है ऐसी अतत्शक्ति को समझना।

क्लेश करने से कोई लाभ नहीं, वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है। अरे ! अनंतभव हो गये समयसार की प्राप्ति के लिए। ग्रन्थ को समयसार मत समझ लेना, यह तो समयपाहुड है। ज्ञानी! रत्नत्रय से मण्डित चिद्रूप चेतन ही समयसार है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।
आत्मा का स्वभाव पर भावों से अत्यंत भिन्न है।
भगवान् महावीर स्वामी की जय।

31

एकत्वशक्तिः

''अनेकपर्यायव्यापकैकद्रव्यमयत्वरूपा एकत्वशक्तिः।'

अनेक पर्यायों में व्यापक और एक द्रव्यमयपने को प्राप्त एकत्वशक्ति है। यह भगवानात्मा अनेकपर्यायों में व्याप्त होते हुए भी अपने एकत्व को नहीं छोड़ता है, आत्मा के इस स्वभाव का नाम ही 'एकत्व- शक्ति' है।

32

अनेकत्वशक्तिः

''एकद्रव्यव्याप्यानेकपर्यायमयत्वरूपा अनेकत्वशक्तिः।''

एक द्रव्य से व्याप्त-व्यापने योग्य अनेक पर्यायोंमय 'अनेकत्वशक्ति' है। आत्मा में एक ऐसी भी शक्ति है जिसके कारण यह आत्मा स्वयंरूप एक द्रव्य में व्याप्त रहने पर भी अनेक पर्यायरूप से परिणमित हो जाता है।

समय देशना

आचार्य भगवन् कुन्दकुन्दस्वामी ग्रंथराज समयसार जी में ध्रुवज्ञायक स्वभावी भगवानात्मा के सहज स्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। अनंतशक्तियों से सम्पन्न यह भगवान्-आत्मा प्रकृति से भिन्न पुरुष मात्र है। प्रकृति जड़ है और जो लोक में एक सौ अड़तालीस कर्म की प्रकृतियाँ हैं उन प्रकृतियों के मध्य होने पर भी आत्मा अपने आप में प्रकृतिशून्य है। कर्म की प्रकृतियाँ आत्मा में बद्ध अवश्य हैं संसार-अवस्था में, लेकिन आत्मा को जड़भूत नहीं किया है। उनके संसर्ग से आत्मा जड़भूत भी नहीं है। परसहयोग, पर के विकार में सहकारी तो हो सकता है, परसहयोग पर के विनाश में सहकारी नहीं हो सकता। ध्यान रखना इस शब्द पर, **परसहयोग पर के विकार में सहयोगी तो हो सकते हैं, लेकिन परसहयोग पर के विनाश में सहकारी नहीं हो सकते। किसी भी द्रव्य का विनाश होता नहीं।** द्रव्य त्रैकालिक है और त्रैकालिक जो द्रव्य है वह निजभाव में ही परिणत होता है। मिट्टी के सहयोग से पानी मटमैला हो सकता है, पर मिट्टी पानी के शीतलधर्म का विनाश नहीं कर सकती।

कर्म के सहयोग से आत्मा संसार में एक सौ अड़तालीस कर्म-प्रकृतियों के मध्य में हो सकती है, आत्मा अंतरात्मा या बहिरात्मा अवस्था को प्राप्त हो सकती है। कर्म के सहयोग से चौदह गुणस्थान हो सकते हैं। कर्म के सहयोग से चौदह मार्गणास्थान हो सकते हैं। कर्म के सहयोग से जीवसमास हो सकते हैं, लेकिन कर्म के सहयोग से आत्मा के आत्मत्व का घात नहीं हो सकता। आत्मा की उपलब्धि के लिए तपस्या नहीं है। मेरी आत्मा गुमी थोड़े ही है, मेरी आत्मा नष्ट नहीं हुई जो मैं उसकी उपलब्धि को प्राप्त होऊँ। **तपस्या आत्मा की उपलब्धि के लिए नहीं है, तपस्या आत्मा से कर्मों के पृथक्करण के लिए है। जो कर्मों का आत्मा से पृथक् करना है, पृथक् हो जाना है इसी का नाम मोक्ष है।**

एकत्व में जो भिन्नत्व था उस भिन्नत्व को भिन्न कर देना। एकत्व में जो भिन्नत्व प्रवेश कर गया था, अनादि से प्रवेशित है **'अनादि सम्बंधे च'।** अनादि से कर्मबद्ध होने पर क्या, सहजदृष्टि है जीव की कि अनादि से बंध होने पर भी अपनी सत्ता को, स्वतंत्रता को नहीं भूला है। जो जीव भव्य है वह सम्यग्दृष्टि हो सकता है। परतंत्र होने पर अपनी स्वतंत्रता को भूल कर बैठ जाये यही तो मिथ्यादृष्टि है। **परतंत्र होने पर अपनी सत्ता को समझ ले, उसे पृथक् करने का पुरुषार्थ करे, वही सम्यग्दृष्टि योगी है और परतंत्र होने पर भी अपने क्षायिकज्ञान को प्रगट कर ले, वही तो सकल परमात्मा है। परतंत्रता का अभाव करके बैठ जाये उसका नाम निकल परमात्मा।** अपनी सत्ता को स्वीकार कर ले, प्राप्त हो जाये वो परमात्मा है, निकल परमात्मा। यदि आत्मा त्रैकालिक बंधता को प्राप्त है और बंधी ही रहेगी, तो आत्मा कूटस्थ हो जायेगी। जो आत्मा में परिणमन नहीं स्वीकारता है वो कूटस्थ सांख्य है। आत्मा में परिणमन होने की शक्ति है। आप तत्त्वार्थसूत्र का मंगलाचरण करते हो, उस मंगलाचरण को ही समझिये।

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं-कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये।।

तत्त्वार्थसूत्र बहुत बड़ा न्याय ग्रंथ है, इसके ऊपर आचार्य विद्यानंद का 'आत्मपरीक्षा' नाम का ग्रंथ है। जो जीव मोक्ष को ही नहीं मानता है उसके लिए कह रहे हैं – **'मोक्षमार्गस्य नेतारं'**। मोक्ष है तभी तो मार्ग है। मार्ग तभी संभव है जब कोई देश होना चाहिए, प्रदेश होना चाहिए। आप मोक्षमार्ग के नेता हो, नेता का तात्पर्य 'मार्गदर्शक'। नेता शब्द का अर्थ कोई टोपी, कुर्ता-पजामा, धोती नहीं है; **नेता शब्द का अर्थ है मार्गदर्शक। मोक्षमार्ग का कोई नेता है तो सर्वज्ञ अर्हंतदेव हैं, तीर्थंकर भगवंत हैं।** नेता हैं आप, इसका तात्पर्य है आत्मा त्रैकालिक शुद्ध नहीं है। हम लोग जैन हैं, द्रव्यदृष्टि को समझते हुए भी इतना ध्यान रखते हैं कि स्वद्रव्यार्थिकनय के साथ छल ग्रहण करके हमें सदाशिव में न पटक दें।

समझना, हम लोग जो हैं आत्मा को त्रैकालिक शुद्ध मानते हैं, किस दृष्टि से? कर्मोपाधिनिरपेक्ष स्वद्रव्यार्थिकनय से। कर्मोपाधिनिरपेक्ष स्वद्रव्यार्थिकनय से तात्पर्य है - कर्म की उपाधि को न देखते हुए हम कर्म से निरपेक्ष देखते हैं। जैसे, शुद्ध पानी भरा है तालाब में, पर ऊपर शैवाल है। इसका तात्पर्य है कि तालाब में पानी होना चाहिए। मैं पानी को देख रहा हूँ, शैवाल को नहीं देख रहा हूँ, बिल्कुल सत्य है। लेकिन जब पानी पीने जाओगे सरोवर में तो दोनों हाथों से शैवाल हटाकर पानी पीना होता है। किसे हटाया? शैवाल को हटाया। पानी शैवाल के नीचे है, पानी के ऊपर शैवाल है, यह दृष्टांत है।

ऐसे ही आत्मा के ऊपर कर्म हैं। ऐसा समझना जैसे तिल में तेल व्याप्त है संश्लेषरूप से, दूध में पानी व्याप्त है संश्लेषरूप से, ऐसे ही आत्मा में कर्म व्याप्त हैं संश्लेषरूप से। फिर भी पानी पानी है, दुग्ध दुग्ध है; आत्मा आत्मा है, कर्म कर्म है।

द्रव्यार्थिकनय यह कह रहा है, आप पानी को मत देखिए दूध को देखिए। तो कर्मोपाधिशुद्ध द्रव्यार्थिकनय से हम सभी शुद्ध हैं निश्चयनय से, शुद्धनिश्चयनय से हम शुद्ध हैं। निश्चयनय से शुद्ध हैं न कि हम सदा शुद्ध हैं। समझिए, यदि यह न समझ पाये तो हम जैनकुल में जन्म लेकर भी सदाशिव मत में प्रवेश कर गये। मंगलाचरण का अगला चरण क्या बोल रहा है **'भेत्तारं कर्मभूभृताम्'**।

जो कर्मरूपी पर्वत हमारे आत्मा को ढँके हुए थे, संश्लेषित थे, उन कर्मरूपी पर्वतों के आप भेदन करने वाले हो, इससे सदाशिव का खण्डन हो गया कि आत्मा सदा से शिव है। कर्मरूपी पर्वत का खण्डन करेगा तब आत्मा शुद्धत्व को प्राप्त होगी।

जइ पुण सुद्ध-सहावा सव्वे जीवा अणाइ-काले वि।
तो तव-चरण-विहाणं सव्वेसिं विप्फलं होदि।। 200/का.अ.।।

यदि ये जीव शुद्ध ही है तो चरणानुयोग, करणानुयोग का जो विधान है वह निष्फल हो जायेगा। **समझदार को तो अपन समझा सकते हैं पर जो समझना नहीं चाहता, उसे आप कभी नहीं**

समझा पाओगे। ऐसे अज्ञानियों के माध्यम से कभी-कभी पूरा दर्शन बदनाम हो जाता है। ज्ञानी तो क्या समझेगा, चरण-करण का विधान है वह इस दृष्टि से है। आत्मा को पहचानो। यदि आप अशुद्ध आत्मा में शुद्ध आत्मा नहीं पहचानोगे; अशुद्ध पर्याय में अशुद्ध आत्मा में, शुद्ध को नहीं समझोगे, तो कभी तुम उसको प्रगट करने का पुरुषार्थ नहीं करोगे। आपको समझना तो पड़ेगा, स्वीकारना पड़ेगा, लेकिन उस शुद्धता के लिए स्वीकार रहे हो, जिसमें अभी शुद्ध पर्याय की प्रत्यासत्ति नहीं है, अभी उसमें अशुद्ध पर्याय की प्रत्यासत्ति है। पुनः आप प्रश्न करेंगे - क्या शुद्धद्रव्य अशुद्धपर्याय में रह सकता है? क्या शुद्धपर्याय में अशुद्धद्रव्य रह सकता है? द्रव्यदृष्टि भिन्न विषय है और द्रव्य भिन्न विषय है। संसार-अवस्था में बद्ध आत्मा को आपको एक समय के लिए अशुद्ध कहना चाहिए। हम संसार में शुद्धत्वशक्ति को स्वीकारते हैं और कर्ममयी आत्मा नहीं होती है इस अपेक्षा से शुद्ध है। पर बंध-अपेक्षा से चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर रहा है इस अपेक्षा से, विभाव द्रव्यव्यंजनपर्याय की दृष्टि से, विभाव गुणव्यंजनपर्याय की दृष्टि से, इन दोनों की दृष्टि से संसार में आत्मा अशुद्ध है। स्वभावगुण-व्यंजनपर्याय की दृष्टि से केवलज्ञान, केवलदर्शन से युक्त आत्मा स्वभावगुण व्यंजनपर्याय है। चरम शरीर से किंचित् न्यून जो सिद्धपर्याय है वह जीव द्रव्य की स्वभावद्रव्यव्यंजन पर्याय है। यह पूरा विषय 'आलापपद्धति', 'नियमसारजी' में वर्णित है।

'द्रव्यस्वभावनयचक्र' यह नय 'धवलाजी' का है। इस ग्रन्थ में समयसार के गूढ़ रहस्यों को समझाया है। 'लघु नयचक्र' देवसेन स्वामी का है। कई प्राचीन नयचक्र हमारी परम्परा में रहे हैं। ऐसे कई प्राचीन नयचक्र हैं, जिनका आधार लेकर के देवसेनस्वामी ने आलापपद्धति, नयचक्र की प्ररूपणा रचना की। आलपपद्धति के वचनों की जो रचना है ये नयचक्र ग्रन्थ के ऊपर लिखी है।

अब यह समझना है **'कर्मभूभृताम्'**। हम कर्म को नाश करके शुद्धसत्ता को प्राप्त करते हैं, नाश से तात्पर्य कर्म का अभाव नहीं समझना, नाश से तात्पर्य वस्तु का विनाश नहीं समझना। कर्म भी पौद्गलिक हैं। आप सहज भाषा में बोल देते हो कि कर्म का नाश कर दिया। भगवान् ने कर्म का नाश नहीं किया है। नाश किसी वस्तु का होता ही नहीं है, अपने ध्रुव आत्मा से कर्म पृथक् कर दिया है इसलिए नाश संज्ञा दी है। पर वास्तव में नाश होता नहीं है, पृथक्करण की क्रिया है। दुग्ध में भी मल होता है और दुग्ध के मल को देखना है तो पहले आप मक्खन बनाइए और मक्खन को तपाने पर आपको मरी मिलती है, वह मल है यानी दुग्ध में भी मल था। आपने क्रिया करते-करते जो मल हटा दिया, तब मक्खन से घृत बनता है, ऐसे ही **आत्मा में द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म मल हैं और जब ये मल हट जायेंगे तो यही आत्मा मेरा शुद्ध परमात्मा हो जायेगा।**

'ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां' परमात्मा विश्व के तत्त्वों का जानने वाला है। हमारा परमात्मा शून्यवादी नहीं है, नैयायिकवादी नहीं है, अज्ञानवादी नहीं है। वस्तुस्वरूप क्या है आपको इससे क्या प्रयोजन? ये

कोई प्रश्न का उत्तर नहीं है। संजय बिट्ठल नाम का एक पुरुष हुआ है, यह महावीर स्वामी का समकालीन और परिपूर्ण अज्ञानवादी था। देखो इस व्यक्ति का पुण्य, इसने अपना सम्प्रदाय बना लिया। उससे प्रश्न किया – वस्तु का स्वरूप क्या है? तो क्या बोलता है – 'जानता ही नहीं, बताऊँ क्या'। यह सिद्धांत था। पूछा - मोक्ष के बारे में क्या सोचते हो? जानता ही नहीं बताऊँ क्या। स्वर्ग, नरक के बारे में क्या विचार है? जानता ही नहीं बताऊँ क्या? बौद्धदृष्टि; आनंद पूछता है - भन्ते! स्वर्ग कैसा है? सब अनित्य है, जानने से क्या प्रयोजन। लेकिन महावीर से जब प्रश्न किया जाता तो वे कहते थे - स्याद्अस्ति, स्याद्नास्ति, स्याद्अस्तिनास्ति, स्याद्अवक्तव्य, स्याद्अस्तिअवक्तव्य, स्याद्नास्ति अवक्तव्य और स्याद्अस्ति-नास्ति अवक्तव्य है, उन्होंने सात उत्तर दिये, चार भंग मुख्य, तीन संयोगी भंग। चार भंगों की व्याख्या बौद्ध के यहाँ भी हुई, लेकिन जिनशासन में सातभंग की व्याख्या हुई। भगवान् कुन्दकुन्दस्वामी का न्याय। अब तो कुन्दकुन्दस्वामी के न्याय को खोजने की आवश्यकता है। विद्वानो ! कुन्दकुन्द के ग्रन्थ से न्याय खोजें, तब जिन जीवों को भ्रम है कि आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी मात्र अध्यात्म की व्याख्या करते हैं, उनके भ्रम नष्ट होंगे। कुन्दकुन्दस्वामी मात्र अध्यात्म की व्याख्या नहीं करते हैं, सप्तभंगी की व्याख्या करने वाले कुन्दकुन्द स्वामी हैं।

सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।
दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि॥14/पंचा.॥

द्रव्य के सात भंग हैं, यह आदेश के अनुसार समझना चाहिए। प्रवचनसार ग्रंथ में स्याद्वाद का विस्तार से वर्णन किया है और नयसप्तभंगी, प्रमाणसप्तभंगी - इन विषयों की प्ररूपणा 'तत्त्वार्थराजवार्तिक' में भट्टअकलंकस्वामी ने की है। पूजनपाठ के विद्वान्, प्रवचन के विद्वान् बहुत हो चुके हैं। न्याय विद्या को को जानने वाले विद्वान् बहुत कम हैं। इन विद्यार्थियों को उस स्थान पर रखो जहाँ कैलाशचन्द्र, फूलचन्द्र, दरबारीलाल कोठिया जैसे विद्वान् हुए। एक महेन्द्रशास्त्री हुए हैं अपने यहाँ, कम उम्र में मृत्यु हो गई, न्याय के विद्वान् थे। वर्तमान में सुपार्श्वमति माताजी, ज्ञानमति माताजी; इन आर्यिकाओं ने कितना उपकार किया, व्यवहार से। परमार्थ से यह कहो – जिनवाणी ने उनका उपकार किया। एक समय में एक ही काम हो सकता है, श्रुत की आराधना करो, आनंद श्रुत में ही है।

आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी चाहते तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ लिख देते, लेकिन हमारे आचार्यों की लघुता और जिनवाणी की सेवा के भाव और उनमें दम्भ का नाश, अहं का नाश और कर्तृत्वबुद्धि का अभाव रहा। भारत की भूमि पर कर्तृत्वबुद्धि का निरसन करनेवाला कोई हुआ है तो आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी। जिस योगी ने पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार, तत्त्वार्थसार, लघुतत्त्वस्फोट आदि ग्रन्थों का सृजन किया फिर भी लिखते क्या हैं आचार्य महाराज – वर्णों से शब्द बने, शब्दों से वाक्य बने, वाक्यों से अध्याय-परिच्छेद बने और अध्यायों से ग्रन्थ बना; मैंने क्या किया?

आज तो एक पंक्ति इधर की चुराई, दूसरी वहाँ की चुराई, मैं लेखक हूँ। साहित्य के तस्कर, साहित्य की भीषण तस्करी हुई है। चोरी करके नाम तो लिखा सकते हो, पर ज्ञानी नहीं बन सकते हो और ज्ञान जो है छत पर रखी काली टंकी की तरह नहीं होना चाहिए। उस टंकी में जितना भरो उतना ही है। स्याद्वाद काली टंकी का पानी नहीं है, यह पाताल तोड़ कुआँ है। निज के भीतर से निकलना चाहिए, भूमि से निकलना चाहिए। जैनदर्शन कहता है हम भरा ज्ञान स्वीकार नहीं करते हैं, हमारे भीतर से प्रगट ज्ञान स्वीकार करते हैं और केवलज्ञान भरा नहीं जाता है, प्रगट होता है। काली खोपड़ी वालों के ज्ञान को प्रमाण नहीं मानते, हम सर्वज्ञ की वाणी को प्रमाण मानते हैं। **'सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं'** सम्यग्ज्ञान प्रमाण है।

ये सैंतालीस शक्तियों का वर्णन तो अमृतचंद्र की कथन शैली है। यह बहुत बड़ा न्यायशास्त्र चल रहा है। **एकत्वशक्ति, अनेकत्वशक्ति और दोनों विरुद्ध शक्तियाँ हैं। यह तो स्याद्वाद की महिमा है। दो विरुद्ध धर्मों को एक वस्तु में दिखा दे इसका नाम स्याद्वाद है। दो विरुद्ध धर्मों को युगपत् समझा दे – यह स्याद्वाद है।** 'अकलंक ग्रन्थत्रयी' – लघीस्त्रयी, सिद्धिविनिश्चय, न्यायविनिश्चय। अकलंक स्वामी ने ग्रन्थ भी लिखे और टीका भी स्वयं लिखी। बेटा ! पेट भरने के लिए दुनियाँ पंडित बनती है। बेटा ! पुण्य का नियोग होगा तो पेट तो भर जायेगा। अपन को तो जिनवाणी का कोष भरने के लिए विद्या पढ़ना है। जब-जब न्याय की कक्षा चलेगी तब-तक पंचमकाल के अंतिम श्वासों तक आचार्य अकलंक, आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य समन्तभद्र को कोई भूल नहीं सकता है और कुन्दकुन्ददेव के समयसार को किसी ने विख्यात किया है तो वे हैं आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी, आचार्य जयसेन स्वामी।

एक हजार वर्ष तक आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थ छुपे रखे रहे, उन्हें देखने का प्रयास नहीं किया गया। एक हजार वर्ष के बाद आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने टीका लिखी। क्या प्रौढ़ भाषा है ? यशस्तिलक चम्पू महाकाव्य, चन्द्रप्रभ चरित्र, अमृतचन्द्रस्वामी की आत्मख्याति टीका जैनदर्शन में संस्कृत में सबसे प्रौढ़ भाषा के ग्रन्थ हैं। यशस्तिलक चम्पू में सोमदेवसूरि ने जो वेदों की भाषा है उसका प्रयोग किया है। 'पार्श्वाभ्युदय' आचार्य जिनसेनस्वामी का ग्रन्थ है। पार्श्वाभ्युदय ग्रन्थ कालीदास के मेघदूत से उत्तम है। पार्श्वाभ्युदय में इतना ही वर्णन है कि अहिक्षेत्र में पार्श्वनाथ खड़े हैं, कैसे कमठ उपसर्ग करता है, इतने में महाकाव्य रचना हो गई। ये हमारे यहाँ काव्यशैली रही है। ग्रथों के नाम क्यों ले रहा हूँ जिससे आपको लगे हमारे आचार्यों ने इतना पुरुषार्थ, मेहनत की है। हम इतने अभागे तो नहीं कि खोल कर न देखें। केवलज्ञानी बनने का मार्ग मात्र श्रुतज्ञान है और कोई दूसरा उपाय नहीं है।

एकत्वशक्ति-अनेकत्वशक्ति की व्याख्या कर रहे हैं तो कैसे प्रवेश कर गये अनंतपर्यायों में, एक जीवद्रव्य को देखें।

'अनेक पर्यायव्यापकैकद्रव्यमयत्वरूपा एकत्वशक्तिः ॥ 31 ॥

अनेक पर्यायों में व्याप्त होने पर भी ये चैतन्य आत्मा अपने चैतन्यधर्म को नहीं छोड़ रहा है, वह एकरूप ही रहता है - एकत्वशक्ति। ज्ञानियो ! इस जीव ने अनंतबार निगोद अवस्था को प्राप्त किया है। यह जीव अनंत बार स्थावर, अनंतबार दो इन्द्रिय आदि अवस्था को प्राप्त हुआ, कितनी बार नारकी आदि अनेक अवस्थाओं को प्राप्त किया है। एक जीव की पर्याय को यदि भूतल पर संग्रह करके रखा जाये, मुर्दा ढाँचों को संग्रह करके रखा जाये तो इस ढाईद्वीप में स्थान नहीं मिलेगा। इतनी माताओं का दूध पीया है कि जो मुख से फेन निकल रहा था, उस फेन को ही संग्रह कर लिया जाये तो बड़े-बड़े सागर भर जायें दूध के। आपके वियोग में इतनी मातायें रो चुकी हैं कि उनके आँखों के आँसुओं को संग्रह किया जाता तो महासागर भर जाते। अब भी तुझे दया नहीं आ रही, अब कितनी माताओं को और रुलाना चाहता है ? **जो जीव मोक्ष का पुरुषार्थ नहीं कर रहा है, वह महापापी जीव है।** वो अनंत माताओं के रुलाने के पाप का बंधक है। कितनी माताओं को पीड़ित किया है नौ मास उनके उदर में रहकर। धन्य हैं वे जीव जिनका पुरुषार्थ है कि अब किसी माँ के गर्भ में न आना पड़े।

ऐसा पुरुषार्थ कर लो, भरतक्षेत्र में बस यही पंचमकाल है फिर छठे काल में बहुत दिन लग जायेंगे। यही समय चल रहा है। यहाँ से जो कुछ करना हो कर लो, नियत है। **एक आत्मा अनेक पर्यायों में जाने के बाद भी अपने चैतन्यभूत स्वभाव का परित्याग नहीं करता है - यह एकत्वशक्ति है।** जैसे लोटे में भरा पानी ग्लास में, मिट्टी के बर्तन में, सोने के ग्लास में डाल दिया, लेकिन पानी तब भी अपने शीतलधर्म का परित्याग नहीं करता है, ऐसे ही आत्मा नाना पर्यायों के पात्रों में जाने के बाद भी अपने चैतन्यधर्म का नाश नहीं करता है इसलिए एकत्वभूत है, एकस्वभावी; एकत्वशक्ति।

एकद्रव्यव्याप्यानेक पर्यायमयत्वारूपा अनेकत्वशक्तिः ॥ 32 ॥

विपरीत धर्म, अनेकत्वशक्ति भी हमारे भीतर है। मैं एक जीवद्रव्य अनेक पर्याय में जाने की क्षमता मेरे में है। अनेक पर्यायों में प्रवेश किया है - अनेकत्वशक्ति। अनेकत्वशक्ति न होती, तो अनेक पर्यायें धारण नहीं कर सकता था। एकत्वशक्ति न होती तो अपने चैतन्यरूप को ही बदल देता। इसलिए अनेकत्वशक्ति भी है, एकत्वशक्ति भी है। इन दोनों शक्तियों को ध्यान में रखते हुए साधक चिंतन कर रहा है। मुझे भिन्न पुरुष कुछ भी समझे पर मेरा भिन्नत्व है नहीं मेरे से। भिन्न पुरुष मुझे कुछ भी समझे पर मेरा भिन्नत्व नहीं है मुझसे। कोई मुझे अभिन्न भी समझे तब अभिन्नत्व नहीं है मेरा तन से, जिसमें निवास कर रहा हूँ उसमें मेरा अभिन्नत्व नहीं है। मेरे चैतन्यगुणों में नाना गुणों की व्याख्या कर रहे हो। दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीर्य की व्याख्या कर रहे हो; ये मात्र संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन की दृष्टि से भिन्न हैं, अधिकरण की दृष्टि से भिन्न हैं। कभी निज के भेद को देखो, कभी निज के अभेद को देखो। मैं पुरुष हूँ। जिसने पुरुष को समझ लिया है, वह प्रकृति को कह देगा, स्त्रीवेद मैं नहीं हूँ, पुरुषवेद मैं नहीं हूँ, नपुंसकवेद मैं नहीं हूँ, मैं

मात्र पुरुष हूँ। जो स्त्रीवेद है, पुरुषवेद है, नपुंसकवेद है ये प्रकृति है। त्रिवेद प्रकृति का धर्म है, पुरुष का धर्म नहीं है।

द्रव्यार्थिकदृष्टि से देखो, कर्म प्रकृति के कारण हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद; ये नोकर्म हैं, वेदकर्म हैं; वेदकर्म त्रैकालिक नहीं है। स्त्री त्रैकालिक नहीं है, नपुंसक त्रैकालिक नहीं है, लेकिन पुरुष त्रैकालिक है। वो पुरुष कौन है? मैं स्त्री नहीं हूँ, मैं पुरुष नहीं हूँ, नपुंसक नहीं हूँ तो पुरुष कौन है? पंडितजी! क्या कह रहे हैं कि मैं मना भी कर रहा हूँ और स्वीकार भी कर रहा हूँ। मैं मना कर रहा हूँ भिन्न की, जब वेद की बात करता हूँ। जब स्वीकार करता हूँ तब मैं आत्मा की बात करता हूँ। आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी परमरस से भरा जीव, जिनके सामने सभी दार्शनिकपक्ष झूल रहे थे। जिसको जीवन में समयसार के रहस्य को जानना हो, तो 'स्याद्वादअधिकार' को कभी छोड़ मत देना। ये सैंतालीस शक्तियाँ स्याद्वाद अधिकार में ही चल रही हैं। ज्ञानी ! जब सांख्य प्रकृति पुरुष का विशद वर्णन कर रहा था, तब किसी जैनाचार्य की दृष्टि नहीं गई कि हम भी प्रकृति पुरुष की व्याख्या करें, आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी ने की है।

अस्ति पुरुषश्चिदात्मा विवर्जितः स्पर्शगन्धरस वर्णेः।
गुण पर्यय समवेतः समाहितः समुदय व्यय ध्रौव्यै॥9/पु.सि.उ.॥

जो उत्पाद-व्यय से संयुक्त है और गुणपर्याय से युक्त है ऐसा वो पुरुष कौन है ? पंडितजी! समयसारजी की उनचासवीं गाथा उपनिषदों में ज्यों-की-त्यों लिखी है। मात्र अंतर इतना है समयसार में प्राकृत भाषा में लिखा है और उपनिषद में संस्कृत में लिखी है, पर शब्द-शब्द एक से लिखे हैं।

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठ संठाणं॥ 49/स.सा.॥

जो जीव है, मात्र जीव कुछ नहीं, मात्र जीव मनुष्य नहीं, नपुंसक नहीं, तिर्यंच नहीं। मात्र जीव स्पर्श-रस-गंध-वर्ण से रहित है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से युक्त है, गुण-पर्याय से युक्त है। मात्र जीव, मैं पुरुष हूँ; ये वाला पुरुष नहीं। पंडितजी ! आप मुझे देख रहे क्या? इतनी ताकत कहाँ से आ गई कि आप मुझे देखने लग गये। भाई ! जिसे तू देख रहा है, वह मैं नहीं हूँ, जो मैं हूँ उसे तू देख नहीं सकता।

यन्मया दृश्यते रूपं, तन्न जानाति सर्वथा।
जानन्न दृश्यते रूपं, ततः केन ब्रवीम्यहम्॥ स. तं./18॥

समाधितंत्र पढ़ना चाहिए। जो रूप तुम देख रहे हो, जान रहे हो, वो जानता नहीं है। जो जाननहारा है उसका रूप नहीं है। बताओ, किससे बात करें? भाव, अभाव, भावाभावशक्ति इनकी व्याख्या आगे करेंगे। अनेक दर्शनों को पढ़ने से यह मालूम चलता है कि सर्वज्ञ की नकल करने वाले कितने लोग रहे हैं। सत्, असत्, सतसत्; ये पूरी व्याख्या गीता में लिखी है।

ऊर्जा का विनाश होता है कि परिणमन होता है? परिणमन होता है। रस्सी जल गई तो वस्तु का नाश हो गया क्या? विनाश नहीं होता, यह किसने कहा है? आइंस्टीन ने। पंडितजी ! जब आइंस्टीन का जन्म नहीं हुआ था तो उसके पहले ऊर्जा का विनाश होता था क्या? मुझे तो आश्चर्य होता है पंडितजी! कि आप जैसे विद्वान् बताने वाले को कर्त्ता बना दें, ये कितनी मूढ़दृष्टि है। सेवफल ऊपर से नीचे गिरता है - ये गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत किसने बनाया? न्यूटन ने। कितनी गलत पढ़ाई चल रही है ? न्यूटन नहीं जन्मा था तो उस समय सेवफल ऊपर उड़ते होंगे ? न्यूटन ने सिद्धांत बनाया नहीं था, बताया था। इसलिए ध्यान दीजिए **'वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है'।** आचार्य समन्तभद्र के ग्रन्थों को पढ़िए और उसमें सिद्धांत निकालिए।

नैवाऽसतो जन्म सतो न नाशो

असत् का जन्म नहीं होता है, सत् का विनाश नहीं होता। वस्तु का विनाश नहीं होता, वस्तु का परिणमन होता है, यही है भाव-अभाव-भावाभाव। इसी का गीता में वर्णन किया गया है। कुन्दकुन्दस्वामी ने पंचास्तिकाय में जितनी गाथाएँ दी हैं, वहाँ किसी वैज्ञानिक को स्थान नहीं है। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि जहाँ से सांख्य का जन्म होता है वहाँ तीर्थंकर ऋषभदेव के चरण थे। इतना रहस्य क्यों भरा वहाँ, क्योंकि पौत्र किसका था मारीचि ? आदिनाथस्वामी का पौत्र था। पंडितजी ! बढ़िया सेंट्रिंग बनाना जानते हैं, उस पर छत बनाते हैं, जब-तक छत पक्की नहीं हो जाती तब-तक सेंट्रिंग को बहुत अच्छे से रखते हैं और जैसे ही पक्की हो गयी, अलग कर देते हैं। ऐसे ही मिथ्यात्व की प्रवृत्ति भी सत्यधर्म की सेंट्रिंग पर होती है और जैसी मिथ्यात्व की छतें पक्की हो गईं वैसे ही सत्य की छतें हटा देते हैं, ऐसा हुआ। पंडितजी ! अब तो हमारा राज्य है, अब तो हमारी छतें पक्की हो गईं, अब सत्य से क्या प्रयोजन। ज्ञानी ! विश्वास रखना, प्रशंसा मिल सकती है, पर प्रशंसनीय नहीं हो सकते। मिथ्यात्व के एकांत में डूबकर जीव प्रशंसनीय नहीं हो सकता।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव पर भावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

33

भावशक्तिः

‘‘भूतावस्थत्वरूपा भावशक्तिः।’’

वर्तमान अवस्था से युक्त होने रूप भावशक्ति है। प्रत्येक द्रव्य में एक ऐसी शक्ति है, जिसके कारण द्रव्य अपनी वर्तमान अवस्था से युक्त होता है उसे ‘भावशक्ति’ कहते हैं।

समय देशना

भव्य बन्धुओ! आचार्य प्रवर भगवत् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज समयसार में सैंतालीस शक्तियों में **भावशक्ति** का वर्णन कर रहे हैं। **आत्मद्रव्य त्रैकालिक अपने स्वभाव में है, किसी भी अवस्था में निजभाव का अभाव द्रव्य नहीं करता है। जो सत् है वही भाव है। जो भाव है, वही सत् है। जो सत् है, वही सत् है वही द्रव्य का लक्षण है।**

'सद् द्रव्य लक्षणम्' द्रव्य का लक्षण सत् है। जिसको निज की भावशक्ति पर दृष्टि है वो संसार की किसी भी अवस्था में हो निज के भाव को देखता है, निज के भाव-अभाव कभी नहीं देखता। **निजभाव में परभाव का अभाव जो देख रहा है वह क्लेश को प्राप्त नहीं हो सकता। निजभाव में परभाव का सद्भाव जो देख रहा है वह नियम से क्लेश को प्राप्त होगा।** निजभाव में परभाव का सम्बंध कभी होता नहीं। जैसे रत्नों की राशि एक पिटारे में होने पर भी, प्रत्येक रत्न स्वतंत्र है। एक टोकरी में बहुत सारे धान्य रखे हुए हैं, सभी धान्य संगृहीत हैं फिर भी प्रत्येक दाना स्वतंत्र है। ऐसे ही इस लोक में अनंतानंत जीव राशि हैं फिर भी प्रत्येक जीव स्वतंत्र है। एक रत्न में दूसरे रत्न का परिणमन नहीं है। एक रत्न दूसरे रत्न को किचिंत् मात्र भी प्रभावित नहीं कर रहा है।

ज्ञानियो! एक जीवद्रव्य अनंत जीवों के मध्य में होते हुए भी अपने ज्ञान-दर्शनगुण को दूसरे जीवद्रव्य को प्रदान नहीं करता, न दूसरे द्रव्य के ज्ञानदर्शन को स्वयं स्वीकार करता। मात्र राग-द्वेष मोह की सत्ता के कारण ये जीव सोच लेता है कि मेरे निमित्त से इनको सुख हो रहा है, मेरे निमित्त से इनको दुःख हो रहा है। ध्रुव सत्य है सुख-दुःख कोई किसी को देता नहीं है। मोह है, सो सुख-दुःख है।

जब कालीघटा को देखकर के, बादलों की गड़गड़ाहट को देखकर के, जंगल में चरनेवाली गाय भी जंगल छोड़ कर नगर की ओर लौटने लगती है ऐसे काल में बुद्धिपूर्वक घर छोड़कर जंगल में जानेवाला जीव वीतरागी तपोधन जंगल में वृक्ष के नीचे शांतचित्त से बैठे हों, ये कौन बिठाये है? साँय-साँय काली रात्रि, साँप-बिच्छू जिस जंगल में विचरण कर रहे हों, बियाबान जंगल है तब भी भय नहीं है, अरति नहीं है, प्रीति नहीं है, कौन बिठाये है उन्हें? कौन उनको निश्चिंत किये है? जिसके भीतर बस्ती का राग निकल चुका है, उसको वन-उपवन एक सदृश दिखाई देते हैं। लगता है आपको ऐसा कि मैं घर छोड़ दूँगा तो कैसा होगा? शीत की बाधा सतायेगी, ग्रीष्म की बाधा सतायेगी। ये सारे विकल्प उन्हीं को सत्ता रहे हैं जिन्होंने भावशक्ति को नहीं समझा। ये सैंतालीस शक्तियाँ चल रही हैं। हे व्याघ्र! तू मुझे भक्षण भी करेगा तो उसी का करेगा जिसका अभाव होता है। मेरे भावशक्ति का भक्षण क्या कर सकेगा? जिस पर्याय का मेरे से अभाव होगा उस पर्याय को ही तू खा सकेगा, परन्तु मेरे चैतन्यद्रव्य का भक्षण नहीं कर सकेगा। मैं तो भावशक्ति सम्पन्न हूँ।

जंगल में आग लग गई तब भी निडर बैठे हुए हैं, ये अग्नि जलायेगी किसको? ये तो मुझे पूर्व से ज्ञात है, बहुत अच्छा होगा मेरे जाने के बाद दुनियाँ मुझे जलते देखती, अहोभाग्य मेरा होगा कि मैं ही मेरे को जलता देखूँ। मेरे जाने के बाद इस देह को लोग जलायेंगे, हर्ष मनायेंगे, साधु की समाधि हो गई, आनंद मनायेंगे, तो क्यों न मैं भी जलता देख आनंद लूट सकूँ कि जलता कैसे हूँ? **'धन्ना ते भगवंता'** ऐसे वीतरागी तपोधन धरती के देवता धन्य हों जो जीते-जीते जलनेवाले शरीर को जलते देख रहे हों, फिर भी मन में किंचित् भी न जलते हों, ये दिगम्बरत्व है। ये आश्चर्य नहीं है, ये कल्पना नहीं है, ये सत्य है। विश्वास नहीं है क्या? उन पाँच पांडव योगियों को निहारिये। इस भवन में बैठे श्रमणों को ही मत देखो, उन योगियों को भी निहारो जिनको लोहे के तप्तायमान आभूषण पहना दिये। गुरुदत्तस्वामी को भी देख लो, गजकुमार मुनिराज को भी देख लो। स्वामी ! अग्नि तो लगा दी थी पर आप जल क्यों नहीं रहे थे? अहो आश्चर्य! अग्नि लगने पर नहीं जल रहे थे। तुम पानी गिरने पर भी जल रहे हो। उनके शरीर पर अग्नि लगी थी तब भी कषाय की ज्वाला से नहीं झुलस रहे थे। ज्ञानियो! एक श्रमण वे थे जो अग्नि लगने पर भी जल न रहे थे। ऊपर अग्नि लगी थी पर भीतर अध्यात्म का नीर बह रहा था, वे जलते कैसे?

जिसने भावशक्ति को जान लिया है वो भव में रुल नहीं सकता। द्रव्य की द्रव्यता त्रैकालिक है - भावशक्ति। अहो श्रमण! अहो साधक ! देह का श्रम करने वाले मजदूर बहुत हैं, मयूर के पंखों को ढोनेवाले बहुत हैं फिर भी श्रमण नहीं हैं, श्रम कर रहे हैं। कपड़ेधारियों की जगत् में संख्या कितनी? तनक-सी, बहुत कम। कपड़ों से रहित की संख्या ही सर्वाधिक है। कपड़ों से रहित जीवन जीनेवाले प्रकृति में वृक्ष, तिर्यंच, मनुष्य आदि बहुत से प्राणी हैं पर वे श्रमण नहीं हैं। कर्मफलचेतना, कर्मचेतना को भोगने वाले बहुत जीव हैं। जिनका ज्ञानचेतना की प्राप्ति पर लक्ष्य नहीं है ऐसे जीव कर्मफल, कर्मचेतना को भोगनेवाले अनंत हैं, वे श्रमण नहीं हैं। श्रम करने पर भी जिसने भावशक्ति को पहचान लिया है और जो मोक्षमार्ग में श्रम कर रहे हैं वे निर्वस्त्र श्रम करने वाले श्रमण हैं, वे वीतरागी यति हैं।

आप जैसा श्रम कौन करता होगा ? कैसे तो आप मुस्कुरा लेते हो, कैसे भोजन कर लेते हो, कितनी विषमताएँ जीवन में रहती हैं, तब भी जी लेते हो। अरे ! जीना है तो ऐसे जीयो कि कुछ भी न करना पड़े और श्रम हो जाये, उसका नाम है जीना। ऐसा जीवन न जी पायें तो क्या जीना है ? निज के भाव को भाव नहीं समझ पाये, अभाव में भाव खोजते रहे, क्या जीना है? **परभाव में निजभाव का अभाव है, लेकिन आप परभाव में ही निजभाव मानते रहे, यही पर्यायमूढ़ता है।**

महाराज ! अब तो मैं वृद्ध होने लगा हूँ। महाराज ! अब मैं युवा होने लगा हूँ, अब मोटा होने लगा हूँ, ये निजभाव नहीं है; ये देह परभाव है, परपदार्थ है, पौद्गलिक है। मैं चैतन्यद्रव्य हूँ। चैतन्यद्रव्य को न पहचानता हुआ अपने देह को ही मोटा-तगड़ा, लाल-पीला स्वीकारते हुए देह के धर्मों को आत्मभूत मानता है; ये अज्ञानी की मूढ़ता है। कर्म की प्रकृति के नाश की बात अवश्य करते हो, लेकिन मधुरता कर्म

की प्रकृति की ही ले रहे हो। समझो, पंडितजी ! मधुरता कर्म की प्रकृति की ही ले रहे हो। देह से भिन्न हटके, देह से भिन्न होकर, विभक्तभाव से निहार करके, जो देही पर लक्ष्य होगा वो रस अलग होगा। अभी समरस नहीं है, सोमरस है। जैसे सोमरस (मादक द्रव) का पान करने वाला अज्ञानी सोमरस को ही समरस मानता हो। पान करके गली में पड़ा हुआ है। श्वान मुख में गर्म पानी का सिञ्चन कर रहा है। मैंने एक दृश्य देखा बीना बजरिया में, ग्रीष्मवाचना चल रही थी। एक व्यक्ति सोमरस का पान करके आ गया और मन्दिर के सामने नाली थी उसमें पड़ा था। जो हम कभी सुना करते थे उसे आँखों से देख रहे थे। वह नाली में पड़ा और नाली के पानी को ही चुल्लु भर-भर पी रहा था, चिल्ला रहा था अच्छी चाय है। थोड़ी देर बाद वहाँ से एक सुअर निकल पड़ा, उसने धक्का मार दिया, वह बोला - पीने दो, धक्का मत मारो। यह क्या था? वह तो बोतल के महुए आदि के सड़े रस पीकर पागल हो रहा था, पर **तुम मोह के सोमरस का पान कर रहे हो, दुनियाँ को अपना मान रहे यही तो सोमरस है।** अब एक दूसरे के चेहरे क्यों देख रहे हो। सोमरस का पान भिन्न है, समरस का पान भिन्न है।

जो देह के टुकड़े-टुकड़े होने पर भी देही से भिन्न जाने इसका नाम समरस है और जरा-सा देह में कष्ट होने पर देह पर दृष्टि जा रही है उसका नाम सोमरस है। आज खोजना, मैं मोह का सोमरस पी रहा हूँ कि समता का समरस पी रहा हूँ? क्यों दुःखी रहता हूँ चौबीस घण्टे। कण-कण स्वतंत्र है, अणु-अणु स्वतंत्र है । प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। समरस का पान करो, बोतलों का सोमरस तुम छोड़ चुके हो पर मोह का सोमरस छोड़ो। देह झुलस रही है इतना ही नहीं, उधर देखो गजकुमार मुनिराज के सिर पर जलती सिगड़ी रख दी । भैया ! जो हमारे मन्दिर में प्राचीन चित्र होते हैं वे मिटना नहीं चाहिए। जब गजकुमार मुनिराज का चित्र कोई बालक देखेगा तो सहज पूछ लेगा – पिताजी यह क्या है? तो पिताजी को कहना पड़ेगा-बेटा! जगत् के सब आश्चर्य समाप्त हो जाते हैं तब दिगम्बरत्व का आश्चर्य प्रारंभ होता है। जब सगा-संबंधी सिगड़ी रख रहा है, कीलें ठोक रहा है, तब भी वे योगी कह रहे हैं – मरने पर तो दुनियाँ ठोकती है, पर तुम मुझे बहुत अच्छे मिले हो, मुझे जीतेजी ठोक कर बता रहे हो, ठुकने में क्या होता है।

प्रथमानुयोग प्रायोगिक समयसार है, जीवंत समयसार है। द्रव्यानुयोग समयसारदृष्टि को बताता है। जीवन्त समयसार प्रथमानुयोग है। अपने जीवन में कौन सा कष्ट? मृत्युमहोत्सव है। पाँचसौ मुनियों को घानी में पेल दिया हो तब भी समतारस का पान करते रहे। पेलनेवाला सोचता है मैं अहित कर रहा हूँ पर सत्य है उनका तो हित-ही-हित हो रहा है। सोने के पीटने पर आभूषण बनते हैं। जब-तक सोना न पिटे तब-तक आभूषण न बने और जब-तक आभूषण नहीं बने तब-तक मस्तिष्क का तिलक कैसे बने और जब-तक उपसर्ग-परीषह में आत्मा न पिटे, तब-तक तीन लोक का तिलक कैसे बने? **तीन लोक का तिलक बनना है तो आपको संसार की अग्नि में झुलसना पड़ेगा और उपसर्गों की घानी में पिलना पड़ेगा तब कहीं आप तीन लोक के तिलक बन पायेंगे।**

अपन क्या हैं, तीर्थंकर भगवंतों से मिलो। दस-दस भव तक तीर्थंकर को सहन करना पड़ा। तुम क्या हो? पारसनाथ स्वामी से पूछो, वह किस शक्ति पर जी रहे थे? भावशक्ति। अभाव होने वाले का ही अभाव होता है। भाव का अभाव होता ही नहीं है। पर्याय का अभाव होता है, द्रव्य का कभी अभाव होता ही नहीं है। आप इस पर्याय को ऐसा मानकर चलो, एक अंगुली पर इत्र छिड़क दिया, अब देखो अंगुली सुगंध दे रही है। व्यवहार ऐसा ही मानता है, पर वास्तव में इत्र सुगन्ध दे रहा है। देखो, ज्ञानी का माथा कैसा चमक रहा है दूसरे को चिड़ छूट रही है। माथा कैसा चमक रहा है, चमक रहा है। ये माथा चमक रहा है कि माथे में लगा तिलक चमक रहा है ? अहो मुमुक्षु! जैसे माथे में लगा तिलक चमकता है, कहते हैं माथा चमकता है। ऐसे ही वर्ण नामकर्म के उदय से, शरीर नामकर्म के उदय से प्राप्त पर्यायें चमक रही हैं। अज्ञानी कहता है कि जीव चमक रहा है। ज्ञानी ! जीव तो जो है सो है। जीव बाहर चमकता नहीं दिखता, भीतर ही चमकता है। **परभाव की चमक में निजभाव की चमक मान बैठना अज्ञानभाव है।** कितना मुस्कुराते रहो पर वो सुगंध उड़ जायेगी, अंगुली पर इत्र छिड़का पर सुगंध उड़ जायेगी, बचेगा क्या? मात्र अंगुली। ऐसे ही ज्ञानियो ! कर्म, नोकर्म मेरी आत्मा से भिन्न हो जायेंगे, बचेगा क्या? भाव। वह निजभाव ही होगा, परभाव तो हटेगा-ही-हटेगा।

योगी सहजस्वरूप में लीन होकर, सोचकर, चिंतन कर वैराग्य को प्राप्त होकर वीतरागता में प्रवेश कर जाते हैं। समझो, **ये वीतरागियों का मार्ग है, ये वित्तरागियों का मार्ग नहीं है।** किंचित्मात्र भी वित्त (पैसा) में राग होगा, वहाँ वीतरागता फटक नहीं सकती। सौत का संबंध है वीतरागी और वित्तरागी में। **वीतरागी होना है तो वित्त से राग हटाना पड़ेगा और वित्त में राग है तो वीतरागता की बात नहीं हो सकेगी ।**

चेहरा क्यों बिगाड़ लेते हो। मुमुक्षु! ये समयसार है। वित्त के बिना नरक नहीं जा सकते, **'बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः'** वित्त के बिना नरक नहीं जा सकते। वित्त के बिना संसार के कार्य नहीं कर सकते हो, पर मोक्ष जाने के लिए वित्त का राग नहीं चाहिए। **वित्त से मात्र संसार के काम हो सकते हैं, धर्म के साधन जुटाये जा सकते हैं पर वित्त से धर्म नहीं हो सकता है। धर्म तो वित्त के छोड़ने से ही होगा।** यदि आपको विश्वास न हो तो जिन लोगों के तिलक लग रहे हैं उनसे पूछ लो। दान धर्म है, त्याग धर्म है, पर कब हुआ? जब वित्त को छोड़ा तब हुआ, त्याग धर्म । **त्यागो दानं**। त्याग दान है, देने के बाद भी मुस्करा रहे हैं। लोग तो कमाकर मुस्कुराते हैं पर ये देने के बाद भी मुस्कुरा रहे हैं। इसका मतलब है आपको आनंद आया है। आनंद किसमें आया? छोड़ने में ही आनंद है।

भाई ! बिना ग्रहण किये दो-चार दिन जी भी लेगा, छोड़े बिना एक दिन भी नहीं जी पायेगा। पूछो डाक्टरों से। तुरंत भागता है व्यवस्था जाने की है कि नहीं ? बिना त्याग के देह स्वस्थ नहीं रह सकती। कभी पसीने के रूप में छोड़ते हो, कभी नाक में मल के रूप में छोड़ते हो, अनेक मल के रूप में तुम छोड़

रहे हो। पसीना बंद हो जाये, किसी का नाक निकलना बंद हो जाये, किसी की लघुशंका बंद हो जाये, किसी की दीर्घशंका बंद हो जाये तो तड़पेगा कि नहीं? तड़पेगा। शरीर का संचालन भी त्याग से ही चल रहा है। बिना त्याग किये शरीर नहीं चल सकता। बिना त्याग किये आत्मा परमात्मा कैसे बन सकती है?

ध्रुवसत्य है, वस्तुस्वरूप जो है सो है। काश! निश्चय-व्यवहार में भ्रम न होता, विवाद न होता निर्विवाददृष्टि से व्याख्यान चलता रहता, तो आज हमारी दिगम्बर जैन समाज का विश्व में एक अलग स्थान होता। इस बात को पूरा विश्व स्वीकार रहा है कि जो वस्तुव्यवस्था की व्यवस्था दिगम्बर परम्परा में है वह विश्व में कहीं नहीं है। यही तो कारण है एक जीव ने मुख पट्टी उतारकर फेंक दी और कहा - कि अशरीरी भगवानात्मा को कहने वाला कोई ग्रन्थ है तो वह समयसार है। यह विषय अलग है कि कोई सान्निध्य नहीं मिल सका उस समय, वास्तव में कोई निर्ग्रन्थ योगी का सान्निध्य मिलता तो हमारी अखंड समाज के टुकड़े न होते; जैसा समझा, वैसा समझाया।

यदि देश के श्रावक श्रमणों की ज्ञानवृद्धि में लग जायें और श्रमण ज्ञान की पिपासा से युक्त हो जायें तो आज वीतरागदर्शन पूरे विश्व में विख्यात हो जायेगा। इसलिए भोपाल में साधु आते हैं तो कहना - महाराज ! अध्ययन करना हो जैनआगम का, तत्त्व की गहराई का तो हमारी पूरी समाज तैयार है। पुनः कहूँगा, एक ज्ञानी साधु बना लिया तो लाखों-लाखों विद्वान् बन गये। पूरी समाज मुस्कुराती है जब कोई बाहर का ज्ञानी आये और आपके निर्ग्रन्थों के चरणों में नतमस्तक हो जाये, तो पूरी समाज नाचती है। अपनी पहचान मत भूल जाना।

एक सज्जन ने मुझे बताया, मेनका गाँधी विदेश गई थी तो जहाँ भोजन करने गई वहाँ उन्होंने कहा कि जल्दी करो समय हो रहा है। सत्य यह था उनके विमान का समय हो रहा था। शाम के छः बज रहे थे, बोला - जल्दी करो समय हो रहा है। पर जो वेटर था वह बोलता है - क्या आप जैन हो? विदेश में यह शब्द सुना तो पूछने लगी-भाई ! ये तो बताओ ये आपने कैसे जाना? बोला - आपके भारत में एक धर्म है जिसके अनुयायी रात्रि में नहीं खाते हैं। आप जैन हो क्या? मेनका गाँधी से रहा नहीं गया। वह विद्यानंदस्वामी को तुरंत बताने आई, महाराज ! मुझे नहीं था मालूम कि सात समुन्दर पार करके भी आपके जैनदर्शन की अहिंसा की पहचान है। **पहचान तुम्हारे धमाकों में नहीं है, त्याग में ही है।** दुनियाँ कुछ भी कहे, ये दृढ़ता ही सर्वस्व है।

अगरबत्ती-धूपदान को कक्ष के किसी भी कोने में ढँककर आ जाना लेकिन सुगंध तो पूरे कमरे को महका देगी। ऐसे ही सत्य किसी कोने में पटक देना, वो सारे विश्व में फैल जायेगा। भावशक्ति का तुम अभाव नहीं कर सकते हो। आप जब यहाँ शांत होकर बैठ सकते हो, निर्ग्रन्थ पूरा जीवन आनंद से बैठ जाये तब ये महसूस होना चाहिए कि कोई शक्ति अवश्य है जो चौबीस घण्टे आनंद में रखती है। वह क्या है? यही है भावशक्ति। ये विद्या छिपी रखी है आगम में, आपको खोलने का ही समय नहीं है। खोलना तो दूर है, हमारे विद्वानों

ने क्या किया, बोले - पढ़ने का अधिकार नहीं है तुमको और ऐसा बोलकरके ग्रन्थों को बंद करके रख दिया। अरे ! ऐसा क्यों नहीं बोलते हो कि क्रम से नय, न्याय का अध्ययन करते हुए पढ़ना चाहिए। विधि का व्याख्यान करने की बजाय निषेध का व्याख्यान कर दिया। यह विद्या अलौकिक है कि नहीं ?

रास्ते में विहार करते हुए व्यक्ति टकराते हैं। अच्छा-अच्छा, यही समयसारवाले महाराज हैं। अब आप आश्चर्य करो, राजस्थान में एक देहात में हम विहार कर रहे थे, और स्कूल में चर्चा हुई तो आसपास के देहात के जो जैन थे, वो आ गये। उनमें एक राजस्थानी माँ कहती है - टीवी पर ज्ञानी! ज्ञानी! सुनते बहुत दिन हो गये, आज इनके दर्शन कर लिए। आप आश्चर्य करो, कहीं-न-कहीं हर व्यक्ति को चाहिए सुन्दर-से-सुन्दर शालिधान की बनी खीर। जब बिचारा भूखा होता है और शालिधान नहीं मिलते हैं तो उसे महेरी बनाकर खाना पड़ती है। चावल को मट्ठे में डालकर बनाओ तो महेरी बनती है। अब जब खीर खाने को मिलेगी नहीं और भूख लगी है तो क्या करेगा, महेरी खायेगा।

भूतावस्थत्वरूपा भावशक्तिः।

भूतावस्था का कभी अभाव नहीं होता है, वह भावशक्ति है। जैसा मैं भूत में था वैसा ही वर्तमान में हूँ, वैसा ही भविष्य में रहूँगा, मेरा कभी अभाव नहीं होगा। यह भावशक्ति है। भावशक्ति का कुन्दकुन्दस्वामी ने पंचास्तिकाय में विशेष वर्णन किया है। वैदिकदर्शन में गीता में वर्णन किया है इसका, जिसे तुम सुन रहे हो। सारे विश्व में जितने वैज्ञानिक हैं कहते हैं – ऊर्जा का विनाश नहीं होता है। यह सिद्धांत उनके घर का नहीं है। भावशक्ति अब आपको समझ में आना चाहिए कि जैनदर्शन की व्याख्या कालेजों में होना चाहिए। उन्हें कुछ मालूम नहीं है जैनदर्शन के बारे में, उन्हें तो इतना मालूम है कि जैनों के साधु दिगम्बर होते हैं। लेकिन भावशक्ति - ये बता ही नहीं पा रहे हो। तुम कोटि-कोटि द्रव्य यहाँ-वहाँ खर्च करते हो इस पर भी विचार होना चाहिए कि हम अपनी मूल विद्या को विश्वपटल पर दिखा सकें । **ऊर्जा का विनाश नहीं होता है यह वैज्ञानिक सिद्धांत नहीं है; वस्तुस्वभाव है, भावशक्ति है। जो परिणमन हो रहा है वह है – अभावशक्ति, पर्याय का परिणमन हो रहा है।** भावशक्ति - द्रव्य का कभी विनाश नहीं होता है। क्या है? स्थानांतरण को तुमने विनाश मान लिया।

भैया! कल शाम को कहाँ थे ? घर पर। इस समय तेरा तेरे घर में अभाव है कि नहीं? पर आपका अभाव आपके घर में है कि आपका अभाव है? घर में अभाव है न कि आपका अभाव है। समझ रहे हो, ये स्थानांतरण हो गया है। ऐसे ही पर्यायान्तरण हो सकता है, लेकिन वस्तु का अभाव नहीं होता है। रोते क्यों हो? हँसते क्यों हो? भिन्न स्थान से यहाँ संगृहीत हो गये तो आप मुस्कुराने लग गये। हमारे यहाँ इतने लोग हैं वे जहाँ से आये हैं वहाँ लोग दुःखी हो रहे हैं, रो रहे हैं, लेकिन आनेवाले की मेहमानी कितनी होती है और अच्छे-से-अच्छा खाने को मिलता है। प्रतिदिन मेहमानी करो, जहाँ-जहाँ जाओगे वहाँ के लोग मुस्कुरायेंगे, यही तो निर्ग्रन्थों की मेहमानी है। ये मेहमानी करते रहते हैं और मुस्कुराते रहते हैं।

सत्-सत् भावशक्ति है। जो भावशक्ति है वह द्रव्य की त्रैकालिकता को बता रही है। अपने चतुष्टय में द्रव्य त्रैकालिक सत्त्वभूत है, उस सत् का कभी विनाश नहीं है, अभाव नहीं है। आत्मद्रव्य ही नहीं, छहों द्रव्य आत्मभूत हैं। इन द्रव्यों का न अभाव हुआ है, न होगा, न हो रहा है। सभी स्वभावभूत हैं।

एक प्रश्न हो सकता है, मोक्षमार्ग तो आत्मस्थ होने का मार्ग है इसमें भावशक्ति की व्याख्या की क्या आवश्यकता थी? हे जीव! कहीं भय है, कहीं अहम् है। मेरा विनाश न हो जाये, ये भय है और मैं जो रूप में दिख रहा हूँ, मैं सुन्दर हूँ, यह अहम् है उसके लिए अभावशक्ति। जिसका अहम् है उसका अभाव है, जिसका भय है उसके लिए भाव है। जिसका अहम् है उसका अभाव है - अभावशक्ति। पर्याय का अभाव होगा। जिस पर डर है मेरा नाश न हो जाये - भावशक्ति।

श्रमण अपनी भावशक्ति में निहारते हैं। जगत् के मौसमों के, ऋतुओं के परिणमन तो हो जायेंगे; ग्रीष्म से बारिश, ये सारे समय बदलते रहेंगे; अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी, हुण्डावसर्पिणी काल बदलते रहेंगे लेकिन मेरा ध्रुवधाम कभी नष्ट नहीं होगा। निज की संपत्ति का जब आश्रय ले लेता है जीव, तो क्लेश का अभाव हो जाता है। सभी ज्ञानी ध्यान दो, **आत्मा का आश्रय लेकर ही परमात्मा होगा।** जो प्रगट परमात्मा है उन प्रगट परमात्मा का आश्रय लेकरके आपकी सीमा स्वर्ग तक है। जो हमारा अप्रगट परमात्मा है, आत्मद्रव्य है, वर्तमान पर्याय में जो हमारा अप्रगट परमात्मा है उस अप्रगट परमात्मा का सत्ताभूत परमात्मा का आश्रय लेकर ही निज निर्वाण को प्राप्त होता है। इस विषय की गहनता को समझिए।

एक आम के फल को निहार रहा है पुरुष। आम के फल को देखने का वेदन भिन्न है, आम के फल को जानने का वेदन भिन्न है, आम के फल को समझने का वेदन भिन्न है, आम के फल का सेवन करना भिन्न है। किसी का सेवन किये बिना शांत चित्त बैठकरके न खाने का विकल्प आये, न पीने का विकल्प आये, किसी भी इन्द्रिय के विषय का सेवन मन में न आये उस समय वेदन करना; ये आनंद किसका है? पाँच इन्द्रियों के विषय का सेवन करने के अभाव में शांति है। वह शांति किस द्रव्य की है? वही आत्मा की शांति है। **पच्चीस कषायों से शून्य होकर के, पाँच इन्द्रियों की कषाय से शून्य होकर के जो वेदन है, अनुभवन है वही स्वसंवेदन है।** भावशक्ति का आश्रय लिया, निज आनन्दकन्द में लीन है। भावशक्ति का आश्रय लिया यति निर्ग्रन्थ तपोधन आत्मानंद में लीन है, निजनाथ का आनंद ले रहा है। जो भावशक्ति से युक्त है वह अपनी आत्मा का कभी अभाव नहीं देखता।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

34

अभावशक्तिः

‘‘शून्यावस्थत्वरूपाऽभावशक्तिः ।’’

शून्य अवस्था से युक्त होनेरूप अभावशक्ति है। आत्मा में एक शक्ति ऐसी भी है कि जिसके कारण वर्तमान अवस्था के अतिरिक्त अन्य कोई अवस्था नहीं होती, उसे ‘अभावशक्ति’ कहते हैं।

समय देशना

भव्य बंधुओ ! ध्रुव ज्ञायकस्वभावी भगवानात्मा के सहज स्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी। स्याद्वाद अधिकार में सैंतालीस शक्तियों की व्याख्या की। उन सैंतालीस शक्तियों में परिपूर्ण सारे विश्व के सिद्धांत आ चुके हैं, **ऐसा कोई विषय अवशेष नहीं बचा षट्दर्शन का जो सैंतालीस शक्तियों के बाहर हो।**

अगली शक्ति है **अभावशक्ति**। अभावशक्ति भावशक्ति; दार्शनिकपक्ष से देखोगे तो क्षणिकदर्शन का खण्डन कर रही है अभावशक्ति। नित्यएकांत का खण्डन कर रही है। भावशक्ति की व्याख्या करते ही तुरंत अभावशक्ति की व्याख्या क्यों कर रहे हैं आचार्य महाराज ? जो भाव है उसका तेरी आँखों के विषय का अभाव है। पुनः समझो, जो भाव है उस भाव का आँखों के ज्ञान में अभाव है। तात्पर्य, जो जीवद्रव्य है उसका आँखों में अभाव है। किसी की भी आँखें जीवद्रव्य को नहीं देख पाती हैं। आँखें जो भी देख रही हैं वह असमानजातिपर्याय से युक्त जीव को देख रही हैं। पुद्गल से ही वेदन कर रहे हो जीव को।

'शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम्'। काय, वचन, मन, श्वाच्छोश्वास; इनके माध्यम से आप जीव को समझ रहे हो अनुमान ज्ञान से फिर भी जीव को नहीं देख रहे हो। आप लोगों को समझ में आ रहा है जो मैं बोल रहा हूँ ? वैद्य भी देखता है तो नाड़ी को देखता है। शरीर की अवस्था को देखकर हम पहचान रहे हैं कि जीव जी रहा है, पर जीव को कहाँ देख रहा है? जिसके माध्यम से देख रहा है वह भाव नहीं है, द्रव्यत्वभूत उसका अभाव है। शरीर का अभाव होगा, वचन का अभाव होगा, मन का अभाव होगा, श्वाच्छोश्वास का अभाव होगा; ये पर्याय धर्म हैं। इसलिए हे जीव ! अभावशक्ति कह रही है कि वर्तमान की पर्याय जो वह है वह विनाश को प्राप्त होगी। इसमें किंचित् भी विकल्प करने की आवश्यकता नहीं है। यह अभावशक्ति मात्र जीव के असमानजातिपर्याय में ही नहीं, सम्पूर्ण द्रव्यों की पर्यायों में है। जो शुद्धद्रव्य है उनमें भी परिणमन है, अगुरुलघुगुण का परिणमन उनमें भी चलता है। उनमें भी प्रतिक्षण अभाव चलता है, भाव चलता है।

जब तत्त्व की गहराई में जीव प्रवेश करता है तो आँखों से दिखना बंद हो जाता है, श्रुतनेत्र से दिखना प्रारंभ हो जाता है। आगम तीसरा नेत्र है और जिसने तीसरे नेत्र से जान लिया वही सच्चा ज्ञाता, वही सच्चा दर्शक है। श्रमणों का नेत्र आगम ही है। नेत्रों से देखनेवाला श्रमण कभी मुनि बनके नहीं जी सकता। नेत्रों से जीनेवाला श्रमण कभी श्रमण बनके नहीं रह सकता। नेत्रों से जगत् के विषयकषाय दृष्टिगोचर होते हैं, राग-द्वेषदृष्टि होती है, पर की पर्याय दिखाई देती है। निर्ग्रन्थों का कोई नेत्र है तो वह है आगम –

आगमचक्खू साहू इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि।
देवा य ओहिचक्खू सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू।।234/प्र.सा.।।

जगत् के सम्पूर्ण प्राणियों का नेत्र इन्द्रिय है, देवों का नेत्र अवधिज्ञान है; सिद्धों का, अर्हंतों का नेत्र कैवल्य है पर साधु का नेत्र आगम है। प्रवचनसारजी में स्पष्ट लिखा है कि हे साधक ! यदि तू आगम के नेत्र को फोड़के जीता है तो कितना ही घोर तपस्वी क्यों न हो तब भी तेरा निर्वाणमार्ग दूषित है। **आगम को अल्प भी जानो पर आगम को पूर्ण मानो तो मोक्षमार्गी हो। आगम को बहुत जानते हो और आगम को बिल्कुल भी नहीं मानते हो तो मोक्षमार्गी नहीं हो।** एक समय आगम को नहीं जाननेवाला मोक्षप्राप्त कर सकता है, अल्पज्ञानी भी, लेकिन आगम को नहीं माननेवाला मोक्षमार्गी ही नहीं है।

जिस जीव के अंतस् में ज्ञान के प्रति अरुचि है उसका मोक्षमार्ग में अन्तराय है। जिस जीव के अन्तस् में अरुचि है प्रीति नहीं है, उसके मोक्षमार्ग में अन्तराय है, वह अपने मोक्ष में स्वयं अंतराय डाल रहा है। जैसे भोजन में बाल आ जाये साधु के तो भोजन में विघ्न आ जाता है। जैसे पेट भरने के लिए शोधन करते हो वैसे ही श्रुत का शोधन करो मोक्ष के लिए। **मोहशून्य ज्ञान, अल्पज्ञान भी मोक्ष के लिए कारण है। मोहीजीव का बहुत ज्ञान भी संसार का कारण है।** अल्पज्ञान भी मोक्ष का कारण बन सकता है। **निर्मोह से युक्त ज्ञान, अल्पज्ञान भी मोक्ष का कारण है। मोह सहित ग्यारह अंग का ज्ञान भी संसार का ही कारण है।** कुन्दकुन्दस्वामी ने समयसार में स्वयं लिखा है।

मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु।।274/स.सा.।।

जैसे पन्नगा यानी नाग, कालिया नाग को गुड़ मिश्रित दुग्ध पिलाने पर भी निर्विष नहीं होता, ऐसे ही अभव्यजीव अच्छी तरह से सम्पूर्ण शास्त्रों का अध्ययन करले तब भी उसका ज्ञान मोक्ष का साधन नहीं होता।

सद्दहदि य पत्तियदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं।।275/स.सा.।।

श्रद्धान करता है, प्रीति करता है, स्पर्श करता है, लेकिन वो धर्म कर रहा है भोग के निमित्त से, कर्मक्षय के निमित्त से नहीं कर रहा है। मैं ज्ञानी बन जाऊँगा तो लोक में मेरी प्रसिद्धि होगी, मैं ज्ञानी बन जाऊँगा तो अच्छा अर्थ कमाऊँगा ऐसी लौकिक दृष्टि जिसके अन्तस् में है वह अज्ञानी बनने के लिए ज्ञानी बन रहा है। सँभल के सुनना, आजीविका के लिए जिनवाणी का प्रयोग मत करना। **शस्त्रजीवी और शास्त्रजीवी - ये कल्याण के भाजन नहीं हैं।** शस्त्रजीवी और शास्त्रजीवी ये कल्याणपात्र नहीं हैं। जो अस्त्र-शस्त्र का व्यापार करते हैं अथवा अस्त्र-शस्त्र बेचकर अपनी आजीविका चला रहे हैं इन जीवों का क्या कल्याण होगा? जो जिनवाणी बेचकरके आजीविका चला रहे हैं उनका क्या कल्याण होगा? इसलिए अपने को ज्ञानी तो बनना है, आजीविका के लिए नहीं आत्मकल्याण के लिए। **एकमात्र लक्ष्य अपना आत्म-कल्याण के लिए शास्त्र पढ़ना है, भावों की निर्मलता के लिए शास्त्र पढ़ना है। देव-**

शास्त्र-गुरु के निमित्त से कभी द्रव्य मत लेना, क्योंकि ये मेरे कल्याण के साधन हैं, आजीविका के नहीं।

हे श्रमण! आहारचर्या अच्छी हो जाये इस निमित्त से तू तंत्र-मंत्र देता है, तो तू आजीवक है, जीविका चलाने के लिए कर रहे हो। मोक्षमार्ग बहुत कठिन है, बहुत सरल है। जिसको साईकिल चलाना आती है वह हाथ छोड़कर चला लेता है, कितना सरल है और जिसे चलाते नहीं आती उससे पूछना, दो चक्कों पर कैसे दौड़ रही है, यही सोचता रहता है। ऐसे ही ज्ञानियो ! जिस व्यक्ति को दो बार दिन में भोजन करने के बाद रात्रि में भूख लगती है उस अभागे से पूछना कि संयम कितनी दूर है और जो मास-मास के उपवास की साधना करता है उसे एक दो उपवास समझ में नहीं आते।

इन सैंतालीस शक्तियों को मात्र सुनने का विषय नहीं, अनुभूति का विषय बनाना है। आगम हमारा स्मरण का विषय नहीं है, द्रव्यश्रुत हमारा स्मृति का विषय हो सकता है, भावश्रुत तो अनुभूति का ही विषय है। द्रव्यश्रुत तो अवलंबन है, कारण है, साधन है। द्रव्यश्रुत मेरे लिए साध्य नहीं है, साध्य तो मेरा भावश्रुत है। इसलिए आज इतना समझ जाना कि जो हम पढ़ रहे हैं इससे आप पढ़ना-पढ़ना ही मोक्षमार्ग नहीं मान बैठना। **अध्ययन करने के उपरांत चित्त की एकाग्रता, भावों की विशुद्धि, संक्लेशता की हानि जो हो रही है वह तुम्हारा मोक्षमार्ग है।**

कदाचित् दो वक्ता एक साथ हों उस समय तुम देखना तुम्हारा द्रव्यश्रुत कितनी विशुद्धि दे रहा है। पंडितजी ! आप घर में एकांत में बैठकर अनुभूति करते हो उसमें क्या शांति आती है? दूसरों को सुनाने में संक्लेशता में उतर गया उस समय अनुभव में आता है कि द्रव्यश्रुत मेरे भावों की विकृति में मेरा कितना निमित्त बन रहा है? कब? जब पंडितजी विचार करके गये थे कि समयसार का व्याख्यान तो आज मैं ही करूँगा और ज्येष्ठ विद्वान् ने किसी कनिष्ठ विद्वान् को बैठा दिया इनके स्थान पर। उस विद्वान् का एक-एक शब्द का बोलना और इनका क्षण-क्षण में नाक का सिकोड़ना, क्षण-क्षण में जीव के भाव का बदलना; इससे कुछ भी तो बनता नहीं बिठाल दिया है और मैं बढ़िया उपदेष्टा हूँ तब भी मुझे नहीं बिठाया। ज्ञानी! जो तू उपदेश देना चाहता था सबको, वह उपदेश दे दे इस समय अपने को। जब आप सामनेवाले वक्ता को देखकर नाक सिकोड़ रहे थे, ज्ञानी! इसी समय कहीं आयुबंध का अपकर्षकाल आ गया तो तेरी दुर्गति हो जायेगी। इसलिए सुन! मात्र श्रुत का व्याख्यान करो, ज्ञान करो। कल्याण के लिए कोई सुनना चाहे, न सुने, पर सुनानेवाले को तो श्रुत सुना ही देना कि यही तो श्रुत का प्रयोग है। इस समय तुम्हारे परिणाम अशुद्ध हो रहे हैं, इनको सँभालिए।

वह भैया कितना सुंदर भजन गाता है जैसे सीडी चल रही है और कहीं कोई दूसरा मौका ही न दे उस समय परिणामों को कैसे सँभाला जाये? इसलिए मुनियों के बाईस परीषहों में एक सत्कार-पुरस्कार नाम का परीषह है। अहो! मुझे चौबीस वर्ष हो गये दीक्षा लिए, मैंने सारे देश में तत्त्व की प्रभावना की है तब भी

मुझसे प्रवचन को बोला नहीं गया और इन लोगों से कुछ बनता नहीं है तब भी इनको उभार रहे हो, प्रकाश में ला रहे हो तब मैं किस काम का? क्या वर्षों की तुम्हारी यही साधना थी, कह रहे हो कि मैं किस काम का ?

क्यों नहीं देखता अपनी भावशक्ति को? क्यों नहीं देखता अपनी अभावशक्ति को? कितने लम्बे काल तक आप द्रव्यश्रुत का आचरण करते रहे, लेकिन भावश्रुत में प्रवेश नहीं किये। यदि भावश्रुत में प्रवेश कर गये होते तो कहते कि शब्द वर्गणाओं का व्याख्यान मेरा धर्म नहीं है। जो धर्म है वो शब्दातीत है। इसलिए बालको! तुम भविष्य के विद्वान् बननेवाले हो। पर इस बात का ध्यान रखना, कोई सम्मान करे तो भी सहज रह लेना, अपमान करे तब भी सहज रह लेना, इसका नाम ज्ञान है।

जीवे मरणे लाहा, लाहे संजोग विप्प जोगे य।
बंधुरिह सुह दुक्खादो, समदा सामायियं णाम ।।प्र.सू.।।

जीवन में, मरण में, संयोग में, वियोग में, लाभ में, अलाभ में जिसकी एकत्वदृष्टि है, आत्मा में दृष्टि है, वही सामायिकदृष्टि है। साधनादृष्टि कठिन नहीं है, सामायिकदृष्टि कठिन है। साधना कठिन नहीं है सामायिक कठिन है। आड़े-तिरछे चौरासी आसन लगा सकते, घण्टों-घण्टों एक आसन में बैठ सकते, जब तन को सँभाल सकते तभी मन को सँभाल पाओगे।

कितनी बार हिलडुल लिए, **तन को सँभालना सरल है मन को सँभालना कठिन है। मात्र तन को सँभालने का नाम मोक्षमार्ग की साधना नहीं है, तन-मन-वचन तीनों सँभल जायें तब मोक्षमार्ग की साधना प्रारंभ होगी।** तन सँभाल लिया है, जिसका वचन नहीं सँभला उसका मन तीन काल में सँभलनेवाला नहीं है। वचन की साधना, इन्द्रिय संयम, वाणी संयम, जिसका पलता है उसकी मोक्षमार्ग की साधना होती है। **जिसका वाणी-असंयम होता है उसका न इन्द्रिय संयम पलता है न काय संयम।**

ज्ञानियो! यहाँ काला नाग निकल पड़े आप क्या करोगे? कितने ऐसे लोग हैं जो शांति से दूर खड़े हो जायेंगे, कितने ऐसे लोग हैं जो भागेंगे, कितने ऐसे हैं जो हल्ला करके भागेंगे? हल्ला करके भागनेवालों की संख्या ज्यादा है। बेटा सुनो ! यदि आप मुनिराज बन जाते हो और कालिया नाग निकला और आप मम्मी को याद करते हो, हल्ला करते हो, तो आप मुनिराज नहीं बचे। सँभल के सुनना, यहाँ से नाग निकला, महाराज सहज बैठे हैं, वह नाग उनके पास आ रहा है तो उनका धर्म तो यह है ज्यादा विकल्प आ रहा है आप अपनी रक्षा करें, बैठ जाओ। वो अपना काम करेगा आप अपना काम प्रारंभ कर देना। वो अपना धर्म नहीं छोड़ रहा, आप अपना धर्म क्यों छोड़ रहे हो, यदि आपने आवाज लगा दी ओह ! कालिया नाग। अभावशक्ति पर विवेक नहीं गया, डसेगा, किसको? यदि आपने कह दिया - नाग, बचाओ। उस समय जितने भक्त हैं, कुछ नहीं देखेंगे, मेरे महाराज, इस राग में उस पर प्रहार कर देंगे। हे

ज्ञानी महाराज! आपके बोलने मात्र से जीव का घात हो गया। उस जीव को बाधा न हो, स्वयं के जीव को बाधा आ जाये, विकल्प मत करना। वहाँ श्रमणों की साधना है।

भावशक्ति क्या कह रही थी, हे योगीश्वर! आप तो अपनी भावशक्ति का प्रयोग करो, ये जिसे डसेगा वो वर्तमान की पर्याय है। उसका अभाव तुमको पहले से ही दिखना चाहिए। जो मेरी वर्तमान की पर्याय है उसका अभाव होगा, होगा, यदि होगा तो अभी से देखो, वर्तमान में ही वर्तमान का अभाव देखना; अभावशक्ति बोल रही है। फिर मुझे कोई रहने के स्थान नहीं बनाना पड़ेंगे, भवन नहीं बनाना पड़ेंगे, मैं तो कालिया नाग हूँ। कैसा बोलते हो महाराज, मैं तो कालिया नाग ही हूँ। ज्ञानी! षट्खण्डागम पुस्तक क्रमांक एक और राजवार्तिक से बोल रहा हूँ कोई गुस्सा करे तो हम क्या कहते हैं, ये अग्नि है, ज्वाला है। क्या बालक ज्वाला होता है? बालक कभी ज्वाला नहीं होता।

मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते ॥212/आ.प.॥

जहाँ मुख्य का अभाव होता है, प्रयोजन के निमित्त से वहाँ उपचार का कथन होता है।

ज्ञानियो! तुम्हारे जिनालय में भगवान् आदिनाथस्वामी हैं क्या? सँभलके बोलना, आदिनाथस्वामी हैं क्या? पार्श्वनाथ भगवान् हैं क्या? भगवान् तो चतुर्थकाल में थे। जहाँ मुख्य का अभाव होता है प्रयोजन के निमित्त से वहाँ उपचार से कथन होता है। मुख्यार्थ उपचार नहीं होता है, परन्तु बिना मुख्यार्थ के उपचार नहीं होता है। पार्श्वनाथ नहीं हैं, आदिनाथ नहीं हैं, परन्तु भगवान् तीर्थंकर की पाषाण की प्रतिमा में पार्श्वनाथस्वामी, आदिनाथस्वामी का उपचार किया है इसलिए वह उपचार भी पूज्य है। स्थापना-निक्षेप; तदाकार ही होना चाहिए। हुण्डावसर्पिणिकाल है। हुण्डावसर्पिणिकाल में अतदाकार की पूजा नहीं है, तदाकार ही होना चाहिए। स्वर्णमयी, रत्नमयी, पाषाणमयी प्रतिमा ही पूज्य हैं। प्लास्टिक, फोटो, तस्वीरें जैनपरम्परा में पूज्य नहीं हैं, इसलिए तस्वीरों को अर्घ्य चढ़ाना अज्ञानता है। तस्वीरें पूज्य हो जायें, स्टेच्यू पूज्य हो जायें तो प्रतिमा को बनवाकर के प्राणप्रतिष्ठा की, पंचकल्याण की क्या जरूरत है? बालको! तुम भविष्य में देश के विद्वान् बनके जानेवाले हो। बेटा ! सत्य को कहने में कभी कमी मत करना, पर पहले सत्य को समझ लेना।

आचार्य नेमिचंद्रसिद्धांतिदेव जिन्होंने 'द्रव्यसंग्रह' नाम का ग्रन्थ लिखा, उन्होंने अंत में लिख दिया, 'सोधयंतु'। आप शोधन कर लो। नेमिचंद्र मुनि ने कहा है, मैं तो तनक से सूत्र का धारण करनेवाला हूँ, मैंने लिख दिया है परन्तु 'सोधयन्तु सुत्तधरेण'। आचार्य महाराज ने बड़े विवेक से लिखा था। मैं दम्भ के हनन के लिए कह रहा हूँ, पर हर किसी के लिए सौप नहीं रहा हूँ। जो सूत्र को जाननेवाले हैं वे ही शोधें। जो कुछ भी नहीं जानते वे शोधने न बैठें। इसलिए पहले हम सत्य को समझेंगे तब सत्य की व्याख्या कर पायेंगे।

मैं तो कालिया नाग हूँ, डसनेवाला नाग नहीं हूँ। नाग से तात्पर्य क्या है ? नाग कभी अपना बिल नहीं बनाता। चिड़िया भी अपना घौंसला बनाती है, चूहा भी बिल बनाता है पर नाग अपना भवन नहीं बनाता।

पर बाँबी में तो रहता है तो बाँबी नाग नहीं बनाता, दीमक बनाती है। तो जैसे नाग अपना भवन नहीं बनाता पर के द्वारा निर्मित भवनों में निवास करता है और जब चाहे वहाँ से चला जाता है। अपना बनायेगा तो दौड़-दौड़ के वहीं आयेगा। अपना बनायेगा तो कर्तृत्वदृष्टि रहेगी, वहीं घूमेगा। जितने बनायेगा, जितने बनेगा वहीं घूमेगा। जैसे कालिया नाग जो होता है कभी भवन नहीं बनाता ऐसे ही दिगम्बर मुनि अपना भवन नहीं बनाते हैं। जैसे दीमक बनाती है और नाग रहकर चले जाते हैं ऐसे ही श्रावक बनाते हैं और साधु रहकर चले जाते हैं। अभी यहाँ, कभी वहाँ, कौन-सी दीवाल गिर रही है, उठ रही है, उस योगी को कोई प्रयोजन नहीं है, इसलिए डसनेवाला नाग मत समझ लेना।

एक गुण की अपेक्षा व्याख्या कर रहे हैं कि साँप अपने भवन नहीं बनाता। ऐसे ही जैन श्रमण अपना कभी भवन नहीं बनाता, न बनवाता है, न अनुमोदना करता है। जैसे छियालिस दोष टालकर आहार होता है वह दोष भोजन में लगते हैं ऐसे ही भवनों में भी लगते हैं। यहाँ तक की दीक्षा से आज तक मैंने अपने लिए पिच्छी नहीं बनाई। इन्दौर, अशोकनगर आदि जगह पर इतने अच्छे श्रावक हैं वे स्वयं पिच्छी बना कर श्रावकों को भेज देते हैं। उपकरण भेंट करो। पिच्छी बनायेंगे उसमें कैंची रस्सी सभी उपकरण का प्रयोग होता है, आप तो आरंभ-सारंभ काँट-छाँट का त्याग करके बैठे हो। पिच्छी बनायेंगे तो आरंभ-सारंभ का दोष लगता है। बस, होना ये चाहिए है जैसी श्रावक दे वैसी स्वीकार कर लो।

ज्ञानी! ये राजमार्ग है, इसी विषय में शांतिसागर महाराज का एक बहुत सुंदर प्रसंग आता है। महाराष्ट्र में आचार्य महाराज से कहा - महाराज ! इस कक्ष में विराजो और भावुकता में बोल पड़ा, महाराज जी ! ये कमरा हमने आपके लिए ही बनवाया था। कभी-कभी श्रावक, मातायें क्या भक्ति दिखाती हैं, महाराज ! ले लो यह तो हमने आपके लिए ही बनाया था, फिर बिल्कुल नहीं लेना। पंडितजी ! उद्दिष्ट की परिभाषा लोगों को जरूर समझा देना। जो परिभाषा उद्दिष्ट की हमारे विद्वान् लगाते हैं वह है नहीं। उद्दिष्ट की जो परिभाषा है पात्र को, दाता को दोनों को मालूम होना चाहिए। हमने चौका लगाया, महाराज को भी पता है; हम उनके यहाँ जायेंगे, वो उद्दिष्ट है।

मूलाचार में उद्दिष्ट की परिभाषा क्या है, न श्रावक को मालूम होना चाहिए है और न साधु को मालूम होना चाहिए कि मेरे यहाँ कौनसे महाराज आयेंगे। साधु को मालूम नहीं होना चाहिए कि मैं कौनसे चौके में जाऊँगा। कमण्डलु में पानी भर दिया, श्रावक का काम हो गया। अब वो अंजलि लगाकर निकल गये। जहाँ पडगाहन करते श्रावक मिल जायें वहाँ चले जाना, कोई उद्दिष्ट का दोष नहीं लगता, ये आगम वचन है। जो विद्वान् बोल देते हैं कि, अब चौके तो महाराज के लिए लगते हैं तो आपका व्याख्यान गलत है। मूलाचार में ऐसी व्याख्या नहीं लिखी, मूलाचार में मैं जो कह रहा हूँ वह लिखा है। पात्र को मालूम नहीं चलना चाहिए, दाता को मालूम नहीं चलना चाहिए। उसने शुद्ध भोजन बनाया उसे पड़गाहन करना चाहिए। महाराज को पूछना नहीं चाहिए कितने चौके लगे हैं, आपको शांति से चले जाना चाहिए। ये

आगम वचन है। श्रावकों का कर्तव्य है कि कभी महाराज के सामने चेहरा दिखाने मत आओ। तुम्हारा काम है घर से पानी लेकर आओ, उसी से तो पता चल जाता है, द्वारे पर चौक पुरा है, बस कुछ नहीं कहने का, ये आगम वचन है। स्वयं भी निर्दोष, साधु भी निर्दोष। चौका लगाओ स्वयं के लिए, शुद्ध भोजन के लिए, न कि साधु के लिए। बीच-बीच में चरणानुयोग समझा दो नहीं तो ये श्रावक हैं सब भूल जायेंगे, नहीं तो ये दादा कहेंगे हमारे घर चैत्यालय है, वहीं चलो वहीं शुद्धि कर लेना, वहीं से उठ जाना और नीचे हम पडगाहन कर लेंगे। मुमुक्षु! ये राजमार्ग नहीं है, अपवादमार्ग भी नहीं है, ये मृदुलचर्या है। **आहार नहीं करना - ये राजमार्ग है, आहार करना ही अपवादमार्ग है।** फिर तो ज्ञानी के निमंत्रण पर चले जाना, न राजमार्ग बचा, न अपवाद मार्ग बचा - ये तो शिथिलाचार है। श्रावक का धर्म कमण्डलु में पानी भरो, पड़गाहन करो। गोचरी कहलाती है। गाय की तुमने रस्सी पकड़ली, ले जा रहे हो, जा रही है। ऐसे ही जहाँ तुमने चक्कर लगाये तीन, पडगाहन कर लिया, बेचारे गऊ हैं जितने दूर ले जाना है ले जाओ।

अभावशक्ति। जो ऐसी चर्या का पालन कर रहे हैं, अपने उपकरण में भी उत्पादन उद्गम आदि दोष नहीं लगा रहे हैं। ऐसे मुनीश्वर साँप के डसने पर अभावशक्ति को देखते हैं। भूल तो नहीं गये, वो साँप आ रहा था, मुनीश्वर विचारते हैं - इस पर्याय का अभाव नियत है, इसे बचा सकता नहीं हूँ, इसके होने के साथ मेरा रत्नत्रयधर्म है उसे क्यों छोड़ूँ। ज्ञानी! रायपुर में एक ऐसी घटना घट गई। रायपुर में एक श्वेताम्बर साधु को नाग ने डस लिया, पर उन्होंने अपने हिसाब से सब कुछ त्याग कर दिया और उनकी अंतिम श्वास निकल गई।

झाँसी में एक कालिया नाग आया उसने मेरी अँगुली दबा ली, मैंने सोचा कोई चूहा वगैरह होगा। जैसे ही उस नाग ने अँगुली दबाई, हाथ हिल गया और वह चला गया। एक हल्का-सा करंट जैसा महसूस हो रहा था। मुझे रायपुर का स्मरण हो गया। ब्रह्मचारी मेरे कक्ष में सो रहा था। मैंने सोचा इसे मत जगाओ नहीं तो विघ्न करेगा। मुझे पता था नाग डसे तो अँगुली काटकर फेंक दो तो बच जाओगे। मुनिराज हैं, अँगुली तो काटते नहीं, हाथ से कसकर पकड़कर स्वाध्याय किया, प्रतिक्रमण किया, सामायिक में बैठ गया। हमने सोचा जो होगा देखा जायेगा। अपना काम कर ही रहे हैं। सुबह एक दादाजी दर्शन करने आये, वो साँप भगा नहीं था। वहीं चटाई बिछी थी श्रावकों को बैठने के लिए, उन्होंने चटाई को उठाया वह निकल गया। हमने कहा - ये ज्ञानी था। मानना पड़ेगा उसने डसा नहीं था देखने आया था कि तुम जाग्रत हो या नहीं। ऐसे समय में तत्क्षण दृष्टि में आ जाये जो तुमने पढ़ा है, उसे अब गुनिए। नहीं तो आप हाय-हाय करते और जोर से बोल पड़ते इसने रात्रि में मुझे डस लिया था। तो उसको डसने के लिए वहाँ पाँच खड़े थे। भाई! देश में साँपों से डसने की संख्या कितनी, सापों को मारा कितना है।

प्रायश्चित्तशास्त्र कहते हैं – चाहे पागल श्वान हो, सामने दिख जाये हल्ला मत करना, उसका लोग घात कर देगे। साँप दिख जाए तो क्या करोगे? हल्ला नहीं करना। बहुत ज्ञानी जीव है, अरे! जीव हो और

ज्ञानी न हो ऐसा हो सकता है क्या? जो-जो जीव होंगे वो नियम से ज्ञानी होंगे। जो ज्ञानी नहीं होंगे वे जड़ होंगे, जीव नहीं होंगे। क्योंकि जीव का लक्षण **'उपयोगोलक्षणं'**, **'तत्र चेतनालक्षणो जीवः'** ज्ञानदर्शन है। आप ज्ञानी हो, अज्ञानी हो? हाँ हैं, स्यात् ज्ञानी, स्यात् अज्ञानी। जब-तक केवलदर्शन न हो तब-तक अज्ञानी और केवलज्ञान हो तो ज्ञानी लेकिन चैतनत्व की अपेक्षा से निगोदिया भी ज्ञानी है।

'शून्यावस्थत्वरूपाऽभावशक्तिः'

शून्यावस्था, न भूत की पर्याय को देखना, न भविष्य की पर्याय को देखना, भूत-भविष्य की पर्याय से शून्य। इधर देखो, क्या रहस्य है पर अनेकांत से समझना। पंडितजी! अमृतचन्द्रस्वामी की प्रज्ञा तो देखो - अधिकार का नाम रखा स्याद्वादअधिकार क्योंकि हम जो व्याख्या करेंगे युगपत् तो कर नहीं सकते, एक-एक शक्ति का व्याख्यान क्रम से होगा पर अधिकार का नाम स्याद्वाद। यदि इन सैंतालीस शक्तियों को एकान्त से लगा लिया, तो मिथ्यादर्शन में ले जाओगे इसलिए अनेकांत से लगाइए। दुःखी वे हैं माताओ! जो भूत को देखते हैं, दुःखी वे हैं जो भविष्य को देखते हैं। यहाँ क्या कह रहे हैं - भूत मृतक। बालको! भूत गया, भविष्य अजन्मा। कैसे पागलों की भीड़ लगी है, ऐसा हो गया इसलिए रो रहे हैं, आगे ऐसा हो, ऐसा हो, सो रो रहे हैं। **वे अज्ञानीजीव हैं जो भूत की पर्याय को निहार-निहार के शोक में डूब रहे हैं। वे अज्ञानीजीव हैं जो भविष्य दिखाई नहीं दे रहा है उसको देखने का प्रयास करके उल्लसित हो रहे हैं। वे ज्ञानीजीव हैं जो भूत-भविष्य पर्याय को छोड़कर वर्तमान में डूब रहे हैं।**

एक दंपत्ति महाराज के पास आया। पति रो रहा, पत्नि मुस्करा रही है। एक को अभाव दिख रहा है, एक को भाव दिख रहा है। इस ज्ञानी ने सोचा इस वर्ष शीतगृह में संतरे भर लेते हैं उसमें पचास लाख का मुनाफा होना चाहिए और उसे पैंतालीस लाख का मुनाफा हो गया। अब वो पति-पत्नी दर्शन करने आये पति रो रहा है, क्या हुआ? पाँच लाख का घाटा लग गया। पत्नी हँस रही थी। बोले - आपको शर्म नहीं लग रही आपका स्वामी तो रो रहा है। क्या कर सकते हैं जिसके भाग्य में रोना लिखा वो रोयेगा। इन्हें पाँच लाख दिख रहे, हमें पैंतालीस दिख रहे हैं। ये लीला सारे जगत् की चल रही है। क्यों दाऊ! तुम किसी के यहाँ मेहमानी करने गये, उसने आधा ग्लास दूध दिया, तुम क्या करोगे? अज्ञानी चेहरा लटकायेगा भरा नहीं है। उसने तुमसे लिया क्या है, आधा ग्लास दिया है। इसलिए भूत को छोड़ो, भविष्य की छोड़ो; भूत-भविष्य से शून्य है– ऐसा योगी तत्त्वज्ञ ज्ञानी वर्तमान की धारा को निहार रहा है; भूत से शून्य, भविष्य से शून्य देखना, अभावशक्ति को देखना, देखना भावशक्ति को।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

✦✦✦

35

भावाभावशक्तिः

''भवत्पर्यायव्ययरूपा भावाभावशक्तिः।''

वर्तती पर्याय के व्ययरूप भावाभावशक्ति है। प्रत्येक द्रव्य में एक ऐसी भी शक्ति है जिसके कारण वर्तमान पर्याय का नियम से आगामी समय में अभाव हो जायेगा, उस शक्ति का नाम ''भावाभाव शक्ति'' है।

समय देशना

भव्य बन्धुओ! आचार्य प्रवर भगवत् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज समयसारजी में ध्रुवज्ञायक स्वभावी भगवानात्मा के सहज स्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। आत्मतत्त्व जो है वह अनंतशक्तियों का पिण्ड है। वे अनंतशक्तियाँ निज में ही विद्यमान हैं। इन आत्मिक शक्तियों को ही विभिन्न दर्शनों ने एक-एक दृष्टि से देखा। जहाँ अभावशक्ति को देखा उन्होंने वस्तु को शून्य में देख लिया। किसी ने भावशक्ति को देखा उन्होंने वस्तु को नित्य एकान्त में देख लिया। ज्ञानी ! जिनागम जो है स्यात् भाव, स्यात् अभाव, अभाव-भाव स्यात्। स्यात् भाव-अभाव अवक्तव्य, स्यात् भाव युगपत्भावाभाव अवक्तव्य, स्यात् अभाव युगपत् भावाभाव अवक्तव्य, स्यात् भाव-अभाव और युगपत् भावाभाव अवक्तव्य। एक ही समय में इन सम्पूर्ण शक्तियों को जानता है, मानता है, मध्यस्थ हो जाता है, सम्यग्दृष्टिजीव। **अनंत धर्मों को युगपत् जाना जा सकता है, अनंतधर्मों को युगपत् पहचाना जा सकता है। अनंत धर्मों को युगपत् कथन नहीं किया जा सकता है, न युगपत् किसी को समझाया जा सकता है।** व्याख्यान क्रम से होगा, इसलिए जो व्याख्यान का विषय है वह स्याद्वाद है। व्याख्यान है वह स्याद्वाद के हाथ में है। पदार्थ की दृष्टि अनेकांत के हाथ में है। **दृष्टि अनेकांतमय है, व्याख्यान स्याद्वादमय है।** प्रमाण-प्रमाण है, नय-नय है, नय अप्रमाण नहीं है, नय प्रमाण भी नहीं है।

मैं श्लोकवार्तिक से बोल रहा हूँ। समुद्र का किनारा समुद्र है कि असमुद्र है? मुमुक्षु! आपके गुजरात में समुद्र है तो जो समुद्र है उसका जो किनारा है वह समुद्र है कि असमुद्र है? यदि समुद्र ही है तो किनारा कैसा? और असमुद्र है तो किनारा किसका? देखो भाई, सिद्धांतों को समझना पड़ेगा। यदि समुद्र है तो किनारा कैसे? और असमुद्र है तो किनारा किसका? ऐसे ही नय प्रमाण है तो नय संज्ञा कैसे? नय अप्रमाण है तो नय संज्ञा कैसे? इसलिए न नय प्रमाण है न नय अप्रमाण है तो क्या है? **नय प्रमाण का एक अंश है।** समुद्र का किनारा असमुद्र नहीं है, समुद्र का किनारा समुद्र नहीं है, समुद्र का किनारा समुद्र का एक हिस्सा है, अंश है।

व्याख्यान जो होता है वह क्रम से अंश-अंश से होता है, परन्तु ज्ञान जो होता है वह प्रमाणभूत है। इसलिए **'ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः' जो ज्ञाता का अभिप्राय है वह नय है, वक्ता के अभिप्राय का नाम नय है। 'सकलादेशः प्रमाणाधीनो' 'विकलादेशो नयाधीनाः'। जो सकल अंश को ग्रहण करता है वह प्रमाण होता है। जो विकल अंश को ग्रहण करता है वह नय होता है।** नय अपने आप में कभी पूर्ण नहीं होता। मुमुक्षु ! नय अपने आप में कभी पूर्ण नहीं होता पर पूर्ण का अंश होता है। भारत देश में महाराष्ट्र प्रान्त है, न कि महाराष्ट्र में भारत, पर महाराष्ट्र भारतदेश से बाहर भी नहीं है। यदि नागपुर पूरा भारत हो गया तो शेष भारत से बाहर चला जायेगा। इसलिए ये भारतदेश में है, पर भारत नहीं है।

जो इतना सहज व्याख्यान है, ऐसे ही **चाहे निश्चयनय की प्रधानता हो, चाहे व्यवहारनय की प्रधानता हो, दोनों नय अपने आप में पूर्ण नहीं हैं।** समझना ध्यान से, दोनों नय अपने आप में पूर्ण नहीं हैं। पूर्णता की शैली है, ज्ञान प्रमाण है। निश्चयनय अभेददृष्टि की व्याख्या करेगा, व्यवहारनय भेददृष्टि की व्याख्या करेगा। परन्तु दोनों नयों का विषय 'वस्तु' होगा, 'अवस्तु' नहीं होगा। व्यवहारनय गुण-गुणी में भेद करके देख रहा है वस्तु को। गुण-गुणी में अभेद देख रहा है वह निश्चय है। ज्ञानी! बालक है, बेटा है, भाई है, ये जितना व्याख्यान है वह इन सारे संबंधों को गौण कर देगा, मात्र जीवद्रव्य है। संबंध देख रहे थे तो क्लेश हो रहा था, हर्ष-विषाद चल रहा था। **विषाद को क्लेश कहनेवाले विद्वान् बहुत हैं, पर हर्ष को क्लेश कहनेवाले विद्वान् बहुत कम हैं।** क्यों पंडितजी ! हर्ष क्लेश नहीं है क्या? क्लेश शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ, क्लेश है। ज्ञानी! संक्लेशता है कि नहीं ? **जैसे विषाद में संक्लेशता होती है, ऐसे ही हर्ष में संक्लेशता होती है।** ज्ञानी! किसी व्यक्ति को अचानक अरब-खरब का घाटा लग जाये तो हृदयाघात हो सकता है कि नहीं ? हो सकता है। किसी द्ररिदी को अरब-खरब का मुनाफा हो जाये तो हृदयाघात हो सकता कि नहीं? हो सकता है।

संक्लेशता की दो पर्यायें हैं; हर्ष और विषाद। योगों की चंचलता जो है जैसे विषाद में होती है वैसी हर्ष में भी होती है। आत्मप्रदेशों का परिस्पंदन जो है, अरतिभाव में जैसे है वैसे ही रतिभाव में भी है। इष्ट का संयोग हो जाये तो हाथ जोड़कर प्रसन्न होता है। कर्म कह रहा है, अन्तर इतना है कि संक्लेशता तुम्हारी हर्षभूत होगी, प्रसन्नचित्त से होगी, शांत परिणामों से होगी, तो साताकर्म की प्रकृति का बंध होगा; अप्रसन्नचित्त होकर, दुःखी होकर करोगे तो असातावेदनीय का बंध होगा। लेकिन संसार से मुक्ति दोनों से ही नहीं मिलेगी। ये जितनी आपके साथ लोक में धर्म की व्याख्या चल रही है, जैसे की अन्य दर्शनों में भावमोक्ष के स्थान पर जीवंत मोक्ष, कोई स्वर्ग अवस्था को मोक्ष मानता है। मित्र ! जगत् में जितनी भक्तियाँ चल रही हैं वे सब मात्र शारीरिक इन्द्रिय सुख की प्राप्ति के लिए हैं। 'भो सोमाय आगच्छ-आगच्छ' 'भो इन्द्राय आगच्छ-आगच्छ', 'भो अग्निदेवता आगच्छ-आगच्छ'- यह सब किसके लिए बुला रहे हैं, संपत्तिं कुरु-कुरु, धनं कुरु-कुरु। संपत्तिं कुरु-कुरु बोलना था तो इतना और जोड़ दो, जिनगुण सम्पत्तिं कुरु-कुरु। हे जिनदेव! आपके गुणों की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो। समझो, मैं क्या कह रहा हूँ, भावशक्ति-अभावशक्ति - दो शक्ति की व्याख्या हम कर चुके, आगे जो शक्ति की व्याख्या कर रहे उसकी भूमिका समझिए। पंडितजी! क्या जीव ने मान लिया जितनी आराधना चल रही विश्व में शरीर, इन्द्रियाँ, वेदान्त में भी ? इतनी ऊँची व्याख्या करने के बाद मुझे सौंप दो, आप विकल्प मत करो। अकर्तृत्व की व्याख्या करते-करते कहता है, हे पार्थ! तुम कर्म करो, फल की आकांक्षा मत करो, फल मेरे हाथ में है। भगवत् वाणी, जिनवाणी क्या कह रही है ?

कर्त्ता यः कर्मणां भोक्ता, तत्फलानां स एव तु।
बहिरन्तरूपाभ्यां, तेषां मुक्तत्वमेव हि॥10/स्व.सं.॥

कर्मों का कर्त्ता, कर्मों का भोक्ता हे जीव! तू स्वयं ही है और उनका नाश करनेवाला भी तू स्वयं ही है।

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥30/सा.पा.॥

हमारे आचार्यों ने अपने मस्तिष्क का कितना प्रयोग किया है। ये वर्तमान की पीढ़ी अपने क्षयोपशम का अंशमात्र भी प्रयोग नहीं कर पा रही है। इतना हमारे पास मस्तिष्क है उसमें जंग लग रही है, उस लेखनी के समान जो मार्ग में पड़ी है, नष्ट हो जायेगी। किसी साहित्यकार के हाथ में चली जाये तो ग्रन्थ लिख जाएँ। ऐसे ही हे युवाओ! तुम्हारे पास जो बुद्धि है उसे मार्ग में पड़ी लेखनी के समान प्रयोग मत करो, इसे जिनवाणी के सृजन में, जिनवाणी के विकास में और आत्मा के हित में लगाओ। खाना-पीना और ऊपर चले जाना, ये चिड़िया भी चली जाती है। संतान को जन्म देना, जन्म ले लेना, मरण को प्राप्त हो जाना, निवास स्थान बना लेना, आपसे सुन्दर घोंसला पक्षी बनाते हैं। इतना सुन्दर घोंसला बनाते हैं कि तुम्हारी मशीन से न बने। यदि सुन्दर मकान में रहने से तुम अपने को श्रेष्ठ मानते हो, सुन्दर भवनों के निर्माण से अपने को श्रेष्ठ मानते हो तो तुम्हारी कीमत उस पक्षी से भी गई गुजरी है।

मनुष्य पर्याय का जन्म लेना, जन्म देने के लिए नहीं बना; जन्म-मरण से कैसे छूटें उसके लिए बना है। कहाँ इति हो रही आपकी? स्वर्ग-सम्पत्ति पर, पुण्य पर, पुण्य के फल पर, पाप पर, पाप के फल पर। इन दो धाराओं में तो सारे जगत् के सिद्धांत चल रहे हैं। मित्र ! पुण्य-पाप से मुक्त हो करके अशरीरी भगवत्ता की प्राप्ति के लिए मात्र जैनदर्शन है। फल पर उलझ गये पर यथार्थ फल पर नहीं पहुँचे - मिथ्याभास।

जो जैसा नहीं है उसे वैसा स्वीकारना ये आभास है। आपने धर्म का फल इन्द्रिय सुख, ज्ञान का फल इन्द्रिय सुख, चारित्र का फल इन्द्रियसुख यश:कीर्ति आदि स्वीकार कर लिए - फलाभास।

अज्ञाननिवृत्ति र्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम्॥प.मु.सू.॥

अज्ञान की निवृत्ति का पहला फल - हान-उपादान, अग्राह्य-ग्राह्य, हेय-उपादेय, उपेक्षा। जब-तक जीवन में उपेक्षा प्रवेश नहीं करेगी, तब-तक संयम नहीं आयेगा, चारित्र नहीं आयेगा, समता नहीं आयेगी। जब-तक ज्ञान-चारित्र और समता प्रवेश नहीं कर रही है, तब तक मोक्षमार्ग तुमसे दूर है।

किं काहदि वणवासो कायकिलेसो विचित्त उववासो।
अज्झयणमोणपहुदी समदारहियस्स समणस्स॥124/नि.सा.॥

हे श्रमण! वन में निवास करने से क्या? जंगली जानवर भी रह लेते हैं। इस मानसिकता को दूर करो कि जंगल में रहो। अरे ! जंगल में रहने से साधु बनते हैं तो सारे शेर, भालू, हिरण साधु हो जायेंगे।

'कायक्लेशो' शरीर को मात्र कष्ट देना तो दुनियाँ के बहुत सारे दर्शन हैं जो शरीर में ही कीलें ठोक रहे हैं, अपने हाथों में साँकल लिए हुए शरीर को मार रहें, प्रताड़ित कर रहे हैं। क्या है? हठयोग है। ये हठयोग की परिभाषा नहीं है। **परवस्तु से निज के परिणामों को हटाकर बैठना इसका नाम हठयोग है।** क्यों ज्ञानी! पतंजलि को पढ़ा लोक ने, विपरीत अर्थ लगा लिए। हठयोग का अर्थ लगा लिया शरीर को पीड़ित करो, ऐसा नहीं है सर्वथा। हठयोग से तात्पर्य **'कायवाङ्मनःकर्मयोग'** शरीर, वचन, मन इनका योग, 'स आस्रवः' आस्रव इनसे होता है।

'शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य'। अशुभ से अपने को हटा लो, अशुभ से हटाने के बाद शुभ में पहुँचने के बाद ऐसा पुरुषार्थ कीजिए की शुभ से भी हट जाओ और निज में ही रम जाओ; इसका नाम है शुद्ध हठयोग, न कि शरीर को पीड़ित करना। कैसी-कैसी लोक में व्याख्या की लोगों ने। यथार्थ मानना, निर्ग्रन्थों का तो बड़ा पुण्ययोग है। विद्यार्थी जीवन में मैंने दृश्य देखा। एक साधु था, वह नहर पर बैठा-बैठा अपने ग्रन्थों का वाचन करता था, अन्यमतवाला था। मैंने उसको देखा, पता नहीं क्यों तत्त्व अध्ययन की बहुत रुचि थी। मैं सोच रहा था – ये मिथ्याध्ययन में इतनी मेहनत कर रहा है, जिनवाणी में कर लेता तो जिनदेव की अवस्था को प्राप्त करता। पर मुझे जब भी समय मिलता अपनी पुस्तकों के बाद जिनवाणी को देखता और सोचता, जब भी मैं दिगम्बर मुनि बनूँगा तब पूरा समय जिनवाणी को दूँगा।

किसी का बच्चा मेले में गुम जाये या रो रहा हो, उसे कितनी भी मिठाई खिलाओ, गुब्बारे, फूँकने को दो, बाँसुरी बजाने को दो तब भी उसके आँख के आँसू बंद नहीं होते और उस बालक की माँ उसे मिल जाये वह कुछ न दे, वह आँचल से लगा ले बेटा चुप हो जाता है। जब दो आँचलवाली माँ के रसपान से बेटे को इतना आनंद आता है तो जिस जिनवाणी माँ के चार आँचल हों- प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग। जिस माँ के चार-चार आँचल हों उस माँ की गोद में बैठेंगे तो कितना आनंद आयेगा ? वे अभागे जीव हैं जिनको अपनी माँ का दूध पीने को नहीं मिलता और वे महाअभागे हैं जिनकी माँ गोद फैलाये बैठी हो और तब भी तुम गोद में नहीं बैठे हो। पुण्यहीनो! तुम जीवन में क्या कर पाओगे? भगवती माँ जिनवाणी गोद फैलाये बैठी है। आओ, इन चार अनुयोगों का रसपान करो।

जो धर्म है वह क्या कह रहा है ? भिन्न वस्तु का भिन्न वस्तु में मिश्रण जो है वो उस वस्तु का अधर्म है। भिन्न वस्तु का भिन्न वस्तु में जो मिश्रण है वह उसका अधर्म है। तात्पर्य माँ आटा पीस रही हो, पीसने के पहले बीनती क्या है? गेहूँ बीनती है, यही व्यवहार झूठ है। इन माताओं ने बीन-बीन कर कंकर फेंके हैं पर भाषा में क्या बोला, गेहूँ बीन रहे हैं। वह भी सत्य है स्यात्। स्याद्वाद का कोठा बहुत बड़ा है। वह कंकर मिट्टी के, पौद्गलिक नहीं हैं क्या? गेहूँ पौद्गलिक नहीं हैं क्या? कंकर मिट्टी के कण गेहूँ से हटा रहे हो जबकि दोनों पौद्गलिक हैं। ज्ञानियो ! पौद्गलिक कहने मात्र से काम नहीं चलेगा, अनर्थ हो जायेगा। समझना ध्यान

से, जब-तक पर्याय की प्रत्यासत्ति में भिन्नत्व नहीं स्वीकारोगे, काम नहीं चलेगा। जब पौद्गलिक है तो कंकर की जगह गेहूँ फेंक दो और कंकर खा लो। ऐसा कभी करते हो क्या?

सारे द्रव्यों को पौद्गलिक कहा। एक सुगतदर्शन आपसे कहता है - भाई! हम लोग जो हैं मरे ऊँट को खा लेते हैं। पंडितजी कहते हैं नहीं खाना चाहिए, हम तो सेबफल खाते हैं। वह क्या कहता है - सेबफल पौद्गलिक है कि नहीं? मरा ऊँट पौद्गलिक है कि नहीं? भिन्न पर्यायदृष्टि से आप हूँ कहो - ऊँट जीव है तो सेबफल एकेन्द्रिय जीव है कि नहीं? बोले – है। तो तुम सेबफल खाते हो, मैं ऊँट खाता हूँ, क्या दोष है? तुम्हारे सामने प्रश्न आ सकता है। तो अर्हंतदर्शन से पूछता हूँ सिद्धांत। जब तुम ऊँट प्राणी को खा सकते हो, तो अपने इष्टदेव को ही क्यों नहीं खा लेते हो, उत्तर दीजिए मेरा? जब सेबफल खाने योग्य है और उसे तुम ऊँट जैसा खाने योग्य मान रहे हो, दही जैसा ऊँट को खाना मान रहे हो तो तुम अपने इष्ट का भक्षण कर लो, गुरु को खा लो, प्रभु को खा लो। कठोर शब्द मत समझना, ये न्याय की भाषा है। फिर क्या बोलोगे ? आप प्रभु को क्यों नहीं खाओगे, गुरु को क्यों नहीं खाओगे, ऊँट को ही क्यों खाओगे, उत्तर दोगे कोई? पंडितजी ! – बोलो। जब तेरे गुरु की पर्याय में और ऊँट की पर्याय में अंतर है, तो सेबफल और ऊँट की पर्याय में भी अंतर है। ऊँट नहीं खाया जा सकता है। सेबफल की पर्याय भिन्न है, ऊँट की पर्याय भिन्न है। ऐसे ही बेटे की माँ और तेरी माँ दोनों स्त्री हैं, किसके साथ कामसेवन करोगे? समझो, नहीं तो अनर्थ फैल जायेगा। पंडितजी ! आपके बीच में बहुत छात्र हैं और समाज के बीच में आप जा रहे हो। मैं कितना जाऊँ ? आप तो वाहनवाले हो, विमानवाले हो, विद्याधर हो, तो ये पूरे समाज को समझाइए क्योंकि पुद्गल आत्मा कहने से तुम द्रव्यदृष्टि को नहीं समझ पाओगे। तत्त्व को माननेवाले व्यक्तियों की संख्या बहुत बढ़ चुकी है, तत्त्व को जाननेवालों की संख्या अल्प है, अँगुली पर गिनने लायक है।

विरला जाणहिं तत्तु बुह, विरला णिसुणहि तत्तु।
विरला झायहिं तत्तु जिय, विरला धारहिं तत्तु।।66/यो.सा.।।

तत्त्व को सुननेवाले विरले हैं, सुननेवाले मिल जायें पर जाननेवाले विरले हैं; जाननेवाले मिल जायें पर भानेवाले विरले हैं; भानेवाले मिल जायें पर धारण करनेवाले विरले हैं। यदि अपनी इस पर्याय में श्वासें चल रही हैं, व्यावहारिकदृष्टि में जी रहे हो, समाज के बीच में रह रहे हो, तो कम-से-कम इतनी करुणा कर लो, जो तत्त्व को विपरीतरूप में समझ रहे हैं उनको तत्त्व की सम्यक् प्ररूपणा प्रदान कर दो। स्त्रीपर्याय की दृष्टि से सभी स्त्रियाँ एकसी हैं, स्त्रीत्व दृष्टि से। ज्ञानी! फिर शीलव्रत, ब्रह्मचर्य अणुव्रत का क्या होगा? स्वदार संतोषव्रत का क्या होगा? संयमशील का क्या होगा? इसलिए बोलना पड़ेगा नयदृष्टि से; ज्ञानी! ये तेरी माँ है, ये तेरी पत्नी है, ये तेरी भगिनी है। जब-तक पर्याय की प्रत्यासत्तियों में भेददृष्टि नहीं लाओगे, पर्यायों में भेद नहीं करोगे, सबंधों में भेद नहीं करोगे, तब-तक स्वभाव की प्राप्ति का कारण चारित्र का पालन नहीं कर सकोगे। समझ रहे हो, कितना गहरा है। ये क्या हुआ है, जो सांख्य हैं इसी

विषय में कई जगह पिट चुके हैं, किस विषय में। ऐसे ब्रह्म खलु में लीन हो गये कि भोगी ने सारे विश्व को ब्रह्म देख करके ब्रह्म में, भ्रम में लीन हो गये। इसलिए आपको जितने सामाजिक व्यावहारिक भेद हैं, लोक व्यवहार हैं उन्हें लेकर चलना पड़ेगा। आचार्य भगवन् उमास्वामी महाराज ने सात नयों की व्याख्या की है।

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्र-शब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः। 1/33, त.सू.॥

माताओ ! ये मात्र तत्त्वार्थसूत्र में लिखे हैं इसलिए नहीं पढ़ना है। अपने जीवन में इन नयों को निहारिये और जब-तक नय तुम्हारे जीवन में नहीं दिख रहे हैं तब-तक वस्तुव्यवस्था को क्या समझोगे। परमार्थदृष्टि, नयातीत, वचनातीत, संबंधातीत किसके लिए ? **अभावभावशक्ति, मैं सम्पूर्ण पर्याय का अभाव करके द्रव्य को देख रहा हूँ।** यह योगी की वह दशा है शुद्धोपयोग की लवलीनता, जहाँ किसी पर्याय के संबंध को नहीं झाँक रहे। भाई ! किसी ने पूछा - तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक है ? बोले – सब पौद्गलिकदशा है। पागलपन की भाषा बोलना कोई वैराग्य नहीं है। स्वास्थ्य खराब होने पर भी, हाँ, स्वास्थ्य खराब तो है पर समता में कोई खराबी नहीं है – ये है तुम्हारा वैराग्य। यदि ये एकान्तदृष्टि में लेकर बैठ गये हर विषय को, ऐसा है जी रहे हो व्यवहार में, खा रहे हो रोटी और बात कर रहे शुद्धात्मा की। जब शुद्धात्मा में लीन होगा उस काल में रोटी खाते नहीं मिलेगा। जब रोटी खा रहा होगा उस समय वह शुद्धात्मा में लीन नहीं होगा। बोलो पंडितजी ! बराबर है कि नहीं है ?

जो भेदविज्ञानविहीन वैरागी हैं उनसे, मैंने पूछा – आपका जन्मस्थान क्या है? उत्तर व्यवहार से दे दो, समय क्यों बरबाद कर रहे हो? मैं अजन्मा हूँ, मेरा कौन नगर, कौन ग्राम, इतने व्यर्थ की भाषणबाजी कर दिये। इतना बोल देते मैं वहाँ का हूँ, बस। जब तीर्थंकरों के जन्मस्थान हो सकते हैं, तीर्थंकरों के माता-पिता हो सकते हैं तो तुम क्या आकाश से टपककर आ गये ? मेरे पूछने पर तुम वैराग्य टपका रहे हो। उधर जन्मजयंती मना रहे हो, अब यहाँ क्या कर रहे हो ? जन्मजयन्ती तुम्हारी मन रही हो तब कहना मैं अजन्मा हूँ, अहेतुक हूँ। मेरे पूछने पर तुम वैराग्य टपका रहे हो। रागियों से पूछने पर तुम्हें कोई एलर्जी नहीं है, समय की बरबादी नहीं है। वैरागियों के मिलने पर तुम्हें लगता है हमारा वैराग्य भंग न हो जाये, ये तुम्हारी अज्ञानधारा है। पंडितजी! बहुत समझने की आवश्यकता है। अब समझ लेना अर्हंत के भेष में कितने आ सकते हैं और अर्हंत के भाव को कितने समझ सकते हैं।

श्रमण परम्परा प्रचारवादी परम्परा नहीं है। ये कुछ समय से बहुत प्रचार बढ़ चुका है तीनों आम्नाओं में; दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानक में। इतनी प्रचार की लीला बढ़ चुकी है कि एक-दूसरे को देखना पसंद नहीं करते हैं। ये प्रचार का विषय था कि आचार का विषय था ? समयसार खोलना नहीं, अगर खोल लूँगा तो तुम्हारा प्रचार खत्म हो जायेगा। ये सैंतालीस शक्तियों पर दृष्टि चली गई तो बाहर की शक्ति समाप्त हो जायेगी। आत्मा का धर्म मात्र ज्ञान-दर्शन है, उसकी प्राप्ति के लिए पुण्य-पाप की व्याख्या है,

क्रिया है। जो रत्नत्रयधर्म है वह भी शुद्ध ज्ञान-दर्शन को प्रगट करने का साधन है। समयसार हो या मूलाचार ये दोनों ग्रन्थ निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय को बतानेवाले ग्रन्थ हैं पर इन दोनों का न निश्चय रत्नत्रय है न व्यवहार रत्नत्रय।

अपने मानकषाय की पुष्टि का साधन आपने निश्चय-व्यवहार को बना लिया। अपनी-अपनी पुष्टि की अपनी-अपनी विधाएँ होती हैं। जैसे एक ही गेहूँ का आटा, किसी को बाटी पसंद है, किसी को रोटी पसंद है, किसी को पराठे पसंद हैं, किसी को हलुआ पसंद हैं परन्तु है क्या? पर हल्ला क्या करोगे, मैं तो रोटी खाता हूँ पकवान नहीं खाता हूँ। तुम्हें रोटी में भी उतना राग है जितना उसे पकवान में है। बंधस्थान तुम्हारा उतना ही होगा। ऐसे ही मूल श्रुत को पकड़िये। आपने आकार बदल दिए हैं आटे के, पर है वो आटा ही। ऐसे ही आपने अपनी-अपनी कषाय की पुष्टि के मार्ग बदल दिए हैं। कोई पूजा करके अपनी कषाय की पुष्टि कर रहा है, कोई भजन गाकर पुष्टि कर रहा है, कोई तपस्या करके कर रहा है। यदि मानकषाय नहीं हटी तो ये मानकषाय की पुष्टि के साधन हैं। मानकषाय हट गई तो मोक्ष के साधन हैं। इसलिए भैया! आज से अपनी प्रवृत्ति को बदल देना। ऐसी मानसिक प्रवृत्ति को बहुत समय निकल गया, अब अपनी इस मानसिक प्रवृत्ति को बदल देना। कहीं मेरी साधना वहीं तो नहीं जा रही है जहाँ मारीचि की चली गई थी। कहीं मेरी साधना वहाँ तो नहीं जा रही है जहाँ कुणिक के जीव मुनि की बदल गई थी। कहीं मेरी साधना वहीं तो नहीं जा रही जहाँ कंस के जीव मुनि की बदल गई थी।

साधको! सँभलके सुनना, सुनना भर नहीं है जीवन में वेदन करना, यदि तुमको वैराग्य भी आ गया और तुम्हें दूसरा साधक पसंद नहीं आ रहा है ये तुम्हारा कोई वैराग्य नहीं है। वैरागी वो है जो सुगन्ध में, दुर्गन्ध में साम्यदृष्टि रखे **'मुनि तन मलिन न देख घिनावै'** दौलतरामजी इतना ही कह पाये, मुनि के मलिन तन को देखकर ग्लनि नहीं करना। अमृतचन्द्रस्वामी तो और ऊँचे चले गये। अमृतचन्द्रस्वामी ने जब निर्विचिकित्सा अंग की व्याख्या की है **'पुरीषादिषु'** पुरीष का अर्थ होता है मल। चाहे पुरुष का मल हो, श्वान का मल हो, किसी का भी मल हो, मार्ग पर पड़ा है उसे देख नाक मत सिकोड़ना। इस वस्तु का यही धर्म है, तुम्हारा धर्म निर्विचिकित्सा है। जब मल को देखकर के मलिन चेहरा नहीं कर रहे हैं, तो मुनि के मल को देखकर के मलिन चेहरा कैसे कर सकते हो? इसलिए बार-बार कह रहा हूँ– 'पुरुषार्थसिद्धि उपाय' पढ़ो तब समझ में आयेगा हमारा सम्यग्दर्शन कहाँ है। **फूल को देखकर मुस्कुराने लगते हो, शूल को देखकर फूलने लगते हो, कहाँ है सम्यग्दर्शन ? जो फूल में फूले नहीं, शूल में फूले नहीं उसका नाम सम्यग्दृष्टि है, ऐसा जीव ही सच्चा वीतरागी श्रमण है।** वस्तुस्वरूप तो ऐसा ही है। भाव-अभावशक्ति की व्याख्या चल रही है।

भवत्पर्यायव्ययरूपा भावाभावशक्तिः।

क्या गजब का विषय है, यदि ये ध्यान में आ जाये तो हे विशुद्धसागर! तुम किसके नाम की कीर्ति की

ध्वनि में बैठे हो? भावाभाव शक्ति। हे जीव! जो पर्याय वर्तमान में सत्तारूप है उसका अभाव होनेवाला है। जी लो, जी लो जितने दिन जीना है पर मेरे मित्र ! श्मशान की राख का भी ध्यान रखना, भावअभाव। सत् का विनाश नहीं होता, असत् का उत्पाद नहीं होता, ये तो सांख्य भी कह लेता है, लेकिन पर्यायदृष्टि नहीं है उनके पास इसलिए कूटस्थ हो जाते हैं। भैया ! हम जैन क्या कह रहे हैं – सत् का विनाश नहीं होता, असत् का उत्पाद नहीं होता; द्रव्यदृष्टि से। सत् का विनाश होता है, असत् का उत्पाद् होता है; पर्यायदृष्टि से। देखो सुनो, ये तुमको दिख रहा शरीर कौन है, घबराओ नहीं ये कौन है? विशुद्धसागर। ये कब तक है? सत्य को कहो, कब तक है? है कि नहीं, रहेंगे कब तक? रहेंगे क्या? नहीं रहेंगे। जैसे विशुद्धसागर नहीं रहेंगे, ऐसे ही मित्रो! आप भी नहीं रहेंगे। रहेंगे क्या? नहीं। जो है को देख रहा है उसमें नहीं भी दिखाई दे रहा है, जो शांत बैठकर उसे देख रहा है, जो देख रहा है किसे? है को। देख रहा है नहीं रहेंगे वो भी नहीं होंगे। भाई! ये बोल रहा है – मुझे विशुद्धसागर दिख रहे हैं, उससे बोलो – अच्छे सेआँख मल के देखो मैं दिख रहा हूँ कि नहीं? मुझे विश्वास है कि कोई आवश्यकता नहीं है दुनियाँ से पूछने जाने की, आवश्यकता नहीं सीमन्धर परमात्मा के पास जाने की, तेरे मुझे तीन भव दिखाई दे रहे हैं। आपको दिख रहे कि नहीं? तू मनुष्य है कि नहीं?

'अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य' ॥6/17, त.सू.॥

तूने पूर्व में अल्प आरंभ-परिग्रह का सेवन किया होगा इसलिए मनुष्य दिख रहा है और वर्तमान में तू दिख रहा है। दो पर्यायें हो गईं। अब भविष्य की सुन। यदि तू वर्तमान में वास्तव में ऋजु परिणामी है **'सम्यक्त्वं च'** सूत्र में जी रहा है तो तेरी देव पर्याय दिखाई दे रही है। यदि मायाचारी कर रहा है तो तेरी तिर्यंच पर्याय दिख रही है। दिख रही कि नहीं? दिख रही। अब भी जाओगे सीमन्धरस्वामी से पूछने?

ज्ञानियो! यदि मैं मेरे अपने परिणामों का वेदन कर रहा हूँ तो दुर्गति तो नहीं होगी, नियम से पंचमकाल में जितनी अच्छी देव पर्याय मिल सकती है वो मिलेगी। जिसने निर्ग्रन्थ दीक्षा को प्राप्त किया और सल्लेखना सहित मरण हो गया, आपको देव पर्याय दिख रही है। मुझे तो सिद्धपर्याय दिख रही है, पर है क्या? नहीं है। अच्छा, एक श्रीफल उठा लो, ये बताओ इसे जमीन में गाड़ दिया जाये तो कितने श्रीफल हो सकते हैं? नहीं होंगे। तो किसमें होंगे? कच्चा होगा तो माना कि कच्चे को बो दिया जमीन में तो फल कितने होंगे? एक फल से एक पेड़ में तीन सौ फल। एक बीज-फल, उसमें तीन सौ फल का अभाव है कि नहीं? वर्तमान में अभाव है, अभावभाव। आज अभाव है, लेकिन भविष्य में हो सकते हैं। ऐसे ही मृत्यु का समय नजदीक आ जाये, निश्चय से व्यवहार से सबसे लगाइए। मृत्यु का समय नजदीक आ जाये अरे वृद्धो! तुम रोना मत। अभाव में भाव को देखकर मुस्कुराना कि सड़ा शरीर नष्ट हो रहा है, नया तो मिलने वाला है। लोग कहते हैं सैंतालीस शक्तियाँ कठिन हैं। अरे ! जगत् में कौन-सा विषय कठिन है। वो तो हमारे शास्त्रीजी ने शास्त्रिय भाषा बोलकर कठिन कर दिया है, भाषा तो सब सरल हैं। पंडितजी! क्या है,

विद्वानों ने भाषा में बाँधा और निर्ग्रन्थों ने भावों में बाँधा है। ये शास्त्रियों ने शास्त्रिय भाषा में रच-रच कर कठिन कर दिया। ये जिनागम में प्राकृत भाषा का प्रयोग क्यों किया? वह प्रकृति की भाषा थी, जन-सामान्य की भाषा थी। अपभ्रंश की आवश्यकता पड़ी, अपभ्रंश शुरू हो गया। जहाँ संस्कृत की आवश्यकता पड़ी वहाँ संस्कृत शुरू हो गई और जिस प्रदेश में हमारे आचार्य पहुँचे उसकी भाषा में हमारे ग्रन्थ हैं। हमारे तमिल में ग्रन्थ हैं, महाराष्ट्रीयन भाषा में हमारे ग्रन्थ हैं और यहाँ तक प्रान्तीय बोलियाँ हैं, उनमें हमारे ग्रन्थ हैं। उर्दू में ग्रन्थ हैं। जो आगरा के पार्श्वनाथ जिनालय में विराजमान है जो औरंगजेब को समझाने के लिए लिखा है। पंडित बनारसीदासजी ने स्वयं लिखा है।

यदि आपको भाव में अभाव दिखने लग जाये तो ये व्यर्थ के नाटक सब बंद हो जायें। अंतिम श्वास भर रहा है तब भी कह रहा है दुकान चल रही कि नहीं चल रही, जबकि उसका मरण होने वाला है। पंडितजी! अभाव के दिन आ गये हैं तब भी बाजार के भाव पूछ रहा है। परिणामों के भाव पूछना बहुत कठिन है। अब समझिए, **चारित्र पालन सरल है, वैराग्य कठिन है** और वैराग्यविहीन चारित्र धारण कर लिया, तो विधवा का रोना। मैं नहीं बोलता, मैं तो आचार्य ने जो लिखा वह बोलता हूँ।

विणओ भत्ति विहीणो, महिलाणं रोदणं विणा णेहं।
चागो वेरग्ग विणा, एदेदो वारिआ भणिदा।। 69/र.सा.।।

कुन्दकुन्द स्वामी नमोऽस्तु! नमोऽस्तु! प्रणाम – ऊपर से विनय दिखा रहा है अन्दर कुछ नहीं है। सभी देखलें कि विनय करता है, सिर पटक रहा, माथा रगड़ रहा, पैरों में भक्ति-विहीन विनय। बड़े शहरों में किराये की महिलायें रोने के लिए आती हैं। वे तो ऊपर से रोती हैं। कभी-कभी क्या होता है घर में, किसी का वियोग हो गया, तो मन में सोचते भले वियोग हो गया पर लोगों को दिखाने के लिए रोते हैं। माँ। क्यों मायाचारी कर रही हो। एक बार मायाचारी की तो स्त्री बन गई, यहाँ मायाचारी की तो तिर्यंचनी बनना है क्या? नहीं टपक रहे आँसू, नाटक मत करो। कुछ लोग तो पुरुषों में भी स्त्री होते हैं, भाववेद की अपेक्षा। स्त्रीवेदी-द्रव्यलिंगी भावपुरुष हो सकती है।

छादयदि सयं दोसे णयदो छादेदि परं वि दोसेण।
छादण सीला जम्हा, तम्हा सा वण्णिया इत्थी।। 274/ गो.जी.का. ।।

जो दोषों से आच्छादित है, दूसरों को दोषों से आच्छादित करे उसका नाम है स्त्री। ऐसा तुम्हारे भीतर चल रहा है तो तुम भी भावस्त्री हो। **उत्कृष्ट भोगों से युक्त है, उत्कृष्ट कार्यों से युक्त है, उत्कृष्ट संयम का पालन करता है, उत्कृष्ट चिन्तनशील है उसका नाम है पुरुष।** जो न स्त्री, न पुरुष, उसका नाम नपुंसक। मित्र! कण्ठ की विद्या काम में आती है, इसलिए ग्रन्थ याद करो।

स्नेह से रहित महिलाओं का रोना, ऐसे ही वैराग्य से विहीन चारित्र व्यर्थ है। चारित्र व्यर्थ नहीं है, वैराग्य से रहित चारित्र व्यर्थ है, चारित्र के बिना तो मोक्षमार्ग भी नहीं मिलेगा। भैया! वर्तमान पर्यायों का

व्यय जिसमें है, भाव में अभाव नियत है, इसका विनाश होगा। जो पर्याय नहीं है उस पर्याय का प्रगट होना-ये अभावभावशक्ति। मेरी भावि की देवपर्याय का वर्तमान में अभाव है, लेकिन उस अभाव का भी भाव है। यदि ये विषय समझ में आ गया तो जगत् के प्रपंच का स्थान कहाँ है? भैया! भाव में अभाव देख, कहाँ प्रपंच में पड़ने जा रहा है, भाव में अभाव देख। **वर्तमान की पर्याय में वर्तमान की पर्याय का अभाव होगा और जो पर्याय नहीं है उस भविष्य की पर्याय का प्रादुर्भाव होगा-ये है भावाभावशक्ति।** भावाभावशक्ति को जानता है वह मध्यस्थ हो जाता है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

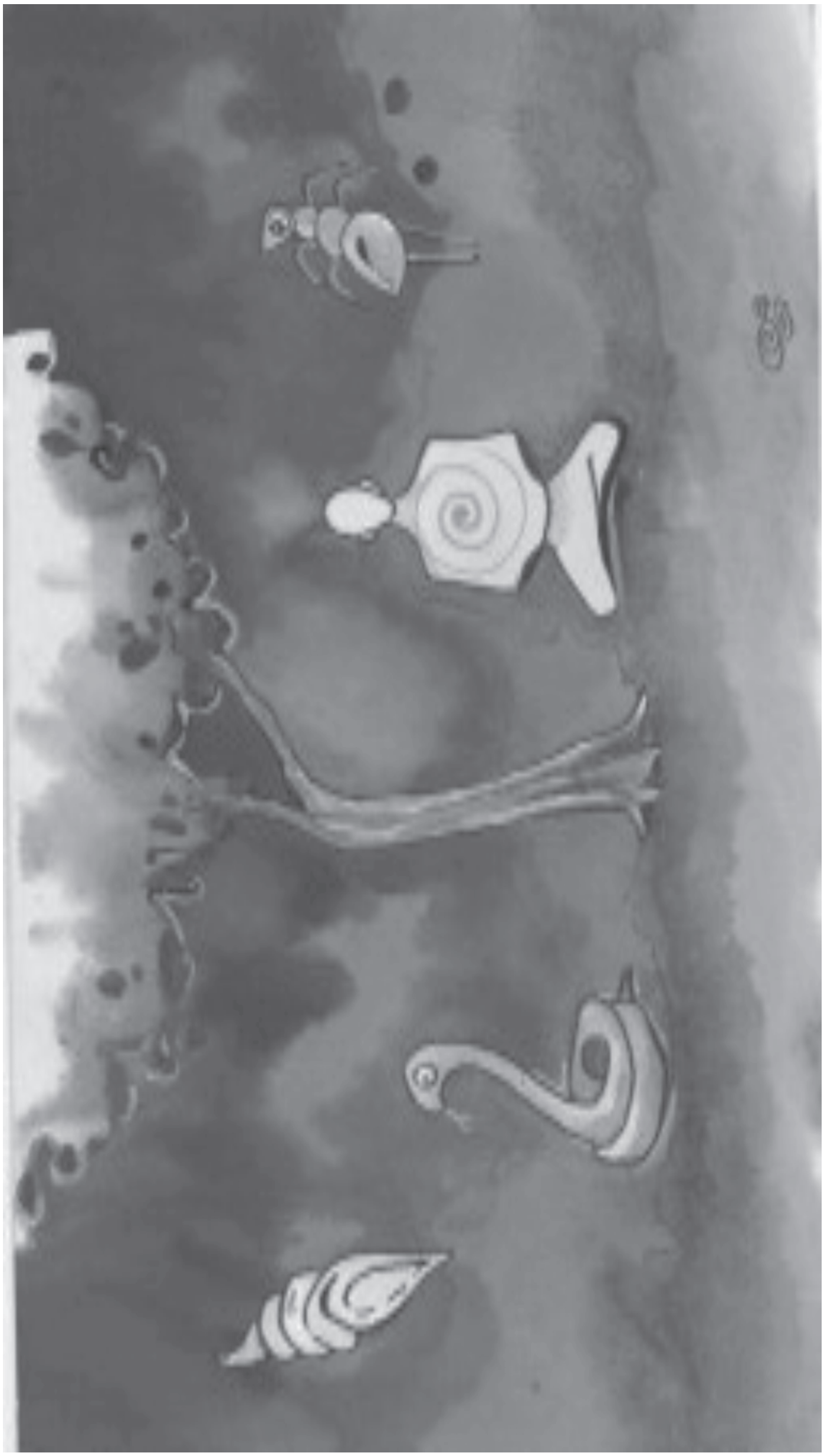

36

अभावभावशक्तिः

''अभवत्पर्यायोदयरूपाऽभावभावशक्तिः।''

पूर्व में न वर्तती पर्याय के उदयरूप 'अभावभावशक्ति' है।

37

भावभावशक्तिः

''भवत्पर्यायभवनरूपा भावभावशक्तिः।''

होने योग्य पर्याय के होनेरूप 'भावभावशक्ति' है।

38

अभावअभावशक्तिः

''अभवत्पर्यायाऽभवनरूपाऽभावाभावशक्तिः।''

नहीं होने योग्य पर्याय के नहीं होने रूप 'अभावअभावशक्ति' है।

39

भावशक्तिः

''कारकानुगतक्रिया निष्क्रान्तभवनमात्रमयी भावशक्तिः।''

कारकों के अनुसार होनेवाली क्रिया से रहित भवनमात्रमयी 'भावशक्ति' है।

40

क्रियाशक्तिः

''कारकानुगतभवत्तारूपभावमयी क्रियाशक्तिः।''

कारकों के अनुसार परिणमित होने रूप भावमयी 'क्रियाशक्ति' है।

समय देशना

आचार्य प्रवर भगवन् कुन्दकुन्दस्वामी ग्रन्थराज समयसार जी में ध्रुवज्ञायक स्वभावी भगवानात्मा के सहजरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। त्रैकालिक शुद्धभूत द्रव्य में अनंतशक्तियाँ समाविष्ट हैं। आत्मा की उन अनंतशक्तियों को समझना है तो प्रतिक्षण अनेकांतदृष्टि को लेकर जीना पड़ेगा। जो एक समय भी अनेकांत से शून्य हो गया उसके पास इन अनंत धर्मों को समझने का सामर्थ्य नहीं है। द्रव्य कार्यकारी भी है, अकार्यकारी भी है, अभावभूत भी है, सद्भावभूत भी है और एक ही समय में उसमें सारे गुण विद्यमान हैं। अभाव-भाव - जिस पर्याय का आत्मा में अभाव है वह भाव अभाव से युक्त है लेकिन अभाव से युक्त होने पर भी अभाव नहीं है, निज सत्ता का अभाव नहीं है। परसत्ता का त्रैकालिक अभाव है, निजसत्ता का सद्भाव है। भाव-भाव, अभाव-अभाव - इन दो शक्तियों की व्याख्या कर रहे हैं।

एक ही समय में, द्रव्य में भाव-भाव भी है, अभाव-अभाव भी है। यहाँ भाव-भावशक्ति की व्याख्या कर रहे हैं कि द्रव्य जो है एक समय की पर्याय में भूत की पर्याय को नहीं देख रहा, भविष्य की पर्याय को नहीं देख रहा, मात्र वर्तमान की पर्याय को ही देख रहा है। द्रव्य, वर्तमान पर्याय से युक्त है। भाव-भाव। भूत की पर्याय, वर्तमान की पर्याय, भविष्य की पर्याय; ये तीनों पर्यायें द्रव्य में देखने को मिलेंगी, परन्तु जो तीनों पर्यायों को द्रव्य में नहीं देख पायेगा वो द्रव्य की द्रव्यता को कभी सुरक्षित नहीं रख पायेगा। भावी पर्याय भी द्रव्य में देखेगा, भूत पर्याय भी द्रव्य में देखेगा और वर्तमान पर्याय भी द्रव्य में देखेगा वही द्रव्य की द्रव्यता को सुरक्षित रख पायेगा।

समझने का प्रयास करना। त्रैकालिक पर्याय जो देख पा रहा है, वही द्रव्य की द्रव्यता को समझ पा रहा है। जो द्रव्य में त्रैकालिक पर्याय को नहीं देख पायेगा वो द्रव्य की द्रव्यता को सुरक्षित नहीं रख पायेगा। वर्तमान की पर्याय में भूत की पर्याय का अभाव है, वर्तमान की पर्याय में वर्तमान की पर्याय का अभाव नहीं है। लेकिन जिसमें वर्तमान पर्याय है वो द्रव्य है। जिसमें भूत पर्याय थी वह द्रव्य था। जिसमें भविष्य पर्याय होगी वह द्रव्य ही होगा। कौन-सा द्रव्य होगा? जो वर्तमान पर्याय में द्रव्य है वह भूत में भी था, जो वर्तमान पर्याय में द्रव्य है वह भविष्य में भी होगा।

पर्याय बदल रही है, पर्यायी ध्रौव्य है, पर पर्याय जिसमें बदल रही है वह जो पर्यायी है, वही तो द्रव्य है जो ध्रौव्य द्रव्य है। इसका तात्पर्य न समझने के कारण पंडितजी ! **अनेकांत को न समझने के कारण जीव कई जगह भ्रमित हो जाता है।** जब कहा - पर्याय बदल रही है, द्रव्य ध्रौव्य है तब जीव क्या समझ बैठता है कि पर्याय कोई भिन्न अवस्था है और द्रव्य भिन्न है। परिणमनशीलता की दृष्टि से पर्याय आपको परिणमनशील दिखाई दे रही है लेकिन ध्यान रखना, पर्याय कोई द्रव्य से अत्यंत भिन्न वस्तु नहीं है। समझना इस विषय को, न समझने के कारण हमारे समाज में अनेक विकल्प खड़े हो जाते हैं, विद्वानों की दृष्टि में भ्रम खड़े हो जाते हैं। पर्याय भिन्न है द्रव्य भिन्न है। पर्याय भिन्न है 'नय योगान्न सर्वथा' इस

व्याख्या को नय-योग से कीजिए, सर्वथा मत समझ बैठना। इसलिये इन सैंतालीस शक्तियों को समझना चाहिये।

पज्जय विजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविंति॥ 12॥ पं.का.॥

पर्याय से रहित द्रव्य, द्रव्य से रहित पर्याय नहीं होती है ऐसा पदार्थ का स्वभाव श्रमणों ने प्ररूपित किया है, यह महाश्रमण तीर्थंकर महावीरस्वामी ने कहा है। मात्र ये दृष्टि को समझने की व्याख्या चल रही है। वस्तु का वस्तुपना अपने स्वभाव में चल रहा है। **जो व्याख्यान चल रहा है वह आपको अपनी दृष्टि समझने के लिए है, वस्तुव्यवस्था को व्यवस्थित करने के लिए नहीं है, न वस्तुव्यवस्था को भंग करने के लिए है।**

व्याख्यान मात्र अपनी दृष्टि में, अपने ज्ञान में विशदता के लिए चल रहा है, न कि वस्तु- व्यवस्था भंग करने के लिए चल रहा है, न वस्तु-व्यवस्था व्यवस्थित करने के लिए चल रहा है। वस्तुव्यवस्था तो व्यवस्थित ही है। द्रव्य की पर्यायें नियत हैं, वे नष्ट होनेवाली नहीं हैं। द्रव्य का द्रव्यत्व नियत है, वह समाप्त होनेवाला नहीं है। द्रव्य का गुण भी नियत है वो नष्ट होनेवाला नहीं है तो पर्याय है क्या? **जो द्रव्य का परिणमन है वही पर्याय है, जो गुण का परिणमन है वही पर्याय है।** कुछ लोग इस शंका में आ जाते हैं कि एक बार द्रव्य का परिणमन कहा, दूसरी बार गुण का परिणमन कहा तो पर्याय की दो परिभाषा हो गईं। नहीं। ज्ञानी! गुणदृष्टि से कथन करते हैं तो गुण का कथन किया। द्रव्य की प्रधानता से कथन करते हैं तो द्रव्य का कथन किया। पर सत्यता ये है **'द्रव्याश्रया निर्गुणागुणाः'** जो द्रव्य के आश्रय होता है, उसका नाम गुण है, द्रव्य है, गुण-गुणी अखण्ड-अभेद है।

ज्ञानियो! जैसे गुण-गुणी अखण्ड अभेद है, वैसे ही पर्याय भी अखण्ड अभेद है। जैसे गुण-गुणी अभेद मानते हो, वैसे गुण-पर्याय अभेद ही है। सन्तति की अपेक्षा से गुण-पर्यायें भिन्न होंगी ही नहीं। ऐसा कोई भी काल नहीं आयेगा जब द्रव्य, गुण-पर्याय अलग-अलग होंगे। द्रव्य-गुणपर्याय त्रैकालिक अखण्ड एक हैं। मित्र! जब द्रव्य में परिणमन होगा तब गुण में परिणमन होगा कि नहीं होगा? और जब गुण में परिणमन होगा तो द्रव्य में परिणमन होगा कि नहीं? जिस क्षण द्रव्य में परिणमन हो रहा है उसी क्षण गुण में भी परिणमन हो रहा है। जिस क्षण द्रव्य-गुण में परिणमन हो रहा है, जो परिणमन हो रहा है वही तो पर्याय है, सहक्रमभाव - सहभावी और क्रमभावी। गुण सहभावी है, पर्याय क्रमभावी है। जो क्रमभावी है उसका नाम पर्याय है-

एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्याया आत्मनि हर्षविषादादिवत्' ॥ 8/4प.मु.सू.॥

एक समय में जो क्रम से परिणमन चल रहा है, उसका नाम पर्याय है। जैसे कि आत्मा में हर्ष-विषाद। जब हर्ष होगा तब विषाद नहीं होगा, विषाद होगा तो हर्ष नहीं होगा। किसमें? आत्मा में।

आप जब मुस्करायेंगे उस समय दूसरा चेहरा लेकर आयेंगे। जब आप विषाद को प्राप्त होंगे तो कोई भिन्न चेहरा लेकर आओगे। चेहरा वही होगा पर वही नहीं होगा। जो प्रवचनधारा आज जयपुर स्मारक में चली वह प्रवचन की धारा पूरे देश के विद्वानों के बीच में हो। बहुत सारी अवस्था ऐसी है इसमें शंका नहीं करना। वर्तमान में क्षायोपशमिकज्ञान है। किस जीव ने किस दृष्टि से क्या समझकर रखा है ? उभयनय की दृष्टि से समझकर के मध्यस्थ होकर जो जी पायेगा वही तत्त्व के फल को प्राप्त कर पायेगा। मित्र ! जो निश्चय अथवा व्यवहार में उलझा हुआ है **'यस्य तस्य देशना नास्ति'** उसके लिए सर्वज्ञ की देशना नहीं है। **उभयनय को समझकरके मध्यस्थ होकर जीता है वह अविकल अर्हंत के फल को प्राप्त होता है।** यहाँ द्रव्य-गुण-पर्याय की व्याख्या होती है सम्पूर्ण द्वादशांग में व्याख्या किसकी है ? द्रव्य-गुण-पर्याय, द्रव्य-गुण- पर्याय से भिन्न अवस्था है ही नहीं।

षट्दर्शन में भी जो व्याख्या है वह द्रव्य गुण पर्याय की ही है, लेकिन वहाँ इनका पृथक्-पृथक् कथन किया गया है। षट्दर्शन बने ही ऐसे हैं। किसी ने द्रव्य का कथन किया, एक दर्शन बन गया। किसी ने पर्याय का कथन किया, दूसरा दर्शन बन गया। किसी ने गुण का कथन किया, तीसरा दर्शन बन गया। किसी ने पर्याय-मिश्रित गुण की व्याख्या की। यदि ये छः के छः दर्शन मिलकर विचार कर लें अनेकांतदृष्टि से तो ये षट्दर्शन ही सम्यग्दर्शन हो जायें। मैं कह रहा था भैया! आपका चेहरा मुस्कुराता है तब विषाद को प्राप्त नहीं होता। जब विषाद को प्राप्त होता है, उस समय मुस्कुराता नहीं है। क्या वही चेहरा नहीं है जो विषाद को प्राप्त था, क्या वही चेहरा नहीं है जो प्रसन्नता को प्राप्त था? वही चेहरा है। क्षयोपशम में चल रहा है विषय। ध्यान से सुनना, वही चेहरा है तो मुस्कुराहट-विषाद एक साथ दिखना चाहिए। आपने जाना कैसे कि मुझे मुस्कुराहट आई थी, मुझे विषाद आया था? यदि वही चेहरा नहीं है तो प्रत्यभिज्ञान का अभाव होता है और क्षणिक एकान्त में प्रवेश कर जाओगे। **भाव-भावशक्ति, अपनी नियत समय के पर्याय के लिए नित्यता का बोध करा रही है कि मैं इतने समय में नियत हूँ।** जैसे स्थूल ऋजुसूत्र नय आयुप्रमाणकाल। यदि भाव-भावशक्ति नहीं होगी, तो आप अपनी मनुष्य आयु की अनुभूति नहीं कर पाओगे। जब-तक मनुष्य आयु है, मनुष्य गति है तब-तक उसका समय चल रहा है तो उसका वेदन कब तक कर पाओगे? आयु-प्रमाणकाल तक। **भाव-भावशक्ति** यह बोध करा रही है - तदायु कालप्रमाण तक मैं मनुष्य हूँ। यदि वही चेहरा नहीं है तो परिणमन किसमें हुआ? और वही चेहरा है तो परिणमन क्या हुआ? पकड़िए सूक्ष्म विषय को, समझ में आ रहा है क्या ?

भैया! कौन-सी कक्षा में पढ़ रहे हो ? जब तुम प्रथम कक्षा में थे, दाढ़ी में बाल कितने थे, मूँछों में कितने थे? स्पष्ट बोलिए, एक भी नहीं। तो आप वही हो क्या? यदि वही हो तो दाढ़ी-मूँछ कहाँ से लाये? भाई! आप प्रथम कक्षा में पढ़ते थे उस समय तेरी मानसिकता जो आज चल रही है, किसी को देखकर भाव बिगड़ते हैं, किसी को देखकर अच्छे होते हैं; ये परिणाम पहले थे क्या? आप वही हो क्या? तो घुटने

चलिए जमीन पर, खिसको। आप वही कैसे हो, ज्ञान गया कहाँ था? स्पष्ट समझिए, **जीवन लोग जी रहे हैं पर जीवन के रहस्यों को नहीं समझ रहे।** भाई! ज्ञान गया कहाँ था जो तुम कह रहे आ गया। **भाव-भावशक्ति, ज्ञान कहीं गया ही नहीं था, ज्ञान वहीं है इस ज्ञान का कभी अभाव हुआ ही नहीं है - इसलिए भाव-भावशक्ति।** मेरा ज्ञान कभी अभाव को प्राप्त हुआ नहीं है, मेरा गुण कभी अभाव को प्राप्त हुआ नहीं है, वो भाव ही है, भाव ही था, भाव ही रहेगा - भाव-भावशक्ति। मेरा द्रव्य जो है मैं चैतन्य ही था, चैतन्य ही हूँ, चैतन्य ही रहूँगा - भाव-भावशक्ति, मैं चैतन्यद्रव्य हूँ, रहूँगा और था-भाव - भावशक्ति।

ज्ञानी! कितने साल के हो? पच्चीस वर्ष का युवा। ये तो संतान उत्पत्ति की सामर्थ्य से युक्त है। सुनना ध्यान से, आप वही हो तो विकार किसमें आ रहे हैं? प्रथम कक्षा में पढ़नेवाले के विकार नहीं आ रहे थे, इसलिए आप स्पष्ट बोलिए - आप बदले कि नहीं बदले हो ? मैं जो कहना चाह रहा हूँ उसे समझो। जो काया बदली है बोल रहे हैं उन्हीं को समझा रहा हूँ। ये जो जीव कह रहे हैं कि उसकी काया बदली है, वह नहीं बदला। ज्ञानी ! जो प्रथम कक्षा में परिणाम थे वे काया में थे कि कायिक में थे? चैतन्य में थे कि चैतन्य के थे? जो असमानजाति में परिणमन चल रहा था, वह असमानजाति तेरी आत्मद्रव्य से ही सम्बद्ध थी। उस शरीर का जो परिणमन चल रहा था, उस शरीर के परिणमन के साथ तेरे ज्ञान में भी परिणमन चल रहा था, तेरे चारित्र में भी परिणमन चल रहा था, तेरी श्रद्धा में भी परिणमन चल रहा था। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सम्पूर्ण अवस्थाओं में चल रहा था।

जो कहते हैं शरीर बदल गया, शरीर में विकार आने लग गये, ऐसा कहकरके पाप कर लेगा तब भी पुरुष को अविकारी कहता रहेगा और प्रकृति में विकार मानता रहेगा। फिर सांख्य और जैन में कोई अंतर नहीं बचेगा। यदि पंडितजी कहते हैं कि जितने विकार हैं ये पर्याय के विकार हैं, पुद्गल के विकार हैं तो चैतन्य भाई कहेगा ये प्रकृति के विकार हैं। ये प्रकृति विकार को प्राप्त हो किसमें रही है, संयोग किसका है? यदि प्रकृति में विकार है तो ये ज्ञानी किसी कन्या के साथ व्यभिचार करके आ जाये, आप कहो तूने ऐसा पाप कर डाला, वह कहेगा - मैं वेदातीत हूँ। वेद प्रकृति का धर्म है। मैं पुरुष हूँ, वेद कर्म है, मैं कर्मातीत हूँ। मैंने किसको भोगा, वेद ने वेद का भोग किया है। पुरुषवेद ने स्त्रीवेद का भोग किया है। मैं तो शुद्ध चिन्मयी पुरुष मात्र हूँ। ये मेरा कोई दोष नहीं है। फिर तीर्थंकर भगवन्तों के सत्य, अंहिसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह - इन व्रतों की व्याख्या का तुम क्या करोगे? अनाचार की कोई सीमा नहीं बचेगी।

वस्तुस्वभाव को अनेकांत से समझिए। जहाँ हम शुद्धद्रव्यदृष्टि की व्याख्या करते हैं उस समय यहाँ भोगी की प्रधानता से व्याख्या नहीं है। अब यहाँ कहना योगी की प्रधानता से व्याख्या है। ये सब अवस्था में होने पर भी उसको नहीं निहार रहा है और मात्र चिद्रूप को देखता है, ऐसे योगी का वेदों के विकार में प्रवेश ही नहीं है। जो वेद को भिन्न मानता है, निज को भिन्न मानता है उसके लिए व्याख्या थी।

पर अज्ञानी ने क्या कर लिया, वेद ने वेद का वेदन किया, लेकिन वेद, वेद का वेदन नहीं कर रहा है, वेदक कौन है? जो वेद का वेदन करा रहा है वो वेदक कौन है? वो वेद नहीं है। वेदक तुम्हारी पुरुष आत्मा है। इसलिए देह को पापी मत कहना, इन्द्रियों को पापी मत कहना, न इनको पुण्यात्मा कहना। **पाप-पुण्य किसी की सत्ता में आता है तो उसका नाम आत्मा ही है,** नहीं तो ये ज्ञानी कहेगा मैंने जो बचपन में पाप किये थे वो पर्याय भिन्न थी। बिल्कुल ठीक कह रहा है, वह पर्याय भिन्न अवश्य थी, परिणमनशील थी परन्तु परिणमनशील होने पर भी तद्आयुप्रमाण तक वही पर्याय वृद्धिमान हुई है, अभाव नहीं हुआ है। इसलिए हम क्षणिकवादी हैं।

मुमुक्षु! उस बालक को भ्रमित मत करना और तू भटक मत जाना। पर्याय का निरन्वय (संततिरहित) विनाश नहीं होता। काश! आज दर्शनशास्त्र का अध्ययन किये बिना यदि मैं भी समयसार की व्याख्या कर रहा होता तो पता नहीं कौन से मिथ्यात्व को खड़ा कर देता। माँ! दुग्ध है, जामन डालने पर दही बन गया, विलौने पर छाछ अलग हो गयी, मक्खन अलग हो गया, तपाने पर घृत अलग हो गया, मल अलग हो गया। ये सब भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ बन गईं। दही से प्राप्त छाछ को आप रस में ही नहीं ले रहे, मक्खन को कोई रस में नहीं ले रहे हो, मक्खन अलग संज्ञा दे रहे हो, रस लिया घी। एक बहते दूध में एक कठोर घी का लोंदा कहाँ छिपा था? पिण्ड। पुद्गल को समझ लेते हो तो चैतन्य को समझिए। जब ये दुग्ध दही बनने जा रहा था पर्याय उसकी बदल रही थी, निरन्वयरूप की या, सान्वय रूप की? जो दुग्ध दही बना है वो परिणमन दूध में ही हुआ है, वही बदला है, कोई अलग से वस्तु आकर नहीं बदली। समझो, बेटा! कुतर्कों में नहीं आ जाना। अपने ज्ञान में इतनी दृढ़ता होनी चाहिए। पचास सिर का क्या सौ सिर का भी खड़ा हो जाये, वो मेरे सिर को निकाल ले जाये पर मेरी श्रद्धा को नहीं निकाल पाये, पर्याय का निरन्यव विनाश नहीं है।

पंडितजी! दही बना कौन है ? दूध ही बना है। तो कोई ऐसी वस्तु अवश्य है जिसमें उत्पाद-व्यय चल रहा है। उस ध्रौव्य को क्यों छोड़ रहे हो, उस ध्रौव्य को पकड़िये, ध्रौव्य छोड़ दोगे तो उत्पाद-व्यय कराओगे किसमें? भाई! जो तू शिशु था, प्रथम कक्षा में पढ़ रहा था, आज पच्चीस वर्ष का युवा खड़ा है। जो परिणमन हुआ है वही शरीर है जो शिशु था, लेकिन वही नहीं बचा फिर भी वही है। दुग्ध में परिणमन चल रहा था, दूध की संज्ञा बदलकर के घृत हो गया। इन सबको अलग-अलग देखोगे तो पर्यायदृष्टि से भिन्न-भिन्न दिखेंगे, परन्तु पर्याय हुई किसमें है, वो गोरस वही है।

पयोव्रतो न दध्यति न पयोऽत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्वं त्रयात्मकम् ।। 60/आ.मी.।।

'तस्मात्तत्वं त्रयात्मकम्'। जिस व्यक्ति ने सीधा समयसार पढ़ लिया, उस व्यक्ति को कोई समयसार का ज्ञान नहीं हो पायेगा। वो तो यह समझता रहेगा, पर्याय भिन्न है, द्रव्य भिन्न है, गुण भिन्न है।

'आप्तमीमांसा' श्रमण परम्परा का नहीं, भारतीय परम्परा का नहीं, पूरे विश्व परम्परा का बेजोड़ ग्रन्थ है। ये समन्तभद्रस्वामी का वह ग्रन्थ है जिसमें किसी भी मिथ्यादर्शन का नाम नहीं लिया पर किसी भी मिथ्यादृष्टि को छोड़ा भी नहीं।

घटमौलि सुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोक प्रमोद माध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम्॥ 59/आ.मी.॥

माँ! अभी दही दूध की बात करो, जिसका दूध पीने का नियम है वह दही नहीं खाता। जिसका दही खाने का नियम है वो दूध नहीं पीता। जिसका गोरस का त्याग है वह कुछ भी नहीं खाता। दूध पर्याय भिन्न है, दही पर्याय भिन्न है। ज्ञानी मुस्कुराना मत, हँसना मत, गम्भीर मत होना। अरे! तू हँस रहा है। जब तुम एक वर्ष के थे, याद है क्या? माँ से पूछना, जब तुम एक वर्ष के थे तब तुम्हें निर्वस्त्र करके गोदी में सुलाती थी कि नहीं? तुझे अपनी याद नहीं, दूसरे बच्चों की तो बता सकता है। माँ से पूछना – माँ निर्वस्त्र तुम्हें गोदी में रखती थी, तेरी बहिन भी मुझे उठा लेती थी, भाभी भी उठा लेती थी, पड़ोस की माँ भी मुस्करा के उठा लेती थी। मित्र! ये बता तू पुरुष है कि नहीं, कब से है? जन्म से। आपकी माँ स्त्री है कि नहीं? देखो, अशुभ नहीं सोचना, विषय समझना, माँ स्त्री है, तू पुरुष है, जन्म से है, बालक जन्म से पुरुष ही है फिर भी ये परपुरुष नग्न रूप में माँ की गोद में रहता है तब भी पिता ये नहीं कहता तूने परपुरुष को गोद में नग्न कैसे बिठाया? जब कि परपुरुष है। वही अवस्था यदि आज तू निर्वस्त्र होकरके माँ के सामने खड़ा हो जाये तो वो भी आँख बंद करेगी, पंडितजी! ऐसा क्यों? उत्तर दीजिए, वही नहीं है क्या? यही भूल कर लेते हो कि मात्र पर्याय बदल गई। वो पर्याय किसकी बदली? उसके शरीर की मात्र ?

पंडितजी! जो आज आप यहाँ सुन रहे हो, यह व्याख्यान आपको विद्वानों के बीच में रखना है। आपकी प्रवचन शैली के राग में कहीं युवाशक्ति विकार को प्राप्त न हो जाये। इसलिए स्पष्टीकरण कीजिए। पर्याय नहीं बदली, पर्याय के साथ में परिणाम भी बदले हैं, गुण भी बदला है। मित्र! जैसी-जैसी पर्याय होती है, वैसी-वैसी आत्मा शरीरप्रमाण है। यदि पर्याय बदली है तो आत्मा कितनी बदली है? राई के समान है कि शरीरप्रमाण है आत्मा? **आत्मा राईप्रमाण नहीं, आत्मा अणुप्रमाण नहीं, आत्मा अंगुष्ठप्रमाण नहीं, आत्मा स्वदेहप्रमाण है।** इसलिए ज्ञानी! तेरा शरीर ही नहीं बदला है आत्मा भी तद्देहप्रमाण वृद्धि को प्राप्त हुई है। स्वदेह की अपेक्षा से, देहत्व की अपेक्षा से आत्मा भी बदली है, आत्मा के भाव भी बदले हैं। इनके बदलने के कारण जो माँ बच्चे को गोद में सुलाती थी वह माँ उसको निर्वस्त्र देखना पसंद नहीं करती है। परिणमन हुआ कि नहीं, किसमें हुआ है? उसी में हुआ है एक वर्ष के बालक में। यदि तू उसमें ही परिणमन नहीं मानेगा तो यह ज्ञानी क्या बोलेगा, सुनिए विश्व के अज्ञानियों की भाषा, जो जन्मा था वो मर गया, जो पढ़ने गया था वह भी नया जिया था, वह भी मर गया। अब जो खड़ा है, वह दूसरा है।

चेतन ज्ञानी! घर में गाय बाँधे हुए था, सौरभ से कहा - इसे चराकर लाओ, मैं तुमको एक हजार रुपये वेतन दूँगा। जब एक माह हो गया तो सौरभ कहता है – चेतन सेठ! वेतन दो। सेठ ने कहा – किसका वेतन, कौन-सा वेतन वो समय गया, जिसको बोला था वो गया। वह भी सोचता है ठीक है, ऐसे अज्ञानियों से बोलकर नहीं, मौन से काम चलता है। भारत की भूमि पर एक रहस्यमयी विद्या है उसका नाम है मौन। विश्व में विजयी हुआ है तो मौन से हुआ है। आप जब भी कर्म से विजयी होंगे तो मौन से होंगे। सर्वांग से बोलना सीखोगे तो मौन से सीखोगे। महावीरस्वामी से पूछो, दीक्षा लेते ही मौन और बोले तो ऐसे बोले, सर्वांग से बोले। फिर सौरभ ने क्या किया, कोई बात नहीं सेठ। दूसरे दिन सुबह वह फिर गाय ले गया। चेतन सोचता है अच्छा बुद्धु बनाया, गाय भी चर रही है और पैसा भी नहीं देना पड़ा। शाम को गाय चेतन सेठ के घर न जाकर के सौरभ के यहाँ बंध गई, शाम को आठ बज गये, वह चेतन आता है, बोलता है कि गाय घर नहीं पहुँची। सौरभ बोला - किसकी गाय, कौन सौरभ, वो क्षण गया जो गाय ले गया था, वो सौरभ दूसरा था, गाय दूसरी थी। क्या बोलते हो? अरे! वही बोलता हूँ जो आप बोलते हो, ये बुद्ध का क्षणिक है।

आचार्य समन्तभद्रस्वामी ने ऐसे रहस्यों को खोलकर रखा है। 'आप्तमीमांसा' ग्रन्थ का कोई जैन बन्धु स्वाध्याय नहीं कर पा रहा है, 'अष्टसहस्री' ग्रन्थ को नहीं समझ पा रहा है। आप विश्वास मानिए, पूरी पर्याय निकाल देगा पर जैनत्व की सत्यता को नहीं समझ पायेगा। हिंसा किसी ने की, हिंसा का फल कोई भोगेगा। ऐसा होता है क्या? पर पंडितजी ! जो व्याख्यान चल रहा है उसने कहीं-न-कहीं जैनत्व से पकड़ा तो है पर एकान्तनय से पकड़ा है। अनेकांत में पकड़ लेता तो विपरीतता न होती। तात्पर्य समझना, बेटा ! जो तुम बचपन में थे वही नहीं हो; वही होते तो वही सुकुमारता होती, दाढ़ी-मूँछ नहीं होने चाहिए थे, मन में विकार नहीं आने चाहिए थे। पहले तू नग्न होता था तो किसी भी माँ बहिन की गोद में खेल लेता था, विकार भावों में आता नहीं था। लेकिन अब एकान्त कमरे में होते हो, कोई वहाँ होता नहीं है तब भी तुझे सारी दुनियाँ दिखती है। ऐसा होता है कि नहीं? वही कैसे है? इसलिए पर्याय के दो भेद कीजिए - सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय और स्थूल ऋजूसूत्रनय। सूक्ष्मऋजुसूत्रनय एक समय की पर्याय को ग्रहण करता है और एक समय की पर्याय की दृष्टि से तुम वही नहीं हो पर स्थूल ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा से तुम वही हो आयुप्रमाणकाल तक, ठीक है। यदि ऐसा नहीं मानते, भाई ! इस पर्याय के परिणमन को तुम द्रव्य का विनाश मानते हो, तो आप घर जाओगे क्या? जहाँ से आये हो वहाँ जाओगे क्या? व्यवहार से पूछा, व्यवहार से उत्तर दीजिए। जाओगे क्या?

'तद्भावाऽव्ययं नित्यम् ॥ 5/3, त.सू. ॥

तत्त्वार्थसूत्र को आप सामान्य ग्रन्थ मत समझो, वह तार्किकन्यायायिक ग्रन्थ है। खासकरके पाँचवें अध्याय को सामान्य पढ़कर छोड़ देते हैं, जबकि पूरे तत्त्वार्थसूत्र में रहस्य है तो पाँचवें अध्याय में ही है। पूरा रसायनशास्त्र है। **'तद्भावाऽव्ययं नित्यम्'। स्मृति-प्रत्यभिज्ञान के जोड़रूप ज्ञान को**

प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। यदि आप द्रव्यपर्याय को क्षणिक नष्ट मानते हो, द्रव्य का निरन्वय विनाश मानते हो, तुच्छाभाव मानते हो तो आप घर नहीं जा पाओगे, क्योंकि जो तुम थे, वह घर नहीं बचा, न तुम बचे, जाओगे कैसे? मित्र! 'अ' कब सीखे थे? 'अ' नर्सरी में सीख लिया था। आज पच्चीस वर्ष के हो गये तो तुम वही हो क्या? यदि कहते हो कि वही नहीं है तो बताइए 'अ' कब सीखा है? ये तुम्हारा 'अ' सीखा था बता रहा है तू वही नर्सरीवाला बालक है। द्रव्यदृष्टि से पर्याय में परिणमन हुआ है, भावभूत नहीं परिणमनभूत हुआ है। पर्याय, संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन, द्रव्य, गुण की दृष्टि से भेद मानिए लेकिन अधिकरण की दृष्टि से दोनों एक हैं।

भैया! असमानजातिपर्याय के विकल्प में सम्पूर्ण पर्यायों को द्रव्य से भिन्न मत कर बैठना। इसलिए हे प्रकृति पुरुष! कर्म की प्रकृतियाँ इस आत्मा से भिन्न स्वभावी होने पर भी प्रकृति कर्म के रस का, करने रूप कर्म के रस का पान नहीं कर रही है, रस का पान पुरुष ही करता है। इसलिए वेद-वेदकभाव प्रकृति में नहीं है, पुरुष में है। जो भी पाप कर रहे हो वो प्रकृति को दोष करके मत बैठ जाना, पुरुष को ही स्वीकारना। प्रकृति को स्वीकारोगे पाप करना, प्रकृति को स्वीकारोगे पुण्य करना तो फल भी प्रकृति ही भोगेगी।

जीवो उवओगमओ, अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥ 2/द्र.सं.॥

ये नौ अधिकार प्रकृति के नहीं, पुरुष के हैं। शास्त्रों का अध्ययन भिन्न विषय है, शास्त्रों के अध्ययन का समन्वय, मेल और वस्तुव्यवस्था को व्यवस्थित करके बैठना - ये बहुत कठिन है। साधकों में कोई ज्ञान की साधना में खींच रहा है, कोई क्रियाकाण्ड की साधना में खींच रहा है, कोई ध्यान की साधना में खींच रहा है - ये सब अज्ञानी लोग हैं। कोई कान खींच रहा है, कोई नाक मरोड़ रहा है, कोई आँख फोड़ रहा है। भाई! किसी भी अंग को क्षति पहुँचाओगे तो यह तेरा ही शरीर है। कोई निश्चय को गाली देता है, कोई व्यवहार को गाली देता है। एक भी नय को तुम गाली दोगे, तुम जिनवाणी की आसादना कर रहे हो, तत्त्व का ही विघात कर रहे हो। जो तत्त्व को समझता है उसे मालूम है, बोध है कि निश्चयनय आगम नहीं है। परमार्थ की प्राप्ति का उपाय व्यवहार से ही जाना जाता है। जो-जो परमार्थ का व्याख्यान हो रहा है वह व्यवहार ही है। शब्दों को ही परमार्थ नहीं मान बैठना।

ब्रह्म अद्वैत का जो व्याख्यान है वह द्वैत ही है। तुम्हारा अद्वैत सहेतुक है कि अहेतुक है? सहेतुक है, तो अद्वैत और हेतु तो दो हो गये, द्वैत है। अब एक बात तो समझ में आ गई कि लोगों ने हाथी के पगतले दबना स्वीकार कर लिया, जैन मन्दिर में जाना स्वीकार नहीं किया। इसका हेतु क्या? जबकि वह शब्द था जौन मन्दिर। बेटा! हाथी के पगलते मर जाना श्रेष्ठ है पर जौन मन्दिर नहीं जाना। जौन मन्दिर से तात्पर्य वैश्यालय कभी नहीं जाना। शब्द क्या था, हाथी के पगतले मर जाना पर जौन मन्दिर नहीं जाना, वैश्यालय नहीं जाना। ईर्ष्या देखो, लोगों ने क्या बदल दिया, हाथी के पगतले मर जाना पर जैन मन्दिर

नहीं जाना। विराट् ईर्ष्या, उद्देश्य क्या था? भाई ! ये जैन लोग जैनाचार्य भ्रमणशील हैं। एक स्थान पर रहनेवाला कभी श्रेष्ठ ज्ञानी नहीं बन सकता।

आज कल वनस्पति की कलम लगाई जाती है, संकरण कराया जाता है। संकरण से क्या होता है? जो फसल बहुत कम आती थी वो ज्यादा आने लगी। पंडितजी ! व्यवस्था आज की नहीं है प्राचीन है। यदि आपको बलवान बेटा चाहिए तो फिर आपको पंजाब में जाकरके निवास करना पड़ेगा। कितने सारे श्रावक बाहर से आकर नागपुर रहने लगे हैं। इनकी भाषा की खिचड़ी, भावों की खिचड़ी, भोजन की खिचड़ी हुई कि नहीं? जब मैं बोलूँ, ये कहाँ का है ? नागपुर का। अच्छे से बोल, मेरा वंश तो राजस्थान का है, ये मेरी पितृभूमि नहीं है, मातृभूमि नहीं है। कोई महाराष्ट्रीयन से पूछो, कहाँ के हो? महाराष्ट्र का हूँ।

मिट्टी का फर्क देखिए, स्थूल व्यवहार की बात कर रहा हूँ। ये भी सत्य है, जैसे दो मिट्टी को मिला देने पर फसल वृद्धिमान होती है ऐसे ही विद्वत्ता प्राप्त करना है तो आपको जन्मभूमि का त्याग करके बाहर घूमना पड़ेगा। जब जन्मभूमि छोड़कर बाहर जाता है और फिर वापस जन्मभूमि आयेगा, तो तेरी पहचान अलग होती है। जितने विशेष विद्वान् आपके बुंदेलखण्ड के हुए हैं, जन्मे यहाँ हैं, विद्या वहाँ सीखी, पर विद्या का विस्तार भिन्न क्षेत्रों में किया। उद्गम स्थान पर कभी नदी विस्तार को प्राप्त नहीं होती, ये रहस्य समझिए। सागर का रूप लेगी वह उद्गम स्थान पर नहीं होगी देशान्तर होगी। **जो जीव जिस राग की शय्या पर जन्मा होता है उसी राग की शय्या पर समाधि को प्राप्त नहीं हो सकता है। उसे प्रदेशान्तर होना पड़ेगा, भावान्तर होना पड़ेगा।**

साधुओं को अपने गृह नगर में निवास करने की आगम आज्ञा नहीं है। आप विहार करते रहिए, एक ही क्षेत्र में विहार करोगे तो साधना के बीज सूख जायेंगे, क्षेत्रान्तर से क्षेत्रान्तर विहार होना चाहिए। रहस्य है, चरणानुयोग को दार्शनिकदृष्टि से समझना हो तो 'राजवार्तिक' का अध्ययन कीजिए। अकलंकस्वामी ने कैसे चरणानुयोग को दार्शनिकदृष्टि में समझाया ? इसलिए वस्तुव्यवस्था को व्यवस्थित समझिए। **द्रव्य बदलता है उसका नाम ही पर्याय है, गुण बदलता है उसका नाम ही पर्याय है।** इसलिए द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनय हैं, गुणार्थिक नाम का कोई नय नहीं है।

जिनागम में क्रमभावी, क्रमवर्ती, क्रमनियत तीन ही शब्द आये हैं, चौथा नहीं मिलेगा। तीन होने में रहस्य था, 'आत्मनि हर्ष विषादादिवत्' क्रमवर्ती ? जब हर्ष पर्याय होगी तब विषाद नहीं होगा, विषाद होगा तो हर्ष नहीं होगा। आप गद्दी पर बैठे हैं, छात्रों को समझाएँ तो मूलग्रन्थ पहले रखना, बोलना - देखो, यह ये है। सोच अनेक हो सकते हैं, पर सिद्धांत एक है। क्या हो रहा है, परिणमन हो रहा है कि नहीं, परिणमन हो रहा है क्या? नहीं समझा, द्रव्य की द्रव्यता को समझने-समझाने के लिए शब्दों का ही जाल है पर वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है। सूत्र लिखे गये, गाथाएँ लिखी गईं, संस्कृत प्राकृत टीकाएँ लिखी गईं, हिन्दी टीकाएँ हुईं, तब भी देखो कितना विराट् विषय है। पूर्व के विद्वान् ही हिन्दी व्याख्या कर गये थे,

ये ही व्याख्या वर्तमान में सूत्र लग रही है। पंडितजी ! आज आप जो बोलोगे, भविष्य में वे लोग उसे सूत्र मानके स्वीकारेंगे, इतना क्षयोपशम क्षीण हो जायेगा। इसलिए मुनिराजो ! आचार्यो ! आपके व्याख्यान में किंचित् भी विपर्यास न हो जाये, आनेवाली पीढ़ी आपको प्रमाण माननेवाली है। जब आज हम कुन्दकुन्द का नाम लेते हैं कल कोई आपका नाम लेगा, इसलिए ज्ञान में विपर्यास नहीं होना चाहिए। आज आप विद्वानों का नाम ले लेते हो, तो कल आपके छात्र पंडितजी ! आपका नाम लेंगे। एक बार भोजन-पानी में कमी आ जाये, पर बुद्धिपूर्वक मेरे ज्ञान में कमी न आने पाये। ज्ञान जितना हो उज्ज्वल हो, कम हो पर उज्ज्वल हो। एकबार समझ में न आये, अनेकबार समझने का प्रयास करें। छद्मस्थ ही तो हैं अपुन, कौन केवली हैं। कभी अपने को हीन मत स्वीकारना और कभी अपने को अहं में मत ले जाना। छोटा व्यक्ति भी प्रवचन कर रहा है उसे अच्छे से सुनना। क्या मालूम उसका जो चिंतन चल रहा हो वह तुम्हारे चिंतन का विषय बन जाये।

परस्परोपग्रहो जीवानाम्' ॥5/21, त.सू.॥

छोटे-से-छोटा व्यक्ति प्रवचन कर रहा है, तब भी अच्छे से सुनना, क्या मालूम उसका चिंतन तुम्हें चिंतन का विषय दे दे। नागपुर के लोग आचार्य विरागसागर से बहुत अच्छे से परिचित हैं। आचार्यश्री जब भी किसी गाँव में पहुँचते थे तो सबसे पहले माईक मेरे सामने लगवा देते थे। मैं छोटा-सा सत्रह साल का क्षुल्लक, प्रवचन करने बैठा देते। एक बार क्या बोले - जो प्रारंभ करता है उसे ज्यादा सोचना पड़ता है। पंडितजी ! टीकाओं का कितना विस्तार होता है, गाथा छोटी होती है पर कठिन होती है, आधार मिलता है। मैंने कहा - इतने बड़े गुरु, यह बोले करो प्रवचन, तुम कुछ भी बोलोगे मुझे तो विषय मिलता है। ये आचार्यश्री के शब्द हैं, बोले – मुझे तो विषय मिलता है। जहाँ पहुँचे, बोले क्षुल्लकजी को लगा दो माइक। देखो, गुरु कह रहे हैं विषय मिलता है और शिष्य कह रहा मुझे विषय दिया जा रहा है। दिया किसने? गुरु ने। **'परस्परोपग्रहो' जीवानाम्'।**

पंडितजी ! सत्य है **जैसा विषय होगा वैसी भाषा होगी, जैसी भाषा होगी वैसा जीव का भाव होता है।** इसलिए एकत्ववितर्क, पृथक्त्ववितर्क; शुक्लध्यान के जो विषय बनते हैं, अर्थ से अर्थसक्रांति, व्यंजनसंक्रांति; ये सब क्या है ? विलक्षणता अपूर्व-अपूर्वग्रहीत ग्राही। आपके लिए कठिन हो सकता है पर कठिन कोई वस्तु नहीं है। बहुत सारे जो विपरीत व्याख्यान थे लोक में उनका समझना बहुत आवश्यक है, अन्यथा जिनागम, परमागम, स्वसमय और परसमय में भेद क्या होगा? क्योंकि भाषा तो एक-सी नजर आती है।

चौराहे पर दो पुरुष एक साथ खड़े दिखते हैं, लेकिन जब अलग होंगे, तो भिन्न दिखेंगे-ही-दिखेंगे, मार्ग दोनों के अलग हैं। इसलिए चौराहे पर एक दिखने पर भी एकमानके बैठ मत जाना। स्टेशन पर बहुत सारी गाड़ियाँ होती हैं, एकसाथ होने पर भी एक नहीं हैं। इसी प्रकार शब्द समानाधिकरण होने पर भी अर्थ

समानाधिकरण नहीं होता है, कैसा? दुग्धवत्। अहो मुमुक्षु! दुग्ध देखा तूने गाय का, कि भैंस का, कि अकौआ का, कि ऊँटनी का ? आक का दुग्ध होता है कि नहीं? आँखें दर्द करें तो कौनसा दुग्ध रखना चाहिए, आँखें दर्द करें तो वैद्य कहते हैं कि गाय के दुग्ध का फुआ (रूई) रख लो, ठीक है। लेकिन यह मुमुक्षु बड़ा होशियार था, वैद्य ने कहा आँखें दर्द करें तो दुग्ध रख लेना, ठीक है वह गया कौन पैसे खर्च करे गाय और भैंस के दूध खरीदने के लिए, वह गया आक (अकौआ) का दूध ले आया। आक का दूध आँख पर रखेगा तो आँखें कभी खराब ही नहीं होंगी। हमेशा के लिए ठीक हो गईं, पूरी ही ठीक हो गईं अर्थात् खराब हो गईं। ज्ञानी! ऐसा कर मत लेना, दूध-दूध संज्ञा एक है, एक गाय का दूध आँखों को स्वस्थ कर रहा है, आक का दूध आँखों को फोड़ रहा है। ऐसे ही ज्ञानियो! शब्द समानाधिकरण होने पर भी आप ये पकड़िए रस क्या है, अर्थ क्या है। कहीं दूध की जगह अकौआ का दूध लेकर आ गये तो ऐसा ही तुमने शब्द-शब्द के नाम पर एकत्व मान लिया तो विपरीतता आ जायेगी, सिद्ध बननेवाला नरक में चला जायेगा। धर्म को समझो तो, धर्म है क्या ?

भवत्पर्यायभवनरूपा भावभावशक्तिः ॥ 37 ॥

जो पर्याय है उस पर्याय का होना भावभावशक्ति है। मेरा ज्ञायकभाव ज्ञानगुण है। भावशक्ति, उसका कभी अभाव नहीं होगा; स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव का अभाव नहीं होगा, यह कौन बोल रहा है? भावभावशक्ति। चिद्रूप चैतन्यपिण्ड ज्ञानघन, यह आत्मद्रव्य भावभावशक्ति से युक्त है, अपने वर्तमान पर्याय से युक्त है। वर्तमान पर्याय का ही परिणमन इसमें चल रहा है। अपने वर्तमान पर्याय से किंचित् भी हटके नहीं है। अपने वर्तमान पर्याय का पूर्ण वेदन कर रहा है। यदि वर्तमान पर्याय की अनुभूति का अभाव कर देंगे हम तो सिद्धपर्याय का भी आनंद भंग हो जायेगा, नारकी पर्याय का दुःख भंग हो जायेगा, तिर्यंच पर्याय का क्लेश भंग हो जायेगा, मनुष्य पर्याय का सुख-दुःख भंग हो जायेगा। व्यवहारदृष्टि। परमार्थदृष्टि से जो जीव अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र गुण की वर्तमान पर्याय में विराजता है, ऐसा निर्विकल्प तत्त्व में लवलीन योगी निजानंद पर्याय का वेदन कर रहा है। वर्तमान में उसका ही वेदन कर रहा है, कोई भूत की पर्याय नहीं, भविष्य की पर्याय नहीं। भीतर प्रवेश करके समझना, यदि वर्तमान की पर्याय में भूत की पर्याय विद्यमान रही, वर्तमान की पर्याय में भविष्य की पर्याय विद्यमान रही तो कौनसी पर्याय की अनुभूति लेगा? इसलिए एवंभूतनय को यहाँ ग्रहण करना। जिसकाल में, जिस अवस्था से युक्त है जीव, उस काल में वैसा ही स्वीकारना। भावनिक्षेप की दृष्टि से ग्रहण करना।

जितने भी निक्षेप की व्याख्या है, यदि हम भूत की पर्याय का वर्तमान में अनुभव करेंगे तो माना कि कोई जीव भूत में नारकी था तो उसको मनुष्य पर्याय का आनंद ही नहीं आयेगा। हे श्रमणो! हे श्रावको ! यहाँ तो आपको इतने गहरे में समझना है कि आप मात्र अपने वर्तमान की पर्याय का ही वेदन करें। आपने अपने लिए भूतपर्याय गृहस्थपर्याय का स्मरण कर लिया पंडितजी ! इस श्रमण ने रागावस्था का वेदन

किया तो हे जीव! तू वस्त्ररहित तो बैठा रहेगा पर ज्ञानी ! निर्वस्त्र की अनुभूति नहीं ले सकेगा।

भावभावशक्ति क्या बोल रही है ? वर्तमान पर्याय, भावभावशक्ति। भावभावशक्ति को सामान्य मत समझिए। भावभावशक्ति, कह रही है - जिस पर्याय की प्रत्यासत्ति है उस पर्याय की अनुभूति निहारना। युवाओ ! शिशुपर्याय का चिन्तन करोगे तो वहाँ की क्लेश की अनुभूति कर सकोगे। युवाओ ! इस युवावस्था में तुम वृद्धावस्था के बारे में सोचने लगोगे तो युवा पर्याय के ओजत्व वीर्यत्व का वेदन नहीं कर पाओगे। ज्ञानी ! वर्तमान पर्याय में वर्तमान पर्याय को निहारता है तभी जीव अपने कार्य में सफल हो पाता है। इक्कीस वर्ष का युवा अस्सी वर्ष की पर्याय के बारे में सोचने लग जाये। अभी यहाँ भावअभावशक्ति की व्याख्या नहीं चल रही, अभाव-भावशक्ति की व्याख्या नहीं चल रही, यहाँ तो भावभावशक्ति की व्याख्या चल रही है। जिस समय जैसे हो उस समय वैसा चिंतन करोगे तो आपके तद्जन्य पर्याय का वेदन होगा। गुणपर्याय का, द्रव्यव्यंजनपर्याय का, अर्थपर्याय का आपको वेदन करना है तो आपको वर्तमान की पर्याय में एवंभूतनय लगाइए और भावनिक्षेप, जिस गति में जिस अवस्था में जैसा जीव है, जिस पर्याय में जैसा जीव है, तदायु पर्याय तक।

णाम जिणा जिणणाम, ठवणजिणा पुण जिणिंद पडिमाओ।
दव्वं जिणा जिणजीवा, भावजिणा समवसरणत्था॥

नामनिक्षेप में किसी का नाम जिन। नाम क्या? जिन, पर वास्तव में वो जिन है ? वो नहीं है, नामनिक्षेप। **स्थापनानिक्षेप** - जैसे प्रतिमा में जिनेन्द्र की स्थापना की है वे ही स्थापनाजिन हैं। **द्रव्य निक्षेप,** जो जीव माना कि बारहवें गुणस्थान में विराजमान है और अंतर्मुहूर्त में केवली बननेवाला है, वह वर्तमान में द्रव्यजिन है। जिन है ? नहीं है। द्रव्यजिन, यह जीव विग्रहगति में है और जाकरके जिनेन्द्र अवस्था को प्राप्त करनेवाला है, जन्म लेगा, फिर दीक्षा लेगा फिर कैवल्य अवस्था को प्राप्त करनेवाला है जिनजीव है।

'भावजिणा समवसरणत्था' भावनिक्षेप, यथार्थ में भावजिन कौन है ? वास्तव में भावजिन, न चतुर्थ गुणस्थान में, न पंचमगुणस्थान में, न छठे में, न सातवें में, न नौवें में, न दसवें में, न ग्याहरवें में, न बारहवें में, भावजिन की जो व्याख्या होगी वो तेरहवें गुणस्थान में समवशरण में विराजमान है उनकी व्याख्या है। भावजिन है, भावजिन की पर्याय में कोई जीव द्रव्यजिन का चिन्तन करे, जिनजीव का चिन्तन करे, ज्ञानी ! भावजिन हो ही नहीं सकता।

भावजिन, जैसे कैवल्यज्ञान से युक्त अर्हंतदेव समवसरण में विराजते हैं वे ही भावजिन हैं। ऐसे ही, हे जीवो! आप निश्चयनय से, परमार्थदृष्टि से चतुर्थ गुणस्थान क्या, प्रथमगुणस्थान में भी तुम सिद्ध और भगवान् हो सकते हो। शुद्धनिश्चयनय से, द्रव्यार्थिकनय से सिद्धभगवान् हो सकते हो। निगोदिया भी सिद्धभगवान् है। लेकिन ध्यान रखना, ये भावभावशक्ति कह रही है। परन्तु क्या आप भगवान् हो? नहीं

हो। जिसमें भावभाव निक्षेप होगा वह भगवान् होगा। भावनिक्षेप कहाँ होगा? जब जैसा होगा वैसा होगा तब भावनिक्षेप से वो जीव सिद्ध बनेगा, अर्हंत बनेगा।

देशजिन, जिन, जिनवर, जिनवृषभ। स्यात् द्वितीयगुणस्थान में, स्यात् चतुर्थगुणस्थान में देशजिन संज्ञा, क्यों? इस जीव ने मिथ्यात्व को जीत लिया है। लेकिन ध्यान रखना, ये जिन संज्ञा मात्र मिथ्यात्व को जीतने के निमित्त से है न कि तेरहवेंगुणस्थानवाले जिन हैं। स्पष्ट समझना, चतुर्थ गुणस्थान से देशजिन संज्ञा प्रारंभ हो चुकी है। हे जीवो! आनंदित होओ आनंदित, जिनसंज्ञा मिल गयी है, पर जिनसंज्ञा मिथ्यात्व को जीतने की अपेक्षा से है, ये देशजिन है। चतुर्थ-पंचम तक ये देशजिनसंज्ञा है। छठे गुणस्थान से लेकरके ग्यारहवें गुणस्थान तक ये जिनसंज्ञा है। यहाँ अविरति को जीत लिया; अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान इन तीन चौकड़ियों को जिन्होंने जीत लिया है वो जिन हैं। बारहवें गुणस्थान में क्षीणमोह, जहाँ क्षीण हो गया है मोह, कषाय को जीत लिया है, परम यथाख्यात में जा रहे हैं वे जिनवर हैं। तेरहवें गुणस्थान में तीर्थंकर भगवंत सयोगकेवली, चौदहवें गुणस्थान में अयोगकेवली; ये जिनवृषभ हैं ऐसा आगम में कथन है। अथवा दूसरी विवक्षा; देशजिन छठे गुणस्थान तक, सातवें से बाहरवें तक जिन, तेरहवें में जिनवर और तीर्थंकर केवली जिनवृषभ। ये दोनों अपेक्षाएँ आचार्यों की स्वीकार करना। ये सारे भेदों को समझते हुए और भावभावशक्ति पर विचार करते हुए चिंतन करना चाहिए।

हमारी वर्तमान की पर्याय ही वर्तमान की पर्याय है। ये श्रमण तीर्थंकर के लघुनंदन हैं, पर लघुनंदन ही हो, भावजिन वृषभ नहीं हो। भावभावशक्ति-भूत की पर्याय मत देखना, भविष्य की पर्याय मत देखना, वर्तमान की पर्याय देखिए। चाहे ज्ञानगुण की पर्याय हो, चाहे दर्शनगुण की पर्याय हो, चाहे चारित्रगुण की पर्याय हो, चाहे असमानजाति मनुष्यपर्याय हो। ये असमानजाति पर्याय को असमानजाति स्वीकारते हुए भी अपने सहजस्वरूप से दूर मत हो जाना। पूरे का सार इतना समझना।

ये जो असमानजातिपर्याय है ये भाव-अभावशक्ति से युक्त है। हे जीव! जितने अच्छे से देखना है देखलो। जितने अच्छे से तुम पालना चाहो, सो पालन करलो, लेकिन इसे निहार लो इसका अभाव नियत है। जब इसका अभाव नियत है तो इसके सद्भाव में हम सत्कर्म क्यों न कर ले। इसके सद्भाव होने के साथ में वे सम्पूर्ण कर्मों का ही अभाव कर लें। इस पर्याय की सत्ता के विद्यमान होने पर इस पर्याय की भावभावशक्ति देखने पर इस पर्याय की भावभाव, वर्तमान की भावभावशक्ति में निहारते हुए हम ऐसा पुरुषार्थ करलें कि भावभावशक्ति असमानजाति का ही अभाव हो जाये। मित्र! चाहे शुद्धजीव हो, चाहे अशुद्धजीव हो; शुद्धजीव की भावभावशक्ति सिद्ध पर्याय होगी, अशुद्धजीव की भावभावशक्ति अशुद्धपर्याय होगी।

भावभावशक्ति में प्रवेश किये तो भावभावशक्ति क्या बोलती है ? जो नहीं है वह नहीं है। गहरी बात क्या है, ज्ञानी! बीज वृक्ष नहीं है, बीज वृक्ष से शक्तिमान तो है, लेकिन बीज में वृक्ष नहीं है। मति-श्रुतज्ञान

अशुद्धज्ञान, ये अशुद्धज्ञान में कैवल्य नहीं है। कभी-कभी जीव भूल क्या कर लेते हैं इन्हीं ज्ञानों में कैवल्य को मान बैठते हैं। अरे ! कैवल्य का बहुमान करना अलग विषय है लेकिन अशुद्धपर्याय में, अशुद्धगुण में शुद्धगुणपर्याय नहीं है। अभावशक्ति का चिन्तन करो। मेरे स्वचतुष्टय में पर का चतुष्टय नहीं है। **मेरे सुख में पर का सुख नहीं है, मेरे दुःख में पर का दुःख नहीं है।** अज्ञानी क्यों दुःखी हो रहा है ? मेरी कषाय में पर की कषाय नहीं है, मेरी अकषाय में पर की अकषाय नहीं है मेरी अशुभप्रवृत्ति में पर की अशुभप्रवृत्ति नहीं है।

समयसार ग्रन्थ की व्याख्या को निर्ग्रन्थों की व्याख्या कहकरके, बहुत सारी बात को आपने बाँधके रखा। ये तो ऐसा विषय चल रहा है, ये जनमानस के बीच में बोलना चाहिए। ये विषय विश्व के, राष्ट्र के मस्तिष्क में प्रवेश कर गया तो जो पागलों की संख्या बढ़ रही है, वो समाप्त हो जाये। जो दुःखियों की संख्या बढ़ रही है वो समाप्त हो जाये। जैसेकि किसी जीव को प्रदीप पर गुस्सा आ गई तो प्रदीप उसे देखकरके अपने आप में दुःखी होने लगा। ज्ञानी ! सुन, किसी जीव के काषायिकभाव को देखकरके आप सोच रहे हो कि मेरे ऊपर क्यों ऐसा कह रहा है। तत्त्वज्ञानी क्या करेगा ? वो मुस्कुरायेगा, इसके कषायअंश मेरी आत्मा में नहीं हैं। मेरी कषाय के परिणाम मेरी आत्मा में हैं।

भावभावशक्ति, परजीव के परिणाम तेरे बंध के, मोक्ष के कारण नहीं हैं। पंचपरमेष्ठी भी मेरे मोक्ष में जो साधन बन रहे हैं, उपचार कथन है। पंचपरमेष्ठी की भक्ति के परिणाम भीतर के भाव हैं, वे मोक्ष के कारण हैं, पंचपरमेष्ठी मेरे मोक्ष के कारण नहीं हैं। जो उनके प्रति मेरे भक्ति के भाव हैं निकांक्षित परिणामों से, वे ही मेरे मोक्ष के साधन हैं। समझो ज्ञानी! पर के भाव निजभावों में, पर के भावों का निज के भावों में सद्भाव नहीं है, निज के भावों का निज में सद्भाव है। डॉक्टर ! कहाँ बिलख रहा है, बेटे को कष्ट होने पर पिता बिलखने लगता है। हाय ! अब क्या होगा? उस व्यक्ति की वेदना की पर्याय मेरी साता में नहीं है। हे योगियो ! इस अभाव-अभावशक्ति पर लक्ष्य नहीं रखोगे, तो आप दिगम्बरत्व को प्राप्त होकर भी दिगम्बर नहीं हो।

भैया ! जगत् में कितने प्रकार के दुःखी प्राणी हैं। बिचारे जायेंगे तो कहाँ जायेंगे? देव-शास्त्र-गुरु के पास ही आयेंगे, अपने दुःख की बात ही बतायेंगे। तब भी आप उनके दुःख को जान लेना, उनका समाधान करना, समझा देना लेकिन ध्यान रखना उनकी दुःखपर्याय मेरी सुखपर्याय नहीं है। यानी उस जीव पर दया करना धर्म है, पर दया को करते हुए उस दुःखी जीव को देखकरके रोने लग जाना अधर्म है। देखो जो है सो है। पुनः कहूँ, हे ज्ञानी! दया करना धर्म है। पंडितजी ! आपने भूल कहाँ कर दी, सीधे दया को हिंसा कह दिया सो गड़बड़ हो गया। थोड़ा कुम्भकार बनके बोलना था आपको। वो हाथ लगाकर पीटता है, तो घड़ा बना लेता है।

धर्म का मूल दया है, करुणा है। **'धम्मो दया विसुद्धो'**। दया को हिंसा कैसे कह सकते हो? कुन्दकुन्दस्वामी ने स्वयं लिखा है 'धम्मो दया विसुद्धो' जो दया से विशुद्ध है वही धर्म है, लेकिन हे जीव! दया करना। दया करना दुःखी होना नहीं है। **जो जीव पर के दुःख को देखकर दुःखी हो, जो पर के सुख को देखकरके सुखी हो, दोनों हिंसक हैं। निज के भावों की हिंसा कर रहे हैं। निज के परिणामों को संक्लेशित कर रहे हैं।** करना क्या चाहिए था? देखो, उसके हाथ में पट्टी बंधी है, उसे लग गई है, उसे कष्ट हो रहा है, उसे तुम्हें सांत्वना देना चाहिए, संवेदना दीजिए पर सिर पकड़ कर रोने मत बैठ जाइये वो तो दुःखी था ही।

उदाहरणार्थ, मुनिराज के आहार हुए और प्रथम ग्रास पर अंतराय आ गया। आपका दानांतराय कर्म का उदय था, कर्म तो आ गया। अब श्रावक रो रहा है, आज मैं उपवास करता हूँ। अरे ! पागल उपवास करके महाराज का पेट भर जायेगा क्या? उनका उदर तो नहीं भरेगा, अपितु आपको अच्छे से आहार करके उनकी वैय्यावृत्ती करना जिनका अंतराय हो गया है। सेवा करता यहाँ तक तो ठीक था। अब तुम उनके अंतराय को देखकर के रो रहे हो। अरे भाई ! जिसके घर अंतराय आया वो भी मुस्कुराये, जिसको अंतराय आया वो भी मुस्कुराये। बोले - कैसी भाषा बोल रहे आप ? मैं ठीक कह रहा हूँ, समझो। ज्ञानी! यदि तू ईमानदार जीव है और किसी से ऋण लिए है पचास लाख का, अरे ! जिनको अरबों की सम्पत्ति हो उन्हें पचास लाख की कीमत नहीं दिखती पर सामान्य जीवों को पचास लाख की बहुत कीमत है। जिनसे एक सिक्का भी कमाना नहीं बनता है उनके लिए एक सिक्का ही बहुत है। जिसने पचास लाख का ऋण लिया है और ईमानदार आदमी है। मित्र ! बताना घर में कुमारी कन्या बैठी हो और सिर पर ऋण हो, उस व्यक्ति से पूछना, भोजन कितना अच्छा लगता है और नींद कितनी अच्छी आती है। घर में सयानी बेटी हो और ऋण हो सिर पर, उसे कहाँ नींद आती है। जिस ईमानदार पुरुष ने निर्णय कर लिया है मैं कमाकरके ऋण चुकाऊँगा, बेटी की शादी करूँगा। हे जीव! स्वाध्याय करते-करते सुनते-सुनते यदि आपको नींद आती है, णमोकार की माला फेरते-फेरते नींद आती है इसका मतलब क्या हुआ? पंडितजी ! अपने मित्र से पूछना, उन दिनों को याद करो जब तुम्हारे जीवन में संकट आये हों कभी, ऋण रखा हो सिर पर, बेटी घर में सयानी बैठी हो उस समय तुमको नींद नहीं आती। यानी बेटी के विवाह की चिन्ता इतनी है कि तुम्हें नींद नहीं आती। वैसी चिंता तुम्हें मुक्तिवधू को वरने की नहीं है इसलिए माला फेरने में, स्वाध्याय आदि धार्मिक क्रियाओं में नींद आती है।

जिस दिन आपको कुमारी कन्या की शादी की चिंता आ जायेगी उस दिन किसी भी क्रिया में – जप में, तप में, स्वाध्याय में नींद नहीं आयेगी। जिनको नींद आ रही है वे सब चिंताविहीन लोग हैं। 'जो है सो है'। वो चिंता नहीं है जैसी चिंता पिता को अपनी बेटी की होती है। ईमानदार पुरुष के सिर पर ऋण रखा है इसलिए नींद नहीं आ रही है। भाई ! कमा के देना है वैसी चिंता नहीं है इसलिए सामायिक में सो रहे हो।

जिस दिन तनाव हो उस दिन सो के दिखाओ। सामायिक छोड़िए रात्रि में नहीं सो पाते हो। अब 'जो है सो है' स्वीकारिये।

जैसे ईमानदार पुरुष सिर पर ऋण रखने से दुःखी होता है ऐसे ही तत्त्वज्ञज्ञानी जीव कर्मबंध की प्रक्रिया को देखकर सोचता है कि ये कर्म की निर्जरा कैसे हो ? पर वह पुरुष धन कमाकर ऋण को वापिस करने जाता है तो पंडितजी ! यथार्थ बोलिए - वह मुस्कुरायेगा कि नहीं? मुस्करायेगा। जिसका ऋण उतर जाये, बेटी की शादी हो जाये उसे हलकापन महसूस होगा कि नहीं होगा, आनंदित होगा कि नहीं? ऐसे ही हे योगीश्वर! अंतराय आ गया है, तो जैसे ऋण से मुक्त होने पर वह ऋणी खुश होता है, ऐसे ही सम्यग्ज्ञानी जीव कर्म के उदय आने पर प्रसन्न होता है, चलो एक कर्म से मुक्त हो गया। खुश होना चाहिए, न कि चेहरा लटकाकर घूमना चाहिए। जैसे ही बाल दिखा, हो गया अंतराय। अरे! ओह! नहीं करना, बहुत अच्छा हुआ आज कम-से-कम सावधानीपूर्वक कर्म आया है, मैं अच्छे से सहन करूँगा कोई कष्ट भी आ जाये तो भी।

अरे ! विपत्तिकाल में कोई धैर्य नहीं था, तब कोई विपत्ति आ गई तो और संक्लेशता बढ़ेगी। मित्र ! धैर्य है, युवावस्था है, पौरुष है, जितने कर्मों को आना हो सबसे बोलना अभी आ जाओ, मैं धैर्य से देखूँगा। देखो, जानो जाने दो। यहाँ क्या कह रहे हैं; **अभाव-अभावशक्ति।** मुमुक्षु ! जो क्लेश को प्राप्त जीव था, दुःखी जीव था उसके ऊपर संकट था, उसे देखकरके तुम दुःखी मत हो जाना, यदि दुःखी हो तो संक्लेशता बढ़ेगी। वस्तुस्वभाव समझो।

द्रव्यहिंसा को बहुत सुना है, अब भावहिंसा को सुनो। चाहे प्राणी के वध हों, न हों, तुम्हारे परिणामों में संक्लेशता चल रही है, मित्र! तेरे अन्दर रोष आ रहा है तब तो हिंसा है ही। प्रीति भी उमड़ रही है तो भी हिंसा है। किसी के प्रति प्रेम उमड़ रहा है वो भी हिंसा ही है। बोले – क्यों? चाहे राग हो तो संसार है, चाहे द्वेष हो तो संसार है। ज्ञानी! तूने अपनी तो हिंसा की है।

तुम द्वेष को कषाय मानते हो, राग को कषाय नहीं मानते। ज्ञानी! द्वेष तो कषाय है ही, राग भी कषाय है **'रत्तो बंधदि कम्मं'**। ज्ञानियो ! रतिभाव भी हिंसकभाव है और अरतिभाव भी हिंसकभाव है। अब तो जीव करुणाशील होकर के रोने लगा। भैया ! तुमको कष्ट क्यों हो गया ? अरे भाई ! वो धैर्य से सहनकर रहा था, आपके रोने से उसको भी अपना दुःख महसूस होने लगा। ये आपने क्या किया? आपका धर्म क्या था? दुःखी प्राणी को देखकरके उसको वस्तुस्वभाव समझाते, कहते गहरे में जाइए।

भाई! असमानजातिपर्याय नोकर्म है, असमानजाति कर्मसापेक्ष है। भाई! एक क्षण को तो अपने कर्मातीतदशा को निहार ले। जैसेकि अष्टधातु की प्रतिमा एकमेक दिख रही है फिर भी प्रत्येक धातु स्वतंत्र है। ऐसे ही सप्तधातु के मध्य में मेरी भगवानात्मा विराजती है। सप्तधातु के बीच होने पर भी मेरी आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है। वो सप्तधातुमय नहीं होती है, इस अपेक्षा से शुद्ध है। व्याप्य-व्यापकभाव नहीं है।

कैसा व्याप्य-व्यापक? आत्मभूत व्याप्य-व्यापक भाव नहीं है, अनात्मभूत व्याप्य-व्यापक भाव है, किसमें? आत्मा और कर्म में। आत्मभूत व्याप्य-व्यापक भाव नहीं है, इसलिए आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है। निश्चय-व्यवहार पक्ष दोनों समझो। मैं वर्तमान में भी शुद्ध हूँ। किस अपेक्षा से? जैसे नाली में पड़ा सोना। सोना कितना भी नाली में पड़ा रहे पर सोना कीचड़मय नहीं होता है, ऐसे ही मेरी आत्मा कर्मों की नाली में पड़ी होने पर भी कर्ममय नहीं होती है, इसदृष्टि से शुद्ध है। कीचड़ लगी है, इसलिए अशुद्ध है। यही निश्चय है, व्यवहार है।

मुमुक्षु ! सभी दुःखी प्राणियों के बीच में रहकरके, सभी सुखी प्राणियों के बीच में रहकरके, आप हर्ष-विषाद को प्राप्त न हों। जैसेकि काँटे-काँच के बीच में आप पैर रख देते हो, न काँटा चुभ पाता है, न काँच चुभ पाता है, क्यों? इतनी सावधानी से रखते हो। इतनी शीत में लोग ठिठुर रहे हैं, फिर भी आपको सर्दी नहीं लगती है, क्यों? इतना अच्छा कोट पहनकर आते हो, उसमें शीत प्रवेश नहीं कर पा रही है। जैसे कोट के अंदर शीत प्रवेश नहीं कर पा रही है, उष्णता प्रवेश नहीं कर पा रही है, बारिश प्रवेश नहीं कर पा रही है, कवच है आपके पास। ऐसेही हे मुनीश्वर! हे योगीश्वर! हे भदन्त! हे दन्ति! तुम जगत् के दुःखी प्राणियों के बीच में हो, तुम जगत् के सुखी प्राणियों के बीच भी हो। तब भी अपने आप में अभाव-अभावशक्ति को देखिए। इनके इन्द्रिय-सुख का मेरे में पूर्ण अभाव है, इनके इन्द्रिय दुःख का मेरे में पूर्ण अभाव है, मैं मात्र जाननहारा हूँ, देखनहारा हूँ। मैं इनका करने-हरनेवाला नहीं हूँ।

भैया! आप एक गाँव में रहने पर कितने विकल्प में रहते हो, इन साधुओं को तो देश के अलग-अलग नगर में भ्रमण करना पड़ता है। तुम्हारे कितने रिश्तेदार होंगे? पूछो, इन नागपुर के श्रावकों से-प्रतिदिन कितने मेहमान आ रहे हैं आपके यहाँ ? छतरपुर में संघ था, मेला लगा था आपके यहाँ, श्रावकों की भीड़ लगी थी। उनमें कितने सुखी आते थे और कितने दुःखी आते थे ? महाराज! बहुत क्लेश है घर में, महाराज! इन सब बातों को जानलो सुनलो। कहीं तुम भीतर प्रवेश कर गये तो तुम्हारा घर छोड़के मुनि बनने का लाभ क्या मिला? ये अभाव-अभावशक्ति कवच है। उन पर दया करो, करुणा करो, सदुपदेश दो, लेकिन उपेक्षा मत करो।

ये तो आपने परसापेक्ष व्याख्या की। माना कि स्वयं पर कष्ट आ जाये तो फिर क्या करोगे? मानाकि मेरे ही शरीर में ऐसा असाध्य रोग हो गया, अब मैं क्या करूँगा? तब भी अभाव-अभावशक्ति को विराजमान कीजिए। मेरे चिद्रूप में इस सड़े-गले पुद्गल का अभावअभाव ही है। मेरे चिद्स्वरूप में मैं चिद्चिद्मात्र हूँ। मेरे चैतन्यस्वरूप में मेरे शरीर का अभावअभाव ही है, क्योंकि यह शरीर तो स्पर्श-रस-गंध-वर्णमयी है। मैं ज्ञानदर्शनमयी हूँ। यह जड़धातु है, मैं चैतन्यधातु हूँ। मैं मात्र चैतन्यधातु हूँ सापेक्षअपेक्षा, निजसापेक्ष व्याख्या। मेरे में स्यात् रागपर्याय का अभाव है, मेरे में द्वेषपर्याय का अभाव है, मेरे में क्लेशपर्याय

का अभाव है, मेरे में गुणस्थान का अभाव है, मेरे में मार्गणास्थान का अभाव है, मेरे में जीवसमास का अभाव है, मैं इन सब से भिन्न मैं 'मैं' ही हूँ, भावभाव शक्ति। मेरे में ये नहीं है, भाव - अभावशक्ति।

जब मेरी समाधि का समय आये तो मुझे दुनियाँ की बातें मत सुनाना, न यह कहना मुझे पहचाना क्या? ये पागलों की भाषा मत बोलना, बोल सको तो समयसार में वर्णित इन सैंतालीस शक्तियों का पाठ सुना देना। जितनी बार णमोकार का पाठ सुनाओ उतनी बार शक्तियों को भी सुनाना। **णमोकार का पाठ परमात्मा की याद दिलायेगा, पर सैंतालीस शक्तियों का पाठ निजचिद्रूप आत्मशक्ति की याद दिलायेगा।**

ये कथन चल रहा है इसलिए सत्य मत मानना, ये सत्य है इसलिए कथन है। अवस्तु की व्याख्या नहीं होती, व्याख्या वस्तु की ही होती है। जैनदर्शन अभावप्रमाण नहीं मानता। सुनो भाई ! सांख्य का सत्कार्यकारित्वभाव, शब्द पर ध्यान दो। पंडित टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में निश्चयाभासी, व्यवहाराभासी, उभयाभासी की व्याख्या की है।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने कहा -

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्त्येऽयुक्तिर्नाऽवाच्यमिति युज्यते॥ 13/आ.मी.॥

नित्यएकान्त, अनित्यएकान्त, उभयएकान्त; निश्चयएकान्त, व्यवहारएकान्त, उभयएकान्त, **'ततोऽन्यत्त तदाभासम्'** – ये हमारे मूल आचार्यों ने कहा है। मेरा लक्ष्य है, पंडितजी ! एक बात बताऊँ, आप सुनने की भावना रखते हो, तो मेरी भी सुनाने की भावना होती है। मैं चाहता हूँ जो है सब निकाल दो। जब मैं पंडित टोडरमल के स्थान पर आचार्य समन्तभद्रस्वामी का नाम लेता हूँ तो कुछ अलग भाव आता है। कुन्दकुन्द भगवन्त बोलता हूँ तो कुछ अलग भाव आता है। क्यों? गुरु के द्वारा उपदिष्ट विषय पर श्रद्धान यदि बनता है तो सम्यक् का कारण बनता है। इसलिए व्याख्यान के काल में किसी भी विद्वान् ने कहा हो, आप वहाँ खोजना किस ग्रन्थ से कहा गया है। ग्रन्थ का नाम लेना और उन आचार्य का नाम लेना जिससे लोगों की देव-शास्त्र-गुरु के प्रति आस्था की वृद्धि हो। अभी चार दिन पहले बाहर की श्राविका नागपुर आई, बोली - महाराज ! मैंने इतने ग्रन्थों के नाम चैनल पर सुन-सुनकर नोट किये हैं। आपके प्रवचन सुन-सुन कर इतने ग्रन्थों के नाम याद हो गये। मैंने कहा - बहुत अच्छा हुआ। मेरा ग्रन्थों का नाम लेना सार्थक हो गया। जिन जीवों को निर्ग्रन्थ और ग्रन्थों के नाम याद न हों उन्हें याद हो तो जायें। **'गोम्मटसारजीवकाण्ड'** में आचार्य नेमिचन्द्रस्वामी ने स्पष्ट कहा है - आगम जो है, गुरु के उपदेश से किया गया कथन प्रमादवश तुमने विपरीत भी सुन लिया हो, तब भी तुम्हारा सम्यक्त्व विद्यमान है, क्यों? **'अजाणमाणो गुरुणियोगा'**

अपना धन दूसरे के घर रखकर आ जाओ, जबकि आवश्यकता यहाँ पर है। अब तुम कह रहे हो – उनके घर रखा है हमारा पैसा। किसी ने आपसे प्रश्न किया, हाँ-हाँ, मैं शास्त्र खोलकर लाता हूँ। **कण्ठ की विद्या, अण्टी का दाम, जब पड़े काम तब खोल।** इसलिए ग्रन्थों को कण्ठस्थ करो। भले एक ग्रन्थ दो वर्ष में क्या पाँच वर्ष में याद करो, लेकिन याद करो। स्मरण किया विस्मृत भी हो गया, विनयपूर्वक किया गया स्वाध्याय प्रमादवश भूल भी जाये तब भी भगवान् वट्टकेरस्वामी ने मूलाचार ग्रन्थ में लिखा है – वो कैवल्य का कारण बनेगा। आगम का अध्ययन विनयपूर्वक, कालाचार, द्रव्यशुद्धि, क्षेत्रशुद्धि, कायशुद्धि, भावशुद्धि आदि जो आठ अंगों से युक्त होकरके उसका पारायण करोगे उसका विस्मरण होने पर भी तुमको भगवान् केवली बनायेगा। जो जीव इन विनय का ध्यान रखकर नहीं पढ़ेगा वह विनोद का पात्र ही बनेगा। ये मूलाचार और धवला पुस्तक नौ से बोल रहा हूँ। इसलिए पान-इलायची दबाकरके प्रवचन करने नहीं बैठना।

ध्यान करने के अनेक आसन हैं, स्वाध्याय का मात्र सुखासन-पद्मासन। चाहे अब पाटा गड़े या पैर टूट जाये पर आसन को बदलना नहीं। अर्हंत की देशना है पैर लटकाकर, कुर्सी पर बैठकर कभी प्रवचन नहीं करना। कभी पैर लटकाकर जैसे शिक्षक लोग बैठते हैं, ऐसे पंडितजी! तत्त्व की व्याख्या नहीं करना। आपसे ही पढ़ेंगे, सीखेंगे, व्यवस्थित गद्दी जैसी होती है वैसी गद्दी पर बैठकरके फिर उपदेश करो। कोई उपन्यास है क्या? कोई तोता-मैना की कहानी है क्या?

'वीर हिमाचलतें निकसी, गुरु गौतम के मुखकुण्ड ढरी है।' ज्ञानी! ये वीर हिमाचल से निकली वाग्गंगा है, गुरु गौतम के कुण्ड में आई है, वह तुम्हारे पास आ रही है, इसे कितने विनय से झेलना है। वे दिन कहाँ चले गये जब बढ़िया लालपट्टी होती थी और लोग सिर पर जिनवाणी रखकर लाते थे। टोपियाँ पहने रहते थे और बोलते थे – सावधान। अरे! कोई बाहर का सप्तव्यसनी नेता आ जाये तो तुम दौड़ते हो और तीन लोक के नाथ की वाणी जिनवाणी आये तो तुम्हें खड़े हो ही जाना चाहिए, जितना बहुमान करोगे उतना कम है। रागियों का बहुमान करने से कुछ नहीं मिलेगा; मात्र मिथ्यात्व, राग मिलेगा और जिनवाणी का बहुमान करोगे तो मोक्षमार्ग खुलेगा।

सत्कार्यवाद का खण्डन कैसे हुआ?, आविर्भाव तिरोभाव यह किसका सिद्धांत है ? सांख्य का। सत्कार्यवाद यानी मिट्टी में घट पहले से ही था, कुम्भकार ने घट को निकाल लिया है। निकाल लिया है कि निर्मित किया है? पंडितजी कह रहे आया है, मैं कह रहा हूँ बनाया है। पंडितजी आप जैनत्व की दृष्टि से बोलो, यह निश्चय-व्यवहार छोड़ो, अभी जैनत्व पकड़िए। अभी निश्चय-व्यवहार की व्याख्या नहीं कर रहा हूँ। निश्चय की भाषा को गौण कीजिए, अभी आप तो जैनत्व से बोलो। कहीं निश्चय की भाषा के राग में दूसरी जगह बोल पड़े तो जैनत्व से शून्य हो जाओगे, यही तो चल रहा है; अभाव-अभावशक्ति।

मैं आपको कई पक्षों से व्याख्या कर रहा हूँ, दर्शन से, न्याय से, सिद्धांत से, अध्यात्म से। **अभाव-अभावशक्ति क्या बोल रही है। हे जीव! वर्तमान में जगत् की भूत-भावीपर्याय का अभाव है।** मिट्टी के लोंदे में घड़े का प्राग्भाव है कि नहीं? ज्ञानी! मिट्टी के लोंदे में घड़े का प्राग्भाव नहीं मानेगा, **'कार्यद्रव्य मनादि स्यात्'** मिट्टी के लोंदे में से! ये कहे निकाल लिया है तो ये जीव जैनदर्शन से शून्य। तीनसौ मतों में एक सांख्य मत है वह सत्कार्यवादी है। आचार्य भगवन् प्रभाचन्द्रस्वामी ने 'प्रमेयकमलमार्तण्ड ग्रन्थ' में, 'न्यायकुमुदचन्द्र ग्रन्थ' में सत्कार्यवाद का विशाल खण्डन किया है। न्यायों की इतनी कठिन भाषा है, उसकी हिन्दी भी तुम नहीं समझ पाओगे। मैं तो अपने से ज्यादा पुण्यात्मा आपको मानता हूँ। आप विश्वास मानो पंडितजी! क्यों? इसलिए पुण्यात्मा हो मुझे पच्चीस वर्ष हो गये समझते-समझते, तुम्हें समझा-समझाया मिल रहा है, इसलिए पुण्यात्मा हो।

न्याय की इतनी जटिल भाषा है। ये ललक कहाँ से लगी? जब आचार्यश्री शाहगढ़ से डेरा पहाड़ी आये थे। उन्होंने मुझे काम दे दिया था। गोपालदास वरैया की जैनसिद्धांत प्रवेशिका है और जैनसिद्धांत प्रवेशिका का पहला अध्याय पूरा न्याय का है। आचार्य महाराज बोले - विशुद्धसागर! इसमें जितना न्याय है उस सबको मूल ग्रन्थों से खोजिए। जब मूल ग्रन्थों से खोजने को कहा तो मुझे बड़े-बड़े ग्रन्थ पढ़ने को मिले, वहाँ से लग गई ललक।

आपको सफल होना है तो जीवन में धुन को अपना मित्र बनालो। उत्साहशक्ति, यदि उत्साहशक्ति जीवन्त है तो अस्सी साल का वृद्ध युवा बनके जीयेगा और जिसकी उत्साहशक्ति भंग हो गई हो ऐसा एक्कीस वर्ष का युवा भी नब्बे वर्ष का युवा बनके बैठेगा। भाई! क्या कमर टेढ़ी करके बैठा है, सीधे बैठ। उत्साहशक्ति। मिट्टी में घट कुम्भकार ने निमित्त-नैमित्तिक दृष्टि से बनाया है कि निकाला है? बनाया है। व्यवहार से यदि बनाया नहीं मानूँगा तो मानूँगा क्या? दोष आ रहा है। सत्कार्यवादी यानी कार्य पहले से ही था। कार्य पहले से था तो कार्यभाव का अभाव हो गया। कार्यअनादिस्यात्, कार्य अनादि हो जाता है तो मित्र! तुम्हारी मनुष्यगति भी कार्य अनादि स्यात्। पुण्य-पाप की व्याख्या करना व्यर्थ हो जायेगा। सिद्धों की सिद्धपर्याय अनादि स्यात्, संसारी की संसार पर्याय अनादि स्यात्, बंध-मोक्ष का अभाव।

कार्यद्रव्यमनादि स्यात्प्रागभावस्य निह्नवे।
प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां ब्रजेत्॥10/आ.मी.॥

प्रध्वंसाभाव नहीं मानोगे तो अनंतता को प्राप्त होता है। फिर ये पंडितजी पंडितजी ही रहेगा, ये मनुष्यता को छोड़ेगा नहीं। यदि प्रध्वंसाभाव का अभाव करेगा, द्रव्य अनंतता को प्राप्त हो जायेगा, इसलिए प्रध्वंसाभाव का भी अभाव नहीं है। प्रध्वंसाभाव भी है। आपने चार अभावों को पढ़ा। **एक पर्याय का दूसरी पर्याय में अभाव है, उसका नाम अन्योन्याभाव।** अन्योन्याभाव क्या बोल रहा है - अभाव-अभावशक्ति। मेरी पर्याय में पर की पर्याय का अभाव है, इतना ही नहीं मेरी वर्तमान की पर्याय

में भूत की पर्याय का अभाव है। मेरी भूत की पर्याय का, वर्तमान की पर्याय में अभाव है; अन्योन्याभाव। लेकिन ज्ञानी! **अत्यंताभाव; द्रव्य का द्रव्य में अभाव।** अन्योन्याभाव कह रहा है मिट्टी के घट में मिट्टी के सकोरे का अभाव।

सम्यग्दृष्टि चाय पी नहीं सकता है, अब तुम जानो तुम्हारा काम जाने, अपना काम है कहकर छोड़ देना। पुनः कहता हूँ – पंडितजी ! **सम्यग्दृष्टि चाय पी नहीं सकता, क्योंकि सम्यग्दृष्टि नशीले पदार्थ खा नहीं सकता, पी नहीं सकता है। जो नशीली सामग्री प्रयोग करता है वह सम्यग्दृष्टि हो नहीं सकता।** उकाली पिओ, काली मिर्चवाली देशी; नहीं तो पंचमकाल के मनुष्य हैं बीड़ी पीता था उसे छोड़कर सिगरेट पीने लगा। कुछ अज्ञानी ज्ञानी हैं, स्टैण्डर्ड बढ़ गया चाय नहीं पीता हूँ, कॉफी पीता हूँ। वो भी नशीला ही द्रव्य है। सम्यग्दृष्टिजीव नशीली सामग्री का प्रयोग करता ही नहीं है।

घट-सकोरा दोनों मिट्टी के पात्र हैं, इन दोनों में अन्योन्याभाव है। एक में दूसरे की पर्याय का अभाव है, लेकिन ये मिटकरके कभी एक हो सकते हैं। **अत्यंताभाव जो है, एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में जो अभाव है वह अत्यंताभाव है।** मैं चैतन्य, चैतन्य ही रहूँगा अचेतन नहीं हो सकता और चेतन्य अचेतन नहीं होगा, अचेतन्य चेतन्य नहीं होगा। भिन्न दो द्रव्य कभी अभिन्न नहीं होंगे। वैरागी अज्ञानी जीव हैं जो कहते हैं - मेरे प्रभु की आत्मा और मेरी आत्मा एक ही है। मेरे और गुरु के शरीर दो दिखते हैं, पर आत्मा एक ही है। हे मिथ्यादृष्टि! तूने दोनों एक कर दिये, अत्यंताभाव का अभाव कर दिया। इसलिए एक आत्मा का दूसरी आत्मा में अन्योन्याभाव नहीं, अत्यंताभाव है।

मेरी आत्मा, मेरे गुरु की आत्मा, मेरे प्रभु की आत्मा एक नहीं है, तीनों अलग-अलग हैं, भिन्न हैं, द्रव्यान्तर है। यही कारण है कि हम ईश्वर में मिलना पसंद नहीं करते, हम ईश्वर बनना पसंद करते हैं। मैं ईश्वर में क्यों मिलूँ, अपनी सत्ता का नाश क्यों करूँ? पंडितजी ! वीर होकर बोलो, कौन तुम गीदड़ की संतान हो? सिंहनाद करो। क्या तत्त्व को धीरे-धीरे बोलते हो, अच्छे से बोलो। कभी जिनवाणी कहने में चूक मत करना अन्यथा निगोद में चले जाओगे, नरक भी नहीं मिलेगा। जो जीव अनुवीचि भाषण नहीं बोलता वह ज्ञानावरणीयकर्म के तीव्रबंध को प्राप्त होता है और दर्शनमोहनीय को भी प्राप्त होता है।

तत्प्रदोषनिह्नव-मात्सर्यान्तारायासादनोपघाता ज्ञानदर्शना वरणयोः ।।6/10 त.सू. ।।

अभाव-अभावशक्ति; मिट्टी के पिण्ड में घटपर्याय का अभाव ही है जैसेकि संसारपर्याय में सिद्धपर्याय का अभाव ही है। प्रागभाव है तभी पुरुषार्थ है और पूर्ण अभाव है। ज्ञानी! शक्ति का अभाव नहीं है, व्यक्ति का पूर्ण अभाव है। अरे भाई ! जो गणिताचार्य है वह गणिताचार्य है, वह विज्ञानाचार्य नहीं है इसलिए स्यात् ज्ञानी, स्यात् अज्ञानी, ठीक है। स्यात्वादियों के आगे किसी का एकान्त चलता ही नहीं है।

स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति ।।प.मु.सू.।।

अभावशक्ति कह रही है हमारा परचतुष्टय में अभाव ही है। हमारी जो पर्याय नहीं है उसका अभाव ही है। उस अभाव को भी स्वीकारिये, कितना रहस्य है। कोई व्यक्ति इन सैंतालीस शक्तियों को सामान्य रूप से समझे तो वह यही समझेगा कि आत्मा की सैंतालीस शक्ति की व्याख्या चल रही है, सामान्य। लेकिन आत्मा की जो सैंतालीस शक्तियों की व्याख्या चल रही है उसमें बड़ा गूढ़ रहस्य है, इसलिए अधिकार का नाम समझते ही समझ जाना चाहिए, स्याद्वाद अधिकार।

अभवत्पर्यायाऽभवनरूपाऽभावाभावशक्तिः ॥ 38 ॥

जो पर्याय नहीं है वो पर्याय नहीं, ऐसी अभाव-अभावशक्ति। जहाँ घटित करना चाहो वहाँ घटित कर लीजिए। माँ ! लोई आटे की, लोई में पूड़ी पर्याय है, लोई में पराठा पर्याय है, बाटी पर्याय है, लोई में कोई पर्याय अन्य नहीं है। अभाव-अभावशक्ति कह रही है, मात्र लोई पर्याय। अब तो अपने पुरुषार्थ से मस्तिष्क में ज्ञान का पुरुषार्थ, हाथ में बेलन आदि योग का, काययोग का पुरुषार्थ चल रहा है तब तेरे अन्दर जो भाव प्रगट है तेरे भीतर वह पर्याय प्रगट कर लेगा। इधर बेलन की क्रियावतीशक्ति, उधर लोई के विस्तार होने की शक्ति, इधर जीव के अन्दर तद्रूप परिणत कराने की सामर्थ्य। कहीं ऐसा न हो जाये कि हमारे निश्चय की भाषा में लोकव्यवस्था में तुम्हें अज्ञानी कहने लग जायें।

तदेतन्मूलहेतोःस्यात्कारणं सहकारकम्।
यद् बाह्यं देशकालादि तपश्च बहिरङ्गकम् ॥15/स्व.सं.॥

मूल हेतु उपादान - आटा लोई, **'तदेतन्मूल हेतोः स्यात्'** मूल हेतु उपादान हेतु और 'कारणम् सहकारकम्' सहकारी कितने ? रसोईया, बेलन, चौकी, अग्नि, पानी, चूल्हा, तवा, आकाश - ये सहकारी कारण हैं। सहकारी कारण और कार्यकारी कारण; कार्यकारी कारण तो मात्र गेहूँ का आटा और सहकारी सब सामग्री। मुमुक्षु ! कार्यकारी मात्र मेरी भगवती आत्मा, सहकारी पिच्छी-कमंडलु, दिगम्बर भेष, भारत देश, कर्मभूमि, जाग्रत पर्याय, पंचेन्द्रिय - ये सब सहकारी। कार्यकारी कौन? मेरी निज भगवती आत्मा। अभावाभावशक्ति।

कार्यकानुगतक्रियानिष्क्रान्तभवनमात्रमयी भावशक्तिः ॥ 39 ॥

एकभावशक्ति पहले आई थी वहाँ पदार्थ की सत्ता की व्याख्या थी, यहाँ पर क्रियाकारक का अभाव है। भावशक्ति कैसा? कारक-कर्म अनुगत जो क्रिया है वह निकल चुकी ऐसा होना मात्र जिसमें है, होना मात्र भावशक्ति। वस्तु का होना मात्र भावशक्ति। मैं परकारक कर्म से शून्य हूँ। मेरे कोई कारक नहीं है, मेरा कोई कर्म नहीं है, मैं परकर्मातीत हूँ, मैं परकर्ताशून्य हूँ, मैं अहेतुक हूँ। द्रव्य अहेतुक ही होता है। मैं तो अजन्मा हूँ, जो जन्म लिया है, वह प्रवेश अपेक्षा है। पुद्गल-कर्मपिण्ड-नोकर्म की अपेक्षा गर्भधारण की अपेक्षा जन्म है, पर मेरी ध्रुवात्मा तो अजन्मा ही है, अकर्ता ही है, अकर्म ही है, मैं किसी से उत्पन्न नहीं कराया गया, मैं किसी से उत्पन्न नहीं किया; इसलिए मैं अकर्म

हूँ, मैं तो अकर्ता हूँ - भावशक्ति। कर्ता, कर्म इन कारकों से अनुगत क्रियासहित है मात्र भावशक्ति। एक क्षण पहले क्या बोले - मैं कारक-कर्ता से शून्य हूँ इसलिए भावशक्ति।

कारकानुगतभवत्तारूपभावमयी क्रियाशक्तिः ।। 40 ।।

कर्ता-कर्म कारक से युक्त होते हुए परिणाममयी क्रियाशक्ति, मैं स्वयं में ही स्वयं का कर्ता हूँ, भेदकारक, अभेदकारक। परमशुद्ध निश्चयनय की दृष्टि से अभेदकारक की दृष्टि से मैं कर्ता कर्म से शून्य हूँ। भेदकारक की दृष्टि से मैं कर्ता कर्म से युक्त हूँ। मैंने मुझको, मेरे द्वारा, मेरे लिए, मेरे से यदि भिन्न होकर, मेरे से रागादिभाव से भिन्न होकर के मैंने अपने में ही अपने को अनुभवन किया; भिन्नकारक, अभिन्न कारक। मैंने मुझको, मेरे द्वारा, मेरे लिए, मेरे से, मेरे में जो जाना वही मैं ज्ञायकस्वभावी हूँ।

स्वः स्वं स्वेन स्थितं स्वस्मै, स्वस्मात्स्वस्या विनश्वरम्।
स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत्, स्वोत्थ मानंदामृतं पदम् ।। 24/स्व. सं. ।।

ये अभेदकारक स्वरूप-संबोधन से और भेदकारक कुम्भकार ने मिट्टी को, चके के द्वारा पानी भरने के लिए, अपने हाथों से अपने मकान में घट तैयार किया, भेदकारक। कौन सत्य है ? बोलो न, स्यात् दोनों सत्य हैं। भेददृष्टि से भेदकारक, अभेददृष्टि से अभेदकारक, ये षट्कारक हैं। सम्बंधकारक को अध्यात्म स्वीकार नहीं करता, संबंध और सम्बोधन इस प्रकार समझना।

अनंतशक्यिों का पिण्ड, ये आत्मद्रव्य। इन सैंतालीस शक्तियों में एक-एक शक्ति में दर्शनपक्ष, सिद्धांतपक्ष, अध्यात्मपक्ष - ये तीनों पक्ष विद्यमान हैं। जहाँ एकमात्र ईश्वर है वही परमात्मा है, शेष मात्र भक्त हैं। ये दृष्टि है वहाँ आचार्य महाराज कह रहे हैं क्रियाशक्ति, आत्मा में क्रियाशक्ति है और क्रियाशक्ति के माध्यम से ये जीव कारक के अनुसार जैसा कारक है जैसा कारक का भाव अभेदकारक और कारक में मैं ही कर्ता हूँ। मेरे सिद्धत्व का कर्ता जगत् में कोई अन्य पुरुष नहीं है। **मेरे परमात्मत्व के प्रगटीकरण का कर्ता अन्य कोई पुरुष नहीं, परमात्मा नहीं। परमात्मा की आराधना अशुभोपयोग से बचने के लिए है। परमात्मा की आराधना विषयकषाय से बचने के लिए है। परमात्मा की आराधना परम्परा से परमात्मा की प्राप्ति का साधन मात्र है। परमात्मा पद की प्राप्ति परमात्मा के आश्रय से नहीं होगी। परमात्मा पद की प्राप्ति का मार्ग, परमात्मा का आश्रय लेना अवश्य है, लेकिन परमात्मा पद की पूर्ण प्राप्ति जो है परमात्मा के आश्रय से नहीं होगी, निजात्मा के आश्रय से ही होगी।**

मक्खन निकालने से पूर्व जब मथानी से दही को मथती है माँ तो बीच-बीच में पानी के छींटे मारती है। ग्रीष्मकाल है तो शीतलपानी के छींटे मारती है, शीतकाल है तो गर्म पानी के छींटे मारती है। यानी पौद्गलिक द्रव्य में मौसम के अनुसार परिणमन हो रहा है। ऐसे ही जब मक्खन का पिण्ड उस दही में परिपूर्ण संगृहीत हो जाता है तब न मथानी का प्रयोग होता है न पानी का प्रयोग होता है। मात्र मटके के अन्दर ही माँ हाथ का प्रयोग कर रही है, फिर हाथ से ही निकाल रही है, पानी का आश्रय समाप्त, मथानी

का आश्रय समाप्त, लोंदे को उठाने में मात्र हाथ ही आश्रयभूत है। ऐसे ही ज्ञानियो! जब पानी डाल रही थी तब हाथ आश्रय था अलग, जब मथानी घुमा रही थी तब भी हाथ का आश्रय था भिन्न, जब नजदीक पहुँचे तो पानी का आश्रय भी छूट गया, मथानी का आश्रय भी छूट गया, मात्र हाथ का आश्रय है। ऐसे ही प्रारंभ अवस्था में ये जीव पंचपरमेष्ठी का आश्रय लेता है। जीव देव-शास्त्र-गुरु का आश्रय लेता है। जब उस आश्रय से भिन्न हुआ तब पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ – इन ध्यानों का आश्रय लेता है और जैसे ही और नजदीक पहुँचता है तो रूपातीत ध्यान में लीन हो जाता है और जब रूपातीत ध्यान में लीन होता है तो फिर अन्य किसी का आश्रय नहीं, आत्मा का आत्मा से आश्रय लेता है।

स्वर्णपाषाण, अंश-अंश में उस पाषाण में स्वर्ण है, पर जबतक अग्नि में झोंका नहीं जाता, तब तक उस स्वर्ण को पृथक् नहीं किया जाता और जैसे ही अग्नि में, भट्टी में उसको झोंका, और अग्नि का संयोग मिला तो सोना पिघलकर भिन्न हो जाता है, किट्टिमा अलग हो जाती है। ऐसे ही मेरी आत्मा में वो शक्ति है। ध्यान की अग्नि के माध्यम से इतनी तेज ज्वाला, इतनी तेज अग्नि है कि कर्म किट्टिमा पृथक् हो जाती है, शुद्धात्मा शेष बचती है। वही सिद्ध अवस्था है, यही परमात्म शक्ति है, यही परमात्म उपलब्धि है, यही स्वात्मोपलब्धि सिद्धि है। नहीं चाहिए खड्ग सिद्ध, नहीं चाहिए गुटका सिद्ध, नहीं चाहिए अन्य कोई सिद्धियाँ जगत् की। एकमात्र चाहिए स्वात्मोपलब्धि सिद्धि। हम उस सिद्ध को ही नमस्कार करते हैं जिसने स्वात्मोपलब्धि सिद्धि को प्राप्त किया है। जगत् की शक्तियों की सिद्धि करनेवाले कोई सिद्ध नहीं हैं।

लोक अज्ञान में जी रहा है। तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र की साधना करके ही अपने को सिद्धपुरुष सिद्धपरमात्मा समझ रहा है। ज्ञानी! यदि ये सिद्ध हो गये तो वे सिद्ध कहाँ जायेंगे, जो स्वात्मोपलब्धि सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। अंजन सिद्ध, अंजन चोर को अंजन सिद्ध था वह सिद्ध यहाँ ग्राह्य नहीं है। जगत् के जितने लौकिक सिद्ध हैं उन सिद्धों की यहाँ कोई व्याख्या नहीं। स्वयं के कारक को देखकरके क्रिया हो रही है। निष्क्रिय है आत्मा, पर-क्रियाओं में निष्क्रिय है पर स्वयं के उत्पाद-व्यय में सक्रिय हैं, चाहे सिद्ध परमात्मा क्यों न हो।

सिद्धशिला में विराजे वो परमात्मा भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से युक्त हैं। यदि सिद्धों में उत्पाद-व्यय नहीं मानोगे तो अनंतगुणों की अनुभूति जिनके चल रही है, अनंत आनंद का वेदन चल रहा है, वो बासा-बासा नहीं है वो ताजा-ताजा है। वही-वही नहीं है, वही-वही होने पर भी वही-वही नहीं है। सिद्धत्व-सिद्धत्व का आनंद है, परन्तु सिद्धत्व-सिद्धत्व का आनंद होने पर भी वही-वही है फिर भी वही-वही नहीं है। अपूर्व-अपूर्व गृहीत ग्राही, स्यात् अगृहीतग्राही-अगृहीतग्राही दोनों चल रहे हैं, न्याय की भाषा में प्रमेयकमलमार्तण्ड में गृहीतग्राही-गृहीतग्राही का खण्डन है।

समयसारजी में अमृतचन्द्रस्वामी ने गृहीतग्राही धारावाहिक को प्रमाण स्वीकारा है। उनके धारावाहिक और प्रमेयकमलमार्तण्ड के धारावाहिक में अन्तर है। अमृतचन्द्रस्वामी जिसे धारावाहिक कह रहे हैं वह आत्मा का अनंत-अनंत आनंद विच्छेद को प्राप्त न हो, अखण्ड श्रुत की धारा अविराम चल रही है, वह

धारावाहिक है। किंचित्मात्र भी जैसे शांतिधारा के लोटा में धारा की बूँद टूटने न पाये, ऐसेही जिस आत्मा की अनुभूति में आत्मा का जो परिणमन चल रहा है, वो एक समय प्रमाण भी खण्डित न हो उसका नाम श्रुत की अखण्डधारा है।

श्रुत की अखण्डधारा से तात्पर्य, ये पढ़ते हुए श्रुत नहीं, इसमें तो खण्ड हो जाता है। कभी अक्षर को देखा कभी अर्थ को देखा, कभी शब्दार्थ पर गये। ग्रन्थ खुले न, निर्ग्रन्थ बनके निर्ग्रन्थ का वेदन करे वह शुद्धोपयोग की जो धारा है, उसका नाम श्रुत की अखण्डधारा है। ये मत सोचना ये संभव है क्या? यदि ये संभव नहीं है तो कोई परमात्मा नहीं बन सकते। जो-जो परमात्मा बने हैं, जो-जो परमात्मा बनेंगे, जो बन रहे हैं वे सब अखण्ड श्रुत की धारा से ही बन रहे हैं, अखण्ड श्रुत की धारा। इसलिए अध्ययन करते-करते विराम लेना चाहिए और विराम लेकर के फिर नेत्र बंद करके फिर अनुभव करो, मैंने जो शास्त्र से समझा था, उसे आत्मस्थ करिए। जिसे शास्त्र से देख रहे थे, उसे आत्मा से देखो। वह विषय मेरे भीतर कैसा चल रहा है।

फिर परज्ञेय परज्ञेय ही रहेंगे, यथार्थ में परज्ञेय मेरा ज्ञान नहीं है, मेरा ज्ञान ही मेरा ज्ञान है। ज्ञेयों से ज्ञान नहीं है। ज्ञान से ज्ञेयों को जाना जाता है। ज्ञान ज्ञान है, अर्थ (पदार्थ) और आलोक ये ज्ञान नहीं है। पदार्थ से ज्ञान होता, प्रकाश से ज्ञान होता, प्रकाश और पदार्थ ये दो यदि ज्ञान के कारण मानते हो, तो फिर उल्लू को दिन में दिखाई क्यों नहीं देता? चमगादड़ को दिन में दिखाई क्यों नहीं देता? प्रकाश तो है। नार्थालोक कारणें, अर्थ और आलोक – ये ज्ञान के कारण नहीं है। कोई प्राणी दिन में देख पाते हैं, कोई रात्रि में देखते हैं, ये ऐसा क्यों? आचार्यों ने कितना चिंतन किया और जगत् की हर व्यवस्था पर चिंतन किया।

स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति।प.मु.सू.।।

जो स्वावरणकर्म का क्षयोपशम है वही प्रतिनियत अर्थ का व्यवस्थापक है। न अर्थ ज्ञान का कारण, है न आलोक ज्ञान का कारण है, ये उपचार से कारण के कारण तो होते हैं, लेकिन सैद्धांतिकदृष्टि से देखा जायेगा, तो ज्ञानियो! ज्ञान आत्मा का गुण है, वो आत्मा से बाहर नहीं होता है। हम ज्ञान के माध्यम से ज्ञेयों को जानते हैं ये – व्यवहारदृष्टि है, यथार्थ में हम ज्ञान से ज्ञान को ही जानते हैं, सोचिए इस बात को। ज्ञेय थोड़े ही प्रवेश करते हैं मेरे में। बहिर्ज्ञेय मेरी आत्मा में प्रवेश नहीं करते। ज्ञान-ही-ज्ञान को जानता है। हम अपने ही ज्ञान का वेदन करते हैं। जो-जो बहिर्ज्ञेय आते हैं उनके माध्यम से मेरा ही ज्ञान परिणत होता है पर व्यवहार से कहते हैं कि मैंने अमुक वस्तु को जाना, अमुक वस्तु को देखा। यथार्थ ये है मेरा ज्ञान ही परिणत हुआ है।

वेद-वेदकभाव जड़द्रव्यों में नहीं है। वेद-वेदकभाव चैतन्य का धर्म है और जो चेतन का धर्म है वह जड़ का धर्म कैसे हो सकता है? मित्र ! चेतन में जड़ का वेदन मानते हो, तो फिर या तो जड़ चैतन्य हो

जायेगा या चैतन्य जड़ हो जायेगा। दो क्रिया-कारित्व नाम का मिथ्यात्व खड़ा हो जायेगा। द्विक्रियाकारक-दो क्रियाओं का कर्त्ता ये जीव हो जायेगा। मैं जगत् की अन्य क्रियाओं का कर्त्ता नहीं हूँ। मैं अपने कारक को देखकर ही परिणमन करता हूँ, ये क्रियाशक्ति है। मैं दो क्रियाकारक नहीं हूँ।

परिवार के किसी सदस्य को पीड़ा हुई और हम दुःखी होने लग गये। पर कहने में विषय क्या आता है घर में सदस्य बीमार है सो हमारा घर असंतोषमय है। बहुत क्लेश में चल रहा है परिवार इस समय, पर सत्य ये है जो बीमार हुआ है उसके लिए तुम क्लेश में नहीं हो, वो स्वतंत्र है आप स्वतंत्र हो, आपके अन्दर जो राग उमड़ा है वो राग आपके ही भीतर था, आपका ही था, आपमें ही था, आपमें ही क्रिया है, आपने ही किया है, आपके लिए किया है। ये राग आपका था इसलिए दुःखी हो, उस सदस्य के कारण कोई दुःखी नहीं है। स्व की क्रिया स्व में होगी, पर अज्ञानी जीव हर विषय को पर में आरोपित करता है। ये क्रियाशक्ति कह रही है – एक द्रव्य की क्रिया दूसरे द्रव्य में नहीं होती। स्व की क्रिया स्व में होगी। क्या मेरा उत्पाद-व्यय पर में हो सकता है? क्या पर का उत्पाद-व्यय मेरे में हो सकता है? अरे ज्ञानियो! अत्यंत भिन्न तो छोड़िए, जिस देह और आत्मा का संश्लेष सम्बंध है, उस संश्लेष सम्बंध होने पर भी उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से चेतन भी कह दिया जाता है किसको? अचेतन भी चेतन कहला रहा है।

आप जगत् में किसी भी जीव को देखते हो, कर्म और नोकर्म। पंडितजी! इस सूत्र को नहीं समझा और समाज नहीं समझ पाई, राष्ट्र विश्व नहीं समझ पाया, तो मित्र !जीवस्थान, मार्गणास्थान, गुणस्थान, संक्लेशस्थान, विशुद्धिस्थान, अध्यवसाय स्थान – ये आत्मा का स्वभाव नहीं है। समयसार की भाषा में, इन सबसे भिन्न है आत्मद्रव्य। मैं जन्मता नहीं हूँ, मरता नहीं हूँ, न उत्पाद है, न मेरा व्यय है, मैं अखण्ड ध्रुव हूँ। उत्पाद-व्यय गौण, शुद्धद्रव्यार्थिकनय। उत्पाद-व्यय को गौण करके शुद्ध द्रव्यार्थिकनय मात्र में ध्रौव्य हूँ, अखण्ड ध्रौव्य हूँ। हे ज्ञानी! ये विषय स्वयंभू के लिए है, स्वयं के लिए है। इस विषय को जो अनुभव कर रहा है वह गाड़ियों में नहीं घूमेगा। इस विषय को जो अनुभव कर रहा है वो वस्त्रों में लिप्त नहीं होगा। इस विषय को जो अनुभव कर रहा है वह आहार लेने नहीं जा रहा होगा। इस विषय को जो अनुभव कर रहा है वह पिच्छी-कमण्डलु भी नहीं देख रहा होगा, उस विषय को जो अनुभव कर रहा है वह दिगम्बर भेष को भी नहीं देख रहा होगा। यह देह आश्रित है, आत्माश्रित नहीं है।

हे जीव! कहीं तू घर-गृहस्थी के राग से मुक्त होकरके दिगम्बर शरीर के राग में लिप्त तो नहीं हो गया ? समझो, घर-गृहस्थी का राग तो छूट गया, मात्र आपको दिगम्बर भेष में ही आनंद लग रहा है और दिगम्बर भेष से ही मोक्ष हो जायेगा। हे मित्र! अब तुम जब-तक व्रती नहीं बने थे, महाव्रती नहीं बने थे, तब-तक तो कहा जा रहा था, **'अव्रतीव्रतामादाय।'** अव्रती को व्रती बनना चाहिए। व्रती बन गये, अब क्या करोगे? अब कहाँ जाओगे ? तुमने कौन-सा बड़ा काम कर लिया, ये तो देह-आश्रित है। **व्रती ज्ञानपरायणः** अव्रती को व्रती बनना चाहिए और व्रती को ज्ञान में उतर जाना चाहिए, ज्ञान में लवलीन

हो जाना चाहिए। यह है अध्यात्म भाषा, पर इस भाषा का सिद्धांत तूने समझ लिया है बहुत अच्छे से ?

पंडितजी ने आपको पढ़ा दिया था, ये उनका दोष नहीं था, पर तू स्वच्छन्दी हो गया। ये तेरा दोष था। गाड़ी पर चढ़ा कोटी-कोटी जीवों की हत्या हो रही थी। तेरी दृष्टि में चल रहा था आत्मा त्रैकालिक ध्रुव है उसका मरण होता नहीं है। जो कुचला जा रहा है वह पुद्गल पिण्ड है। आत्मा जीवस्थान गुणस्थान से शून्य है, फिर तो मांस के टुकड़े भी खायेगा। बोले – ये तो अचेतन हो चुका है, जो था वो तो निकल गया, वो मरता ही नहीं है। अभी तुम बोतलों से खून चढ़वाते हो फिर मुख से पीने लगोगे। पंडितजी! लोग रक्त की बोतल चढ़वा रहे हैं और दान कर रहे हैं। बड़े-बड़े धर्मात्मा, धुरन्धर धर्मात्मा अपने को कहनेवाले मुनि पिच्छी बगल में दबाकर के रक्तदान के उद्घाटन के लिए खड़े हो रहे हैं। तीर्थंकर की मुद्रा में कहाँ तुम कु-दान में पड़े हो। स्वर्णदान, कन्यादान, गायदान, भूमिदान - ये सब कु-दान हैं, खोटे दान हैं और उसको बढ़ा-चढ़ा कर प्रचारित किया जाये, गृहस्थों की क्रिया को साधु करे, उसे धर्म माने, आनंदित हो, रक्तदान में लिप्त हो जाये, तब लगता है, हे वर्धमान ! आपके शासन में आपके भेष को धारण करनेवाले जीव ये क्या कर रहे हैं? इतनी लौकिकता में, भावुकता में डूब गये लोक की व्यवस्था को देख करके। अरे भाई ! जैन साधु लोकव्यवस्था के लिए नहीं बना जाता है। **जैन साधु आत्मलोक की व्यवस्था के लिए बना जाता है। ये लोकव्यवस्था ही आपको देखना थी तो अच्छे नेता बनते; राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री बनके बैठते; उच्चपद पर बैठ करके लघु कार्य करने से उच्चपद की गरिमा गिरती है।** आपसे नीचे के लोग यही समझते हैं कि यही धर्म होता होगा, यह आत्मदृष्टि नहीं है अध्यात्मदृष्टि नहीं है। जो छोटे साधु हैं वो यही समझेंगे कि लौकिक कार्य ही धर्म होता होगा, जबकि मुनिधर्म में इनसे कोई नजदीकता ही नहीं है।

आपने शास्त्री किया है, किस विषय पर? जैनदर्शन पर। जैनदर्शन विराट् है; कोई अध्यात्म का विशेषज्ञ है, कोई न्याय का विशेषज्ञ है, कोई प्रथमानुयोग का विशेषज्ञ है, कोई सिद्धांत का तो कोई करणानुयोग का विशेषज्ञ है। सिद्धांतशास्त्री, न्यायशास्त्री, व्याकरणाचार्य, नैयायिकाचार्य जब इनमें भेद होता तब जो इस विषय का ज्ञाता होता है वह उस-उस विषय पर अलग ही दिखाई देता है। पंडित दरबारीलाल कोठिया का नाम देश में आये तो अपने आप न्यायाचार्य आता है। पंडित फूलचन्द्र शास्त्री, सिद्धांतशास्त्री। इन विद्वानों के नाम के साथ अपने आप विशेषण आ जाता है।

ऐसे ही जब एक दण्डी, दो दण्डी, त्रिदण्डी; समझ रहे आप मैं क्या बोल रहा हूँ ? एक दण्डी, दो दण्डी, त्रिदण्डी - ये वैष्णव साधु के भेद हैं। एक तिलक लगानेवाले, दो तिलक लगानेवाले, तीन तिलक लगानेवाले, बिन्दी लगानेवाले, अलग-अलग उनका सम्प्रदाय है तो उनकी पहचान हो जाती है। मठवाले अलग हैं, भीख माँगनेवाले अलग हैं, इन सबकी पहचान होती है। सारे विश्व के सम्प्रदायों की अलग-अलग पहचान है, तो जैनदर्शन में दिगम्बर की अलग पहचान है। सारे लोग जगत् के कार्यों

में उलझ जायें, लेकिन दिगम्बर साधु हाथ-पर-हाथ रखकर साधना करे, यही जैन की पहचान है। लौकिक कार्यों से परिपूर्ण मुक्त। जब-तक लौकिक कार्यों से मुक्त नहीं होंगे, तब-तक कर्मों से मुक्त नहीं होंगे। देह में लौकिक कार्य चल रहे हैं, कार्ययोग से तो भाव ऐसा हो नहीं सकता है। आप असंज्ञी नहीं हो कि बिना मन के कार्य हो रहा है। आप संज्ञी हो, बुद्धिपूर्वक कार्य हो रहा है। **आप जितने ज्यादा कार्य करोगे, जितना अधिक वचन बोलोगे उतना अधिक आत्मप्रदेशों में परिस्पंदन होगा।**

जितना शांत रहना सीखोगे, उतनी श्वासें मन्द पड़ जाएँगी। इधर देखो प्रमाणपत्र दिखाएँ। अपना हाथ नाक के पास ले जाओ। जब आपको गुस्सा आ रहा हो उस समय नाक के पास ले जाना फिर देखना श्वासें धीमी चल रही हैं कि तेज? **कोई भी विकार मन में हो, आपकी श्वासें बढ़ जायेंगी और जितने शांत होंगे, जितने सहज होंगे, श्वासें मंद हो जायेंगी। श्वासों का मंद होना ही उत्कृष्ट साधना है,** वह प्रमाणपत्र है। जितनी कषाय मंद होगी उतनी श्वासें मंद होंगी। हमारे यहाँ अलग से, विशेषरूप से प्राणायाम आदि की व्यवस्था प्रारंभ में है, ज्ञानार्णव में वर्णित किया है, लेकिन स्पष्ट कह दिया ये मुख्यवृत्ति नहीं है, गौणवृत्ति है।

जब साधना में लवलीन हो जाता है तो श्वासें स्वयमेव मंद हो जाती हैं, एक समय ऐसा भी आता है दसम स्थान तालुरन्ध्र से श्वास लेता है। मस्तिष्क में भी छेद है तालुरन्ध से श्वास लेता है। आप मानते हो छेद आपके सर्वांग में हैं ? नौ मलद्वार छोड़कर भी छेद हैं। छेद नहीं होते तो पसीना कहाँ से निकलता है। वर्षा के मौसम में, ठण्डी के मौसम में व्यक्ति लघुशंका अधिक जाता है और ग्रीष्मकाल में कम जाता है, लेकिन पसीना अधिक आता है। जो विकार अधोभाग से निकलते थे, वे विकार सर्वांग से निकल गये। जैनाचार्यों ने किसी भी विद्या को छोड़कर नहीं रखा, हर विद्या का वर्णन किया है।

कर्म-नोकर्म को चेतन कहा जा रहा है, वह सम्यक् है कि नहीं? अब यहाँ पंडितजी! पंचाध्यायीकार को नहीं लाना। पंचाध्यायीकार ने नय-उपनय, उपनयों को मिथ्या कह दिया, जबकि उपनय मिथ्या नहीं है। आज समझ में आयेगा, उपनय कितना महत्त्वपूर्ण है। समयसार की भाषा सुनली, जीव का विघात नहीं होता। ये समयसार की द्रव्यदृष्टि है, लेकिन समयसार का कर्म-नोकर्म, उपचरित- असद्भूतव्यवहारनय से कर्म-नोकर्म चेतनस्वभावी है। ये नय क्या कह रहा है, आत्मा के प्रदेश शरीर के किस अंश में हैं ? सर्वांश में हैं। एक क्षेत्रावगाही बंध की दृष्टि से आत्मा मूर्तिक है। निर्बंध की दृष्टि से आत्मा अमूर्तिक है। इस नय विवक्षा को समझिए। आप जिस अहिंसा का पालन कर रहे हो, जो व्रतों का पालन कर रहे हो, जीव पर करुणा कर रहे हो; ये आत्मा की रक्षा के लिए कर रहे हो कि शरीर की रक्षा के लिए? अरे ! आत्मा का तो विघात होता ही नहीं है। केचुआ पर तुमने पैर रख दिया, हिंसा कर दी, अरे ! वो तो एक पुद्गल पिण्ड था, आत्मा का तो विघात होता नहीं।

हे ज्ञानी! ऐसा पुद्गल पिण्ड कह देगा तो जैसे वर्द्धमान स्वामी के शासनकाल में बुद्ध भी हुए। महावीरस्वामी ने उद्दिष्ट त्याग का कथन किया, बुद्ध ने भी उद्दिष्ट त्याग का कथन किया। महावीरस्वामी ने कहा हे श्रमण! **पाणिपात्र दिगम्बरः** ! तेरे पाणिपात्र में जो वस्तु आ जाये उसे तू ग्रहण कर लेना, लेकिन प्रासुक निरामिष शुद्ध होना चाहिए, छयालीस दोष को टालकर, ये वर्द्धमान कह रहे हैं। बुद्ध ने भी कहा - हे भिक्षुओ! जो तुम्हारे पात्र में आ जाये उसे ग्रहण कर लेना। उनके पात्र में किसी ने मांस का टुकड़ा डाल दिया उसे भी ग्रहण कर गये। मार के मत खाना, मरा हुआ खा लेना, इतनी छूट दे दी। जब इतनी छूट दी तब फिर लोग तो बड़े ज्ञानी हैं, कैसे ज्ञानी? जैसे ये माताएँ ज्ञानी हैं, पर्यूषण आयेगा तब हरी नहीं खायेंगे पर अभी से सुखाकर रख लेंगे। आस्रव कब से प्रारंभ है? ये कब के लिए कर रही हो ? जब पर्यूषण आयेगा तब हरी नहीं खायेंगे, तब ये सूखी खा लेंगे यानी खा लेंगे, आस्रव जारी है। अब क्या मालूम खाने के लिए आप बचेंगे कि नहीं बचेंगे। कर्म ने तो आपको पकड़ ही लिया। इस विषय को समझो।

दिगम्बरत्व पर दृष्टि डालो तब कि कितना सुखमय जीवन है। इनको तो ये भी विकल्प नहीं है एवंभूतनय से आहार करने जाते हैं, शेषकाल में प्रत्याख्यान। प्रत्याख्यान आवश्यक है, हमारा धर्म है। बुद्ध की इतनी ढील मिलते ही पर्वत से पटक दिया जीव को, अब वो मर जायेगा, खा लेंगे। बोले – मारा नहीं है, मर गया। इस प्रकार के प्रपंच लोक में बने, यहाँ तक बोल दिया कि आप तो इतने फल खाओगे, इतने जीवों को कष्ट होगा, कम हिंसा हो इसलिए एक भैंसे को मारकर खा जाओ। लोक में दुर्बुद्धियों के पास भी कितनी बुद्धि होती है। पर हे अज्ञानी! वो पंचेन्द्रियजीव है उसके मांस के पिण्ड में प्रतिक्षण प्रतिपल उसी जाति के पंचेन्द्रिय जीव उत्पन्न हो रहे हैं नष्ट हो रहे हैं इसलिए मांस किसी भी प्रकार से उपादेयभूत नहीं है। अहिंसा महाव्रत का पालन है, अहिंसा अणुव्रत का पालन है वह द्रव्यार्थिक दृष्टि से नहीं है, पर्यायदृष्टि से है।

नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात् सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः
सर्वात्म प्रदेशेष्वनन्तानंत-प्रदेशाः ॥ 8/24,त.सू.॥

ये कर्म-प्रकृतियाँ सम्पूर्ण आत्मा के प्रदेशों में समाविष्ट हैं, जैसे पानी से मिश्रित दूध है। अब आपसे कहें, भैया ! दूध में से एक ग्लास पानी अलग कर दो और दूध अलग ले लो, लोगे क्या? नहीं ले पाओगे। ऐसे ही कर्म-प्रकृतियाँ आत्मप्रदेशों में दूध-पानी क्षीर-नीरवत् एकमेक हैं। ऐसे ही संसार में बद्ध आत्मा है उसमें शरीर और आत्मा के प्रदेशों का संश्लेष सम्बंध, एकमेक होने से शरीर को कष्ट देने पर आत्मा को कष्ट होता है और पर्याय का वियोग कराने से आत्मा ही क्लेश को प्राप्त होती है। **अहिंसा जो व्रत है वह पर्यायदृष्टि से है।** पर को क्लेश देना; ये कर्म-नोकर्म, उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कर्म-नोकर्म को चेतन स्वभाव कहा है, सत्य है। नहीं तो तुम क्यों आलू छोड़ोगे, क्यों भोजन छोड़ोगे, इस नय से ही छोड़ रहे हो।

समयसार की धारा अपने स्थान पर है, चरणानुयोग की धारा अपने स्थान पर है। दूध-पानी को भिन्न नहीं कर पाते आप, लेकिन उसी दूध को अग्नि पर रखने पर पानी खो जाता है, तो खोआ बन जाता है। ऐसे ही ध्यान की अग्नि पर आत्मा विराजमान हो जाती है तो जो कर्मपिण्ड का पानी था वो खो जाता है तो आत्मा शुद्ध परमात्मा बन जाती है। संश्लेष सम्बंध है आत्मा और कर्म का। ये संश्लेष सम्बंध, संयोग संबंध - ये उपनय के विषय हैं। **'नयानां समीपा उपनयाः'** जो नयों के समीप है वह उपनय है।

संश्लेष सम्बंध से सहित ये देह और आत्मा है। शरीर मेरा है जब हम संयोग की दृष्टि करेंगे। स्वजाति-विजाति उपचरितअसद्भूत व्यवहारनय से ये देश राज्य मेरा है। स्वजाति उपचरित-असद्भूतव्यवहारनय से ये कुटुम्ब परिवार मेरे हैं। विजाति उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से घर, मकान, दुकान आदि मेरे हैं। स्वजाति-विजातिउपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से देश राज्य आदि मेरे हैं। ध्यान रखना, ये नय सापेक्ष ही समझना पर इन्हें अपना स्वभाव नहीं समझ लेना। जो स्वभाव समझेगा वह मिथ्यादृष्टि। जो इनको नय से नहीं समझेगा वो मिथ्यादृष्टि। तीर्थंकर भगवान् का भी नगर था, उनके भी माता-पिता थे, कोई आकाश से टपक कर नहीं आये, तो वहाँ नय लगाना। तीर्थंकर ऋषभदेव अयोध्या के सम्राट् थे – स्वजाति-विजाति उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय। बाहुबली के पिता थे – भरत के पिता थे, स्वजाति उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय। उनका सिंहासन था, उनकी अवधपुरी थी, उनके महल थे – विजाति उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय। उनका कुछ भी नहीं था, देह ही उनकी नहीं थी, वे उनके कैसे हो गये? कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिकनय से उनका कुछ नहीं था। ऐसी दृष्टि में जीयो।

ये पिच्छी मेरी है, पंडितजी बोलेंगे - मिथ्यादृष्टि। बोले – क्यों? तुम पिच्छी को अपनी मान रहे हो। ज्ञानी! ये पिच्छी मेरी है, मेरी नहीं है। ज्ञानी ! अब जो नय को समझता है वो कह देगा आपकी ही है, फिर कहेगा आपकी नहीं है। विजाति उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से ये पिच्छी मेरी है, लेकिन पिच्छी ज्ञानियो ! जड़धर्मी है, मैं चैतन्यस्वभावी हूँ। पिच्छी मेरी कैसे हो सकती है? कर्म-नोकर्म ही मेरे नहीं हैं तो पिच्छी अत्यंत भिन्न है, मेरे से अत्यन्ताभाव है मेरे में, ये मेरी कैसे हो सकती है? इसलिए ये मेरा स्वचतुष्टय नहीं है। इस पिच्छी का मैं प्रयोक्ता हूँ इसलिए मेरी है। आप कहें मेरी नहीं तो छोड़ दो। छोड़ दोगे तो कौन तुम्हें नमोऽस्तु कर रहा है? लोग पत्थर मारेंगे, बोलेंगे नंगा जा रहा है, पर पिच्छी देखते ही कहेंगे - दिगम्बर मुनि जा रहा है।

ज्ञानी ! 'इन्द्रनंदीनीतिसार' ग्रन्थ का नाम सुना ? इस ग्रन्थ में लिखा है - एक मध्यकाल आया, इस मध्यकाल में एक निष्पिच्छिका संघ हुआ। इतना अध्यात्मवादी हो गया कि उसने कहा - ये पिच्छी भी परिग्रह है, और पिच्छी नहीं, कमण्डलु मात्र। अब कमण्डलु तो चाहिए पड़ेगा। पिच्छी छोड़ दी, बोले - परिग्रह नहीं रखना। उसका नाम था निष्पिच्छीका संघ। अनेक जैनाभासों में एक निष्पिच्छीका संघ भी

आता है। वो पिच्छी नहीं रखते थे; जैनाभास। जब वो पिच्छी नहीं रखते थे तो मार्जन क्यों करेंगे। वे मिथ्याधारणावाले परमवीतरागी हो गये।

आगम यह कह रहा है कि सात कदम से आगे मुनि बिना पिच्छी के जाता है तो उसको बड़े-बड़े प्रायश्चित्त लेना पड़ते हैं। बिना पिच्छी के चल नहीं सकते आप। इंद्रनंदीनीतिसार में लिखा है जैसे कि नोट के ऊपर जब-तक शासन की मुद्रा नहीं होगी, तब-तक कागज कागज ही रहेगा और धातु धातु ही रहेगी। जिस कागज पर शासन की मुद्रा लग जाये, वह 'नोट' संज्ञा को प्राप्त कर लेता है। ऐसे ही ज्ञानियो! नंगा नंगा है, जितने नंगे सब नंगे ही हैं। प्रकृति पूरी नंगी है, लेकिन जिस पर तीर्थंकर के शासन की पिच्छी-कमण्डलु की मुद्रा है वो दिगम्बर है, साधु है। इसलिए बिना पिच्छी-कमण्डलु के श्रमण की कोई पहचान नहीं है। यहाँ तक तुमको आहार भी कौन देगा ? लोक में तो प्रसिद्ध है कि उन्मत्त पागल पुरुष ही नंगे घूमते हैं पर पिच्छी-कमण्डलु देखकरके लोग आपको साधु समझते हैं, आपकी चर्या कराते हैं इसलिए तो ये मुद्रा लेकर जाते हैं। पहचान है मात्र, इसलिए मुद्रा लेकर जाते हैं।

समझ में आ रहा है, क्रियाशक्ति। कोई दूसरे की क्रिया नहीं, स्वयं की क्रिया और भावमयी क्रियाशक्ति, चैतन्य परिणति ही चैतन्य में चल रही है। आत्मा की परिणति आत्मा में चल रही है। यही तो मैं आपसे कह रहा था, पर के उत्पाद-व्यय तो छोड़िए, मेरा जो शरीर है उसका उत्पाद-व्यय मेरा नहीं है। देह का उत्पाद-व्यय भिन्न है। आत्मा का उत्पाद-व्यय भिन्न है। जो आत्मा का परिणमन है वो भावमयी क्रियाशक्ति है। अब भाव से यहाँ परिणाम भी ग्रहण मत करना, परिणाम भी स्यात् पौद्गलिक है। पंडितजी ! परिणाम भी स्यात् पौद्गलिक है, जो मेरे भीतर परिणाम हो रहे हैं वे मेरे आत्मा के स्वभाव नहीं हैं। जो रागादिभाव हो रहे हैं, जो विशुद्ध परिणाम हो रहे हैं वो भी आत्मा का धर्म नहीं है।

परिणाम तभी तक होंगे जब-तक कर्म हैं, जब कर्म का अभाव हो जायेगा तब परिणामों का अभाव हो जायेगा। यहाँ भावमयी क्रियाशक्ति से तात्पर्य क्या है ? ये भाव परिणामरूपभाव नहीं लेना; भाव यानी पदार्थ, शुद्धचैतन्यद्रव्य चिद्चिद् एवं मात्र आत्मद्रव्य ही आत्मद्रव्य; परिणाम भी नहीं, जो विचार आ रहे हैं वो विचार मेरी आत्मा का शुद्धस्वभाव नहीं है। निष्कंप, निस्तरंग, निश्चल, निश्छल, निर्द्वन्द्व अवस्था जो है वो निजभाव है। कभी बैठकरके अपने परिणामों को ही ज्ञेय बनाइए, कैसे परिणाम हो रहे हैं उन्हें ही जानते जाइए। चाहे कैसे परिणाम हो रहे हैं उन्हें जानना प्रारंभ कर देना। भैया ! विश्वास रखना, जिस दिन आप उन्हें जानना प्रारंभ कर दोगे और जिस दिन अनुभव में आ गये परिणाम चल रहे हैं तो परिणाम अलग दिख जायेंगे, परिणामी अलग दिख जायेगा, क्योंकि जो गुणस्थान है, मार्गणास्थान है **'गुणसण्णा सा च मोहजोगभवा'** मोह और योग की धारा गुणस्थान है, गुणस्थान चौदह तक चल रहे हैं। जहाँ तक मोह की धारा है वहाँ तक मोह भाव, जहाँ मोह का अभाव हो गया है वहाँ योगभवा, वहाँ योग से चल रहा है। जहाँ योग का ही अभाव हो गया है वहाँ अयोग, इसलिए ये गुणस्थान आदि सबकुछ

हैं पर इनके होने पर भी इनमें नहीं होना इसका नाम द्रव्यानुयोग है। **'अनादिसम्बंधे च'** ये तो अनादि से आपको प्राप्त है ही। ऐसा कोई क्षण, समय नहीं आया जब तुम गुणस्थान से रहित हुए हो। अरे ! न सही चौथा, पहला तो है। गुणस्थानरहित जिस दिन हो जायेगा, उस दिन संसार से रहित हो जायेगा।

कारकानुगतभवत्तारूपभावमयी क्रियाशक्तिः ॥ 40 ॥

मात्र भावमयी क्रियाशक्ति, जहाँ कारक से प्राप्त क्रिया निकल चुकी है। भाव मात्र होना, मात्र भाव, कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, करणवाच्य, भाववाच्य। मनुष्यत्व भाववाच्य, मुनि-मुनित्व भाववाच्य, श्रमण-श्रमणत्व भाववाच्य, शीतलता-शीतलत्व अलग से झलक रहा कुछ शीतलत्व, ऐसे जगत् की सारी क्रियाएँ तो निकल चुकीं, पर कारक सम्बधी क्रियाओं से शून्य कारक के अनुसार जो क्रिया है उनसे रहित मात्र भाव; भावशक्ति। क्या होना है? होना मात्र, हूँ? क्या हूँ, न नारकी, न देव, न तिर्यंच, न मनुष्य, तो क्या हूँ? हूँ। सारे परिचय समाप्त हैं।

जो-जो विशेषण हैं वे विशेष नहीं, विशेष को विशेषण तो लगाये जाते हैं, विशेष नहीं। अरे हे ज्ञानी विद्वान् ! कैसे लोगों ने तुम्हें पागल कर डाला ? पहले तो एक ही विकल्प आया था, माता-पिता ने नाम रख दिया। पंडितजी ! सुनना गहरी बात, जब तुम्हारा जन्म हुआ तब कोई नाम नहीं था। उस समय राकेश नाम से कोई गाली भी दे रहा हो तो भी कोई तनाव नहीं था और जिस दिन तुम समझदार हुए और राकेश नाम से परिचित हो गए, राकेश वो तो चन्द्रमा है, पर अब कोई कुछ भी बोल दे राकेश के नाम पर, सोता भी होगा तो जाग जायेगा। हे जीव! परमार्थ से देख, ये जनक-जननी ने तुझे सुख दिया कि दुःख दिया ये नाम रखके? जन्म से ही तुझे तनाव में डाल दिया। कोई नाम न होता तो कोई कुछ भी कहता रहता। **संज्ञा जो है वह लोक की व्यवस्था है, आत्मलोक की व्यवस्था नहीं है।** अब इसके बाद तू अपने आपको राकेश मानता रहा फिर पढ़-लिख करके और अच्छी परीक्षा देकरके एक नया उपद्रव खड़ा कर लिया। अब ये शास्त्री बन गया। ये शास्त्री विशेषण है, विशेष्य क्या है ? ये सारे बाहर के विशेषण हैं।

जितने विशेषण हैं ये है कुछ नहीं, स्वयं में खोजो, हैं क्या तुम्हारे अन्दर? अरे ! किसी ने बोल दिया तुम तो भगवान् हो तो मान लिया इसने अपने को भगवान्। ये ही तो भूल चल रही है। जैनदर्शन महान् है, भूल को भूल बता देता है। ये ज्ञानी है, इससे पचास लोग रोज कहें कि तू भगवान् बन गया। रोज सुनते-सुनते इसने धारणा बना ली। इसने लिखना भी अपने नाम के साथ प्रारंभ कर दिया, अब वह इतना रम गया कि उसे कोई भगवान् न बोले तो उसे चैन नहीं पड़ती और लोक में प्रसिद्ध हो गया भगवान्, बन गया भगवान्। भगवत्ता का पता नहीं था, बन गया भगवान्। संसार में यही हो रहा है चार छः चेले-चपाटे मिले, लोगों ने भगवान् घोषित किया, भगवत्ता कहाँ प्रगट हो गई? भगवत्ता की सत्ता को प्रगट करना है यह पर के द्वारा और विशेषणों से प्राप्त नहीं होती है।

ये भावमयी क्रियाशक्ति कह रही है कि निज के होने से ही होगा अन्य विशेषणों से नहीं होगा। पर के विशेषणों से प्लास्टिक के अंगूर तो हो सकते हैं, परन्तु महाराष्ट्र में उत्पन्न होनेवाले अंगूर खेतों में, किसानों के बगीचों में ही मिलेंगे। नागपुर का संतरा ही ले लो। पंडितजी ! नागपुर में किसी भी गली में जाकर आ जाओ एक संतरा उत्पन्न नहीं मिलेगा, जबकि महाराष्ट्र से ज्यादा संतरे मध्यप्रदेश में हो रहे हैं, परन्तु नागपुरी संतरा। अब नागपुर की मण्डी में बिकते हैं इसलिए मुलताई, अमरावती, मुक्तागिरि आदि स्थानों में संतरा होते हैं, पर विशेषण जुड़ा नागपुरी संतरा; ये विशेषण ही हैं, विशेष्य कहाँ है ?

ऐसे ही कभी फूल मत जाना कोई तुम्हें जगत् ब्रह्मा कह दे, जगत् संत कह दे, विश्व संत कह दे, राष्ट्रीय संत कह दे, संत शिरोमणि कह दे तो कभी भूल मत जाना, तुम जो हो सो हो। ये भक्तों के विशेषण हैं, तेरी आत्मा के कोई विशेषण नहीं हैं। परमात्मा तभी बनता है जब आत्मा निर्मोही होती है। पंडितजी! पकड़िए जब-तक बारहवाँ गुणस्थान नहीं बनेगा तब-तक तेहरवाँ गुणस्थान बन नहीं सकता है। पहले मोह को क्षय करिए। कारण क्या है? अर्हंत अवस्था में, केवली अवस्था में; जो तुम तनक से वैभव पूर्व में छोड़ के आये थे, वहाँ चौगुने फलित होते हैं, बहिर् विभूति **'नमः श्री वर्द्धमानाय'**। अंतरंग लक्ष्मी, बहिरंग लक्ष्मी। बहिरंग लक्ष्मी समवशरण। तुम्हारे घर में कितना वैभव, तीर्थंकर भगवान् के समवशरण में एक-एक द्वार पर, चक्रवर्ती के तो चौदह रत्न ही होते हैं, उनके यहाँ तो कितने ही रत्न पड़े हैं। अब कहीं तुम मोहसहित केवली बन गये होते मानाकि, तो तुम एक-एक द्वार की साम्रगी को आँखें फाड़-फाड़कर देखते कि कोई उठा तो नहीं रहा है। इसलिए ये तब मिलेगा जब पहले निर्मोह हो जाओ और निर्मोह हो जाओगे तो लगेगा समवसरण पर आप होंगे समवसरण के ऊपर।

विशेषणों को कभी अपना मानकर नहीं बैठ जाना। ये संगीत के स्वर भी हैं, ये भी शब्द वर्गणाएँ हैं, सुस्वर नामकर्म उदय है। ये भी तेरी आत्मा से भिन्न हैं। उपयोग करना उनका, पर उपयोग में मत लाना। शब्द पकड़ो, मैं क्या बोल रहा हूँ ? शास्त्रीजी ! प्रवचन करने आप बैठे, ठीक है, पुण्य से बुद्धि मिली है, वाणी मिली है, उपयोग करना पर उपयोग में मत लाना। तात्पर्य समझिए, क्या कह रहा हूँ? इसका उपयोग करना, परन्तु अपने स्वभाव में मत लाना। ये तुम्हारा स्वभाव नहीं है। स्वभाव तो ज्ञान-दर्शन मात्र है।

प्राप्य हुए सिद्धरूप भावमयी कर्मशक्ति। अपने ही भावरूप प्राप्त किया है जो सिद्धभाव वह कर्मशक्ति। अपना सिद्धत्वभाव अपने में ही प्राप्त किया है। यह उस आत्मा की कर्मशक्ति परकृत नहीं है। मेरा निज को पुरुष प्रगट कर लेना, यही कर्म है ऐसा समझना।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव पर भावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

41

कर्मशक्तिः

''प्राप्यमाणसिद्धरूपभावमयी कर्मशक्तिः।''

कर्मशक्ति प्राप्यमाण सिद्धरूप भावमयी है। निर्मल परिणामों को प्राप्त करने की शक्ति का नाम 'कर्मशक्ति' है।

42

कर्तृशक्तिः

''भवत्तारूपसिद्धरूपभावभावकत्वमयी कर्तृशक्तिः।''

कर्तृत्वशक्ति होनेरूप और सिद्धरूपभाव के भावकत्वमयी है। निर्मल परिणामों को करने की शक्ति का नाम 'कर्तृत्वशक्ति' है।

समय देशना

भव्य बन्धुओ ! आचार्य प्रवर भगवत् कुन्दकुन्दस्वामी ग्रन्थराज समयसारजी में ध्रुवज्ञायकस्वभावी भगवानात्मा के सहज स्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। यह आत्मद्रव्य सम्पूर्ण वैभाविक धर्मों से भिन्न है। चाहे वह शरीर से सम्बद्ध हो, चाहे शरीर से भिन्न हो, सम्बद्ध होने पर भी शरीरभूत परिणत नहीं होता और असम्बद्ध का शरीरभूत परिणत होने का प्रश्न ही नहीं है। जो जीव त्रैकालिक असम्बंधता को देखता है, शुद्ध-बुद्ध त्रैकालिक चैतन्यभूत हूँ, ऐसी शब्दावली सरल है। आत्मा से, गति से युक्त जीव कह रहा है – मैं गति से यानी मैं आत्मा से भिन्न हूँ, आत्मा देह से भिन्न है। कठिन साधना है अपने आपको देह से भिन्न स्वीकार लेना।

जितनी शक्तियाँ चल रही हैं वे मात्र परभाव से निजभाव का अभाव कराने के लिए हैं। जीव मात्र वात्सल्य-करुणा-दया से युक्त होता है तो वहाँ पर भी कहीं-न-कहीं अपने स्वरूप से दूर होता है। जो अपने स्वरूप के नजदीक होता है तो वात्सल्य-दया-करुणा उसके भीतर स्वयमेव होती है। समझो, कर्ता नहीं है, कर्म कर्ता नहीं है। मैंने न पर को किया, न पर ने मुझे किया। मैं किसी का कर्ता नहीं हूँ। दूसरी दृष्टि से मैं कर्ता भी हूँ। मैं मेरा ही कर्ता हूँ अभेदकारक, मैं मेरा ही कर्ता हूँ ऐसा लवलीन श्रमण उस जीव को जगत् की कोई भी वस्तु न कष्ट दे रही है, न सुख दे रही है, वो तो सुखी ही है।

मान्यता कष्ट है, जितना मानकर बैठे हो, वो है नहीं है। अविद्या की महिमा है, जो मैं नहीं हूँ उसमें मेरापन चल रहा है। एक पर्याय में कितने ही भवनों को, कितनी ही भूमि को, कितने ही जीवों को अपना मान चुका है एक ही जीव। जब मेरी पर्याय का विच्छेद हुआ उस काल में भी जीव मेरा सहकारी नहीं बना, कार्यकारी तो छोड़िए। यहाँ तक कि मैंने जिनद्रव्यों के निमित्त से अशुभ परिणाम किये थे अशुभ परिणामों का मैं कर्ता बना था, वे अशुभ परिणाम भी मेरे सहकारी नहीं हुए। कर्म से मुक्त होने के लिए भगवान् बनाने में भी मेरे शुभ परिणाम भी सहकारी नहीं हुए।

जब शिलान्यास होता है तो सोने की, चाँदी की ईंटें होती हैं, उनकी बोली तो लगती है उनके पैसे भी आते हैं पर एक ईंट भी सोने की नहीं होती। प्रतिष्ठाचार्य पीलीपन्नी लपेटकर स्वर्ण-ईंट की घोषणा करता है, सफेद पन्नी लपेट कर चाँदी की ईंट घोषित करता है, पर आत्मा न काली हुई है न गोरी हुई है, वह तो अकर्तृत्वभाव से युक्त है।

माताओ ! सिंगारदान के सामने आयु के कितने निषेक नष्ट किये हैं ? सिंगारदान के सामने, दर्पण के सामने इस शरीर को चमकाने के राग में आयु के कितने निषेकों को क्षीण किया है, याद है क्या? और क्या चमकाने से चमकीला रह पाया है? जितना अर्हंत के पादमूल में समय नहीं लगाया, उतना दर्पण के सामने समय लगाया है। शब्द बोल रहे थे मैं कर्तृत्वशक्ति से रहित हूँ, मैं क्रियाशक्ति से युक्त हूँ, मैं भावशक्ति से युक्त हूँ। लेकिन हे जीव! भावशक्ति मैं नहीं था। पंडितजी! अज्ञानी प्रवृत्ति करे समझ में आता है, मित्र!

आज किसी को झाँककर मत सुनना, न देखना, अपन लोग ही तो हैं। आगम की गाथा याद है, छन्द अलंकार याद हैं, उपदेश करने की शैली है अपने पास लेकिन तब देखना चाहिए कि मैं स्वयं दर्पण के सामने शरीर को सजाने का कर्ता बन रहा हूँ। सुनो माताओ! शरीर को सजाने के लिए ये जीव कर्ता बन रहा है, उस समय प्रवचनसार में प्रवेश करिए।

परिणमदि जेण दव्वं, तक्कालं तम्मय त्ति पण्णत्तं।
तम्हा धम्मपरिणदो, आदा धम्मो मुणेयव्वो॥ 8/प्र.सा.॥

हे जीव! जिस समय तेरी दृष्टि जैसी होगी, उस समय ज्ञान उस ज्ञेय में परिणत होता है। राग में तन्मयीभूत होकर परिणत हो रहा है और राग के साधनों में अतन्मयी होकर परिणत हो रहा है। एक क्षण को शून्य हो जाता है, जैसे योगी शुद्धोपयोग में लीन होकर शून्य हो जाता है वैसे ही भोगी इन्द्रिय विषयों के राग में शून्य हो जाता है, वह जो शून्यता आपके अन्दर आ रही है विषयों के काल में, यही तीव्र बंध का साधन है। कुछ भी नहीं दिख पाता, कोई वस्तु दिखाई नहीं देती है, कोई सम्बध नहीं मिलते। **कषाय के काल में कोई सम्बध नहीं दिखते और वैराग्य के काल में कोई सम्बध नहीं दिखते।** विकारीभाव के उद्वेग में सारे सम्बध विलीन हो जाते हैं। समझ-समझ के समझना। अविकारीभाव के काल में सारे सम्बध विलीन हो जाते हैं। मुझे मत देखो, मुझे मत सुनो, मुझे मत समझो, जो आपके साथ घटित होता है उसे सुनो, उसे समझो, उसे जानो। इसलिए कोई अदृष्टशक्ति है, लघीयस्त्रय से बोल रहा हूँ, इस शक्ति को मात्र जैनदर्शन ही पकड़ पाया। किसी ने परमात्मा का नाम दे दिया, किसी न भूत-व्यन्तर का नाम दे दिया। पर वो नहीं था, न परमात्मा था, कुछ नहीं था; अदृश्यशक्ति।

आपके अस्वस्थ होने पर लोग आपको देखने आये। उस समय आप देखें, ये किसको देखने आया है और वो किसे दिखाने आया है। मैं ज्ञायकभाव का वेदन कर रहा था। इस अज्ञानी ने कर्म की अदृश्यशक्ति का नाम लेकरके, मैं जो चिन्मय चैतन्य ज्ञानदृष्टि से युक्त था, उस जीव ने कहा-आपका स्वास्थ्य ठीक है क्या? इतना सुनते ही आप जड़ शरीर में लिप्त हो गये और मुख से कहने लगे-मैं बहुत कमजोर हो गया हूँ, क्या करूँ? मैं बहुत दुःखी हूँ, क्या करूँ? जबकि तू कमजोर हुआ ही नहीं था, तू दुःखी था ही नहीं। ये कर्म, नोकर्म, वीर्यान्तराय कर्म का परिणमन चल रहा था। विभावज्ञान की परिणति रागभूत हो रही थी। उसे देखकरके तू अपने आपको दुःखी महसूस कर रहा है और जिस जीव ने इन अवस्थाओं को गौण करके देखा है उनके श्रीमुख के निकलता है।

न मे मृत्युः कुतो भीति, र्न मे व्याधिःकुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं, न युवैतानि पुद्गले॥29/इष्.॥

मेरी मृत्यु नहीं है। द्रव्यत्व को पकड़िए, मेरी मृत्यु नहीं है तो भय किस बात का? देह का बदलाव है। इस विषय का चिंतन करके धैर्य से युक्त हो पाना ये सामान्य जीवों का विषय नहीं है। सनतकुमार मुनिराज

तुम्हें नमोऽस्तु, जिनका शरीर गलित कुष्ठ से युक्त है। देव परीक्षा करने आये, उपचार करालो। योगी कहता है - रोगी कौन? स्वामी आप ही तो हैं। हाँ, मेरे तीन रोग है - जन्म-जरा-मृत्यु। ये आप दूर कर सकते हो तो खिलाइए औषधियाँ। वह देव अपने रूप में आकरके सिर टेकता है। स्वामी ! इसका उपचार तो आपके पास है, मेरे पास कोई उपचार नहीं है। **पीड़ा के काल में, क्लेश के काल में, दुःख के काल में निज को निहार लेना – इसका नाम अध्यात्म है।** सनतकुमार मुनिराज गलित कुष्ठ होने पर भी ये नहीं बोले कि वैद्य मुझे ठीक कर दे। वे बोले - जो ठीक नहीं हो सकता उसे क्या ठीक करेगा। जो ठीक ही है, उसे क्या ठीक करेगा।

'न मे मृत्युः कुतो भीतिर्' मेरी मृत्यु नहीं है तो भय क्या? जितने भी अनर्थ हो रहे हैं वे मृत्यु के डर से हो रहे हैं। भैया ! कोई जीव डाक्टर की उन औषधियों को खा रहा है जो हड्डी-पसली चूर्ण करके निर्मित की गई हैं। यहाँ बताना, तुम्हारी अकर्तृत्वशक्ति कहाँ है ? और क्या तुम उन हड्डियों को खाकर स्वस्थ होने की कल्पना कर रहे हो? वे सभी अज्ञानी, आत्मा को अस्वस्थ कर रहे हैं। रक्त की बोतल चढ़ाने के भाव मन में न आयें, अंग्रेजी औषधियाँ खाने के परिणाम मन में न हों। अनुभव में धर्म समझो। जिसका विनाश होना है उस विनाशी के राग में, अविनाशी को कष्ट क्यों दूँ?

श्रावको! वह अपना घोर शत्रु है जो ऐसी औषधि का सेवन कर रहा है। वह विनाशी के राग में अविनाशी को कष्ट दे रहा है, इसे आप मानते हो क्या? समयसार जैसे अलौकिक ग्रन्थ को सुनना समयसार नहीं है। इस समयसार को देखते हुए समयसार में जीना समयसार है। जब वैद्य कहे - तुम्हारे जीवन के तीन दिन शेष हैं, तब तुम्हारे परिणाम कहें जैसे बने वैसे रक्षा करो। ओ हो ! ''न मे मृत्युः कुतो भीतिर्'' इस सूत्र का ज्ञान नहीं है। सुख के काल में यह सूत्र बोल लेना बहुत सरल है। वैद्य कह रहा है - यह उपचार करवा लो, ठीक हो जायेगा। तब भी तू कहे - मुझे सल्लेखना स्वीकार है, रत्नत्रयधर्म का विसर्जन स्वीकार नहीं है, उस समय देखना।

सैतालीस शक्तियों को समझ रहे हो, कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनय से तू रागादिभावों में लिप्त हो रहा है और कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिकनय से सभी संसारी जीव शुद्ध आत्मा हैं। आलापपद्धति। इस भवन में प्रवेश करते ही अनुभव में आये कि मैं भिन्न द्रव्य में प्रवेश कर गया, ऐसा आपको नहीं लगता यहाँ के वातावरण को देखकरके। टीकमगढ़ में षट्खण्डागम की वाचना होती थी, जब वाचना भवन में प्रवेश करता था, वो वर्गणा ही अलग होती थी। सिद्धांत की भाषावर्गणा ही अलग ही होती थी। वस्तु का विनाश नहीं होता। तीर्थंकर की वाणी भी उनके समवसरण स्थल पर विराजमान है। शब्द स्यात् विनाश को प्राप्त नहीं होते, वे नित्य नहीं हैं, अनित्य हैं, पर अनित्य होते हुए भी कुछ समय तक जीवित रह सकते हैं। शब्द आकाश का धर्म नहीं है, शब्द पुद्गल का ही धर्म है। आकाश अमूर्तिक है, पुद्गल मूर्तिक है। हम

लोग सत्अद्वैतवादी नहीं हैं, शब्दस्फोटवादी नहीं हैं, भतृहरि नहीं हैं, जैन हैं। भतृहरि ने शब्दस्फोट की प्ररूपणा की।

'लघुतत्त्वस्फोट' ग्रन्थ आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी को लिखने की क्या आवश्यकता पड़ गई? यही तो दृष्टि रहती है जगत् में कोई वाक्य का स्रजन करता है तो उसका उत्तर देने के लिए हमारे आचार्य तैयार रहते हैं। **किसी भी चमक में, चित्र में, विचित्र में प्रभावित नहीं हो जाना, नहीं तो आप अपनी संस्कृति से दूर हो जाओगे।** समझ में आ रहा है, सुनने में तो आ रहा है। ''न मे मृत्युः कुतो भीतिर्'' ये शब्द गूँजेगा क्या? ये गूँजने लग गया तो संसार में रुलानेवाली कोई शक्ति नहीं है। पृथक्त्व, भिन्नत्व, एकत्व पर विशाल दृष्टि होगी तब ये समझ में आयेगा। कुछ नहीं उन योगियों का ध्यान ही कर लिया करो, जिनपर अग्नि जल रही हो, जिन को वसूले से छीला जा रहा हो, जिन्हें समुद्र में फेंका जा रहा है। दया भी नहीं आई जब देख रहे हैं ऐसा उनके साथ हो रहा है उस समय उनके ध्रुवधाम चैतन्यधाम को निहारना। ये दया गहरी अन्दर की है और जो मात्र उनके शरीर को देखते हुए मारनेवाले को मात्र मारने खड़ा हो गया है वह अदया है, दयाशून्य। **कैलाश पर्वत पर चढ़कर बहत्तर जिनालय की वंदना करना सरल है, पर अपने भावों के शिखर पर चढ़ना बहुत कठिन है।**

पंडितजी! सुविधाएँ होती हैं तो सभी प्रसन्न दिखते हैं और देह में विषमता होती है तो आपके मुख से निकलता है ठहरो, बाद में समझूँगा। उसी समय आयुकर्म के निषेक पलायन कर गये तो कब समझोगे? इसलिए उन औषधियों से अपनी रक्षा करना चाहिए जिसमें हिंसा हो, स्वयं पर दया है तो स्वयं के प्रति अहिंसाभाव है तो। योगी समाधि क्रियाशक्ति की व्याख्या की यहाँ। अगली शक्ति-

प्राप्य प्रमाणसिद्धरूपभावमयी कर्मशक्तिः ॥ 41 ॥

प्राप्त है सिद्धरूप कर्मशक्ति, सिद्धरूप भावमयी कर्मशक्ति। मैं कर्म का कर्ता नहीं हूँ। मेरी सिद्धावस्था ही मेरा कर्म है अन्य कोई मेरा कर्म नहीं है। श्रावक से मिलो, भावना भाते दिख जाता है, पर भाव बनाते नहीं मिलता। समझो, मैं किस शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ। श्रावको ! मैं भी तो श्रावक था। गृहस्थ अवस्था में दीक्षा के एक मुहूर्त पहले दीक्षा में कोई आनंद नहीं आ रहा था। आचार्य महाराज ने कहा - तुम पर्वत पर चले जाओ वहाँ कपड़े उतार कर साधना करना, सामायिक करना। देखो, अंतरंग का राग; पंडितजी कपड़े उतार दिये, ऐलक था, लँगोटी उतारकर बैठा। कुछ श्रावक दर्शनार्थी आ गये, जैसे ही दर्शनार्थी आये मैंने तो आँखें बंद कर लीं। श्रावक बोले - अपन को तो देर हो गई, इनकी दीक्षा हो चुकी। मैं सोच रहा था कि तुम लोग जल्दी यहाँ से जाओ तो मैं लगोटी पहनूँ। जब- तक उतारकर रखी थी तब-तक उतर नहीं रही थी, त्याग के रखी तो उतरने लगी। जब-जब लँगोटी उतारता था, तो अपने आपको नंगा महसूस करता था और जैसे ही दीक्षा के संस्कार हुए फिर नंगा महसूस नहीं किया, दिगम्बर महसूस किया। ये तुम्हारी अंतरंग प्रतिज्ञा की दृष्टि है। वस्त्र उतारकर कोई भी बैठ लेता है पर निर्वस्त्र होकर

बैठना साधना है। कर्नाटक में अकलंकस्वामी की समाधिस्थलि है। हम लोग दर्शन करने गये, समाधिस्थलि पर एक बब्बा कपड़े उतारे बैठे साधना कर रहे थे। मैंने पहले देखा, अहोभाग्य ! एक मुनिराज मिल गये, पर जैसे ही उनकी दृष्टि मेरी ओर पड़ी बब्बा तुरन्त उठकर के कमरे में गये और कपड़े पहनकर आ गये। कहा - महाराज ! नमोऽस्तु। मैंने कहा - आप मुनि महाराज हो ? नहीं, महाराज ! मैं साधना कर रहा था। देखो, जब-तक त्याग नहीं है तब-तक भय है, जब त्याग है वहाँ निर्भय है। इसलिए आनंद त्याग में है। अपनी अकर्तृत्वशक्ति को, निज की सिद्धत्व कर्तृत्वशक्ति को देखना।

भवत्तारूपसिद्धरूपभावभावकत्वमयी कर्तृशक्तिः ॥ 42 ॥

मैं परकारकों से युक्त नहीं हूँ, परकारक मेरे में नहीं हैं, निजकारक ही मेरे में है, निजकरण ही मेरे में है, निजकर्म ही मेरे में है। निजकर्तृत्व मेरे में है। संसार में होने पर भी निजसिद्धत्व के करण को देख रहा है। संसार में होने पर भी अपने सिद्धत्व को करण में देख रहा है। कोई जगत् के किसी भी करण में नहीं देखता; जैसे- बेलन से रोटी नहीं बनती है आटे से बनती है, वैसे ही पर के भावों से मुझे मुक्ति नहीं मिलती है। समझिए, मेरा करण मैं ही हूँ, ये स्थूलदृष्टियाँ हैं बहिर्दृष्टियाँ हैं जोकि मैं पर का कर्ता बन लेता हूँ, करण बन लेता हूँ, कर्म बन लेता हूँ। जैनदर्शन में सबसे मुख्य कोई सिद्धांत है-अकर्तृत्वभाव। इसलिए माताओ ! तेरी कृपा से सब काम हो रहे हैं, ऐसे सब भजनों पर विवेक रखना, व्यवहारदृष्टि अत्यंत स्थूल है किसी की कृपा से कुछ नहीं हो रहा है।

मेरा बंध, मेरा मोक्ष; न गुरु के हाथ में है, न प्रभु के हाथ में। राग में लिप्त जीव कोई अपना कर्ता गुरु को मानता है, कोई अपना कर्ता प्रभु को मानता है, उसी में क्लेश को प्राप्त होता है। यह विषय समझना बहुत कठिन है। **सारे विषय समझ लेना सरल है पर कर्तृत्व को समझना बहुत कठिन है। जैनदर्शन का मूलसिद्धांत - अकर्तृत्वभाव है।** हे माँ ! दो बेटे बीमार हैं, वैद्य बोल रहा है अब बचना मुश्किल है, एक पड़ोसी का है, एक आपका है। आप रोयेंगे कब? वैद्य कह रहा है - अड़तालीस मिनट के अन्दर-अन्दर ये हंस निकल जायेगा इस देह से। उस समय तुम्हारे परिणामों की धारा क्या होगी? यथार्थ बोलना, पड़ोसी के बेटे को देखकरके एक आँसू नहीं टपका जबकि वो भी पुत्र था और स्वयं के बेटे को देखकर सिर पटकना प्रारंभ कर दिया। ये **किसने रुलाया आपको? कर्तृत्वदृष्टि ने।**

भैया ! मोक्षमार्ग में लगने के पूर्व से ही अकर्तृत्व को देखना प्रारंभ कर देना चाहिए। मेरा संघ, मेरा गण, मेरा गच्छ; कर्तृत्वदृष्टि। इसलिए वे वीतरागी तपोधन परिहार-विशुद्धि, संयमी, जिनकल्पी योगी एकांत में एकल विहार करते हैं, बोले - मैं किसी का कर्ता नहीं हूँ। साथ में रहूँगा तो किसी के सुख-दुःख के विकल्प आयेंगे। पर ध्यान रखना, पंचमकाल में एकल विहार की आज्ञा नहीं है। मेरा शत्रु भी क्यों न हो तब भी एकल विहार नहीं करना। एकल विहार से तात्पर्य - आर्यिका और मुनि है तब भी एकल विहारी। मुनि और क्षुल्लक एकल है, तब भी एकल विहार ही कहलायेगा। दिगम्बर मुनि का अन्य मुनि

के साथ होना ही एकल विहार की निवृत्ति है। लोकव्यवस्था, संघव्यवस्था यहाँ मत लगाना; यहाँ मात्र आगम व्यवस्था लगाना।

आत्मद्रव्य स्वयं में ही कर्ता है, स्वयं में ही क्रिया है, स्वयं में ही कर्म है और स्वयं में ही करण है। न इसका कोई कर्ता है, न इसका कोई कर्म है, न इसकी कोई अन्य क्रिया है, न अन्य कोई करण है। पर-कर्तृत्वभाव आत्मा के ध्रुवत्वपने को प्रगट नहीं करता। जहाँ जीव की कर्त्तादृष्टि है वह विपरीतदृष्टि है। भगवान् आत्मा स्वयं को कैसे प्रगट करता है? **जिसको किया जाता है वह कर्म है, जिससे किया जाता है वह करण है, जो करता है वह कर्त्ता है।** कर्त्ता कौन है? **यः करोति स कर्त्ता।** जो क्रिया को करता है उसका नाम कर्त्ता है। कर्म क्या है? **यत् क्रियते तत्कर्म।** जिसको किया जाता है वह कर्म है। करण क्या है? **'येन क्रियते तत् करणम्'** जिससे किया जाये उसका नाम करण है।

अभेदकारक की दृष्टि में **'यत् क्रियते तत् कर्म'**, जिसे किया जाता है उसका नाम कर्म है। सिद्ध परमात्मा हुए हैं, बहुत गहरे में जाना, सिद्ध परमात्मा अशरीरी भगवान् हुए हैं, स्यात्। यदि हुए हैं, नहीं मानते तो सदा मोक्ष होता है और सर्वदा मोक्ष होता है तो संसार का अभाव होता है। यदि संसार का अभाव होता है तो मोक्ष का भी अभाव होता है। यदि आलापपद्धति, नयचक्र -इनके पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिकनय के भेद हैं। इनको यदि व्यक्ति समझ लेता है तो सारे विकल्प समाप्त होते हैं। यह कर्मशक्ति, करणशक्ति, क्रियाशक्ति, कृतिशक्ति। ध्यान देना, हम जैनत्व को समझते हुए कहीं सदाशिव में प्रवेश न कर जायें। हम जैनत्व को समझते हुए कहीं सांख्य में प्रवेश न कर जायें। हम जैनत्व को समझते हुए जैनत्व में लीन हो जायें इसलिए आपको समयसार समझना चाहिए। कारण; कर्मशक्ति और कर्तृशक्ति ये अत्यन्त गंभीर विषय हैं।

वे सिद्ध परमात्मा पर-क्रिया से परिणत नहीं हुए, स्वक्रिया से ही स्व में परिणत हुए हैं। मेरी आत्मा में परकृत परिणमन नहीं है, मेरी आत्मा में स्वकृत परिणमन ही है। परकृत परिणमन हो जायेगा, तो अणु-अणु स्वतंत्र है, कण-कण स्वतंत्र; इस सिद्धांत का अवर्णवाद हो जायेगा, लोप नहीं होगा। किसी के विपरीत कथन से वस्तुव्यवस्था भंग नहीं होती, यदि किसी व्यक्ति ने हाथी को चूहा कहना प्रारंभ कर दिया तो हाथी को चूहा आप कह सकते हो, इसमें आप स्वतंत्र हो, पर आप हाथी को चूहा बना नहीं सकते हो। इसमें आप परतंत्र हो। हाथी को चूहा कहने में आप अपना समूह भी बना सकते हो और आजकल तो दुनियाँ में कितने-कितने इलेक्ट्रॉनिक साधन चल गये हैं, घर बैठे-बैठे समूह बना लेते हैं। ऐसे ही समूह बना सकते हो कि हाथी को अपन चूहा बोलेंगे कोई कुछ भी कहे, तो एक समूह हाथी को चूहा कह सकता है। लेकिन जब भी आपको भगवान् जिनेन्द्र की रथयात्रा निकालना होगी उसमें चूहा नहीं चलेगा वो हाथी ही चलेगा। ऐसे ही जगत् में नाना प्रकार के जीव हुए हैं उन्होंने एक-एक नय का आलम्बन लिया और एक-एक नय का आलम्बन लेकर के इस बात को भूल गये।

जावदिया वयणवहा, तावदिया चेव होंति णयवाया।
जावदिया णयवाया, तावदिया चेव परसमया॥3/47,स.सु.॥

जितने वचनवाद हैं उतने नयवाद हैं। मैं कहाँ से बोल रहा हूँ। यह मूलतः गाथा प्रवचनसारजी की है, यह धवलाजी में भी गाथा आई है, धवलाजी की भी नहीं है यह मूलतः गाथा है 'सम्मईसुत्तं' की। 'सम्मई सुत्तं' आचार्य सिद्धसेनगणी विरचित है। जितने वचनवाद हैं उतने ही नयवाद हैं।

देवसेनस्वामी कहते हैं, **'श्रुत विकल्पो वा नयः, ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः।'** श्रुत के विकल्प का नाम नय है, ज्ञाता के अभिप्राय का नाम नय है। हम ज्ञाता के अभिप्राय को तो समझें, लेकिन उसमें ध्यान दें कि ये ज्ञाता का अभिप्राय सु-उपसर्ग सहित है या कु-उपसर्ग सहित है। यदि यह जीव परनय को निरपेक्ष करके देखता है तो वह नय कुनय हो जाता है। यदि जीव परनय को निरपेक्षरूप नहीं देखता, उसका विरोध भी नहीं करता, अपनी बात को मात्र कहता है, वह सुनय है।

शब्दनय का विषय शब्दनय है वह अर्थनय का विरोध नहीं करता, अर्थनय का विषय अर्थनय है वह कभी शब्दनय का विरोध नहीं करता है। द्रव्यार्थिकनय का विषय है वह कभी पर्यायार्थिकनय का विरोध नहीं करता और पर्यायदृष्टि का विषय पर्याय है वह कभी द्रव्यदृष्टि का विरोध नहीं करता। ये नयों की भूल नहीं है, ये नयों को अधूरे जाननेवालों की भूल है। जो जीव वस्तु को एकरूप ही देखते हैं, तो वस्तु एकरूप नहीं है क्या? है। एकस्वभाव, अनेकस्वभाव; आत्मा एकस्वभावी भी है, आत्मा अनेकस्वभावी भी है। अनंतगुणों की दृष्टि से आत्मा अनेकस्वभावी है, पर अनंतगुणों का अधिकरण आत्मा ही है - एकस्वभावी है। अब कहीं उसमें आप एकस्वभाव को ही लेकर बैठ जायें, ये नय का दोष नहीं है, ये आपकी दृष्टि का दोष है। नय तो यह कह रहा था, भाई! आपको मालूम होना चाहिए मेरी परिभाषा ही ये है - 'श्रुत विकल्पो वा नयः' जो श्रुत का विकल्प है वह नय है।

''विकलादेशो नयाधीनः, सकलादेशःप्रमाणाधीनो''।

जो एकदेश को ग्रहण कर रहा है वह नय है, जो सकल को ग्रहण कर रहा है वह प्रमाण है। इसलिए जब हम एक नय की व्याख्या करें तो शेष नयों को गौण करना, अभाव नहीं करना। अभाव हो भी नहीं सकता है। इसलिए जहाँ हमने कहा कि जगत् का कोई कर्ता है, सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मा से निर्मित्त है। अब सुनना बड़े सँभल के, सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मा से निर्मित है इस बात को कोई जैनी झेल पाये बहुत कठिन है, परन्तु जैनी जैनीनीति से झेल सकता है। पंडितजी! जगत् ब्रह्मा से निर्मित है, बोले-कैसे? हे जीव! जितने आपको जगत् में जितने पदार्थ दिख रहे हैं, वनस्पति से लेकरके पर्वत तक, जगत् में जितने तिर्यञ्च और मनुष्य हैं, स्थावर-त्रस हैं, वे जीव हैं कि नहीं? जहाँ तुम घूम रहे हो, पृथ्वी पर घूम रहे हो कि नहीं? पर्वतों पर घूम रहे हो, वनस्पति को निहार रहे हो, पंचस्थावर को ही तो आप देख रहे हो, ये पंचस्थावर क्या हैं ? इनमें एकेन्द्रियजीव है कि नहीं, वो ब्रह्मशक्ति से सम्पन्न हैं कि नहीं? जगत् में ऐसा कोई स्थान नहीं है जो

ब्रह्ममय न हो। पूरी बात समझना नहीं तो मिथ्यात्व में डूब जाओगे। सारा जगत् ब्रह्ममय है ? हाँ। कैसा ब्रह्ममय ?

मल रहिओ णाणमओ निवसइ सिद्धीए जारिसो सिद्धो।
तारिसओ देहत्थो परमो बंभो मुणेयव्वो॥ 26/त.सा.॥

मल से रहित ज्ञानमयी जैसा ब्रह्म सिद्धशिला पर विराजता है ऐसा ही ब्रह्म मेरे देह में विराजमान है। उनमें और मेरे देह में विराजमान ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है ब्रह्मत्व की दृष्टि से। अंतर मात्र इतना है कि वह पूर्वोक्त शुद्ध ज्ञानचेतना में लीन है और स्थावर आदि जो जीव हैं वे कर्मफलचेतना में लीन हैं, त्रस कर्मचेतना और कर्मफलचेतना में लीन हैं, प्राणों से अतिक्रांत हैं। शुद्धज्ञानचेतना; जहाँ कर्मचेतना का पूर्ण अभाव है। यहाँ अर्हंतअवस्था भी ग्रहण नहीं करना।

शुद्ध ज्ञानचेतना अर्हंत को नहीं है। आप समझिए, क्षायिकज्ञान है तब भी शुद्धज्ञानचेतना अर्हंतों के नहीं है। अभी चार अघातिया कर्म विद्यमान हैं, अभी उनकी संज्ञा त्रसपर्याय में ही है। ज्ञानी लोग वास्तव में कम हैं, सुनी-सुनाई कहनेवाले अधिक हैं। जब-तक अर्हंत की संसारपर्याय को नहीं स्वीकारेंगे तब-तक सिद्ध की मुक्तपर्याय को घटित करोगे कैसे?

आज की तीनों शक्तियों को अपने को विशाल रूप में समझना है। अर्हंत भगवान् चार कर्मों से रहित हैं और गतियों की अपेक्षा से भले भावमोक्ष हो चुका है, मनुष्य आयु चल रही है, सातावेदनीय का उदय साथ में असाता भी है, ग्यारह परीषह तेरहवें गुणस्थान तक हैं। परीषह साता में नहीं आते, परीषह असाता में ही आते हैं। **'एकादश जिने'** क्षुधा परीषह भी है, तो भगवान् को कवलाहार होना चाहिए? नहीं होना चाहिए, क्योंकि जो प्रवृत्ति है, साता-असाता का काम वेदन कराना है, परन्तु मोहित कौन करता है? मोहनीयकर्म। जिसके मोहनीयकर्म का अभाव हो चुका है, उसको साता-असाता का वेदन नहीं होता। इसलिए केवली को कवलाहार नहीं होता है पर कर्म की सत्ता तो आपको स्वीकारना पड़ेगी। ऐसा सूक्ष्म विषय है, भले त्रैकालिक वस्तुत्व-स्वभाव से आत्मा शुद्ध है, लेकिन सिद्धांतदृष्टि से देखते हैं तो सारी व्यवस्थाओं को लेकर देखते हैं, अर्हंतदेव को शुद्धज्ञानचेतना से युक्त क्यों नहीं कह रहे हो आप? इसलिए नहीं कह रहा हूँ क्योंकि -

मुक्तामुक्तैकरूपो यः, कर्मभिः संविदादिना।
अक्षयं परमात्मानं, ज्ञानमूर्तिं नमामितम्॥1/स्.सं.॥

जो ज्ञानमूर्ति संज्ञा है वह अर्हंतों की नहीं है, सिद्धों की है। ज्ञानमूर्ति संज्ञा अर्हंतों की नहीं है क्योंकि वे अक्षय नहीं हैं, सिद्ध अक्षय हैं। अर्हंत का क्षय होगा, अर्हंतपर्याय सादि अनित्य है, सिद्धपर्याय सादि नित्य है। अर्हंत प्रगट हुए हैं पर नष्ट होंगे, पर्यायदृष्टि से। सिद्ध प्रगट हुए हैं पर नष्ट नहीं होंगे। अब उनका क्षय नहीं होगा। अर्हंत परमात्मा को हम परमऔदारिक शरीर के रूप में देख लेते हैं समवसरण में गंधकुटी

में; तिर्यंच, देव, मनुष्य सभी देख सकते हैं, बारह सभाएँ लगती हैं। वे परमऔदारिक शरीर से युक्त हैं, ज्ञानवान् हैं, ज्ञानयुक्त हैं, पर ज्ञानमूर्ति नहीं हैं। अर्हंत भगवान् स्यात् अचेतन कर्म-नोकर्म के साथ हैं, अचेतन के साथ होने से वो भी अचेतन, मूर्तिक हैं -बंध दृष्टि। सिद्ध परमात्मा मूर्तिक हैं मात्र चेतनमूर्ति। अकलंकस्वामी ने 'स्वरूपसम्बोधन' ग्रन्थ में पच्चीस श्लोकों में जैनग्रन्थ का सार भर दिया है। जो विषय अन्य ग्रन्थों में उद्घाटित नहीं हुआ वह विषय पच्चीस श्लोकों में उद्घाटित हुआ है। सिद्धपरमात्मा अक्षय अनंत ज्ञानमूर्ति हैं। शुद्धज्ञानचेतना से युक्त हैं। कोई कर्मचेतना नहीं है वहाँ पर, कोई कर्मफलचेतना नहीं, इसलिए सिद्धालय में विराजे परमब्रह्म हैं। वे प्रगट परमब्रह्म हैं और देहदेवालय में विराजे वे अप्रगट परम ब्रह्म हैं।

शक्तिमान ब्रह्म, व्यक्तमान ब्रह्म। यदि शक्तिमान ब्रह्म को कोई नहीं स्वीकार पायेगा, तो आपके रत्नत्रयधर्म के पालन का उद्देश्य क्या? शक्तिमान ब्रह्म को ही आप व्यक्तमान मान बैठोगे, फिर अशुद्ध पर्याय में भी शुद्ध परमात्मा दिखाई देना पड़ेगा, जो कि संभव नहीं है। इसलिए शक्तिमान ब्रह्म कहाँ? देह-देवालय में और सिद्धालय में व्यक्तमान ब्रह्म। अब कहोगे – आपने तो जगत्ब्रह्म की सिद्धि कर दी। थोड़ा रुको, जगत् ब्रह्ममयी है। मैंने कब कहा जगत् ब्रह्ममयी नहीं है? पर समझिए, हमारा जगत् ब्रह्ममय तो है पर जगत् एकब्रह्ममय नहीं है। आपका जगत् एकब्रह्ममय है, हमारा जगत् एकब्रह्ममय नहीं है। प्रत्येक आत्मा ब्रह्मस्वरूप है और जगत् में जितने स्थावर हैं उन सब में एकेन्द्रियजीव है, वही जीव निकलकरके आत्मा का क्रमिक विकास करते हुए प्रगट परमात्मा होगा, इसलिए जगत् ब्रह्ममय है, शक्तिरूप न कि जगत्कर्ता ब्रह्मा। समझ में आ गया। जगत् ब्रह्ममय है और ऐसा समय भी आता है जब सारे जगत् में हमारा ब्रह्म व्याप्त होता है। सारे लोक में, त्रिलोक में हमारा एक ब्रह्म व्याप्त होता है, आपको मालूम है क्या? जब केवली समुद्घात करते हैं; लोकपूरण समुद्घातकाल में उन केवली भगवंत के प्रदेश सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो जाते हैं, उस समय हमारा ब्रह्म परमात्मा सर्व में व्याप्त होता है।

स्वदेह प्रमितश्चायं, ज्ञानमात्रोऽपि नैव सः।
ततः सर्वगतश्चायं, विश्वव्यापी न सर्वथा।। 5/स्व.सं।।

'स्वरूपसम्बोधन' पच्चीस श्लोक का महान् ग्रन्थ है। आप लोग चेतन हो या अचेतन? सिद्धपरमात्मा चेतन हैं कि अचेतन? ज्ञानी! कर्मसहित आत्मा को तो आप अचेतन कहना जानते हो पर कर्मरहित आत्मा भी अचेतन है, सिद्ध भगवान् भी अचेतन हैं, मैं भी अचेतन हूँ, आप भी अचेतन हैं, स्यात्। जीव का लक्षण क्या है **'उपयोगो लक्षणम्'** ? उपयोग क्या है ? ज्ञान-दर्शन। ज्ञान-दर्शन ही तो चेतन है, चेतन गुण कितने हैं? दो। आपकी आत्मा और सिद्धों की आत्मा दो ही गुणों से युक्त है कि और भी गुण हैं ?

अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वमगुरुलघुत्वं, प्रदेशत्वं, चेतनत्व-
मचेतनत्वं, मूर्तत्वं, अमूर्तत्वं द्रव्याणां दश सामान्य गुणाः ।। 9/आ.प.।।

ये गुण नहीं हैं क्या? हैं। इन गुणों में से कितने गुण चेतनभूत हैं? मात्र दो। शेष गुण कैसे हैं ? अचेतन हैं। आत्मा चेतन है कि अचेतन? स्यात् चेतन, स्यात् अचेतन। अब आपसे कोई प्रश्न करे, जीव कैसा है? स्यात् चेतन, स्यात् अचेतन। बोले - कर्मसापेक्ष, कर्मसापेक्ष नहीं स्वभाव से। **प्रमेयत्व आदि की अपेक्षा से आत्मा अचेतनधर्मी है और ज्ञानदर्शन की अपेक्षा से आत्मा चेतनधर्मी है।**

प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः।
ज्ञान दर्शन तस्तस्माच्चेतना चेतनात्मकः ॥3/स्.सं.॥

एवकार नहीं लगाओगे, तो वस्तु का निर्णय नहीं होगा। इसलिए प्रत्येक नय अपने आप में एवकार युक्त होता है। प्रत्येक नय अपने निर्णय में एवकार होता है, अनेकांत अपि होता है। पंडितजी! अपने बेटे की अपेक्षा से पिता ही हैं, अन्य कोई सम्बंध नहीं, पर पंडितजी ! आप पिता ही नहीं हैं, भाई भी हैं, बेटा भी हैं, भानजा भी हैं इसलिए 'युक्त्यनुशासन' में आचार्य समन्तभद्रस्वामी ने एवकार और अपि के बारे में बहुत सुन्दर वर्णन किया है। नय का निर्णय स्व में एवकार है। सिद्ध परमात्मा ज्ञानमूर्ति एव, एवकार; सिद्धपरमात्मा शुद्ध ज्ञानचेतनाभोक्ता, सिद्धपरमात्मा शुद्धज्ञान एव करण।

यः परिणमति स कर्ता यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म।
या परिणतिः क्रिया सा त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया ॥51/अ.अ.क॥

भेदवृत्ति, अभेदवृत्ति। अभी यहाँ भेदवृत्ति नहीं चल रही है, अभी यहाँ अभेदवृत्ति चल रही है। अभेद में भेदवृत्ति, भेद में भेदवृत्ति की व्याख्या नहीं है। ये शब्दावली जो है वह समयसार की नहीं चल रही, ये शब्दावली जो है वह अष्टसहस्री की है, अथवा प्रमेयकमलमार्तण्ड की। इसलिए कर्मशक्ति, थोड़ा व्यवहार में उतरकर आ रहा हूँ फिर चलता हूँ ऊपर।

हे जीव! क्या तू मानके बैठा है कि अमुकदेव की आराधना करूँगा तो मेरे घर में धन बढ़ेगा। अमुकदेव की आराधना करूँगा तो मेरी शादी हो जायेगी। मैं अमुकदेव की उपासना करूँगा तो श्रेष्ठ वर मिलेगा। सुनते जाना, अमुक देवता की उपासना करूँगा तो मेरा परिवार अच्छे से रहेगा। हे जीव ! चार गति स्वतंत्र हैं, आप मानते हो कि नहीं? एक गति का दूसरी गति में अत्यंताभाव है , क्यों? एक गति में, एक समय में भिन्न जीव होता है। चारों गति में एक समय में एक जीव नहीं होता। एक समय में, एक गति में एक ही स्वतंत्र जीव होगा। नारकी स्वतंत्र, देव स्वतंत्र, तिर्यंच स्वतंत्र, मनुष्य स्वतंत्र। चार गतियाँ हैं, इन चार गतियों में चार प्राणी हैं, एक ही प्राणी चारों गतियों में नहीं है, चारों अलग-अलग हैं। क्या देवगति का जीव वर्तमान में मनुष्यगति का वेदन कर सकता है? नहीं कर सकता, ये पर्याय की प्रत्यासत्ति ऐसी है। मनुष्यगति का जीव क्या तिर्यंचगति का अनुभव ले सकता है, आप तिर्यंचगति का अनुभव वेदन कर सकते हो? नहीं कर सकते। ये चारों गतियों में स्वतंत्र-स्वतंत्र जीव हैं। एक जीव का दूसरे में अत्यंताभाव है और जीवत्व की दृष्टि से भी एक-दूसरे की गतियों में अत्यंताभाव है।

जब आप मनुष्य बने हो, ज्ञानी ! कुछ रहस्य को भी तो जानते चलो, नहीं तो ऐसा न हो जाये हम शब्दों की मधुरता में बहते चले जायें। बहुत अच्छा लगा महाराज ने कहा है पर भीतर का मिथ्यात्व भी तो टूटता चले जिसके कारण से पंचमकाल देखने को मिला है। उस मिथ्यात्व के बारे में भी तो समझो। यदि अनादि से मिथ्यात्व का कोप न होता तुम्हारे ऊपर तो पंचमकाल के दर्शन न होते, अपन भी सिद्धालय में होते। आज जो वर्तमान में मनुष्यगति मिली है तो आप किस देव के वरदान से मनुष्य बने हो? इतनी-सी बात का उत्तर दो शीघ्र।

ज्ञानी! आप मनुष्य बने हो, इतने उज्ज्वलकुल में जन्मे हो तो आप कौन से देवता की कृपा से मनुष्य बने हो? हृदय से बोलना, ऊपरी-ऊपरी नहीं बने। स्वयं से बने हो, माता-पिता की इच्छा से नहीं बने हो। ये तो अपरिचित लोग हैं, आप तो इनसे परिचित थे ही नहीं। ये तो मानने लगे अपन को, सो मानने दो। अपन तो पुण्य कमाके आये थे, नौकर कमाकर रख रहे, रखने दो। माता-पिता की इच्छा से नहीं जन्मे, ध्यान रखना। माता-पिता की इच्छा से जन्मे होते तो जगत् में कोई बिना पुत्र के न होता और जो माता-पिता नहीं बनना चाहते उनके करोड़ों उपाय करने पर भी पुत्र का जन्म देखा गया। उन अभागों से पूछो - तुमने सब काम करा लिए थे, फिर भी कहाँ रोक पाये। अब सोचो, जब मेरा जन्म ही मेरी स्वतंत्रता से हुआ है तो मेरा मरण भी मेरी स्वतंत्रता से होगा। मेरे जीवन का यापन जो चल रहा है वह भी मेरी स्वतंत्रता से होगा। जैसा मैंने कर्मबंध किया था, वैसा कर्म उदय में आयेगा।

परकृत न मेरे पास सुख है, परकृत न मेरे पास दुःख है। जो सुख-दुःख में निमित्त बन रहे हैं, वे भी मेरे ही कर्म के विपाक से। मैं क्यों व्यर्थ में, जगत् में रुलने जाऊँ, अपने मस्तिष्क को फोड़ने जाऊँ कि आपकी कृपा से मेरा काम हो जायेगा। विश्वास रखो, जिस पुण्य ने यहाँ तक भेजा है उस पुण्य की खोज करलो। व्यवहार से बोल रहा हूँ जिस पुण्य ने यहाँ तक भेजा है उसी पुण्य की खोज कर लो। पुण्य कहाँ से मिला था? पंचपरमेष्ठी की आराधना से। पंचपरमेष्ठी की आराधना में लग जाओ, चाहना कुछ नहीं, आकांक्षा करना मत, **रत्नत्रयधर्म की आराधना करोगे समग्ररूप से तो पुण्य-पाप दोनों से मुक्त होकर परमात्मा हो जाओगे और रत्नत्रय की आराधना करोगे असमग्ररूप से तो चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, सौधर्म इन्द्र, सर्वार्थसिद्धि के देव बनाने की सामर्थ्य इस रत्नत्रयधर्म की असमग्रता में है।**

रत्नत्रय की समग्रता मोक्ष ही भेजती है, रत्नत्रय तो निर्वाण का ही हेतु है, बंध का हेतु नहीं है, ये सर्वथा आस्रव का हेतु नहीं है, रत्नत्रय तो मोक्ष का ही हेतु है। जो जीव वास्तव में तत्त्व को नहीं जानते, वे कुन्दकुन्द भगवन्त की गाथाओं को समझ नहीं पाते। पुण्य-पाप अधिकार में जब कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं – हे जीव! व्रत नियम संयम से मोक्ष नहीं होता। अज्ञानियों ने क्या किया, सब छोड़के बैठ गये। इन जीवों से पूछो तो मोक्ष किससे होता है? अरे ! कुन्दकुन्द की पूरी गाथा का अर्थ तो समझ लो। यदि पूरी

गाथा नहीं समझ पाये, स्वयं समझे नहीं, दूसरे को समझाने बैठ गये। मित्र ! विश्वास रखना उस जीव को तुमने उभयलोक से नष्ट कर दिया।

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता।
परमट्ठ बाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति॥ 153/स.सा.॥

कुन्दकुन्दस्वामी यह नहीं कह रहे हैं कि व्रत-संयमशील से मोक्ष नहीं मिलता। वे ये कह रहे हैं कि व्रत और नियम को धरते हुए संयमशील का पालन करते हुए भी, जो परमार्थदृष्टि से शून्य हैं ऐसे जीव निर्वाण को प्राप्त नहीं होते हैं। अर्थ में अंतर आया, गाथा का तृतीय चरण महत्त्वपूर्ण था, 'परमट्ठ बाहिरा' इस पर ध्यान देना था, ऐसे ही हम केवली को कर्ता न बना बैठें। भैया! केवली मेरा कर्ता नहीं है। ये ध्यान रखना। भगवान् के केवलज्ञान से कुछ भी मेरे अन्दर परिणमन होता नहीं। पंडितजी ! आप मानते हो क्या ऐसा? बराबर मानते हो। अरे ! बहुत सारे लोग तो मानते ही नहीं हैं। वो कैसा मानते हैं? जैसा केवली भगवान् ने देखा वो होगा। यानी केवली को तुमने क्या किया? जैसे ईश्वरवादी बोलता है – जैसी ईश्वर की मर्जी होगी वैसा होगा, वैसे ही जैनी बोलते हैं – केवली की जैसी देखने की दृष्टि होगी वैसा होगा। अरे मित्र! सुनो, ऐसा नहीं है; जैसा-जैसा होना है, जैसा-जैसा हुआ है, जैसा-जैसा होगा, जैसा-जैसा हो रहा है वैसा-वैसा केवली के ज्ञान में झलकता है, पर उनके होने से नहीं होता है। भाषा बदलो, नहीं तो कर्ता हो जायेंगे तुम्हारे भगवान्। उसी का खण्डन करने बैठे हैं, समझ में आया। वो केवली भगवन्त जो हैं, वे सर्वज्ञ हैं कि आत्मज्ञ हैं? भगवान् केवली ईहापूर्वक जानते नहीं, भगवान् केवली ईहापूर्वक देखते नहीं। नियमसार ग्रन्थ में कुन्दकुन्दस्वामी ने यह विषय लिखा है। भगवान् कुन्दकुन्द के जब-तक पूर्ण ग्रन्थों का स्वाध्याय न हो जाये, तब-तक एक ग्रन्थ से कोई निर्णय मत ले लेना। नियमसार का विषय अलग है। बहुत सारे विद्वान् तो नियमसार को पढ़ते ही नहीं। आचार्य कुन्दकुन्द के पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड, समयसार - इन ग्रन्थों का क्रम से अध्ययन हो जाए तो आनंद आ जायेगा।

जाणदि पस्सदि सव्वं ववहारणएण केवली भगवं।
केवलणाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं॥ 159/नि.सा.॥

सम्पूर्ण लोकालोक को व्यवहारनय से केवली भगवान् जानते हैं, देखते हैं, परन्तु निश्चय से जहाँ मोह ही नहीं है, मोहनीयकर्म का अभाव हो चुका है, वहाँ किसी के बारे में देखने का विचार, विचार तो मन में ही होता है, मन का काम ही समाप्त हो चुका है केवली के। अर्हंत अवस्था में द्रव्यमन तो होता है पर भावमन नहीं होता, इसलिए संज्ञी हैं कि असंज्ञी? बोलो। देखो पंडितजी ! इन लोगों को समझा देना। इन्हें स्यात् का भूत न चढ़ जाये, नहीं तो हर बात में स्यात्, स्यात् संज्ञी, स्यात् असंज्ञी। माताओ! बताओ धर्मद्रव्य मूर्तिक है कि अमूर्तिक? अमूर्तिक। स्यात् क्यों नहीं लगाया। इसलिए ध्यान रखना, जहाँ स्यात् लगे वहीं लगाना।

'अनेकांतोऽप्यनेकान्तः।' अनेकांत भी अनेकांत है। क्या पूछ रहा था, केवली भगवान् संज्ञी कि असंज्ञी? तो ये लोग कह रहे स्यात्। दोनों नहीं हैं तो असंज्ञी केवली बन सकता है क्या? सिद्धांत का नियम है – पंचेन्द्रियसंज्ञी कर्मभूमिया पर्याप्तक जाग्रत; ये जीव सम्यक्त्व के योग्य होता है। फिर केवली कैसे बन सकता है असंज्ञी? तो अर्हंत भगवान् क्या हैं? सुनो, भावमन का काम नहीं है, द्रव्यमन है। भावमन काम नहीं करता इसलिए संज्ञी नहीं हैं, द्रव्यमन है इसलिए असंज्ञी नहीं हैं; इसलिए न संज्ञी, न असंज्ञी।ये षट्खण्डागम का सूत्र है - न संज्ञी न असंज्ञी। फिर क्या हैं ? 'जो है सो है'। सबसे महान् उत्तर विश्व का 'जो है सो है'।

क्षायिक ज्ञान है, तो क्या कह रहे हैं? प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतंत्र है। हम अपनी पर्याय को पराधीन न बनायें। हम स्वतंत्र होकर जन्मे हैं, स्वतंत्र होकर मरण करेंगे। न कोई देव मेरी रक्षा करेगा, न कोई देवी रक्षा करेगी, न कोई मार सकेगा। ध्यान रखना, यदि पुण्य क्षीण हो गया है तो घर का बेटा भी शत्रु बन जायेगा। पुण्य प्रबल है तो श्मसान घाट पर कोई रक्षा करनेवाला मिल जायेगा। जीवन्धर कुमार से मिलो तो सत्यता क्या है ज्ञात होगी।

कामादिप्रभवश्चित्रः कर्मबन्धानुरूपतः।
तच्च कर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्धय् शुद्धितः॥ 99/आ.मी.॥

जैसा तेरे चिन्तन में चित्र चल रहा होगा, वैसा तेरा कर्म का चित्र खिंचेगा। भाई ! इंजीनियर पहले भवन बनाता है कि नक्शा बनाता है? नक्शा बनाता है। नक्शा कागज पर कि मस्तिष्क में? इंजीनियर पहले मस्तिष्क में नक्शा बना लेता है। तुम्हारे घर में कहाँ रसोईघर होगा, कहाँ क्या होगा, सब मस्तिष्क में है। पर वो मस्तिष्कवाला नक्शा है भवन का, उसमें तुम रोटी नहीं पका सकते। भाई ! सुन, ऐसे ही चतुर्थगुणस्थानवर्ती को शुद्धोपयोग है। वह इसके मस्तिष्क में बना नक्शा है और सप्तम गुणस्थानवर्ती का जो शुद्धोपयोग है वह बना हुआ मकान है। जितने भी आध्यात्मिक शास्त्र हैं उन सभी ग्रन्थों के टीकाकारों ने यह लिखा 'भरतसगररामपाण्डवादया' जैसे भरत, सगर, राम, पाण्डव आदि गृहस्थ अवस्थायां आत्मभावना वर्तते, शुद्धभावना वर्तते, शुद्धोपयोगभावना वर्तते, इन जीवों के शुद्धोपयोग की भावना देखी जाती है। भावनारूप शुद्धोपयोग इनको होना ही चाहिए, तात्पर्य समझना, लेकिन भावरूप वीतरागचारित्र की अविनाभावीरूप वीतराग सम्यग्दृष्टिजीव अप्रमत्त गुणस्थानवर्तीजीव को ही स्वीकार किया है।

सुविदिदपयत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो।
समणो समसुहदुक्खो भणदो सुद्धोवओगो त्ति॥ 14/प्र.सा.॥

जिन्होंने सूत्रों को पदार्थों को अच्छी तरह से जान लिया है, जिनका राग बीत चुका है, ऐसे श्रमण जो सुख-दुःख में सम्यग्दृष्टि रखते हैं उन्हें शुद्धोपयोगी कहा है। इस गाथा में कोई कुछ कर नहीं सकता। विगत

रागो में आप कहो कि सम्यग्दृष्टि ने मिथ्यात्व के राग को जीत लिया है। ज्ञानी ! वहाँ श्रमण शब्द का प्रयोग है, श्रावक शब्द का नहीं है। हाँ, जब हम विगतराग की बात करें तो क्षायिकसम्यग्दृष्टिजीव को वीतराग सम्यक्त्व की संज्ञा दी है आचार्य अकलंक स्वामी ने। वो मिथ्यात्व की विजय की अपेक्षा से संज्ञा है न कि चारित्रमोहनीय की अपेक्षा। चारित्रमोहनीय की हम बात करेंगे, तो यथार्थ में वीतराग संज्ञा ग्यारहवें गुणस्थान से प्राप्त होगी और क्षय की अपेक्षा कथन करेंगे तो पूर्ण वीतरागी संज्ञा बारहवें गुणस्थान से क्षीणमोह गुणस्थान से प्राप्त होगी। अब ये जीव संसार में रुलनेवाला नहीं है, कौन? जो बारहवें गुणस्थान में पहुँच चुका है, विश्व की कोई शक्ति नहीं है जो उसे संसार में रोककर रख सके।

भैया! शादी हो गई। जिस दिन मण्डप की ओर बारात जा रही थी, तू बता सकता है, जैसे ही द्वार दिखना प्रारंभ हो गया था, कहाँ का? जहाँ बननेवाली तेरी वधू बैठी हुई थी उस मकान को देखते ही तेरे भीतर क्या हो रहा था? पंडितजी ! क्या अलौकिक अनुभूति आप ले रहे थे। इसे भगवान् सिद्ध, अर्हंत कोई दिखाई नहीं दे रहे थे। कोई नहीं, मात्र वधू। प्रमेयरत्नमाला में लिखा हुआ है। एक रागीजीव अंधी कोठी में, काली पट्टी आँखों पर पड़ी हुई है, तब भी उसे अपनी प्रियतमा का चेहरा दिखाई दे रहा है, साफ दिख रहा है। **मेरे मित्र ! जैसे काली कोठरी में रागी को अपनी प्रियतमा का चेहरा दिखता है, ऐसे ही निर्ग्रन्थ योगी को कर्मों की कोठरी के भीतर मोहनीयकर्म की काली पट्टी लगी होने पर भी अपनी प्रिय आत्मा शुद्धात्मा का चेहरा साफ-साफ दिखाई देता है।** अब बताओ, मित्र ! जब तू जा रहा था मंडप में, जैसे ही द्वार दिखाई देने लगा, तब कुछ अनुभूति अलग हो रही थी? उस जीव से पूछना जो बारहवें गुणस्थान में विराजता है निर्ग्रन्थमुनि। अभी तक निर्ग्रन्थमुनि था, जिसको अंतर्मुहूर्त में केवलज्योति प्रगट होनेवाली हो, जिसकी गंधकुटी लगनेवाली हो, जो समवशरण में विराजमान होनेवाला हो उस जीव के आनंद का क्या कहना ? यह है शाश्वतआनंद, क्षायिकआनंद। इसलिए जगत् में बिल्कुल आज से निष्कम्प रहना, निशंक रहना, निर्भय रहना।

जगत् में मेरे सुख-दुःख का कोई कर्ता नहीं है। यथार्थ मानना, जहाँ भी तुम सिर टेकने जाते हो उसे आप तो कहना - विशुद्धसागर ने मना कर दिया है। जो भी देवता को आना हो मेरे पास आ जाये। मुझे मालूम है नंगे के सामने किसी की नहीं चलती, ठीक है। अरे ! तत्त्व सुन रहे हो। पंडितजी! उनकी बेटे की माँ बोली - स्वास्थ्य खराब है चले जाओ, क्या जा रहा है तुम्हारा? जैसे दवाई लेने जाते हो वैसे चले जाओ। अच्छी भाषा जानते हैं ये लोग, दवाखाना जाते हो ऐसे ही चले जाओ, तनक झाड़ाफूँकी करा लाओ।

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे।।स.भ.।।

'चत्तारि सरणं पव्वज्जामि'। कुछ नहीं, कहीं नहीं, न शनि, न मंगल। हमारा यह दादा शनि को तो ऐसे मानता है अरे ! मात्र परिग्रह के लिए। जो चारों ओर से लगा हुआ है, उसी को जीव उतार दे तो सारे ग्रह उतर जायें। ज्ञानियो ! ध्यान दो, ये कर्मशक्ति, करणशक्ति और कर्तृशक्ति - ये सम्पूर्ण शक्तियाँ स्वभाव की ओर ले जा रही हैं, परकारक से भिन्न होकरके स्वकारकदृष्टि ।

कारकानुगत भवत्तारूपभावमयी क्रियाशक्तिः ॥ 40 ॥

परकारक से अनुगत निज में ही जो क्रिया चल रही है वो अनंत सिद्धों के भीतर वह भाव- क्रियाशक्ति। ऐसी भावमयी क्रियाशक्ति।

प्राप्यमाणसिद्धरूपभावमयी कर्मशक्तिः ॥ 41 ॥

कर्मशक्ति क्या कह रही है ? जिसको किया जाता है, वो कर्म होता है। ध्यान देना, सिद्धों ने किसको किया? उत्तर दो न, किसको किया? परकर्त्ता हटा दो, परकरण हटा दो; कुम्भकार ने तो घट को किया, पर सिद्धों ने किसको किया। सिद्धों ने सिद्धत्व को ही प्रकट किया। स्व में स्वयं का प्रगटीकरण जो किया है वो कर्मशक्ति। मैं परकर्म नहीं हूँ, ध्यान का विषय बनाइए। अपने ऊपर आइए। मैं आचार्य विरागसागर का कर्म हूँ। पंडितजी ! शिष्यों के भीतर गुरुओं को उभयदृष्टि देना चाहिए, नहीं तो उनके साथ छल हो जायेगा।

इन शिष्यों को अपना प्रचारक बनाकर नहीं जाना। इनको अपना सेवक अनुचर बनाके नहीं रखना। इनको मात्र मोक्षमार्गी बनाना, नहीं तो बेटा ! जाओ, मेरा नाम लो, मेरा प्रचार करो, मेरा फोटो लगाओ। नहीं, इन्होंने आपको अपना सर्वस्व सौंप दिया। जिसने जन्म दिया व्यवहार से, इतना पढ़ा-लिखा के बड़ा किया है, उसने विश्वास के साथ तुम्हें सौंपा है। शिष्यों को नहीं था बोध सत्यार्थमोक्षमार्ग क्या है? अब तुम्हारा धर्म है बोध कराओ। हे कुम्भकार ! मिट्टी तेरे हाथ में है, रौंद-रौंदकर जितने कंकड़ बाहर कर देगा, घट उतना ही श्रेष्ठ बनेगा और जरासा भी कंकड़ रह गया, तो पानी निकल जायेगा। हे निर्ग्रन्थाचार ! इन शिष्यों के साथ तुमने कषाय का कोई कंकड़ बनाके रखा तो उसके भेद-विज्ञान का पानी निकल जायेगा। तुमने क्या दिया? इन को परिवर्तन करा दिया है, त्याग नहीं कराया। हे आचार्य! आपने इन शिष्यों का परिवर्तन करा दिया, त्याग नहीं कराया। जो माता-पिता में इनका राग था, वो राग तुमने अपने में लगवा लिया है, पर राग का त्याग नहीं होने दिया, ये छल नहीं करना।

जीवन में इन मुनियों के साथ छल नहीं करना। वे अपने में ही छले बैठे हों तब भी उनको समझाना। फिर भी न समझें तो मध्यस्थ हो जाना, परिणाम फिर भी खराब नहीं करना। क्या प्रयोजन? क्या मैं इनके लिए ही आया हूँ? मेरा काम समझाना है, मैं स्वसाधना के लिए आया हूँ। ये सहज निमित्त मिला है कि ये लोग इकट्ठे हो गये हैं। मैं किसी के घर में किसी को बुलाने गया नहीं, ये मेरे कर्म नहीं हैं, मैं आचार्य

विरागसागर का कर्म नहीं हूँ। मैं मेरा ही कर्म हूँ और मेरे ही परिणाम उत्पन्न हुए मुनि बनने के। मैं ही कर्म हूँ और मेरे द्वारा परिणाम हुए इसलिए मैं ही करण हूँ; अभेददृष्टि।

वर्षों-वर्षों निकल जायें, ये भाषा ही सुनने को न मिले तो भाव क्या बनेंगे तुम्हारे बेटा? अब तुम छोटे नहीं हो अठारह साल के हो। माता-पिता ने तुम्हें जन्म नहीं दिया। सब लोग मेरी बात सुनकर मुझे पागल घोषित कर सकते हैं, पर जो मुझे पागल घोषित करेंगे वे ही पक्के पागल हैं। पंडितजी ! एक बात बताऊँ जिसने मुझे बहुत छोटे में देखा है, वह अभी भी छोटा ही देखता है। सही है छोटा बनके रहो, बड़ा आनंद मिलता है, छोटे बनके रहो।

अवगाहना चाहे छोटी हो चाहे बड़ी हो, चाहे सवा पाँच सौ धनुष की हो, चाहे साढ़े तीन हाथ की हो, सिद्धालय में सब बराबर हैं। दो स्थान ऐसे हैं जहाँ एक में अनेक विराज जाते हैं। यहाँ समता से सबके साथ रहोगे, तो सिद्धों में एक में अनेक बनके विराज जाओगे। यहाँ तुम परिणाम खराब रखोगे, तो निगोद में जाकर एक में अनेक विराज जाओगे। जो अच्छा लगे वो करना। **'जं रुचई तं कुज्जा'** जैसा आपको रुचे वैसा करो। क्या बोल रहा था, माता-पिता ने तुझे जन्म नहीं दिया, बोले हूँ तो हाँ है। उनसे पूछना - जनक-जननी के अन्दर में बेटा जन्म लेता है कि अपनी इच्छाओं की पूर्ति का राग जन्म लेता है? स्पष्ट बोलना, भैया ! आपके मन में आपके अन्तस् में सन्तान ने जन्म लिया था, कि कामवासना ने जन्म लिया था ? मित्र ! संतान को न तूने भावों से जन्म दिया, न द्रव्य से जन्म दिया। कर्म, नोकर्म भी परवस्तु हैं। तूने तो अपनी कामनावासना को जन्म दिया था। उनकी पूर्ति में लवलीन था। जिसने मनुष्य आयुकर्म का बंध किया था, उच्च गोत्र का बंध किया था, बेटा ! आज तुमने जन्म ले लिया है। माता-पिता से कहना तुम मेरे कर्ता नहीं हो, तुम अपनी कामनाओं के कर्ता हो। मैं स्वतंत्र हूँ, मैं अकर्म हूँ। पर का कर्म नहीं हूँ मैं तो निज का ही कर्म हूँ।

जिस नाते से पिता कहता - बेटा ! मेरी बात मान, मैं तेरा पिता हूँ। पिताश्री जिस नय से आप मेरे पिता हो उसी नय से मैं भी आपका पिता हूँ? बोले - हाँ। बोले – क्या बोल रहा है? क्या बोल रहा हूँ, समयसार बोल रहा हूँ - जिस नय से आप मेरे पिता हो उसी नय से मैं भी आपका पिता हूँ। बताओ, मेरा जन्म नहीं हुआ था तब तुम्हें पिता कौन बोलता था? तुम मेरे पुत्रपने के पिता हो, तुम्हारे पिता कहलाने का पिता मैं ही हूँ। इसलिए विनय मेरी भी रख। मुझे भगा देगा तो तुम्हें पिता कौन बोलेगा? मैं आपकी विनय करता हूँ। इसलिए माता-पिता ! आज से बच्चों को डाँटना नहीं, ये भी भगवान्-आत्मा हैं। क्या मतलब समयसार सुनने का, अभी घर में जाओगे, बेटे से दूध का ग्लास जमीन पर गिर गया तो गाल पर चाँटा मार दोगे। इधर कहोगे - जगत् का जीव ब्रह्म है और घर के ब्रह्मा को तुम पीट रहे हो। आज से बच्चों को पीटना बंद, समझाकर रखो बस।

कौन-सा जीव सिद्धालय में चला जायेगा, तुमने ऐसे भगवान् के गाल पर चाँटा मार दिया, धिक्कार हो। जो बन चुके भगवान् हैं उन्हें पत्थरों में स्थापना करके सौ-सौ बार सिर टेक रहे हो। बननेवाले भगवान् हैं उन्हें आँख उठाके नहीं देख रहे, क्या तुम्हारी दृष्टि है? धातु-पाषाण की प्रतिमा में तुम ऐसे नमोऽस्तु कर रहे हो जैसे वे अभी निकल रहे हों। वे तो स्थापना-निक्षेप के परमात्मा हैं उन्हें पूजो, मैं मना नहीं कर रहा हूँ। मैं भी नमस्कार करता हूँ। लेकिन जो आचार्य, उपाध्याय, साधु, श्रावक मिथ्यादृष्टि ही क्यों न हो तब भी उसकी भीतर की भगवत्ता को अशुभ मत समझो। पंडितजी ! जब-तक यह दृष्टि नहीं आ रही तब-तक लगेगा मैं व्यवहारवाला, यह निश्चयवाला और जिस दिन ये दृष्टि आ जायेगी, वस्तुस्वरूप जो है सो है। जब मैं किसी का कर्म नहीं हूँ तो सिद्ध परमात्मा किसी का कर्म कैसे हो सकता है? दोनों दृष्टि में समझना इसलिए कर्तृशक्ति-

भवत्तारूप सिद्धरूपभावभावकत्वमयी कर्तृशक्तिः ॥ 42 ॥

हो रहा है, होता है भवता, अरूप बिना रूप के कौन, सिद्ध। भावभावकत्वमयी कर्तृशक्ति। किसने किया सिद्धों को? जैसे कोई हुआ नहीं वैसे किसी ने किया नहीं है, स्वयं को ही किया है। ये कर्तृशक्ति है। कर्मशक्ति से सिद्धपर्याय को प्राप्त किया और कर्तृशक्ति से प्राप्त हुआ है। प्राप्त किया किसको? सिद्धपर्याय। प्राप्त हुआ कौन? स्वयंसिद्ध। न कोई कर्म है, न कोई कर्ता है, इस प्रकार समझना। ज्ञानी ! अपने जीवन में जो भी ग्रन्थ हो, धीरे-धीरे उसे पढ़ना और एक श्रोता भी हो उसे सुनाना। जब दो वक्ता, एक श्रोता; प्रवचन हुए कि नहीं, उन प्रवचनों ने देखो, महावीर बना दिया, स्वरूपसम्बोधन हो गया, सिंह की पर्याय में महावीरस्वामी के जीव को। दो मुनि प्रवक्ता थे, प्रवचन हुए कि नहीं , इसलिए भीड़ देखकर प्रवचन नहीं करना, भाव देखकर करना।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

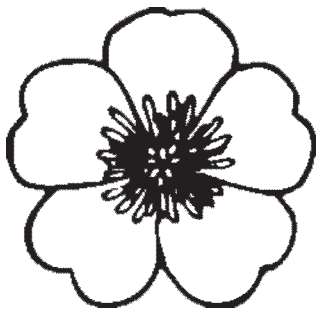

43

करणशक्तिः

''भवद्भावभवनसाधकतमत्वमयी करणशक्तिः।''

करणशक्ति प्रवर्तमानभाव के होने में साधकतममयी है। करणशक्ति के कारण भगवान्-आत्मा सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायों को प्रगट करता है।

समय देशना

आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्दस्वामी ग्रन्थराज समयसारजी में ध्रुवज्ञायकस्वभावी भगवान्-आत्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। परमपारणामिकभाव से युक्त टंकोत्कीर्ण ज्ञायकस्वभावी ये भगवानात्मा अनंतशक्तियों का पिण्ड है। **निजधर्म से आजतक ये द्रव्य विमुख नहीं हुआ। पर धर्मों से आच्छादित होने पर भी निजधर्म का विनाश नहीं किया।** एकसौ अड़तालीस प्रकृतियों से आच्छादित होने पर भी स्वप्रकृति का नाश नहीं होने दिया, यही इसकी सहजशक्ति की अलौकिक अभिव्यक्ति है। पर से आच्छादित हो जाने से मेरी सत्ता का विनाश नहीं होता है। मेघों में सूर्य है। मेघ! आप सूर्य को आच्छादित तो कर सकते हैं, पर सूर्य के ज्योतिर्मयी प्रकाश का विघात नहीं कर सकते हो। आच्छादित मात्र है, मेघ हटते ही आत्मसूर्य उदित होता है। ये कर्ममेघ हटते ही आत्म सूर्य उदित होता है। इसलिए प्रतिक्षण प्रतिपल जब-जब हम अर्हंतदेव के पादमूल में पहुँचें, जिनबिम्ब के सामने हों उस क्षण भी निजबिम्ब पर दृष्टि डालना। ये प्रगट परमात्मा की मूर्ति है।

जो अर्हंत का बिम्ब सामने है, ये प्रगट परमात्मा की मूर्ति है और जो दर्शन कर रहा है वो अप्रगट परमात्मा है। एक अभिव्यक्तिमान परमात्मा है, एक शक्तिमान परमात्मा है। पर शक्तिमान परमात्मा ही अभिव्यक्तिमान परमात्मा हुआ है। अभिव्यक्ति किसी दूसरे के द्वारा नहीं हुई है। सँभल के सुनना - **करणशक्ति** है। कृतिशक्ति से स्वयं ही परमात्मा हुआ है। कर्मशक्ति ने कहा – परमात्मा बना कौन है, स्वयं को ही तो बनाया है। **करणशक्ति कह रही है – बनाया किसने, कोई दूसरा बनाने नहीं जायेगा, मेरे द्वारा मैं में ही उत्पन्न किया गया हूँ। जो भगवत्ता मेरे अंदर थी, वही उद्घाटित हुई है।** कोई अलग से भगवत्ता प्रगट नहीं हुई है। जो भगवत्ता मेरे भीतर थी वही प्रकट हुई है।

अर्हंतावस्था, सिद्धावस्था - ये सब कहाँ से आई हैं? दुग्ध के अन्दर घृत था। पहले ध्यान रखना 'अभाव', क्योंकि सैंतालीस शक्तियों को क्रम से नहीं समझोगे तो भटक जाओगे। हम सत् क्रियावादी नहीं हैं, हम सत्कार्यवादी नहीं हैं। दुग्ध में घृत पूर्व से ही था वो शक्तिरूप तो मानता हूँ पर सत्तारूप नहीं मानता। अन्तर है दोनों में, दुग्ध में घृत है, शक्तिरूप तो है सत्तारूप नहीं है। सत्ता तो दूध की है, गोरस की है। दूध की पर्याय में दूध की ही सत्ता है। दुग्ध में घृतपर्याय का अभाव है, प्राग्भाव है। पूर्व में भविष्य की पर्याय का वर्तमान में अभाव। आप यदि पूर्व से ही उस पर्याय को स्वीकार कर लोगे, तो घृत अनादि सिद्ध हो जायेगा।

अनेकांत कहता है कि एक समय में एक की व्याख्या है। दूध में घृत का अभाव है। ध्यान दो, भाव में अभावशक्ति, भाव में भविष्य की पर्यायों का अभाव। दुग्ध पदार्थ में उसकी भविष्य पर्याय घृत का अभाव। लेकिन अगला भाव क्या करेंगे ? अभाव में भाव। दुग्ध में घृत पर्याय का सद्भाव। अभाव में भाव।

मैं अपने प्रभु को कहीं से प्रगट नहीं करूँगा। अप्रगटरूप में शक्तिमान जो विराजा है परमात्मा, उस परमात्मा के लिए मैं ही प्रगट करूँगा, किसके द्वारा? ये हेतु। किसके द्वारा? साधन। किसके द्वारा? करण। हेतु साधन करण, तृतीया विभक्ति। किसके द्वारा ? क्या परमात्मा के द्वारा, क्या किसी ईश्वर के द्वारा, क्या गुरु के द्वारा? नहीं; ये साधन हैं, ये साधकतम् नहीं हैं। आप अंतर समझना, ये मत कहना महाराज जी! आप सबका लोप कर दोगे क्या? कहाँ लोप कर रहा हूँ। साधन, साधकतम्करण। साधकतम् करण समझ में आ रहा है क्या? साधन और साधकतम्।

'साधकतम् करणम्' जैनेन्द्र व्याकरण का सूत्र है। वो ही करण करण है, वही हेतु हेतु है। कौन? जिससे कार्य नियत है। एक कारण कार्यरूप परिणत होता है। कारण ही कार्यरूप परिणत होता है वह साधकतम् होता है और एक कारण सहकारी होता है। समझने का प्रयास करो। कारण ही कार्यरूप परिणत होता है। अनेकांतदृष्टि से समझना। कारण ही कार्यरूप परिणत होता है तो फिर बेलन ही रोटीरूप परिणत हो जायेगा, क्या चौकी बेलनरूप परिणत हो जायेगी? नहीं, ये सहकारी साधन हैं। ये सहकारीकारण हैं, कार्यकारीकारण नहीं हैं। दो कारण खोजिए, शास्त्रीजी! एक सहकारी कारण और एक कार्यकारीकारण। एक कार्यकारीकारण के लिए अनेक सहकारीकारण चाहिए पड़ते हैं, लेकिन कार्यकारी एक ही होता है। छात्रो ! पढ़ने के लिए पुस्तक चाहिए कि नहीं? लिखने के लिए लेखनी चाहिए कि नहीं? कॉपी चाहिए की नहीं? पढ़नेवाला कौन होगा? ज्ञानी बनने के लिए ग्रन्थ चाहिए, उपाध्याय चाहिए, लेखनी चाहिए, कागज चाहिए, प्रकाश चाहिए। ज्ञानी ! परन्तु बुद्धि नहीं होगी तो क्या चाहिए? ये सब सहकारीकारण किसके लिए हैं ? जिसके पास प्रज्ञा है। एक कारण एक जीव के लिए साधन बनता है एक के लिए कोई कारण नहीं होता।

पुरुषत्वशक्ति से सम्पन्न पुरुष भी विधवा के लिए संतान उत्पत्ति में कोई कारण नहीं, समझो, मैं क्या बोल रहा हूँ। तीर्थंकर साक्षात् समवशरण में विराजते हों, दिव्यध्वनि खिर रही हो पर वे अभव्य जीव के लिए सम्यक्त्व में कोई कारण नहीं। **सहकारी साधन तभी होगा जब कार्यकारी साधन प्रबल होगा और जो कार्यकारी होता है वही उपादान होता है। जो सहकारी होता है वह साधन मात्र होता है, पर कार्यकारी के लिए कार्यरूप परिणत कराने में सहकारी का होना आवश्यक है।**

साधुपरमेष्ठी; प्रमत्तगुणस्थान, अप्रमत्तगुणस्थान यहाँ से प्रारंभ होते हैं। इसके पहले कोई साधु परमेष्ठी नहीं होते। अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ - इन सर्वघाती प्रकृतियों का उदयाभावीक्षय, देशघाति प्रकृति संज्वलनकषाय के उदय होने पर जो जीव के परिणाम हैं उसका नाम साधुपरमेष्ठी है। ध्यान देना, ये साधुपरमेष्ठी की परिभाषा करणानुयोग से कही जा रही है। इसमें पिच्छी-कमण्डलु का स्थान कहाँ है? इसमें वस्त्र उतारने का स्थान कहाँ है? सुनते जाना, ये करणानुयोग से बोल रहा हूँ। जब द्रव्यानुयोग से व्याख्यान करोगे, **आत्मचरण में ही अनुचरण**

कर रहे हैं, स्वात्मतत्त्व में ही लवलीन हैं, परगत तत्त्व से शून्य हैं, वे साधु भगवन्त हैं। ये सब बातें तो आपको समझ में आ गई हैं, अब आप खोजिए कौनसे साधु हैं आप-अपने बीच में। इतनी देर क्यों? तीन कषाय का अभाव देख लो।

दो अनुयोगों से अपन ने बात कर ली है, अब दो अनुयोग बचे हुए हैं। बोले - मैंने जो कहा परमसत्य है, दोनों अनुयोगों ने अचाक्षुष व्याख्या की है, चाक्षुष व्याख्या नहीं की तो मैं किसको पहचानूँ किसको जानूँ। बेटा! व्याख्यान, वो समझिए यहाँ कि जो सारा लोक व्याख्या करे वो व्याख्या की तो क्या? व्याख्या की गहराई में उतरकरके आगम को लाइए। द्रव्यानुयोग के मुनिराज अचाक्षुष हैं लोक के, करणानुयोग के मुनिराज अचाक्षुष हैं लोक के, और फिर मैं कहूँगा भैया! मुझे साधु भगवंत की पूजा करना है। अब बताइए मैं किसकी पूजा करूँ, कहाँ मिलेंगे, वो कैसे होते हैं ? आप कहना फिर जो स्वात्मा में लीन हों वे मुनिराज होते हैं। उनका रूप क्या है? तो आप कहना फिर तीन चौकड़ियों का अभाव कर चुके हैं। तो वे कैसे होते हैं? तब ज्ञानी! दोनों अनुयोगों को मौन लेना पड़ेगा फिर दो अनुयोग उपस्थित आपको पहले करना पड़ेंगे।

प्रथमानुयोग कहेगा जो निर्वस्त्र होंगे, केशलुंचन कर रहे होंगे, पिच्छी-कमण्डलु लिए होंगे, वे होंगे । ये कौन बोलेगा? प्रथमानुयोग की इतनी ही परिभाषा है। जब चरणानुयोग से कहेंगे तो कहेगा, अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करनेवाले पंच महाव्रतों से युक्त होंगे, ऐसे भेदाभेद रत्नत्रय के आराधक, चार कषायों में से तीन चौकड़ी का अभाव करनेवाले होंगे, वह साधु भगवंत हैं। इसके बिना हम पहिचान कर नहीं सकते हैं। पहले द्रव्य चाहिए है फिर भाव में प्रवेश आप कर पायेंगे।

ज्ञानियो ! भावना को भाव मत समझ लेना। भावना के मुनिराज ये सभी श्रावक बैठे हुए हैं। यदि सच्चा श्रावक है तो भावलिंगी श्रावक। अरे ! द्रव्यलिंगी भावलिंगी मुनि ही नहीं होते, श्रावक भी होते हैं। भावलिंगी श्रावक, तात्पर्य क्या हुआ ? जिसने वास्तव में अनंतानुबंधी का अभाव किया है वही भावलिंगी श्रावक है। यदि भावलिंगी श्रावक है तो नियम से प्रतिक्षण प्रतिपल निर्ग्रन्थ होने की भावना भाता है। जैसे पानी के अभाव में मछली तड़पती है ऐसे ही निर्ग्रन्थ के अभाव में सच्चा श्रावक तड़पता है। इसकी तड़पन ही इसके सम्यक्त्व का प्रतीक है। इसकी तड़पन ही इसके चारित्र को प्राप्त करने का प्रतीक है। यदि चारित्र के प्रति तड़पन नहीं है तो सम्यग्दर्शन नहीं है।

एक जीव का निर्णय - मैं बुद्धिपूर्वक घर का त्याग करता हूँ, बुद्धिपूर्वक सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करता हूँ। ज्ञानी! ये तो परवस्तु का त्याग किया तूने, ये फिर भी सरल था, मानता हूँ पर छोड़ा है, छोड़ा किसे? जो था नहीं उसे। जो ग्रहण करने के परिणाम थे उन्हें भी छोड़िए। छोड़ने के जो परिणाम हैं उन्हें भी छोड़िए। नहीं तो याद सतायेगी कि मैंने इतना छोड़ा। **संक्लेश परिणामों से, श्वास के निरोध से, रक्त के क्षय से, विष की वेदना से, हिम की वेदना से, उष्णता की वेदना से, आहार के निरोध से**

प्राणों का असमय में क्षय होता है। सबसे बड़ा राग मैं मर न जाऊँ, पर धन्य हो उस जीव के लिए जो जीव सल्लेखना के काल में कह रहा हो, आज से मैं गर्म पानी पीने का भी त्याग करता हूँ। जिसने ऐसा निर्णय ले लिया है, करणशक्ति, ये किसने निर्णय ले लिया है ? मैं अस्मद्, मैंने लिया है। हे जीव! मरण के काल में अमरण को देख रहा होगा वही पानी का त्याग कर पायेगा; करणशक्ति। पकड़ो, मैं क्या बोल रहा हूँ मरण के काल में अमरण को देख रहा है। दो धाराएँ एक साथ चल रही हैं; लोग मरण देख रहे हैं मेरा, लोग मृत्युमहोत्सव देखने आये हैं मेरा। मैं त्रैकालिक अपना ध्रौव्यद्रव्य देख रहा हूँ, अमरणस्वभावी भगवानात्मा को।

तुम उसे ही देख पाओगे जो चाक्षुष है, मरण चाक्षुष है पर अमरण-स्वभावी अचाक्षुष है। अमरण-स्वभावी अचाक्षुष है इसलिए अचाक्षुष मुनि को देखना है, तो चाक्षुष मुनि आप बन लेना। चाक्षुष मुनि को दूसरे देखेंगे तुम अचाक्षुष मुनि को देखना। साधु भगवंत् को देखना है, जो तुम देख रहे हो वह पहचान के साधु हैं, और जो हैं वे अनुभूति के साधु हैं। कौनसे साधु चाहिए? मित्र! अचाक्षुष चाहिए, तो बताइए कहाँ मिलते हैं? चाक्षुष में। चाक्षुष मुनि के लिए चाक्षुष मुनि मत बनना। मित्रो! अचाक्षुष मुनि में मिलने के लिए अचाक्षुष मुनि बनना। यदि अचाक्षुष का वेदन नहीं कर सके, तो चाक्षुष बनके तो अनंतभव निकाल दिये। **'येन क्रियते तत्करणम्' जिससे किया जाता है वही करण होता है - करणशक्ति।** अब आपको मानना पड़ेगा कि व्याकरण पढ़ना पड़ेगा। समयसार समझना है तो व्याकरण पढ़ो। ये कारक प्रकरण से ये शक्तियाँ प्रारंभ हो गईं, जिससे किया जाता है, वो करण है। तो सहकारीकरण अनंत हो सकते हैं। यहाँ तक आने में कितने सहकारी हुए, पर कार्यकारी तो मेरा निज का परिणाम है। कितने ही अवरोध खड़े किये जा सकते हैं, पर तुम्हारा कार्यकारी करण सशक्त है तो विरोधीकरण कोई हेतु बन नहीं सकते। ये भी ध्यान रखना, **निमित्त वो ही कहलाता है जो नैमित्तिक को अवश्य प्रभावित करे।** जो नैमित्तिक को प्रभावित न कर सके वह निमित्त नहीं उसके लिए।

निमित्त नैमित्तिक को प्रभावित करता है। आटे की लोई पर बेलन रखा और घुमाने पर भी लोई में कोई परिणमन न हो वो बेलन सहकारी नहीं कहलायेगा। जिससे बिले वही तो बेलन। यह क्या है? उपकरण (पिच्छी), किसका उपकरण है ? संयम का। कब? उपकार करे तो उपकरण है। उपकार में सहकारी न बने तो यह उपकरण नहीं है, परिग्रह है। मार्जन की जगह पिच्छी को तकिया बना लिया, तो उपकरण नहीं कहलायेगा। **जो रत्नत्रयधर्म की रक्षा में सहकारी बने उसका नाम उपकरण है।** ये बहिरंग उपकरण है हमारा और निज का रत्नत्रय परिणाम है वह ध्रुव उपकार कर रहा है, वही सच्चा उपकरण है। पिच्छी उपकरण है, मार्जन में प्रयोग हो रही है तब तो उपकरण है। मार्जन में प्रयोग नहीं हो रही है, कोई कहे मंत्रार्थम्, छत्रार्थम्, दूसरे के सिर पर ठोकार्थम्, आशीर्वादार्थम्, ये तो उपकरण नहीं है। ये तो मात्र जीव रक्षार्थम् है ।

जब भी गुरु महाराज पिच्छी प्रदान करते हैं, एक मंत्र बोलते हैं। बिना मंत्र के कोई सामग्री प्रदान नहीं की जाती है। भो अन्तेवासिन् ! जीवरक्षार्थम् संयमोपकरण ग्रहण-ग्रहण। ऐसा मंत्र बोल कर देते हैं। षट्कायिक जीवों की रक्षा के लिए ये संयम का उपकरण ग्रहण कर, ग्रहणकर, शौचोपकरण ग्रहण-ग्रहण, ज्ञानोपकरण ग्रहण-ग्रहण। न कि मोबाईल उपकरण ग्रहण-ग्रहण। बिल्कुल स्पष्ट समझना। यदि किसी श्रावक ने मुनि को, संयमी को मोबाईल आदि दिया, तो दिगम्बर मुनि को परिग्रह दिया, जो स्वीकारते हैं उनको तो निगोद जाना ही है, देने वाले को भी निगोद जाना पड़ेगा। दिगम्बर मुनि को मात्र आहार, पिच्छी-कमण्डलु, जिनवाणी भेंट करना।

सल्लेखना के काल में 'भगवती आराधना' में दो ही उपकरण का उल्लेख आया। अब आपको शुद्धि के लिए कमण्डलु चाहिए और जीवरक्षा के लिए पिच्छी चाहिए, उठने की शक्ति नहीं है तो शास्त्र क्या पढ़ोगे। इसलिए चिन्तन करो, मनन करो, यही तुम्हारा स्वाध्याय है। अब ग्रन्थों का भी परित्याग कर दो। ग्रन्थों से भी निर्ग्रन्थ हो जाओ। अब निज के ग्रन्थ के ग्रन्थ को निहारो।

अरे ! ग्रन्थों से ग्रन्थ नहीं बने, निर्ग्रन्थों से ही तो ग्रन्थ बने हुए हैं। निर्ग्रन्थ न होते तो ग्रन्थ उद्घाटित होते कहाँ से ? निर्ग्रन्थ महाश्रमण भगवान् तीर्थंकर, आचार्य भगवंतों ने ही तो ग्रन्थ निकाले हैं। जहाँ से प्रगट हुए हैं द्रव्यश्रुत, वहाँ से भावश्रुत उद्घाटित हुआ है। तुम भावश्रुत में लीन हो जाओ। इन ग्रन्थों का ग्रन्थपना छोड़ दो, ये करणशक्ति बोल रही है। जितना सुन रहे हो जैसे-जैसे समय व्यतीत होता जाये, तो ग्रन्थों से भी निर्ग्रन्थ होने की जब बात कर रहे हैं तो बहिरंग परिग्रह की और क्या बात की जायेगी। समझ में आ रहा है, ग्रन्थ से भी निर्ग्रन्थ।

जब निज में लीन हो जाओगे तब पिच्छी पिच्छी होगी, कमण्डलु कमण्डलु होगा, मैं मैं होऊँगा, अचाक्षुष योगी से मिल रहा होऊँगा। अदृश्यमान से मिलो, दृश्यमान से अनंतबार मिल चुके हो। अदृश्यमान से मिलो, वो कहाँ हैं? कहीं नहीं हैं, जहाँ हैं वही हैं। अदृश्यमान, उस समय समरसीभाव का आनंद लूटना है, निर्ग्रन्थता का आनंद लेना है तो अदृश्यमान से मिलने का पुरुषार्थ कर लेना, तो दृश्यमान दृश्यों से दूर हट जायेगा। विश्वास रखना, पंडितजी ! अनंतबार कितने प्रपंचों का आनंद लूट चुके हो। एक पर्याय तो अपने निज रस के लिए दे दो।

यदि समरसीभाव के पास पहुँचकर भी इमली का आनंद ले रहा है, यदि निर्ग्रन्थ अवस्था को प्राप्त करके भी परिग्रह आदि प्रपंच में लिप्तता मन में आ रही है तो विश्वास रखना, मधुर आम के पास तू खट्टी इमली को चख रहा है। दोनों चाहिए आपको - चाक्षुष और अचाक्षुष। प्रथमानुयोग का मुनि, करणानुयोग का मुनि, चरणानुयोग का मुनि और द्रव्यानुयोग का मुनि। पर ध्यान दो, जो करणानुयोग का मुनि होगा वह नियम से चारों अनुयोगों का होगा। जो करणानुयोग का नहीं है वो दो अनुयोग का हो ही नहीं सकता। किसका? करणानुयोग का, द्रव्यानुयोग का। चरणानुयोग, प्रथमानुयोग का मुनि मिल सकता है।

चरणानुयोग, प्रथमानुयोग का मुनि बनके तो ग्रैवेयक तक जा सकता है। जब भी सिद्धालय जायेगा, तब द्रव्यानुयोग करणानुयोग का ही मुनि जायेगा, पर ध्यान रखना, प्रथमानुयोग चरणानुयोग का मुनि बने बिना करणानुयोग, द्रव्यानुयोग का मुनि बनता ही नहीं है। ये वस्तुस्वभाव की दृष्टि समझिए।

अब चलिए मूलधारा पर, हे जीव! देहाश्रित अवस्था का परिणाम देह में है, यहाँ करणशक्ति पराश्रितरूप में नहीं चल रही है। यहाँ करणशक्ति स्वाश्रितरूप में चल रही है। हे जीव! जितना पराश्रितभूत पुरुषार्थ देहाश्रित था, उतना आप जुटा चुके। घृत, कड़ाही, झारी, अग्नि सभी सामग्री जुटा चुके हो, लोई को पुड़ी आकार भी दे चुके हो। अभी जो कुछ करना था सब दौड़-दौड़ कर करना था। माताओ ! सामग्री जुटाने में इधर-उधर जाना पड़ रहा था, लेकिन जब पूड़ी सेंकने बैठती हो तो कहाँ दौड़ती हो। ज्ञानी ! समझो, बहिरंग दृष्टांत को देखकरके अंतरंग पर जाइये। ज्ञानी! सामग्री जुटाने के लिए तो दौड़ना पड़ रहा था। हे मुनीश्वर! मुनि बनने के पूर्व आपने गुरु की, आचार्य की खोज की, आपने विचार की खोज की, आपने ग्रन्थों की खोज की, आपने निर्ग्रन्थों की खोज की, आपने पिच्छी को पकड़ा, आपने कमण्डलु को पकड़ा। कुछ पकड़ा, कुछ छोड़ा, अब ये सब हो गया, ये काम हो गया। अब आप कड़ाही पर बैठो। अब पूड़ी को कड़ाही में छोड़ दी, अब क्या कर सकते हो? अब कुछ हो रहा है क्या? अब परपुरुषकृत कुछ नहीं हो रहा है, अब स्व का परिणमन स्व में चल रहा है।

मुमुक्षुओ! जितना बहिरंग परिणमन होना था, छठे गुणस्थान की व्यवस्था थी। अब तुम कड़ाही में आ ही चुके हो। अब परकरण समाप्त हो चुका है। स्वकरण, अपने द्वारा ही अपने में परिणमन हो रहा है। अब मेरे भीतर का पुरुषार्थ अप्रमत्त गुणस्थान में प्रवेश; अप्रमत्त से अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय। उपशांतमोह को छोड़ दो। छलाँग मारो, सीधा क्षीणमोह और क्षीणमोह अवस्था में स्व की शक्ति काम कर पायेगी। प्रवेश करते ही अन्तर्मुहूर्त में केवलज्योति को प्रगट कर लिया, अब विकल्प समाप्त। आठ वर्ष तीन अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटी वर्ष तक हे केवली भगवन्त! तुम संसार में जयवंत हो तब भी आनंद है।

मानाकि कोई जीव ने अपने जन्म के आठ वर्ष एक अन्तर्मुहूर्त बाद सम्यक्त्व प्राप्त किया और एक अन्तर्मुहूर्त बाद चारित्र प्राप्त किया, एक अन्तर्मुहूर्त बाद कैवल्य को प्राप्त किया, तो तीन अन्तर्मुहूर्त कम कर लो। ऐसे आठ वर्ष तीन अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटी वर्ष तक ज्ञानी! देख वे आठ वर्ष के केवली भगवन्त कैसे गन्धकुटी में बैठे होंगे, कैसे वे तत्त्व की देशना दे रहे होंगे, जयवन्त हो वे केवली भगवन्त। क्या आनन्द लूट रहे होंगे।

ऐसे परमस्नातक महामुनि, दुनियाँ देख रही है। विचरण कर रहे हैं, दुनियाँ देख रही है। गंधकुटी में बैठे हैं, दुनियाँ सब कुछ देख रही है पर ध्रुवसत्य है वे अपने परिणमन में, निज में लवलीन हैं, अपनी करणशक्ति में लीन हैं। अभी रुकने का समय नहीं है, अभी तो द्रव्यमोक्ष होने का पुरुषार्थ जारी है और

सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान तेरहवें गुणस्थान के अन्तसमय में होता है। उस ध्यान के बल से अयोगकेवली गुणस्थान में प्रवेश किया। अ, इ, उ, ऋ, लृ के उच्चारण काल में हो गया मोक्ष। इतने से समय के पीछे कितना लम्बा अनंतकाल निकाल दिया। शांति छा गई, मोक्ष हो गया। जब परमतत्त्व की व्याख्या में इतना आनंद है तो परम तत्त्व की अनुभूति में कितना आनंद होगा ? हे मुमुक्षु! एक दिन दृश्यवान बनके अदृश्य में लीन तो हो जा। पंडितजी! तनक नाटक का ही बनके देख ले। अरे! सुनो तो ब्रह्मगुलाल जैसा बन जा। जब यह बन जायेगा, तो मैं कह दूँगा ये वनवे ट्राफिक है, यहाँ बना जाता है बन के मिटा नहीं जाता, बन गये सो बन गये,

स्वामी ब्रह्मगुलाल मुनि की कथा सुनो अचरजकारी।
हँसी खेल में स्वांग रचायो, जिनमत की दीक्षाधारी।।

आगरा के पास फिरोजाबाद है वहाँ के थे ब्रह्मगुलाल। हँसी खेल में स्वांग रचाओ जिनमत की दीक्षाधारी। सारे रूप तो दिखा दिये, राजा कहता है कि तुम मुझे दिगम्बरमुनि का भेष दिखा दो। बोला- उसके लिए समय चाहिए। शेष के लिए समय नहीं चाहिए था, शेष तो बन के मिटनेवाले थे, ये बनके बने रहनेवाला है। **खेल-खेल में मुनि बना जा सकता है, पर मुनि बनके खेल नहीं होता।**

प्राणों का अंत भी हो जाए तब भी गुरु की साक्षी में प्राप्त किये व्रतों को भंग मत कर देना। प्राण का अंत होगा तो तत्क्षण दुःख होगा, जिसने व्रत भंग किया है वह भव-भव में दुःखी होगा। कभी नहीं, स्वप्न में भी नहीं, बहुत ऊपर न जा सके तो अपन जहाँ हैं वहाँ ठीक हैं। जब चतुर्थकाल आयेगा तब पहाड़ों पर बैठूँगा। जब चतुर्थकाल आयेगा तब भवनों में प्रवचन करूँगा ही नहीं, मैं तो वृक्षों के नीचे चातुर्मास करूँगा, कोई ग्रीष्मवाचना किसी शहर में नहीं, पर्वतों के ऊपर-

गिम्हे गिरिसिहरत्था, वरिसायालेरुक्खमूलरयणीसु।
सिसिरे वाहिरसयणा, ते साहू वंदिमो णिच्चं।।यो.भ.।।

ग्रीष्मकाल में गिरि के शिखर पर, शिशिरकाल में नदियों के किनारे बैठे हैं, वर्षाकाल में पेडों के नीचे; ऐसे वीतरागी तपोधन आपको कोटी-कोटी नमस्कार। **करलो मुनि की वंदना, असंख्यात कोटी कर्मों की निर्जरा होती है। चारित्रमोहनीय के उपशम का कोई साधन है तो चारित्रवानों की सेवा और वंदना करो।** व्यवहार से ऐसा बोला जा रहा है, भीतर से आपका ही परिणमन चल रहा है। अग्नि नीचे स्वपरिणमन कर रही है, चावल बीच में पक रहा है। चावल अपनी शक्ति से परिणमन कर रहा है, अग्नि अपनी शक्ति में, फिर भी निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है। ऐसे ही पंचपरमेष्ठी तो अपने गुणों में लीन हैं। आपकी भक्ति से उनको कोई प्रयोजन नहीं है, आपकी भक्ति आपमें हो रही है, लेकिन निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है उससे आपके कर्मों की निर्जरा हो रही है।

विदर्भ में बहुत मूमफली होती है, हमने ऐसा सुना है। कपास, मूमफली। अरे ! चौके में जाओ तो सींगदाना की चटनी मिलती है। मूमफली के छिलके को ताप देते हो तब दाना सिकता है। ये समझता है अन्तरंग तपाओ, बहिरंग तपाने से क्या प्रयोजन? पर ज्ञानी! आप किसी भी ठेले पर देखना, शाम को गलियों में मूमफली सेकते मिल जायेंगे, वो दाने को सेक रहे हैं कि छिलकों को सेक रहे हैं ? छिलका सिके बिना ऊपर से भीतर का दाना सिकता नहीं। **बहिरंग तपे बिना अन्तरंग आत्मा तपती नहीं, करणशक्ति।** लगता ऐसे है कि छिलकों को झुलसा रहा है, पर उसका उद्देश्य क्या निहित है?

बाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरंस्त्व माध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम्।
ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरस्मिन् ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ।।स्.स्.।।

हे प्रभु! आपने दुस्तर बहिरंग तप तपा क्यों? अन्तरंग तप की वृद्धि के लिए। अंतरंग बहिरंग दोनों हेतुओं के मिलने पर ही कार्य की सिद्धि होती है। जब-तक बहिरंग हेतु नहीं है तो कार्य सिद्ध नहीं, अन्तरंग हेतु नहीं है तो कार्य सिद्ध नहीं। दोनों हेतुओं के युगपत् मिलने पर ही कार्य की सिद्धि होगी। सिद्धों को सिद्ध किसने बनाया, ये परमात्मदृष्टि समयसार। यहाँ कह रहे हैं कि छिलका गर्म हो रहा है, पर दाना छिलके की गर्मी से स्वयं में पका है। ज्ञानी! ये आत्मद्रव्य है। दृष्टांत पराश्रित है, दार्ष्टांत पर आइये। यहाँ तो मूमफली को सेकने के लिए परवस्तु का आश्रय लेना पड़ा, पर इस आत्मा को कुन्दन करने के लिए आत्मा आत्मा में ही गर्मी को प्रगट करती है। बेटा! हाथ जल जाये तो क्या करोगे? पानी भी नहीं है तो क्या करेगा? फूँकेगा। ठण्डी का मौसम हो, हाथ ठण्डे हो गये हों। फूँक मारेगा कि नहीं मारेगा? मारेगा। ज्ञानी ! उसी से ठण्डा उसी से गर्म। जब मैं पढ़ता था तो हिन्दी में एक अधिकार होता था उसी से ठण्डा उसी से गर्म। उसी से ठण्डा उसी से गर्म, तो ये गर्म भी करता है, ठण्डा भी करता है, बस बेटा ! यही तो संसार की लीला है। उसी से गर्म उसी से ठण्डा - ये रहस्यमय समयसार है।

जलेन जनितं पंकं, जलेन परिशुद्धयति।
चित्तेन जनितं पापं, चित्तेन परिशुद्धयति ।।

जब भी संसार में कीचड़ हुआ, मिट्टी पानी मिल जाये तो कीचड़ हुआ, पानी से कीचड़ हुआ। पैरों में कीचड़ लग जाये तो तू धोयेगा किससे? पानी से। उसी से ठण्डा उसी से गर्म। पानी से धुला। जितने भी पाप कर रहा है पापी, वह चित्त से करता है, पश्चाताप करता है तो चित्त से शुद्ध होता। उसी से ठण्ड उसी से गर्म। जब हाथ ठण्डे हो जायें तो मुख से फूँककर गर्म कर लेता है और गर्म हो जायें तो भी मुख से फूँककर ठण्डा कर लेता है।

'कायवाङ्मनः कर्मयोगः' ।। 6/1, त.सू.।।
स आस्रवः ।। 6/2 ।। त.सू.
शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ।। 6/3, त.सू.।।

ये तीनों शुभ में चले जायें तो ठण्डे हो जायें, पुण्य हो जाये। अशुभ में चले जायें तो गर्म हो जायें, पाप हो जाये। कुन्दकुन्दस्वामी से मिलो, जिस प्रज्ञा से बंध किया है उसी प्रज्ञा से मोक्ष होता है। **जिस प्रज्ञा से बंध होता है, उसी प्रज्ञा से मोक्ष होता है।** करणशक्ति। यह कह रहे हैं भगवन् अमृतचन्द्रस्वामी।

भवद्भावभवनसाधकतमत्वमयी करणशक्ति : ॥ 43 ॥

जो होने से ही हो रही है, किसी दूसरे के द्वारा नहीं होने से ही हो रही है, वह साधकतममयी करणशक्ति है और मेरी आत्मा में जो सिद्धत्व की परिणति का साधकपना है वही करणशक्ति है, पर-साधन से शून्य। षट्कारक तो समझना पड़ेगा। 'यस्मै दित्सा रोचते धारयते वा तत्सम्प्रदानम्' जिसको देने में ग्रहण करने के लिए रुचि में, अवधारणार्थ में; ये चतुर्थी का प्रयोग हो रहा है। स्वस्ति, स्वधा, अलम्, वषट्, नमः इनके योग में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है। **'धारते वा सम्प्रदानम्' जो धारण किया जाये वह सम्प्रदान है।** किसको धारण करूँ ? मैं निज गुणों को ही धारण करता हूँ, यही मेरी सम्प्रदान शक्ति है। मैं परगुणों को क्यों स्वीकारूँ, परवस्तु से प्रसन्न वे हों जो भिखमंगे हों, भिखारी हों। दे दो, भला हो, दुनियाँ का भला करनेवाला द्वारे पर खड़ा है। भैया ! तुम अपना ही भला करलो।

ये पंडितजी की ससुराल जैसी कथा हो गई। बेचारा ससुराल गया, चार छः लोग बैठे थे, वहाँ शर्म से ही खाना पड़ता है। ये तो कह नहीं सकता मेरी थाली में परोस दो। बगल को परोस दो, बगल में परोसेगा तो मुझे तो परसेगा। तो जो दूसरे के दरवाजे जाकर कहे भला हो, अब उसका भला हो न हो, अन्दर से कोई आयेगा, देखेगा, मेरा भला करने कौन आ गया, सो तेरा भला तो कर ही जायेगा। शब्दों में बड़ा जादू होता है। आदमी अपने भले शब्द को सुनकर बड़ा प्रमुदित होता है। आप कह दो किसी से जाकर के, देखो तुम्हारा सब ठीक हो जायेगा, वह इतना खुश हो जायेगा कि तुम्हारे ऊपर हीरे-मोती लुटा देगा। अब उसका भला उसके कर्म पर होगा। तुमने इतनी शांति से उसे सांत्वना दी है कि तेरा भला हो। **जब पर की प्रशंसा कहने मात्र से भला हो जाता है तो जगत् के प्राणियों का भला सोचने वाले तीर्थंकर का भला क्यों नहीं होगा? अब समझ में आ गया, तीर्थंकर प्रकृति का बंधक सारे जगत् का भला क्यों सोचता है।**

सम्प्रदानशक्ति को दो हेतु में समझना है। अमृतचन्द्रस्वामी की दो दृष्टियाँ चल रही हैं - एक सहजसमयसार और एक इन अज्ञानी को विरक्तिभूतसमयसार। सर्वार्थसिद्धि के देव तैंतीससागर तक तत्त्वचर्चा करते हैं और पुनः दोहराते नहीं हैं, कैसे संभव है? अब आप यहाँ अनुमान लगा लो, जब से बैठे हो आपने घड़ी क्यों नहीं देखी ? सम्प्रदानशक्ति, किसके लिए ? भवन जो बनवाया है ? किसके लिए ? मकान बनवाया, किसके लिए ? जोड़-जोड़ के रख रहे हो, किसके लिए ? अपनी भविष्य की पर्याय की ओर निहारना, किसके लिए ? आप लोग कभी तो सोचा करो, जिस जीव की आयु पचास वर्ष की हो

चुकी है, उसने कितना, किसके लिए जोड़ रखा है ? इतने गणितज्ञ तो हो। एक वर्ष का हमारा खर्च इतना है ठीक है, पचास वर्ष जी चुका हूँ। माना कि तुम और राग कर लो पचास वर्ष और जी लो, जीनेवाले नहीं हो, फिर भी माना कि पचास वर्ष और जोड़ लो, फिर हिसाब लगा लो मेरे स्वयं का खर्च इतना है, अब आपने उससे कई गुना जोड़के रखा है, बताओ किसके लिए? समझ में आ रहा है माताओ! किसके लिए? जितने वस्त्र आडम्बर जोड़कर रखे कोई प्रयोग नहीं करते, किसके लिए ? दीमकों के लिए, रागियों के लिए। आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी की व्याख्या तो मैं करूँगा, आज घर जाना, भले नींद न आये उसका तनाव मत करना, पर रात्रिभर सोचना, किसके लिए? ठीक है, अभी-अभी जाते-जाते, जो-जो वस्तु दिखे किसके लिए? सम्प्रदानशक्ति किसके लिए। आज के विषय को ध्यान में रखना।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

44

सम्प्रदानशक्तिः

''स्वयंदीयमानभावोपेयत्वमयी सम्प्रदानशक्तिः।''

सम्प्रदानशक्ति अपने द्वारा दिये जानेवाले भाव की उपेयत्वमयी है। सम्यग्दर्शनादि निर्मलपर्यायें आत्मा के लिए ही हैं। अपने से ही देने में आता जो भाव उसके प्राप्त होने योग्यपना पाने योग्यपनेमयी 'संप्रदानशक्ति' है।

समय देशना

भव्य बन्धुओ! आचार्यप्रवर भगवत् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज समयसारजी में ध्रुवज्ञायकस्वभावी भगवानात्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। उपाय-उपेय दो दृष्टियाँ हैं। **जिससे प्राप्त किया जाये वह उपाय है जो प्राप्त किया जाये वह उपेय है।** उपाय पर ही दृष्टि है और उपेय पर दृष्टि नहीं है, तो उपाय किस काम का? क्या उद्देश्य उपाय का? **जो उपेय को भूल करके उपाय में लगा हुआ है वह निष्प्रयोजन छिलकों को कूट रहा है। रत्नत्रय उपाय है, मोक्ष उपेय है। व्यवहारधर्म उपाय है, निश्चयधर्म उपेय है।** परमार्थदृष्टि पर लक्ष्य नहीं है, तो तुम्हारे सम्पूर्ण उपाय उपेय को प्रदान नहीं करा सकते हैं, प्रतिक्षण प्रतिपल जैसे पनघट से पानी लानेवाली पनहारिन मार्ग में सखियों से बातें करने पर भी कलश से हाथ भी छोड़ देती है तब भी घट जमीन पर नहीं गिरता, क्यों? हाथ छोड़ दिये हैं, बातें कर रही है लेकिन लक्ष्य कलश पर है, कहीं सिर न हिल जाये, घट गिर जायेगा।

ऐसे ही, हे श्रमण! मोक्षमार्ग में अनेक प्रकार के धर्मात्मा जीव मिलेंगे, अनेक प्रकार के भक्त मिलेंगे, अभक्त मिलेंगे, इन सबके मध्य में होते हुए भी जो आप रत्नत्रय के घट को अपने ऊपर लेकर चल रहे हो, जिसके अन्तस् में समता का सलिल भरा हुआ है, वो गिरने न पाये। **सम्प्रदानशक्ति जो है उपाय-उपेय पर दृष्टि रखे हुए है।** चतुर्थ विभक्ति का अर्थ मात्र देने के अर्थ में नहीं है, धारण करने के भी अर्थ में है।

यस्मै दिस्ता रोचते धारयते वा तत् सम्प्रदानम्॥396/का.व्या.॥

'ब्राह्मणाय दानं ददाति', ब्राह्मण को दान दिया जाता है, देता है देने के अर्थ में। रोचते, रुचि के अर्थ में, साधु के लिए समता आनंद देती है। 'समता के लिए साधुता है।' **'समतायै साधुता रोचते'** समता में साधुता रुचती है कि साधुता में समता रुचती है? धारण अर्थ में **'संयमाय श्रुतं धत्ते'** संयम के लिए श्रुत को धारण किया जाता है। यहाँ ध्यान देना है; जो जीव शास्त्र पढ़ूँ, ज्ञानी बनूँ, ऐसा विकल्प बार-बार लाकरके, अब कम सामायिक करलो पढ़ने को नहीं मिलता, उतना समय पढ़ने को मिल जायेगा, अच्छा। अब दूसरी क्रिया कम करलो, अपन स्वाध्याय कर लेंगे। किसी का स्वास्थ्य खराब था, वृद्ध साधु थे, शैक्ष थे, ग्लान थे। वैयावृत्ती करलो। समय नहीं है मेरे पास, मैं पढ़ नहीं पाता हूँ। अच्छा, तुमको पढ़ने के लिए वैयावृत्ति छोड़ना है। अभी आपको तत्त्व का यथार्थ बोध नहीं है। इसलिए आपके मन में विकल्प आ रहे हैं। एक साधक आया, उसने तीन प्रतिमा धारण करली और तीन प्रतिमा धारण करने के बाद किसी स्वाध्यायी ने बोल दिया – तुम यह क्रियाकाण्ड में लगे रहोगे, तीन बार सामायिक करोगे तो स्वाध्याय कब करोगे? कुंथलगिरि में वो मेरे पास आ गया, बोला - महाराजजी! भीख दे दो। मैंने कहा-किस बात की? बोले - मैंने आपसे तीन प्रतिमा ली थी उसमें से एक कम कर दो। क्यों कम कर रहे हो? बोले - पण्डितजी भी कह रहे थे और मुझे भी लगा, पहले तीन घण्टे स्वाध्याय करता था, अब तीन घण्टे

सामायिक में ही चला जाता है, स्वाध्याय कब करूँगा? मैंने कहा - पंडितजी ने ठीक कहा, स्वाध्याय ही कहा है, आप समझ नहीं पाये। स्वाध्याय करो, अभी तक तुम पढ़ा करते थे, अक्षर गिनते थे, अब स्वयं का अध्ययन करो, ये सामायिक स्वाध्याय है।

ज्ञानी! श्रुत के लिए श्रुत धारण नहीं किया जाता, संयम का निर्दोष पालन हो, संयम में लवलीन रहूँ इसलिए श्रुत का अध्ययन किया जाता है और तुम संयम छोड़कर श्रुत में जा रहे हो। उसमें लिखा क्या है? आत्मा का कल्याण रत्नत्रयधर्म से होगा इससे ज्यादा क्या हो सकता है।

'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-इनकी एकता मोक्षमार्ग है। श्रावक का सामायिक शिक्षाव्रत; ये सामायिक के लिए नहीं है, ये सामायिकचारित्र की प्राप्ति का अभ्यास है। सामायिकचारित्र के लिए है। जब उसने एक घण्टे की सामायिक की, दो घण्टे की सामायिक की, तीन घण्टे की सामायिक की, ऐसा सामायिक करता हुआ समस्त सावद्ययोग का परित्याग कर देता है और सम्पूर्ण ममत्वभाव का त्याग कर देता है। **'ममत्तिं वोस्सरामि', 'णिम्ममत्तिं उवसंपज्जामि'।** मैं ममत्व का परित्याग करता हूँ, निर्ममत्व की प्राप्ति करता हूँ ऐसा विचार करके वह सुधी श्रावक अंतरंग में वेदन करता है कि मेरा पाँच पाप का एकदेश समयप्रमाण तक परित्याग होने पर जब इतना आनंद आता है, उसने निश्चित कर लिया है कि मुझे अड़तालीस मिनट बैठना ही है तो जिसने पाँच पापों का जीवन पर्यन्त के लिए विसर्जन कर दिया हो, उस जीव की अनुभूति कैसी होगी? फिर वो पर्व के दिनों में उपवास करता है, भूखा रहने के लिए नहीं, संयम पालन के लिए।

पर के शब्दों की अनुभूति ले रहे हो आप, ये आपकी उत्कृष्ठ साधना नहीं है। स्वयं की शक्ति का अपने भीतर संचय करलो, वह आनंद मेरे भीतर ही स्फुरायमान होने लगे। कठिन लगता है पर सत्य वही है। स्वयं के अन्दर इतनी एकाग्रता हो जायेगी। जब चित्त तन्मय होता है तब एक जरासी आवाज भी तुम्हें कष्ट देती है कि नहीं? ज्ञानी! रात्रि के बारह बजे दीवाल घड़ी को देखा आपने, अभी इसकी कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ रही, रात्रि के बारह बजे ये घड़ी भी तुम्हारी नींद को भंग कर देगी। घड़ी के काँटों की आवाज सुनाई देना प्रारंभ हो जाता है। शांत वातावरण होता है, तो घड़ी के काँटे सुनाई पड़ने लगते हैं, ऐसे ही योगी निज की साधना में जब शांत होता है तो निज के भीतर की धड़कन को सुनने के लिए डॉक्टर का आला लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, स्वयं की धड़कन को सुन लेता है। जब हृदय की धड़कन सुन लेता है तो मन की चंचलता को भी समझ लेता है। उस घड़ी को भी दूर रखना पड़ता है, क्योंकि नींद भंग कर रही है। ऐसे ही मन की चंचलता साधना में विघ्न करने लगती है।

त्यागियो! जो कोई भी इन्द्रियों का विषय सेवन नहीं करना चाहता, उसको उसकी आकांक्षा विघ्न दिखेगी। जो सेवन करना चाहता है उसको आकांक्षा में सरसता दिखेगी। जिसको साधना में रुचि है उसको जग के सारे विकल्प कष्टप्रद होंगे, वो कष्ट को हटाने का प्रयास करता है। जैसे घड़ी की आवाज से नींद

भंग हो रही है तो घड़ी को दूर रख देता है ऐसेही **हे जीव! तेरे चित्त में ये महसूस हो गया है कि विषयों की अपेक्षा साधना में आनंद अधिक है तो अपने आप कोई गुरु नहीं कहेगा, कोई प्रभु नहीं कहेगा, स्वयं उन विषयों को दूर करके आत्मसाधना में लवलीन हो जायेगा।**

जैसे हम परिवार को छोड़कर दूर हट गये, दूर बस गये, जैसे ग्राम को छोड़कर आ गये, वैसे ही इन्द्रिय-ग्राम को छोड़ो। इन्द्रिय-ग्राम जब-तक नहीं छूट रहा है तो ग्राम छोड़ने का क्या उद्देश्य? भावसंयम ही भावश्रुत है। पाँच समिति, तीन गुप्ति, अष्ट प्रवचन मात्रिका का धारक योगी कैवल्य को प्राप्त हो सकता है। शिवभूति नाम के मुनिराज को कितना श्रुत था? इसलिए ज्ञानियो! साधना के मार्ग पर क्षयोपशम अल्प भी है, तो उसे भी समता से सहन करो, यह भी साधना है। पुनः कहूँ, साधना के मार्ग पर क्षयोपशम मेरा कम है उसे समता से सहन करलो, यह भी गुणश्रेणी निर्जरा का कारण है।

मार्गाच्यवन निर्जरार्थं परिषोढव्याःपरीषहाः ।।त.सू.।।

मार्ग से च्युत न हो, कर्म-निर्जरा के लिए जो सहन किया जाये उसका नाम परीषह है। मेरे से कुछ बनता नहीं है, बगल का साधु बहुत ज्ञानी है, उसकी यशकीर्ति को भी सहन करलो, यही तुम्हारी साधना है। किसी ने कह दिया - आप दुर्बुद्धि हो। हाँ, ठीक है जो है उसे ही कह रहा है, अलग से क्या कह रहा है? सामायिक का अर्थ आँख मींच के बैठना मात्र नहीं है, आँख मींचके बैठ भी गये और आप अपने पड़ोसी के बारे में सोचने लग गये तो क्या सामायिक हो गई? धारण अर्थ में समझिए, हे श्रावक! आप जो सामायिक कर रहे हो, यथार्थ में तुम्हारी सामायिक हो गई।

सामायिके सारम्भाः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि।
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावम् ।।102/र.क.श्रा.।।

धन्य हो, आपको मुनि के तुल्य कह दिया है। जैसे किसी उपसर्गकर्त्ता ने मुनि के ऊपर वस्त्र डाल दिये हों ऐसे आप मुनि के समान हो। जब मुनि के समान कह दिया, अब इतना अभ्यास करलो, तीन समय की सामायिक आपके जीवनपर्यन्त के लिए सामायिकचारित्र बन जाये। सामायिकशील श्रावक का चेहरा इतना सौम्य हो जाता है, तो सामायिकचारित्रवाले समता की मूर्ति ही होते हैं,

'तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण, उपल खाज खुजावते' ।।4/6, छ.ढा.।।

उनकी सुथिरमुद्रा को देखकरके, पाषाणखण्ड समझकरके, मृग जिनके तन से अपनी खुजली खुजा रहे हों तब भी न हिलें ऐसे योगी को कोटि-कोटि नमस्कार हो। यह है दिगम्बरत्व, यह है सामायिक संयमत्व। यह सुन रहे हो, इसे भी सीखने की चेष्टा मत करना। मेरा विश्वास है जितने गहरे में उतर जाओगे उतना गहरा निकलेगा। कोई भी सीखने की आवश्यकता नहीं। कोई भी केवली भगवान् केवलज्ञान को सीखते नहीं हैं। वो प्रगट होता है। सहज वस्तु सीखी नहीं जाती वह प्रगट होती है।

द्वादशांग को शायद ही कोई पढ़ पाये। श्रुतकेवली भगवन्त द्वादशांग को पढ़ते नहीं हैं। पढ़ने से द्वादशांग का ज्ञाता हो पाना बहुत कठिन है। **जैसे-जैसे परिणामों की विशुद्धि बढ़ती है, विरक्ति होती है, वैसे-वैसे श्रुतज्ञान प्रकट हो जाता है। शास्त्र आलम्बनभूत हैं, विशुद्धि से ज्ञान की सिद्धि होती है।** विश्वास न हो तो करके देख लो। क्षयोपशम बढ़ाना हो तो समता लाओ। क्षयोपशम बढ़ाना हो तो विशुद्धि की प्राप्ति करो, संक्लेशता से आत्मरक्षा करो। **'संक्लेश मुक्त मनसा'।** कर्मों से मोक्ष बाद में होगा। आप पहले अपनी बुद्धि को संक्लेशता से मुक्त करलो। **जब-तक तुम्हारी बुद्धि संक्लेशता से मुक्त नहीं हो रही है, तब-तक कर्मों से मुक्त होना असंभव है।** कुछ नहीं सीखने का भाव, कुछ नहीं करने का भाव मात्र। सम्पूर्ण पुरुषार्थ को लगा दो समता सामायिक के लिए। जब सामायिक में पुरुषार्थ लग जायेगा, तो शिवकोटी मुनिराज से मिल लेना। बारह वर्ष तक णमोकार का पाठ न सीख पाये, अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञानी कैसे हो गये?

तुसमांसो घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावो य।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुड जाओ ।।53/भा.पा.।।

भावों की विशुद्धि से युक्त होकरके तुषमास भिन्न का घोष करते हुए शिवभूति नाम के महायोगीश्वर एक अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान को प्राप्त हो लिए। वहाँ पोथियों का ज्ञान हो जाता है। सामायिक में जो श्रुत है, वही श्रुत भावश्रुत में बदल जाये यह निश्चय सामायिक, जो निश्चय सामायिक है वो ही भावश्रुत है। जो भावश्रुत है वो आत्मा का आत्मा में अवलोकन है। किसमें है? किसके लिए? आत्मा के लिए है- सम्प्रदानशक्ति। वो श्रुतज्ञान कुछ नहीं दिख रहा है फिर भी कुछ है कि नहीं? जो दृश्यमान नहीं है वह अदृश्यमान है, वह आनंद है, वह योगी का आनंद है। वह मेरी आत्मा का आनंद है, समरस का आनंद है।

समरस का आनंद चाहिए? पहले साम्यभाव का आनंद लाइये। जब साम्यभाव का आनंद आ जायेगा, फिर समकित का आनंद आयेगा। जब समकित का आनंद आ जायेगा तब कहीं समता-रस का आनंद आयेगा। मित्र ! पहले साम्यभाव में आइये, तब समकित को प्राप्त कर सकेगा। जब समकित में आयेगा तब सामायिकचारित्र को प्राप्त करेगा, जब सामायिकचारित्र की अनुभूति में डूबेगा, तो समता का रसपान करेगा। ये शब्दों के भेद नहीं हैं, यह वस्तु के भेद हैं, अनुभूति के भेद हैं। अनुभूति को व्यक्त करने के लिए इन शब्दों का प्रयोग है।

साम्यभाव आयेगा मिथ्यात्व गुणस्थान से, तब समकित प्राप्त करेगा - चतुर्थ गुणस्थान। जब समकित प्राप्त करेगा, देशसंयम की ओर बढ़ेगा और देशसंयम के बाद जब सकल संयम को प्रगट करेगा तब समताचारित्र प्रगट होगा, वह सामायिकचारित्र होगा। सामायिकचारित्र में जब डूबेगा, तब समरस का आनंद आयेगा। जब-तक समरस का आनंद नहीं है तब-तक सोमरस का आनंद है। सोमरस जानते हो

आप? मदिरा, शराब। बोतलों की मदिरा को तू छोड़ चुका, लेकिन अमृतचन्द्रस्वामी कह रहे हैं - ज्ञानी! काम, क्रोध, मिथ्यात्वादि रोग 'सरक संहिता।' पुरुषार्थसिद्धि से बोल रहा हूँ। सरक यानी मदिरा, ये सभी मदिरा के पास की सामग्रियाँ हैं। वो बहिरंग मदिरा है, ये अंतरंग मदिरा है। **'मोह महामद पियौ अनादि'** जो मोहरूपी सोमरस का पान कर रहा है उसे समरस का पान कहाँ हो सकता है?

पहले आप बुद्धिपूर्वक सोमरस का त्याग कीजिए। ये दुनियाँ के वस्त्रों का राग जब-तक है तब-तक समरस का पान नहीं हो सकता, क्योंकि समरस के लिए अहिंसा चाहिए। धैर्यपूर्वक कह रहा हूँ, कुन्दकुन्द की भाषा में समझो आप। **आगम, गुरूपदेश, स्वानुभव के लिए अहिंसा चाहिए। 'धम्मो दया विसुद्धो'।** जब-तक अहिंसा नहीं आ रही है तब-तक समरस नहीं आ रहा है। मेरे साथ बैठकरके आप बहुत अच्छे से सुन रहे हो, समझ रहे हो, पर मित्र! अभी-अभी कोई तुम्हारे कपड़े पर गंदगी करदे, तो तुम्हें पता चल जायेगा समरस का पान कहाँ हो रहा है ? वहीं मालूम चल जायेगा। पहले धीरे से कहेगा - मत कर, नहीं मानेगा। तो कहेगा - क्या दिखाई नहीं देता तुझे मैं आज ही धोकर आया हूँ। तू धोकर नहीं आया पुण्य धोकर आया है। कोटि-कोटि जीवों की हिंसा हुई होगी, तब धोकर लाया है।

मैं बार-बार कहता हूँ 'पुरुषार्थसिद्धि उपाय' ग्रन्थ जीवन में एक बार पढ़ तो लो। **'बहिर् परिग्रह वर्जन'।** शास्त्रीजी! इस पर्याय में मुनि बन पाओ, न बन पाओ, पर मुनि की चर्या का उत्कृष्ठ व्याख्यान हृदय में बसा ही लेना, वह अंतरंग-बहिरंग परिग्रह का त्याग करा देगा, तब अहिंसा का आचरण पलेगा। **अंतरंग परिग्रह है तो भावहिंसा है। बहिरंग परिग्रह है तो भावसहित द्रव्यहिंसा भी है।** नहीं है ? है। जब ये सूक्ष्म व्याख्या जैनत्व में हिंसा की होती है तब हर व्यक्ति का मस्तिष्क कहता है – ये तो मात्र निर्वस्त्र होकर ही संभव है। **जो वसन-वासना से विमुक्त होगा वही अहिंसा का पालन कर सकेगा।** वसन और वासना; वसन यानी वस्त्र, वासना यानी इच्छाएँ। वसन और वासना का परित्याग किये बिना अहिंसा का पालन संभव नहीं है, फिर सारे विकल्प शून्य हो जायेंगे। आहार, औषध, अभय दान - ये सारे विकल्प समाप्त हो जायेंगे।

पर की वस्तु पर को देना इसे लोक में दान कहा जाता है। कहीं से निकलवाना, कहीं दिलवाना, किसी का राग हटाना, किसी का बढ़वाना। ज्ञानी! अभी तू राग से लिप्त है। जब सम्प्रदानशक्ति में प्रवेश कर जायेगा, तो **निज का ही निज को प्रदान करना - ये सम्प्रदानशक्ति है।** निज का निज के लिए ही सम्प्रदान करता है। नहीं समझ पा रहे हो, भैंस का दूध भैंस को पिला दो। पन्द्रह दिन तक भैंस का दूध अभक्ष्य होता है। प्रसूति के बाद पन्द्रह दिन तक दूध नहीं पीना चाहिए। समझदार किसान पियेगा नहीं, भैंस के बच्चे को पूरा पिला देगा तो वह बीमार पड़ जायेगा, तो फिर उसका क्या करेगा? भैंस के दूध को निकालेगा नहीं तो गट्टे पड़ जायेंगे, भैंस बीमार पड़ जायेगी। भैंस के दूध को निकालता तो पूरा है और उसको दलिया में मिला के भैंस को ही पिला देता है। वह तेलीय दूध भैंस के उदर में जाता है तो शक्तिमान

होता है उससे दूध की वृद्धि होती है। जैसे ग्वाला भैंस का दूध भैंस को ही पिला करके दूध की वृद्धि करता है ऐसे ही निर्ग्रन्थ तपोधन अपने श्रुतज्ञान को अपने ही श्रुत को प्रदान करके वह श्रुतकेवली हो लेते हैं। वह श्रुतकेवली होकरके अखण्ड श्रुत की धारा में लीन होकरके वही श्रुतानुभूति आगे चलकर कैवल्य को उद्घाटित कर देती है।

डीजल, पेट्रोल, मिट्टी का तेल, डामर; ये कहाँ से निकल रहे हैं? सब पेट्रोलियम हैं, कच्चा। परिशुद्ध होते-होते जो विमान में प्रयोग होता है तेल, वह क्या है? व्हाइट पेट्रोल। वह किससे बना? एक खनिज तेल भूमिगत उसका शुद्धिकरण होते-होते इतना शक्तिमान हो जाता है कि नीचे रखा जमीन में विमान आकाश में उड़ने लगा, ऐसे ही ज्ञानी! हमारे परिणामों की विशुद्धि में इतनी तीव्रता होती है कि उठते-उठते एक समय में सात राजू गमन करके सिद्धालय में जाकर विराजमान हो जाता है शुद्धात्मा। ये सब ज्ञान का प्रयोग है।

एक सीमा में हम संयम की व्याख्या करेंगे, ज्ञान-दर्शन-चारित्र की व्याख्या करेंगे, पुनःघुल-मिल करके एक ज्ञायकभाव की व्याख्या करते हुए, वह जो चारित्र संज्ञा थी वह चौदहवें गुणस्थान तक चलती रहेगी। यथाख्यात, परम यथाख्यात; ये सब संज्ञा होने पर भी अंतरंगदृष्टि क्या है? न कोई पालन का भाव चल रहा है, न धारण का भाव चल रहा है। त्याग, धारण, पालन - इन तीन शब्दों पर ध्यान रखना। **विषयों का त्याग, संयम का धारण और समितियों का पालन – उसका नाम संयम। डण्डों का त्याग।**

मेरे मित्र! जब किसी के हाथ में डण्डा होता और तू कुछ भी नहीं लिए तो उससे बात करते सजग रहता है, अरे! इसके हाथ में डण्डा है, भले ही मित्र क्यों न हो। पर के हाथ में डण्डा देखकरके कितना सजग हो लेता है जीव, इसके हाथ में डण्डा है। पर हे ज्ञानी! यदि वो डण्डा मारेगा भी तो कहाँ? तन पर ही मारेगा। उस मित्र के अथवा शत्रु के हाथ में डण्डे को देखकर के तू कितना सँभलकर बैठा होता है। तब तुझे मालूम होना चाहिए तीन डण्डे तेरे पास हैं, वे डण्डे ऐसे लगते हैं कि तू कभी उभर नहीं पायेगा। मन-डण्ड, वचन-डण्ड, काय-डण्ड। मन की अशुद्धप्रवृत्ति डण्ड है, वचन की अशुभप्रवृत्ति डण्ड है और काय की अशुभप्रवृत्ति डण्ड है। इन तीन डण्डों से बचके रहो तो तीन करण मिल जायेंगे। वे ही मन-वचन-काय शुभ में परिवर्तित हो जायें तो शुभ संज्ञा को प्राप्त होते हैं और अशुभ में जायें तो दण्ड संज्ञा को प्राप्त होते हैं। तीनों का अभाव हो जाये तो अयोगी भगवान् बन जाता है।

ये कभी मत सोचना - मुनिराज बन गये फुर्सत में हो गये, पिच्छी-कमण्डलु आ गया, अब कुछ नहीं करना। बाहर के निर्णय बहुत छोटे हैं, अंदर क्या-क्या काम होते हैं तुम्हें पता नहीं। जितना बड़ा पेड़ होगा, उतनी विशाल जड़ें होंगी। वटवृक्ष ऊपर जितना विशाल होता है उसकी जमीन में जड़ें भी उतनी विराट् होती हैं। ये दिगम्बरत्व जो बाहर में इतना पवित्र दिखाई देता है उसका अंतरंग कितना पवित्र होगा?

तब दिगम्बरत्व पलता है। भाई ! दिगम्बरत्व को सिर टेकते रहना, पर दान-मान में लिप्त होकरके भीतर के दिगम्बरत्व का नाश मत कर देना। ये गहरे शब्द हैं, इसलिए समयसार ग्रन्थ को समझना-पढ़ना है, बार-बार समझना-पढ़ना है। श्रावक के प्रदान से औषध, शास्त्र, अभय, आहार, वहाँ उसके लिए सम्प्रदानकारक लगा दीजिए। श्रमण की अपेक्षा से सम्प्रदानकारक कहाँ लगाओगे? निज की अनुभूति को निज में प्रदान कर देना। उपमान, उपमेय, देय-देयमान, देनेयोग्य-दाता। मेरी निजानुभूति ही, परम समरसभाव ही देने योग्य है।

भैया! कभी ग्रन्थों में देने का, दान का भाव आता है तो सबसे पहले ब्राह्मण शब्द जरूर लिखा मिलेगा। कातंत्र व्याकरण में भी ब्राह्मणाय वस्त्रं ददति, ब्राह्मणाय वस्त्रं ददातु, ब्राह्मणाय वस्त्रं दद्यात्। मैं अलग-अलग लकार लगा रहा हूँ। पंडितजी! ये तो बताइए, क्या धोबी को वस्त्र नहीं देते हो आप? अरे! दोगे नहीं तो धुलके कैसे आयेंगे, देते हो कि नहीं देते हो? लेकिन किसी भी व्याकरण में लिखा नहीं मिलेगा 'रजकस्य वस्त्रं ददातु' क्यों? ज्ञानियो! 'हिंसार्थे षष्ठी धर्माय चतुर्थी', धर्म के लिए चतुर्थी का प्रयोग होता है। जो धोबी को दोगे वो वापस लोगे और धोने में हिंसा होगी इसलिए षष्ठी विभक्ती का प्रयोग 'रजकस्य वस्त्रं ददति' ददातु, दद्यात्। वहाँ षष्ठी का प्रयोग है, लेकिन चतुर्थी का प्रयोग ब्राह्मण के लिए। जब भी दान की व्याख्या होती है तो ब्राह्मण शब्द आता है। दान तो ब्राह्मण को ही देना चाहिए और किसी को नहीं देना चाहिए। मैं तो इसी परम्परावाला आदमी हूँ, दान तो ब्राह्मण को ही देना चाहिए। ज्ञानी! अधूरी बात मत सुन लेना, नहीं तो अभी घर पहुँच कर ब्राह्मण खोजने चले जाओगे।

हे मुमुक्षु! कितना गहरा विषय है कि दान ब्राह्मण के लिए देना चाहिए। **'ब्रह्मणि आचरणे आचरति' ब्रह्म यानी आत्मा, उस आत्मा में जो लवलीन है उसका नाम ब्राह्मण है। ये निर्ग्रन्थ वीतरागी सच्चे ब्राह्मण हैं इसलिए इन ब्राह्मणों के लिए ही दान देना चाहिए। अब मैं ही ब्राह्मण हूँ, मैं ही दाता हूँ, मैं ही पात्र हूँ। देयमान वस्तु है वह मेरी स्वानुभूति है, स्वानुभूति के लिए हे श्रमण! हे ब्राह्मण!! तू निज ब्रह्म को दे दे। इसका नाम सम्प्रदानशक्ति।** वास्तविक सम्प्रदानशक्ति का व्याख्यान यह है, लेकिन वस्तुस्वरूप ये है जो अमृतचन्द्रस्वामी कह रहे हैं। वह यही कह रहे हैं। गृहस्थों से कह रहा हूँ - व्यवहार से भी देना हो तो इन्हें देना। मुनिराजों के मन में आ जाये कि दान करना है तो तुम पर का क्या दान करोगे? तुम तो सब छोड़के आये हो, परिग्रह का विसर्जन करके आये हो, तुम उसकी अनुमोदना भी नहीं कर सकते हो। अब तो आपको ये बार-बार बोल रहा हूँ - गौ दे दो। गौ यानी वाणी। हाँ, ब्राह्मण को गाय देना चाहिए। गौ यानी वाणी।

वाणी त्रयोदशं नाम, भाषाचैव चतुर्दशं।
पंचदशं च श्रुत देवी, षोडशं गौर्निगद्यते ।।स.स.7।।

हे श्रमणो! तुमको गौ दान करना चाहिए। गौ दान, वो कौनसी गऊ है? वाणी। **हे श्रमण! आप सराग अवस्था में हो, तो जिनवाणी प्रदान करो श्रावकों को और निज में लीन हो तो निज की अनुभूति निज को प्रदान करो, इसका नाम गौ दान है।** गौ यानी वाणी।

हे ज्ञानी! ये परमार्थदृष्टि है। जिसके चार पाये हैं प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग। ये चार पाये से युक्त है ऐसी भगवती जिनवाणी। ये वस्तुस्वभाव है सम्प्रदानशक्ति। इस मूल भूमिका से तुम विचलित हो गये, तो ध्यान रखना जगत् के सारे आनंद तो तुम लूट सकते हो लेकिन भीतर में और रहस्य है। आम तो सबने खाये हैं। छिलके फेंककर खाये, दल खाया परन्तु गुठली को फेंक दिया। अभी तुम अधूरे हो। पूरे महाराष्ट्र के आम खा डाले फिर भी अधूरा है। जब-तक गुठली नहीं तोड़ी उसके भीतर की मिगी नहीं निकाली और उसका सेवन करके पानी नहीं पीया, तब-तक उसका आनंद स्वाद मीठा कहाँ लिया? जितनी आम के दल की गर्मी थी उसे उतारना है तो गुठली की मिगी का स्वाद लिया क्या?

ज्ञानी! ऐसेही सारे स्वाद तो ले लिए, वस्त्र के छिलके उतार दिये, यश के दल का भी सेवन कर लिया परन्तु जब-तक मोह की गुठली नहीं टूटी और स्वानुभूति की अनुभूति नहीं आई, तब-तक जीवन में क्या दिगम्बरत्व का आनंद आया? वो ही आनंद है। मन को समझाने के लिए किसी भी भेष में उतर आना, पर सत्य को समझने के लिए आपको यही स्वीकारना पड़ेगा।

ज्ञानी! परिग्रह के ममत्व में सम्प्रदानशक्ति का प्रवेश नहीं है। नहीं तो जिनकी जैसी इच्छा होती वैसा कर लेते हैं। कुन्दकुन्दस्वामी ने प्रवचनसार में लिखा - कुछ मुनियों को परिग्रह की रक्षा करना चाहिए। विभिन्न टीकाकार हुए उन्होंने अपने मन की बातें लिख लीं, बोले - ठंड में कम्बल रख सकते हैं, पैसे भी रख सकते हैं। ज्ञानियो! वीतरागी कुन्दकुन्द आचार्य का अभिप्राय यह नहीं है, वो गात्र-मात्र परिग्रह कह रहे हैं। हे श्रमण! परिग्रह की रक्षा करना चहिए आपको, ये कम्बल आदि ओढ़ने की बात नहीं कर रहे हैं, जब-तक निर्वाणश्री न मिल जाये तब-तक देह-परिग्रह की रक्षा करना जिससे तुम साधना करके सिद्धि को प्राप्त कर सको। उसको आहार देना इतनी परिग्रह की बात है, कम्बल ओढ़ने की बात नहीं है। जो श्रमण स्पष्ट कह रहा हो –

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्ख मग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे।। 23/सु.पा.।।

ज्ञानियो! वस्त्रधारियों की सिद्धि नहीं होती है, जिनेन्द्र के शासन में तीर्थंकर भी क्यों न हो, नग्नता ही मोक्षमार्ग है, शेष उन्मार्ग है। **इसलिए जिनमार्ग से निजमार्ग मिलेगा, उन्मार्ग से जिनमार्ग नहीं मिल सकता है। निजनाथ को देखना है तो जिननाथ के सत्यार्थ मार्ग को समझो।** असत्यार्थ मार्ग में न जिननाथ दिखेंगे, न निजनाथ दिखेंगे। जो अध्यात्म के रहस्य हैं वो शब्दावली में ही भरे होते हैं। बिखरी भाषा; वर्तमान के जो बाहरी प्रवचन हैं, वे बिखरी भाषा हैं, घी का घनत्व नहीं है।

ये जो वर्तमान के बाहर के उपदेश हैं भैया! एक प्रवचन में आपने चंचलताभूत अंग्रेजी का शब्द बोल दिया, कोई उर्दू शब्द बोल दिया, आप विश्वास रखना ये बच्चे खुश हो जायेंगे, पर हमारी जो गंभीरता चल रही थी जो एक धारा में, वह विलीन हो गई। जहाँ प्रवचन का गाम्भीर्य चल रहा था वहाँ जैसे ही तुमने संगीत प्रवेश करा दिया, वो धारा तुम्हारी बदल गई। ये अट्ठाईस इन्द्रिय-विषयों का विषय नहीं चल रहा था, ये सा-रे-ग-म-पा-धा-नि-सा नहीं चल रहा था, यह सारे भाषा से विमुक्त हो रहा था। संगीत समयसार का नाम सुना आपने। संगीत सीखना है तो संगीत समयसार से सीखो।

जब एक गूढ़वादी भाषा से परे हो जाता है, वह भाषा पर ध्यान नहीं देता है। बोले - मुझे जो भाषा मिले, जैसाकि नागपुर की किसी गली में हीरे-मोती मिल जायें। वैसे सराफे की दुकान पर जाओगे तो बढ़िया डिब्बी में मखमल में लिपटी रखी मिलेगी। उसे कितना सँभालकर ले जाते हो। यदि अचानक सड़क पर मिल जाये, उस समय आपके पास में बुंदेलखण्डी गमछा साफा हो, पंडितजी! उस समय आप मखमल की डिब्बी नहीं खोजोगे बल्कि साफे में ऐसे ही भरोगे। ऐसे ही गूढ़वादी भाषारूपी मखमल की डिब्बी नहीं खोजता, वह तो जो उसके पास होता है लबालब उस गूढ़ विद्या का आनंद लूटता है। तुम खोजो भाषा की डिब्बियाँ। इसलिए आचार्य कुन्दकुन्द ने प्राकृत में लिखा, योगीन्द्रदेवस्वामी ने अपभ्रंश में लिखा, जिनके पास जो गमछा था, अमृतचन्द्रस्वामी ने संस्कृत में लिखा। हमारे यहाँ भाषा का कोई राग नहीं है, कोई द्वेष नहीं है। यहाँ तो वस्तुव्यवस्था की व्याख्या की निर्मलता होना चाहिए। हिन्दी का युग आ गया तो हिन्दी के ज्ञानियों ने हिन्दी में लिखा, हिन्दी में बोला। तमिल में तमिल भाषा का, महाराष्ट्र में मराठी का, कर्नाटक में कन्नड़ का प्रयोग किया। षट्खण्डागम का मराठी में प्रकाशन हो रहा है। इतने हजारों वर्ष निकल गये, षट्खण्डागम न तमिल में था, न कन्नड़ में था, न मराठी में था; यह मात्र संस्कृत-प्राकृत में है, लिपि कन्नड़ी थी, अभी गोम्मटेश्वर भट्टारक ने उसको कन्नड़ भाषा में अनुवाद कराया है। सोलापुर समाज उसको मराठी में करा रही है, हिन्दी में हो चुका है।

ऐसा नहीं है इस युग में लोगों को महसूस न हुआ हो कि सिद्धांतों की आज भी आवश्यकता है। सिद्धांत को सिद्धांत की भाषा में पान कराया जायेगा तो पीने वाले लोग भी हैं। लोग बहुत आते हैं। जब गूढ़ विद्याओं का प्रयोग करते हैं तो ये कोई आश्चर्य मत करना, जहाँ भी यह समयसार प्रारंभ होता है तो आज ही सुबह लोग कह रहे थे - महाराज जी! सामान्य उपदेश में लोग आयें तो बात समझ में आती है पर समयसार जैसे ग्रन्थ में खण्डेलवाल भवन खचाखच भरा रहे, ये क्या रहस्य है? मैंने कहा - रहस्य यही है कि वहाँ जाके बैठलो सब समझ आ जायेगा। क्या बता सकते हैं? अवाच्य है, वो तो सत्य है। जो वेदान्त अपनी भाषा का प्रयोग करते हैं, अध्यात्म का ब्रह्मसूत्र कर्त्ता अथवा शंकराचार्य भाष्यकर्त्ता- इन सबको महावीर के अध्यात्म का पान मिल चुका था। जो पतंजलि योग है उनके ग्रन्थ के प्रकाशक ने लिखा दो शब्दों में, गोरखपुर से प्रकाशित है। भगवान् महावीर को न वेद का विरोधी कहिए न वेदान्त

का। किसी की उदासता किसी के विरोधी का हेतु नहीं हो सकती। इतने भैया लोग बैठे हैं यहाँ पर, इनकी अपनी-अपनी रुचि है, ठीक है। इतने महाराज हैं अपनी-अपनी रुचि, इतने श्रावक अपनी-अपनी रुचि।

किसी व्यक्ति ने हाथी मँगाया अपने घर में और दादा को निमंत्रण दिया, वो नहीं पहुँचे आपके यहाँ। जब तुम्हारे यहाँ कोई कार्यक्रम था तभी उनका पूजन का समय था, वो पूजन करने गये थे। आपने अपना कार्यक्रम निबटाने के उपरान्त दादा का विरोध प्रारंभ कर दिया, किस बात पर? इस बात पर कि इनको हमारा हाथी पसंद नहीं आया, ये हमारे हाथी के विरोधी हैं। जबकि वे तुम्हारे हाथी के विरोधी नहीं थे, वे अर्हंत की पूजा में लीन थे। उन्हें तुम्हारे हाथी से क्या प्रयोजन? ऐसे ही तीर्थंकर वर्द्धमान ही नहीं, चौबीस तीर्थंकरों के पास इतना समय नहीं था, किसका विरोध करने जाते, किसका पक्ष लेने जाते। वे अपने सत्य में इतने तल्लीन थे कि असत्य अपने आप में अपना विरोध समझ लेता है। अब अध्यात्म विद्या के उपदेश को सुनने ये माताएँ कितने काम छोड़ कर आई होंगी, इन्हें रोटी-भात बनाने का विकल्प ही नहीं आ रहा है।

गूढ़ विद्यावाले को किसी का विरोधी नहीं समझना चाहिए, वह अपनी विद्या में लीन है। ये तुम्हारा निजी सोच होता है कि इन्होंने मेरा विरोध किया। उसके पास इतना समय ही नहीं था कि तुम्हारा विरोध करे। वस्तुस्वभाव की प्ररूपणा है, उसके लिए कह रहे हैं। ध्रुवसत्य है; इस ग्रन्थ की जो भी व्याख्या करने आयेगा उसको ऐसा ही कहना पड़ेगा, यदि ग्रन्थ की व्याख्या वास्तविक करेगा तो।

स्वयं दीयमानभावोपेयत्वमयी सम्प्रदानशक्तिः ॥ 44 ॥

जो स्व में देने योग्य भाव से युक्त, उपेयमान उपेय से युक्त जो शक्ति है उसका नाम सम्प्रदानशक्ति। जो पर से प्राप्त नहीं करता, पर को प्राप्त नहीं कराता, निज में ही प्राप्त होता, निज को ही प्रदान कराता, उसका नाम है सम्प्रदानशक्ति।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

45

अपादानशक्तिः

''उत्पादव्ययालिङ्गितभावापायनिरपायध्रुवत्वमयी अपादानशक्तिः।''

उत्पाद-व्यय से स्पर्शित जो भाव उसके अपाय के होने से नष्ट न होता ऐसा ध्रुवपना उसमयी, उत्पाद-व्यय से आलिंगितभाव के नाश होने से हानि को प्राप्त न होनेवाली ध्रुवत्वमयी है 'अपादानशक्ति'।

46

अधिकरणशक्तिः

''भाव्यमानभावाधारत्वमयी अधिकरणशक्तिः''

भावने में आता जो भाव उसके आधारपनेमयी, आत्मा में भाव्यमानभाव के आधारपनेरूप 'अधिकरणशक्ति' है।

47

सम्बन्धशक्तिः

''स्वभावमात्रस्वस्वामित्वमयी सम्बन्धशक्तिः।''

अपने भावमात्र स्वस्वामिपनेमयी, अपना स्वभाव ही अपना स्वामी है, ऐसी स्वस्वामित्वमयी 'संबंधशक्ति' है।

समय देशना

भव्य बन्धुओ! आचार्यप्रवर भगवद् कुन्दकुन्दस्वामी ग्रन्थराज समयसारजी में ध्रुवज्ञायकस्वभावी भगवानात्मा के सहज स्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। अनंत शक्तिसम्पन्न यह आत्मद्रव्य निजध्रुवत्वभाव से युक्त पर्यायों में लिप्त पुरुष, पुरुष को ही भूल गया। जो-जो दृश्यमान हैं, जिनमें दृष्टि रागमय है वे ध्रुव-अध्रुवस्वभावी हैं। चाक्षुष पर्यायें कभी त्रिकालता को प्राप्त हुई नहीं और त्रैकालिक होंगी भी नहीं। हर्ष-विषाद परिणाम हैं, वे त्रैकालिक के ऊपर नहीं हैं, ये तात्कालिक के ऊपर हैं। आज प्राणी तात्कालिक के राग में त्रैकालिक पर लक्ष्य ही नहीं ले जा रहा है। परिणाम परिणाम है, परिणाम परिणामी नहीं है। परिणामी के अभाव में परिणाम होते नहीं हैं। परिणामी त्रैकालिक रहेगा, परिणाम नष्ट होगा। एक परिणाम से तात्पर्य - भाव, एक परिणाम से तात्पर्य - पर्याय का परिणमन।

जो भाव है वह शुभाशुभभाव भी भावों की ही पर्याय है। भावों में भी पर्यायें ही रहेंगी, कभी अशुभ पर्यायें रहेंगी, तो कभी शुभ पर्यायें होंगी। कभी शुद्ध पर्यायें होंगी भावों में, पर जो भाव वस्तुभूत है वह इन तीनों भावों से अभावभूत है। शुभभाव मेरी आत्मा का त्रैकालिक भाव नहीं है, अशुभभाव मेरी आत्मा का त्रैकालिक भाव नहीं है, शुद्धोपयोगमयीभाव भी मेरी आत्मा का त्रैकालिक भाव नहीं है। शुद्धभाव शुद्धस्वभाव वस्तुभूत जो है वह त्रैकालिक रहने वाला है। उपयोगमयी शुद्धोपयोग भी त्रैकालिक नहीं है, इसलिए हे जीव! शुद्धोपयोग के राग में भी मत बैठे रहना, यह भी अभाव होनेवाला भाव है।

शुद्धोपयोग के राग में शुद्धात्मा के त्रैकालिक स्वरूप को मत खो बैठना। शुद्धोपयोग आत्मा का कोई ऐसा धर्म नहीं है जो शाश्वत् धर्म हो। यह तो चारित्र की अभेदवृत्ति है, ये रत्नत्रय की अभेदवृत्ति है। **रत्नत्रयधर्म साधन है, साध्य नहीं है। साध्य अवस्था जो है वो आत्मा की शुद्ध अवस्था, सिद्ध अवस्था है। रत्नत्रयधर्म उस सिद्ध अवस्था की प्राप्ति के लिए साधन है।** पर मित्र! साधन का राग भी साध्य को नहीं होने देगा। साधन का राग भी साधनभूत नहीं होने दे रहा है। ये शुद्धोपयोग, यह अभेद रत्नत्रय, यह निश्चय आत्मा की प्रतीति जो है - ये सविकल्पधारा नहीं है, ये निर्विकल्पधारा है।

यदि पुनः मैं शुद्धोपयोग को प्राप्त होऊँ अथवा मेरा शुद्धोपयोग ही लक्ष्य है ऐसा तीव्र विकल्प का भाव भी जीव को शुद्धोपयोग में प्रवेश नहीं होने देगा। जो शुद्धोपयोग में प्रवेश नहीं होने देगा, तो शायद वह शुभोपयोग में स्थिर भी नहीं होने देगा। ज्ञानी! शुभोपयोग में स्थिर इसलिए नहीं होने देगा, क्योंकि पंडित कहेगा मैं शुभोपयोग से मोक्ष जाना चाहता हूँ, ज्ञानी कहेंगे मैं शुद्धोपयोग से ही जाऊँगा। परन्तु इन दोनों को ये पता नहीं है कि तुम दोनों के विकल्प अशुभोपयोग हैं। क्या बोल दिया, आप दोनों के जो विकल्प हैं वे अशुभोपयोग हैं। बोले - कैसे? क्योंकि एक शुभोपयोग के राग में झुलस रहा है, एक शुद्धोपयोग के राग में झुलस रहा है।

जो काषायिक परिणाम की तीव्रता है वह शुभ में स्थिर नहीं रखती है और शुद्ध में तो भेजती ही नहीं है। तुम दोनों अशुभ परिणामवाले हो। शुद्धोपयोग नहीं कह पाऊँगा, शुभयोग भी तब कहूँगा जब तुम दोनों मध्यस्थ होकर चिंतन करोगे। शुभोपयोगी तब कहूँगा, जब शुभोपयोग का रागी, शुद्धोपयोग का रागी - इन दोनों के राग से हटकरके चिंतन करेगा - **हे प्रभु! आपके पादमूल में आपकी वंदना के लिए नहीं आया हूँ, अपने बंध से बचने के लिए आया हूँ और आपकी वंदना किये बिना मैं बंध से बच नहीं सकता हूँ। अशुभ परिणति से बचने के लिए प्रभु! आपके चरणों में आया हूँ। आपके चरणों में रहने का उद्देश्य नहीं है। शुद्धात्मा की अनुभूति करूँ ऐसा मेरा भाव है; ये तो शुभोपयोगी है।** भैया ! एक-दूसरे के विषय पर क्लेश कर रहे हैं वे दोनों अशुभोपयोगी ही हैं। मित्र ! शुभोपयोग की परिभाषा भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी इस प्रकार कर रहे हैं – हे जीव! तुझे मालूम होना चाहिए कि चंदन की लकड़ी अच्छी लगती है, सुगंधित होती है, पर बबूल बेशरम की लकड़ी अच्छी नहीं लगती है। पर मित्र! इन चंदन, बबूल अथवा बेशरम की लकड़ी में आग लग जाये तो कौनसी अग्नि में अपनी अँगुली चमकेगी और कौनसी अग्नि में जलेगी? इतना प्रश्न करो, इनसे। क्या चंदन की लकड़ी में लगी आग अँगुली को नहीं झुलसायेगी? झुलसायेगी। तो मित्र! **भले चंदन सुगंधमय हो, पर आग उसकी भी जलायेगी।** ऐसे ही राग चाहे शुभोपयोग का हो, चाहे शुद्धोपयोग का हो, चाहे अशुद्धोपयोग हो, कर्मबन्ध करायेगा ही; जैसे आग बबूल की लकड़ी की हो, चंदन की लकड़ी की हो, या बेशर्म की लकड़ी की हो – ये तीनों लकड़ियों की आग झुलसायेगी ही झुलसायेगी। इसलिए **सम्प्रदाय का राग, धर्म का राग, पुण्य का राग, पाप का राग – ये सभी राग बन्ध के ही कारण हैं। निर्बन्ध होना है तो कषाय को मंद करो, परिणामों को भद्र करो। धर्मध्यान बाद में होगा आपको, पहले भद्रध्यान के पास आओ।**

इस विषय को लोग नहीं समझ पाते, धर्मध्यान बाद में होगा, पहले भद्रध्यान तो बनाइए। मित्र ! जिसके पास भद्रध्यान ही नहीं है वह धर्मध्यान क्या कर सकेगा? भगवन् देवसेनस्वामी ने 'भावसंग्रह' में, वामदेव स्वामी ने भावसंग्रह (संस्कृत) में पहले भद्रध्यान की व्याख्या की है। **कषाय की मन्दता भद्रध्यान है। विषय में विषयी का एकीभूत हो जाना, चित्त का निरोध करना, चित्त को स्थिर कर लेना, ज्ञान को स्थिर कर लेना, इसका नाम ध्यान है।** मंत्रजाप करना ध्यान नहीं है, पाठ पढ़ लेना ध्यान नहीं है, पूजन करना ध्यान नहीं है, ये सब भद्रध्यान हैं। पूजन करना ध्यान नहीं है, जाप करना ध्यान नहीं है, ये क्या बोल रहे हो महाराज? मन्दिर में बैठे होते हो, पूछा – पंडितजी! क्या कर रहे हो? धर्मध्यान में लगा हूँ। ये व्यवहार की स्थूल भाषा है।

मेरे से बातें कर रहे हो और कह रहे हो – धर्मध्यान में लगा हूँ। ध्यानी पुरुष किसी से बतियायेगा क्या? जब बतियायेगा तब ध्यान लगेगा क्या? एकाग्रचित्त होना और चिन्ताओं का निरोध। दो-तीन

घण्टे खड़ा होकर सामायिक कर रहा है, ये भावना चल रही कि ध्यान चल रहा है ? शास्त्रीजी! आगम को आगम की भाषा में कहो, भावना कई वर्षों तक चल सकती है पर ध्यान अंतर्मुहूर्त से आगे नहीं होता है। मैं सवा दो घण्टे की सामायिक कर रहा हूँ। सवा दो घण्टे तक समता को धारण करके शुभभावना में लीन हूँ परन्तु सवा दो घण्टे ध्यान नहीं चला है; चिन्तन चला है, अनुप्रेक्षाएँ चली हैं। ध्यान तो सवा दो घण्टे में कितनी बार ऊपर-नीचे हुआ है, क्योंकि अड़तालीस मिनट से ज्यादा ध्यान का काल नहीं है।

कभी लोग अतिरेक में विवेक की बात नहीं करते तब मुझे उन वैरागियों से उदासता आती है। झूठ बोलते हैं कि मैं दो घण्टे तक ध्यान करता रहा। कम-से-कम आगम को विचारकर तो मुँह खोलो। मैंने दो घण्टे तक ध्यान किया। तुम दो घण्टे ध्यान कर ही नहीं सकते हो। ऐसा बोलिए - मैं दो घण्टे तक अनुप्रेक्षाओं में गया, चिंतन में गया, मनन में गया।

कोई पंचमकाल का साधक या श्रावक अपने गुरु को महिमा मण्डित करे और कहे - मेरे गुरु ने इंगिनीमरण कर लिया, प्रायोपगमनमरण कर लिया, अरे! तू अपने गुरु को बदनाम कर रहा है। जो पंचमकाल में संभव नहीं है, आगम में जिसका निषेध है, उस बात को महिमा मण्डित करोगे तो मेरे जैसा व्यक्ति तो कहेगा कि तुम सत्य महाव्रत में दोष लगा रहे हो। पंचमकाल में कोई इंगिनीमरण नहीं होता, पंचमकाल में कोई प्रायोपगमनमरण नहीं होता है। पंचमकाल में परिहारविशुद्धि संयम नहीं होता है। पंचमकाल में यथाख्यातचारित्र नहीं होता। पंचमकाल में श्रेणी-आरोहण नहीं होता है।

पंचमकाल में कोई मुनि नहीं होता है। फिर से कह रहा हूँ— पंडितजी! पंचमकाल में कोई यति नहीं होता, पंचमकाल में कोई मुनि नहीं होता, पंचमकाल में कोई ऋषि नहीं होता, पंचमकाल में कोई निर्ग्रन्थ नहीं होता। महाराज! इन सबका निषेध कर दिया, आप स्वयं मुनि बने हो और मुनि बनके इतनी ताकत से बोल रहे हो कि पंचमकाल में कोई मुनि नहीं होता? भारत का कोई मुनि तो बोल दे कि पंचमकाल में मुनि होता है? पंचमकाल में कोई मुनि नहीं होता, पर पंचमकाल में मुनि होते हैं। पंचमकाल के मुनि, मुनि नहीं होते हैं, मुनि होते हैं। जो ऋद्धिधारी मुनि होते हैं वे ऋषि कहलाते हैं। इसलिए पंचमकाल का कोई मुनि ऋषि नहीं होता। मुनियों में श्रेष्ठ तीर्थंकर भगवन्त मुनिपुंगव कहलाते हैं इसलिए पंचमकाल में कोई मुनिपुंगव नहीं होता। मुनिकुंजर; जो शुद्धोपयोगी होते हैं वे मुनिकुंजर कहलाते हैं। भो ज्ञानी! अमृतचन्द्र आचार्य ने आत्मख्याति टीका समयसार में मुनिकुंजर की परिभाषा लिखी है। यति नहीं होते हैं, पंचमकाल के जो यति हैं वो सामान्य संज्ञा है। जो श्रेणी का आरोहण करते हैं ऐसे मुनि को यति कहा जाता है। पंचमकाल में श्रेणी भी नहीं चढ़ते हैं तो यति भी नहीं हैं। पंचमकाल में मुनि नहीं हैं, क्योंकि जो मुनि होते हैं वे बारहवें गुणस्थानवर्ती होते हैं। निर्ग्रन्थ भी नहीं हैं, जिन्होंने मोहनीयकर्म को क्षय कर लिया है ऐसे बारहवें गुणस्थानवर्ती को निर्ग्रन्थ कहा है। तो फिर पंचमकाल के मुनि क्या हैं? ऋषि, यति, मुनि, अनगार? **पंचमकाल के मुनि की संज्ञा अनगारी है। वे भी अनगारी तभी तक जब-तक स्वयं के**

मठ, स्थान निश्चित नहीं हैं, वे ही अनगारी हैं। जिनके निश्चित स्थान हैं उन स्थानों पर कोई दूसरा रुक नहीं सकता, ठहर नहीं सकता, उनके बिना कुछ हो नहीं सकता है तो उनका अनगारपना भी भंग होता है।

अनगार से तात्पर्य है जहाँ श्रावक ने रुका दिया, रुक गये। **'शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरण'**, इन बातों का ध्यान रखना। शून्य स्थानों पर; जहाँ स्त्री, पुरुष, नपुंसक आदि का गमनागमन न हो, जहाँ व्यायामशाला न हो, जहाँ आयुधशाला न हो, जहाँ मदिरालय न हो, जहाँ वेश्यालय न हो, जहाँ स्वर्णकार की दुकानें न हों, जहाँ लोहार की दुकान न हो, ऐसे स्थानों पर मुनियों को निवास करवाना चाहिए। ऐसा नहीं है कि स्वामी! हमारे यहाँ दो कक्ष हैं, एक में आप विराज जाओ एक में हम रहेंगे, ये मुनियों का निवास स्थान नहीं होता। जैसे आपका त्यागी भवन है वहाँ श्रावकों को रहने का कोई स्थान नहीं है। मुनियों के निवास स्थान पर श्रावकों को रहना ही नहीं चाहिए, ये यतियों के रहने का स्थान है।

ज्ञानियो! यति, ऋषि, मुनि, अनगार; ये चारों मुनियों के ही भेद हैं, इसलिए पंचमकाल में भी मुनि होते हैं, कौन से मुनि? अनगार मुनि। शुद्ध डली का सोना होता है। प्रवचनसार से बोल रहा हूँ कि पंचमकाल में शुद्ध डली का सोना नहीं है तो कोई कुण्डल बनवाकर लाया, अँगूठी बनवा के लाया है वह सोने की है कि नहीं है, पर शुद्ध है क्या? सोना नहीं है क्या उसमें? बस, मेरे मित्र! जैसे आभूषण, भले उसमें मिश्रण हो पर है तो सोने का। ये पंचमकाल के मुनि भले चतुर्थकाल के जिनकल्पी न हों, स्थिरकल्पी हैं आज, पर हैं तो मुनि। दोनों दृष्टियों को समझना। पर हैं तो मुनि, कौन-सा सोना है? आभूषण का सोना, अच्छे शब्दों का प्रयोग करो, आभूषण का सोना और जिनकल्पी मुनि शुद्ध सोने की डली, पर है सोना, ये दृष्टि समझो। निर्ग्रन्थों को निर्ग्रंथ मानना, निर्ग्रंथ को भगवन्त नहीं मानना। पंचपरमेष्ठी भगवन्त के रूप में तो निहारना पर अर्हंत भगवंत के रूप में मत निहारना।

तुम निर्ग्रन्थ को अर्हंत के रूप में देखोगे, तो तुम्हारी श्रद्धा टूट जायेगी। होता ये है कि तुम निर्ग्रन्थों को अर्हंत के रूप में देखने लगते हो। अरे! अठारह दोषों से रहित अर्हंत हैं और जहाँ अठारह दोषों से रहित होने का पुरुषार्थ चल रहा है, उसका नाम है निर्ग्रन्थ। तुमने अर्हंत का स्वरूप जिनवाणी में पढ़ा और आँखों से निर्ग्रन्थों को देखा। अर्हंत तो कवलाहारी होते नहीं हैं और निर्ग्रन्थ आहार लेने जाते हैं। तुम कहोगे ये कैसे भगवान्? ये तो निर्ग्रन्थ भगवन्त हैं, ये अर्हंत भगवन्त नहीं हैं।

सभी वक्ताओं से मेरा कहना है कि व्याख्यान के काल में जिस परमेष्ठी का जो पद हो, उस परमेष्ठी की उतनी महिमा गाना, क्योंकि आपकी सभा में ऐसा भक्त भी आया है जिसने किसी परमेष्ठी के स्वरूप को जाना नहीं था। आप तो आश्चर्य करोगे, इन मुनियों को देखकर के लोग भगवान् जैसा मानते हैं, तो उनके स्वरूप की व्याख्या करना। बढ़ा-चढ़ा कर नहीं बोलना, क्योंकि नये आदमी को अधिक बढ़ा कर बोलोगे और वो पाया नहीं गया तो उसकी श्रद्धाएँ टूट जायेंगी, इसलिए उनको स्पष्ट कहना।

एक दिन मैंने आपसे कहा था कि चारूकीर्ति भट्टारक विदेश जा रहे थे, उन्होंने कहा मेरे से हम विदेश जाते हैं, उपदेश करते हैं। मैंने धीरे से पूछ लिया - वहाँ आप अपने को क्या घोषित करते हो? भट्टारक, कि उत्कृष्ट श्रावक, कि जैन साधु? यदि जैन साधु कहलवाते हो तो तुम धर्म का नाश करने जाते हो। मैंने तो बोल दिया। भैया ! जैन साधु जो होता है वह वीतरागी दिगम्बर होता है। जैनसाधु की पहचान नहीं है कपड़े आदि। यदि कोई विदेशी आयेगा वह हमें देखेगा तो कहेगा कि कोई पागल बैठा है, क्यों? जैनसाधु तो कपड़े वाले होते हैं। इसलिए इतना ध्यान रखना, विदेशी को भी अज्ञानी नहीं समझना, वे भी दर्शन को पढ़ते रहते हैं। सबको मालूम है कई विदेशी पन्द्रह-पन्द्रह दिन रुककर जाते हैं। भिलाई के पंचकल्याणक में एक जापान का था वो जैनदर्शन पर पीएच-डी कर रहा था। वह ग्रन्थ लेकर गया। मैंने सोचा, उसका नियोग ठीक था, नहीं तो कहीं दूसरी जगह पहुँच जाता तो वस्त्रों में लिपटे को ही जैनसाधु लिखता।

आपको स्वीकारना पड़ेगा कि गोम्मटेश के बाहुबली भगवान्, खजुराहो के जिनालय पूरे विश्व में दिगम्बरत्व को जयवन्त कर रहे हैं। निज की साधना करके सिद्ध हो जाना यह तो स्वार्थी जीवन है पर साधु बनके जैनदर्शन के लिए, जिनागम रच के चले जाना, वह धर्म के लिए करके गये हो। मैं वीरनन्दी स्वामी की भाषा बोल रहा हूँ। **हे श्रमण! तू पृथ्वी पर भारभूत है यदि अर्हंत के शासन की प्रभावना नहीं कर रहा है। आपको श्रुत में लवलीन हो जाना चाहिए और श्रुत की लीनता संयम की परायणता, स्वानुभूति ही इस विश्व की सबसे उत्कृष्ठ प्रभावना है।**

भाई! समझो, उपाध्याय का स्वरूप उपाध्यायभूत करना, आचार्य का स्वरूप आचार्यभूत करना, साधु का स्वरूप साधुभूत करना। पंडितजी! भट्टारकजी को मैंने समझाया-आप वहाँ अपने को जैनसाधु कहोगे, आप सोचिए जैनसाधु का स्वरूप है क्या? बोले-महाराज जी! आज से मैं अपने को मात्र भट्टारक कहूँगा, जैन भट्टारक और साथ में जैनसाधु का स्वरूप भी बताऊँगा। हम जैन संस्कृति के रक्षक हैं, श्रमण नहीं हैं, श्रमणोपासक हैं।

हे श्रावको ! शायद आपने ध्यान दिया हो, आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी को पढ़ने पर आपको नवीन शब्दावली मिलती है। हे श्रावको! आप समयसार नहीं हो, आप समयसार के उपासक हो। रत्नत्रयगुण से मण्डित हैं-निर्ग्रन्थ अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। दो प्रकार के समयसार हैं-एक कार्यसमयसार, एक कारणसमयसार। कार्यसमयसार अर्हंत-सिद्ध, कारणसमयसार आचार्य-उपाध्याय-साधु। इन दोनों समयसारों का पुजारी, ये हमारे समयसारोपासक श्रावक– ऐसा कथन किया है, कहाँ? 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय' ग्रन्थ में। 'समयसारोपासक' श्रावक के लिए अच्छे शब्द का प्रयोग किया है। आगम में इन श्रावकों का और भी नाम है 'श्रमणोपासक'। प्राचीन शब्दों का आप प्रयोग ही नहीं करते, कभी तो कर लिया करो। श्रावक संज्ञा को नष्ट मत करना वो तो रूढ़ है ही, आप श्रावक हैं, श्रमणोपासक हैं, समयसारोपासक हैं। पर श्रावक के सामने श्रमणोपासक शब्द तो जुड़ा ही रहता है।

अपादानशक्ति को निहारिए। अपादानकारक पर दृष्टि चली जाये तो कल्याण तुम्हारे हाथ में आ ही चुका है।

यतोऽपैति भयमादत्ते तदपादानम्। 400/का.व्या.॥

यतोऽपैति, जो छोड़ता है, दूर करता है, भयभीत करता है, आदत्ते यानी ग्रहण करता है, वह अपादानकारक है। 'वृक्षात् पत्रं पतति, वृक्ष से पत्र गिरता है, उपैति, छोड़ता है अपादान। व्याघ्र से भयभीत होता है, डरता है। उपाध्याय से ज्ञान प्राप्त करता है। परमार्थदृष्टि में प्रवेश करो। निर्ग्रन्थ तपोधन वीतरागी योगी, **'शरीरात् वस्त्रं पतति'** शरीर से वस्त्र को छोड़ता है। निज परिणामों से, निज परिणति से, स्वात्मा से राग को छोड़ता है। **'पापात् विभेति'**, पाप से डरता है, भयभीत होता है। और ज्ञानियो! **'निजानंदात् ग्रहणाति'**, निजानंद को ही ग्रहण करता है। वो किससे उत्पन्न होता है? अपादानशक्ति कह रही है। अपादान वृक्ष से पतित वाला नहीं, व्याघ्र से डरने वाला नहीं, उपाध्याय से पढ़ने वाला नहीं, ये अपादान कौन-सा है? **जो निज से ही निज में प्रगट हो रहा है वह अपादानशक्ति है।** अलग किसको किया जा रहा है? आपको मालूम होना चाहिए, एक कारक का एक अर्थ नहीं होता है।

यहाँ अपादानशक्ति की व्याख्या चल रही है। आत्मा में भिन्न करने में **''यतोऽपैति भयमादत्ते तदपादानं''** आदत्ते, ग्रहण अर्थ में भी अपादानकारण लगता है। अभी तक आपने क्या पढ़ा - कर्ता ने, कर्म को, करण से, द्वारा; सम्प्रदान के लिए, अपादान से। (अलग अर्थ में), संबंध का, की, के, रा, री, रे, ना, नी, ने, आदि; अधिकरण में, पे, पर, सम्बोधन भो, रे ! अहो ! अरे! है! आदि। ये कारक और उनके विभक्ति चिह्न हैं।

जब भी गणधर की गद्दी पर आओ, भले ही कितने पढ़े-लिखे हो, एक बार विषय को देखकर आइये, कहीं चूक न हो जाये। एक बार विषय को निहारके आइये आप। कितने ही श्लोक गाथा आपको याद हैं, तब भी मूल विषय को निहारके आइए। क्यों? क्योंकि आप जिनदेव के लघुनंदन हैं। जब कोई राजनेता नहीं पहुँचता तो अपने पी.ए. को पहुँचा देता है। अच्छे शब्द का प्रयोग करो, अपना प्रतिनिधि भेजता है। ज्ञानी! इस भूमण्डल पर भरतक्षेत्र पर सम्प्रतिकाल में आप तीर्थंकर महावीर के प्रतिनिधि हैं।

प्रतिनिधि की व्याख्या करो। क्यों दादा! आपके पोता है क्या? इस समय आप गोली, बिस्कुट, खिलौने पोते को देते हो बेटे को नहीं, कितनी प्रीति है पोते से। मित्र ! तेरी निधि पोता नहीं है, तेरी निधि तो बेटा है, पर प्रतिनिधि है पोता। लेकिन क्या लक्ष्य रहता आपका, बेटे को तो मैं देख ही रहा हूँ, चलो जितना मैंने जी लिया है। जितना मेरा पोता जीयेगा, उतने लम्बे समय तक मेरी वंशपरम्परा चलेगी। मूल से ज्यादा ब्याज पर प्रीति होती है। ऐसे ही हे श्रावको! तेरा मूल तो बैंक में जमा है पर हाथ में ब्याज आता है उस पर कितना तेरा लक्ष्य रहता है। उसे फेंक देता है कि सँभालके रखता है, सँभालता है कि नहीं?

सँभालता है। श्रावको! इस खोटे कलयुग में तीर्थंकर अर्हंतदेव नहीं हैं। मूलनिधि हमारी सर्वज्ञ हैं, ये मुनि इनके प्रतिनिधि बैठे हैं, इन्हें सँभालकर रखना। जब निधि नहीं मिलती है तब प्रतिनिधि से ही काम करते हैं। ये प्रतिनिधि हैं, प्रतिनिधि का भी सम्मान उतना ही होता है जितना मूलनिधि का होता है। यह भेष विशुद्धसागर का नहीं है, ये तीर्थंकर महावीरस्वामी का भेष है। अब अपनी तुम जानो, मैं तो उनका प्रतिनिधि हूँ। आप तो सामान्य शब्द समझते थे, प्रतिनिधि। ये आचार्य भगवंत, उपाध्याय भगवंत, मुनि भगवंत - ये सब तीर्थंकर के प्रतिनिधि हैं। इनको सँभालके रखना, कैसे सँभाल के? जैसे गर्भिणी माँ अपने गर्भस्थ शिशु को सँभालकर रखती है। ऐसे तुम इनको सँभालके रखना।

फोटोकॉपी रखते हो मकान की रजिस्ट्री की कि कब क्या आवश्यकता पड़ जाये, ये तो है दिखा दूँगा। ऐसे ही मुमुक्षुओ ! जब भी गुरुओं की व्याख्या चलेगी, श्रमणसंस्कृति की रक्षा की व्याख्या चलेगी, तब तुम्हें ये ही महावीर के प्रतिनिधि दिखाना पड़ेंगे, बोलना - जैनधर्म का स्वरूप ये है। कितनी कापियाँ बनाके रखते हो। ऐसे ही भारत में जितने भी मुनिराज हैं वे सब प्रतिनिधि हैं। पर कापी में ज्यों-का-त्यों होना चाहिए। कहीं तुमने जरा-सा गड़बड़ किया तो उल्टे फँसोगे। कापी बने बैठें मुनिराज, इस कॉपी में जरा भी गड़बड़ की तो फिर निगोद की जेल मिलेगी। निगोद की जेल है, नरक भी नहीं भेजें, सीधे कालापानी जाओ।

पंडितजी! पुचकारकर मैं दीक्षा नहीं देता हूँ। **सँभल गये तो यहाँ जैसा आनंद जगत् में कहीं नहीं मिलेगा और भटक गये तो यहाँ जैसा क्लेश जगत् में कहीं नहीं है।** ऐसा ही है। यहाँ से च्युत हुआ उससे पतित जगत् में कोई दिखाई नहीं देता। यहाँ स्थिर हुआ तो इससे पावन भी जगत् में कोई दिखाई नहीं देता। सारे विश्व में परमात्मा जैसी पूजा साधु की होती है तो मात्र दिगम्बर आम्नाय में। जिस द्रव्य से तुम अर्हंत की पूजा करते हो उन आठ द्रव्यों से निर्ग्रन्थों की पूजा होती है। जब-तक चौके में तुम्हारी पूजा हो, तब-तक ध्यान कर लेना चाहिए कि ये मुझ व्यक्ति की पूजा नहीं है; ये रत्नत्रय, अर्हंत की पूजा है। मुझे उनको सँभालकर रखने की जरूरत है, अविनय न हो जाये उनकी। **जो साधक अपने व्रतों की जितनी विनय रखेगा उसकी उतनी ज्यादा विनय होगी। जो साधक अपने रत्नत्रय व्रतों को निर्दोष पालन करेगा, यही उसकी विनय है।** सम्यग्दर्शन की विनय करोगे तो क्या आरती उतारोगे? आठ दोषों से रहित सम्यक्त्व का पालन करो। सम्यग्ज्ञान की विनय करो, तो क्या करोगे, आठ दोषों से रहित सम्यग्ज्ञान का पालन करो। चारित्र की विनय करो, तेरह प्रकार के चारित्र का निर्दोष पालन करो, यही विनय है। **ऐसी विनय से युक्त जो है वह अपादानशक्ति है।** कहीं ये सब सुनकर ये तो नहीं सोचते बहुत कठिन है मुनिमार्ग, अपन तो ऐसे ही ठीक हैं। ऐसा मत सोचना।

जितना अर्घवान होता है उतना ही महान् होता है। मटके की कीमत, हीरे की कीमत एकसी है क्या? बस, इतना ध्यान रखना, ये निर्ग्रन्थ श्रमण मिट्टी के मटके नहीं हैं, ये रत्नत्रय से मण्डित हीरे हैं, रत्नत्रयभूत

आत्मा है, इसलिए समयसार है। ग्रन्थों में मत निहारना, नदी तालाबों में मत खोजने जाना समयसार को। रत्नत्रय से मण्डित, स्वानुभव से युक्त, नय से अतिक्रांत, पक्षपात से अतिक्रांत, स्वात्मस्थित जो है वही समयसार है। ये विराजमान समयसार है। जो उस आत्मद्रव्य का व्याख्यान करनेवाला शास्त्र है, ये तो कथन करनेवाला द्रव्यश्रुत है। जो स्वात्मशुद्धोपयोग में लवलीन है ऐसा श्रमण भावसमयसार है। यहाँ मंगलाचरण में नमस्कार किया है समयसार को। यथार्थ में ये जो विराजमान ग्रन्थ है इसका नाम है 'समयपाहुड'। ये कौनसा ग्रन्थ है? 'समयपाहुड' ग्रन्थ है।

नमःसमयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय, सर्वभावान्तरच्छिदे ।।अ.अ.क.।।

जो मंगलाचरण कह रहा है, यहाँ इस ग्रन्थ की वंदना नहीं है। जो स्वानुभूति से प्रकाशमान है- चिद्ज्योतिरूप; न दीपक, न टार्च, न मोमबत्ती- ये कोई ज्योति की वंदना यहाँ नहीं है। चिद्ज्योति, जो स्वानुभूति को प्रकाशमय कर रही है, जो चेतनस्वभाव है। 'भावाय' वह भाव; 'भावान्तरच्छिदे' अपादानशक्ति आ गई, जो सम्पूर्ण भावान्तर से भिन्न है। ऐसा समयसार 'नमः', उसे मेरा नमस्कार हो। चिद्ज्योति की व्याख्या की। आपने बढ़िया फोटो खिंचवा लिए। इधर से ज्योति निकल रही है, उधर से ज्योति निकल रही है, बीच में बैठे हैं। पंडितजी कहते हैं-दिख गई है, कैसी है? सफेद है, आत्मा सफेद है। मेरे मित्र! तू सफेद झूठ बोल रहा है; जो सफेद है वो वर्ण है। लोग किरणें निकाल रहे, आभामण्डल निकल रहा है, कहते हैं – मुझे आत्मा दिख गई। अरे! वो आत्मा नहीं है, किसे आत्मा मान रहे हैं? तुमने तो कुन्दकुन्द के सिद्धांत को ही पलट दिया,

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठ संठाणं ।। 49/स.सा.।।

जो अरस है, अरूपी है, अगंध है, अस्पर्शी है, अवाच्य है, अलिंगी है ऐसी भगवानात्मा को तुम रंगभूत कह रहे हो, ये तुम्हारा मोह का रंग है, इसलिए इसे कोई रंगों में मत रंगना।

न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तंद्रा
चिदानंदरूपं नमो वीतरागं ।।

न कृष्ण है, न शुक्ल है, ये तो चित्चित्स्वरूप है, वर्णातीत है, इन्द्रियातीत है, वह ध्रुवआत्मद्रव्य है। ध्रुव, अब समझो भाई! सब विषय को शून्य करके देखो। **ध्रुव में उत्पन्न हो रही है, ध्रुव में नष्ट हो रही है, उनका नाम पर्याय है। फिर भी जो नष्ट न हो, उत्पन्न न हो और हो, उसका नाम ध्रुव है। जिसमें उत्पाद हो रहा है, जिसमें व्यय हो रहा है, वह ध्रौव्य है। जो उत्पन्न हो रही है, जो व्यय को प्राप्त हो रही है, उनका नाम पर्याय है। जो उत्पन्न होने पर भी, व्यय होने पर भी, जिसमें उत्पन्न हो रहा हो, जिसमें व्यय भी हो रहा हो, तब भी व्यय को प्राप्त न हो रहा हो उसका नाम ध्रौव्य है।**

निहारिये अपने ध्रुवधाम को, आज से कोई विकल्प नहीं, अपादानशक्ति सुन रहे हो। हे मित्र! जो पर्याय उत्पन्न हो चुकी है वो पुनःउत्पन्न नहीं होगी। पंडितजी! आपको अपना बचपन याद है? नहीं है, पर हँसोगे, मुझे याद है। आप उस अवस्था को कितना भी पुरुषार्थ करो वर्तमान में, कब आयेगी? नहीं आयेगी, तो बोल करके सोचकरके रोते क्यों हो, क्या पागलपन नहीं है? मित्र ! जो तेरी किशोर अवस्था निकल चुकी है, वो पुनः आयेगी क्या? इसी शरीर में नहीं आयेगी, जो पर्याय उत्पन्न हो चुकी है, जो पर्याय नष्ट हो चुकी है, वह पुनः उत्पन्न होगी कि नहीं? नहीं होगी। भावीपर्याय तो वर्तमान बनेगी, पर भूतपर्याय कभी वर्तमान नहीं बनेगी।

भैया! बहुत सारे जीव तो समझते हैं कि द्रव्यानुयोग का व्याख्यान बहुत सरल है। आत्मा और पुद्गल कहलो, यही द्रव्यानुयोग है। इस भ्रम को निकाल दीजिए। आपको मस्तिष्क को गहरे में लेकर बैठना पड़ेगा, तत्त्व की गहराई में उतरना पड़ेगा तब आपको लगेगा कि मैं जो बोल रहा हूँ, विश्वास रखना, मैं बोलते दिख रहा हूँ, मुझे डूबते दिखता है, डूबे बिना निकालोगे क्या? सागर से पहले मोती निकाला जाता है कि पहले मोती दिखाया जाता है। मोती दिखानेवाला पहले सागर में स्वयं डुबकी लगायेगा तब मोती निकालकर दिखा पायेगा। ऐसे ही स्वरूपदृष्टि का वही व्याख्यान कर पायेगा भूतार्थदृष्टि से जो पहले उतर के जायेगा फिर निकालकर लायेगा फिर दिखायेगा। जयवंत हों कुन्दकुन्द स्वामी। रहस्य समझिए, भगवत् कुन्दकुन्दस्वामी ने ग्रन्थराज समयसार में लिखा है, आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी ने अपनी टीका आत्मख्याति में व्याख्यान किया है -

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्किज्ज छलं ण घेत्तव्वं ।।5/स.सा.।।

जो मैं आत्मा के वैभव को कहूँगा, वह स्वानुभव से, आगम से व गुरूपदेश से कहूँगा,उसमें स्वानुभव शब्द का भी ध्यान रखना, परन्तु इस वैभव के कथन में किंचित् भूल हो जाये, तो हे मुमुक्षु! तुम चूक में छल ग्रहण मत कर लेना। उन्हें मालूम था, ये खोटेकाल के काले लोग हैं, जरूर चूक ग्रहण करेंगे। इतना कहने के बाद भी जब चूक पकड़ते हैं तो इससे बड़ा क्या हो सकता है। भगवान् कुन्दकुन्द जैसा महाश्रमण, महायोगी जब कहे कि **'चुक्किज्ज छलं न घेत्तव्वं'**। तब भी लोग निश्चय-व्यवहार के द्वन्दों में उलझ जायें तो इससे बड़ी और क्या बिडम्बना हो सकती है। कुन्दकुन्द भगवन् का उपदेश किसी को भ्रमित करने का किंचित् मात्र भी नहीं था, इसलिए समयसार को कभी दोष मत देना, कुन्दकुन्द को दोष मत देना, 'अपनी सोच को शौच' कीजिए। अपनी अशुचिमय अपादान का दान कीजिए, शौच कीजिए।

विश्व के सोच शौच हो जायें, तो सारे विश्व में जैनत्व-जैनत्व ही दिखाई देगा, यथार्थ मानना, अनुभव करके परिपूर्ण निहार लिया, उत्तर से दक्षिण तक विहार करके। पंडितजी! मैं जैनमुनि हूँ इसलिए नहीं कह रहा हूँ, सब दर्शनों को पढ़ने के बाद मैंने अनुभव किया है, ध्रुवसत्य है वह अर्हंत की वाणी में ही

है। श्रावकों के अन्दर ये भाव रहता है कि हमारे गुरु ज्ञानी रहें। ऐसे-ऐसे ग्रन्थ लाकर दिये जो मैं कभी मँगा नहीं सकता था। मुझे सीखना था, श्रावकों को सिखवाना था और आचार्य महाराज को ज्ञानी बनवाना था सो वो आशीर्वाद देते रहे। जीवन में कभी पढ़ाई मत छोड़ना। तब-तक पढ़ते रहना जब-तक केवली भगवान् न बन जाओ। **ज्ञानी बनने के लिए कभी बूढ़ा मत बनना और संयमी बनने के लिए आज ही बूढ़े हो जाना।** अरे! पानी गिरे जमीन पर और जमीन गीली न हो? जब चार महीने सुनेगा तो कुछ-न-कुछ तो हो जायेगा। ज्ञानी ने आज अचार छोड़ दिया।

काने से काना न कहियो वो जे है रूठ।
और धीर-धीरे पूछ लो कैसे गई है फूट।।

उत्पादव्ययालिङ्गतभावापायनिरपायधुवत्वमयी अपादानशक्तिः ।। 45 ।।

क्या गहरा विषय है, उत्पाद-व्यय है लिङ्ग जिसका, चिह्न लाँछन ऐसा भाव, उत्पाद-व्ययभाव से चिह्नित ऐसा ध्रौव्यद्रव्य कभी उत्पाद-व्यय होने पर भी हानि को प्राप्त नहीं होता ऐसी ध्रुवत्वमयी अपादानशक्ति। पर्याय आ रही है, पर्याय जा रही है, उनका धर्म ही आना-जाना है पर ध्रुवत्व अपने में अखण्ड एकत्वभूत है जो कभी नष्ट नहीं होगा। इसलिए हे योगी! तुम आनेवाले को मत देखो, जानेवाले को मत देखो, आनेवाले को देखोगे तो हर्ष होगा, जानेवाले को देखोगे तो विषाद होगा; हर्ष-विषाद— ये राग-द्वेष हैं।

रागद्वेष द्वयीदीर्घ नेत्राकर्षण कर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरं जीवःसंसाराब्धौ भ्रमत्यसौ ।।इष्ट.।।

पूज्यपादस्वामी लाये कहाँ से हैं? सब समयसार की अनुभूति में डूबे आचार्य थे। कभी-कभी तो घर में मक्खन निकाला करो। **जो आठ-दिन, दस दिन, पन्द्रह दिन की मलाई इकट्ठी करके घी निकाला है वो शुद्ध मांस है। न स्वयं खाना, न कोई साधु को देना। जिस गाय-भैंस का दूध आया है उसी के पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन निगोदिया जीव उसमें उत्पन्न होते हैं।** जब-तक 'पुरुषार्थसिद्धि उपाय' ग्रन्थ नहीं पढ़ेगा, श्रावकाचार आ नहीं सकता। माताओ! आपने तीन दिन की भी मलाई का घी निकाला है, वह अभक्ष्य ही है। शुद्ध तो वही है, जो दूध निकालते ही अड़तालीस मिनट के अन्दर उसे तपा लोगे। उसका नाम है शुद्ध अठपहरे का घी, वही खाने योग्य है। जो पालन नहीं करते, वे जैन ही नहीं हैं, श्रावक तो छोड़िए, बुरा नहीं मानना, अब जो है सो है।

मैंने नियम लिया कि मैं कुएँ का ही पानी पीऊँगा। अब राजस्थान में कैसे मिलता, मैंने दो दिन पानी नहीं पीया, तीसरे दिन अपने आप कुएँ का पानी आने लगा चौके में। थोड़ी तपस्या तो करना पड़ेगी आपको। देखो, नागपुर में घर-घर में कुएँ का पानी आ रहा कि नहीं? चंदोवा लगे कि नहीं? एक ने भी प्रश्न नहीं किया कि महाराज! ये क्यों लगाने का। देखो सत्य है, **साधु दृढ़ होगा तो श्रावक वैसी चर्या**

करवाता है। किसी ने भी प्रश्न नहीं किया, पक्के मकान हैं अब चंदोवा की क्या जरूरत है? तुम्हें पता होना चाहिए कि चक्रवर्ती के मकान कच्चे नहीं होते थे, पक्के होते थे, तब भी चंदोवा लगे होते थे।

दादाजी! याद करो जब तेरी बारात निकल रही थी, दो आदमी पीछे दो आगे, समझ गये, चंदोवा निकासी के समय लगा होता था। धन्य हो! तुम इतने महान् हो कि संसार की नारी से शादी करने जा रहे थे तो इतना सम्मान कि चंदोवा के नीचे और मुक्तवधू से शादी करने जा रहा है तो उसे छत पर बिठाल रहा है। ये सम्मान का भी प्रतीक है और अहिंसा का भी प्रतीक है। मकान पर जाले लग जाते हैं और धुएँ आदि से उनका घात होता है। राजमार्ग तो ये है जहाँ भोजन बनाते उस चूल्हे पर ही चंदोवा होना चाहिये। आप धीरे से क्या करते हो ? जहाँ महाराज को खड़ा करना है वहाँ लगा लिया। सात स्थानों पर आगम में चंदोवे का वर्णन है।

उत्पाद-व्यय से युक्त पर्याय के होने पर भी पर्यायी नष्ट नहीं होता है, ध्रुवत्वमयी अपादानशक्ति है। एक पर को छोड़ते नहीं, निज में ही निज को ग्रहण करते हैं - ये आत्मा की अपादानशक्ति है। अपादान और उपादान में बहुत अन्तर है। अपादान में ग्रहण-त्याग से युक्त अवस्था, उपादान योग्यता है। उपादान द्रव्य की द्रव्यता है, उपादान वस्तु का वस्तुत्व है। उपादान वस्तु का जो स्वभाव है, क्षमता है, वो उपादान है। अपादान कारक है, शक्ति की व्याख्या है। उपादान में अपादान होता है। अपादान कोई स्वतंत्र हो नहीं सकता है यदि उपादान नहीं होगा तो अपादान नहीं होगा। इसलिए उपादान आधार है। अब अपादान ध्रुवत्वमयी, वो ऐसे मानके चलना कि जैसे आपके शरीर में बाल है, आपके शरीर में आँख-कान हैं, ये सब कुछ हैं शरीर में ही फिर भी स्वतंत्र हैं, फिर भी मूलवस्तु तो शरीर है। इसी प्रकार मूलवस्तु उपादान है, उसमें अपादान है। आधार-आधेय सम्बंध, तादात्म्य सम्बंध में भी। एकमात्र जैनदर्शन ऐसा है कि आधार-आधेय सम्बंध मानता है। हम लोग वैशेषिक नहीं हैं, तादात्म्य में भी आधार-आधेय सम्बंध है। यदि आप इसे एक मान लोगे तो आत्मा में ज्ञान-दर्शन, जैसे है उपादान में अपादान है।

विश्व के सम्पूर्ण पदार्थ, मेरे निजस्वभाव से विभक्त हैं। **मात्र ज्ञानदर्शन ही मेरे अविभक्तभाव हैं, सहज सम्पूर्णभाव विभक्त हैं।** मेरे अपृथक्त्वभाव मात्र स्वचतुष्टय का ही है और जगत् के जितने भी द्रव्य हैं उन सब में पृथक्त्वभाव है। अपृथक्त्वभाव में असंक्लेशभाव है। पृथक्त्वभाव में आत्मभाव का आना ही संक्लेशभाव है। अपृथक्त्वभूत द्रव्यों में संबंधकारक को स्थापित करना ही संक्लेशता है। अपादानकारक कह रहा है – संक्लेशता से मुक्त होना है तो मुझे स्वीकार कीजिए। सबसे अलग, सबसे भिन्न अपादानकारक कह रहा है – प्रत्येक द्रव्य परद्रव्य से अपादान (पृथक्) है। मोक्षमार्ग में सम्बन्धकारक का कोई स्थान नहीं, जहाँ संबंधकारक है वहाँ बंधस्थान है। संबंध पर में ही जाता है, अपादान स्व की ओर ही आता है। मेरे, मैं इनका, ये मेरे थे, मैं इनका था, ये मेरे होंगे, मैं इनका होऊँगा, ये मेरे हैं, मैं इनका हूँ

– यह त्रैकालिक संबंध की लीला है। **'अण्णाण मोहिद मदी'** जिसकी मति अज्ञान से मोहित है, वह सम्पूर्ण परद्रव्यों में संबंध स्थापित करता है।

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं।
बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्तो॥23/स.सा.॥

आज जीव बद्ध में भी, अबद्ध में भी, ये मेरे हैं, ऐसी मान्यता को लिए बैठा है। जबकि न तेरे हुए हैं, न तेरे हुए थे, न तेरे होंगे। **ज्ञानियो! भेद-विज्ञान का फल वैराग्य, वैराग्य का फल चारित्र, चारित्र का फल निर्वाण। हे ज्ञानी ! वैराग्य कठिन नहीं है, चारित्र भी कठिन नहीं है, निर्वाण हो जाना भी कठिन नहीं है। कठिन कोई है तो भेद-विज्ञान है।** समझिए, भेद-विज्ञानशून्य चारित्रवान मिल सकते हैं और भेद-विज्ञान-शून्य चारित्र का पालन करनेवाले ग्रैवेयक तक जा सकते हैं। भेद-विज्ञान-शून्य जो चारित्र होगा, वैराग्य होगा, वह चारित्राभास होगा, वैराग्याभास होगा, समझ में आ रहा है क्या ? भेद-विज्ञानशून्य वैरागी मिल सकते हैं, भेद-विज्ञान-शून्य चारित्रवान मिल सकते हैं, पर **भेद-विज्ञान-शून्यचारित्र निर्माण का कारण हो सकता है, निर्वाण का नहीं।**

अपादानशक्ति, जितने त्यागीवृन्द हैं, सँभल के सुनना। कठिन कोई साधना है तो भेद-विज्ञान है। भेद-विज्ञान पर अभेदवृत्ति होना चाहिए। भेद-विज्ञान पर अभेदवृत्ति होना चाहिए आपकी, तात्पर्य भेद-विज्ञान पर अभेददृष्टि होना चाहिए है। मैं पर से भिन्न था, भिन्न ही हूँ, भिन्न ही रहूँगा, दृष्टि में तुम्हारे भेद नहीं आना चाहिए। भेद-विज्ञान पर जो दृष्टि है, उसमें विरह नहीं आना चाहिए, उसमें अन्तराय नहीं पड़ना चाहिए। अभीक्ष्ण व्यवस्था होना चाहिए, अनवरत होना चाहिए। श्वासकाल भी भेद-विज्ञान से दृष्टि हटे न, अन्यथा सम्यक्त्व नष्ट होजायेगा। सम्यग्दृष्टिजीव की दृष्टि, भेद-विज्ञानदृष्टि है।

जितनी संक्लेशता बढ़ रही है, जितनी संक्लेशता को प्राप्त हो रहे हो, भेद-विज्ञान का अभाव है। पृथक्त्व पर दृष्टि नहीं है, विभक्त पर दृष्टि नहीं है; हमने आत्मा को एकत्वमात्र स्वीकार नहीं किया, हमने आत्मा को एकत्व-विभक्त स्वीकार किया है। **अन्य मतों में जो अध्यात्म की व्याख्या हुई है, उसमें वैराग्य को प्रधानता तो दी गई, एकत्व को प्रधानता तो दी गई पर विभक्त की बात नहीं की गई।** सारे जगत् में मैं हूँ, मैं सबसे अलग होने पर प्रभु-अंश हूँ, तो आप कहीं-न-कहीं जुड़कर रहे संबंधकारक से, जब-तक अपनी गोद में, अंक में संबंधकारक को पालन करते रहोगे, तब तक एकत्वविभक्त संतान तुम्हारे अंक में नहीं विराज पायेगी। एकत्वमात्र पर ही नहीं विभक्त पर दृष्टिपात करिए। गंभीर साधना, उत्कृष्ट साधना की प्रथम सीढ़ी, प्रथम सोपान भेद-विज्ञान, इतना निहित हो जाये आपके अंतःकरण में कि मैं दूसरे से विभक्त हूँ, जग से जुड़ाव कैसा ? मैं विभक्त हूँ, विभक्त ही था, विभक्त ही रहूँगा।

हे श्रावको ! हे भक्तो ! आप अपने से मत जोड़ने की चेष्टा करो, मुझे विभक्त ही रहने दो। विभक्त किये बिना खेत में गेहूँ के दाने नहीं आ पाते। किसान के खेत में जब छोटी-छोटी फसल उग आती है तब बैठा-बैठा खेत में बहुत सारा काम करता रहता है। क्या काम कर रहा है, विभक्त कर रहा है। धान्य के खेत में जाकर देखिए, माताएँ काम कर रही हैं खेत में, ये कर क्या रही हैं ? जो संगृहीत धान्य था उसे विभक्त कर रही हैं और विभक्त करके अलग-अलग आरोपित कर रही हैं। यदि विभक्त नहीं होगा तो वृद्धिमान नहीं हो सकता है। प्रमाता ! तेरा ज्ञान किसे प्रमेय बना रहा है ? सच्चा प्रमाता वो है जो हर प्रमेय में अपनी प्रमीति से भूतार्थ प्रमीति को देखता है। जो धान्य के लिए संग्रहरूप में अंकुरण था, उसको निकाल लिया फिर उसी धान्य के एक-एक पौधे को अंतराल कर-कर के आरोपित कर रहे हैं, विभक्त कर रहे हैं। जब विभक्त हो जाता है तो वृद्धिमान होने लगता है। **ऐसे ही जीव परभावों से निजभाव को विभक्त कर लेता है, तो चारित्र की भूमिका में वृद्धिमान होता है, तब इसके मोक्ष का फल लगता है।** जो सुन रहे हो इन शब्दों पर मत जाइए, जो समझ रहे हो उसमें प्रवेश कीजिए। तुमने आज तक पर से अपने को भिन्न स्वीकारा है क्या ? निज को पर से भिन्न स्वीकार लीजिए, फिर आपको किसी के सुख-दुःख से कोई वास्ता नहीं रहेगा। ये अध्यात्म है, इसमें राग को कोई स्थान नहीं है और रागी के यहाँ अध्यात्म का कोई स्थान नहीं। **किंचित् भी सामाजिक-राजनीतिक दृष्टि पर दृष्टि जा रही है तो आप लौकिक मुनि हो। ये लोकाचार का मार्ग नहीं है, ये लोकोत्तराचार का मार्ग है।** अपादानकारक कह रहा है, ध्यान दो माताओ ! कभी आपके आर्यिका बनने के परिणाम हुए तो आप आर्यिका बनके रहना। शिक्षिका बनने मत चले जाना, कोई संस्थापिका बनने मत चले जाना। जो त्रैकालिक संस्था, मेरी ध्रुवात्मा है, उससे हट के तुम किसके संस्थापक बनना चाहते हो? ये जगत् के बालक-बालिकाओं को सँभालने के लिए ही तुम्हें पर्याय मिली थी, तो आपको अपनी संतान को जन्म देकर उसको पालन करना चाहिए था। अन्यथा मूलाचार को निहार लीजिए। नहलाना, खिलाना, पुचकारना, पढ़ाना – ये दुनियाँ के विकल्प, ये आर्यिकाओं के काम नहीं हैं। **नारी पर्याय का सर्वोत्कृष्ट कोई स्थान है, उसका नाम आर्यिका अवस्था है।** ये सेविका नहीं हैं, शिक्षिका नहीं हैं, मात्र आर्यिका हैं।

ये निर्ग्रन्थ अवस्था, ये जगत् के शिक्षक नहीं हैं; उपाध्याय परमेष्ठी भी हैं, ये मुनियों के शिक्षक हैं, ये तत्त्व के शिक्षक हैं। पाठक मुनि हैं, द्वादशांग की प्ररूपणा करेंगे, पर कोई छात्रावास में बैठकर प्ररूपणा करने नहीं जायेंगे। मध्यकाल में हुई विडम्बना को न मूलाचार बना सकते हैं न समयसार बना सकते हैं। अरे! मध्यकाल में कोई ऐसे साधक हुए जिन्होंने मठ बनाए, विद्यालय चलाए। अजितसेन आदि आचार्य हुए हैं, इनके उदाहरण देकर हम मूलाचार पर धूल नहीं फेंक सकते हैं। मूलाचार पर आप नकारात्मक सोच मत बनाइए। मध्यकाल में ऐसा समय आया था, लोग मठों में निवास करने लगे, भूमि

दान लेने लगे, खेती आदि करवाने लगे, पशु आदि रखने लगे, ऐसे श्रमण हुए हैं। उन सब श्रमणों को हमारे आगम में श्रमणाभास में रखा है; जैनाभास, श्रमणाभास।

काष्ठा संघ, वकुलसंघ, निषपिच्छिका संघ, यापनीय संघ – ये सब जैनाभास हैं । तुम जैनाभासों की चेष्टाओं को मूलचर्या (तीर्थंकर) में शामिल नहीं कर सकते हो। इसलिए आपको ऐसे उदाहरण भी प्रेषित किये जायें कि पूर्व में ऐसा हुआ है, पूर्व से तात्पर्य कितना पूर्व ? महावीर का पूर्व, कि मध्यकाल का पूर्व ? ये खोजना, किसी की बातों में उलझ मत जाना, ये महावीर का पूर्व है कि ऋषभदेव का पूर्व है कि मध्यकाल का पूर्व है ? मध्यकाल के पूर्व में भट्टारक सम्प्रदाय भी बना। मध्यकाल के पूर्व में अखण्ड दिगम्बरत्व में विभाजन भी हुए हैं, मध्यकाल के पूर्व में तेरा, बीस, स्थानक, कितने विभाजन हुए, ये मध्यकाल का पूर्व है। ये मध्यकाल के पूर्व को महावीर का पूर्व नहीं कह सकते हैं। कल पण्डितजी भी कहेंगे – हमारा भी पूर्व हुआ है। मैं नहीं मानूँगा। मुझे चाहिए तीर्थंकर वर्द्धमान का पूर्व, ऋषभदेव का पूर्व । यदि कुन्दकुन्द के काल में भी कोई विकल्प आये हैं तो मैं उनको भी मानने को तैयार नहीं हूँ। कोई कहे कुन्दकुन्द की आम्नाय सत्य है, कुन्दकुन्द जैसा अध्यात्मयोगी अपनी आम्नाय बनाने नहीं बैठा था, भक्तों ने बनाई ये आम्नाय। कुन्दकुन्द जब अपना नाम लेने को, कर्तृत्वभाव को स्वीकार नहीं करते हैं, अमृतचन्द्र योगी ने लिखा - वर्णों से वाक्य, वाक्य से अध्याय, अध्याय से ग्रंथ बना, मैंने क्या किया है ? ऐसी अकर्तृत्व-बुद्धि जिनके पास विद्यमान थी वह कोई आम्नाय बनाने के प्रपंच में नहीं बैठेगा। ये आम्नाय पंथ का जो राग है, वो बंध का मूल बिन्दु है, मूल हेतु है, मूल कारण है।

तत्त्व पर लक्ष्य रखना, पक्ष पर लक्ष्य मत रखना यदि तत्त्व समझना है। यदि पंचमकाल में अपनी आत्मा का हित चाहते हो तो पक्षों में मत उलझना, तत्त्व में प्रवेश करना। मैंने कुन्दकुन्द के पक्ष को नहीं पकड़ा, मैंने महावीर के पक्ष को नहीं पकड़ा, मैंने महावीर के सत्य को पकड़ा है, कुन्दकुन्द के सत्य को पकड़ा है। किसी भी संघ में होकर आ जाऊँ, मैं पक्ष को नहीं पकड़ता, सत्य को समझ के आ जाता हूँ। जो वस्तु का स्वभाव है वो तत्त्व है, राग तत्त्व नहीं है। पंडित जी ! लोग कहाँ भूल कर लेते हैं वे तत्त्व को पहचानते-पहचानते व्यक्ति को पकड़ लेते हैं। मैं ये कह रहा हूँ क्यों उलझ गये बेचारे? इसलिए उलझ गये कि जिसने रास्ता बनाया था, उस रास्ते पर चलना चाहिए था, उस आदमी को पकड़ कर बैठ गये हैं।

सड़क के बोर्ड पर लिखा है-अन्धा मोड़ है, बोर्ड पर निशान बना है, पुलिया संकीर्ण है। तो बोर्ड को पकड़ने से तुम पार नहीं होगे, बोर्ड को पूजने से तुम मार्ग तय नहीं कर पाओगे? बोर्ड को पढ़ लो तो सँभलकर आगे बढ़ोगे, ऐसे ही वक्ता को देखकर वक्ता जैसा उसका सम्मान रख लो आगे बढ़ो। यदि वक्ता को तुम पूजना प्रारंभ कर दोगे, वक्ता को भगवान् बना दोगे तो तुम भगवत्ता की सिद्धि कब करोगे? **साधन को साधन स्वीकारिए, साधन को साध्य मत स्वीकारिए।** देश के सभी आचार्य, मुनि महाराजों से इतना ही कहना है कि आप मात्र साधन बनिए, उसके आगे का मार्ग शिष्य को दिखाइए। आप इतने बनके

बैठ गये कि मैं साधन ही साध्य हो गया हूँ। बेटा ! अब तुम कुछ नहीं करना, मेरी पूजा कर, मेरा नाम कर, यश फैला मेरा, बाकी कुछ नहीं करना। आपने अपने शिष्यों को प्रचारक बना के छोड़ दिया। आचारकों को प्रचारक मत बनाइए। इन साधकों ने माता-पिता का त्याग तुम्हारे प्रचार के लिए नहीं किया है, आत्मा के कल्याण के लिए किया है। ये बहुत बड़ी विडम्बना है संघों में, जैसे भी हो मेरा प्रचार करो। तुम्हारा प्रचार मेरे मोक्ष का कारण नहीं है। गुरुभक्ति मेरे मोक्ष का कारण बन सकती है, पर गुरु का मात्र प्रचार मेरे मोक्ष का कारण नहीं है। **'गुरुभक्ति सतिमुक्ति'** गुरुभक्ति तो मेरे मोक्ष का कारण बन सकती है। प्रशस्तराग है, लेकिन पर्याय की मूढ़ता मेरे मोक्ष का कारण नहीं बन सकती, **'पज्जयमूढा हि परसमया'** गुरुभक्ति से तात्पर्य क्या है ?

विषयाशा-वशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस् तपस्वी स प्रशस्यते।।10/र.क.श्रा.।।

इस परिभाषा से जो भी घटित होते होंगे, उनकी भक्ति ही मुक्ति का कारण है। समझ में आ रहा है ?अपादानकारक पर लक्ष्य ले जाओ, अन्यथा आप परिवार के पर्याय का राग छोड़कर आये थे और गुरु की पर्याय में लिप्त हो गये। अपने शरीर को तो तू कह रहा था असमानजातिपर्याय है। जब आपका शरीर विभावव्यंजनपर्याय है, आप अपने शरीर को विभावव्यंजनपर्याय में डाल रहे हो तो ज्ञानी! प्रभु की पर्याय, गुरु की पर्याय भी विभावव्यंजनपर्याय ही है। इसे श्रद्धा से बाहर मत कर देना। आस्था मेरी इन पर है, इन्होंने मुझे मोक्षमार्ग का उपदेश दिया है, इन्होंने मुझे मोक्षमार्ग में दीक्षित किया है, उनके अनंत उपकारों को भूल नहीं सकते हैं, परंतु जब हम अभेद में प्रवेश करने बैठेंगे, तो अपने-आप को देखेंगे। जिननाथ के चरणों में बैठे रहना, पर जिननाथ के चरणों के लिए नहीं, निजनाथ को अवलोकन करने के लिए। जिननाथ का अवलोकन करने बैठना। बेटा ! तू मेरे ही शरीर में राग करता रहेगा, कहीं ऐसा न हो जाये कि आयुबन्ध के काल में तू मेरे शरीर को देखता रहा, तो मित्र ! मेरे ही शरीर में कीड़ा बन जायेगा।

यदि **'णमो आइरियाणं'** में विशुद्धसागर दिख रहे हैं तो आप छत्तीस मूलगुणों को निहारिये, अट्ठाईस मूलगुणों को निहारिये और ऐसे गुण जिनमें हों उन सबको निहारिये। यदि मात्र पुद्गल की चमक देखकर अच्छा लगता है, तो आपको पर्याय में राग है, परिणति में राग नहीं है। **'णमो आइरियाणं'** में राग होता ही नहीं है। णमो आइरियाणं में राग नहीं होता, अनुराग होता है, वात्सल्य होता है। राग विषयकषाय में होता है, आपको भेद डालना पड़ेगा। पंचपरमेष्ठी में राग नाम की वस्तु होती ही नहीं है, इनमें अनुराग होता है, वात्सल्य होता है।

शल्यरहित जो प्रीति है उसका नाम है वात्सल्य, इसलिये वात्सल्य रखनेवाला तो तीनकाल में कीड़ा बननेवाला नहीं है, वह तो नियम से सिद्ध बनेगा। सम्यक्त्व के आठ अंगों में एक अंग है, वात्सल्य। वात्सल्य की जगह माया, मिथ्या, निदान इन तीनों में लिप्त है वह जरूर शरीर में कीड़ा बनेगा। अरे ! कोई

मेरी भाषा न समझ पाये और गुरु को छोड़ कर बैठ जाये, उसे कौन समझाय? गुरु को पकड़े रहे और गरूर को न छोड़ पाये, तो गुरु को क्या पकड़ पाया ? तुम गुरु को पकड़े नहीं हो गरूर को पकड़े हो, गरूर छूट जाये तो सब में गुरु दिख जाये। तुम्हारा गरूर नहीं छूट रहा है इसलिये गुरु पकड़ में नहीं आ रहा है । गरूर यानी अहंकार, गरूर छूट जाये तो गुरु मिल जाये। गरूर नहीं छूट रहा इसलिये गुरु नहीं मिल रहा है, भीतर के गुरु को निहार।

नाज्ञो विज्ञत्व-मायाति विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेर्धमास्तिकायवत्॥35/इष.॥

विज्ञ को कोई अज्ञ नहीं बना सकता, अज्ञ को कोई विज्ञ नहीं बना सकता है। जैसे गमन में सहकारी कारण धर्मद्रव्य है ऐसे सहकारीकारण मात्र गुरु हैं। कार्यकारी तो मात्र तेरे भावों की आत्मविशुद्धि ही है। पर उस गुरु की प्राप्ति के लिए बहिरंग गुरु की आवश्यकता है। पर पुनः आइए **'पज्जयमूढा हि परसमया'** क्यों? कदाचित् जीव अपने आपको नहीं सँभाल सका। तू ज्यादा कुछ मत करना, इतना ध्यान रखना कि एक पर्याय के संस्कार में दो पर्याय के संस्कार मत होने देना। मित्र ! ये शास्त्री भर से नहीं कह रहा हूँ, मैं विशुद्धसागर से कह रहा हूँ कि ज्ञानी! तुम इतनी तपस्या करते रहना, अपादानशक्ति को सँभाल के रखना, अपनी प्रज्ञा को जीवन्त रखना, कहीं एकसाथ दो पर्यायों के संस्कार न हो पायें, बोले-कैसे ? सुबह देखो तो दर्पण, शाम को देखो तो दर्पण, सुबह तेल, शाम को तेल, मध्याह्न में तेल, जब देखो मालिश चल रही है, उबटन चल रहा है, चौबीस घंटे शरीर को निहार रहा है।

मेरे मित्र ! आयुबंध के काल में तूने निदान कर लिया, तिर्यञ्च-आयु का बंध कर लिया तूने मरण किया और अपने ही शरीर में तू सम्मूच्र्छनजीव बन गया। जैसे ही सम्मूच्र्छनजीव बना और जब-तक तेरा विमान सजा तब-तक रेंगना उसमें प्रारंभ हो चुका था। लोग कह रहे थे स्वर्गस्थ हो गया, समाधिस्थ हो गया पर वह उसी शरीर में कीड़ा बनके बैठा है। एक शरीर के संस्कार के साथ दो शरीर के संस्कार हो लिए। यह संभव नहीं है क्या ? जब खरबूजे में कीड़े हो सकते हो तो आप तो अपने शरीर में भी कीड़े हो सकते हो। **जिन जघन्य स्थानों में जितना तीव्र राग होगा, उन ही जघन्य स्थानों में तुम सम्मूच्र्छन मनुष्य बनके बैठोगे।**

वैराग्य के पहले भेदविज्ञान को लाइए, चारित्र के पहले भेदविज्ञान को लाइए। यदि कोई साधक के राग में भी निकलकर आ गए हो, कोई प्रभाव को देखकर के तुम आ गये हो कोई बात नहीं है, अब निज का प्रभाव प्राप्त करो। अब **हँसी खेल में भी आ गये हो तो वास्तविकता में उतर जाओ, क्योंकि समय तो निकल ही गया है, तो फिर सत्य को क्यों न प्राप्त कर लिया जाये। अब लोक में प्रचार हो ही गया है कि ये ब्रह्मचारी है, अब तू घर जा नहीं सकता है, तो फिर क्यों न हो सच्चा ब्रह्मचारी बन के रहे।** पुष्पडाल बने-बने बहुत दिन बीत गये, अब भावलिंगी हो जा।

भैया ! ये सत्य है, भावों की दशा है। भले ही किसी भी प्रकार से संयम को धारण किया हो, पर मैं भावुकता के संयम को श्रेष्ठ मानता हूँ, आपसे बहुत श्रेष्ठ है, क्यों? यदि आप मिथ्यादृष्टि हो और सम्यक्त्व प्राप्त करोगे तो आपको दो ही वस्तु मिलेगी - सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, पर जिस व्यक्ति ने भावुकता में मिथ्यात्व के साथ संयम धारण कर लिया है और सम्यक्त्व को प्राप्त होता है तो उसे तीन वस्तुएँ एक साथ मिलेंगी - सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र।

ज्ञानी ! साधुभेषी चौथे गुणस्थान में हो सकता है, पर चौथा गुणस्थानवर्ती भावलिंगी साधु नहीं होता। भावलिंग से तात्पर्य मात्र सम्यक्त्व नहीं है, यहाँ भावलिंग से तात्पर्य तीन चौकड़ी कषाय का अभाव। भैया ! **निज में कमी कितनी ही दिखाई दे, पर आगम की भाषा में कमी नहीं आना चाहिए। ये मेरी कमी मेरी व्यक्तिगत होगी, पर गणधर की गद्दी पर बैठकर के तुम कमी की पुष्टि करोगे तो तुम जैनदर्शन के शत्रु हो, स्वपर वैरी हो।**

कुशलाकुशलं कर्म परलोकश्च न क्वचित्।
एकान्तग्रहरक्तेषु नाथ स्वपरवैरिषु।।8/आ.मी.।।

समन्तभद्र जैसा योगी बोल जाये, विद्यानंद जिस पर टीका लिख दे। मृत्यु स्वीकार कर लेना लेकिन सत्य से मुख मत मोड़ना। कार्तिकेयस्वामी ने '**कार्तिकेयानुप्रेक्षा**' ग्रन्थ में सत्य की व्याख्या की है कि सत्य भले न चल पाये, फिर भी व्याख्यान सत्य का ही करना। जैसे कि देवों का अकालमरण नहीं होता, नारकियों का अकालमरण नहीं होता, ऐसे ही मनुष्यों के अकालमरण का निषेध मत कर देना। वस्तुव्यवस्था का ज्यों-का-त्यों व्याख्यान करना।

शास्त्रीजी ! मालूम लोग कहाँ विचलित हो रहे हैं, बता दूँ क्या ? लोग वहाँ विचलित हो रहे, बड़े-बड़े धुरन्धर उच्चकोटी के विद्वान् त्यागीगण भी नहीं समझ पा रहे हैं, विचलित कहाँ हो रहे हैं ? वे यश चाहते हैं, पर यशःकीर्ति कर्मप्रकृति को भूलकर। क्या आप मुझे यश दोगे, मैं आपकी झूठी प्रशंसा में बहकर प्रशंसनीय हो जाऊँगा ? आपकी प्रशंसा से मैं प्रशंसनीय नहीं होऊँगा। मैं अपने यशःकीर्ति नामकर्म से प्रशंसा को प्राप्त करूँगा। यदि यशःकीर्ति नामकर्म का उदय प्रबल है, तो मैं आपको सत्य को परिपूर्ण स्पष्ट भाषा में बोलूँगा, तब भी आप मेरी प्रशंसा करोगे। यदि मेरा अयशःकीर्तिनामकर्म का उदय है और मैं आपके अनुकूल भी बोलूँगा, आगम के प्रतिकूल भी बोलूँगा तब भी निन्दा को ही प्राप्त होऊँगा। ये श्रद्धा आपको है क्या ? स्पष्ट श्रद्धान है क्या ? श्रद्धान है तो आज से दृढ़ हो जाओ।

दुनियाँ कहे मेरे पक्ष में बोलो। आप कहना – मैं 'पक्षियों के पक्ष' में नहीं हूँ, मैं अरहंत के पंथ में हूँ। पंथवालों को मैं पक्षियों के पंथ मानता हूँ। ये पक्षियों के पंथों से मैं दूर रहता हूँ। एक सज्जन आये मेरे पास, बोले-महाराज ! मुझे आपकी आवश्यकता है। मैंने कहा-ज्ञानी ! तुझे मेरी आवश्यकता है तो मेरे साथ हो ले, पर तू अपने साथ करनेकी चेष्टा मत करना। मैं अध्यात्म को जरूर बोलता हूँ, पर एकांत अध्यात्म में

चिपकता नहीं हूँ। आपको मेरी आवश्यकता है तो रहो न मेरे पास। मुमुक्षु भाई बोले - महाराजजी! उन्होंने चारों तरफ देखा, मेरा मन कर रहा है, क्या मन कर रहा है ? आपका अपहरण कर लूँ। मैंने कहा - तू इतना बड़ा पाप क्यों करना चाहता है ? बोला - जंगल में ले चलूँगा आपको, आप सुनाना मैं सुनूँगा। मैंने कहा - मेरे मित्र ! सुनने के राग में तू इतना पाप क्यों करना चाहता है, तू मेरे साथ हो जा।

सत्य है, यदि आपके मुख में भूतार्थ जिनवाणी है तो आपको यश की चटनी में नहीं चिपकना पड़ेगा । मैं अष्टकर्म के क्षय के लिए मुनि बना हूँ । उसमें यशःकीर्ति नामकर्म भी एक कर्म ही है। मैं जब क्षय के लिए बना हूँ और मैं भगवान् से कहूँ - यशं कुरु-कुरु। हे प्रभु ! अष्टकर्मों से मुक्त होने के लिए आया था आपके चरणों में, पर कर्म ही तो माँग रहा हूँ, तूने माँगा क्या? कहाँ गई तेरी अपादानशक्ति? भोले मित्र! क्या तीर्थंकर पद की कामना से तू तीर्थंकर बन पायेगा? **'यस्य मोक्षेऽपि नाकांक्षा'**। तुम तीर्थंकर पद की बात कर रहे हो, **आपके घर में फूटी कौड़ी भी आकांक्षा से नहीं आती है, आपके लाभान्तराय के क्षयोपशम से आती है।** भव्य प्राणी तीर्थंकर बनने की भी आकांक्षा नहीं करता, जो सोलहकारण भावना को भाता है वो तीर्थंकर बनता है।

भैया ! क्या कभी आपके पैर में काँटा लगा ! हाँ। अच्छा वो काँटे को निकाला कैसे? काँटे से। अरे ज्ञानी ! तू तो बदल गया। जो काँटा लगा था वो तो धोखे से लगा था, पर तूने जानकर काँटा चुभोया था तब काँटा निकला था। एक हाथ का काँटा है, एक पैर में चुभा काँटा है। एक काँटा निकाल रहा है, एक दर्द दे रहा है। जब पैर का काँटा निकल जाये तो दोनों ही काँटे हेय हैं। ऐसे ही सम्यग्दृष्टिजीव का पुण्य होता है वह पुण्य को उपादेय नहीं मानता है, परंतु जब पापप्रकृति विलीन कर लेता है तो पुण्यप्रकृति भी क्षीण होजाती है। पुण्य का नाश नहीं करता है, पाप का नाश करता है, पुण्यप्रकृति का क्षय हो जाता है।

ज्ञानी! सत्य ये है – द्रव्यानुयोग से बाहर कोई अनुयोग नहीं है। बताइए, प्रथमानुयोग में किसका वर्णन है? कोई महापुरुष का वर्णन होगा तो वह द्रव्य, गुण, पर्याय से युक्त होगा। करणानुयोग में किसका वर्णन है ? पौद्गलिक कर्मप्रकृतियों का, आत्मा की बंध अवस्था का ही तो वर्णन है यहाँ और पृथक्करण का ही तो वर्णन है। सिद्ध कब बनेगा ? ज्ञानी ! कर्म द्रव्य है, आत्मा द्रव्य है – इन दोनों के बंध-मोक्ष की व्याख्या है करणानुयोग में। द्रव्यानुयोग के बाहर गया क्या ? जो चरणानुयोग है वह किसका विवेक बता रहा है ? तुम भिन्न जीवद्रव्य की रक्षा करो, अपनी रक्षा करो, भावों की रक्षा करो। द्रव्यानुयोग के बाहर क्या गया? द्रव्यानुयोग तो द्रव्यानुयोग ही है। चारों अनुयोग द्रव्यानुयोग, फिर भी चारों भिन्न-भिन्न हैं, ये भी ध्यान रखना, नहीं तो बड़े-बड़े मुमुक्षु बैठे हैं।

भावों की विशुद्धि के लिए छः आवश्यक हैं, फिर भी कोई भी आवश्यक छोड़ा नहीं जाता है, आपको छहों आवश्यक करना पड़ेंगे। भगवान् अमृतचन्द्र स्वामी ने अध्यात्म अमृतकलश में आत्मख्याति टीका में स्पष्ट कर दिया है। हे बाल ! तू करण में आलसी हो रहा है, शुद्धात्मा को प्राप्त कर नहीं पा रहा है ।

बहिरंग आवश्यक को छोड़ के बैठ गया। प्रमादी तू! उभयलोक से भ्रष्ट है। **जो आवश्यक आदि को, प्रतिक्रमण को विषकुम्भ कहा है, वो शुद्धोपयोग की दृष्टि है।** नमक, मिठाई की बातें कर रहो हो। आज आहार में मिर्च ज्यादा थी, ऐसी बातें कर रहे हो, तुम्हारे लिए प्रतिक्रमण विषकुंभ नहीं है, अमृतकुंभ है। इसलिए विवक्षा को विवक्षा से देखिए। **'नय योगान् न सर्वथा'** जो भी व्याख्यान करो, नय योग से करना सर्वथा मत लगाना। अपादानकारक।

भगवान् अमृतचन्द्र स्वामी क्या कह रहे हैं – भेदविज्ञान पर अभेदवृत्ति रख, अभेददृष्टि कर। मैंने पर को स्वीकारा नहीं है आज तक, कमलपत्र पर पड़ी पानी की बूँद, लोक की आँखें देख रही हैं कमल पर पानी की बूँद है फिर भी बूँद बूँद है, पत्र पत्र है। पत्र ने बूँद में प्रवेश किया नहीं, बूँद ने पत्र में प्रवेश किया नहीं फिर भी लोक की आँखें देख रही हैं, पानी की बूँद पत्र पर ही है। ऐसे ही मित्र! मैंने गुरु में प्रवेश किया नहीं, गुरु ने मेरे में प्रवेश किया नहीं, मैंने प्रभु में प्रवेश किया नहीं, प्रभु ने मेरे में प्रवेश किया नहीं, जगत् के ज्ञेयों में मेरा ज्ञान प्रवेश किया नहीं, मेरे ज्ञान ने जगत् के ज्ञेयों में प्रवेश किया नहीं। ज्ञेय-ज्ञान की जो व्यवहार-दृष्टि है वह भिन्न है। परमार्थ-दृष्टि से देखो तो ज्ञान ज्ञान है, ज्ञेय ज्ञेय है, विभक्त विभक्त है, एकत्व एकत्व है, ऐसी जिसकी दृष्टि अभेद है वह सम्यक्त्व के योग्य है।

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥अ.अ.क.॥

जितने सिद्ध हुए हैं वे भेदविज्ञान से हुए हैं, जितने बंध को प्राप्त हुए हैं भेदविज्ञान के अभाव से हुए हैं। **चारित्र के पहले वैराग्य होना अनिवार्य है। वैराग्य के पहले भेदविज्ञान होना अनिवार्य है। विभक्तदृष्टि।** पिच्छी-कमण्डलु दिगम्बरमुद्रा को पालन करना, धारण करना सहज है, परन्तु इसकी प्राप्ति मैंने इसकी प्राप्ति के लिए नहीं की है, इसकी प्राप्ति मैंने शिवत्व की प्राप्ति के लिए की है। पिच्छी-कमण्डलु की प्राप्ति मैंने किसी आम्नाय का ठेकेदार बनने के लिए नहीं की है, किसी परम्परा के निर्वाह के लिए नहीं की है, कर्मों की परम्परा को तोड़ने के लिए की है। परम्परा के निर्वाह में मैं लग जाऊँगा तो कई परम्परा के स्थापकों को मैं देख चुका हूँ, वे चले गये कुछ भी साथ लेकर नहीं गये, मात्र संक्लेशित होकर के और संक्लेशता देकर के गये हैं। **कर्मों की परम्परा तोड़ने के लिए मुनि बना जाता है।** समझ में आना चाहिए लोगों को, मुनित्व क्या है? अर्हन्त का दर्शन क्या है? वह मात्र आजीविका का साधन, मान की पुष्टि का साधन नहीं है। ये महामानवता से परे होकर के भगवत्ता की प्राप्ति का मार्ग है।

युतसिद्ध में लवलीन हो रहा है जगत् अयुतसिद्ध में लक्ष्य ही नहीं है। क्या है, ऐसे ही जीते रहोगे। जिस कुल में जन्मा है वह भी शाश्वत नहीं है। जिस परम्परा में तू जी रहा है वह परम्परा भी शाश्वत नहीं है। शाश्वत है वो अखण्ड ध्रुवधाम मेरी शुद्धात्मा। मुमुक्षु! अयुतसिद्ध पर जीना है कि युतसिद्ध पर जीना है? समझते हो अयुतसिद्ध, युतसिद्ध? जिसको जोड़ा जाये वह युतसिद्ध है। **मेरी आत्मा में ज्ञान-**

दर्शन मेरी आत्मा का ध्रुवधर्म है। ये किसी से जोड़ा नहीं गया है, ये स्वयं से ही स्वयं में है, अयुतसिद्ध है। अयुतसिद्ध पर दृष्टि ले जाइये, अपृथक्त्व पर दृष्टि ले जाइए। पृथक् को पृथक् ही मानिए। व्यवहार से पूछ रहा हूँ। यह क्या है ? मुमुक्षु को मालूम चल जाये, यह उसका पेन है वह तुरंत रख लेगा और यह बोध हो जाये कि ये तो दूसरे का था, क्यों उठा लिया ? वह धीरे से छोड़ देगा। अरे ! दूसरे की वस्तु को जानकर तूने छोड़ दिया। एक क्षण पहले राग था, वह तेरा राग विलीन हो गया। **ज्ञानी जीव भिन्न पुरुष के द्रव्य को भिन्न स्वीकारकर छोड़ देता है,** इससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं सधता। ऐसे ही ज्ञानी तत्त्वज्ञानीजीव एक सौ अड़तालीस कर्म-प्रकृतियों, नोकर्म, छः पर्याप्ति, तीन शरीर; इनमें विराजमान होने पर भी इनमें अपनापन नहीं स्वीकारता और इनके नष्ट होने में, संयोग-वियोग में हर्ष-विषाद को प्राप्त नहीं होता है। ऐसा वैराग्यमय हो जाता है। निज के कर्म-नोकर्म को अपना नहीं मानता तो पर के कर्म-नोकर्म में लिप्त क्यों होगा।

कम्मे णोकम्महि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धि अप्पडिबुद्धो हवदि ताव ॥19/स.सा.॥

कर्म-नोकर्म में जिसकी आत्मबुद्धि चल रही है, वो अप्रतिबुद्ध है। जो कर्म-नोकर्म को निजधर्म नहीं मानता वही प्रतिबुद्ध है, मानता भर नहीं आचरित करता है। कार्तिकेय स्वामी जयवंत हों, शरीर पर वसूले चला दिए बहनोई ने तब भी खड़े रहे ध्यानस्थ। वह देह को छिन्न-भिन्न कर रहा है। वह छिन्न-भिन्न के ही योग्य है। जो देही को छिन्न-भिन्न करना चाहता है उस पर वसूला चलता नहीं है। **वो समता, वो समता चाहिए कि देह को छिलते देखता रहूँ पर देही न बिलखे, इसका नाम अपादानशक्ति है। कोई शरीर को झुलसाने भी आ जाये तब भी मेरे भाव कषाय में न झुलस पायें, इसका नाम अपादानशक्ति है।** वहाँ कहना, उत्पाद-व्यय होने पर ध्रुवत्व का विनाश नहीं होता, अपादानशक्ति है। इस समय ये भले कपड़ों में बैठे हैं, पर भावों में दिगम्बरत्व को निहार रहे हैं। किसको ? अपादानशक्ति से युक्त योगी की अनुभूति को, देखो यह है दिगम्बरत्व का असली रूप। भाई ! अब लगता है कि बैठे नदी तट पर, बैठे शिलाओं पर, गिरि पर, कन्दराओं में किसी को पता नहीं है। अगरबत्ती पैकेट में रहने दो, किसी को पता नहीं है तो खुशबू नहीं फैलती पर उसके अंदर कोई काड़ी लगा देता है और छुपा के कहीं भी रख दो, लेकिन महक बता देती है यहाँ अगरबत्ती है। ऐसे ही तुम अपने प्रकाश के चक्कर में मत रहो, तुम अपने में सुगंध भर लो। जब कैवल्य की सुगंध फैलेगी, तब मध्यलोक में ही क्या, तीनलोक में सबको पता चल जायेगा कि केवली भगवान् कहाँ हैं ?

जितनी आज संयम में मृदुलता आ रही है, जितने लोग परपंच में संस्थाओं की ओर दौड़ रहे हैं, उसका मुख्य उद्देश्य इनको प्रभावना लग रहा है पर सत्य बताऊँ– यह तुम्हारी अप्रभावना है। दिगम्बरत्व की पहचान नहीं है ये। **दिगम्बरत्व की पहचान मिटा रहे हो, ये तुम्हारे द्वारा सबसे बड़ा दिगम्बरत्व**

का नाश है। दिगम्बरत्व की पहचान मिटा करके अपने नाम में लग रहे हैं। अपने-अपने नाम के तीर्थ बना रहे हैं, ये सब कुछ जिन धर्म नहीं है, ये मात्र दिगम्बरत्च की पहचान मिटाकर के अपनी पहिचान बनाने में लग रहे हैं। जिस दिन अपनी पहिचान का भान हो जायेगा, उस दिन देह की पहचान समाप्त करके निज को पहचानने में लग जायेंगे। इन पर दया आती है, करुणा आती है कि सब कुछ छोड़ने के बाद भी फिर जुड़ गये उसी में। अशुभभाव नहीं करना उनके प्रति भी, उन पर करुणा ही करना, क्यों ऐसी बुद्धि हो रही है? भैया! पूछो – इन श्रावकों को एक घण्टा घर से निकलने के लिए कितना व्यवस्थित होकर आना पड़ता है। धन्य हैं ये जीव जिन्होंने गृहस्थी को छोड़ दिया हो, तू फिर भी दया करना, रोष मत करना, ये करुणा के पात्र हैं। **जो मोक्षमहल का निर्माण करने वाले थे वे जगत् के रागियों के लिए महल बनवा रहे हैं, ये करुणा के पात्र हैं, ऐसे साधक दया के पात्र हैं।**

मुझे लगता है कौन इनकी सोच को शौच करे ? हाँ, इनकी सोच को कौन शौच करे, कि तुम जब माता-पिता से विदा लेकर आये थे, ये कहकर नहीं आये थे कि हम इन कामों में उलझेंगे। ये तुम कारण-कार्य विपर्यास कर रहे हो। मैं तो इन माताओं से बोल देता हूँ, यदि मंदिर का बोल कर घर से आयी हो और यहाँ दुनियाँ की बातें करोगी तो नियम से तुम्हें मायाचारी का बंध होना है। कारणकार्यविपर्यास। आपने मुझे यहाँ समयसार की व्याख्या के लिए बिठाया है और मैं आपको यहाँ-वहाँ की बातें करूँगा, कारणकार्यविपर्यास। तुम धीरे से बोल देना – कारणकार्यविपर्यास और जिनवाणी का विपरीत अर्थ किया तो स्वरूपविपर्यास में लग गये। यह सब हमारे पूर्वाचार्यों ने लिखा है। आचार्य भगवन् पूज्यपादस्वामी ने सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ में कहा है। इस प्रकार से अपादानशक्ति का व्याख्यान किया।

अधिकरणशक्ति, किसका किसमें आधार? ज्ञानियो! व्यवहार से लोकाकाश में छः द्रव्य हैं। निश्चयनय से प्रत्येक द्रव्य स्वप्रतिष्ठित है। जगत् में कुछ भी सुनो, कुछ भी देखो, गाय बनके जीयो। गाय तेरे मल को भी खा लेती है पर दूध देती है। गाय को कामिनी कहते हैं। गाय घास खाये, कुछ भी खाकर वह पचाकर दूध बनाती है। ऐसे ही सम्पूर्ण ज्ञेयों को ज्ञान का विषय बना लो, जब तुम्हारे मुख से निकले जिनवाणी बनाकर निकालो। तुम गाय बनकर देखो। निश्चयनय से तीनों लोक वातवलय पर हैं, वातवलय आकाश में है, आकाश किसके आधार पर है? स्वप्रतिष्ठित है। राजवार्तिक ग्रंथ में इसके ऊपर बड़ी गहनतम व्याख्या है। बस इतना ही हो सकता है या तो समय में समय दो या आगम में समय दो। ज्ञानी ! अन्याय से बचना है तो न्याय में लग जाओ। लोक स्वप्रतिष्ठित है, व्यवहारनय से मैं लोक में, ढाईद्वीप में, भारत में, महाराष्ट्र में, खंडेलवाल भवन में हूँ, इतने क्षेत्र में हूँ? देह में हूँ, तो कहाँ हूँ? मैं निज में हूँ। अण्डर, आवास, पुलवि देह में हूँ। परमार्थदृष्टि से प्रत्येक द्रव्य स्वप्रतिष्ठित है। इसलिये अधिकरण कौन मेरा ? मैं ही मेरा अधिकरण हूँ। ये कौनसी शक्ति चल रही है - अधिकरण शक्ति।

भाव्यमानभावाधारत्वमयी अधिकरणशक्तिः।। 46।।

भावमान भाव के आधारमयी जो है उसका नाम अधिकरणशक्ति है। ज्ञानी ! **रत्नत्रय कहाँ है ? मेरी आत्मा में है। मैं कहाँ हूँ ? मैं 'मैं' ही हूँ, अधिकरणशक्ति।** अभेददृष्टि से आधार-आधेय सम्बन्ध एकत्वभूत है, गुण-गुणी का संबंध एकत्वभूत है। संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन की दृष्टि भिन्नत्व है, परन्तु अधिकरण की दृष्टि से अभिन्नत्व है।

रयणत्तयं ण ट्टई, अप्पाणं मुयत्तु अण्णदवियम्हि।
तम्हा तत्तियमइओ, होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा।। 40/द्र.सं.।।

ये रत्नत्रय आत्मा को छोड़कर के अन्य कहीं नहीं होता है, इसलिए इन तीनों से युक्त जो है वह मेरी आत्मा है।

आदा खु मज्झ णाणं आदा मे दंसणं चरित्तं च।
आदा पच्चक्खाणं आदा मे संवरो जोगो।।स.सा./277।।

आत्मा ही ज्ञान है, आत्मा ही संवर है, आत्मा ही प्रत्याख्यान है, आत्मा ही योग है, इसलिए आत्मा को छोड़कर के कोई भिन्न वस्तु नहीं है। आत्मा ही मेरा मोक्षमार्ग है। मोक्ष कौन सी वस्तु है? **जो मेरी आत्मा से भिन्न अनात्मभूत कर्म थे उनको भिन्न कर देना ही मोक्ष है। पृथक्करण की क्रिया का नाम मोक्ष है, इसलिए ये अधिकरण शक्ति है।** अंतिम शक्ति है संबंधकारक।

स्वभावमात्रस्वस्वामित्वमयी सम्बन्धशक्तिः।।47।।

जो स्वात्मा का स्वभाव मात्र स्वयं ही स्वामी है। मेरा किससे संबंध, किससे नाता, मैं ही स्वामी हूँ, मेरा मैं ही स्वामी हूँ। जगत् का कोई मेरा स्वामी नहीं, मेरा जगत् से कोई संबंध नहीं है। मैं 'मैं' ही हूँ–सम्बन्धशक्ति। भिन्न संबंध बनाते-बनाते कितने कल्पकाल निकल गये, अब तो स्वतंत्रता का वेदन करो। कभी दीक्षा लेने के परिणाम आये तो किसी को मित्र बना के दीक्षा मत लेना, क्योंकि भावों की विशुद्धि- अशुद्धि को कोई पहचान नहीं पाता है और पर की मित्रता कब टूट जाये पता नहीं। तुम अकेले दिखाई दोगे। हम एकत्वविभक्त को ही अपना मित्र बनाके चलें, वो ही मुझे मुनि बनाके रख पायेगा।

सगे भाई-बहन भी दीक्षा ले लें, वे भी दूर-दूर हो जाते हैं। ये पिच्छी का जादू नहीं है, ये मानकषाय का जादू है। गुरु ने दो-दो शिष्य बाहर भेजे थे। तीन-तीन भेजे, पर क्या हुआ ? एक चातुर्मास नहीं हो पाता उससे पहले ही अलग-अलग हो जाते हैं। ये क्या है ? साथ में भेजने के साथ-साथ, व्यवहार से कह रहा हूँ, उनसे कहना – इनका संघ बाद में बनाओ, इन के अंदर वात्सल्य का संघ बनवा दो। आपने पहले से ही सिखा के भेज दिया कि गुरु मैं हूँ, इनकी बात नहीं मानना, तो बस एक-दूसरे को देखेंगे कि गुरु आप नहीं हो। अरे भाई ! आपको समझ में आना चाहिए कि गुरु एक प्रकार के नहीं होते। गुरु अनेक प्रकार के

होते हैं। आगम को आगम रहने दीजिए, मूलाचार जी में गुरुओं के भेद गिनाए; दीक्षा गुरु, शिक्षा गुरु, ज्येष्ठ गुरु। जिनसे हम शिक्षा ग्रहण कर रहे वे दीक्षा गुरु हैं। न जिनसे शिक्षा मिली, न दीक्षा मिली, तब भी गुरु हो सकते हैं क्या ? हाँ, हो सकते हैं, यदि कोई मुनि के हमसे एक मुहूर्त पहले संस्कार हुए हैं तो वे मेरी दीक्षा में ज्येष्ठ गुरु हैं, तो उनका मुझे विनय रखना चाहिए। तुम विनय रखोगे तो, वहाँ विसंवाद नहीं हो सकता। जहाँ विनय पलायन किये, वात्सल्य नष्ट हुआ, वहाँ दो को अलग-अलग एक-एक होने में देर नहीं लगती। इस खोटे कलिकाल में वात्सल्य नहीं सिखाओगे, तो एकल विहार की परम्परा वृद्धिमान हो रही है। वट्टकेरस्वामी एकल विहार किंचित् भी स्वीकार नहीं करते, **'मा मे वि सत्तू एगागी'**। शत्रु भी क्यों न हो, हे मुनि ! एकल-विहार मत करना, पंचमकाल में एकल-विहार को किंचित् भी स्वीकार नहीं किया गया है। उपाय-उपेय की व्याख्या अब प्रारम्भ होगी। अभी तक सैंतालीस शक्तियों की व्याख्या हुई।

आत्मस्वभावं परभावभिन्नं'।
आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।
भगवान् महावीर स्वामी की जय।

आत्मस्वरूप

इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः ।

एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ॥264/कलश॥

शब्दार्थः - (इत्यादि-अनेक-निज-शक्ति-सुनिर्भरः अपि) पूर्व कथित 47 शक्तियों इत्यादि अनेक निज शक्तियों से भलीभाँति परिपूर्ण होने पर भी **(यः भावः ज्ञानमात्र मयतां न जहाति)** जो भाव ज्ञानमात्रमयता को नहीं छोड़ता **(तद्)** ऐसा वह **(एवं क्रम-अक्रम-विवर्ति-विवर्त-चित्रम्)** पूर्वोक्त प्रकार से क्रमरूप और अक्रमरूप से वर्तमान विवर्त से रूपान्तर से, परिणमन से अनेक प्रकार का द्रव्य-पर्यायमय **(चिद्)** चैतन्य रहा इस लोक में **(वस्तु अस्ति)** वस्तु है।

भावार्थः - कोई जानेगा कि ज्ञानमात्र कहा हुआ आत्मा एकस्वरूप ही है, किन्तु ऐसा नहीं है। वस्तु का स्वरूप द्रव्य-पर्यायमयी है, चैतन्य भी वस्तु है वह अनन्त शक्ति से भरा है सो क्रमरूप व अक्रमरूप अनेक परिणामों के विकारों का समूहरूप अनेकाकार होता है, परन्तु ज्ञान असाधारणभाव को नहीं छोड़ता। सब अवस्थाएँ परिणामपर्यायी हैं वे ज्ञानमय हैं।

स्याद्वाद-न्याय

नैकान्तसंगतदृशा स्वयमेव वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिरिति प्रविलोकयन्तः ।

स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य सन्तो ज्ञानी भवन्ति जिननीतिमलङ्घयन्तः ॥265/कलश॥

शब्दार्थः - (इति वस्तु-तत्त्व-व्यवस्थितिम् नैकान्त-संगत-दृशा स्वयमेव प्रविलोकयन्तः) ऐसी वस्तुतत्त्व की व्यवस्थिति को अनेकान्त-संगत दृष्टि के द्वारा स्वमेव देखते हुए **(स्याद्वाद-शुद्धिम् अधिकाम् अधिगम्य)** स्याद्वाद की अत्यंत शुद्धि को जानकर **(जिन-नीतिम् अलंघयन्तः)** जिन नीति का उल्लंघन न करते हुए **(संत ज्ञानी भवन्ति)** सत्पुरुष ज्ञानस्वरूप होते हैं।

भावार्थः - जो सत्पुरुष अनेकान्त में लगायी हुई दृष्टि से ऐसी अनेकान्तरूप वस्तुतत्त्व की मर्यादा को देखते हैं वे स्याद्वाद की शुद्धि को पाकर ज्ञानी होते हैं। वे जिनदेव के स्याद्वादन्याय का उल्लंघन नहीं करते। स्याद्वाद-न्याय, वस्तु जैसी है वैसा कहता है।

।। समय देशना ।।

भव्य बन्धुओ! आचार्यप्रवर भगवत् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज समयसार जी में ध्रुवज्ञायकस्वभावी भगवान्-आत्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। टंकोत्कीर्ण परम पारिणामिकभावयुक्त, अनंत शक्ति से सम्पन्न ये आत्मद्रव्य है फिर भी अपने ज्ञानस्वभाव का त्याग नहीं करता। जितने गुण हैं आत्मा में सम्पूर्ण गुणों में परमभाव-ग्राहक गुण है। परमभाव-ग्राहक द्रव्यार्थिक नय से ज्ञानस्वभावी

आत्मा है। अन्त **'अत्रानेक स्वभानाम् मध्येज्ञानाख्यः परम स्वभावो गृहीतः'।** अनेक स्वभावों के मध्य में ज्ञान को परमस्वभाव कहा है। सम्पूर्ण स्वभावों का वेदकभाव, सम्पूर्ण स्वभावों का अनुभावक भाव, सम्पूर्ण स्वभावों का ज्ञाता भाव यदि कोई है तो ज्ञानस्वभाव है। विद् धातु वेदन अर्थ में। इसके लिए अंत यानी धर्म। **जो आत्मधर्म का ही वेदन करे, आत्मधर्म का ही वेदन कराए, आत्मधर्म का ही वेदक हो, मेरा आत्मधर्म ही वेदान्तहै, वो ही अध्यात्म है।**

ज्ञानियो! अंत यानी धर्म, जैसे अनेकान्त, अनेक हैं अन्त जिसमें, अनेक हैं धर्म जिसमें उसका नाम है अनेकांत। वेदन करे जो धर्म का उसका नाम है वेदांत। किस धर्म का? आत्मधर्म का, ज्ञायकभाव का। मैं ही प्रमीति, मैं ही प्रमाता, ऐसी अभेदधारा जिसमें है वह आत्मा की अखण्डधारा है। सैंतालीस शक्तियों को कहने के उपरांत उपसंहाररूप में आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी दो कलश कह रहे हैं, इन दोनों कलशों में सम्पूर्ण शक्तियों का सार भर दिया है।

इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः।
एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु॥264/कलश॥

अनेक शक्तियों से भरपूर भण्डार होने पर भी, फिर भी अपने ज्ञानस्वभाव का परित्याग नहीं करता है। अनंत शक्तियों का वेदक कौन है ? अनंत शक्तियों का अनुभावक कौन है? अनुभाव्य है शक्तियाँ, अनुभावक ज्ञान है। जो ज्ञान है वही ज्ञाता है, जो ज्ञाता है वही ज्ञान है। गुण-गुणी में अभेददृष्टि। जो उष्णता है वही अग्नि है, जो अग्नि है वही उष्णता है। उष्णता से रहित अग्नि नहीं होती, अग्नि से रहित उष्णता नहीं होती है। जो जल है वही शीतल है, जो शीतलता है वही जल है। जो आत्मा है वह ज्ञान-दर्शन-स्वभावी है, जो ज्ञान-दर्शनस्वभावी है वही तो आत्मा है। जिसमें ज्ञानदर्शन नहीं वो आत्मद्रव्य नहीं और जहाँ आत्मद्रव्य नहीं है वहाँ ज्ञान-दर्शन नहीं। अनंतज्ञेयों में एकमात्र ज्ञाता कोई है, वो जीवद्रव्य है। हे जीवो! अन्वेषण करो, तू मार्गणा कर, खोज, निहार। अनंतानंत पुद्गलों के पिण्ड के द्रव्य में कितने जीवद्रव्य हैं? अनंत।असंख्यातप्रदेशी लोकाकाश में कितने जीवद्रव्य हैं ? अनंत। असंख्यात प्रदेशी धर्म-अधर्म द्रव्य के मध्य में कितने जीवद्रव्य हैं? अनंत हैं। असंख्यातकालाणु के मध्य में कितने जीवद्रव्य हैं? अनंत। इन अनंतजीवद्रव्यों के मध्य में कितने त्रस जीव हैं? असंख्यात हैं ? असंख्यात त्रसों के मध्य में कितने संज्ञी-पंचेन्द्रिय हैं ? असंख्यात। असंख्यात संज्ञी पंचेन्द्रियों के मध्य में कितने जीव मनुष्य हैं ?असंख्यात। असंख्यात मनुष्यों के मध्य में कितने मनुष्य गर्भज हैं ? असंख्यात। पर्याप्त गर्भज मनुष्य संख्यात हैं, 29 अंक प्रमाण।

सम्मूर्च्छन मनुष्यों की तो भीड़ है। हे जीव ! तुरन्त आँख मल लिए, कान खुजला लिए, काँख खुजलाली, गुप्तांगों में खुजली पड़ गई, खुजा लिए। तुमको पता था कितने सम्मूर्छन मनुष्यों को मार

दिया। धन्य है मुनिदशा, जो छींक के आने पर भी प्रायश्चित्त करते हैं। धन्य है मुनिदशा जो जँभाई के आने पर भी प्रायश्चित्त करते हैं, प्रतिक्रमण करते हैं।

खासिएण वा, छिक्किएण वा, जंभाइएण वा, सुहुमेहिं अंग चलाचलेहिं।।प्र.सू.।।

ये प्रतिक्रमण कर रहे हैं। छींक के आने पर, जँभाई के आने पर, खाँसी के आने पर, अंगों के चलायमान होने पर किंचित्मात्र भी हमारे भावों में विकारभाव का जन्म हुआ हो **''तस्समिच्छामे दुक्कडं''**। वह मेरा दुष्कर्म मिथ्या हो, मिथ्या हो, मिथ्या हो। जागृति का जीवन, इसका नाम है साधुजीवन। जागरण नहीं है तो साधुपना नहीं है। **निज में जागे, पर में सोये वही योगी है। जो पर में जागे निज में सोये वही भोगी है। जो व्यवहार में सो रहा है निश्चय में जाग रहा है वही योगी है। जो व्यवहार में जाग रहा है निश्चय में सो रहा है वही भोगी है।**

जो व्यवहार में सुप्त है और आत्मतत्त्व में जाग्रत है वही परमहंसात्मा है, वही प्रज्ञाचक्षु है और जो मात्र व्यवहार में जाग रहा है, उसकी प्रज्ञा व्यभिचारणी है। शब्द सुना, जो मात्र व्यवहार में जाग रहा है और व्यवहार में दौड़ रहा है उसकी प्रज्ञा व्यभिचारिणी है किसी की स्त्री व्यभिचारिणी हो तो मात्र वर्तमान में कुल बदनाम होगा। हे पुरुष ! हे नारी ! पर पुरुष को नारी देखे व्यभिचारिणी, पर नारी को पुरुष को देखे व्यभिचारी, ये दोनों व्यभिचारी-व्यभिचारिणी इस भव के कलंकी हो सकते हैं, वे सँभल जायें, सुधर जायें अपने आपको सँभाल लें। पर मेरे मित्र ! ये देह का व्यभिचार विचारों के व्यभिचार के अभाव में होता नहीं। **जितने पापी जीव हैं वे सब प्रज्ञा के व्यभिचारी हैं।** प्रज्ञा व्यभिचरित न होती तो जगत् में कोई व्यभिचार ही नहीं होता। प्रवेश कीजिए स्वयं की प्रज्ञा में और देखिए तेरी प्रज्ञा कहाँ प्रवेश कर रही है।

जितनी आँखों से पर की आँखों को तूने नहीं देखा, तू प्रज्ञा की आँखों से कितनी आँखों में प्रवेश कर गया। हे जीव ! दूसरे पर आँख ले जाने पर दूसरे की आँखें देख लेंगी, पर अचक्षु से तूने जितनी बार देखा है उसे दूसरा देख ही नहीं पाया। मैंने कितनी बार देखा, जितना पाप तूने आँखों से नहीं किया, अन्य चार इन्द्रियों से नहीं किया उतना अनीन्द्रिय से किया है, मन से किया है। इस मन को आप नहीं सँभाल पाये तो अतीन्द्रिय आनंद सम्भव नहीं है। **अतीन्द्रिय आनंद चाहिए है तो इन्द्रिय आनंद, अनीन्द्रिय-आनंद से अपने को पृथक् करना पड़ेगा।**

प्रज्ञा को ब्रह्मचारी बना लो। प्रज्ञा को ब्रह्मचारिणी बना लो। जिसकी प्रज्ञा ब्रह्ममय है उसके देह का ब्रह्म है। प्रज्ञा ब्रह्म बन जाये, तो जगत् में किसी ब्रह्म की व्याख्या की आवश्यकता नहीं। कौन मचला है ? प्रज्ञा ही मचली है। कौन भटका है ? प्रज्ञा की भटकी है। ज्ञानमात्र पर दृष्टि ले जाओ। हे ज्ञाता ! मत देख इन्द्रियों को, हे ज्ञाता ! मत देख मन को, देख ले तू अपने ज्ञान को। मैं कह रहा हूँ इसलिए मत समझना। मेरे ज्ञान को अपना ज्ञेय मत बनाइये, अपने ही ज्ञान को ज्ञेय बनाकर सोचिए। मेरा ज्ञान तुम्हारे कोई काम का नहीं, शब्दात्मक है, परार्थ अनुमान है; आत्मज है, ज्ञानात्मक है वो स्वार्थानुमान है।

स्वार्थ से निहारिये, परार्थ से मत निहारिए। परार्थ से देखोगे तो तुमको विशुद्धसागर बोलते दिखेंगे। ये सोचकर चले जाओगे - ये तो विशुद्धसागर ने प्रवचन किये थे, मैंने सुने। आप उनके तालू, ओष्ठ, कण्ठ के स्पंदन से शब्द उद्घाटित जो हो रहे हैं; रसना इन्द्रिय, वचन बल, वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उद्भूत जो शब्द वर्गणाएँ हैं, उन्हें अपना ज्ञान मत बनाइए, ये तो विशुद्धसागर की है। उन्हें अपना ज्ञेय मत बनाइए। जो तेरे भीतर भावश्रुत विराजता है उसे अपना ज्ञेय बनाइए। जो शब्दब्रह्म है वो मैं नहीं हूँ, जो मैं हूँ वह शब्द-ब्रह्म नहीं है। जो ब्रह्म है वो ब्रह्म ही है, वह वचनातीत है, वर्णातीत है, अवाच्य है, नीरव है, इसमें कोई शब्द नहीं है। व्याख्याएँ पौद्गलिक हैं, परमार्थ की भी व्याख्या होगी वो भी पौद्गलिक है, निश्चय की भी व्याख्या होगी वो भी व्यवहार ही है। जो है सो है, वो वचनातीत है।

निश्चय की भाषा को भी आप निश्चय मत मान लेना। व्यवहार की भाषा जैसे निश्चय नहीं है, ऐसे निश्चय की भाषा भी निश्चय नहीं है। निश्चयनय तो हो सकता है पर निश्चय नहीं है। ज्ञानियो! निश्चयनय तो हो सकता है, आपको मैं व्यवहारनय की भाषा बोल सकता हूँ पर निश्चय नहीं है। जो निश्चय है वो भाषा नहीं है, वो भाव है। जो भाव है वो भी भाव नहीं है, भाव में भाव है। देखो प्रवेश कर सको तो सुनो, जो भाव है वो भाव नहीं है वो भाव में भाव है; जो भाव है, जो मैं कहना चाहता हूँ, जो भाव है, जो परिणतियाँ चल रही हैं वो भाव नहीं है वो भाव में भाव है, जो भाव है वो भावों की पर्याय है। जो भावों की पर्याय है वो ध्रुवभाव नहीं है, जो भाव है वो भाव नहीं है। भाव में भाव हो रहे हैं, जो हो रहे हैं वो उत्पाद-व्यय है, जो है वो ध्रौव्य है। है उसमें होता नहीं है जो होता नहीं है उसमें हो रहे हैं। वो ध्रुव है उत्पाद-व्यय लिंग से चिह्नित तो है पर उसका उत्पाद-व्यय नहीं है , उसमें उत्पाद व्यय है। ध्रौव्य का उत्पाद नहीं है, ध्रौव्य का व्यय नहीं है, ध्रौव्य में उत्पाद व्यय है। द्रव्यार्थिक नय के दस भेदों में –

उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहक : शुद्धद्रव्यार्थिको यथा द्रव्यं नित्यं। आलाप पद्धति।

उत्पाद-व्यय को गौण करके जब हम द्रव्य को देखते हैं तो मुझे ध्रौव्य नित्य दिखाई देता है। जो उत्पाद को देखेगा, समझ में आ रहा, गंभीर मत होना, गम्भीर ही है। भाई ! पर्याय उत्पन्न होती है, पर्याय विनाश को प्राप्त होती है, उत्पन्न पर्याय को देखेगा तो भावों में हर्ष-पर्याय उत्पन्न होगी, व्यय को देखेगा तो तेरे भावों में विषाद का जन्म होगा।

घटमौलि-सुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोक प्रमोद माध्यस्थं जनो यादि सहेतुकम ।।59/आ.मी.।।

स्वर्ण का घट है। आप दोनों भाई हो, आप चाहते मुझे घट मिले, दूसरा भैया चाहता है मुझे मुकुट मिले, पिता शांत बैठा है। चाहे घट हो, चाहे मुकुट हो दोनों मेरे बेटे के हैं। मुकुट बनेगा तो सोना मेरे घर में और घट रहेगा तो सोना मेरे घर में। एक बेटा चाहता है कि मुकुट बने, एक बेटा चाहता है कि घड़ा बने। जब घट पर्याय नष्ट होगी तब मुकुट-पर्याय का जन्म होगा। जब तक घट-पर्याय का व्यय नहीं होगा,

जब-तक प्राग्भाव का अभाव नहीं देखोगे। मुकुट में प्राग्भाव है घट का, होगा प्रध्वंसाभाव। जब-तक प्रध्वंसाभाव नहीं होगा, वर्तमान पर्याय का अभाव नहीं होगा तब-तक मुकुट-पर्याय का प्रादुर्भाव कैसे होगा ? दृष्टांत मात्र पर मत उलझना। घट-पर्याय व्यय को प्राप्त हुई, एक बेटा विषाद को प्राप्त हुआ। मुकुट-पर्याय उत्पन्न हुई, दूसरा बेटा प्रसन्न हो गया। पर उन दोनों का पिता एक ही था, वो शांत बैठा है। वह ध्रौव्य को देख रहा है, वह स्वर्ण को देख रहा है। उसे मुकुट दिखाई नहीं दे रहा, उसे घट दिखाई नहीं दे रहा, स्वर्ण दिखाई दे रहा है।

ज्ञानी ! रोते वे हैं जिनके घर में मरण होता है, मुस्कुराते वे हैं, जिनके घर में जन्म होता है, मध्यस्थ वे होते हैं, जो जानते हैं न जन्मा है, न मरा है, जीवद्रव्य ध्रौव्य है। जिनके भाग्य में रोना लिखा वे रोयें मेरे लिए, जिनके भाग्य में हँसना लिखा है वे हँसें मेरे लिये। न मैं रोनेवाले का हूँ, न मैं हँसनेवाले का हूँ। मैं तो जो हूँ, सो हूँ। माताओ! आपको मालूम नहीं क्या, मेरे वियोग में लाखों माँ मर गईं, मेरे पालने में लाखों मुस्करा गईं, मैं तब भी मुस्करा कर देख रहा था, ये पागलों की भीड़ है। न मैं पालनेवाले का हूँ, जिसकी गोदी में मरा हूँ उसका भी नहीं हूँ। मैं तो आज तक किसी का हुआ भी नहीं हूँ। अज्ञानी ने मुझे मान लिया अपना, इसमें मेरा क्या दोष है? तुम्हारी अज्ञानता का दोष है। मैंने तो आज तक किसी को अपना स्वीकारा ही नहीं है, आप अपना मानते हो क्या मुझे? मैं तो आपको अपना नहीं मानता। जो अपना मानेगा पर को, उसे रोना पड़ता है। जो-जो पर को अपना माने हैं उन-उनको रोना ही पड़ेगा। जो पर को अपना नहीं मानते वे कभी नहीं रोते। शास्त्री जी ! मैं रोनेवालों को रोते देखकर आ गया, मैं क्यों रोऊँ, इनके साथ रहूँगा तो मुझे जरूर रोना पड़ेगा।

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्धमिदं वचः ।।23/इष.।।

अज्ञानी की उपासना करोगे, अज्ञान ही मिलेगा; ज्ञानी की उपासना करोगे तो ज्ञान ही मिलेगा। जिसके पास जो होगा वह वही तो दे सकेगा, प्रसिद्ध है। तो आज निर्णय कर लो किन-किन को नहीं रोना है। जिनको रोने की इच्छा नहीं है तो बेटा ! भाग आओ। इनके साथ रहोगे तो तुम्हें भी रोना पड़ेगा, रोने से दूर होना चाहते हो, तो फिर निहारना जो उत्पाद है वह नष्ट होगा। इस पर्याय के ही निमित्त जनक-जननी हो सकते हैं, मेरे ध्रुवधाम भगवान्-आत्मा के तुम कोई निमित्त नहीं हो। ये तो अहेतुक है, अजन्मा है। अज्ञानी लोग अनुत्पन्न की प्राप्ति के लिए मुनि बनके घूमने लगे। अनुत्पन्न होने पर भी उत्पन्न का दिन मना रहे। पागलों की भीड़ देखो, जन्मदिवस मना रहे। कहाँ तुम्हारी दृष्टि, देखो, मेरे से तो तुम कह नहीं सकते, बुरा लगे तो अभी लग जाये। आत्मा अनुत्पन्न है, ध्रुव है, अहेतुक है।

एक प्रश्न का जवाब देना पड़ेगा; मुनि बनो, आर्यिका बनने का उद्देश्य क्या है ? ये पंडित जी इतना ज्ञानी जीव है, इसके मन में भी चल रहा है। अब तनक और मेरी उम्र निकल जाये, फिर मेरा भी

अभिनन्दन ग्रंथ छपना चाहिए और मेरे से कहेगा - महाराज श्री ! आपका आशीर्वाद चाहिए, लिखित में, तो मैं क्या इसे आशीर्वाद दूँगा ? हे भवानन्दी ! भवातीत होने के लिए तूने जीवनभर समयसार पर वाचन किया और आज अभिनन्दन के पीछे ग्रंथ को गले में लटकायेगा क्या ? मैं विदिशा में था, तो वहाँ समाचार आया, महाराज श्री अमुक पंडित जी के अभिनन्दन ग्रंथ के लिए आपका आशीर्वाद चाहिए। मैंने कहा - पंडित जी आ जायें तो अच्छा आशीर्वाद मिलेगा। आप समझ गये, मुझे आश्चर्य हुआ। **फूलों पर कौन फूल सकता है, फूल ही फूल सकते हैं।** एक हिन्दी का और एक अंग्रेजी का, दोनों ही लगा लो यहाँ पर। हे मित्र ! फूलों पर कौन फूल सकता है? अज्ञानी भौंरा फूलों पर भ्रमण करे तो समझ में आता है कि बिचारा असंज्ञी अज्ञानी जीव है, लेकिन हे ज्ञानी ! आपने जीवनभर तत्त्व की प्ररूपणा की हो, तब भी फूलमाला में फूल जाओ तब लगता है वेद-पांडित्य अलग है, शास्त्र-पांडित्य अलग है और आत्म-पांडित्य अलग है। यह श्लोक परमात्मप्रकाश की टीका में ब्रह्मदेवसूरि ने उद्धृत किया है।

अन्यथा वेद पांडित्यं, शास्त्र पांडित्यमन्यथा।
अन्यथा परमं तत्त्वं लोकाः क्लिश्यन्ति चान्यथा।।23/प.प्र.टी.।।

वेदों का पांडित्य भिन्न है, शास्त्रों का पांडित्य भिन्न है और आत्मा का पांडित्य भिन्न है। लोग तो व्यर्थ में क्लेश को प्राप्त हो रहे हैं। यथार्थ बताऊँ, जितना व्याख्यान आपको देता हूँ, मैं देनेवाले को भी देता हूँ कि भाई ! तुम कहीं भटक नहीं जाना । बहुत सारे निमित्त सामने आते हैं, बहुत प्रशंसक मिलते हैं पयार्य के, कहीं तुम फूल नहीं जाना। जो तुम दूसरे को फूल-फूल कर रहे हो, वहाँ तुम्हारा नाम अंकित न हो जाये, अगर में भूल जाऊँ या फूल जाऊँ तो आप याद दिला देना। **सुमनों की टोकनी-की-टोकनी चढ़ा डाली प्रभु के चरणों में पर सु-मन न बन सका। सु-मन बन गया होता तो सुमन चढ़ाने की आवश्यकता न होती।** ज्ञानी ! कितने सुमन फेंक डाले पर एक बार सु-मन बना लेता, सुमन क्यों फेंकता, सु-मन ही हो जाता।

ध्यान दो, भवाभिनन्दी, **जो जीव अपनी पर्यायों के सम्मानों में पूरा पुरुषार्थ लगा रहा है वह मात्र भेष का त्यागी है, पर भावों से भव का अभिनंदी है।** विद्वानो ! भले ही शब्दों में ध्रुवधाम अखण्ड ब्रह्म की व्याख्या है पर आपके अन्तस् में, मन में भाव आ रहा है कि जब अमुक पंडित जी का अभिनन्दन ग्रंथ छप गया है उनकी स्मारिका बनी हुई है, उनका स्मारक बना है तो मेरा क्यों नहीं। आजकल तो लोग जीते जी तेरही कर जाते हैं और जीते जी अपनी छतरी बनवा रहे हैं, बाद में किसी ने बनाई कि नहीं बनाई। मैंने देखा है सोनागिरि में छतरी बन गई थी वह अपने हाथ से बना गया। कितने लोग ऐसे हैं जो अपनी तेरही कर गये । मेरे मित्र! जितनी पर्याय तूने धारण की हैं इनकी एक-एक छतरी बनाई जाये तो ढाई द्वीप में ही बनाने को स्थान नहीं मिलेगा। क्या तू स्मारक बनवा के जायेगा?

मेरे मित्र! तू तो निर्णय करके सबसे बोल ही देना - ये मेरे नाम के प्रपञ्च मत रचना। जिसको मैंने अनित्य माना था, जिसको मैंने निस्सार माना था, जिसको मैंने अध्रुव माना था, जिसको मैंने क्षणभंगुर माना था, उसी का अभिनंदन कर रहे हो आप। मिथ्यात्व के त्याग की बात करते हो और जन्मदिन पर खिचड़ी, मिठाई बाँट रहे हो। पंचमकाल में कोई भी जन्म लेता है मिथ्यात्व की पुष्टि करता है और कुछ नहीं करता। अब जो है सो है उसे कोई नहीं टाल सकता। मैं तो इन हेतुओं में पूर्णतः कृत-कारित-अनुमोदना से दूर हूँ, पसंद नहीं है, क्योंकि तुम जन्म-जरा-मृत्यु के नाश के लिए मोक्षमार्ग में लगे हो। जन्म का ही उत्साह तुम्हारे मन में चल रहा है, भव का ही उत्साह चल रहा है। अभी तुम्हारी भव के अभिनंदन की दृष्टि है। इस शब्द का प्रयोग किया है आचार्य अमितगति स्वामी ने 'योगसार प्राभृत' नाम के ग्रंथ में। 'योगसार' जो ग्रंथ है वो आचार्य योगीन्द्रदेव स्वामी का है, वो अपभ्रंश भाषा में है। जो 'योगसार प्राभृत' नाम का ग्रंथ है वो आचार्य अमितगति स्वामी का ग्रंथ है, वो संस्कृत भाषा में है। उसमें समयसार के समान सात तत्त्व, नौ पदार्थों पर व्याख्या है। ऐसा अलौकिक ग्रंथ है, उसमें लिखा है - हे श्रमण ! मतकर भव का अभिनंदन। भव का अभिनंदन है तो तू भवाभिनंदी है। तिलक लगवाने के परिणाम भी तेरे मन में आ गये, माला पहनने के परिणाम भी मन में आ गये तो जिनवाणी कहेगी कि मेरे सपूत ! अब तू मेरा नहीं बचा। तू पर्याय के सम्मान में लग गया। पर्यायी का सम्मान चाहिए तो रत्नत्रय धर्म को स्वीकार कीजिए, यही पर्यायी का सम्मान है। शेष शाला, दुशाला, माला जो भी सम्मान हैं ये सब पर्याय के सम्मान हैं, मान के सम्मान हैं, आर्जव-मार्दव का सम्मान नहीं है।

मन में भाव तो आता है जीव को, कभी-कभी। धर्मात्मा जीव समझता है मेरी तो विशुद्धि बन रही है, क्या मेरा चेहरा खिल रहा है, आनंद आ रहा है। भूल मत कर बैठना, ये धर्म का कोई आनंद नहीं आ रहा है तुझे। धर्म के क्षेत्र में आते ही सम्मान मिलना प्रारंभ हो गया। उस सम्मान के माध्यम से जो मानकषाय की पुष्टि होती है उसकी अनुभूति में तुझे धर्म के क्षेत्र में आते ही सम्मान मिलना प्रारंभ हो गया। उस सम्मान के माध्यम से जो मानकषाय की पुष्टि होती है उसकी अनुभूति में तुझे सरलता महसूस हो रही है। ये मानकषाय का आनंद है इसे आत्मधर्म का आनंद मत मान बैठना। तो आत्मधर्म का आनंद क्या होगा? जब तू होगा सामायिक में, लोग तेरी बाहर कर रहे होंगे निंदा, आलोचना तब भी तू समरस का पान कर रहा होगा, ये होगा आत्मा का सम्मान, आत्मा का आनंद। मैंने तेरा नाम ले दिया तू खुश हो गया। अब खुश हो गया तो तू समझ रहा है मेरी बड़ी विशुद्धि बनी महाराज के पास में बैठकर। ये महाराज के पास बैठकर के विशुद्धि नहीं बन रही, ये मैंने तेरा नाम ले दिया है उसका आनंद लूट रहा है। जब महाराज तुझे जानें न, पहचानें न और सभा में तेरा कोई नाम न लें, शांति से किनारे बैठे सुन रहा था, जो अंतस् में, परिणामों में निर्मलता चल रही थी, बेटा वो था आनंद आत्मा का।

जितना बन सके अपरिचित होकर जीयो तो परिचित हो पाओगे और परिचित होकर जीने लग गये तो अपरिचित हो जाओगे। **निज से परिचित होकर रहना है, तो जगत् से अपरिचित होकर जीना पड़ेगा और जगत् से परिचय बढ़ाओगे तो निज से अपरिचित होते चले जाओगे। ये ध्रुवसत्य है।** इन्द्रिय-आनंद को भी पहले आनंद स्वीकारिए। वो आनंद न होता तो तुम जी न पाते। आज तक अनंतभवों से किसके वश जिये हो ? उस सुख को भी सुख स्वीकारिए, वो भी सुख है उस सुख में ही निमग्न रहे हो। आज वो सुख तुमसे छुड़ा लिया जाये, फिर मालूम चल जायेगा आनंद कैसा होता है। जितनी सुख-सुविधा मिली है सब छीन ली जाये, फिर देखना कितना मुस्कराता है, कितना गद्-गद्भाव आता है। वहाँ कहना चाहिए कि एक परिग्रह से मैं मुक्त हो गया हूँ, निर्ममत्व को प्राप्त हो रहा हूँ। नहीं हो पाता। पुनः कहिए **'धन्ना ते भगवन्ता'** ये किससे कहा जा रहा है ?

भगवान् कुन्दकुन्ददेव कह रहे हैं - 'धन्ना ते भगवन्ता'। **वे निर्ग्रन्थ योगीश्वर धन्य हैं जिन्होंने बुद्धिपूर्वक प्राप्त सुखों का विसर्जन करके, जंगल उपवन में बैठ करके निज को निहार रहे हैं। इन्द्रियग्राम से दूर होकर के आत्मग्राम में निमग्न हैं।** 'धन्ना ते भगवन्ता' जो ज्ञानशक्ति को अपने से दूर नहीं होने दे रहे हैं। आज से जगत् के सारे मित्रों से दूर हो जाइए। मित्र से ही मित्र बनकर रहिए, जो मित्र से कभी दूर नहीं होता है वह मेरा ज्ञान मित्र है। जब निजमित्र से मित्रता करेगा, तो क्या पर मित्रों को छोड़ने जायेगा, ये तो काषायिकभाव हैं। तुझे वैराग्य हो गया। पिताजी ! मैं छोड़ता हूँ, माँ तुम्हें मैं छोड़ता हूँ। पागल आदमी है, छोड़ता हूँ, छोड़ने की क्या आवश्यकता है ? तुझे वैराग्य हुआ है, निकल जा। प्रद्युम्नकुमार जैसे वैरागी तो नहीं हो आप ? पत्नी के पास गये, देवी ! मुझे भेद-विज्ञान हुआ है, मैं स्वात्मा का कल्याण करना चाहता हूँ। आपकी अनुमति चाहिए, मैं दीक्षा लेने जा रहा हूँ। सखी ! ओ सखी ! इधर आओ, सफेद साड़ी लेकर आओ। वो अनुमतिवाला देख रहा है, ये हो क्या रहा है? सखी साड़ी लेकर आई, वह सोलह हाथ की साड़ी धारण करके चल दी। वह कहती है – तुम्हें वैराग्य ही हुआ था, तो अनुमति लेने की आवश्यकता क्या थी? वैराग्य मुझे हुआ है, मैं जाती हूँ, वह चली जाती है। यदि भीतर का वैराग्य है तो जगत् में हल्ला करने की क्या आवश्यकता ? और भीतर का वैराग्य नहीं है तो जगत् में हल्ला करने की क्या आवश्यकता ?

यदि पाप-निरोधोऽन्य, सम्पदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्य, सम्पदा किं प्रयोजनम्॥27/र.क.श्रा.॥

यदि पाप का निरोध हो ही गया है तो सम्पदा की क्या आवश्यकता और पाप का आस्रव जारी ही है तो सम्पदा की क्या आवश्यकता है।

यथा-यथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।
तथा-तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि॥37/इष्टो.॥

यथा-यथा न रोचंते, विषयाः सुलभा अपि।
तथा-तथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्॥38/इष्टो.॥

जब स्वात्म तत्त्व की संवित्ति जाग्रत हो चुकी है, तो सुलभ-से-सुलभ विषय किस काम के? जब सुलभ-से-सुलभ विषय अरुचिकर लगने ही लगे हैं तो स्वात्म-संवित्ति हो चुकी। **जब-जब संवित्ति आती है सुलभ-से-सुलभ विषय रुचिकर नहीं होते हैं। जब सुलभ-से-सुलभ विषय रुचिकर नहीं होते हैं तब स्वात्म-संवित्ति का जागरण होता है – यही है आत्मजागरण।** नौ दुर्गा के जागरण, न जाने कौन-कौन से जागरण शुरू हो गये। अरे भैया! आत्मा का जागरण कर ले, तो दुनियाँ को जगाने की क्या जरूरत है तुझे? बड़े-बड़े घड़े घी भर कर रखे जाते हैं। क्या हो रहा है ? देवता-देवियों का जागरण हो रहा है। अरे ! कालसर्प तो ऐसे चढ़ गया है वह तो सर्प बन गया है। विवेक रखो। विधि, ब्रह्मा, कर्म, भगवान्, दैव, भाग्य – ये सब कर्म के ही पर्यायवाची नाम हैं। मित्र! कर्म को ठीक कर ले तो सारे ग्रह उतर जायेंगे।

दुर्ग में एक ज्ञानी आये। वे सौंफ में नवग्रह उतारते थे, बाजार में सौंफ मिलना बंद हो गई। ऐसे उतारे-ऐसे उतारे कि पूरी उतर ही गई। थोड़ा विवेक से काम करो। वस्तुस्वभाव पर लक्ष्य ले जाओ। **पंचपरमेष्ठी की आराधना करने से सारे असाताकर्म साता में संक्रमित हो जाते हैं।** ठीक है, इसलिए अपन तो उनकी ही आराधना करें, लोभ मत दो, यथार्थता का बोध कराओ। नहीं तो ये पंचमकाल में संप्रति यानी वर्तमान में नहीं सँभल पाये, तो भविष्य में तो काल और अंधकारमय आनेवाला है। मन्त्र स्वीकार हैं, बीजाक्षर स्वीकार हैं, विधिविधान स्वीकार है लेकिन भ्रम खड़ा करके मत करो।

स्पष्ट बोलो – तुम्हारे असाता के उदय से सब कुछ हो रहा है और रोने से असाता ठीक नहीं होगा। भगवान् की भक्ति से ही ठीक होगा। इसलिए **पंचपरमेष्ठी की आराधना करो, सारे कर्म टल जायेंगे, मंद उदय है तो। तीव्र उदय में वो भी टलनेवाले नहीं हैं।** निधत्ति निकाचित जैसे कर्मों का विपाक तुमको भोगना ही पड़ेगा। इसलिए **उदय के काल में तुम रो रहे हो, बंध के काल में उदयकाल देख लेते तो रोना ही न पड़ता।** शास्त्री जी ! पूरी समाज से कहना – किसी को देखकर हँसना मत, किसी को देख करके बुरा सोचना मत, किसी की निंदा अवहेलना करना मत। मेरे मित्र! बंध के काल में पुण्य का उदय होता है। सुनो ध्यान से, बंध के काल में पुण्य का उदय होता है, समझ में नहीं आता है। बंध के काल में पुण्य का उदय नहीं, पाप का उदय होता है फिर हर जगह ठोकरें खानी पड़ती हैं। नाम नवग्रह है, पूजा चौबीसी की है। मेरा आगरा में चातुर्मास चल रहा था। वहाँ जगह-जगह की पत्रिका टंगती हैं। मैं तो देखता ही रह गया, उस पत्रिका में विधानों के नाम लिखे थे-मुकदमा जीतो विधान, बुद्धि बढ़ाओ विधान, संतान जन्म दो विधान आदि। बड़ा आश्चर्य है, ये क्या लीला है? सीधा-सीधा बोलो-

एसो पंच णमोयारो, सव्व पावप्पणासणो,
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होई मंगलम्।।

आपने सोमदेवसूरि का नाम सुना, ये दिगम्बराचार्य हुए हैं। उत्कृष्ट भाषा का भाषी 'यशस्तिलक चम्पू महाकाव्य'। जो भाषा वेदों में वर्णित है उस भाषा में यह काव्य है। ये जैनियों का बेजोड़ काव्य है। वे सोमदेवसूरि क्या लिखते हैं – लोक में मंत्र बहुत हैं, पर चौरासी लाख मंत्रों का स्वामी णमोकार महामंत्र है। मैं सभी मंत्रों को जपता हूँ, भजता हूँ पर मेरा मन णमोकार पर ही टिकता है। सारी शक्तियाँ इसके अंदर हैं -

आकृष्टिं सुरसंपदां विदधते, मुक्तिश्रियो वश्यतां,
उच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां, विद्वेष मात्मैनसाम्।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रतिप्रयततो, मोहस्य सम्मोहनं,
पायात् पञ्च नमस्क्रियाक्षरमयी, साराधना देवता।।13/स.भ.।।

उच्चाटं, विद्वेषण, सम्मोहन, वशीकरण आदि जितनी शक्तियाँ हैं – ये सब णमोकार मंत्र के अंदर हैं। जिसको निर्वाण चाहिए वो सफेद सूत की माला ले ले, मोक्ष की इच्छा हो तो। ज्ञानी ! कितने लोग लौकिक काम कर रहे हैं महामंत्र से। आप क्या बोलते हो ये तो मेरा ही मंत्र है। नाग के भी जहर उतर जाते हैं , आँधी- तूफान शमन हो जाते हैं महामंत्र से। इसलिए विश्वास करो, जिससे कर्मों के तूफान शांत होते हैं फिर ये जगत् के तूफान क्या हैं ? व्यवहार की बातें करो तो तुम ठण्डे हो जाते हो, निश्चय की व्याख्या करो तो ठण्डे हो जाते हो। ध्रुवसत्य है मैं किसी का नहीं हूँ। न आप मेरे हो, न मैं किसी का हूँ। जो तुझे अच्छा लग रहा है वह मैं नहीं हूँ, जो मैं हूँ वह दिखाई नहीं देता है।

यन्मया दृश्यते रूपं, तन्न जानाति सर्वथा।
जानन्न दृश्यते रूपं, ततः केन ब्रवीम्यहम्।।18/स.तं.।।

जो देखा जाता है वो जाननहारा नहीं है। जो जाननहारा है वो किसी को दिखाई नहीं देता है। यहाँ कलश में कह रहे हैं अमृतचन्द्र स्वामी - **'निजशक्तिसुनिर्भरोऽपि'** निजशक्ति से भरा होने पर भी, जो ज्ञानमात्र को नहीं छोड़ता ऐसा। इस प्रकार से कैसा है ये जीव द्रव्य, कैसा है वस्तु का स्वभाव, कैसी है वस्तु व्यवस्था ? क्रमाक्रम।

तत्त्वज्ञानं प्रमाणं ते युगपत्सर्वभासम्।
क्रमभावी च यज्ज्ञानं स्याद्वादनय संस्कृतम्।।101/आ.मी.।।

तत्त्वज्ञान प्रमाण है और कोई प्रमाण नहीं है। प्रमाण क्या है ? तत्त्वज्ञान प्रमाण है, युगपत् केवलज्ञान प्रमाण है। वह अक्रमभावी ज्ञान है। अपना ज्ञान कैसा है ? अक्रमभावी कि क्रमभावी ? क्रमभावी। इसलिये मित्रो! ये व्यर्थ के प्रपञ्चों में मत पड़ना। आप जो भी जानोगे वो क्रमभावी ज्ञान से ही जानोगे,

अक्रमभावी से तुम नहीं जानोगे। अक्रमभावी ज्ञान तुम्हारे मोक्ष का साधन नहीं है। तुम्हारे मोक्ष का साधन तो क्रमभावी ज्ञान ही है। हम केवली के ज्ञान से, अरहंत की देशना से तत्त्व के स्वरूप को तो जान सकते हैं पर तत्त्व का निर्णय केवली के ज्ञान से नहीं होगा, वो तो आपके निज के ज्ञान से होगा-क्रमवर्त्ती ज्ञान से, क्रमभावी ज्ञान से, क्रमनियत ज्ञान से।

इस श्लोक की व्याख्या आप अष्टसहस्री में पढ़ोगे तब जितने भी क्रमबद्धवाले दिखाई देते हैं वे सब दृष्टि से उतर जायेंगे, क्रमभावी। क्योंकि हम जो भी निर्णय करेंगे, परज्ञान से नहीं करेंगे निजज्ञान से करेंगे। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने दोसौचौसठवें कलश में लिखा है – **'ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः'** अपने ज्ञानमयीभाव को नहीं छोड़ता। किसके ज्ञान में अपने ज्ञानमयीभाव को नहीं छोड़ता है ? कैसा है ज्ञानमयीभाव? 'क्रमाक्रम'। अब यहाँ दो दृष्टियाँ हैं – पर्यायक्रम, गुणअक्रम। पर्याय क्रमभावी होती है, गुण अक्रमभावी होते हैं। इसलिए केवलज्ञान अक्रमभावी है और क्षायोपशमिकज्ञान क्रमभावी है।

जो ज्ञान सावरण होता है, जो ज्ञान करणजन्य होता है उसमें प्रतिबंध देखा जाता है। पर जिस ज्ञान में प्रतिबंध का अभाव है उसका नाम केवलज्ञान है। हमारा ज्ञान कैसा है ? सावरण, आवरणसहित। कर्म के आवरणसहित और करणजन्य है, यानी इन्द्रियजन्य है। संसारी प्राणी, छद्मस्थ जीव जो-जो जानते हैं , वो मतिश्रुतज्ञान से जान रहे हैं। पाँच सम्यग्ज्ञान में मात्र श्रुत ज्ञान ऐसा है जो स्वार्थ-परार्थ होता है, शेष ज्ञान स्वार्थ-स्वार्थ ही होते हैं, मात्र श्रुतज्ञान ऐसा है। द्रव्यानुयोग के साथ करणानुयोग को भी जानना होता है तभी तो आप तत्त्व का निर्णय कर पाओगे। मित्र ! हम अब जो भी निर्णय करेंगे, व्याख्यान में जो भी आयेगा वो श्रुतज्ञान का विषय बनता है, अन्य ज्ञान का नहीं बनता। इसलिये हम जब भी भगवान् बनेंगे, श्रुतज्ञान से बनेंगे मुझे पूरा भरोसा है, आपको भी भरोसा है क्योंकि **जो भक्तिपूर्वक भगवान् जिनेन्द्र की देशना को सुनता है वो भविष्य का भगवान् होता है,** यदि भव्य है तो।

समयसार में सोना बनाने की विधि लिखी है। ये बाहर के श्रावक आये, वे कहेंगे – महाराज ! आप तो वो ही बता दो, हमारा मंदिर जल्दी बन जायेगा। भैया ! सोने बनाने की विधि लिखी है समयसार में। यदि शर्त न होती तो ये समयसार यहाँ न मिलता। समयसार में सोना बनाने की विधि लिखी है – हस्तनी का मूत्र, सिंदूर, नागफणी, जस्ता, सीसा आदि द्रव्यों का संयोग करके मंद धोंकनी पर धोंकने से सोना बनता है, यदि पुण्य है तो। **मुमुक्षु ! वह नियम से भगवान् बनता है जो भगवान् की वाणी को प्रीतिपूर्वक सुनता है,** यदि भव्य है तो। कैसी बात कर रहे हो आप ? बिना सुने, बिना आचरण किये अभव्य ग्रैवेयक कैसे जायेगा? सुनो! मैं कुन्दकुन्द की गाथा सुनाता हूँ, आप चिन्ता नहीं करो। समयसार तो वो औषधि है इसमें जो चाहो वह है।

सद्दहदि य पत्तियदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं॥ 275/स.सा.॥

वो श्रद्धान करता है, प्रतीति लेता है, अनुभूति लेता है, धर्म करता है, किसके लिए? भोग के निमित्त से, उसे कर्मक्षय से कोई प्रयोजन नहीं है। ग्यारह अंग का पाठी हो जाता है, कौन ? अभव्यजीव। यथार्थ बताऊँ, जिन जीवों को यथार्थ में तत्त्वज्ञानी बनना हो, छोटी उम्र में ही दीक्षा लेना। जब पढ़ने-लिखने की उम्र होती है, तो चित्त तुम्हारा पढ़ाई में लगेगा। अब तुम सब कुछ करके आये, न करने की इच्छा होती है, पढ़ने की भी नहीं होती। इसलिए स्कूल से सीधे आओ दीक्षा लो, पढ़ने लग जाओ। एक सज्जन मेरे पास आये, बोले – महाराज जी ! दीक्षा लेना है। मैंने कहा – अच्छा, ये कोई खीर-पूड़ी है, आओ सीधे मूड़ मुड़ा दूँ, तुम्हें बिठा दूँ। मैंने कहा – चौबीस घण्टे यहाँ रहो। वह चौबीस घण्टे रहा, शाम को पता ही नहीं चला, भाग गया। मैंने पूछा - कहाँ गया ? बोले-वो यह कह रहा था कि जिस पढ़ाई के भूत से मैं घर से भागकर आया, चौबीस घण्टे यहाँ पढ़ाई-पढ़ाई होती रहती है, क्या करूँगा ? इसलिए कम-से-कम एक दो साल तक अपने पास रखो, देख लो पहले तू मुझे देख, मैं तुझे देख लूँ। बाद में नहीं कहना क्या हुआ। यहाँ के संस्कारों में तो ढलो पहले। चला गया बेचारा। **जो होता है, अच्छा होता है** – ये सूत्र याद कर लो। अरे भाई ! बनके बिगड़ता फिर भागता, वो अच्छा होता क्या? पहले से आया पहले भाग गया वो अच्छा हुआ। जिसके अंतरंग में कमी होगी, ध्रुवसत्य है वो तत्त्व को झेलने की सामर्थ्य नहीं रखता। अज्ञानी अज्ञानी के आश्रय में ही जायेगा और ज्ञानी ज्ञानी के ही आश्रय में रहेगा। कभी आश्चर्य मत करना, वो क्यों गये? जाने दो, जाना-आना न होता तो संसार नाम किसका होता ?

महाराज बहुत दुःख है, क्लेश है। अरे भाई! ये सब न होता तो गृहस्थी कौन छोड़ता? इसलिए संसार में जो कुछ हो सहज बनके निहारो, तटस्थ होकर निहारो, मध्यस्थ होकर निहारो। क्रमवर्त्ती, अक्रमवर्त्ती, क्रम और करण, सावरण। जो सावरणज्ञान है वो क्रम से होता है और उसमें प्रतिबंध देखा जाता है। मित्र ! जिसके प्रतिबंधक कारणों का अभाव हो जाता है वह क्षायिकज्ञान होता है वो शुद्धज्ञान होता है, शुद्धदर्शन होता है, वहाँ से अरहंतदशा प्रगट हो जाती है। जब-तक सावरण है, करणजन्य है तब-तक छद्मस्थ दशा है। वह निरावरणज्ञान कैसे प्रगट करोगे? मात्र श्रुताराधना से। **विनयपूर्वक श्रुत का अध्ययन करो तो केवली बनोगे और आपने विनय को छोड़कर अध्ययन किया तो निगोदिया बनोगे।** विनय से श्रुत का अध्ययन किया, प्रमादवश भूल भी जाओगे वो भी भविष्य में तुमको केवली बनायेगा। मित्र ! विनय का ध्यान रखना। पलंग पर, चारपाई पर पड़े-पड़े शास्त्र मत पढ़ना, मुख में इलायची पान आदि रखे हों, शास्त्र नहीं पढ़ना। ये जिनवाणी है। गद्दियों पर, पलंग पर बैठकर नहीं पढ़ना। वीतराग आसन।

दिगम्बर मुनि मात्र वीतराग आसन पर बैठते हैं और किसी पर नहीं बैठते। चेलनी ने क्या किया था, जब पुष्पडाल और वारिषेण आ रहे थे। मेरा बेटा कैसे आ गया? तो दो आसन डाल दिए, वीतराग आसन और सराग आसन। परीक्षा के लिए कोई हाल नहीं बनाना पड़ता। तुम्हारा घर ही उनके लिए परीक्षा हाल हो जाता है। माँ ने दो आसन डाले-एक सोने का, एक काष्ठ का। पुष्पडाल स्वर्णासन पर बैठ गये, काष्ठासन पर वारिषेण बैठे। माँ प्रसन्न हो गई, मेरा बेटा सुरक्षित है। काष्ठआसन वीतराग आसन है। घास, तृण, पाषाण आदि सामान्य भूमि इसी पर दिगम्बरों को बैठने का आदेश है, प्लास्टिक आदि दिगम्बरों के बैठने का आसन नहीं है। महाराज बनकर इनका प्रयोग मत करना, शास्त्रों में तो घास लिखा है, तुम घास ले सकते हो और पाटा लकड़ी का। ऐसा मत सोचना, ये उपकरण पहले चलते नहीं होगे जो आज चल रहे हैं, ऐसा नहीं है। आचार्यों ने तृण शब्द का प्रयोग किया है। पर किसी को देखकर चेहरा मत बिगाड़ लेना। तुम महाराज बनो तो ऐसा लेना। नहीं तो तुम दूसरे को देखकर चेहरा बिगाड़ो, अरे! उस पर भी करुणा करो, जीने दो, पर वस्तुस्वरूप ये है।

क्रम और करण। **गुण जो हैं अक्रमभावी और पर्याय क्रमभावी।** हाँ, कोई ये न मान बैठे जो जीव है, वह मात्र ज्ञानमयी है। **'विवर्तिविवर्त चित्रं'** तो परमभाव ग्राहक की दृष्टि से ज्ञान आत्मा लेकिन जो भी द्रव्य होगा वो गुण-पर्याय से रहित कभी नहीं होगा, इसलिए वह कैसा है ? **तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु।** ज्ञानियो! जगत् की सभी वस्तुओं को तुमने देखा, पर हमारी जो चैतन्य वस्तु है वह ज्ञान गुण का त्याग नहीं करती है। इसलिए तुरन्त भगवन् ने कह दिया दोसौ पैंसठवे कलश में कि हे जीव ! तू एकान्त में मत चले जाना।

नैकान्तसंगतदृशा स्वयमेव वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिरिति प्रविलोकयन्तः।
स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य सन्तो ज्ञानी भवन्ति जिननीतिमलङ्घयन्तः॥

(कलश/265)

अनेकान्त संगत दृष्टि है। ऐसा स्वयमेव वस्तुतत्त्व की व्यवस्था है, ऐसा अच्छी तरह से अनेकान्त की आँख से अनेकान्त का अवलोकन कर। अपने ज्ञान की शुद्धि स्याद्वाद से करो और जिसका स्याद्वाद ज्ञान शुद्ध है वही आत्मा सिद्ध, शुद्ध बन सकेगा। **चारित्र की मलिनता से कभी मिथ्यात्व खड़ा नहीं होगा, पर ज्ञान की मलिनता से पंथों का मिथ्यात्व फैल सकता है।** भैया! असंयम है आपके पास अथवा संयम में शिथिलाचार है। कोई आपके पास नहीं भटकेगा, उसे कोई नहीं स्वीकारता। परन्तु संयम तो अच्छा दिखता हो और ज्ञान में विपरीतता हो तो मेरे मित्र! उसके ज्ञान की विपरीतता से मिथ्यात्व फैल जायेगा, सम्प्रदाय बन जायेंगे। **आज तक लोक में जितने पन्थ बने वे ज्ञान की अज्ञानता में बने हैं।** अखण्ड समाज में नाना प्रकार के टुकड़े दिखाई देते हैं। विश्वास मानो, ये ज्ञान की अज्ञानता थी। जितना हिंसा का एकांत घातक नहीं है, उससे अधिक ज्ञान का एकांत घातक है। मित्र! हिंसा किसी को

पसंद नहीं है सो फैल नहीं सकती, पर ज्ञान सबको पसंद होता है इसलिए सभी से कहना है कि कम जानना, पर जितना जानो यथार्थ जानो, समीचीन जानो। **'देशयामि समीचीनं'** समन्तभद्र स्वामी ने पहले ही कह दिया, समीचीन कहूँगा। ये स्याद्वाद की सिद्धि से जानकर के ऐसा सद्पुरुष, संत पुरुष, साधु पुरुष ज्ञानी होता है। ऐसा ज्ञानी होता है वह क्या जानता है ? **जिनेन्द्र की जो नीति है वो स्याद्वादमयी है, अनेकानन्तमयी है। ज्ञानी पुरुष जिनेन्द्र की नीति का उल्लंघन नहीं करता। जो अरहंत की नीति का उल्लंघन करता है, वो सम्यग्दृष्टि होता ही नहीं है।**

भाई ! घर में मठा बनते देखा, कैसे बनता है ? मथानी से मक्खन कैसे निकालना पड़ता है ?

एकेनाकर्षन्ती, श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनीनीतिर्मन्थान नेत्रमिव गोपी।।225/पु.सि.उ.।।

जैसे गोपिका एक रस्सी को खींचती है, एक को ढीला करती है पर छोड़ती दोंनों को नहीं है-यही जैनी की नीति होती है। जब निश्चय को ढीला करता है तब व्यवहार को खींच लेता है और जब व्यवहार को छोड़ता है तब निश्चय को खींच लेता है पर छोड़ता एक को भी नहीं है - यह है जैनी की नीति। ज्ञानियो ! हर मंदिर में गोपिका का मक्खन निकालनेवाला चित्र होना चाहिए, साथ में श्लोक भी लिखा होना चाहिए। बीना इटावा मंदिर के द्वार पर पाषाण में यह चित्र बना हुआ है। सभी मंदिर में होना चाहिए यह चित्र, सबसे पहले यह देखो, बाद में प्रवेश करना। पहले नीति सीख कर जाओ, खीचला मत बनाना। मैं जानता नहीं था ये खीचला, खीच क्या होता है ? जब सबसे पहले बुन्देलखण्ड में दीक्षा लेकर आया, टीकमगढ़ में मैं क्षुल्लक था, एक माँ बोली – क्षुल्लक महाराज को खींच लाओ, खींच लाओ, मैं तो घबरा गया, ये क्या करनेवाली है माँ ! खींच लाओ महाराज को। खींच जानते बुन्देलखण्ड में बनता है, तो माँ कह रही थी खींच लाओ, तो मैंने समझा क्या होगा अब ? पर मैं बैठा रहा देखूँ तो होगा क्या ? जब वो एक कटोरी में लेके आई, मैंने कहा – देख लिया, अब इसे ले जाओ। इसने तो डरा दिया, खींच लाओ। ऐसे ही सोलापुर चातुर्मास कर रहा था तो एक माँ कहती है - बाटी लाओ। मैंने सोचा अब बाटी दे रही होगी माँ, पूरा आहार हो चुका पर मैं सोचता रहा ये माँ बोल रही थी – बाटी लाओ। वो मँगा रही थी कटोरी। इसलिए भाषा जानना बहुत जरूरी है। भैया! इंदौर में पाँच, छह दिन लौकी नहीं खाई। जैसे ही दिखाई बोले- 'आल'। मुझे पता नहीं, हटा दो इसको। फिर एक दिन समझदार लोग पहुँचे, बोले – आल लौकी है हटाओ मत।

जैसे मथानी को मथते समय एक को ढीला करते हैं एक को खींचते हैं तब मक्खन निकलता है। ऐसे ही निश्चय को, व्यवहार को हम ढीला करेंगे, छोड़ेंगे तब भेदविज्ञान का मक्खन निकलता है। कहीं तुमने खीच-खीच के खीच दिया, तो मथानी चलेगी नहीं, मक्खन नहीं निकलेगा। अपने घर खीचला खाने का तो बनाना, जैनी नीति का मत बनाना। भगवान् की जो नीति है उसका उल्लंघन नहीं किया जाता है।

परम पारिणामिकभाव से युक्त आत्मद्रव्य शाश्वत निजध्रुवधाम अवस्था से युक्त है। पर के परिस्पन्द से शून्य है। मेरा ज्ञायकस्वभावी आत्मद्रव्य पर के स्पंदन का कर्त्ता नहीं है, पर मेरे आत्मपरिस्पन्दन का कर्त्ता भी नहीं है। अनादि अविद्या के वश हुआ कर्म की कालिमा से मोहित हुआ आज प्राणी अपने विचारों को पर में आरोपित करने के भाव का कर्त्ता बनता है, पर के आरोपित भावों से अपने आपको कर्म बनाने का कर्त्ता बनता है। पर न पर को कर्त्तापन दे सकता है, न पर का कर्म बन सकता है। मात्र अपनी अज्ञानदशा का ही तू कर्त्ता-कर्म है। उसी अज्ञानता में कर्त्ता-कर्म के कारण का विकल्प करता हुआ निज के भीतर ही संक्लेशता को प्राप्त होता है और निमित्तों को दोष देकर के निमित्ताधीनदृष्टि बनाकरके मिथ्यात्व में पहुँचता है। पर ध्रुवसत्य ये है – परिस्पन्द पर में नहीं है मेरा, मेरे में नहीं है पर का।

ज्ञानी! उपाय को भी खोजा तो उपेय को भूलकर, उपेय को भी जाना उपाय को छोड़कर। ये दो प्रकार के मिथ्यादृष्टिजीव हैं लोक में। एक उपाय को खोज रहे हैं, उपेय पर लक्ष्य ही नहीं है। हे जीव! यदि तू जैनेश्वरी दीक्षा भी ले रहा है, दिगम्बर मुनि भी बन रहा है, उपेय नहीं है ये उपाय है, इस उपाय को प्राप्त करके उपाय-उपाय पर ही लक्ष्य है, उपेय का बोध ही नहीं है तो तेरा उपाय उपायाभास है। उपेय-शून्य उपाय उपायाभास, उपाय-शून्य उपेय उपेयाभास। उपेय उपाय शून्य यदि है – उपेयाभास। मैं सिद्धों के स्वरूप का ध्यान करता हूँ, अशरीरी भगवत्ता का बोध है, अशरीरी परमात्मा को ही मानता हूँ, अशरीरी परमात्म पद को प्राप्त करना चाहता हूँ परन्तु प्राप्ति के मार्ग पर कोई लक्ष्य नहीं है, उपेय पर दृष्टि तेरी है, पर उपाय-शून्य है। जो जीव निश्चय एकान्त में है वे उपेयाभास हैं। जो जीव व्यवहार-एकांत में हैं, व्यवहाराभास हैं, वे उपायाभास हैं। दोनों बहिर् भाव से युक्त हैं, दोनों की अंतर्दृष्टि नहीं है। आभासों में जीवन जी रहे हैं, पर सत्य पर लक्ष्य नहीं है।

निश्चय-रत्नत्रय भी उपाय है, व्यवहार रत्नत्रय भी उपाय है, दोनों रत्नत्रयों का यदि एकान्त है तो दोनों उपायाभास हैं। **एक जीव व्यवहार-रत्नत्रय की साधनामात्र कर रहा है, पर निश्चय-रत्नत्रय पर लक्ष्य नहीं उसका; एक जीव निश्चय-रत्नत्रय की चर्चा मात्र कर रहा है, व्यवहार-रत्नत्रय निश्चय-रत्नत्रय दोनों से शून्य हैं – ये दोनों उपायाभास हैं।** स्याद्वाद अधिकार में सैंतालीस शक्तियों के उपरान्त उपाय-उपेय की व्याख्या कर रहे हैं आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी, ये बड़ा रहस्य है। पूरे समयसार की व्याख्या करने के उपरांत संकेत कर रहे हैं – हे जीव! कहीं आभासों में मत चले जाना।

जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिउ तं हि ससमयं जाण।
पुग्गलकम्मपदेसट्ठियं च तं जाण परसमयं॥2/स.सा.॥

हे जीव! जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थिर है वही स्वसमय है, वही परम उपाय है और पौद्गलिक क्रियाओं में लिप्त होना ये परसमय है। जो स्वसमय है वह उपाय है, जो परसमय है वह उपायाभास है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र की लीनता, इसमें भी गवेषणा सूक्ष्मदृष्टि से करने की आवश्यकता है।

एक विद्वान् इस दूसरी गाथा का अर्थ सिद्धों में लगा रहे थे। शास्त्रीजी ! दूसरी गाथा सिद्धों के लिए नहीं है, ये संसारी जीवों के लिए ही है। उन्होंने सिद्धों में लगाने की चेष्टा क्यों की ? इसलिए की **'कम्मपदेसट्ठियं च तं जाण परसमयं'** जो कर्म-प्रदेशों में स्थित हैं उन्हें परसमय जानो और दर्शन-ज्ञान में स्थित हैं उन्हें स्वसमय जानो। हे ज्ञानी ! यहाँ कर्म-प्रदेशों में स्थित से तात्पर्य है – नोकर्म, कर्म पर रागदृष्टि रखना। ये कर्म-प्रदेशों में स्थित होने का तात्पर्य है, न कि कार्मण अड़तालीस कर्म के मध्य में होना है। यदि ऐसा मानोगे तो ऊपर की पंक्ति का अर्थ क्या करोगे? सिद्धदशा वो दंसणणाण में स्थित नहीं है, दंसण णाण चारित्र का फल है। मार्ग में जो गमन है कारण-समयसार है। वह कारण-समयसार रत्नत्रय-धर्म की दृष्टि से छठे सातवें गुणस्थान से लेकर के चौदहवें गुणस्थान तक है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित जीव है, ये कारण-समयसार है और कार्य-समयसार फलित होगा। यहाँ शुद्ध व्याख्या है वह है अशरीरी सिद्ध भगवान् और कारण-कार्य व्यवस्था तो सभी गुणस्थानों में लगती है। मुमुक्षु यथार्थ साधकतम दृष्टि से कथन करोगे छठे-सातवें से लेकर के, क्योंकि मोक्षमार्ग जो है वो छठे-सातवें गुणस्थान से ही प्रारंभ होता है। पंडित टोडरमल जी ने लिखा 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' में, 'अविरत सम्यग्दृष्टिजीव मोक्षमार्गी होसी', मोक्षमार्गी होगा। जब-तक तीनों की एकता नहीं है तब-तक उपचार मोक्षमार्ग है। शब्दों पर ध्यान रखना, जहाँ तीनों एक साथ हैं वहाँ मुख्य मोक्षमार्ग है।

आप कह सकते हो, **'मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान-चरित्र।'** ये सम्यक्त्व की प्रधानता से व्याख्या है। जब हम सम्यक्त्व की प्रधानता से व्याख्या करते हैं तो पहले तो सम्यग्दर्शन ही प्रारंभ होगा। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान युगपत् होगा। जब भी सम्यक्त्व होगा वहाँ नियम से सम्यग्ज्ञान होगा, सम्यक्चारित्र भजनीय है, हो भी सकता है नहीं भी, क्योंकि उपाय-उपेय की व्याख्या कर रहे तो विषय को समझो। सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार-विशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात – ये पाँच चारित्र की व्याख्या मोक्षमार्ग में प्रधानभूत है। जब भी पाँच चारित्र की व्याख्या करेंगे तो यह छठे गुणस्थान से ही होता है, पंचम-चतुर्थ में कोई स्थान नहीं है। एकदेशरूप से चारित्र की व्याख्या करोगे, एकदेश मोक्षमार्गी पंचम गुणस्थान और उपचार मोक्षमार्गी सम्यक्त्वाचारण चारित्र चतुर्थ गुणस्थान।

आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी ने चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव के चारित्र को 'चारित्रपाहुड' में सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहा है। किसका सम्यक्त्वाचरणचारित्र? वो पंडित गोपालदास वरैया ने पंचाध्यायी के अनुसार अनंतानुबंधी के अभाव में स्वरूपाचरण शब्द का प्रयोग किया है, वो यथार्थ में सम्यक्त्वाचरण है। पंडित वरैया जी से पूर्व दौलतराम जी हुए और दौलतराम जी ने आगमिक भाषा का प्रयोग किया है? **यों है सकलसंयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।** ये बड़ी व्यवस्थित व्याख्या है। यही कारण है कि हम लोगों की जो दृष्टि है वह हठदृष्टि नहीं है और आप भी मेरे पास इसलिए बैठे हो, आपके पास हठता नहीं

है, तो बैठे हो। जहाँ अपनी हठाग्रह की बात आती है, वहाँ किसी को कोई सुन नहीं सकता। वस्तुस्वरूप समझना है तो रहस्य में प्रवेश करें, हम क्यों लोगों के कथन में प्रवेश करें ?

'स्वरूपेचरण इति स्वरूपाचरणम्'। जो स्वरूप में रमण है उसका नाम है स्वरूपाचरण। अब स्वरूप में रमण कब होगा ? जब आपके कषायभावों का निरसन होगा और काषायिकभाव, ध्यान रखना आपके सब विषय मेरे मस्तिष्क में आ रहे हैं। विद्युत के बोर्ड पर एक बल्ब लगा होता है वहाँ लाल-सा कुछ लगा होता है। आप जानते हो, जो इण्डीकेटर लगा हुआ है, उससे विद्युत का बोध होता कि नहीं ? प्रकाश का बोधक तो है, किन्तु ग्रंथ पढ़ने के लिए प्रकाशक नहीं है। अब समझ में आयेगा, वो इण्डीकेटर है वो प्रकाश का बोधक है। पर इस बात का ध्यान रखना, ये कभी मत सोचना वो इण्डीकेटर से बिल न आता हो, ज्ञानी ! उससे भी बिल आता है ऐसे ही सम्यक् की ज्योति जो जली हुई है चतुर्थ गुणस्थान में, ये मत सोचो व्यर्थ है, उससे भी कर्म निर्जरा का बिल आता है, मोक्षमार्ग का बिल आता है। वह जो प्रकाश है वह वाचना नहीं करा सकता, सामग्री का बोध नहीं करा सकता, पर इतना बोध कराता है कि प्रकाश है।

पूर्ण अंधकार कक्ष में है तो धूमिल-धूमिल एक दूसरे का चेहरा भी दिखाई दे सकता है। धूमिल-धूमिल शब्दों पर ध्यान रखना। इसी प्रकार से जो सम्यक्त्व की ज्योति है, वह धूमिल-धूमिल उपचार से मोक्षमार्ग प्रारंभ करा रही है। जब मुझे ग्रंथ का वाचन करना है, तो एक बल्ब जलाना ही पड़ता है इसी प्रकार से चतुर्थ गुणस्थान में सम्यक्त्व की ज्योति उद्घाटित होने पर भी जैसे छठे-सप्तम से मोक्षमार्ग प्रारंभ होता है वैसा मोक्षमार्ग चतुर्थ गुणस्थान में कुछ भी नहीं है। जिस जीव ने जीवन के श्वास प्रमाणकाल तक के लिए एक बार सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया है उस जीव के लिए अर्द्धपुद्गलपरावर्तन के अंदर-अंदर नियम से मोक्ष मिलेगा, पर कैसे ? यदि सम्यक्त्व छूट करके मिथ्यात्व में गया है तो अधिक-से-अधिक भटकेगा तो अर्द्धपुद्गल परावर्तन। यदि सम्यक्त्व को प्राप्त करके उस जीव ने बिना व्रत धारण किये भी समाधिमरण किया है तब भी दो-तीन-सात-आठ भव में मोक्ष जायेगा। पर मोक्ष जब भी जायेगा वह निर्ग्रन्थ मुनि बनके ही जायेगा, क्योंकि शुद्ध सम्यग्दृष्टिजीव अधिक समय तक असंयम, अविरत में जी नहीं सकता है।

देवगुरुसमयभक्ता संसार सरीर भोग परिचित्ता।
रयणत्तय संजुत्ता ते मणुवा सिवसुहं पत्ता।।9/र.सा.।।

जो देव-शास्त्र-गुरु का भक्त है, ऐसा जीव नियम से संसार-शरीर-भोग का परित्याग करेगा, जब संसार-शरीर-भोगों का त्याग करेगा तो क्या होगा ? तो रत्नत्रय से युक्त होगा। जो रत्नत्रय से युक्त होगा, वो तो शिवगति का पथिक होगा, इसलिए मुझे मात्र मत देखना, अपने शरीर मात्र को नहीं देखना। आप तो मात्र ये देखना कि इस शरीर का उपयोग क्या है ? इस खोटेकाल में जब भी परिणाम सँभल जाये उसी

क्षण मोक्षमार्ग पर लग जाना। पुनः ऐसे भाव आ पायेंगे कि नहीं ? आ पायेंगे, यह नियत नहीं है। पर मैं भावों को नहीं सँभाल पाया तो? मैं आपके सब प्रश्नों का समाधान कर देता हूँ, क्योंकि उपाय-उपेय की व्याख्या है। मेरे भाव नहीं लग पाये तो? भाई ! क्या खीर नहीं बनी घर में ? जब खीर बनाता है श्रावक, तुम्हारा मात्र इतना काम है कर्त्तव्य इतना है कि पात्र में दूध भर दो, चावल छोड़ दो, नीचे अग्नि अपना काम कर रही है स्वचतुष्टय में, दूध अपना काम कर रहा है स्वचतुष्टय में, चावल अपना काम कर रहा है स्वचतुष्टय में, आप तो बैठे भर हो साक्षीभाव, क्या अजब। ज्ञायकभाव, आप तो देख ही रहे हो, जान ही रहे हो, आप खीर कहाँ बना रहे हो। पर हेतु में कर्त्तव्य का उपचार लगता है तो माँ तू खीर बनाने की कर्त्ता बन जाती है। सत्य ये है तेरा अंशमात्र भी उसमें प्रवेश नहीं हुआ है, तू तो मात्र योग की कर्त्ता है, तू तो मात्र उपयोग की कर्त्ता है, तेरा खीर में क्या लगा? फिर भी हल्ला कर रही, मैंने खीर बनाई। चावल जो बने हैं उनने हल्ला नहीं किया, दूध मिला है उसने हल्ला नहीं किया।

चेतन की सबसे बड़ी कमी है पर में अपना कर्तृत्व आरोपित करके सारे जगत् का कर्त्ता बनना। जबकि होता कुछ और है, बनता तू है। यह जीव की सबसे बड़ी भूल है, सबसे बड़ी कमजोरी है कि जड़ का भी कर्त्ता बन लेता है, यहाँ तक कि चेतन का भी कर्त्ता बन लेता है। शास्त्री कहता है – इस बेटे को मैंने जन्म दिया। तू बेटे का कर्त्ता बन गया, तू चाहे बेटे को कुछ भी न मानता हो फिर भी उसके पीछे चिपके घूम रहे हो। बेटा कह रहा है – तू मेरा पिता नहीं है, अपनी वासनाओं का पिता है। मेरे कहाँ से आ गये, मैं तो चेतनद्रव्य हूँ। ऐसा बेटे बोलने लग जायें तो पिता सब ठिकाने लग जायें। अच्छा, ये चिन्ता शास्त्री जी ! आपको सता रही है, ध्रुवधाम की चर्चा करनेवाला यह चिन्ता करे कि बच्चे क्या सीखेंगे? बच्चे कुछ नहीं सीखेंगे। जो तुमने सिखा के रखा वह सब झूठ है, जो मैं कह रहा हूँ कि वासनाओं का पिता, वही सत्य है, भूतार्थदृष्टि यही है व्यवहार तो जो नहीं होता उसे बना लेता है। घी का घड़ा बन सकता है, पानी की बाल्टी, दूध की केन हो सकती है तो फिर व्यवहार से तू भी अपने बेटे का पिता हो सकता है, पर है नहीं।

जब भैया ! खीर बना रहे थे, तब देख रहे थे। सब संयोग समवाय कर दिया था, संयोगों का समवायीकरण था, वैशेषिक वाला, न कि जैनवाला। ये समवायीकरण नहीं है, पर वो जो समवायीकरण चित्त-चित्त का है वह जैनदर्शन का समवायीकरण है। गुण-गुणी का समवायीकरण है। ये जो समवायीकरण है वह अयुत्सिद्ध है। वैशेषिक ! तेरा समवायीकरण युतसिद्ध है, अयुतसिद्ध नहीं है। तो समवायीकरण किया आपने संयोग इकट्ठे कर लिए। जो यूँ कह रहा था, ऐसे दग्ध खोटे काल में दीक्षित हो जाऊँगा, आप तो कह रहे थे जब परिणाम बने तभी दीक्षा ले लेना चाहिए, फिर कौन सँभालेगा ? इसका उत्तर दे रहा हूँ आपको।

भैया! बटलोई में चावल दूध के मिलते ही, नीचे अग्नि जलते ही उन चावलों से जरा मिलना। का ! तुम खीर बनते समय चावलों से मिल लेते, करुणाशील होते तो खीर न खा पाते। तुम ढँक के बनाते हो, देखते कहाँ हो, अंदर क्या हो रहा है। जैसे खीर बनते देख ले तो करुणा आ जायेगी चावलों पर। ऐसे ही मित्र! मुनि को भगवान् बनते देख ले करुणा बरस जायेगी मुनि पर। तुम तो बटलोई को देखते हो, खीर बनते कहाँ देखते हो। आज तक पात्र को देखा खीर बनते कहाँ देखा। कैसे उबल रही है, फुस-फुसा रही है। समझ गये, समझो न मेरी भाषा को मैं क्या कह रहा हूँ ? कैसे खद्बद् हो रही है। हे जीव ! जैसे चावल का दाना सैकड़ों बार नीचे आता है, सैकड़ों बार ऊपर जाता है, सैकड़ों बार बीच में रहता है। कितने बार ऊपर गया, कितने बार नीचे आया, पर बटलोई को फोड़ के बाहर नहीं निकला। हे चावल! ऊपर आता रहेगा, नीचे जाता रहेगा, तेरी कीमत बढ़ जायेगी, खीर बन जायेगी। बटलोई को फोड़ के निकलना मत।

हे साधक ! जब भाव आये तब तूने द्रव्यभेष भी धारण कर लिया उसी समय तेरे परिणामों में खद्बद् शुरू हो गई। कितने बार ऊपर गुणस्थान गया, कितनी बार नीचे गया, पर बर्तन को फोड़ के दिगम्बर भेष छोड़कर मत बैठ जाना। ऊपर-नीचे होता रहेगा, एक दिन ऐसा आयेगा, खीर बन ही जाएगी, भगवान् बन ही जायेगा। द्रव्यभेष मत छोड़ देना, भाव में भाव नहीं बनेंगे। मित्र ! द्रव्यभेष में ही भाव बनेंगे। कितना भी घाटा लग जाये, मित्र ! दुकान को मत बेचना, इतनी बात मान लेना। दुकान पर बैठा रहेगा, कुछ भी नहीं बिकेगा तब भी दुकानदार कहलाता रहेगा और जब दुकान के भाव बढ़ेंगे, उसी दुकान पर बैठकर तू कंगाल से मालामाल हो जायेगा। ऐसे ही जब द्रव्यभेष बचा रहेगा तो भाव इस द्रव्यभेष की सत्ता में होंगे और भेष ही मिटा बैठा, अब बताओ भाव किसमें होंगे?

आचार्य महाराज जो दीक्षा छेद करते हैं, इस विधि को समझो। छेदोपस्थापना संयम है-मूल छेद, उत्तर छेद। मूल छेद यानी पूरी दीक्षा का छेद कर सकते हैं, इस विधि को समझो। छेदोपस्थापना संयम है, मूल छेद यानी पूरी दीक्षा का छेद कर देना, लेकिन तब भी कपड़े नहीं पहनाते। कोई दस वर्ष का दीक्षित था, उससे कोई बड़ी भूल हो गई। तुम्हारी दस साल की दीक्षा छेदी जाती है, समाप्त की जाती है। आज का दीक्षित आपके आगे बैठेगा, आपसे पहले चर्या को निकलेगा, आप पीछे निकलेंगे। न कपड़े पहनायेंगे, न मुकुट लगायेंगे, न हार पहनायेंगे, संस्कार अवश्य करेंगे, व्रतारोपण करेंगे। किसी ने सामान्य दोष लगाया है, न व्रत, न संस्कार छुड़ाएँगे, सामान्य। आपकी एक महिने, एक साल की दीक्षा छेदी जाती है, छोटा कर दिया उसको - ये छेदप्रायश्चित्त है। कोई व्यक्ति बिल्कुल ही गिर चुका है उसके मोक्षमार्ग में उपस्थित होने के परिणाम ही नहीं हैं फिर तुझे जैसा लगे वैसा करो।

समन्तभद्र जैसा कोई प्रकरण आता है तो उनकी पुनः विधिपूर्वक पूरी दीक्षा होती है। जिसने वस्त्र ही धारण कर लिए हों, फिर पूरी दीक्षा होगी। कोई आचार्य परमेष्ठी हैं उनसे दोष कोई हो जाता है तो उनको छेद नाम का प्रायश्चित्त नहीं होता, उनके अन्य प्रायश्चित्त होंगे। आचार्य का ही तुमने छेदकर दिया तो

संघ का क्या होगा? आगम में बड़ी व्यवस्थित व्यवस्था है। आचार्य को छेद नामक प्रायश्चित्त नहीं होता। सामान्य मुनि को ही छेद नाम का प्रायश्चित्त होता है, वो भी बहुत बड़ा दोष होने पर। प्रायश्चित्त ग्रंथ सभी को पढ़ने का अधिकार नहीं है। सभी को देखने का भी अधिकार नहीं है। प्रायश्चित्त शास्त्र आचार्य ही, बननेवाले आचार्य को पढ़ाते हैं। जो बननेवाला आचार्य है उसको पूर्व आचार्य पढ़ाते हैं। सभी को ग्रंथ पढ़ने का अधिकार नहीं है। मुझे भी आचार्यश्री ने औरंगाबाद में पढ़ाया था, तो एक पर्दा पड़ा था उस परदे के अंदर पूरा ग्रंथ पढ़ाया, कोई दूसरे मुनि को आने को नहीं मिला, आगम आज्ञा है।

जैसे प्रतिमायोग; दिगम्बर मुनि शीतयोग धारण करते हैं। ग्रीष्मयोग, वर्षायोग धारण करते हैं। ऐसे किसी ऐलक-क्षुल्लक, आर्यिका और सामान्य ग्रहस्थों को इसकी कोई आज्ञा नहीं है। विधि लेकर जैसे मुनि निकलते हैं आहार को, ऐसे क्षुल्लक आदि नहीं निकल सकते हैं। ये उत्कृष्ट श्रावक हैं, ये साधु परमेष्ठी नहीं हैं। विधिपूर्वक चर्या को निकलना – इसका नाम है वीरचर्या। वीरचार्य की मात्र दिगम्बर मुनि को ही आज्ञा है। **सिद्धांत ग्रंथ, रहस्य ग्रंथ सामान्य श्रावकों को, सामान्य लोगों को सुनने का भी अधिकार नहीं है, पढ़ना तो दूर है।** प्रायश्चित्त शास्त्र ये रहस्य ग्रंथ है, ये दण्ड संहिता है मात्र आचार्य परमेष्ठी को ही अधिकार है। नहीं तो मुनि पढ़ लेंगे, मन से दोष करेंगे, मन से प्रायश्चित्त करेंगे, पता ही नहीं चलेगा तुमने दोष कब कर लिये, कब तुमने प्रायश्चित्त कर लिया। मनमानी प्रवृत्ति हो जायेगी। इसलिये सभी के लिए इन्हें पढ़ने का अधिकार नहीं। सारे ग्रंथ ग्रंथालय में मिल जायेंगे पर सभी ग्रंथालयों में प्रायश्चित्त शास्त्र नहीं मिलेंगे। इस ग्रंथ पर पाबंदी है। यह मात्र आचार्यों के पास रहता है।

जिसका व्यवहार-उपाय निर्मल नहीं है, जिसका व्यवहार-उपाय निर्दोष नहीं है, वह निश्चय-उपाय में प्रवेश नहीं कर सकता। जिसके व्यवहार मूलगुण ही शुद्ध नहीं हैं, वो निश्चय में कैसे प्रवेश करेगा ? देखो भाई ! छोटा-सा व्रत ले लेना। जिस दिन व्रत लोगे उस दिन अपने भावों से मिलना, वैराग्यपूर्वक लिया है तो आपके आनंद का पार नहीं होगा, बहुत विशुद्धि होगी। हे जीव ! जिस दिन तू उस व्रत में बुद्धिपूर्वक दोष लगा लेगा उस दिन तुझे दिन-रात चैन नहीं पड़ेगा, इतनी संक्लेशता बढ़ेगी। विशुद्धि आ नहीं सकती, जब-तक प्रायश्चित्त न लेले, तब तक मुमुक्षु को चैन नहीं पड़ती। **प्रायश्चित्त का अर्थ किसी शिष्य को प्रताड़ित करना नहीं है, दंडित करना नहीं है। प्रायश्चित्त अंतरंग तप है। तप स्वेच्छा से किया जाता है, न कि दिया जाता है।** जिससे दोष हुए हैं वह स्वयं जाता है आचार्य के पास।

पापिष्ठेन दुरात्मना जड़धिया मायाविनालोभिना,
रागद्वेष मलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितं।। प्र.सू.।।

हे प्रभु! मैं पापी हूँ, दुष्ट हूँ, मलीन हूँ, ऐसी भाषा बोल रहा है। हे त्रिलोकीनाथ! आपके चरणों में अपनी विशुद्धि के लिए आया हूँ। ऐसे भावों की विशुद्धि से जब भरा होता है जीव, तब भट्टअकलंकस्वामी

'राजवार्तिक' ग्रंथ में , आचार्य पूज्यपाद स्वामी 'सर्वार्थसिद्धि' ग्रंथ में, विद्यानंद स्वामी 'श्लोकवार्तिक' में ये कथन करते हैं, **जिससे चित्त की शुद्धि हो उसका नाम है प्रायश्चित्त।** वह प्रायश्चित्त लेने आया और पचास जगह पूछता है कि इसका क्या प्रायश्चित्त होगा। प्रायश्चित्त लेने आया है चाहे आपको उपवास मिले, चाहे आपको कायोत्सर्ग मिले, स्वीकार है। एक-दूसरे के प्रायश्चित्त सुनने की चेष्टा नहीं करता, न अपने प्रायश्चित्त को दूसरे को सुनाता है। कभी भूल मत कर लेना जीवन में। मित्र ! मेरे परिणाम मेरे हैं, आपके आपके हैं। हे जीव ! दोष तेरे परिणामों ने किया है दूसरे के परिणामों ने नहीं किया। सभी श्रावक ध्यान देकर सुनना इस विषय को।

मोक्षमार्ग तन के विकलांगी को नहीं देना चाहिए, मन के विकलांगी को भी नहीं देना चाहिए। जिसका तन विकलांग है वह मुनिदीक्षा लेने का पात्र होता ही नहीं है, पर जिनके चित्त विकलांग हैं उनको भी नहीं देना चाहिए। घर में मंदबुद्धि पुरुष व्यापार नहीं कर पा रहा था। आपके घर में वह व्यक्ति होता तो घर के ही लोग परेशान होते, कोई उन्मत्त चेष्टा करता तो घर ही बदनाम होता, लेकिन मुनिसंघ में जाकर के वह कल्याण नहीं कर सकेगा पर पूरे जैनत्व को बदनाम कर देगा। उसे मुनिसंघ में मत भेजना। कोई लोभी आचार्य फँस गये और उनको भीड़ लगाने की इच्छा हो, दीक्षा दे भी देगें उसको। पर उस लोभी आचार्य की दुर्बुद्धि से पूरे जैनत्व की हँसी हो जायेगी।

माताओ ! आप लोग ध्यान दो, भैया ! ध्यान दो, व्यन्तर लगे हों, भूत लगे हों, कोई गंभीर रोग हो। जैसे बेटा-बेटी की शादी उसका वंश, उसके कुल और शरीर के बोध होने पर करते हो, ऐसे ही आपके किसी मुनिसंघ में दीक्षा के भाव हों तो अपने रोग को छिपाकर दीक्षा मत लेना। किसी को मिरगी का रोग है, आज बताया नहीं आपने और दीक्षा ले ली, कल आपको सड़क पर चलते-चलते झटके आ गये। नदी पार कर रहा था संघ, कहीं सामने अग्नि जल रही थी तुम निकले और गिर पड़े और कोई देख न पाया, उस समय दूसरा वहाँ न हुआ तब क्या होगा ? जैनत्व की हँसी होगी। ऐसे काल में श्रावकधर्म का पालन करते हुए मोक्षमार्ग की भावना भाओ।

उपेय की प्राप्ति का लक्ष्य है तो उपाय की प्राप्ति का लक्ष्य भी होना चाहिए। आगम तो कहता है कि यह सब मालूम कर लेना चाहिए आचार्य परमेष्ठी को। तब भी कोई छिपा के रखे उसका दोष। यदि दूसरे का शिष्य है, भले एक दिन रहकर आया हो उस संघ में, आप उसकी जानकारी लो, ये क्यों छोड़कर आया। रयणसार ग्रंथ में लिखा हुआ है कि जो अपने पति की नहीं हुई वो छोड़कर तुमको स्वीकार कर रही है तू पागल है। ध्यान रख, कोई और अच्छा मिलेगा वह तुझे भी छोड़कर भाग जायेगी। जो स्वयं के गुरु का नहीं हुआ वो तेरा कैसे होगा ? जैसे चोरी की वस्तु को खरीदना चोरी है, चोरी की वस्तु का प्रयोग करना चोरी है वैसे ही किसी के शिष्य को दीक्षित करना भी तस्करी है, चोरी है। यदि आपने उसको पद भी दिया है अपना बनाने के लिए, चोरी है। आपके अचौर्य महाव्रत में महादोष

लग चुका है। आपको मालूम करना चाहिए कि ये अपने पूर्व गुरु को छोड़ के क्यों आया ? उनकी अनुमति है कि नहीं।

आगम में लिखा है, मेरा शिष्य अध्ययन करना चाहता है। मेरे से पूछे और आपसे पूछे, दोनों की स्वीकृति मिलने पर फिर वहाँ जाये। यदि मूल आचार्य ने आज्ञा नहीं दी, आप भी देते हो तब भी तुम्हारी विद्या फलित नहीं है, यह श्रमणाचार है। जब व्यवहार-श्रमणाचार इतना कठिन है तो निश्चय-श्रमणाचार कितना कठिन होगा ? समयसार की भाषा में कहा – ये उपाय है। व्यवहार-उपाय इतना कठिन है तो निश्चय-उपाय कितना कठिन होगा ? यदि शास्त्री जी ! मैंने आपसे ग्रंथ लिया है और आपने कहा अध्ययन कर लो, मैं उसमें से एक-श्लोक लिखने की इच्छा रखता हूँ तो मुझे आपसे पूछना पड़ेगा, तभी लिखूँगा, क्योंकि आपने मुझे पढ़ने को दिया था, उतारने को नहीं दिया था। यदि आपसे पूछे बिना मैं उतार लेता हूँ तो हमारे अचौर्य महाव्रत में दोष लगता है। आपने ग्रंथ दिया और लम्बे समय तक रखे हूँ तो आपके मन में आ जाये क्या पता महाराज देना नहीं चाहते, तो उसको स्मरण करा देना चाहिए भाई ! आपका ग्रंथ मेरे पास है तो उसको शांति मिलती है वो वापस करेंगे।

ये श्रमणचर्या है, अपने ही कमण्डलु के पानी का उपयोग करना दूसरे के कमण्डलु का बिना पूछे उपयोग नहीं करना। अपनी ही पिच्छी का प्रयोग करना, दूसरे की पिच्छी का प्रयोग नहीं करना। नहीं तो आपकी पिच्छी आपके लिए परिग्रह हो जायेगी, ये श्रमणाचार है, व्यवहार उपाय है। पर ये सारा का सारा व्यवहार उपाय का पुरुषार्थ है, यह तभी सफल है जब परमार्थदृष्टि है अन्यथा उपाय, उपाय तक ही रह जायेगा। माँ! यहाँ बहुत सारी मातायें व्रती होंगी, व्रती बनने के भाव भी रखती होंगी। इतना ध्यान रखना, **व्रती बनने के लिए व्रती नहीं बनना, मोक्ष जाने के लिए व्रती बनना।** मात्र व्रती बनने के लिए व्रती बनोगे तो तुम व्रतों में खिंचाव रखोगे और घर में असमान्यता फैला दोगे। इससे घर की व्यवस्था भंग हो जायेगी और लोग तुम्हें देखकर क्लेश को प्राप्त होंगे। सोले का आपका नियम है आप अपना सोला कीजिए पर अपने सोले में किसी के परिणामों की असोला मत कीजिए। व्यवहारिकता का बोध भी होना चाहिए।

हम अपने कल्याण के लिए व्रती बने हैं पर से सम्मान प्राप्ति के लिए व्रती नहीं बने। दूसरा सम्मान मुझे देता है, ये बहुमान देना उसका कर्त्तव्य है पर मेरा तो आर्जव-मार्दव धर्म ही धर्म है। आपने जो स्वाध्याय किया है अपने कर्म-निर्जरा के लिए किया है। कोई आपको प्रवचन की बोले तो ठीक, नहीं बोले तो ठीक है। आपकी निधि आपसे बाहर कब जा रही है ऐसा भाव मन में आना चाहिए। मैं बुजुर्ग विद्वान् हूँ, पर बच्चों को तो गद्दी पर बैठाया जाता है मुझे कोई नहीं पूछता है। तेरा ज्ञान संक्लेशता का साधन बन गया है जब कि ज्ञान विशुद्धि का साधन होता है।

आप मुझे जमीन पर बिठाल दो, मैं बैठ जाऊँगा। आप मुझे आसन लगा दो लगा दो, कोई विकल्प नहीं है। पर मुझे मालूम है हीरा जो होता है पन्ना का वह बड़े-बड़े गड्ढों से निकलता है। कभी पन्ना जाना, देखना गड्ढे-के-गड्ढे पड़े हुए हैं। वो कभी-कभी निकालने के बाद भी नाली में गिर जाता है किसी के हाथ से, तो मखमल की डिब्बी में भी होता है। उसे तरासने पर उसकी कीमत बढ़ जाती है पर हीरा अपने आप में तटस्थ है। उसे मालूम है चाहे मैं गड्ढे में होऊँ तो हीरा, चाहे में कीचड़ में होऊँ तो हीरा। ऐसे ही सच्चे भावलिंगी योगी को चाहे तू प्रणाम करे तो तू मुनि है, चाहे कोई तेरी निंदा करे तो तू मुनि है, चाहे कोई तुझे जमीन पर पटक दे तो तू मुनि है।

जब समुद्र में फिंकने पर भी कैवल्य प्रकट हो सकता है, अग्नि में धोंकने पर केवलज्ञान प्रकट हो सकता है फिर तो ये सामान्य जमीन है। जमीन पर बैठने पर तेरा मुनिपना नहीं जाता है। तू तो 'जो है, सो है'। हाँ, यदि तू मानता है मेरे जमीन पर बैठने से मेरे मुनित्व में कमी आ रही है, आचारत्व में कमी आ रही है तो फिर तेरे में नियम से कमी है। मुमुक्षु ! जिनवाणी को मात्र पढ़ो मत, जिनवाणी में जीओ। लोक में कौन क्या वाणी के बाण फेंक रहा है, ये मत देखो, कवच लगा दो, जिनवाणी को देखो। वाणी के बाणों में तुम भिदने लग जाओगे तो आगे नहीं चल पाओगे। ये आज के लिए नहीं सुनना, ये भविष्य के लिए सुनकर रखना। समता है तो उपाय है, समता नहीं तो कोई उपाय नहीं है। कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं –

किं काहदि वणवासो कायकिलेसो विचित्त उववासो ।
अज्झयणमोणपहुदी समदारहियस्स समणस्स ।।124/नि.सा.।।

हे श्रमण ! जंगल में निवास करने से क्या ? कायक्लेश करने मात्र से क्या ? विचित्र उपवास करने से क्या ? और मौन रहने से क्या लाभ, निर्ग्रन्थ रहने से क्या लाभ ? यदि समता नहीं है तो ये तेरे कोई काम के नहीं हैं और समता है तो तेरे से बड़ा कोई महान् नहीं है। इसलिए उपशमभाव को प्राप्त करो; क्रोध, मान, माया, लोभ को छोड़ो और क्षमादिभाव को प्राप्त करो। उपाय-उपेय। उपाय-उपाय के विकल्प में कहीं उपेय को भूल मत जाना। बेटा! तू मुनि बन गया, आहार को निकला, कोई छिल गया तो उसको अलग कर दो। किसी ने पूरा चौका ही छू लिया हो तो मुस्करा के शांति से आना और मंदिर में आ के अंजलि छोड़ के बैठ जाना, कहना तेरा कोई दोष नहीं है आज ऐसा ही नियत होगा। अलाभ हो गया है और तू वहीं हूँ-हूँ करने लग गया, तो बेचारे श्रावक की हालत खराब हो जायेगी।

अहिंसा महाव्रती हो, तो किसी के द्रव्य-प्राणों की रक्षा ही नहीं पालना, भाव-प्राणों की भी रक्षा करना। पूरे कारण खोजना तभी चौके से भागना, नहीं तो तू पिच्छी लेते ही बन गया व्याघ्र , ऐसा करते हो नहीं तो मैं उठता हूँ, जैसे कोई किसी को सूई चुभो रहा हो, श्रावकों को पीड़ित करता है वो मुनि हिंसक है । अब मैं उठता हूँ, अब मैं उठता हूँ। भैया ! उठना है तो पहले ही उठ जा जिससे वो बार-बार के तनाव से मुक्त हो जाये। अरे ! उपवास ही करना था तो अच्छे से उपवास कर लेते, गुरु से ले लेते। यथार्थ

मानिए, **दीक्षा के पूर्व शिक्षा अनिवार्य है, यदि दीक्षा के पूर्व शिक्षा नहीं हो पाती है तो वे मुनि उपद्रव करते हैं। बन जाते हैं, बनके नहीं रह पाते।** परिपूर्ण शिक्षा होना चाहिए, कैसे तुमको चलना, कैसे तुमको आहार को निकलना, कैसे तुमको बोलना। ये सामान्य बालक भी अपने मित्रों से बोलता है, कैसा मीठा-मीठा बोलता है **'जिनके वचन मुखचंद्रतैं अमृत झरैं'** मिश्री फीकी पड़ जायें, अमृत फीके पड़ जाये, लेकिन दिगम्बर योगी के वचन अमृत से भी मीठे होते हैं। **'भ्रमरोग हर'** जो सारे भ्रम का निवारण करनेवाले हों, और उनके वचन एक-एक अमृतभूत हों, ऐसे निर्ग्रन्थ के वचन हैं 'भ्रमरोग हर'। 'भ्रमरोग कर' नहीं होना चाहिए। इसलिए जब भी मुनि बनो पहले पूरे भ्रम निकाल लेना। यदि तेरेअंदर ही भ्रम पड़े रहे तो जगत् का भ्रम कैसे हरेगा ? अल्पज्ञान भी श्रेष्ठ है, निर्भ्रान्त होना चाहिए, अनिश्चित नहीं होना चाहिए।

'अनिश्चितोऽपूर्वार्थः।

जो अनिश्चित होता है वह अपूर्वार्थ होता है।

'दृष्टोऽपि समारोपात्तादृक' ॥5/प.मु.सू.॥

यदि आपने जाना है देखा है फिर भी उसमें संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय है वह भी अपूर्वार्थ है।

न्याय पढ़ना नहीं है, न्याय का जीवन जीना है। यदि स्वयं के भीतर संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय है तो न स्वयं मोक्षमार्गी हो, न दूसरे के लिए मोक्षमार्ग का साधन हो। इसलिए स्वयं का ज्ञान निर्दोष हो, श्रद्धान दृढ़ हो **'प्रिय धम्मो महाधम्मो'**। श्रद्धान दृढ़ हो, धर्म में प्रीति हो, तब निर्ग्रन्थ को देखकर के निर्ग्रन्थ नहीं दिखेगा, मोक्षमार्ग दिखेगा। क्योंकि मोक्षमार्ग जो है, न नदियों में, न पर्वतों पर, न तीर्थों में, न ग्रंथों में, मोक्षमार्ग तो निर्ग्रन्थों में होता है।

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्ख मग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे॥23/सु.पा.॥

ये विशुद्धसागर नहीं बोल रहे, कुन्दकुन्दसागर बोल रहे हैं , नग्नता ही मोक्षमार्ग है। नग्नत्व दिखाई देना चाहिए बिना ओढ़े, ओढ़े मिलो तो क्या फायदा ? मेरा स्थान है, ये मेरा स्थान है, ये मेरी अमुक वस्तु है। क्या ओढ़ेभर नहीं हो ? ओढ़े सब हो। नग्नता पराधीन नहीं है, नग्नता स्वाधीन है। नग्नत्व दूसरे के लिए नहीं है, नग्नत्व स्वयं के लिए है।

शिक्षाकाल में अच्छी शिक्षा होना चाहिए फिर एकदम निर्दोष निकले श्रमण तो लोगों को लगे कि ये श्रमण जा रहे हैं। दृष्टि जिनकी नीचे है, करुणा टपक रही है, अंतरंग की दृष्टि में अनेकांत चल रहा है, वहाँ समझना मोक्ष का उपाय, ये मार्ग पर चला जा रहा है। श्रमणो ! तुम्हारे चलने, विहार-गमन को देखकर के मिथ्यादृष्टियों के भी मन में आये कि ये मोक्षमार्ग चला जा रहा है। श्रमण मोक्षमार्ग। तुम जा रहे हो, कोई दुकान पर झाँक कर देख रहे हो, बोले-क्या ? नंगेलोग चले जा रहे हैं। नहीं, चार हाथ भूमि

का अवलोकन व्यवहार से और अंतरंग में आत्म-अवलोकन कर रहे हो आप। जहाँ श्रमण चल रहा है वहाँ मार्ग में मोक्षमार्ग चला जा रहा है। ये है उपाय। सत्य मानो यदि अपन इनको नहीं सुनते तो बहुत सारे सत्य से अनभिज्ञ रहते।

1988 में कुछ ज्ञानियों ने मुझे पकड़ लिया था, भिण्ड के परेड मंदिर में। 1988 में ऐसे विकल्प उठे थे निश्चय-व्यवहार। पुलिस की छावनी बना हुआ था मंदिर। मैं भी वहीं था, प्रवचन हुए महाराज के। जैसे ही भीड़ हट गई तो मुमुक्षु भाईयों ने मुझे पकड़ लिया, बोले – भिण्ड की भाषा में-लला ! चलो आपको हम जयपुर ले चलते हैं। मैंने कहा क्यों ? बेटा ! तेरा नम्बर लगाऊँगा, मैंने कहा – क्यों ? बोले – यहाँ क्या तू महाराजों के पीछे पड़ा है, चलो विद्वान् बनायेंगे। मैंने कहा – जो है, सो है। हमें तो पक्के में महाराज ही बनना है, फिर उन लोगों ने मुझे तुरन्त छोड़ दिया, बोले – नहीं मानते तो चले जाओ।

मैं अगर उनकी बात मान लेता, तो क्षयोपशम का विषय है, विद्वान् बन भी जाते पर अंदर का भेद-विज्ञानी, आत्मज्ञानी, निर्ग्रन्थज्ञानी मैं नहीं बन पाता। जयपुर में भारिल्ल जी मिले, बोले-महाराज जी! आपका समयसार बहुत सुना। समयदेशना के पाँचवें भाग का तो उन्होंने ही विमोचन किया। यति सम्मेलन जयपुर में। आचार्यश्री से बोल रहे थे-मुझे आपके इन्हीं महाराज से तो मिलना था। मैंने कहा – ज्ञानी ! बहुत दिन के मिल चुके होते, लेकिन आज मिले वो अच्छा हुआ। निर्ग्रन्थ बनकर जो अध्यात्म की अनुभूति होती है वो कुछ अलग ही होती है, अंतर इतना है एक माँ सैकड़ों प्रसूति कराती है तब भी उसे पीड़ा नहीं होती और एक एक की प्रसूति करती है उसे सब पता चल जाता है। एक सैकड़ों प्रसूति करा रही है वह दाई है, नर्स है, धाय माँ। जो एक को जन्म दे रही है वो माँ है। ऐसे ही **ज्ञानियो! तत्त्व का शाब्दिक बोध धायमाँ के तुल्य है और तत्त्व का आत्मबोध जन्म देनेवाली माँ के तुल्य है।** जो उपाय है वह धाय माँ की क्रिया नहीं है, वह उपाय है जो जन्म देनेवाली माँ की अनुभूति है।

अपना सोच बता सकता हूँ, दुनियाँ का नहीं बता सकता। मेरा लक्ष्य, मेरे अंदर में भाव रहता है कि दिगम्बर मुनियों को तो ऐसे देखें जैसे मंदिर की प्रतिमा। बार-बार मन यही बोलता है। मंदिर में विराजी प्रतिमा कोई भी आये, कोई भी जाये, सबके लिए एकत्वभूत है। ऐसे निर्ग्रन्थ मुनि के लिए हर श्रावक कहे – मेरे महाराज, पर वे किसी को न कहें – मेरा श्रावक है। योगी के पादमूल में कोई पन्थ आम्नाय नहीं आना चाहिए। योगी के पादमूल में मात्र श्रावक शब्द आना चाहिए। श्रमण श्रमण है तब तो तुमने उपाय को चुना है। कहीं चुनते ही चुग गये तो जैसे किसान ने बीज डाला जमीन में, चिड़िया चुग गई। ऐसे ही दीक्षा लेते ही तुमने कोई पन्थ चुन लिया, तो तुम्हारा मोक्षमार्ग चुग गया। मेरे मित्र ! **'गुण संगो ही संघो'** गुणों का समूह ही संघ है। रत्नत्रय गच्छ है। ये श्रमण संघों के भेद जो हैं मानकषाय के भेद हैं, रत्नत्रय का कोई भेद नहीं है। मेरा गण, मेरा पन्थ, मेरा गच्छ, मेरी आम्नाय – ये कषायी की भाषा है। जो निष्कषायी हो जाता है वह मात्र रत्नत्रयधर्म को देखता है।

''न धर्मो धार्मिकैर्विना'' धर्मात्मा के बिना धर्म नहीं होता है। उसे मात्र धर्म देखना चाहिए। मित्र ! मूल संघ कब हुआ ? कुन्दकुन्द को मूल संघ मानते तो कुन्दकुन्द के पहले पुष्पदन्त, भूतबली स्वामी इनको क्या मानोगे आप ? इसलिए आप जैसे विद्वान् को मूल संघ का भी राग छोड़ देना चाहिए और आपका मात्र मूल संघ है तीर्थंकर अरहंत की परम्परा। वो हमारी मूल परम्परा है। आचार्यों पर जाओगे तो प्रशस्ति मैंने पढ़ी है आचार्यों की। हर आचार्यों की प्रशस्ति में अपने गण को महान घोषित किया जाता है। इसलिए मूल संघ कुन्दकुन्द आम्नाय बलात्कार गण गच्छ हम सब कुछ बोलतेहैं । पर मेरी श्रद्धा क्या है ? आगम सनातन है। मैं जब महावीर स्वामी को अपना नहीं मानता हूँ तो कुन्दकुन्द को अपना क्यों मानूँ ? विकल्पों में जीयें अज्ञानी लोग।

मैं तो उस धारा का जीव हूँ, तीर्थंकर ऋषभदेव ने जो कहा है वो ऋषभदेव का नहीं है। महावीर ने जो कहा है वो महावीर का नहीं है। उन्होंने जो सनातन तत्त्व हैं उनकी प्ररूपणा की है। आगम हमारा सनातन, ध्रुव है। इसलिए भगवन्तों की व्याख्या को वर्तमान की व्याख्या की दृष्टि से उपकारी मानता हूँ पर उपकार के राग में मैं उनको अपना नहीं मानता हूँ इसलिए न कोई नन्दीसंघ का राग है, न कोई मूल संघ का राग है, न सिंह का, न देव का। मुझे मालूम है पाँच आम्नायें प्रारंभ हुईं, अर्हंत्बली के समय में संघभेद प्रारंभ हो चुके थे। उसके पहले कोई संघभेद नहीं था। देव, सेन, नन्दि, सिंह - ये सब संघ बन चुके थे। चारों संघ की चर्या के लिए आचार्यों ने कहा था - चर्या एक ही रहेगी। अब पंचमकाल का साधु एक संघ का दूसरे संघ में नहीं रह पायेगा, देव, सेन, नन्दि, सिंह इसलिए अपने-अपने संघों की व्यवस्था देखना। व्यवस्था मात्र थी, न कि विसंवाद था। विसंवाद के लिए नहीं बनाई थी, व्यवस्था के लिए बनाई थी संघ-व्यवस्था। इसलिए ध्रुवसत्य ये है - जितनी परम्पराएँ, आम्नाय हैं वे कोई भी मोक्षमार्ग नहीं है ।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः ॥1/त. सू.॥

कहीं भी आप चिपक कर चलोगे तो वहाँ आपको छूटना पड़ेगा। ऐसी व्याख्या करो, जहाँ कोई कुछ कह ही नहीं सकता। मोक्षमार्ग न कोई गण है, न कोई गच्छ है। मोक्षमार्ग तो भेदाभेद रत्नत्रयधर्म है। कहीं साधक गण, गच्छ के अहं में डूबा रहा, मेरा संघ ज्येष्ठ, तो ज्येष्ठता के राग में श्रेष्ठता खो बैठेगा। **श्रेष्ठ मोक्ष जायेगा, ज्येष्ठ मोक्ष नहीं जायेगा।** भैया ! मोक्ष कौन जायेगा ? मोक्ष तो श्रेष्ठ का होता है, ज्येष्ठ का नहीं। हजारों वर्षों का दीक्षित बैठा रह सकता है और एक दिन का दीक्षित अन्तर्मुहूर्त में निर्वाण को प्राप्त कर लेता है। लघु बनो, प्रभु बनना है तो।

साध्य-साधन भाव । टीका देखेंगे आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी की । **'अथास्योपायोपेय-भावश्चिन्त्यते'** यहाँ अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं - उपाय-उपेय का चिन्तन करते हैं। ज्ञानी ! आत्मवस्तु ही जो मेरी है वो मात्र ज्ञानमात्र है। ज्ञानमात्र में ही उपाय-उपेयभावों का विचार करता है। उपाय का भी विचार करेगा तो ज्ञान करेगा। उपेय का भी विचार करेगा तो ज्ञान करेगा। इसलिए उसमें एक ही स्वयं

साधक-सिद्ध; उपाय साधक, उपेय सिद्ध। **रत्नत्रय उपाय है और मोक्ष उपेय है।** बार-बार चिंतन मनन करो। ध्यान में जितने बार भगवान् आयें, उतनी बार स्वयं का मोक्ष भी नजर आना चाहिए। **जिननाथ जितनी बार दिखें उतनी बार निजनाथ को भी देखो** और जिननाथ-जिननाथ की प्रतिमा का तो ढेर लगा ले, निज को नहीं देख सका तो भगवान् विराजे क्यों हैं ? कहीं मुझे सुन-सुनकर तुम भटक मत जाना। देखो भाई ! मैं स्पष्ट बोल देता हूँ पर सत्य यही है। इस सत्य से भटक गये तो भटक ही गये और अटक ही गये।

आप धर्म से तो जुड़ सकते हो पर धर्म आपसे कभी नहीं जुड़ेगा। **'वस्तुसहावो धम्मो'** मैं ही धर्म हूँ। मेरा धर्म मैं हूँ, आपका धर्म आप हैं। मेरा ज्ञान-दर्शन मेरा धर्म है। मेरा धर्म मेरे से हटेगा नहीं और मैं धर्म से हटूँगा नहीं। जिसे आप जैनधर्म बोल रहे हो उससे मैं हटूँगा नहीं। लोग कहते हैं कि मैं धर्म को पालने लगा हूँ। पुण्यरूप क्रियापक्ष को धर्म बोल रहे हो, अभेद रत्नत्रय को धर्म बोल रहे हो। तुम इतने महान् कब से हो गये कि तुम धर्म को पालने लगे। **'हे धर्म ! मां पालय'** गौतम स्वामी कह रहे हैं - हे धर्म ! मा पालय, हे धर्म ! तू मेरा पालन कर, हम धर्म को नहीं पाल सकते। हम धर्म के पलड़े में पलते हैं इसलिए वस्तुस्वभाव धर्म की दृष्टि से न हम धर्म से दूर हैं न धर्म हमसे दूर है, दोनों एक ही हैं। व्यवहारदृष्टि से जो क्रियापक्ष आदि को धर्म मानते हो, वो धर्म आपका व्यवहार से धारण किया जाता है, पालन किया जाता है, लेकिन वास्तव में उसमें आप ही पलते हो। सीप ने मोती को बनाया, कि मोती ने सीप का नाम उठाया ? सीप न होती तो मोती किसमें उत्पन्न होता, मोती न होता तो सीप को कौन सीप स्वीकारता। वही सीप सीप है जिसमें मोती होता है बाकी सीप सीप नहीं है। वही माँ संज्ञा को प्राप्त होती है जो माँ संतान को जन्म देती है, जो संतान को जन्म नहीं दे सकती वह बाँझ तो हो सकती है, माँ नहीं कहला सकती। तर्कबुद्धि सीखो, ये है न्याय। यहाँ आचार्य महाराज ने इतना कहा है साधक-सिद्ध; उपाय साधक है, उपेय सिद्ध है।

त्रैकालिक स्वचतुष्टय से युक्त आत्मद्रव्य परभूत द्रव्यों को वेदन तो करता है, परभूत द्रव्यमय नहीं होता। स्वज्ञान से परज्ञेयों का संवेदन करना - यह ज्ञानगुण का स्व-पर प्रकाशकत्व धर्म है। जो स्व को वेदन कर सकता है वह ही पर का वेदक है, जो पर का वेदक है वह स्व का भी वेदक है। उपाय को भी वेदता है, उपेय को भी वेदता है, उपाय-उपेय के अभाव को भी वेदता है, उपाय-उपेय के सद्भाव को भी वेदता है। ध्यान से समझना, रत्नत्रय उपाय है। उस उपाय का अभाव है अविरत सम्यग्दृष्टिजीव में , उपाय का भी अभाव है उपेय का भी अभाव है। उपाय उपेय नहीं होता। जब उपाय होता है तब उपेय का अभाव ही होता है- 'पुष्पवत्'। जैसे केले का फूल बहुत विशाल होता है, जैसे-जैसे छोटे-छोटे केले लगना प्रारंभ हो जाते हैं वैसे-वैसे फूल झड़ना प्रारंभ हो जाते हैं और जैसे-जैसे फल पूर्ण हो जाते हैं तो फूल गिर जाते हैं। जैसे **पुष्प पतित हो जाता है फल के आते ही, ऐसे ही फल की प्राप्ति होते ही मार्ग छूट जाता है।**

उपेय की प्राप्ति होते ही उपाय छूट जाता है, उपाय को छोड़ा नहीं जाता। उपेय के प्राप्त होने पर उपाय स्व मेव अभाव को प्राप्त हो जाता है। उपाय-उपेय दृष्टि में एक साथ रह सकते हैं, परंतु परिणति में एकसाथ नहीं होंगे।

उपेय का लक्ष्य बनाये बिना, उपाय प्रारंभ नहीं होता। उपेय पर लक्ष्य लगाये बिना उपाय प्रारंभ नहीं होता फिर भी उपाय उपाय है, उपेय उपेय है। मार्ग मार्ग है और जिसके लिए मार्ग चुना है वह स्थान नियत भिन्न है। उपाय को उपेय मत मान लेना, उपेय को उपाय मत मान लेना। मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र - ये उपायाभास हैं, विपरीत मार्ग हैं, ये उपाय नहीं हैं, उपायाभास है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र - ये उपाय हैं। व्यवहार उपाय, निश्चय उपाय। **जो जीव व्यवहार को निश्चय का साधन नहीं मानता है वह उपाय-उपेय के ज्ञान से शून्य है।**

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी आत्मख्याति टीका में कह रहे हैं- निश्चय उपेय जो है वह तो सिद्ध ही है, निश्चय से वे ही उपेय हैं। व्यवहार उपाय निश्चय उपाय का साधन है, पर निश्चय उपाय के अभाव में उपेय की प्राप्ति असंभव है। साधना के क्षेत्र में पहले यह खोजो मेरे भीतर आस्था का जन्म हो रहा कि नहीं ? स्वतः प्रवेश करो। सारे विकल्प छोड़कर सुनना, सारे विकल्पों से रहित होकर सुनना। **दूसरे के श्रद्धान के बारे में दूसरे के ज्ञान के बारे में, दूसरे के चारित्र के बारे में जितना गहरा तुम्हारा मस्तिष्क चलता है, सोच चलती है उतना गहरा स्वयं के ज्ञान-दर्शन-चारित्र में प्रवेश कर जाये तो आपको दूसरे के लिए सोचने के लिए समय ही नहीं मिलेगा।**

कैमरेवाले भैया! एक साथ एक समय में दो पुरुषों की तस्वीर आ सकती है क्या ? आगे-पीछे तो हजारों की ले सकते हो। जहाँ एक चित्र आ रहा है, इसी स्थान पर दूसरा भी बैठे, ये चेहरा भी आना चाहिए दूसरा भी आना चाहिए, नहीं आ सकता। ये तो जड़ कैमरा है, अचेतन वस्तु है इसमें एक समय में दो पर्याय नहीं झलक रही, यदि ये दूसरे का चित्र लेना चाहता है एक को हटाना पड़ता है और जो चित्र आ चुका है वह जा चुका है। ध्यान दो, मैं क्या बोल रहा हूँ जो पर्याय आ चुकी है, वह पर्याय द्वितीय समय में जा चुकी है। एक समय की पर्याय द्वितीय समय में नहीं रहती है। एक समय के परिणाम द्वितीय समय में नहीं रहते हैं। ऐसे ही यह जीव जिस समय तू दूसरे के उपाय-उपेय का चिन्तन कर रहा होता है उस समय स्वयं के उपाय-उपेय से शून्य होता है।

अपनी तस्वीर को देखने में आनंद आता है, अपने चित्र को देखने में आनंद आता है, उस समय दूसरे के चित्र को देखना पसंद नहीं करता। ऐसे ही मित्र ! स्वयं के उपाय को देख, स्वयं के उपेय को देख, पर के उपाय-उपेय में अपना समय बर्बाद क्यों कर रहा है ? इन्द्रियों का व्यापार जो भी है वह परग्राह्य है, स्वग्राह्य नहीं है। जो निज के ज्ञान को इन्द्रिय के व्यापार में लगायेगा वह पर की ओर ही प्रयोग करेगा। पुनः कहूँ, इन्द्रिय-व्यापार स्वग्राही नहीं होता है, मन 'स्व' पर होता है। मन 'स्व' पर जाता है, इन्द्रियाँ

'स्व' पर नहीं जाती हैं। वह 'पर' पर जाती हैं। मैं देखना चाहूँ दूसरे को, मैं सुनना चाहूँ दूसरे को, मैं सूँघना चाहूँ दूसरे को, स्वयं इन्द्रियाँ स्वयं की इन्द्रियों का भोग नहीं कर रहीं, मैं स्पर्श करना चाहूँ दूसरेका।

जो-जो इन्द्रियों से मोक्षमार्ग देखना चाहता है, इन्द्रियों से उपाय देखना चाहता है, इन्द्रियों से उपेय देखना चाहता है वह उपाय-उपेय को जान ही नहीं सकता। आँखों से पर का चारित्र देख सकते हो, आँखों से पर का ज्ञान देख सकते हो, आँखों से पर का श्रद्धान देख रहे हो लेकिन स्व का ज्ञान, श्रद्धान, चारित्र आँखों से नहीं देख सकते। बिल्कुल तटस्थ होकर सुनना, प्रवेश करके सुनना, उपाय-उपेय की व्याख्या। मैं स्वग्राही। जितने श्रोता हैं, लक्ष्य ले जाना, मुझे देख रहे हो, कितने एकाग्र हो मुझे देखने में, फिर भी मुझे नहीं देख पाओगे। जो मुझे देखने का प्रयास कर रहे हो आप, उसे तुम नहीं देख सकते हो। वह प्रयास आँख बंद कर निज के जानने में करो, उसे जान सकते हो।

भैया! आप मुझे देख सकते हो, जो भी मुझे देख रहे हो, असमानजातिपर्याय को देख रहे हो, तो भी आप मेरे बारे में चर्चा करते, मेरे बारे में असमानजाति की चर्चा करते हो। जो भी मेरे बारे में सुनते हो, यश-अपयश, शुभ-अशुभ जो भी सुनते हो, ये सब मेरे कर्मों के विपाक को ही सुन पाते हो। मेरे बारे में आपने आज तक सुना ही नहीं है, सुन भी नहीं पाओगे। मैं सिद्ध भी बन जाऊँगा तब भी मेरे कर्म-नोकर्म के बारे में ही चर्चा करोगे। मेरे बारे में चर्चा नहीं कर पाओगे। जो-जो हमने निहारा है, जो-जो हमने देखा है वह सब पर को देखा है। मैंने पिच्छी को देखा है, मैंने कमण्डलु को देखा है, मैंने इस दिगम्बर भेष को देखा है। भले ही मैं दिगम्बरत्व अपने भेष को ऐसे देख पा रहा हूँ, पिच्छी को अपने कमण्डलु को, जिसमें मैं 'अपने' शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ, वह विजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहारनय है। ये मेरी पिच्छी है, ये मेरा कमण्डलु है, मेरा दिगम्बर भेष है। शरीर भी अचेतन है वह भी विजातीय है। ये पिच्छी-कमण्डलु भी विजातीय है। जो-जो हम इन इन्द्रियों से देखेंगे, विजातीय को देखेंगे। किसी जीव को भी देखोगे, उपचार से वह स्वजातीय है। उसकी भी आप विजातीय पर्याय को ही देखोगे। जो इन्द्रिय से वेदन कर रही है आत्मा, वह प्रत्येक इन्द्रिय का अनुभवन विजातीय द्रव्य का ही चल रहा है, भिन्न का ही चल रहा है, पर का ही चल रहा है। इन्द्रियों में ताकत ही नहीं है जो स्व का वेदन कर सके। मृत्यु से युक्त देह भी इन्द्रियों से कभी स्व का वेदन नहीं कर सकी।

जब भी आप रत्नत्रयधर्म का वेदन करोगे, उपाय का वेदन करोगे, व्यवहार का भी वेदन करोगे, ज्ञान से करोगे। परमार्थ का भी वेदन करोगे तो ज्ञान से करोगे। वह उपाय ज्ञान ही है। ज्ञान को छोड़ के उपाय खोजोगे तो आपको कहीं दिखाई नहीं देगा। जो खोजता है वो भी ज्ञान है। आपने कहा - चलो समयसार सुनेंगे। ये निर्णय किसने लिया? आप ये कहेंगे-पिताजी ने बोला। पिताजी कहेंगे - बेटे ने बोला। ये सब मित्र! व्यवहार से आप बोल रहे हो, पर आपने जो निर्णय लिया वह निर्णय किसने लिया है ? पिता का

ज्ञान बेटे में प्रवेश नहीं किया, बेटे का ज्ञान पिता में प्रवेश नहीं किया। बेटे का ज्ञान बेटे के भीतर है और पिता का निर्णय पिता के भीतर है। इन दोनों आत्माओं ने स्वयं निर्णय लिया है।

एक साथ कई जीव मोक्ष जा रहे हैं। सम्मेदशिखर की टोंक से कितने मोक्ष गये? एक साथ कई सम्राट् दीक्षा ले रहे हैं तब भी एक-दूसरे का निर्णय एक-दूसरे का नहीं है-ये नहीं है कह सकते आप। व्यवहार बहुत स्थूल है। आप कहेंगे-उनको देखकर मैंने दीक्षा ले ली। आप कहेंगे उनको देखकर आपने शादी कर ली। आप कहेंगे - उनको देखकर मैंने पाप किया है। व्यवहार कहेगा-संगति से ऐसा पाप हो गया, पर सत्य यह है कि संगति तेरी ज्ञान की ही समीचीन-विपरीत होती है तब कुछ होता है। ये संगति है, बाजार की भीड़ का चिन्तन नहीं कर रहे आप लोग।

पारस ! आपकी शादी हुई तो आपके पिता के माध्यम से हो गई, करा दी। इतना भोला है तू? व्यवहार से कह रहा है कि -पिता ने करा दी। मित्र ! सत्य बताना, तेरा निर्णय दीक्षा लेने का हो जाता तो किसकी ताकत थी तुझे फँसाने की ? नहीं थी। जब इस घर में शादी की चर्चा प्रारंभ हो चुकी थी, तब क्या आपके कानों में भनक नहीं पड़ी थी ? पड़ी थी। भैया ! पिता को मात्र बेटे की शादी का वजन था, पर जिसकी शादी की चर्चा चल रही थी उससे पूछना, उसके ऊपर कितना वजन था ? कितनी जिम्मेदारियों का निर्णय आप ले रहे थे? फिर देखो उस युवा के साहस को। जीव को खुद के जीवन का भरोसा नहीं होता और वह युवा आज निर्णय ले रहा है कि मैं दूसरे का जीवन भी चलाऊँगा और संतान जन्म लेगी उसका भी पेट भरूँगा, ऐसा निर्णय ले रहा है। वह निर्णय कौन ले रहा है? ये कषायों से मिश्रित ज्ञान, वासनाओं से मिश्रित ज्ञान, स्वयं को वश में नहीं किये और पर के भार को ढोने के लिए तैयार हो गया।

निर्भर शब्द पर ध्यान दो। निजानंद, आनंदकंद, ज्ञानघन की अनुभूति से इतना दूर हो गया, उस परम रस के वेदन का रस लेने में आनंद नहीं आ रहा, उत्साह नहीं आ रहा,क्योंकि कषाय से भरा जीव है। पर के भार को ढोने में समर्थ हो रहा है पर निज के निर्भर आनंद पर लक्ष्य नहीं जा रहा है। बोलो, भाई ! तेरी तो अभी शादी हुई है भार बढ़ा कि नहीं ? भार बढ़ा है। निर्भर आनंद था कि नहीं ? बोलो - श्रमणो! तुमने मुनि बनके क्या किया ? उस युवा ने तो शादी करके एक संतान को जन्म दे दिया। आपने मुनि बनके क्या किया ? उसके भार का आनंद का फल उसने अपने पिता के सामने संतान खड़ी कर दी, पर हे श्रवण ! आपने निर्भर आनंद पर चलने के बाद कुछ उपस्थित किया कि नहीं ? जैसे नपुंसक पुरुष पूरा जीवन बर्बाद कर देता है लेकिन, कामपुरुषार्थ का फल संतान को खड़ा नहीं कर पाता, वैसे ही जो योगी दिगम्बर दीक्षा धारण करने के उपरांत भी स्वात्मानुभूति की अनुभूति नहीं ले पा रहा है वह उस नपुंसक पुरुष के समान है जो संतान को जन्म नहीं दे पाया। कठोर शब्द हैं, पर सत्य है।

पर संगति से न कोई बिगड़ता है, न सुधरता है। भैया ! मैं जहाँ से बोल रहा हूँ वहाँ चलो। ज्ञानी ! सोचो, लिखने के काल में सोचना नहीं होता, सोचो क्या ? परसंगति से मैं मुनि बन सकता हूँ क्या ?

परसंगति से मुनिपना छोड़ सकता हूँ क्या ? आप सोचना जरा ध्यान से, परसंगति से आप मुनि बन सकते हो क्या ? परसंगति से मुनिपना छोड़ सकते हो क्या ? बाहर के निमित्तों को आरोपित मत करना, क्योंकि उपाय-उपेय की गहरी व्याख्या चल रही है। परसंगति से जीव अपने मुनिपने को छोड़ सकता है क्या ? बोलिए। सिद्धांत ज्ञान से लगेगा, कि चेतन से लगेगा कि अचेतन से लगेगा ? अध्यात्म को छोड़कर सिद्धांत जाता कब है और सिद्धांत को छोड़कर अध्यात्म जाता कब है ?

सुनो, मैं क्या पूछ रहा हूँ, जहाँ से पूछ रहा हूँ वहाँ पहुँचकर बोलो - क्या आप विशुद्धसागर की संगति से महाराज बन गये, कि आपका निज का निर्णय था ? स्व का निर्णय स्व में ही होता है। तो जो कर्म हैं उनसे शुभ-अशुभ हो रहा है उसके बीच में निर्णय कौन ले रहा है ? आप ले रहे हैं कर्म के मध्य में होकर के। जब आप मेरे पास नहीं आये थे उसके पहले पारस आया था, ठीक है। ये शादी कराके आ गया, आप साधु बन गये। आप दोनों के बीच की व्याख्या ये है। आपका जो निर्णय था, वह आपके शरीर ने लिया है, कि आपकी इन्द्रियों ने लिया है, कि आपका निर्णय आपके ज्ञान ने लिया है ? स्वयं ने। जो स्वयं इंगित किया है वह अपनी आत्मा को, कि मान को, कि इन्द्रियों को, किसको इंगित किया है ? ज्ञान को।

एक योगी, एक भोगी दोनों ने निर्णय करके बताया है कि उपाय-उपेय जो हैं वह परगत तत्त्व नहीं हैं, ये स्वगत तत्त्व हैं। अशुभ में भी प्रवृत्ति गई है तो स्वयं के ज्ञान ने निर्णय लिया है और शुभ में प्रवृत्ति गई है तो स्वयं के ज्ञान ने निर्णय लिया है। आप इंद्रियों को दोष देकर के स्वच्छन्दी मत बनिए। ये ज्ञान जो है वो ज्ञाता से भिन्न नहीं है। ज्ञान जो है वह ज्ञाता ही है। जो ज्ञाता है वो ज्ञान है। प्रमाण प्रमाता से भिन्न नहीं है, ज्ञान ज्ञाता से भिन्न नहीं है। इसलिए जो मुमुक्षु कह देते हैं - ये तो भोग इन्द्रियों के हैं, ये भोग तो देह के हैं , ये तो भोग पराश्रित हैं। भोगों का निर्णय, भोगों की प्रवृत्ति, भोगों की निवृत्ति पराश्रित नहीं है, स्वाश्रित है । इसलिए **बंध तेरा पराश्रित नहीं है, स्वाश्रित है। मोक्ष भी पराश्रित नहीं है, स्वाश्रित है।** मैं कहूँ इसलिये सत्य नहीं है, सत्य है इसलिए कह रहा हूँ। जो ठीक है वह मैं बोल रहा हूँ। आप ये विनोद का विषय न समझें। इसे तत्त्व का गहरा निर्णय समझें। मित्र! पैनी दृष्टि में प्रवेश करो। जो भी निर्णय शुभाशुभ आप ले रहे हो वह पर संगति का नहीं है, तेरे ज्ञान की संगति है और ज्ञान की ही संगति बैठती है, पर की संगति बैठती नहीं है। अन्वय-व्यतिरेक-दृष्टि। आप लोग न्याय दीपिका पढ़ रहे हो और न्यायदीपिका पढ़नेवाला व्यक्ति निज का न्याय न कर सके तो क्या न्याय, न्याय दीपिका का ? वो तो लक्षण ग्रंथ है। लक्ष्य का प्रयोग करो, ज्ञान की संगति अन्वय-व्यतिरेक बन रही है, तथोत्पत्ति, अन्यथोत्पत्ति बन रही है । ज्ञान में विपरीत निर्णय होगा, तो ही मन, इन्द्रिय विपरीत काम करेंगे, तथोत्पत्ति। ज्ञान में विपरीत निर्णय नहीं है, यदि है तो इन्द्रिय-मन विपरीत काम कर नहीं सकता, अन्यथोपत्ति। अन्वयव्यतिरेकदृष्टि । यदि ऐसा चिन्तन चित्त का इन्द्रिय-विषय भोगों में लिप्त पुरुष भी करता है तब भी उसको अपने ज्ञान का बोध होता है, मेरा ज्ञान विपर्यास से युक्त है।

पाप भी करे तो ज्ञानी बनकर करे । ज्ञान से कर रहा हूँ तो कल उसको बदलना पड़ेगा। मैं अपने ज्ञान का उपयोग पाप में क्यों करूँ ? इस ज्ञान का उपयोग पुण्य में भी कर सकता हूँ। जब पुण्य में ज्ञान का उपयोग करेगा, निर्णय होगा। मैं पुण्य में ज्ञान का उपयोग कर सकता हूँ और मैंने अपने आपको विषयों की कलुषता से बचा के रखा है। पुण्य की धीमी अग्नि से भी मैं अपनी रक्षा कर सकता हूँ। पुण्य-पाप से रहित शुद्धोपयोग में लीन हो सकता हूँ। ये निर्विकल्पज्ञान की धारा है। ज्ञान की निर्विकल्पज्ञान की धारा है। ज्ञान सविकल्प है फिर भी मैं बोल रहा हूँ - **ज्ञान की निर्विकल्पधारा शुद्धोपयोग है । ज्ञान की निर्विकल्पधारा ही स्वसंवित्ति है। ज्ञान की निर्विकल्प धारा ही निश्चय रत्नत्रयधर्म है।** यहाँ निर्विकल्प से तात्पर्य परविषयों के विकल्पों से शून्य। आत्म चिंतन, मनन भी समाप्त हो गया, आत्मलीनता मात्र।

बौद्धों का निर्विकल्प, वो दर्शनशून्यमात्र ज्ञान को परज्ञेयों में भी निर्विकल्प देखते हैं। जो जैनियों की निर्विकल्प शुद्धात्म शुद्धोपयोग की धारा है वो परज्ञेयों की निर्विकल्प धारा नहीं है, ये स्व आत्मसंवित्ति है और जगत् के विकल्पों से शून्य है। इसलिए निर्विकल्प है। बौद्ध सारे जगत् को अभाव में देखते हैं, सारे लोक को शून्य में देखते हैं, अभावदृष्टि में देखते हैं इसलिए उनका जो ज्ञान है वह घटता ही नहीं है। हमारे यहाँ निर्विकल्प बात करेंगे तो ज्ञान सविकल्प होगा, दर्शन निर्विकल्प होगा। बौद्धों के पास दर्शन की व्याख्या नहीं है।

जो भी निर्णय हो रहा है, ये आपके ज्ञान की संगति से हो रहा है, श्रद्धान की संगति से हो रहा है, आपके निजी आचरण की संगति से हो रहा है। **पर का ज्ञान, पर का दर्शन, पर का श्रद्धान, पर का आचरण आपके लिए उपादान दृष्टि से किंचित् भी प्रभावित नहीं कर रहा। मेरे ही निर्णय ने मुझे मुनि बनाया है, मेरा ही निर्णय मुझे मुनि बनाके रख सका है।** आपका ही निर्णय आपको ब्रह्मचारी बनाके रख सका। आपका ही निर्णय आपको सुधी श्रावक बनाकर बिठाये हुए है। आपके निज का ही निर्णय उपाय पर लक्ष्य ले जायेगा, निज का निर्णय ही उपेय में भेज पायेगा।

विनयभाव, उपकार-उपकारीभाव, मित्र ! ये एक सीमा तक तो चलेगा। व्यवहार से देखो, मैं गुरु होकर बैठा हूँ तब भी मुझे डर नहीं है कि ऐसा व्याख्यान मैं करूँगा तो मेरे शिष्य मेरा अविनय करेंगे। जिसका तत्त्व का निर्णय होगा वो अविनय क्यों करेगा ? क्या स्वरूपलीनता अविनयभाव है ? मुमुक्षु जब आप स्वरूप में होंगे तब परमात्मा की विनय नहीं कर रहे होंगे, मेरी तो छोड़िए और जब आप स्वरूप में लीन नहीं हो और बाहर में बैठे हो, तो सच्चा शिष्य, सच्चा श्रावक, सच्चा योगी कभी विनय को छोड़ नहीं सकता। आप विश्वास मानो लोक में, जगत् में बहुत सारे आचार्य भगवन्तों को तत्त्व का ज्ञान है, निर्णय है पर शिष्यों के बीच में रखते नहीं, उन्हें डर लगता है कहीं मेरे शिष्य मेरा विनय न छोड़ दें, कहीं शुष्क न हो जाये, जबकि निर्ग्रन्थ मार्ग ही शुष्क होने के लिए है।क्या मतलब ? कपड़े आपने फैला के डाले इसका

मतलब क्या है ? बताना जरा। गीले थे उन्हें सुखाना है। सुखाना ही थे तो उन्हें बाल्टी में डाला ही क्यों ? मुनि तो बना ही इसलिये जाता है कि हड्डी-हड्डी दिखने लग जाये।

यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकं।
यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकं॥ 19/इष्टो.॥

हे मुमुक्षु ! **यदि जीव का उपकार चाहेगा तो देह का अपकार नियत है और देह का उपकार चाहेगा तो जीव का अपकार नियत है।** इसलिये देह तो सूखेगी। सुखाने के लिए ही मुनि बने हैं अपन। पर सुखा के मत बैठ जाना, सुखा लेना। यदि सुखा के बैठ गया और सुखा नहीं पाया तो नरक चला जायेगा। सुखा नहीं पाया और सुख गया तो कमजोर हो जायेगा और कषाय भड़केगी। ज्ञानी ! सल्लेखना का अर्थ समझो सत्लेखना, कषाय को सुखाओ, शरीर को सुखाओ, कृश करो, सल्लेखना समीचीन दृष्टि से। अब कोई कहे - ये सूख गये, कितने कमजोर हो गये। तो कहना – हे ज्ञानी ! मुझे कमजोर मत कर, मैं सुखाने आया हूँ सूखने नहीं आया हूँ, सूख जाऊँगा। क्या उपाय-उपेयदृष्टि है तुम तो बस देखते रहना।

कपड़े सुखाने के लिए ही डाले जाते हैं। आपको मालूम अधिकांशतः जैनतीर्थ पर्वतों के ऊपर होते हैं इनको पानी चाहिए ही नहीं। सुखाने के लिए वे आये हैं जो गीले रहते हैं। उनके तीर्थ अधिकतर नदियों के, तालाबों के किनारे होते हैं। ये सुखाने के लिए आये हैं इसलिए फैला दो, अपने ज्ञान का विस्तार कर दो और जो ज्ञान में काषायिकभाव की आर्द्रता है उसको सुखा दो। केवली समुद्घात करने का उद्देश्य आपको पता नहीं है क्या? इतना गहरा जिनागम का रहस्य है, केवली समुद्घात करते हैं। जब आयुकर्म की स्थिति कम बची और शेष कर्मों की स्थिति अधिक है तब शेष कर्मों की स्थिति को, आयुकर्म के बराबर करने के लिए केवली समुद्घात करते हैं। सत्य है कपड़े को पानी में ही गीला रखोगे, या गीले कपड़े को फैलाओगे नहीं तो समय लगेगा सूखने में और फैला दो तो शीघ्र सूखता है। तो उस समुद्घात का उद्देश्य है कि सारे कर्म की जो आर्द्रता थी सब सूख गई, इसलिए फैलाओ, ज्ञान को फैलाओ। रत्नत्रयधर्म जो है ज्ञान को फैलाओ, जो ज्ञान तुम्हारे अंधेरे में था, जो ज्ञान तुम्हारा अश्रद्धान में था, जो ज्ञान तुम्हारा असंयम में था, उस ज्ञान को निकाल लो, उस ज्ञान को फैला दो।

यदि मुनि बनने के बाद भी माँ दिखती रही, परिवार दिखता रहा तो डुबोकर के रख दिया है। यहाँ आकर के भी जगत् के विकल्प, किसने क्या बोला, किसने क्या कहा ? ये अज्ञानियों की दृष्टि है। मेरे पास जितना समय है वह मात्र सुखाने के लिए है और जो नहीं सुखा पाते उनके कपड़ों में दुर्गन्ध आती है, तुमको पता है। सीधे कपड़े रख देगा, बारिश का मौसम है, दुर्गन्ध आती है। ऐसे ही **जो जीव मोक्षमार्ग में लगनेके बाद भी अपने ज्ञान को विस्तरित नहीं कर पाते हैं वे मोह में ही डूबे हैं, उनके चारित्र**

में दुर्गन्ध आना प्रारंभ हो जाती है, उनकी श्रद्धा में दुर्गन्ध आना प्रारंभ हो जाती है, उनके ज्ञान में दुर्गन्ध आना प्रारंभ हो जाती है। इसलिए सुखाओ। क्या ज्ञान-ज्ञेयदृष्टि, क्या उपाय-उपेयदृष्टि।

मस्तिष्क को ठीक करो, भ्रम है भ्रम, मेरे बिना कोई जी नहीं सकता। अरे ज्ञानियो ! आयुकर्म के बिना कोई जी नहीं सकता। पागलपन छोड़ो, मेरे बिना कोई जी नहीं सकता। कितने मूढ़ प्राणी जगत् में हैं, मेरे बिना कोई जी नहीं सकता। कह देते हैं-मेरे बिना कोई जी नहीं सकता यानी तू दूसरे का आयुकर्म बन गया। कुन्दकुन्द भगवन्त कह रहे हैं कि न कोई किसी को आयु दे सकता है, न कोई किसी की आयु ले सकता है, और तू कह रहा है - मेरे बिना कोई जी नहीं सकता।

भैया से बड़ा भक्त माँ का कौन हो सकता है ? इसने कितने वर्ष माँ की सेवा की है, लेकिन वह माँ को बचा पाया क्या ? वह एक दिन मेरे पास आया, महाराज ! मैं जा रहा हूँ, मैंने कहा - क्यों ? वो माँ परेशान होगी इसलिए जा रहा हूँ। तू सेवा ही कर पाया, बचा कहाँ पाया। इस भ्रम को मस्तिष्क से निकाल दो जिनके भीतर बैठा हो कि मेरे बिना मेरे परिवार के सदस्य जियेंगे नहीं। तेरे बिना, ये तो विचित्रदशा हो गई, जो जी रहा है उसका आयुकर्म और उसमें अत्यन्ताभाव है। ज्ञानी ! जो जी रहा है उसके आयुकर्म में और उसमें अत्यन्ताभाव है फिर भी बद्धकर्म है, मान भी तो उसका है। पर तेरा कर्म तुझमें ही है उसका तो बद्ध भी नहीं है फिर भी रागी क्या बोलता है - मेरे बिना जी नहीं सकते।

आज निर्णय कर लो, तेरे बिना नहीं जी सकते कि आयुकर्म के बिना नहीं जी सकते? आयुकर्म। आज से ये पागलों की भाषा बंद कर देना कि मेरे कारण मेरा वंश जी रहा है। भैया! कितनी अज्ञानता छायी हुई है विश्व में, पर के आयुकर्म का मैं हर्त्ता बन लेता हूँ, पर ध्रुवसत्य है न कोई किसी की आयुकर्म का हर्त्ता है न कोई किसी की आयुकर्म का कर्त्ता है। **क्या शाप, क्या वरदान? पुण्य तेरा क्षीण है तो शाप भी लगेगा और पुण्य तेरा प्रबल है तो शाप क्या महाशाप बैठा दो, कुछ नहीं होगा।**

मैं एक गाँव में गया। मैंने बोल दिया - तेरे देव में ताकत है तो उड़ा दे मेरा सिंहासन। सो वह देव कहता है - महाराज ! मैं आपका कुछ नहीं कर सकता हूँ। तू सही बोल, तू देव ही नहीं है, ढोंग है। असली नहीं था। असली होता तो वह आकर नमोऽस्तु करता। असली नहीं था इसलिए तो हाथ-पैर पटक रहा था, असली होता तो जरूर कहता - स्वामी ! नमोऽस्तु! अब मैं किसी को नहीं सताऊँगा, सम्यक्त्व को प्राप्त करता हूँ। देखो डरना नहीं, निडर होकर जीओ। आपको भरोसा होना चाहिए, मृत्यु मेरी होती नहीं। जो होती है वह द्रव्यप्राण का वियोग है। मैं त्रैकालिक ध्रुव हूँ। मैं मुनि इसलिए ही बना हूँ अच्छे से मर जाऊँ। क्यों बने ? **जाग्रत जीवन में जीवन का वियोग हो जाये यही तो समाधि है। जब-तक बुद्धि काम करती रहे, इन्द्रियाँ सबल रहें, विवेक काम करे तब-तक समाधि कर लेना चाहिए।** नहीं तो घटक-चटक मोक्ष करा दो। जो विष, अस्त्र-शस्त्र आदि के माध्यम से मरण को प्राप्त हो रहा है, कषाय की तीव्रता में जहर खाता है ऐसे कषायी की सल्लेखना नहीं होती है।

आज पूर्ण निर्णय होना चाहिए कि पर संगति से तुम्हारा परिणमन नहीं हो रहा है, स्वयं की ज्ञान की संगति से हो रहा है। पर संगति तुम्हारे लिए तभी प्रभावित करती है जब तुम्हारी ज्ञान की शक्ति कमजोर हो जाती है। उपादान में कमजोरी न हो तो बहिरंग निमित्त क्या कर सकते हैं ? **उपादान में कमजोरी होती है तभी बहिरंग निमित्त प्रभावित करते हैं। यदि आप बहिरंग निमित्तों को लेकर बैठे रहोगे तो ब्रह्माण्ड में कभी भगवत्ता की सिद्धि नहीं हो सकती है। ये बहिरंग निमित्तों का विनाश तीनकाल में नहीं होता है।** उपादान की ही विशुद्धि बढ़ती है, जो-जो अर्हंत भगवन्त हुए हैं, सिद्ध हुए हैं, उपेय को प्राप्त हुए हैं इस ढाई द्वीप के अंदर ही प्राप्त हुए हैं। ढाई द्वीप में ऐसा कोई भी काल नहीं आया, जिस काल में इन्द्रियों के अट्ठाईस विषयों का नाश हो गया हो। इन्द्रियों के सत्ताईस, एक मन का। ऐसा विश्व में कौनसा मुहूर्त आया, कौनसा क्षण आया जिसमें पाँच इन्द्रिय और मन के अट्ठाईस विषयों का नाश हो गया हो।

मनोज्ञाऽमनोज्ञेन्द्रिय विषय रागद्वेष वर्जनानि पञ्च।। 7/8 त.सू.।।

इस सूत्र में राग-द्वेष के त्याग करने को कहा है कि इन्द्रियों को नाश करने को कहा है ? सूत्रों का सम्यक् अर्थ कीजिए, 'राग-द्वेष वर्जनानि पञ्च' इन पाँच से राग-द्वेष का परित्याग कीजिए। इन द्रव्यों का, विषयों का नाश नहीं होता है। लगता है व्यवहार पक्ष कितना स्थूलता में जा चुका है। वो तो निमित्तों के नाश के लिए बैठ गया। एक निश्चयाभास इतना स्थूलता में जा चुका है कि उसने निमित्तों का नाश ही कर दिया। भाई! दोनों पक्ष समझो, कभी निमित्तों का नाश नहीं होता है। जब नैमित्तिक कमजोर होते हैं तब निमित्त प्रभावित कर देते हैं। जब नैमित्तिक कमजोर नहीं होता तब बहिरंग निमित्त कमजोर नहीं कर पाते।

ज्ञानी ! तुम तीस साल के हो गये। तीस साल की भरी जवानी कहलाती है। इन्द्रियाँ सशक्त होती हैं, प्रबल निमित्त तेरे सामने होते हैं फिर भी घर में रहकर के व्रतों का सम्राट् ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा है। क्या तेरी इन्द्रियाँ नहीं हैं तेरे पास, क्या निमित्त नहीं हैं सामने ? सब कुछ होनेके बाद भी घर में रहकर के संयम का पालन कर रहा है। ये है तेरे उपादान की योग्यता। तीर्थंकर महावीर स्वामी क्या किसी गरीब के बेटे थे? नहीं, वैशाली के सम्राट्, वैशाली गणतंत्र के राजकुमार, सिद्धार्थ के पुत्र थे। कोई रोग भी नहीं था, तीर्थंकर निरोग होते हैं। कोई कुबड़े, लंगड़े, लूले भी नहीं थे। सर्वांग सुन्दर होते हैं तीर्थंकर। जिसके घर में स्वर्ग के देव सखा बनके रहते हों उसी जीव से पूछो, हे वर्द्धमान ! नाथपुत्र ! आपके पिता के यहाँ कोई अपनी बेटी नहीं देना चाहता था, इसलिए तुम दिगम्बर योगी हो गये या आप किसी चर्म की रमणी से रमण नहीं करना चाहते थे, आत्मरमणी में रमण करना चाहते थे, इसलिए योगी बन गये ?

ऐसा नहीं समझना मैं निमित्तों को नहीं मानता। मैं बराबर निमित्तों को मानता हूँ। अग्नि के पास में मक्खन को रखोगे तो पिघलेगा ही। इसलिए मुनियों को, आर्यिकाओं को विषमलिंगी से दूर रहना चाहिए। स्फटिक के सामने जपा पुष्प आते हैं तो रंग स्फटिक बदलता है। ये जपापुष्प का ही मात्र निमित्त

नहीं है उस में बदलने की भी योग्यता है, फिर भी स्फटिक जपा पुष्प नहीं हो जाता है, ये भी उसमें योग्यता है। काष्ठ के सामने जपा पुष्प अपना रंग क्यों नहीं छोड़ पाता है ? ज्ञानियो! काष्ठ कुचालक है। पर निमित्तों के लिए अपने-आपको जो त्यागी कुचालक बना लेगा वह अपने संयम की रक्षा कर लेगा। कुचालक बनाकर जीना पड़ेगा। **विषम लिंगियों से अपनी रक्षा करना पड़ेगी। परस्पर में हँसी-मजाक, खेल-तमाशे चल रहे हैं, नहीं बचा पाओगे निज के उपेय को। जो उपाय को ही नहीं बचा पायेगा, उपेय को क्या प्राप्त कर पायेगा ? इसलिए साधना का मार्ग कठोर महसूस होता है, पर आनंदमयी होता है।** आपको लगता है कि समय नहीं देता हूँ, दिन-भर पढ़ाने में लगाये रखता हूँ। ये आज आपको ऐसा लग रहा होगा पर हे श्रमण ! भविष्य में आप आनंदित होंगे, तब तुम्हें समझ में आयेगा। ये तो मन को भटकने की अवस्था थी, इसको ज्ञानांकुश में नहीं रखते तो मन-हाथी मचल जाता। ध्यान रखना, **लम्बा ध्यान नहीं कर सकते आप, लम्बी माला नहीं फेर सकते आप, लम्बे समय तक स्वाध्याय कर सकते हो। ज्ञान की संगति ही आपकी रक्षा करायेगी। पंचमकाल में जिसको अपने उपेय की रक्षा करना हो, वे ज्ञान की संगति करें, तो ध्यान की संगति मिल सकती है और जिसको ध्यान की संगति मिल गई उसे निर्वाण की संगति नियम से मिलेगी।** उपाय-उपेय उभयदृष्टियाँ, ज्ञान ही हैं परमार्थदृष्टि से।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं – **'तत्र यत्साधकं रूपं स उपायः। यत्सिद्धं रूपं स उपेयः।'** उनमें जो साधकरूप है वह उपाय है। जो सिद्धरूप है वह उपेय है। इतना बड़ा समास है। यहाँ कह रहे हैं उस आत्मा ने अनादि से मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र का आलंबन लिया इस कारण से उपाय पर ही दृष्टि नहीं थी, उपेय पर कहाँ लक्ष्य ? कठिन उपाय है। सुनिए चतुर्थ, पंचम, छठा – तीन गुणस्थान। भाई! तीन गुणस्थान, सबसे तीव्र पुरुषार्थ इन तीन पर ही करना है। और छठे गुणस्थान पर गंभीर पुरुषार्थ की जरूरत है। एक भी संज्ञा का अभाव नहीं होता यहाँ। दिगम्बर भेष तुम्हारा है, **संज्ञान को सँभाल के चलोगे तो संज्ञाओं से बच जाओगे और जो संज्ञान को नहीं सँभाल सकता है वह संज्ञाओं से नहीं बच सकता है।** सप्तम से आगे-आगे निर्विकल्प ध्यान के गुणस्थान हैं । इनमें जगत् के कोई विकल्प ही नहीं हैं। इसलिए बुद्धिपूर्वक गहरा पुरुषार्थ करना है तो हे मुनीश्वर ! यहाँ करना है, क्योंकि पन्द्रह के पन्द्रह शत्रु, प्रमाद यहाँ विद्यमान हैं। छठे गुणस्थान में पूरे-पूरे पन्द्रह प्रमाद जीवन्त हैं।

भैया ! इन युवा श्रमणों को वास्तव में सिर टेक कर नमोऽस्तु करो। धन्य है तुम्हारी धारा को, कि पन्द्रह के पन्द्रह प्रमाद होने पर भी तुम अपने आपको सँभाल के रखते हो, इसलिए आपको मेरा नमस्कार हो। मैं बलिहारी हूँ उन भावलिंगी श्रमणों के जिन्होंने पूरा श्रम मुक्तिवल्लभा के लिये लगा दिया। बेटा! इन मुनियों से कह देना मैं (आचार्यश्री) पिच्छी उठाकर आपको प्रतिनमोऽस्तु करता हूँ, उसे हीन मत कर

देना । विश्वास करो, मैं बड़ी श्रद्धा से आपको प्रतिनमोऽस्तु करता हूँ, आपके भावलिंग की वंदना करता हूँ। आपके भावों की वंदना करता हूँ। हमारे भावों की कोई वंदना करे और हमारे भाव वंदनीय न हों, तो वंदना कराने वाले को नियम से बंध होता है। अब इसे कौन टाल सकता है? भैया! बिल्कुल आगम से बोल रहा हूँ। आप जैसा कोई जीव आकर के नमोऽस्तु करे, महाराज विशुद्धसागर! नमोऽस्तु और ये कहीं परपञ्च के चिंतवन में डूबे हैं तो ज्ञानी ! विश्वास मानना, एक साधक ने, एक त्यागी ने अपने विनयभाव से, भावों की विशुद्धिपूर्वकभावों की वंदना की थी। आपके परिणाम उस समय विशुद्ध नहीं हैं और वंदना करवा रहे हो, तो तुम बंध कर रहे हो। सुनलो, सब ब्रह्मचारियो ! ये श्रावक आपको इतने अच्छे से खिलाते हैं उतने अच्छे से अपने बेटे को परोसकर नहीं खिलाते। आपको बड़ी भक्ति से परोसते हैं और आपके परिणाम किंचित् भी अशुभ चल रहे हैं, उनके भोजन का ऋण तुमको चुकाना पड़ेगा, इसलिए समाज का खाना बहुत टेढ़ी खीर है।

भैया ! तुम त्यागी की कषाय को भोजन देते हो कि उनके धर्म को? सुन तो भाई ! वह त्यागी के धर्म को भोजन देता है। जिस दृष्टि से मैं कह रहा हूँ उस दृष्टि से समझ रहा हूँ। आपने आहार भी दिया है तो मात्र रत्नत्रय की साधना, उपेय की साधना के लिए, उपेय की प्राप्ति के लिए ! श्रावक ईमानदारी से देता है। स्वामी! मैंने अपना काम कर लिया है आपको आहार देकर, आप साधना करें। दान करना, पूजा करना ये श्रावक का मुख्य धर्म है।

दाणं-पूया-मुक्खं, सावयेधम्मे ण सावया तेण विणा।
झाणाज्झयणं मुक्खं, जइधम्मं तं विणा तहा सो वि।।11/र.सा.।।

ध्यान करना – अध्ययन करना, ये यति का मुख्य धर्म है। श्रावक दान नहीं करता तो शोभा को प्राप्त नहीं होता और श्रमण ध्यान-अध्ययन नहीं करता तो शोभा को प्राप्त नहीं होता, मुमुक्षु ! अब जो है, सो है।

अनादि मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र के द्वारा जीव अपने स्वरूप से च्युत होता हुआ संसार में भ्रमण कर रहा है। ऐसे काल में इन पंक्तियों पर ध्यान करने की आवश्यकता है, निश्चय और व्यवहार दोनों आभासों को समझाने के लिए एक स्थान पर लिखा है 'सुनिश्चित' अपने आपमें अच्छी तरह से परिगृहीत व्यवहार सम्यग्दर्शन कैसा है ?अठारह दोषों से रहित देव, निर्ग्रन्थ गुरु, इन पर जो श्रद्धान है व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

हिंसा रहिए धम्मेअट्ठारह दोस वज्जिए देवे।
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं।।90/मो.पा. ।।

हिंसा से रहित धर्म, अठारह दोषों से रहित देव, निर्ग्रन्थ गुरु, जिन प्रवचन पर श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है। ऐसा व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र; जैसे पाक, रसोई। जैसी प्रचुर अग्नि

होगी वैसा प्रचुर पाक होगा। ऐसेही पाक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के बढ़ाने की प्रर्कषता क्रम से, जैसे-जैसे व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आकर्षणता बढ़ेगी वैसे-वैसे जीव निश्चयरत्नत्रय के नजदीक आयेगा। जब तुम व्यवहार में ही शिथिल हो तो निश्चय में कैसे दृढ़ हो सकते हो? गजरथ चलते देखा, हाथी का रथ, जितने में फेरी होती है उससे ज्यादा समय रथ को कसने में लग जाता है। रथ की कहीं ज्वारी ही ढीली पड़ गई तो यात्रा सब ढीली है तुम्हारी। ऐसे ही ज्ञानियो ! पहले व्यवहार रत्नत्रय को कस लो, फिर उस पर आरूढ़ हो जाओगे तब तेरी फेरी पूरी हो पायेगी।

जो क्रमशः अपने स्वरूप में आरूढ़ होता हुआ अंतर में मग्न, निश्चय रत्नत्रय में प्रवृत्त, सम्पूर्ण कर्मों के क्षय के लिए प्रज्वलित किया है जिसने परम आत्मज्ञानज्योति को, जहाँ कोई स्खलन नहीं है ऐसा विमल स्वभावभाव के द्वारा सिद्धरूप से स्वयं परिणत हुआ, वहाँ मात्र एक ज्ञान ही ऐसा है जो उपाय-उपेयभाव को साधता है। ये तो परमसत्य है आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने अध्यात्म का अमृतभर दिया टीका में, समयसार के सार को समझना है तो वास्तव में आत्मख्याति टीका है। विस्तार को समझना है तो तात्पर्यवृत्ति टीका जयसेन स्वामी की पढ़ो। निश्चय और व्यवहार ज्ञान अनन्यतम है, निष्करणरूप से ग्रहण करता हुआ, मुमुक्षु जीवों के लिए संसार का अंत होता हुआ एक ज्ञान मात्र उपाय-उपेय को सिद्ध करता है, ऐसा जीव सिद्ध पर्याय को प्राप्त करता है।

क्रमप्राप्त पर्यायदृष्टि, अक्रमप्राप्त गुणदृष्टि - ये अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं। इस प्रकार साधकभाव की सम्भावना से परम प्रकर्ष कोटि सिद्धभाव भंजन को प्राप्त होता है। परंतु जिन जीवों के नहीं है अनेकांत, जो जीव नित्य अनेकांत ज्ञानमात्र एकभावरूप भूमिका को प्राप्त नहीं होते हैं नित्य ही अज्ञानी होते हैं। ज्ञानरूपभाव का अभाव करता हुआ पररूप को देखता हुआ, जानता हुआ, अनुचरण करता हुआ, ऐसा मिथ्यादृष्टि होते हुए, मिथ्याज्ञानी, मिथ्याचारित्र से युक्त होता हुआ अत्यन्त भिन्न होता हुआ उपेय-उपाय से भ्रष्ट होते हुए वह संसार में ही भटकता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रवान ही उपाय-उपेय को जानकर उपेय को प्राप्त करता है। इस प्रकार से समझना।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।
आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।
।। भगवान् महावीर स्वामी की जय ।।

सद्बोधः सिद्धलोक

ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकम्पां भूमिं श्रयन्ति कथमप्यपनीतमोहाः ।
ते साधकत्वमधिगम्य भवन्ति सिद्धा मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमन्ति ।।266।।

शब्दार्थ : **(ये)** जो पुरुष **(कथम् अपि अपनीत-मोहाः)** किसी भी प्रकार से जिन का मोह दूर हो गया है ऐसा होता हुआ **(ज्ञानमात्र-निज-भावमयीम् अकम्पां भूमिं)** ज्ञानमात्र निज भावमय अकम्प भूमिका का **(श्रयन्ति)** आश्रय लेते हैं। **(ते साधकत्वम् अधिगम्य सिद्धा भवन्ति)** वे साधकत्व को प्राप्त करके सिद्ध हो जाते हैं **(तु)** परन्तु **(मूढाः)** जो मूढ हैं वे **(अमूम् अनुपलभ्य)** इस भूमिका को प्राप्त न करके **(परिभ्रमन्ति)** संसार में परिभ्रमण करते हैं।

भावार्थ : जोपुरुष गुरु के उपदेश से तथा स्वयमेव काललब्धि को पाकर मिथ्यात्व से रहित होते हैं वे ज्ञानमात्र अपने स्वरूप को पाकर साधक होकर सिद्ध होते हैं और जो अपने को ज्ञानमात्र नहीं पाते, वे संसार में भ्रमण करते हैं।

ज्ञाननय, क्रियानय

स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः ।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्रीपात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः ।।267।।

शब्दार्थ : **(यः)** जो पुरुष **(स्याद्वाद-कौशल-सुनिश्चल-संयमाभ्यां)** स्याद्वाद न्याय में प्रवीणता तथा निश्चल व्रतसमितिगुप्तिरूप संयम – इन दोनों के द्वारा **(इह उपयुक्तः)** अपने में उपयुक्त रहता हुआ **(अहः अहः स्वम् भावयति)** प्रतिदिन अपने को भाता है **(सः एकः)** वही एक **(पुरुषः)** पुरुष **(ज्ञान-क्रिया-नय-परस्पर-तीव्र मैत्री-पात्रीकृतः)** ज्ञाननय और क्रियानय की परस्पर तीव्र मैत्री का पात्र भूत होता हुआ **(इमाम् भूमिम् श्रयति)** इस **(ज्ञानमात्र निजभावमय)** निज भावमयी भूमिका का आश्रय करता है।

भावार्थ : जो ज्ञाननय को ही ग्रहण कर क्रियानय को छोड़ता है, वह प्रमादी स्वच्छन्द हुआ इस भूमिका को नहीं पाता और जो क्रियानय को ही ग्रहण कर ज्ञाननय को नहीं जानता वह भी शुभकर्म से संतुष्ट हुआ इस निष्कर्म भूमिका को नहीं पाता तथा जो ज्ञान पाकर निश्चय संयम को अङ्गीकार करते हैं उनके ज्ञाननय के और क्रियानय के परस्पर अत्यन्त मित्रता होती है और वे ही इस भूमिका को पाते हैं।

।।समय-देशना ।।

भव्य बन्धुओ! आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज समयसारजी में ध्रुवज्ञायकस्वभावी भगवान् आत्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। त्रैकालिक आत्मतत्त्व परतत्त्वों से भिन्न है। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी सम्प्रति इस समय ज्ञाननय और क्रियानय - इन दो नयों की व्याख्या प्रारंभ कर रहे हैं। जो-जो आदेश हैं उसमें नियम से उद्देश्य है, जिसमें उद्देश्य नहीं उसमें आदेश नहीं। समझिए, उद्देश्य के अभाव में आदेश होता ही नहीं। **सर्वज्ञ ने हमको आदेश दिया है अहिंसा, अस्तेय, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह - इन सिद्धांतों का पालन करो। ये क्रियानय हैं। इन क्रियानयों का उद्देश्य क्या है ? निज में लीन हो जाओ, स्वरूप में लीन हो जाओ, काषायिकभाव से आत्मरक्षा करो।** जैसे भोजन छोड़ा है वैसे विषय भी छोड़ो, कषाय भी छोड़ो। जैसे घर छोड़ा है ऐसे मोह को भी छोड़ो।

जो मात्र ज्ञाननय को स्वीकारता है, वह भी अज्ञानी है। **ज्ञाननय, क्रियानय – इन दोनों नयों की धारा युगपत् मस्तिष्क में होनी चाहिए। शरीर को तोड़ने के लिए तपस्या नहीं है, कषायों को तोड़ने के लिए तपस्या है।** शरीर को सुखाने के लिए तपस्या नहीं है, कषायों को सुखाने के लिए तपस्या है। **घर छोड़ने के लिए घर का त्याग नहीं है, मोह को छोड़ने के लिए घर का त्याग है।** भूखे मरने के लिए आहार का त्याग नहीं किया आपने, हे योगी ! विषयकषाय के आहार से दूर होने के लिए आहार का त्याग किया है। बहिरंगतप तपने के लिए तपस्या नहीं की आपने, अंतरंग तप की प्राप्ति के लिए आपने तपस्या की है। अंतरंग तप में प्रवेश मेरा हो रहा है या नहीं? हो रहा। ये मेरे से मत पूछना, मित्रों से मत पूछना। अपने भावों से पूछना, मेरी लोभकषाय कितनी मंद है, मानकषाय कितनी मंद हुई है, मेरी मायाकषाय कितनी मंद हुई है, क्रोधकषाय कितनी मेरे से दूर हुई है। साधना का जो मार्ग है वह साधना के लिए नहीं है, **साधना का जो मार्ग है वह आत्माराधना के लिए है। साधना का जो मार्ग है वह साध्य की सिद्धि के लिए है,** मात्र साधना में लीन होने के लिए नहीं है। साधना में लीन होने के लिए साधना नहीं है, आत्मा में लीन होने के लिए साधना है। **साधना में उतरते-उतरते कषाय विलीन होना चाहिए। ये साध्यदृष्टि है।** साधना करते-करते कषाय बढ़ सकती है, विचार करना। जिसने साधना को पकड़ा है साध्य को नहीं जाना, वो साधना में न्यूनता आने पर साधना के लिए कषाय करने लग गया। **समता की रक्षा करते हुए आगे बढ़ना चाहिए है।** किसान पानी को खेत में ले जाने के लिए नाली बनाता है, नहर से नाली, नाली से और नाली प्रतिक्षण, प्रतिपल – जब खेत में पानी देता है अपने कंधे पर फावड़ा लेकर घूमता रहता है, बह रहा है पानी, सँभाल रहा है नाली को। नाली सँभालना उद्देश्य नहीं है। छात्रो! किसान का उद्देश्य नाली सँभालना नहीं है, खेत में पानी ले जाना है। नाली सँभाल के नहीं रखेंगे तो पानी पहुँच नहीं पायेगा।

मुमुक्षु! जीव साधना के लिए साधना नहीं करता, आत्मसिद्धि के लिए साधना करता है, पर साधना नहीं सँभालेगा तो आत्मसिद्धि हो नहीं सकती। **लक्ष्य आत्मसिद्धि है।** जैनदीक्षा लेने का उद्देश्य, लक्ष्य आत्मसिद्धि है, आत्मसिद्धि ही है कोई दूसरी सिद्धि नहीं है। क्रियाधारा में प्रवेश ज्ञानधारा के लिए है, क्रियानय का उद्देश्य ज्ञाननय के लिये है। अब देखना वेदांत में और जैन अध्यात्म में, जहाँ हम ज्ञाननय की व्याख्या कर रहे हैं, क्रियानय की व्याख्या कर रहे हैं; वेदांत में ज्ञानकाण्ड, क्रियाकाण्ड। किसी के जेब में सिक्का है क्या ? आप लेकर खड़े हो जाओ, सभी को दिखाओ। भाई! इसके हाथ में सिक्का है। मित्र! इसमें चित कहाँ है, पट कहाँ है ? चित के स्थान का लोप कर दिया जाये, पट का स्थान सुरक्षित रहेगा क्या ? पट के भाग को नष्ट कर दिया फिर चित का अस्तित्त्व बचेगा क्या ? इसके हाथ में सिक्का है, इस सिक्के का एक भाग होगा, तो दूसरा भाग भी होगा। एक तरफ का लोप करोगे तो दूसरे तरफ का लोप स्वयमेव हो जाएगा। दीवाल का यह भाग, दीवाल का वह भाग, दीवाल किस भाग में है ? पर अज्ञानियों की भीड़ देखो, दीवाल के एक भाग को देखकर कह रहा है मेरी दीवाल ऐसी है, दूसरी ओर देख रहा है, वह कहता है मेरी दीवाल ऐसी है। दोनों में से किसी भी हिस्से की तरफ तोड़ा जाये, दीवाल बचेगी क्या ?

हे ज्ञानियो! ज्ञाननय, क्रियानय – ये दोनों नय एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं। ये चित और पट जैसे आप अलग कह रहे हो, वैसे ही दीवाल का यह भाग, दीवाल का वह भाग। **ज्ञाननय जो है वह साध्यभूत है, क्रियानय साधनभूत है।** दोनों नय वस्तुस्वरूप की व्याख्या करने वाले हैं, एक नय का भी अभाव कर दोगे तो दोनों नयों का अभाव हो जायेगा। जब दोनों नयों का अभाव हो जायेगा; अवस्तु, फिर व्याख्या किसके लिए ? नय वस्तु नहीं है, बिना वस्तु के नय नहीं है। भैया! ऐसा नहीं लग रहा कि ये प्रवचन भवन है ? लगता है कोई न्यायालय है। जैसे सिक्के में दो पहलू हैं वैसे ही दो नय, एक दीवाल के दो पहलू हैं। दो नय, एक सिक्के के दो पहलू हैं। एक भी तरफ का अभाव करोगे तो दीवाल व सिक्के का नाश हो जायेगा। ऐसे ही **जो निश्चयनय का लोप करता है वह तत्त्व का नाश करता है। जो व्यवहारनय का लोप करता है तत्त्व प्राप्ति के उपाय का नाश करता है। एक तत्त्व का शत्रु है, एक धर्मतीर्थ का शत्रु है।** एक निश्चयतीर्थ का शत्रु है एक व्यवहारतीर्थ का शत्रु है। इसलिए जो मध्यस्थ जीव है, वस्तुस्वरूप को जानता है वह इन सारे विकल्पों में तटस्थ हो जाता है।

भारतीय मुद्रा है। वह निर्यात-आयात का साधन है, फिर भी साध्य नहीं है। मुमुक्षु! इसके हाथ में सिक्का है, इसे खायेगा तो बचेगा नहीं और ये हाथ में नहीं होगा तो खाने को मिलेगा नहीं। ऐसे-ही मुमुक्षु! निश्चयनय, व्यवहारनय धर्म है - ये दोनों सिक्के के समान हैं; **न निश्चयनय धर्म है, न व्यवहारनय धर्म है - ये धर्म को समझने के लिए साधन हैं।** निश्चय रत्नत्रय धर्म है, व्यवहाररत्नत्रय धर्म है। इन दोनों धर्मों को समझने के लिए निश्चय-व्यवहार धर्म है।

क्रियानय, ज्ञाननय। सुन्दर शब्दों का प्रयोग करते हैं आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी। चाहे दाहिनी भुजा हो, चाहे बायीं भुजा हो, हे पुरुष! भुजा तेरी है। चाहे निश्चयनय हो, चाहे व्यवहारनय हो, हे पुरुष! वक्ष तेरा है। दाहिनी भुजा को निकाल देगा तो भुजाविहीन तू ही होगा। बायीं भुजा को निकाल देगा तो भुजाविहीन तू ही होगा और कोई दूसरा नहीं होगा। ऐसे ही निश्चय-व्यवहार भेदवृत्ति-अभेदवृत्ति की व्याख्या करनेवाले नय हैं। हे पुरुष! पुरुषार्थ को सिद्ध करने के ये उपाय हैं, लेकिन इन दोनों से पृथक् हो जायेगा तो जैनदर्शन की कला से शून्य हो जायेगा, अज्ञानियों की दृष्टि जैसे।

आप विश्वास रखो, कई लोग ऐसे मिल जायेंगे, दाहिनी दीवाल को एक पूज रहा है, बायीं दीवाल को एक पूज रहा है। भारत में ऐसे कई स्थान हैं, अलग-अलग पुजारी पूज रहे हैं पर दीवाल कह रही है, मैं तो जो हूँ, सो हूँ। आप अज्ञानी हो कि आप निज के राग में अपने भगवान को भूल रहे हो। एक मेरे राग से भूल रहा है भगवान् को, एक मेरे द्वेष में भूल रहा है भगवान् को और जिसने सत्य को समझ लिया है वह क्या कहता है ? दीवाल संज्ञा है; ईटों, बालू, सीमेण्ट, पानी के संयोग से जब चिपक गया है तो दीवाल संज्ञा हो गई। कभी बिखर जाये तो मलबा संज्ञा हो जायेगी। वस्तु जो है सो है।

अखण्ड आकाश को देखने की आँख सबके पास नहीं है। ये भवन दिख रहा है आपको? मित्र! इस भवन की सम्पूर्ण दीवालें समाप्त हो जायें, छत भी निकल जाये फिर आपको क्या दिखेगा ? यह भवन आकाश में बना है कि भवन में आकाश है ? आकाश में भवन नहीं बना। जरा विवेक से आगम से बोलना, आकाश में भवन बना है। ये दीवालें हट जायें, छत हट जाये, तो जैसा था आकाश, वैसा रहेगा आकाश। न बना आकाश है, न मिटा आकाश है। बनी दीवालें हैं, मिटी दीवालें हैं। ज्ञानियो! मिटती कषाय है, बनती कषायें हैं । भगवानात्मा तो जो है सो है। खुला आकाश है।

ये भारतभूमि कितने सम्प्रदाय में विभाजित हो चुकी है। ये सब कषायियों के द्वारा निर्मित सम्प्रदाय हैं। **जो-जो सम्प्रदाय बनते हैं उसे कषायी लोग बनाते हैं। कषायी का तात्पर्य जो कषाय से युक्त है। जिसकी मानकषाय तीव्र होती है वह एक अपने नाम का सम्प्रदाय खड़ा कर देता है, पर जिसकी कषायों की दीवाल हट जाती है वह खुले आकाश में बहुमान को प्राप्त होता है।** इस सत्य को आप टाल नहीं सकते हो, इस सत्य को आप भुला नहीं सकते हो। जितने लोगों ने अपने को सम्प्रदाय में बाँध कर रखा है उतने लोगों ने दुःखमय जीवन जिया है। जिस दिन हम इस सत्य को समझ लेंगे, सम्प्रदायों से अतिक्रांत होकर के मात्र सत्य को देखेंगे। मात्र आकाश है। फिर कोई भवन नहीं मिलेंगे। ये भवन नष्ट हो जायेगा और खुले असंख्यातप्रदेशी आकाश में हम अविराम विचरण करेंगे। लोकाकाश की दृष्टि से मेरी असंख्यातप्रदेशी आत्मा सिद्धालय में विराजमान होगी। अमूर्त आत्मा अमूर्त आकाश में विराजमान होगी। जब-तक अमूर्त आकाश में अमूर्त होकर नहीं बैठ सकते हो, तब-तक चार दीवालों के राग में लिप्त रहोगे, तब-तक तुम देह के भवन में ही बैठे मिलोगे।

ज्ञानियो! जब-तक तुम राग-द्वेष की दीवालों से मुक्त नहीं हो, तब-तक देह के भवन में ही विराजित मिलोगे। जब राग-द्वेष की दीवाल हट जायेगी तब अखण्ड आकाश में अनंत सिद्धों में आप मुझे मिलोगे। पंडितजी ! व्याख्यान का विषय आपका अलग हो सकता है, अभी आपको मोक्ष से प्रीति नहीं है। जिस दिन प्रीति हो जाती है उस दिन आत्मकल्याण के लिए दौड़ जाता है जैसे मालूम चल जाये ससुराल में शादी है तो सारे काम छोड़कर तुम दौड़ कर जाते हो और कहते हो कि यदि नहीं जाऊँगा तो रिश्ते का क्या होगा ? मेरे मित्र! जब तू ससुराल में शादी होने पर पहुँचता है और कहता है कि मेरे रिश्ते का क्या होगा ? हे ज्ञानी ! ऐसे तू अपने आत्मकल्याण के लिए दौड़ा क्या ? निजरमणी के रिश्ते का क्या होगा ? **जो-जो जीव मोक्षमार्ग के भेष को भी प्राप्त हो चुके हैं , संयमी के भेष को भी प्राप्त हो चुके हैं , फिर भी पक्षों में राग है, पन्थों में राग है उन्हें मोक्ष से किंचित् भी अनुराग नहीं है।**

घर जाकर चिन्तन करना। जिन जीवों को सम्प्रदाय में राग है, पंथों में राग है, पक्षों में राग है इन लोगों को धर्म से किंचित्मात्र भी अनुराग नहीं है। पूरे जीवन के आयुकर्म के निषेक, वीर्यान्तरायकर्म का क्षयोपशम,मतिश्रुतज्ञान का प्रयोग कर रहा है सम्प्रदाय के राग में। ये जीव अपने पक्ष में प्रयोग कर रहा है, आत्मपक्ष में नहीं, इसे स्वीकारिये। जिस दिन स्वधर्म में लक्ष्य जायेगा उस दिन आपको जगत् के धर्मों के नाम याद नहीं रहेंगे, उस दिन आपको ज्ञानदर्शन का ही नाममात्र याद रहेगा। ये व्याख्या आपको सुनने में कठिन लग रही है, परन्तु मधुर है। पर मित्र! विश्वास रखना जिसे आप सुन रहे हो उसे जब-तक ऐसा नहीं जी पाओगे, तब-तक धर्म का नाम लेते रहोगे, धर्म में नहीं पहुँच पाओगे, क्योंकि आपने धर्म को धर्म ही नहीं माना। अभी आपको यहाँ धर्म की व्याख्या करना है **'वत्थु सहावो धम्मो'** के पास पहुँचिये। और 'वत्थु सहावो धम्मो' के पास जब आप पहुँचेंगे, फिर ज्ञानी! न मैं जैन बचूँगा, न ब्राह्मण बचूँगा, न मैं क्षत्रिय बचूँगा। ये देह, समाज, लोकजन्य व्यवस्था है, मेरी आत्मा की व्यवस्था नहीं है।

जब मैं 'वत्थु सहावो धम्मो' की व्याख्या करूँगा, तब मुझे मात्र आत्मा वस्तु दिखेगी, ज्ञान-दर्शन उसका धर्म दिखेगा। अब यहाँ मेरे से कहो, महाराज! आपकी इस व्याख्या से लोकव्यवस्था का क्या होगा ? ये व्याख्यान आत्मलोक की व्यवस्था का चल रहा है, ये लोकोत्तराचार की व्यवस्था है। आपसे ही मेरा कहना है कि आपकी ही चर्चा चलती रहे, आपका ही उपदेश चलता रहे तो हमारी अध्यात्मविद्या का क्या होगा? आपको मेरी बात सुनकर लोक की चिंता सताने लगती है। सोलापुर में बहुत मुमुक्षु ज्ञानी लोग हैं। मैंने एक दिन व्यवहार का प्रवचन किया, जब नय से प्रवचन किया, तो कुछ ज्ञानी आ गये, महाराज! कुछ आत्मा की बात बताओ। मैंने व्यवहार का प्रवचन जानकर किया था कि लोगों की जिज्ञासाएँ तो आने दो। पंडित जी आये, बोले-आप आत्मा के बारे में कुछ कहो, मैंने तटस्थ होकर सुन लिया।

तीन दिन बाद मैंने आत्मा की व्याख्या की। आप आश्चर्य करोगे, पंडितजी हाथ जोड़कर कहने लगे कि स्वामी! स्वामी! ये बताओ फिर मेरे व्यवहार का क्या होगा ? मैंने कहा - ज्ञानी! तेरे व्यवहार में ही लिप्त रहूँगा तो मेरे निश्चय का क्या होगा ? आप पूर्व में तो ये कह रहे थे कि परमार्थ की व्याख्या करो। फिर प्रवचनसार जी पर व्याख्यान प्रारंभ हुआ। जब प्रवचनसार जी पर व्याख्यान हुआ तो बोले - मुझे नहीं था मालूम कि दिगम्बर मुनि भी तत्त्व का व्याख्यान करना जानते हैं।

विदिशा में प्रवचनसार की अस्सीवीं गाथा पर मैंने प्रवचन किया। विदिशा की विदुषी महिलायें प्रवचन के बाद आकर नमोऽस्तु करके बोलीं – महाराज ! क्षमा करोगे क्या ? मैंने कहा - आपने ऐसा अपराध ही नहीं किया जिसकी आप क्षमा माँग रहे हो। बोली - अपराध किया नहीं है पर करने जा रही हूँ। मैंने कहा - बड़ी ज्ञानी है ! मैंने कहा - क्या करना है ? बोली - ये बताओ, आप मुनि होकर ग्रंथों पर प्रवचन कब से करने लगे? इसका तात्पर्य क्या था ? ग्रन्थों पर प्रवचन करना मुनिसमाज पर कलंक है। जो माँ ये बोल रही है कि ग्रंथों पर प्रवचन कब से करने लगे? इसका तात्पर्य कि लोगों की मानसिकता क्या थी, महाराज ग्रंथों पर प्रवचन नहीं करते, यहाँ-वहाँ की बोलकर चले जाते हैं।

निर्ग्रन्थ मुनि ही ग्रंथ है। उसके प्रवचन सुनने का तरीका तो सीखो। जिसने वचन का विसर्जन कर दिया है, मौन लिए बैठा है, आपको सुनना है तो सुन लो, **व्यर्थ में मत बोलो, व्यर्थ में मत चलो, व्यर्थ में मत देखो, व्यर्थ का मत सुनो, यही तो प्रवचन है। अनर्थदण्ड मत करो, असमितियों में मत जाओ, अगुप्तियों में मत जाओ, अधर्म में मत जाओ।** जो तुम सुनोगे वे वो कर रहे हैं, सुन लो। कानों से सुनते-सुनते अनंत भव व्यतीत कर लिए, एक बार आँखों से सुन लो। हे श्रमण! ध्रुवसत्य है, मैं आज तक मुख के प्रवचनों से प्रभावित नहीं हुआ। मैं तो सबसे पहले उनकी आँखों के प्रवचन से प्रभावित हुआ। विद्वानों के कानों के प्रवचन से प्रभावित होते हैं।

जब दिगम्बर योगी चर्या को निकलते हैं ईर्या समिति का पालन करते हुए, एषणा समिति के लिए जा रहे होते हैं, सुकुल घर में नीचे की दृष्टि करके सहजभाव से मधुकर-वृत्ति से। **जैसे भौंरा पुष्प से पराग तो लेता है पर पुष्प में छेद नहीं करता, ऐसे ही जैन योगी मधुकर-वृत्ति से युक्त होकर गृहस्थ के घर में पराग (आहार) लेकर तो आता है, पर गृहस्थ को सता के नहीं आता,** यही निर्ग्रन्थ का तत्त्वोपदेश है। जब आये तब भी भार न हो श्रावक पर, जब चला जाये तब भी भार न हो श्रावक पर। ऐसी चर्या का निर्वाह कर सको, तो तुम सब आश्रम छोड़कर मेरे आश्रम आ जाना और ऐसी चर्या का निर्वाह कर सको, तो आगम का अध्ययन करो।

वस्तुस्वभाव समझो, वाणी का उपदेश कानों तक गूँजता है पर चर्या का उपदेश अन्तःकरण में प्रवेश करता है। वाणी का उपदेश मात्र यश दिलाता है पर चर्या का उपदेश पूज्यता दिलाता है। वाणी, चर्या और श्रद्धा – ये तीनों का उपदेश हो, तो मोक्ष दिलाता है। क्या

चाहिए आपको? यदि मोक्ष चाहिए है तो फिर तीनों में आना पड़ेगा। सुबह से शाम कितने ज्ञानी आते हैं यहाँ पर एक ही बात बोलकर जाते हैं, महाराज! मैं समयसार सुनने आया हूँ। एक आया दिल्ली से, कह रहा था - मैं पारस चैनल पर सुन रहा था, मन माना ही नहीं, मुझे यहाँ आना पड़ा आपके दर्शन करने, सुनने। ज्ञाननय, क्रियानय। ये ध्रुवसत्य है भगवान् अमृतचन्द्र स्वामी ने आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार को लिखने के हजार वर्ष बाद उसे देखा। एक हजार वर्ष निकल गये किसी ने निहारा नहीं। एक हजार वर्ष व्यतीत होने के बाद भगवत् अमृतचन्द्र स्वामी ने अशरीरी भगवानात्मा का व्याख्यान करने वाले ग्रन्थराज को देखा। उन्होंने टीका नहीं कलश रख दिया । आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथ पर आचार्य अमृतचन्द्र यदि टीका न लिखते तो इतना प्रसिद्ध होना बड़ा कठिन था। दो सूत्र आगम में वर्णित हैं - एक ग्रंथसूत्र होता है, एक व्याख्यासूत्र है। कुन्दकुन्द का ग्रंथसूत्र है, अमृतचन्द्र का व्याख्यासूत्र है। ये कई भवों की श्रुत की साधना होती है।

छात्रो ! श्रुत-तपस्या का समय चल रहा है तुम्हारा। मैं विषय छुपाता नहीं। मैं सब बता दूँगा तो सब बच्चे पंडित बन जायेंगे पर मैं इसलिए कह देता हूँ कि सब तुम सीख लो, महाराज बन जाओ। क्या है वचनों की सिद्धि? एक-एक शब्द आपके मुख से मंत्र होकर उद्घाटित होने लग जायें, ये तभी संभव है जब आपने श्रुत-तपस्या की है। श्रुत-तपस्या का तात्पर्य - एक गृहस्थ भी पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करे, शुद्ध कठोर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, श्रुत की आराधना करता है मौन होकर के, उसके सामने शब्दों को आना पड़ता है। सिद्धि के लिए, मौन साधना करना पड़ती है। फिर कहने के लिए मन नहीं बनायेंगे, शब्द आकर कहेंगे कह दो। उस जीव की वाणी मनोहर हो जाती है, शास्त्रों के संदर्भों से फलित हो जाती है, जो जीव निर्मल उज्ज्वल मौन व्रत का पालन करता है। जिनको समाज में, देश में, घर में, राष्ट्र में अपना सम्मान सुरक्षित रखना हो, वे कम बोलना सीख लें। **जिनको जिनवाणी को सिद्ध करना हो, वे मौन लेना सीख लें, वृद्धावस्था में नाती-पोतों की डाँट नहीं खाना हो, तो मौन रहना प्रारंभ कर दो।** दुःख का कारण क्या है ? पचता नहीं है, बकता ज्यादा है।

व्यवहार से बोल रहा हूँ, जब गुरु के द्वारा शिक्षा दी जाती है तब कितने छात्र सोचते हैं कि देश का कोई नेता ऊपर चला जाये तो छुट्टी मिल जायेगी। अरे भाई! याद करो अपनी, उस गुरु को जो अच्छे से पढ़ाता था, विषय को तैयार कराता था और विषय तैयार न हो पाये तो वे छात्र गुरु के बारे में ही अन्यथा सोच लेते थे। पर मित्र ! गुरु के द्वारा किया गया कठोर व्यवहार से तुम्हारी विद्या सिद्ध हो जाती है और विद्वानों के बीच में हजारों के बीच में जब तुम अकेले दिखते हो तब समझ में आता है कि गुरु की विद्या की क्या महिमा थी ?

ज्ञानियो! जब सब सोते हैं तब छात्र को उठकर बैठना पड़ता है। आचार्य विरागसागर महाराज रात्रि के तीन बजे मुझे उठाकर बिठा देते थे, वे संस्कार और मैं समझता हूँ कितनी प्रीतिपूर्वक उन्होंने विद्या दी

है। उनको देने की प्रीति थी, हमें लेने की प्रीति थी। बहुत प्रीति से विद्या दी, मानना पड़ेगा। मैं वह दिन देखता हूँ, उन्नीस सौ नब्बे में मैं 'रत्नकरण्डकश्रावकाचार' पढ़ता था। **प्रमादी को विद्या कहाँ? विद्वान् बनने के लिए प्रमाद कहाँ ?** जब क्षायोपशमिकज्ञान प्रमाद में नहीं आ सकता, तब क्षायिकज्ञान प्रमाद में कहाँ आयेगा ?

भोपाल में एक तरफ व्यवहारपक्ष के विद्वान्, एक ओर निश्चयपक्ष के विद्वान् बैठते थे। पंडितजी को एक दिन क्या हो गया, वो कहते हैं कि - महाराज जी! आप तो अपने जैसे पाँच महाराज बना लो, बोले- मेरे एकान्त का तो पता ही नहीं चलेगा। मैंने कहा - आप बोल रहे हो ? पंडित जी बोले - महाराज! मैं सत्य को सत्य कहना जानता हूँ। ये मैं जानकर इसलिए बोल रहा हूँ कि ये सब महाराजों को, ब्रह्मचारियों को सुनाई पड़ जाये कि **हमारे देश की दृष्टि तुम्हारे ऊपर है। भारत की भूमि पर अखण्ड श्रुत की धारा वाले तुम सब बनो। जहाँ से पानी बहकर निकल जाता है वहाँ पर प्राणी-प्राणी शीतलता महसूस करता है और जहाँ से जिनवाणी का लाल निकल जाये, वहाँ पर विश्वशान्ति की अनुभूति हो ऐसी श्रुत की आराधना करो।** भैया! जितना पुरुषार्थ इस श्रुत की आराधना में लग सकता है, लगा देना।

आज भी हमारे पास इतना आगम है कि पूरे जीवनभर भी पढ़ोगे तो नहीं पढ़ पाओगे। अक्षरमात्र नहीं गिनना, तत्त्व को समझते हुए पढ़ना होगा। यहाँ जितने युवा हैं, भाई! सुन लो, जरूरी नहीं है पंडित जी की उम्र में ज्ञान प्राप्त करोगे। अरे! वे भी तो कभी युवा थे, अध्ययन का मन किया तभी विद्या प्राप्त कर ली। पंडित जी ! भूल मत कर देना, समाज को बताना इस बात को कि 'पंडित' शब्द नाम के आगे लगना ही पूर्व की तपस्या का फल होता है। हर व्यक्ति के नाम के आगे पंडित शब्द नहीं लग सकता। ज्ञानी! तेरे को पंडित शब्द लग भी जाये, पर पंडितमरण होनेवाला जो पंडित शब्द है वो मात्र वीतरागी दिगम्बर मुनि में ही लगता है।

हे भगवान्! पंडित शब्द लगकर मेरा मरण हो जाये। ध्रुवसत्य है कि पंडित-पंडित मरण होगा तो नियम से निर्वाण होगा। इस जीव ने बाल-बाल मरण अनंत बार किये हैं । बालमरण किया, बालपंडित मरण भी कर लेता तो बहुत अच्छा होता, फिर पंडित मरण हो जाये। जिस जीव ने एक बार बालपंडित मरण भी कर लिया उसको भी ज्यादा भव नहीं लगते और जो जीव एक बार दिगम्बर मुनि भावलिंगी बन गया, बत्तीस भव से ज्यादा संसार में रुक नहीं सकता। बत्तीस भव से आगे कोई मुनि नहीं बन सकता, जो यह लिखा है-

मुनिव्रतधार अनंतबार, ग्रीवक उपजायौ।
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ ।।4/5, छ.ढा.।।

आप कह रहे हो बत्तीस बार से ज्यादा मुनि नहीं बन सकता। पर दौलतराम जी ने कहा है 'मुनिव्रत धार अनंतबार' तो ये दोनों बातें संगत कैसे बैठेंगी? दोनों में संगत कौन है ? दोनों सत्य हैं, कैसे ? यह

नियम है - एक बार भावलिंगी श्रमण बन गया तो बत्तीस भव से ज्यादा मुनि नहीं बन सकता, नियम से मोक्ष होता है। फिर आप समझे नहीं, आपकी गलती है। पं. दौलतराम जी ने यह कहाँ लिखा है 'मुनि बन अनंत बार, उन्होंने यह लिखा 'मुनिव्रत धार', मुनि बने बिना जो मुनि बन गये, मात्र द्रव्यव्रतों का पालन किया है ऐसा अभव्य जीव अनंतबार मुनिव्रत धार सकता है, लेकिन भव्यजीव एक बार भावलिंगी मुनि बन गया, वो बत्तीस के आगे जा नहीं सकता है।

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसय सहस्स कोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि उस्सासमेत्तेण।।238/प्र.सा.।।

जितने कर्मों की क्षपणा अज्ञानी जीव हजार करोड़ वर्ष में कर पायेगा, एक ज्ञानी जीव, कौन ज्ञानी? जो तीन गुप्तियों से गुप्त है, ऐसा भावलिंगी अभेद रत्नत्रय से मण्डित तत्त्वज्ञ ज्ञानी, एक श्वासमात्र में उतने कर्मों की निर्जरा कर लेता है। क्यों छहढाला इतनी प्रसिद्ध हो गई? मूल गाथाओं का पद्यानुवाद किया है दौलतराम जी ने।

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान-बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन माहिं, त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते।।

यहाँ ग्रन्थों के ज्ञानी की व्याख्या नहीं है, यहाँ त्रिगुप्ति ज्ञानी की व्याख्या है। साधु को जीने ही न दे इसलिए ज्ञान बाद में पहले, 'जीयो और जीने दो' सीखना। दुनियाँ को सिखाओ जीयो और जीने दो और तुम आपस में ही नहीं जीने दो। तो भाई! साधु बाद में बनना, ज्ञानी बाद में बनना, पहले यह सीख लेना, जीयो और जीने दो, नहीं तो जीने ही न दो। भैया! तुम्हारे नहीं जीने देने से क्या होता है? मेरा नाश, मेरा अभाव? जीते रहना मेरा निजस्वभाव भाव है। तुम क्या कर सकते हो? राग-द्वेष कर सकते हो, पर वस्तुव्यवस्था को भंग नहीं कर सकते हो। देखो! मैं इसलिए कह रहा हूँ कि चाहे बालक हो, चाहे वृद्ध हो, असंक्लेशभाव से सबको जीने दो - यही दया, यही करुणा है। यह विषय अपने घर में लगाना प्रारंभ कर दो, छोटी-मोटी बातों को लेकर द्वन्द्व मत छेड़ो। एक रोटी कम मिली तुमको, तो एक कल ज्यादा खा लेना और आज ज्यादा खा ली तो कल एक कम खा लेना, संक्लेश मत करो।

यदि ज्ञाननय की ओर जा रहे हो, तो क्रियानय तुम्हारी इति नहीं। क्रियानय के साथ ज्ञाननय में प्रवेश करो। जो ज्ञानमयीमात्र निजभावमयी अकंप भूमि में आश्रय लेते हैं वे किसी भी प्रकार से मोह का नाश कर लेते हैं। यह है मुख्य द्रव्य वस्तु कि जैसे बने वैसे मोह छोड़ दो। भीतर का मोह ही सबकी व्यवस्था का व्यवस्थापक बनाये है। भीतर का मोह हट जाये तो सारी व्यवस्थाएँ अपने आप शान्त हो जाती हैं। तुम घर को चला रहे हो कि घर में तुम चल रहे हो? घर में चलते-चलते अब निज घर में चलने लग जाओ। ये मोह का वमन कर दो। क्या मतलब? जरासा कोई मन का खाने को न मिले, कुछ उल्टा-सीधा खा लो, तो दौड़कर वमन करके चला जाता है और डॉक्टरों से मिलता है। बोले - बताओ कोई उपाय। मैं उल्टी

कर दूँ। मित्र! जैसे अपथ्य भोजन करने पर जब अस्वस्थ होने लगता है, तब विरेचन के लिये वैद्य के पास जाता है या फिर वमन के लिए जाता है। इधर आ जाना, ये जिनेन्द्र के वचन परम औषधि हैं, विषयसुख का वमन भी कराते हैं और विरेचन भी कराते हैं और जब-तक वमन-विरेचन न हो तब-तक चैन नहीं पड़ती। ऐसेही मुमुक्षु जीव को जब-तक मोह का वमन न हो तब-तक उसको चैन नहीं पड़ती।

कैसे आश्चर्य से कह रहे '**कथमप्यपनीतमोहाः**' कैसे भी मोह को छोड़ दो। वे ही साधक, ऐसे भव्य पुरुष, ऐसे ज्ञानमात्र साधक, **वे ही साधक सिद्धभूमि के नजदीक पहुँचते हैं जिन्होंने मोह का वमन कर दिया है। निजआत्मभूमि का स्पर्श किया है वे ही भव्य प्राणी सिद्धभूमि का स्पर्श कर पाते हैं, सिद्ध बनके।** वह मूढ़ प्राणी, देखो! मैं नहीं कह रहा, लिखा सो बाँच रहा हूँ। वह मूढ़ प्राणी, मूढ़ से तात्पर्य मोही, मूढ़ प्राणी परम सिद्धभूमि को न प्राप्त करके, ज्ञानमात्र भूमि को न प्राप्त करके, इस संसार में भटकता है। कौन? अज्ञानी जीव।

वह वकील कितना कुशल है किसको फँसवाना, किसको निकलवा देना, मेरे मित्र! कितनी कुशलता प्राप्त की है ? **हे ज्ञानी ! पर को उलझाना पर को सुलझाना, इसमें कुशलता अनंतबार की है, परन्तु निज के अशुभकर्मों से निकल जाना और शुभकर्म में लग जाना, शुद्धकर्म में चले जाना इसमें कुशलता प्राप्त करो।** यहाँ नेता बैठा है वह सोचता है कि - महाराज ! सीधे-सीधे इन्हें घुमा दो। इसे पता नहीं है तेरे जैसे कई जीव देखे घुमानेवाले पर मैं मौन रहता हूँ पर इसका मतलब यह नहीं कि मैं समझता नहीं हूँ। बुरा मत मानना, अब जो है सो है।

पर के लिए सीधे ही बनकर रहना चाहिए पर निज की साधना में कभी सीधे बनके नहीं रहना चाहिए। निज की साधना में सीधे बनके रहोगे, तो गुरु ने कहा था-बेटा! नट का खेल मत देखना और शिष्य नटनी का नृत्य देख रहे थे। गुरु निकल पड़े, बेटा! क्या कर रहे हो? स्वामी! आपने कहा था नट का खेल मत देखना, ये कहाँ कहा था कि नटनी का खेल मत देखना, तो ऐसे सीधे नहीं बनना।

ज्ञानी! कई बार जगत् में देखा जाता है, लोग साधकों के पास भी अपना दिमाग लगाना चाहते हैं, पर इन्हें ये मालूम नहीं रहता है कि तुम तो मात्र नागपुर का पानी पीए, ये साधु तो कई पुरों का पानी पीये हैं। पढ़ने वालों को तो तुम चरा सकते हो, पर कड़ेह (निकले) वालों को कोई नहीं चरा सकता। विद्या बड़ी नहीं होती है, बुद्धि बड़ी होती है।

कुशलता प्राप्त करो, किसमें ? जो स्याद्वाद में कुशल हैं, वे नियत, निश्चल, संयम से युक्त होते हैं। व्रत, समिति, गुप्ति के पालन में लीन हो जाते हैं। दिन-प्रतिदिन, निज उपयोग में ही उपयुक्त रहते हैं। देखो, दोनों नय आ गये, संयम में लीन हैं, निजउपयोग में ही उपयुक्त हैं। **संयम में लीन हैं क्रियानय, निज उपयोग में ही उपयुक्त है – ज्ञाननय।** ज्ञान और क्रिया, जिसने इन नयों में मैत्री की पात्रता को प्रकट कर लिया है वह निजआत्मभूमि को प्राप्त करता है। कौन ? जो ज्ञाननय व क्रियानय में मैत्री को

स्थापित किये है। मुमुक्षु! यही परम आनंद का उपाय है। ज्ञाननय और क्रियानय, इन दोनों में मैत्री कर लो, यही निश्चय-व्यवहार की मैत्री है। आनंद आ रहा है किस बात पर ? ज्ञाननय, क्रियानय की मैत्री बना ली है। जिस दिन नागपुर में प्रवेश हुआ था उस दिन ज्ञाननय, क्रियानय में मैत्री बना ली थी। इसलिए आज अखण्ड समाज बैठी है। एक पत्र आया, महाराज! आपने बहुत बड़ी क्रान्ति कर दी। उसमें लिखा था जो कभी नहीं देखा जाता वह आपके सामने दिखता है। सारे पंथ के लोग उपदेश सुन रहे हैं, महाराज! यही भाव था, मेरी पर्याय के नष्ट होने से पहले अखण्ड समाज को देख लिया। अब सोचो, जिसने पत्र लिखा होगा, उसने कितने अन्तस् में सोच-सोचकर लिखा होगा। इससे ध्वनित होता है कि शांति की इच्छा रखने वाले जीव अनंत हैं। जितने कलश प्रारंभ हुए हैं वे सम्पूर्ण कलश ऐसेही मान के चलना कि जैसे पूरा मन्दिर बन जाये, श्रीजी भी विराजमान हो गये, लेकिन कलश, ध्वजा नहीं चढ़ती तब-तक मन्दिर अधूरा रहता है। ऐसे ही जो कलश चल रहे हैं ये समयसार ग्रन्थ पर कलश चढ़ रहा है। निज भूमिका को प्राप्त करने का कोई उपाय है तो क्रियानय ज्ञाननय की मैत्री ही निज को प्राप्त करनेका उपाय है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

अनन्त चतुष्टय

चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहासः शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः।
आनन्दसुस्थितसदास्खलितैकरूपस्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा ॥268॥

शब्दार्थः - (तस्यएव) उसी के **(चिद्-पिण्ड-चण्डिम-विलासि-विकास-हासः)** चैतन्यपिण्ड के निरर्गल विलसित विकासरूप जिसका खिलना है **(शुद्ध-प्रकाश-भर-निर्भर-सुप्रभातः)** शुद्ध प्रकाश की अतिशयता के कारण जो सुप्रभात के समान है **(आनन्द-सुस्थित-सदा-अस्खलित-एक-रूपः)** आनन्द में सुस्थित ऐसा जिसका सदा अस्खलित एक रूप है **(च)** और **(अचल-अर्चि)** जिसकी ज्योति अचल है ऐसा **(अयम् आत्मा उदयति)** यह आत्मा उदय को प्राप्त होता है।

भावार्थः - यहाँ चित्पिण्ड इत्यादि विशेषण से तो अनन्तदर्शन का प्रकट होना बतलाया है, अचल शुद्धप्रकाश इत्यादि विशेषण से अनन्तज्ञान का प्रकट होना जताया है, आनंद सुस्थित इत्यादि विशेषण से अनंतसुख का प्रकट होना जतलाया है और अचलार्चि विशेषण से अनन्तवीर्य का प्रकट होना जतलाया है। पूर्वोक्त भूमिका के आश्रय से ऐसा आत्मा का उदय होता है।

आत्मोदय

स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशे शुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति।
किं बन्धमोक्षपथपातिभिरन्यभावैर्नित्योदयः परमयं स्फुरतु स्वभावः ॥269॥

शब्दार्थः - (स्याद्वाद-दीप्ति-लसत-महसि) स्याद्वाद द्वारा प्रदीप्त किया गया जगमगाहट करता जिसका तेज है और **(शुद्ध-स्वभाव-महिमनि)** जिसमें शुद्ध स्वभावरूप महिमा है ऐसा **(प्रकाशे उदिते मयि इति)** यह प्रकाश जहाँ मुझमें उदय को प्राप्त हुआ है, वहाँ **(बंध-मोक्ष-पथ-पातिभिःअन्य-भावैः किम्)** बंध-मोक्ष के मार्ग में पड़ने वाले अन्य भावों से मुझे क्या प्रयोजन है? **(नित्य-उदयः परमयं स्वभावः स्फुरतु)** मुझे तो मेरा नित्य उदित रहनेवाला केवल यह (अनंतचतुष्टयरूप) स्वभाव ही स्फुरायमान हो।

भावार्थः - स्याद्वाद के द्वारा यथार्थ आत्मज्ञान होने के बाद इसका फल पूर्ण आत्मा का प्रकट होना है। मोक्ष का इच्छुक पुरुष यही प्रार्थना करता है कि मेरा पूर्णस्वभाव आत्मा उदय हो। अन्य भाव बन्धमोक्ष मार्ग की कथारूप है उनसे क्या प्रयोजन है ?

समय देशना

भव्य बन्धुओ ! आचार्यप्रवर भगवत् कुन्दकुन्दस्वामी ग्रंथराज समयसार जी में ध्रुवज्ञायकस्वभावी भगवान् आत्मा के सहज स्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। आत्मद्रव्य स्याद्वाद की कुशलता से ही जाना जाता है। आत्मा की ध्रुव सत्ता को समझने के लिए अनेकान्तदृष्टि की आवश्यकता है। पर्यायों में आत्मा देखना, गुण में आत्मा देखना, आत्मा में आत्मा देखना, द्रव्य में द्रव्य को देखना, पर्याय में द्रव्य को देखना, गुण में द्रव्य को देखना। व्याख्यान की शैलियाँ अनेक हो सकती हैं, व्याख्येय एक ही है। कभी व्याख्यान हम गुणदृष्टि से करते हैं, कभी व्याख्यान हम पयार्यदृष्टि से करते हैं, कभी व्याख्यान हम द्रव्यदृष्टि से करते हैं, कभी द्रव्य में गुण का उपचार होता है, कभी गुण में द्रव्य का उपचार होता है, कभी द्रव्य में पर्याय का उपचार होता है, कभी पर्याय में द्रव्य का उपचार होता है, कभी द्रव्य का द्रव्य में उपचार होता है, कभी पर्याय में पर्याय का उपचार होता है, कभी गुण में गुण का उपचार होता है। इस प्रकार से अनेक उपचारों की व्याख्या होने पर भी उपचार वहीं होता है जहाँ मुख्य का विचार होता है।

जहाँ मुख्य का अभाव होता है वहाँ उपचार भी नहीं होता है। जहाँ मुख्य ही नहीं होता वहाँ उपचार भी नहीं होता है। मुख्य अवश्य होना चाहिए है पर जब सामने मुख्य नहीं होता है तब उपचार लगता है। तीर्थंकर वर्द्धमान हुए थे इसलिए पाषाण की मूर्ति में वर्द्धमान को देखा जा सकता है। यदि महावीर न हुए होते तो कोई मूर्ति में महावीर की स्थापना नहीं की जा सकती। वस्तु का सद्भाव कहीं-न-कहीं होना चाहिए है। **अवस्तु का उपचार नहीं होता है, उपचार वस्तु का ही होता है।**

जब शेर नाम का कोई जानवर है तभी हम बच्चे को समझाने के लिए बिल्ली उपस्थित करके कह देते हैं – बेटा! शेर का आकार ऐसा होता है, लेकिन ध्यान रखना बिल्ली शेर नहीं है, शेर बिल्ली नहीं है। इस प्रकार से अशुद्ध आत्मा में शुद्धात्मा को जानना, शुद्धात्मा को पहचानना, शुद्धात्मा होती है मानना, पर अशुद्ध आत्मा को शुद्धात्मा मानकर मत बैठ जाना। यदि अशुद्धात्मा को ही शुद्धात्मा स्वीकार लिया तो फिर शुद्धात्म-प्रगटीकरण का पुरुषार्थ आपका होना बंद हो जायेगा। **जो भी तत्त्व की गवेषणा है, जो भी साधना का पक्ष है, ज्ञाननय है वो भी शुद्धात्मा की प्राप्ति का मार्ग है; क्रियानय है, वह भी शुद्धात्मा की प्राप्ति का मार्ग है।**

मुमुक्षु ! **शुद्धात्मा में न ज्ञाननय है, न क्रियानय है; अभेद रत्नत्रय ज्ञाननय है, भेद रत्नत्रय क्रियानय है।** सिद्ध अवस्था भेदाभेद रत्नत्रय का फल है। ज्ञाननय, क्रियानय - ये दोनों भेदाभेद रत्नत्रय की ही भाषा हैं। जैसे उपाय-उपेय की व्याख्या की। उपाय-उपेय का वास्तव में क्या विषय था ? मार्ग और मार्ग का फल। **रत्नत्रय मार्ग है और मोक्ष मार्ग का फल है। रत्नत्रय उपाय है, मोक्ष उपेय है।** इसी प्रकार से भेद रत्नत्रय मार्ग है और मोक्ष मार्ग का फल है। रत्नत्रय उपाय है मोक्ष उपेय है। इसी प्रकार से भेद रत्नत्रय क्रियानय है, अभेद रत्नत्रय ज्ञाननय है। **शुद्धात्मलीनता, स्वरूपलीनता, स्वसंवित्ति,**

आत्मानुभूति, आत्मप्रतीति, स्वानुभव, निश्चयभक्ति, निश्चयवंदना, निश्चयस्तुति जो भी हैं, ये सब ज्ञाननय का क्षेत्र है और इन सब में व्यवहार शब्द का प्रयोग कर दो तो क्रियानय है।

क्रियानय में इतनी विशुद्धि लाइए , कि ज्ञाननय में प्रवेश हो जाओ। **क्रिया के लिए क्रिया जो करे वह क्रियावादी, मिथ्यादृष्टि।** विषय समझना, क्रिया के लिए क्रिया करे वह क्रियावादी मिथ्यात्व में चला जायेगा। स्याद्वाददर्शन में क्रिया के लिए क्रिया नहीं है। क्षेत्रान्तर निष्क्रिय होने के लिए हमारी क्रिया है। शब्द समझ में आया। क्षेत्रान्तर, पर्यायान्तर, अवस्थान्तर से निष्क्रिय होने के लिए हमारी मोक्षमार्ग की क्रिया है। क्रिया करो चारित्रभूत। मत करो क्रिया की प्रतिक्रिया। हे जीव ! उपसर्ग आना भी तुम्हारे लिए संयम है, क्योंकि समता है, हे जीव ! परीषह आना भी तुम्हारा संयम है। उपसर्ग परीषह आने पर वो उसने क्रिया की है।

दूसरे ने आप पर पत्थर फेंक दिया, हे श्रमण ! ये दूसरे की क्रिया थी, इसमें तूने प्रतिक्रिया नहीं की तो तेरी सामायिक है। प्रतिक्रिया कर दी तो तू स्वयं का शत्रु है। ध्यान दो, मैं क्या बोल रहा हूँ, हे श्रमण ! किसी ने आप पर पत्थर फेंक दिया - ये पर की क्रिया थी, ये तेरे बंध का कारण नहीं थी, ये तेरे समता सहित निर्जरा का कारण थी। कष्ट दिया गया पर के निमित्त से, समता से सहन किया गया है तो निर्जरा का साधन बन जाता है और कष्ट असमता से सहन किया है वह बंध का कारण बन जाता है। समझो, कष्ट दिया किसी ने, आप पर उपसर्ग किया किसी ने, आप प्रतिक्रिया नहीं करते हो, तो वह कष्ट समता से सहन किया है, वह पर का कष्ट तेरी कर्म निर्जरा का साधन बन जाता है और पर के कष्ट को संक्लेशता में ढाल लेता है वह बंध का कारण बन जाता है।

कर्म का उदय कर्म का विपाक **'विपाकोऽनुभवः'** (त.सू.)। कर्म का उदय यदि आता है, उदयकाल में या तो साताभूत आया है या तो असाताभूत आया है, दोनों ही तेरे लिए निजस्वभाव भावरूप नहीं हैं। मित्र ! दोनों के उदय के काल में स्याद्वाद की कुशलता है, तो हे जीव ! साता अथवा असाता उन दोनों को, स्याद्अस्ति,स्याद्नास्ति। ये असाता कर्मोदय है इसलिए अस्ति, निजस्वभाव नहीं है इसलिए नास्ति और अस्ति, नास्ति का वेदन करते हुए निजस्वभाव के अस्ति को ही वेदेगा तो वह पूर्व का उदय बंध का कारण नहीं बन पायेगा और पूर्व का बंध वर्तमान में संक्लेशता के साथ यदि तुमने सेवन किया है तो वर्तमान में पुनः बंध होगा और भविष्य में पुनः उदय में आयेगा। **संकट और सुख ये दोनों पराधीन नहीं हैं, स्वाधीन हैं।** स्वविवेक को चौबीस घण्टे अपने साथ रखो।

स्वविवेक को अपने पास रखो। जो कर्मोदय हैं, वे तो संक्लेशता के लिए ही आते हैं, कष्ट के लिए ही आते हैं, वो आपका विषय है कि आपको क्या करना है। ये बताओ, पानी में पत्थर फेंका है, क्या उद्देश्य ? पत्थर पानी में जा रहा है, फेंकने के तरीके अलग-अलग होते हैं सीधा फेंकोगे तो डूब जायेगा और इस तरह फेंको कि पानी में उछलता-उछलता जब-तक उसमें दबाव की ताकत रहेगी

तब-तक वह उछलता-उछलता जायेगा फिर डूबेगा। मजा आता है, आनंद आता है कि नहीं ? समझो! पत्थर इसलिए फेंका जाता है कि फेंकनेवाले को आनंद आता है। अब विषय अलग है कि उसमें रहनेवाले प्राणी उसका क्या वेदन कर रहे हैं ? दूसरा आपको कष्ट देता है उसमें उसको आनंद आता है अब वह विषय आपका है कि आप उसमें कैसे वेदन कर रहे हो ? व्यथित होकर कर रहे हो, कि ज्ञाता-दृष्टा बनकर रहे हो? वेदकभाव बंध का कारण नहीं है। वेदना का वेदन व्यथित होकर करोगे तो बंध का कारण है। वेदना का वेदन व्यथित होकर करोगे तो अभिनव बंध का हेतु है।

स्याद्वाद के कौशल से अपने परिणामों में देखिए। अहिंसा के लिए अहिंसा सिद्धांत स्थापित किया, पर अहिंसा का बेनर लगाते ही, आपने हिंसा प्रारंभ कर दी थी। उस ग्रुप का नाम आपने अहिंसा ग्रुप रख दिया। जिस दूसरे ग्रुप का यह नाम था, वह तुम्हारे अहिंसा ग्रुप को देखकर संक्लेशित होने लगा। इसी प्रकार से ये सनातन स्याद्वाद सिद्धांत किसी पक्ष के लिए नहीं था, आत्मलक्ष्य के लिए था। जब जगत् के मिथ्यापक्षों ने अपनी दुर्बुद्धि की कुशलता से, दुर्बुद्धि के कौशल से, स्याद्वाद कौशल पर विद्वेष रखना प्रारंभ किया, तब हमारे आचार्यों ने दुर्बुद्धि की कुशलता के निरसन के लिए स्याद्वाद सिद्धांत की प्ररूपणा प्रारंभ की। जबकि **स्याद्वाद का आत्मभूत सिद्धांत स्वात्मशांति के लिए, आत्मानुभव में लीन होने के लिए था।** स्याद्वाद तर्कशास्त्र का विषय है, स्याद्वाद न्यायशास्त्र का विषय है। न्यायशास्त्र के विषय को अध्यात्म में क्यों रखा ? यथार्थ में स्याद्वाद को न्यायशास्त्र का विषय तो बनाया है पर, अध्यात्म का विषयभूत मैं ही है।

यथार्थ में स्याद्वाद का प्रयोग पर के खण्डन-मण्डन के लिए नहीं है, मूल में स्वआत्मलीनता के लिए है। हर व्यक्ति शांति से ही बैठना पसंद करता है। सिंह भी शांति से बैठता है यदि कोई उसे छेड़े नहीं, सहजता में काला नाग भी नहीं डसेगा यदि आपने किसी भी प्रकार का उस के साथ विकल्प नहीं किया है। ज्ञानियो ! वह स्याद्वाद शांतिस्वरूप की लीनता है लेकिन धीरे-धीरे मिथ्यात्वरूपी व्यन्तर उछलने-कूदने लगे, डाकिनी-शाकनी जैसे भूत, चूड़ैल जैसे तब उनको वश में करने के लिए स्याद्वाद को मंत्ररूप दिया। जैसे भूत-प्रेतों को वश में करने के लिए णमोकार पर्याप्त है, उसकी विधि है। आटे से जलेबी का स्वाद लेना है तो उसकी विधि अलग है, आटे से रसगुल्ले का स्वाद लेना है तो उसकी विधि अलग हो जाती है पर होता आटा ही है। आटे से बाटी का स्वाद लेना है तो विधि बदल जाती है। पुड़ी-पराठे का स्वाद लेना है बनाने की विधि बदल जाती है, परंतु होता आटा है। ऐसे ही महामंत्र णमोकार है। इससे कर्मक्षय करना चाहते हो, आराधना की विधि बदल जाती है, पर होता णमोकार ही है।

जैसे महामंत्र की आराधना की विधि बदलने से उसका फल वैसा प्रारंभ होता है। फ्रिज में रखा पानी अलग स्वाद, अलग फल देता है। हीटर पर रखा पानी अलग स्वाद, अलग फल देता है, पर होता पानी है। कुछ जीवों ने क्रिया को वस्तु मान लिया है। क्रिया को वस्तु मत मानिए, क्रिया वस्तु के धर्म को तो

बदल सकती है, पर क्रिया वस्तु के वस्तुत्व गुण को नहीं बदल सकती है। क्रिया विभावस्वभाव में तो परिणत करा सकती है, पर क्रिया जो है पर निमित्तक वस्तु की सत्ता का नाश नहीं कर सकती। जो मैं कह रहा हूँ जिस पक्ष का जीव होगा, उस पक्ष की विद्या को यहाँ सीख सकता हूँ। क्या वैद्य ने आज तक किसी औषधि का निर्माण किया ? शास्त्री ! किसी वैद्य के अंदर वो ताकत नहीं है जो औषधि का निर्माण कर सके। सारे जगत् में औषधगुण और जहरगुण वस्तु के वस्तुत्व में ही हैं। हे वैद्य ! तू प्रयोक्ता हो सकता है, मिश्रणकर्त्ता हो सकता है, लेकिन किसी द्रव्य को बदलने की सामर्थ्य तुझमें नहीं है। किसी को औषधिरूप करने की सामर्थ्य तुझमें नहीं है। यदि तू औषधिरूप होकर के रोगी के सामने चला जायेगा तो अगले रोगी का उपचार कौन करेगा ? **औषधगुण तो रसायन में है, औषधगुण तो वनस्पति में है, वैद्य तो मात्र उसका ज्ञाता होता है, दृष्टा होता है, प्रयोजक होता है, लेकिन कर्त्ता नहीं होता।**

समझ में न आये तो अपने क्षयोपशम की पर्याय को प्रगट करो और क्षयोपशमज्ञान से न समझ पाओ तो क्षायिकज्ञान प्रगट कर लो। सुनते-सुनते निर्णय मत कर लेना, कि तुम्हारी समझ में नहीं आ रहा है तो गलत बोल रहे हैं। माताओ ! समझना कभी-कभी आपको समझ में नहीं आता तो आप समझ लेते हो, यह विषय ही नहीं है। **जिसको जिस विद्या का ज्ञान नहीं है, वह विद्या अविद्या जैसी लगती है, पर विद्या विद्या होती है।** आपके क्षयोपशम में विद्या का अभाव है। इसलिये श्रेष्ठ पुरुष वो होता है, जो आज्ञासम्यक्त्व का पालन करता है। मेरी समझ में नहीं आ रहा है पर सर्वज्ञ ने जो-जो कहा है, ध्रुवसत्य है।

ज्ञानियो! स्याद्वाद कौशल। जिस स्याद्वाद की कुशलता से आप वितण्डा का प्रयोग कर रहे थे, जिस स्याद्वाद की कुशलता से आक्षेपणी-विक्षेपणी कथा कर रहे थे उस स्याद्वाद की कुशलता से हे मुमुक्षु! अब तेरी सल्लेखनाकाल है, अब उसमें वीतराग कथा, संवेदिनी-निर्वेदनी कथा का प्रयोग स्व के लिए स्याद्वाद शैली में करो।

वर्तमान में समयसार में स्याद्वाद अधिकार में जो व्याख्यान चल रहा है, सैंतालीस शक्तियों के वर्णन के उपरांत, अनंतशक्तियों का पिण्ड चैतन्यघनभगवानआत्मा की सहजदशा की प्ररूपणा कर रहे हैं वो कैसा है ? वो जीव टंकोत्कीर्ण परमानंदशालिनी, चैतन्यमालिनी भगवानात्मा परमपारिणामिक भावशक्ति से युक्त है। जैसे हम स्याद्वाद के माध्यम से, अनेक नय-निक्षेपों के माध्यम से जगत् के द्रव्यों को समझते हैं, ऐसे ही हे मुमुक्षु ! स्याद्वाद शैली से नय-प्रमाण के द्वारा शुद्धात्मा के स्वरूप को समझ। नयों से जो देखेगा तो वस्तु खण्ड-खण्ड हो जायेगी, क्योंकि प्रत्येक नय एक अंश को ग्रहण करता है। इसलिए निजध्रुवभगवानात्मा को नयों-नयों से जानते हुए भी प्रमाण में निहारिए और जब-तक प्रमाण में नहीं देखोगे तब-तक अखण्ड ध्रुवात्मा का अवलोकन नहीं होगा। **मेरी आत्मा खण्ड-खण्ड नहीं है, मेरी आत्मा अखण्डपिण्ड चैतन्यचिद्धातुमयी अखण्ड है।** कहीं शब्दावली में ही तो नहीं उलझ रहे आप लोग? नयों से देखोगे तो नाक अलग है, कान अलग है, आँख अलग है, मुख अलग है, हाथ

अलग है, पैर अलग है, तू कितने प्रकार का है ? सब को भिन्न-भिन्न करके दिखाइए तो तू तो जन्मांध जैसा हो जायेगा जिसने हाथी को देखा था, सात जन्मांधों जैसा। इसलिए अनेकान्त को निहारो, स्याद्वाद से समझो, अमृतचन्द्रस्वामी कह रहे हैं-

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र ।।1/पु.सि.उ.।।

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम्।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ।।2/पु.सि.उ.।।

चित् ज्योति की वंदना कर रहे हैं। जो दर्पणतल के समान सम्पूर्ण पदार्थमालिका को झलका रहे हैं ऐसी विद्या कोई है तो कैवल्यज्योति है। विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् और जो विरोध का मंथन करनेवाली विद्या है 'अनेकांतविद्या' उसको मेरा नमस्कार है।

सात जन्मांध थे। हाथी के भिन्न-भिन्न अंगों को स्पर्श किया। वे आपस में विसंवाद करने लग गये। मैंने देखा हाथी सूपा जैसे, मैंने देखा खम्भे जैसा, मैंने देखा रस्सी जैसा, दीवाल जैसा, स्तम्भ जैसा। सातों-के-सातों लड़ रहे हैं, हाथी मैंने देखा। क्या ऐसा हाथी था ? क्या ऐसा हाथी नहीं था ? ऐसा हाथी न होता तो एक-एक अंग कहाँ होते और ऐसा ही हाथी होता तो हाथी बिखर न जाता। इन सबका संघात ही हाथी है, इन सबका समूह ही हाथी है। ऐसे ही ज्ञानमात्र आत्मा कहता है वो भी जन्मांध है, सुखमात्र आत्मा कहता है वो भी जन्मांध है, वीर्यमात्र आत्मा कहता है वो तो जन्मांध है, क्योंकि ये समयसार है। इसमें अंदर का स्याद्वाद लगेगा, बाहर का स्याद्वाद नहीं।

आत्मा अनंत शक्तियों का पिण्ड है। जब सैंतालीस शक्तियाँ अभी-अभी सुनीं फिर इसमें आप एक ज्ञानमात्र कैसे कह रहे हो? परमभावग्राहकनय की दृष्टि से ज्ञानमात्र हो सकता है, परंतु प्रमाण की दृष्टि से आत्मा ज्ञानमात्र नहीं है, आत्मा अनंत गुणात्मक ही है। चिन्तन जब करेगा निजआत्मद्रव्य का तब स्याद्वाद से ही करेगा, नय से करेगा। कभी ज्ञानगुण की प्रधानता में जायेगा, कभी दर्शनगुण की प्रधानता में जायेगा, कभी चारित्रगुण की प्रधानता में जायेगा, कभी सुखगुण की प्रधानता में जायेगा, कभी वीर्यगुण की प्रधानता में जायेगा। अनंतचतुष्टय के ध्यान में लवलीन हो रहा है, लेकिन हे ध्याता! निजध्यान में भी तेरा ध्यान एकत्वभूत नहीं है, अनेकत्वभूत है। इसलिए आप सबको इतना स्वीकार कर लेना चाहिए, आत्मा का हित भी अविवेकपूर्वक नहीं हो सकता। इस बात को आपको स्वीकार कर ही लेना पड़ेगा, आत्मा का हित भी अविवेकपूर्वक नहीं हो सकता, **विवेकहीन आत्मा का हित नहीं कर सकता।**

जो यह कहा जाता है, मैं तो शांति से जपते-जपते मोक्ष चला जाऊँगा, यह भी सामान्य व्याख्या है। अभी आप सोचिए, इस समय मैं व्याख्यान कर रहा हूँ उस समय आपको नहीं लग रहा कि बुद्धि का प्रयोग

हो रहा है, मस्तिष्क की मेहनत समझ में नहीं आ रही है। जब कोई बहुत बड़ा गणितज्ञाचार्य गणित को लगा रहा है उसका क्षयोपशम कितना विराट् और विशाल हो, दौड़ाता है मस्तिष्क को। वो तो मात्र गणित को कागज पर लगा रहा है मस्तिष्क से, परंतु ये निर्णय परवस्तु का गणित नहीं चल रहा है ये तो आत्मगुणों में ही निज का गणित लगाया जा रहा है। इसमें आपको बिल्कुल स्वस्थचित्त होकर समझना चाहिए है कि तत्त्व के निर्णय के लिए प्रतिभाशालीपना ही चाहिए है। प्रज्ञा की छैनी के अभाव में मन्दबुद्धि होकरके आप संक्लेशभाव से साधना का काल निकाल लोगे परंतु प्रसन्नचित्त होके नहीं निकाल पाओगे। मैं ये कह रहा हूँ, चक्रव्यूह में प्रवेश किया पुरुष, वही रोयेगा जिसे चक्रव्यूह को छेदने का विवेक नहीं है। **संग्रामभूमि में वही क्लेश को प्राप्त हो सकता है जिसको चक्रव्यूह के फंदे काटने की या निकलने की कला नहीं है, वही दुःखी रह सकता है और जिस व्यक्ति को चक्रव्यूह से निकलने की कला मालूम है वह वहाँ बैठकर भी मुस्करायेगा।**

एकसौअड़तालीस कर्मों के पिंजरे में रहकर भी जिसको मुस्कराहट आ रही हो, समझ लेना वही सच्चा योगी है। कर्मों के बीच में चेहरा लटकाकर वे रोयें, जिनको कर्म काटने की कला पता न हो। सम्मेदशिखर की वंदना करते हुए जिनकी जंघाओं में बल है, जिसमें ताकत पर्वत आरोहण की है वह कभी ऊपर की चट्टानों को, टोकों को देखकर चेहरा नहीं बिगाड़ता, पर जिसका जंघाबल क्षीण हो चुका है, चलने की सामर्थ्य नहीं है वो एक-एक सीढ़ी पर चेहरा बिगाड़ता है, ऐसा नहीं है क्या ? ऐसा ही है। जिस जीव को भीतर का विवेकज्ञान नहीं हुआ वह जीव संसार में रोता मिलेगा, कैसे मेरा कल्याण हो ? कैसे मेरा मोक्ष हो ? ये पागलों की भाषा है, क्यों समय बर्बाद कर रहे हो ? व्यर्थ की बातें बंद करो, मात्र करने लग जाओ, **करनी ठीक करो, परिणति विशुद्ध करो, कल्याण हो जायेगा।** कुछ लोग क्या करते हैं, जैसे उनके हाथ-पैर ही न हों, वे देखते रहते हैं। एक काँच है उस काँच में पंडितजी के पिताजी का फोटो दिखाई दे रहा है पर वह फोटो दूर रखी है, पर वह काँच इतना सुंदर है कि दूर का चित्र भी पास में दिखता है। अब पंडितजी पिताजी के चित्र को ही देख रहे हैं। चित्र को देखते-देखते खुश हो रहा है कि पिताजी मेरे पास हैं, जब कि पिताजी ऊपर जा चुके हैं। पिताजी जीवित थे तब भी तस्वीर लगाये था, हम तो अपने पिताजी के भक्त हैं, मेरे पास में पिताजी की तस्वीर है जबकि पिताजी भाई के पास हैं, घर में पानी-पानी चिल्लाकर तड़प रहे थे, तब जीव एक ग्लास पानी देने नहीं गया। मात्र क्या कहता रहा, देखो मैं पिताजी को न चाहता तो तस्वीर कैसे लगाता ? धन्य हो! तस्वीरवाले भक्तो! पिता तड़प रहा है, तुम मात्र तस्वीर दिखाकर भक्ति दिखा रहे हो, यह नहीं देख रहे तस्वीर कल्याणकारी नहीं है। वह दीवाल पर लगी कभी टपक जायेगी। अपने पिताजी की तस्वीर को हृदय में लगाओ।

ऐसे ही ये जीव संसार में क्या कर रहे हैं? मैंने अपनी आत्मा के स्वभाव को केवली के ज्ञान में देखना प्रारंभ कर दिया। मेरा परिणमन, मेरी पर्याय, मेरा द्रव्य-गुण-पर्याय सब केवली के ज्ञान में झलक रहा है।

जैसे शीशे में तेरा चेहरा झलक रहा है ऐसे आप इतने निर्बल हो गये, तुम चलना ही स्वीकार नहीं कर रहे हो। जैसे पिताजी की तस्वीर देख रहा था, पानी देने नहीं जा पा रहा था बेटा, ऐसे ही निजशुद्धात्मस्वरूप की प्राप्ति के लिए रत्नत्रय का पानी तो नहीं पिला रहा है जीव, मात्र केवली के ज्ञान में अपनी पर्याय का झलकना देख रहा है। झलका लो पर निजशुद्धात्मस्वरूप मिलने वाला नहीं है। पंडितजी! कौनसी पर्याय है जो शुद्धपर्याय का परिणमन है वो तीर्थंकर सिद्धों भगवंतों के केवलज्ञान के माध्यम से मेरे में प्रगट नहीं होगी। मेरा प्रगटीकरण तो मेरा स्याद्वाद नीति से ही होगा। तब मुझे ज्ञाननय, क्रियानय दोनों का आलम्बन लेना ही होगा। **मार्ग बतानेवाले मार्ग में मिल जायेंगे, मार्ग पर चलना तो आपको ही पड़ेगा।** ये देव-शास्त्र-गुरु, इनको मार्गदर्शक मानिए, इनको आप मार्गचालक मत मानिए।

माँ! आपने पाँच समिति, तीन गुप्ति, इनको इतना सरल माना क्या ? **हजारों ग्रंथ पढ़ना सरल है, पर एक मनोगुप्ति को वश करना कठिन है।** लोगों ने भ्रमित करके रखा अपने को। पंडितजी! पढ़-पढ़ के जीव गहरे में नहीं गया। जैसे जहाज से हे जीव! तूने यमुना, गंगा, चम्बल, सरस्वती नदी में विचरण किया; महासागरों में विचरण किया, पर तेरे पैर के अंगुष्ठ मात्र को गीला नहीं देखा। महानदियों में, महासमुद्रों में, नदी के भीतर, समुद्र के भीतर घूमकर आया, लेकिन आपकी पैर की अँगुली का नख भी गीला नहीं हुआ। पूरा समुद्र घूम लिया, पानी खारा था कि मीठा था, शीतल था कि गर्म था, कोई बोध ही नहीं हुआ क्योंकि हम नदी के बीच में थे, जहाज में थे। ऐसे ही जीव तू जिनवाणी के अगाध समुद्र में प्रवेश कर गया। कर तो गया, पर हम द्रव्यश्रुत के पोत पर थे, भावश्रुत में प्रवेश था ही नहीं। द्रव्यश्रुतमात्र से कभी भी आत्मा का नख गीला होने वाला नहीं है। इसलिए तीन गुप्तियाँ, पंच समितियाँ- ये अष्टप्रवचनमातृका का ज्ञानी, ऐसा श्रमण कैवल्य को प्राप्त करता है। वे गुप्तियाँ कितनी महान् हैं ? **व्रतों में ब्रह्मचर्य, गुप्तियों में मनोगुप्ति, इन्द्रियों में रसना, कर्मों में मोहनीयकर्म - इनको वश में करना दुर्धर है, कठिन है।** पहले मुनिचर्या को पालने के लिए लोग सोचते थे, पर आज तुरंत दीक्षा के लिए तैयार हो जाते हैं। रहस्य समझिए, इस मुनिदीक्षा को लड्डू-पेड़ा मत बनाइए। ये जहाज में बैठकर समुद्र की यात्रा मत करो। अपनी भुजाओं से समुद्र तैरो, तब पता चलेगा समुद्र कितना गहरा है, कितना खारा है, कितना पानी है। इतना सरल मत समझो, आचार्य, उपाध्याय, साधु के पदों को, इनकी महिमा को जयवंत रखो, जीवंत रखो। ऐसा नहीं होता आज दीक्षा ली, कल छोड़ दी, फिर ले ली। जिनलिंग कठिन है, बहुत सहज है, यही स्याद्वाद का कौशल है। यथार्थ कह रहा हूँ कि कितने कम मुनि थे पहले, कितने अधिक मुनि थे, हजारों-हजारों दीक्षा लेते थे। **बहुत सरल मार्ग है, बहुत कठिन मार्ग है।**

संघ में रहकर गुरु के यश में अपना यश ढूँढ़ना - यह नौका चल रही नदी की, पिता की सम्पत्ति पर इतरा के बैठना - ये नौका चल रही है समुद्र की। बेटा! स्वयं का परिवार चलाके देखो फिर कहना क्या गहराईयाँ हैं ? किस नय से समझना चाहते हो तत्त्व को ? व्यवहार से या निश्चय से। इसलिए केवली के

ज्ञान में झलकवा लेना ये तो मुख का विषय है, मुख का विषय कहने का है। पर निजकेवलपर्याय प्रगट करना ये पुरुषार्थ का विषय है। मैं सत्य बताऊँ, मैं मुनि केवली के ज्ञान में झलकवाने के लिए नहीं बना हूँ। **मैं अपने ज्ञायकभाव में कैवल्य प्रगट करने के लिए मुनि बना हूँ** । क्यों दूसरे के ज्ञान में झलकूँ? ऐसे दर्पण भी हैं आप दुबले-पतले होंगे तो पहलवान दिखोगे और पहलवान आदमी दुबला दिखेगा। छतरपुर जिले में धुबेला ग्राम है, राजा छत्रसाल का। वे छत्रसाल जिन्होंने कुण्डलपुर के मंदिर का द्वार बनवाया था। अब तो कागजों में ही इतिहास पढ़ पाओगे, पर द्वार नहीं देख पाओगे।

ज्ञानी! धुबेला के अंदर दर्पण रखा है, तुम जैसे ही सामने से गुजरोगे, तो छोटा-सा बालक आसमान छू रहा है और कितना ही लम्बा पुरुष हो, वह छोटा-सा दिखता है। दादाजी के यहाँ सुंदर दर्पण था और पंडितजी चेहरा देखने आये। चेहरा तो दिखेगा आपको पर आनंद नहीं आयेगा। चेहरा देखते ही मन में आयेगा - ये दर्पण तो दादा का है। काश! मेरे घर ये दर्पण होता तो मैं दबंगी से कहता मेरे घर में दर्पण है।

ज्ञानी ! जब केवली के चरणों में जायेंगे, समवशरण में जायेंगे, मेरा द्रव्य-गुण-पर्याय झलकेगा तो, पर दर्पण है दूसरे का। आनंद जब आयेगा मेरे ही कैवल्य में मेरा ही द्रव्य-गुण-पर्याय झलकेगा तो आनंद आयेगा कि दर्पण मेरा है। ऐसा पुरुषार्थ करो कि दूसरे का दर्पण देख तो लिया आपने, अब इतना द्रव्य इकट्ठा करो जिससे कि तुम स्वयं का दर्पण खरीद सको। कौन सा दर्पण? पहले पुण्य का द्रव्य संगृहीत करो जिससे निर्दोष संयम पले और अर्हन्त अवस्था तक पहुँच जाओ निर्दोष संयम से। **पुण्य का, पाप का नाश करने के लिए भी प्रबल पुण्य चाहिए।** अनंत चतुर्दशी का उपवास करते हो, सभी नहीं कर पाते, कुछ दोपहर में पानी पीते हैं कुछ ऐसे भी हैं जिनका दिन तो निकल गया, पर भुन्सारे होते-होते पानी पी लेते हैं। ओहो ! दिनभर भूखे मरे, सुबह होते-होते तारे गिनते रहे। **जब-तक तुम्हारा प्रबल पुण्य नहीं होगा तब-तक अच्छी शक्ति नहीं मिलेगी और अच्छी शक्ति, उत्तम संहनन नहीं मिलेगा, तो उत्तम संयम का पालन करोगे कैसे?** उत्तम संहनन मिलेगा तभी उत्तम संयम का पालन कर पाओगे, हीरे की कटिंग हीरे से होती है, पुण्य की कटिंग पुण्य से होती है। अंत में पुण्यप्रकृतियों का क्षय नहीं करना पड़ता, निर्वाण जाने का जब अंतिम समय बचता है तब जीव की पुण्यप्रकृतियों का क्षय होता है।

आचार्य भगवंत कह रहे हैं कि जो स्याद्वाद का कौशल है, उस कौशल को निजगुण-द्रव्य-पर्याय के समझने में लगाइये। अनेकांत दृष्टि क्यों थी ? जो अनेकांत-स्याद्वाद का प्रयोग था वो इसलिए था कि आप क्या चाहते हो स्याद् अस्ति, आप क्या नहीं चाहते हो स्याद् नास्ति। **जैसा आप चाहते हो वैसा दूसरा चाहता है, अपने भावों के मिलान के साथ उसके भावों का भी ध्यान रखो।** किसी के घर में विसंवाद न हो, घर में विसंवाद न हो तो भावों में विसंवाद नहीं होगा। आप निश्चय-अध्यात्म की भाषा का प्रयोग अवश्य कर लो। मैं यह कह रहा हूँ कि उस **निश्चय की भाषा का आनंद तभी आता है जब व्यवहार में शांति होती है।** पंडितजी! आपके घर में क्षेम, कुशलता, संपत्ति न होती, तो आप यहाँ न

बैठे होते इतनी शांति से।

जब बाहर में साता दिखती है तब भीतर में भी विशुद्धि दिखती है। **वे जीव विरले तपस्वी हैं जो बाहर की असाता को पानी की काई मानते हैं, बाहर की साता को पानी की काई मानते हैं और भीतर निर्मल नीर निहारते हैं। ऐसे तत्त्वज्ञ ज्ञानी विरले जीव होते हैं।** ऐसे जड़बुद्धियों की संख्या अधिक है जो पानी में काई से युक्त पानी को भी काई मानते हैं, पानी की निर्मलता में प्रवेश नहीं कर पाते हैं। जिनको प्रारम्भिक अवस्था में आत्मशांति चाहिए है तो अपने आस-पास की व्यवस्था को शांत रखें। चेहरा तो शांत पानी में ही दिखता है। भरी बाल्टी के पानी में भी मुख दिख जायेगा, पर उस पानी से लोगों को दूर रखना पड़ेगा, कोई बाल्टी ना हिला दे। यदि बाल्टी हिला दी तो पानी में चेहरा नहीं दिखेगा, क्योंकि पानी हिलने लगा है। ऐसे ही गृहस्थी को छोड़कर साधु बनके क्यों बैठना पड़ता है ? मात्र बाल्टी में धक्का लगानेवालों से दूर रहने के लिए, कि इन उपद्रवियों से दूर रहो, जिससे अपना चेहरा देख सकें। जब निज में निमग्न हो जायेगा और पानी में उतरेगा तो काई दिखेगी नहीं।

पंडितजी! जब नदी में कोई डुबकी लगाता है तो डुबकी लगाते समय क्या बता सकता है कि मुझे कितने लोग ऊपर से देख रहे हैं ? वह डुबकी लगाते समय क्या ऊपर खड़े लोगों को बता सकता है कि मैं अंदर कितने गहरे में गया ? नहीं बता सकता। हे ज्ञानी ! जल में डुबकी लगाने पर किसी को दिखाई नहीं देता और जल में नीचे जाने पर फिर किसी को बताने नहीं जा पाता, फिर चैतन्य-नीर में डुबकी लगाने पर वह ऊपर बताने कैसे आयेगा ? **उतारो, उतरो और बिना उतरे उतरते कहाँ हो। पानी में भी उतरता है तो पहले उतार के उतरता है। नदी के किनारे कपड़े उतार कर उतरता है। जब नदी में उतरने के लिए इतने उतारने पड़ते हैं फिर आत्म-नदी में, संयम-पानी में उतरने, डुबकी लगाने के लिए तो पूरे ही उतारना पड़ेंगे। उतारे बिना उतरा नहीं जाता और उतरे बिना नदी की गहराई का आनंद नहीं आ सकता।** आचार्य भगवंत् अमृतचन्द्रस्वामी कलश में कह रहे हैं -

मत देखना मिट्टी के पिण्डों को, चिद्पिण्ड चैतन्यध्रुव पिण्ड है, कैसा है ? जो निरगल है, जिसमें कोई बाधा नहीं है, विलसित है, प्रफुल्लित है, आनंदमयी है और शुद्ध प्रकाश से युक्त है, उत्तम प्रकाश से युक्त है। ऐसा शुद्ध प्रकाश से भरा हुआ सुप्रभात। सूर्य के उदय होने पर तुमने अनंत पर्यायों में सुप्रभात देखा है पर मेरा वह सुप्रभात कब होगा? जब कैवल्य-सूर्य उदित होगा, यही मेरा सुप्रभात होगा। इसलिए केवलज्ञान को दिवाकर कहा है? केवलणाण दिवायर। 'गोम्मटसारजीवकाण्ड जी' में आचार्य नेमिचन्द्रसिद्धांतिदेव ने जब तेरहवें गुणस्थान का वर्णन किया है तब गाथा में लिखते हैं- **'केवलणाण दिवायर'** ये केवलज्ञान दिवाकर है। हर सुप्रभात की बेला में ऐसा सुप्रभात करो, हर सुप्रभात की बेला में निज सुप्रभात का भाव बनाओ। मेरे जीवन का सुप्रभात कब हो ? केवलज्ञान का प्रगट होना ही सुप्रभात है, आनंद है। सुप्रभात में चिड़िया भी मुस्कराती है, वो भी चह-चह करती है, घोसलों में, चूहा भी

फुदकने लगते हैं, तिर्यञ्च भी प्रसन्न होते हैं। कितना भी पापी होगा वह एक बार तो कहेगा सुप्रभात में - जय हो भगवान्, जयजिनेन्द्र, जुहार, पाये लागो, मत्थे वंदामी, प्रणाम। कब? सुप्रभात की बेला में। हे जीव! वह सुप्रभात कैसा हो ? न किसी से जयजिनेन्द्र, न किसी से वंदामी, न प्रणाम, न पाये लागो, कुछ नहीं तो क्या ? एक मात्र निजधाम निजजिनेन्द्र को निज के भीतर देख रहा है। स्वस्थित है, अचलायमान है, चिगते नहीं हैं, कौन ? सिद्धपरमेष्ठी।

स्वस्थित हैं, स्खलित नहीं होते हैं, ज्ञानरूपी ज्योति उदय हुई है। ऐसा आनंद मेरी आत्मा का अचल है वो कभी चलायमान नहीं होगा, यह है ध्रुवधाम भगवानात्मा का सहजस्वरूप। आत्मा का प्रकाश, चैतन्य की दशा बताई है। शुद्धआत्मप्रकाश अनंतगुण को प्रगट किया है। विशेषण से अनन्त सुख से युक्त होते हैं उस सुख की व्याख्या है और अचल गुणों को प्रगट कर लिया है। इस तरह आत्मा का जो शुद्धस्वरूप है वह ये है, पर कैसे प्रगट करोगे ? स्याद्वाद कौशल से।

सब कुछ निज में देख रहे हैं, मैं स्याद्वाद प्रकाशरूप हूँ, आह्लादपूर्ण हूँ - ऐसी महिमा मेरे में ही उदित हुई है दूसरे में नहीं। ऐसे शुद्धस्वभाव की महिमा, ऐसा ज्ञानप्रकाश होने पर बंध-मोक्ष के मार्ग में पड़नेवाला अन्य क्या साध्य होगा? बंध-मोक्ष के पथ में वे पतित हों जो कर्मों से लिप्त होकर जीयें। मैं बंध-मोक्ष के पथ से भी मुक्त हो चुका हूँ, क्योंकि मैं मोक्ष को प्राप्त कर चुका हूँ। बंध-मोक्ष के मार्ग में कौन चलता है ? जो मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सका। यहाँ ध्रुवधाम दशा की अनुभूति की व्याख्या कर रहे हैं, मेरे तो अनंत चतुष्टयरूपज्ञान स्फुटमान है, मैंने चैतन्यपिण्ड और अनंत गुणों को प्रगट किया है। न मैं बंध देख रहा हूँ, न मैं मोक्ष देख रहा हूँ । ऐसे योगी की निश्चल ध्यान की दशा है। जाओ कहाँ ? निश्चलदशा में। न भोजन, न पानी, अनशनस्वभावी आत्मा है; चित्तरसस्वभावी आत्मा है। इसलिए क्या शाम का, क्या सुबह का, वे ही पुद्गल पिण्ड हैं जो अनंतबार भोगे और छोड़े। उस सिद्धदशा को भोग जिसे छोड़ना ही न पड़े।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

।। भगवान् महावीर स्वामी की जय ।।

शक्तिपिण्डः आत्मा

चित्रात्मशक्तिसमुदायमयोऽमात्मा सद्यः प्रणश्यति नयेक्षणखण्ड्यमानः ।
तस्मादखण्डमनिराकृतखण्डमेकमेकान्तशान्तमचलं चिदहं महोऽस्मि ॥270॥

शब्दार्थः - (चित्र-आत्मशक्ति समुदायमयः अयम् आत्मा) अनके प्रकार की निज शक्तियों का समुदायमय यह आत्मा **(नय-ईक्षण-खण्ड्य-मानः)** नयों की दृष्टि से खाण्ड-खण्डरूप किये जाने पर **(सद्यः)** तत्काल **(प्रणश्यति)** नाश को प्राप्त होता है **(तस्मात्)** इसलिए मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि **(अनिराकृत खण्डम् अखण्डम्)** जिसमें से खण्डों को निराकृत नहीं किया गया है, तथापि जो अखण्ड है **(एकम्)** एक है **(एकान्त-शान्तम्)** एकान्त शान्त है और **(अचलम्)** अचल है ऐसा **(चिद् महः अहम् अस्मि)** चैतन्य तेज मैं हूँ।

भावार्थः - आत्मा में अनेक शक्तियाँ हैं, एक-एक शक्ति का ग्राहक एक-एक नय है। सो नयों की एकान्तदृष्टि से देखो तो आत्मा का खण्ड-खण्ड हो नाश हो जाय, इसलिये स्याद्वादी नयों का विरोध मेटकर चैतन्यमात्र वस्तु, अनेकशक्ति समूहरूप, सामान्य-विशेष स्वरूप सर्वशक्तिमय एक ज्ञानमात्र को अनुभव करता है। ऐसा वस्तु का स्वरूप है, उसमें विरोध नहीं है।

समय देशना

भव्य बन्धुओ! आचार्यप्रवर कुन्दकुन्दस्वामी ग्रंथराज समयसारजी में ध्रुवज्ञायक स्वभावी भगवान् आत्मा के सहज स्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। यह चैतन्यधातु से युक्त आत्मद्रव्य स्याद्वाद की कुशलता से ही जाना जाता है। **जो स्याद्वाद में कुशल नहीं हैं वे आत्मा होने पर भी आत्मा के स्वभाव को नहीं पहचान पा रहे हैं।** कितने स्याद्वाद-विद्वेषी लोगों ने गुण-गुणी को भिन्न करके रख दिया। वैशेषिक गुण को गुणी से अत्यन्त भिन्न मानते हैं और उसके समवायीकरण से कार्य की सिद्धि मानते हैं। जबकि **गुण-गुणी में मात्र संज्ञा, लक्षण और प्रयोजन की दृष्टि से भिन्नत्व है; प्रदेशत्व की दृष्टि से, अधिकरण की दृष्टि से कोई भिन्नत्व नहीं है।** नयदृष्टि द्रव्य में खण्ड-खण्ड होकर निहारती है उस नयदृष्टि के खण्ड को दूर भी नहीं किया जा सकता, पर नयदृष्टि के खण्ड से आत्मा को खण्डित भी नहीं किया जा सकता। नयदृष्टि से शरीर खण्ड-खण्ड है, पर अखण्ड है। सिर भाग भिन्न है, मध्य भाग भिन्न है, अधोभाग भिन्न है, दाँत दाँत है, नाक नाक है, जिह्वा जिह्वा है, कान कान है, इसको कौन नष्ट कर सकता है? खण्ड-खण्ड में, अंश-अंश में देख रहा है नय। नय देख रहा है, देखना मात्र ही है, नय कह रहा है इसलिए ऐसा है ? ऐसा भी है इसलिए नय कह रहा है। आपके शरीर में कान भी है, नाक भी है, आँख भी है। जहाँ हम सूँघने की बात करेंगे तो आत्मा गन्धग्राहक हो जाती है। जब हम स्पर्श की बात

करेंगे तो आत्मा स्पर्शग्राहक हो जाती है। जब हम वर्ण की बात, को देखने की बात करेंगे तो आत्मा वर्णग्राहक हो जाती है फिर भी वह किसी को ग्रहण नहीं करती। ज्ञान ज्ञेय को जान रहा है। ज्ञान व्यवहार से ज्ञेयाकार हो रहा है पर ज्ञान ज्ञान ही है, ज्ञान ज्ञेयरूप से ज्ञेयाकार हो रहा है। पर ज्ञान ज्ञान ही है, ज्ञान ज्ञेयरूप नहीं है परमार्थ से। इन दो दृष्टियों की व्याख्या मात्र स्याद्वादकुशल के पास ही है।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्त्येऽयुक्तिर्नाऽवाच्यमिति युज्यते ।।आ.मी.।।

नित्यएकान्ती, अनित्यएकान्ती, उभयएकान्ती। जितने एकान्ती हैं चाहे उभयभूत हों, नित्यभूत हों, अनित्यभूत हों – ये सभी स्याद्वादनय के विद्वेषी हैं। उनके यहाँ न वाच्य घटित होता है, न अवाच्य घटित होता है। युवाओ ! तुम अपने जीवन का अहोभाग्य मानना, तुम उस कुल में जन्मे हो जिस कुल में स्याद्वाद सिद्धांत का जयनाद होता है। यदि किसी एकांतपक्ष में जन्म लिया होता, कितने ही विशुद्धसागर क्या, महावीर स्वामी भी समझाने आ जाते तो भी विषय मस्तिष्क में तो समझ में आता पर श्रद्धा में नहीं आता। पंडितजी! मस्तिष्क में तो शीघ्र समझ में आ जाता है पर श्रद्धा में समझ में नहीं आता। मस्तिष्क के समझने का जो विषय है, कितने जैन विद्यालयों में अजैन अध्यापक स्याद्वाद सिद्धांत की प्ररूपणा कर रहे हैं, लेकिन वे मस्तिष्क से कर रहे हैं, श्रद्धा से नहीं कर रहे।

ज्ञानी ! कितनी युवा टीम मुनिसेवा संघ की लगी हुई है। मंदिर का माली (बागवान) कब से सेवा कर रहा। उसकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी निकल गई मंदिर की सेवा में। समय पर माली काम कर रहा है, सेवा में कोई कमी नहीं, सबसे पहले मंदिर का द्वार वही खोलता है। मस्तिष्क की सेवा चल रही है, अर्थ की सेवा चल रही है परंतु आत्म-अर्थ से कोई प्रयोजन नहीं है। जब भी वो घण्टी बजाने जायेगा, तब दूसरी ही घण्टी बजायेगा। ये उसकी नौकरी है, ये उसका व्यापार है। ऐसे ही कितने ही जीवों ने जैन ग्रन्थों की टीकाएँ की हैं पर वो बुद्धि का विषय था, भाषा के ज्ञान का विषय था, न कि आत्मा के श्रद्धान का विषय था।

पड़ोसी के पुत्र को पुत्र कौन नहीं कहेगा? कहा जा सकता है, लेकिन हिस्सा कोई नहीं देता। पुत्र कहता अवश्य है, परन्तु अपना बेटा नहीं कहता। ऐसे ही भिन्न सम्प्रदाय में जन्मा जीव, भिन्न सम्प्रदाय की व्याख्या भी कर लेगा, लेकिन जैसे पड़ोसी के बेटे को बेटा कहने पर भी आस्था नहीं होती। पड़ोसी का तो छोड़िए, भाई के बेटे को भी बेटा कह लेते हो, परन्तु धीरे से कह देते हो, मेरे साथ रहता है मेरे बेटे के तुल्य है। इसका मतलब ? तुल्य शब्द कहता है - ये मेरे बेटे के समान है, दो मिनट नहीं लगे कहता है बड़े भाई का है, मैंने ही पाला इसको।

ऐसे ही ज्ञानियो ! परदर्शन में पहुँच करके समझ लेना सरल है, पर उसे स्वीकार करना सरल नहीं है। यहाँ आकर कोई बैठने लग जाये, भक्तिभाव से युक्त होने लग जाये, इसका तात्पर्य ये मत मान बैठना

उसने आपको स्वीकार कर लिया है। अच्छा लगा सो बैठा, समझ में आ रहा था सो बैठा, समय था सो बैठा। पर जरूरी नहीं उसने अपना मान लिया। दूसरे की बात क्यों करो, मैं स्वयं बैठा हूँ विद्यार्थी जीवन में, मैं हर दर्शन में जाकर बैठा, खूब सुना, दिन-दिनभर सुना है। स्कूल की छुट्टी हुई, खाली बैठे हैं, सुनने चले गये, सुना था स्वीकारा कहाँ था ? स्वीकारा होता तो आज दिगम्बर मुनि कैसे बनता? और इतने गहरे सुन चुके थे कि हमारी कक्षा में तीन ऐसे छात्र थे तीनों साधु बनने जा रहे थे, आपस में बैठते थे, जब भी समय मिलता धार्मिक चर्चा होती थी।

एक दिन कक्षा में पढ़ रहा था, प्रधान अध्यापक पढ़ा रहे थे। बोले - जैन को सूचित कर दो, हम कंबल लंगोटी लेकर आ चुके हैं। मैं कक्षा में था तभी एक भाई पास में आया, भाई! आपके मित्र बुला रहे हैं , वो कह रहे हैं - मैं कंबल लंगोटी की व्यवस्था करके आ चुका हूँ। तात्पर्य समझ गये आप। पंडितजी! मैं कक्षा में बैठा क्या कहता ? मैं स्याद्वाद वंश में उत्पन्न हुआ हूँ, मैं एकान्त मत में कैसे जा सकता हूँ ? मित्रता इस बात की थी कि आपके अंदर धार्मिकता थी पर धर्म-एकता नहीं है। मित्रता इस बात की थी, आप सज्जन पुरुष थे, धार्मिक पुरुष थे। धार्मिक एकता तो है, पर धर्म-एकता नहीं है।

पंडितजी! आपके साथ भी ऐसा है। हमारी आपकी धार्मिक एकता है पर धर्म-एकता नहीं है, क्यों ? आपका धर्म श्रावकधर्म है, मेरा धर्म मुनिधर्म है। धार्मिक एकता है, धर्म-एकता नहीं है। आपका ज्ञान-दर्शन, मेरा ज्ञान-दर्शन धार्मिक एकता है, धर्म-एकता नहीं है। मेरा ज्ञान-दर्शन स्वतंत्र है, आपका ज्ञान-दर्शन स्वतंत्र है। हम दोनों के धर्म में कोई एकता नहीं है। कण-कण स्वतंत्र है। इस अज्ञानता में मत बैठे रहना कि हम सब एक धर्म को मान रहे हैं, जैनधर्म की दृष्टि से एक धार्मिकता हो सकती है पर आत्मधर्म की दृष्टि से किसी की धर्म-एकता नहीं है। मैं सिद्धों में धर्म-एकता नहीं स्थापित करना चाहता फिर आप कौन होते हो ? पराधीनता का जीवन क्या जीना। जैनकुल में आकर, जिनवाणी सुनकर, वस्तु-स्वतंत्रता को नहीं स्वीकारा, तुमने नहीं जाना, तो तुमने क्या किया ? मनीषियो! मात्र अपनी स्वतंत्रता का वेदन कर लो।

पुनः सूचना आती है, जल्दी आओ, मैं तुम्हारे लिए भी लंगोटी कम्बल लाया हूँ। फिर मैंने सूचना पहुँचा दी आप चलो, मैं विचार करूँगा। मैं किसी को आघात नहीं पहुँचाना चाहता था। पर जैसे ही समाचार पहुँचे हम विचार करेंगे, आप आगे चलो, वो दोनों घर चले गये, क्योंकि कोई ताकत देनेवाला चाहिए था। घर पहुँच गये। इसके दो वर्ष बाद मुझे आचार्य विरागसागर मिल गये। मैं अब ब्रह्मचारी बनकर पहुँचा। मैंने कहा - भाई! चलो, जैसे ही उन्होंने मुझे देखा, दोनों-के-दोनों पैर में गिर गये, बोले - इस मार्ग की सामर्थ्य हममें नहीं है। वे ही दोनों युवा इन्दौर के चातुर्मास में आये, वे फूट-फूटकर आँसू गिरा रहे थे। बोले - हम गृहस्थी में फँस कर रो रहे हैं। उसमें एक आगरा में मिल गया पिछले वर्ष, कहता है - मुझे नहीं था मालूम, अरे जैन तुम्हारे ! ये जलवे।

जो वैभव को देखता है उसे वैभव को दिखाकर धर्म दिखाना चाहिए। तीर्थंकर का समवशरण लगाना अनिवार्य है। जैनियों के गजरथ महोत्सव निकलते हैं, वह भी अनिवार्य हैं। जो पंचकल्याणक में वैभव प्रदर्शित करते हो बहुत अनिवार्य है। तीर्थंकर के सब कुछ छोड़ने के बाद लोक की दृष्टि वीतरागता पर नहीं है, लोक की दृष्टि वैभव पर, सरागता पर है। पर सब कुछ छोड़ने के बाद भी सब कुछ मिल सकता है। ऐसा वैभव दिखाई दे रहा समवशरण में तो मिथ्यादृष्टिजीव दौड़कर आता है, देखूँ तो क्या है। वह देखता है वैभव तो पूर्ण है, पर वैभव से दूर हैं। वैभव तो पूर्ण है पर वे देख रहे हैं 'वे-भव', अज्ञानी देख रहा 'वैभव'।

ऋद्धि भी सम्यक् का साधन है। ऋद्धि सम्पन्न देवों की ऋद्धि को देखकर नीचे-नीचे के देव सोचते हैं कि मैंने भी देव आयु का बंध किया, पर मिथ्यात्व का सेवन किया था सो क्षुद्र देव बना। ऋद्धि की महिमा को देखकर वह सम्यक्त्व को प्राप्त हो जाता है। एक पंचकल्याणक महोत्सव में यदि एक करोड़ का भी खर्चा हो गया और उसमें एक जीव की श्रद्धा जम गई कि जैनधर्म सत्य है तो सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया। एक करोड़ की कीमत नहीं। धन तो सबका विलीन हो जाता है। आप जानते हैं, पर सम्यक्त्व मोक्ष दिला देगा। धन तो सबका नष्ट हो जाता है। चामुण्डराय के काल में क्या दूसरे धनपति नहीं थे ? थे। पर जिन्होंने धन को भोग में लगा डाला वे दिखाई नहीं दे रहे हैं, जिन्होंने वीतराग धर्म के लिए लगाया था, वहाँ गोम्मटेश दिखाई दे रहे हैं।

पंडितजी! पर्याय विलीन होने के पहले जो कमाकर रखा है वह बेटों को देकर मत जाना। तुम तो विशाल जिन प्रतिमा देकर जाना। सेठ पाहिल से पूछो, खजुराहो में जिनमंदिर स्थापित किये हैं। और भी सेठ थे उनका क्या अस्तित्व दिखाई दे रहा है ? पर सेठ पाहिल के स्थापित जिनबिम्ब जिनालय सारे विश्व में जैनत्व की प्रभावना कर रहे हैं। **सत्यशासन में जन्मने पर सत्यशासन पर आस्था है वही तुम्हारा पुण्योदय है, चमत्कार है।** शासन में जन्म लेना मात्र पुण्य नहीं है उस पर आस्था होना आवश्यक है।

पंडित जी! मेरी धार्मिक एकता है, धर्म-एकता नहीं है। मैं जिस तन में विराजा हूँ उस तन में ही मेरी धार्मिक एकता है, धर्म-एकता नहीं है। मैं जिस तन में विराजा हूँ उस तन में ही मेरी धर्म-एकता नहीं है फिर तुम्हारे साथ कैसे हो सकती है। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण इस तन का धर्म है। ज्ञान-दर्शन मेरी भगवान्-आत्मा का धर्म है। मुमुक्षु ! अपन कहते हैं कि आज की पीढ़ी तत्त्व को नहीं समझती है। ये युवा प्रतिदिन स्वाध्याय करते हैं। हे कुन्दकुन्द! आपका मक्खन कितना महान् है।

बालक! तू किसके कपड़े पहनकर आया ? भाषा बदल गई युवा की। अभी कह रहा था अपने ही पहन कर आया। अब कह रहा सूती, ठीक कह रहा है। जब अपने कह रहा था वो भी सत्य था, सूती कह रहा वो भी सत्य है। जब तू अपने कह रहा था तब विजातीय उपचरितअसद्भूत व्यवहारनय से वो वस्त्र तेरे

थे, तेरे हैं । पर जब सद्भूत व्यवहार की दृष्टि से देखेंगे तब यह शरीर ही तेरा नहीं है, ये वस्त्र तेरे कहाँ से होंगे ? इसलिये व्यवहारनय को आप एक नय में मत देखिये।

सद्भूत-असद्भूत – ये मुख्य दो भेद व्यवहारनय के हैं। शुद्ध सद्भूत-अशुद्ध सद्भूत। शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय शुद्ध गुण-गुणी में भेद करता है। अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनय अशुद्ध सद्भूत गुण-गुणी में भेद करता है। पर दोनों का काम भेद करना है। जो शुद्ध निश्चयनय का विषय बनता है वो ही शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय का विषय बनता है। अंतर इतना होता है शुद्धनिश्चयनय अभेदग्राही है, वह मात्र ज्ञायकभाव की बात करेगा। व्यवहारनय शुद्धज्ञानदर्शन; केवलज्ञान, केवलदर्शन की बात करता है। अशुद्ध सद्भूतव्यवहारनय है वह मति-श्रुत ज्ञान को पकड़ेगा। इसमें एक ही व्यवहार को मत देखना, उपचरित-असद्भूत, अनुपचरित-असद्भूत व्यवहारनय और आगे चले जाओगे, स्वजाति उपचरित व्यवहारनय, विजातीय उपचरितअसद्भूत व्यवहारनय, स्वजाति-विजाति उपचरितअसद्भूत व्यवहारनय । नयदृष्टि जो है इतनी विशाल है, जब-तक नयदृष्टि का बोध नहीं होता है तब-तक वस्तुस्वभाव को पहचान नहीं सकते हो, जान सकते हो। जानने में तो बहुत विषय बनता है, पहचानने में बहुत विषय नहीं बनता।

ज्ञानी ! एक का नाम सागर है, एक का गाँव सागर है। जहाँ जन्म लिया जीव ने मालूम नहीं चलता पर दूसरी जगह जाता है तब मालूम चलता है कि सागर से, अपने नगर से कितना राग है। बहुत सारे विषयी अज्ञानमयी अवस्था में मोह से ग्रसित हैं और वह अपने-आपको निर्मोही मानते हैं। शास्त्रीजी! नागपुर के ही हो ? नहीं, करेली का हूँ। करेली के प्रति राग तो है, वहाँ पहुँचता है तो दौड़ नागपुर को लगाता है। कारण वहाँ जन्म का राग है, यहाँ जीवन जीने का राग है पर दोनों ही राग बंध के कारण हैं। कम-से-कम एक राग का प्रत्याख्यान कर दे, जिसमें अब जाने की संभावना नहीं है। फिर भी त्याग नहीं कर पा रहा जीव। अब तू करेली रहने जायेगा नहीं, जायेगा नहीं तो करेली का त्याग बुद्धिपूर्वक क्यों नहीं कर देता ?

धन्य है निर्ग्रन्थ मुनिदशा। धन्यदशा है इनकी कि ये जिस कक्ष में होते हैं उस कक्ष का भी त्याग करके यहाँ आये हैं। जिस पाटे पर बैठे थे उस पाटे का भी प्रत्याख्यान करके आये हैं । **वीतरागी दिगम्बर आचार्यों ने स्वाध्याय को गौण रखा है, प्रत्याख्यान को प्रधान रखा है।** स्वाध्याय को षडावश्यक में कुछ आचार्यों ने स्वीकारा है, उसको छहढालाकार ने स्वीकारा, लेकिन मूलाचार में आचार्य वट्टकेरस्वामी, आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी आदि मुनियों के षट्आवश्यक में प्रत्याख्यान को रखते हैं। त्याग धर्म है, वस्तु का ही नहीं, वचनों का भी; वचनों का ही नहीं, भावों का भी त्याग करते हैं। एक क्षण पहले तुम्हारे मन में अशुभ भाव आ गया, **'तस्स मिच्छामे दुक्कड़ं'**। इस भाव का त्याग करता हूँ। कोई अशुभ शब्द मुख से निकल गया, हे भगवन्! **'तस्स मिच्छामे दुक्कडं'**, प्रत्याख्यान करता हूँ। भाषा का

प्रत्याख्यान, शब्द का प्रत्याख्यान, भाव का प्रत्याख्यान क्योंकि निर्वाणदृष्टि है।

भाई ! शादी के लिए गये थे तो घर की इष्ट-से-इष्ट वस्तु भी खर्च की थी। पंडितजी! घर में रखा अपना मंगलसूत्र भी माँ शादी में भेज देती है। माँ! अपना मंगलसूत्र भी तू अपने बेटे की बहू के लिए भेज देती है। तू शादी करने गया था, तो कितने वस्त्र आभूषण लेकर गया था? पर जगत् की नारी पर कोई विश्वास नहीं था, वो तेरे घर में रहेगी, तेरी सम्पत्ति लेकर भाग भी सकती है। अरे! लोक में ऐसा भी होता है। ज्ञानी ! **संसार की रमणी से रमण करने के राग में जब तू अपनी माँ का मंगलसूत्र भेंट में चढ़ाकर आ जाता है। ऐसे ही जिसको मुक्तिवल्लभा से रमण करना है उस जीव को जगत् के सारे विषयसुखों का त्याग करना होता है।** जितने लौकिक मंगल हैं, ये सारे मंगलों का विसर्जन कर देगा तब परमार्थभूत आत्मरमणी में लीन हो सकेगा। छोड़ना पड़ेगा, परधर्म परधर्म है। भैया ! वर्तमान पीढ़ी को धर्म सिखाना है, तो उन पर थोपो मत, उन्हें स्वतंत्र छोड़ दो। स्वीकारो, अध्ययन कर लो फिर स्वीकार कर लेना।

संसार में ऐसे दर्शन हैं जिनमें अध्ययन की प्रचुर व्याख्या है, भाषा की प्राञ्जलता की पराकाष्ठा है। उस **भाषा की प्राञ्जलता, मिथ्यात्व की कठोरता व्यक्ति को ऐसे फँसा लेती है जैसे भौंरे को कमल-पाँखुड़ी फँसा लेती है।** जब मरणासन्न होता है तब उसे समझ में आता है हाय! मैं तो फँस गया। ऐसे ही **मिथ्यात्व की ऋजुता मधुर लगती है।** जब सम्यक् श्वासें नष्ट होने को होती हैं और कहीं जरासा विवेक जग गया, तब जीव को लगता है कि मैं तो फँस गया। इसलिए भैया! कोटी-कोटी भव जब निकल गये होंगे, तब जैनत्व की प्राप्ति हुई है आपको।

एक व्यवहार की बात कहूँ, उन बालिका और बालक को समझा के रखना जो वासना के राग में अपने वश न होकर, धर्म को छोड़कर, प्रपञ्च में इतने लीन हो गये। जैनकुल की बिटिया दूसरे कुल में पहुँच जाये वासना के अतिरेक में, जब वासना ठण्डी होगी तब समझ में आयेगी, हाय! मैंने क्या कर डाला ? यही मिथ्यापंथ के साथ होता है, जीव समझ नहीं पाता मधुरता लगती है। कल एक भैया शाम को वैयावृत्ति के समय कह रहा था, कभी-कभी लगता है अपन को पता नहीं चलता कितने जीवों का परिणमन किस निमित्त से हो जाता है, महाराज जी! मैं एक विपरीत मार्ग में जा चुका था, पर कभी अच्छा लगता था, कभी अश्रद्धान होता था, डगमग हो रहा था, पर मित्रों के राग में चला गया। ऐसा लगता था कि मैं फँस गया हूँ, वहाँ से अपने को निकाल नहीं पा रहा था, पर तत्त्व को आपके यहाँ सुना। आया था कहीं दूसरी जगह जाने के लिए, पर नागपुर से जाने के भाव नहीं हुए। तीन दिन से मैं यहीं हूँ और ऐसा लग रहा था मेरे जीवन के जितने प्रश्न थे सबके उत्तर मिल चुके हैं। अब मैं पूर्ण स्वस्थ होकर जा रहा हूँ, अब कुपंथ की ओर प्रवेश नहीं करूँगा। इसलिए सत्य में लगाना मत, सत्य को बता देना।

किसी को सत्य में लगाना मत, लगाने की बात करोगे तो उसे लगेगा मुझ पर थोप रहे हैं। पूछो, ये मुनिराज बैठे हैं, मैंने एकसे भी नहीं बोला - तुम मुझसे दीक्षा ले लो बल्कि मैं कहता हूँ कि देख-दाख के आइए। सत्य में मैं लगाने का कर्त्ता नहीं हूँ, बताने का कर्त्ता अवश्य हूँ। व्यवहार से लगोगे आप तभी जब आपके भीतर का गुरु निर्मल हो जायेगा। गुरु मारे बिना गुरु कहाँ मिल सकता है ? पहले गुरु को मारना पड़ेगा तब गुरु मिलेगा। समझो, गुरु यानी गर्व, अहंकार, कषाय। **जब-तक भीतर की कषायों का गुरु नष्ट नहीं होगा तब-तक भीतर की विशुद्धि का जन्म नहीं होगा। जब-तक भीतर की विशुद्धि का गुरु नहीं जन्मेगा तब तक बाहर में पंच परम गुरु मिल नहीं सकते। इसलिए स्याद्वाद नीति का आश्रय लो जो स्वाश्रित है, मिथ्यात्वलता को त्यागो जो पराश्रित है।**

अमरबेल को आप जानते हो क्या ? पतली रस्सी जैसी पीली-पीली बेलें बड़े-बड़े वृक्षों पर मिल जाती हैं, बेरी के ऊपर, अन्य बबूल आदि के ऊपर बेल लटकती हैं पीली लतायें, उनका नाम है अमरबेल। उनकी जड़ें नहीं होती हैं, पराश्रित हैं, पर जिसका आश्रय लेती हैं उसे सुखा डालती हैं, स्वयं में हरी-भरी रहती है, अमरबेल। जो दूसरे को सुखाकर अमर रहती है ऐसे ही मिथ्यात्वलता है अमरबेल, जो सम्यक्त्व को सुखा डालती है, मिथ्यात्व को सर्वत्र हरा-भरा रखती है। जानो, देखो, जाने दो, पर स्वीकारना मात्र सम्यक्त्व को।

मेरा धर्म, आपका धर्म भिन्न है; इस बात को आपने स्वीकार कर लिया बहुत अच्छे से । इसे न्याय, अध्यात्म की दृष्टि से बोलिए, स्वरूप-अस्तित्व, सादृश्य-अस्तित्व। **सादृश्य-अस्तित्व की दृष्टि से हम सभी समान हैं, पर स्वरूप-अस्तित्व की दृष्टि से हम सब भिन्न-भिन्न हैं।** पंडितजी! विशेष रूप से आपसे कह रहा हूँ जब किसी से द्वेष आने लगे तब सादृश्य-अस्तित्व का चिंतन करना।

न्याय के बिना करुणा नहीं, ये समयसार है। राग की करुणा तो हिंसा है जैसे कि माताओं को होती है। माँ बताऊँ, स्वयं का बेटा काला-कलूटा नाक छपी हो तब भी सुंदर लगता है। दूसरे का हीरे जैसा भी क्यों न हो नाक सिकुड़ती है। अपने बेटे को चम्मच से दूध पिला रही है। पंडितजी! देख रहे क्या करुणा है? पंडितजी ! ये करुणा है कि राग बरस रहा है। करुणा तब कहलाये जब पड़ोसी के रोते बेटे को दूध पिलाने पहुँच जाये। क्या कामठी के रास्ते में एक दृश्य नहीं देखा तुमने ? पंडितजी ! मैं तो कभी नहीं भूलूँगा। अभी नागपुर आ रहा था। दोनों बछड़े उसके नहीं होंगे, एक होगा। एक बहुत बड़ा था, एक छोटा था तो समझ में आ रहा था कौन किसका है लेकिन गाय दोनों बछड़ों को दूध पिला रही थी। इसलिए किसी कवि ने, विद्वानों ने यह नहीं लिखा 'धर्मी से मनुष्यनी जैसा प्रेम हो', यह नहीं कहा। **'धर्मी सों गौ बच्छ प्रीतिसम'।** एक बालक से कहा हमने, देखले, दुनियाँ की फोटो खींचता है आज एक गाय दो बछड़ों को दूध पिला रही है, फोटो खींच ले और जगत् को दिखा देना। इस गाय को अपेक्षा नहीं है कि ये बच्चे हमें घास खिलायेंगे, फिर भी दूध पिला रही है दुलार से। ये करुणा है।

आपके परिवार को किसी से कोई कष्ट हो जाता है तो दूर करने बैठ जाते हो, ठीक है ये राग की करुणा है। राग की करुणा में क्या होता है ? यदि तेरे बेटे को कोई मारे तो उसे मारने खड़ा हो जायेगा, ये राग की करुणा हिंसा में बदल गई। सुनना ध्यान से, वैराग्यमयी जो करुणा है यदि किसी ने उपसर्ग किया तब देखो। आचार्य महावीरकीर्ति के ऊपर किसी गाँव में लाठी से प्रहार करना प्रारंभ कर दिया। आजकल तो साधु के साथ अनेक श्रावक चलते हैं । वे काल कहाँ गये जब अकेले जंगल में जा रहे थे, कितने उपसर्ग हो जाते थे, बाँध दिया, प्रताड़ित कर दिया, कौन देख रहा है ? पर देखनहारा निज को ही देखता रहा। आचार्य महावीरकीर्ति के ऊपर लाठियों से प्रहार हुआ तो कोई चाँदमल नाम के सेठ थे, वे अपने गुरु के ऊपर साये की तरह खड़े हो गए कि मेरे जीते जी मेरे गुरु पर आँच नहीं आ सकती, पर कितना सँभालता? जब प्रहार-पर-प्रहार हुए तो ऊपर सेठ चाँदमल, नीचे आचार्य महाराज और लोग पीट रहे लाठियों से। बोले - आप यहाँ से कैसे निकले ? अचानक कोई पुलिस की गाड़ी कहीं जा रही होगी उन्होंने समझा कोई जानवर को ये लोग मार रहे हैं। गाड़ी जैसे ही खड़ी हुई वे सब भागने लगे। पुलिस ने देखा, ये तो एक धर्मात्मा को लहुलुहान कर दिया। सेठ चाँदमल और आचार्य महाराज दोनों पर प्रहार किया। पुलिस ने उन दोनों का उपचार किया। पुलिस का जो निरीक्षक, अधीक्षक था कहता है– महाराज! आपके ऊपर उपसर्ग किया है। आप जो कहोगे मैं इन्हें वही दण्ड दूँगा, आपकी आज्ञा। धन्य हो इस पंचमकाल के योगी को! आपकी समता को मेरा वंदन हो। आचार्य महावीरकीर्ति महाराज बोले - आप मेरी बात मानोगे। हाँ, क्यों नहीं मानूँगा आप पर इतना उपसर्ग किया है। इन का कोई दोष नहीं है, इनकी अज्ञानता का दोष है, इनको छोड़ दो। ये थी करुणामयी करुणा। उसका परिणाम क्या हुआ ? जब-तक आचार्य महाराज उस शहर में रहे तब तक जिन्होंने उन पर प्रहार किया था, वो उनके दर्शन करने आते उनके परम भक्त बन गये और उनके दर्शन करने बार-बार आने लगे।

न्यायदृष्टि से समझना पड़ेगा, स्वरूप-अस्तित्व, सादृश्य-अस्तित्व। **जब तुमको राग सताये स्वरूपअस्तित्व का चिंतन करना। जब तुमको द्वेष सताये, तो सादृश्यअस्तित्व का चिंतन करना।** जब तुमको द्वेष सताने लगा मैं दूसरा, ये दूसरा; तब सिद्धों के चेतनत्व में, निगोदिया के चेतनत्व में कोई अंतर नहीं है ऐसा निहारो। तुम ज्ञान-दर्शन-चेतनत्व को निहारो, सादृश्य-अस्तित्व। पंडितजी! यह विषय मैं प्रवचन का ही नहीं, अपनी सामायिक का भी विषय बनाता हूँ। यही सामायिक है। न्याय की सामायिक करो, अन्याय की नहीं। जब सारा लोक अस्त्रों के माध्यम से सम्प्रदाय का प्रचार करे, तब कहना अस्त्र छोड़ दो यही प्रचार है मेरे धर्म का। तुम लाठी-डण्डा छोड़ दो। मुझे अपने सम्प्रदाय का प्रचार नहीं करना, मेरी सम्प्रदाय का प्रचार हो गया।

ज्ञानी ! बोल रहा है कि हम आपके सर्वज्ञ को नहीं मानते। तो मैंने पूछ लिया बेटा! तू मेरे सर्वज्ञ को वर्तमान में भरत क्षेत्र में नहीं मानता, कि किसी भी क्षेत्र में नहीं मानता और पुनः मेरा प्रश्न है कि मेरे सर्वज्ञ

को भूत में नहीं मानता कि भविष्य में नहीं मानेगा कि वर्तमान में नहीं मानेगा? फिर ये कहता - मैं तीनों काल में नहीं मानता, किसी भी क्षेत्र में नहीं मानता। तो मैं पूछना चाहता हूँ, बेटा! ये तो बता, तूने भूत के सर्वज्ञ का अभाव कर दिया भविष्य के सर्वज्ञ का अभाव कर दिया, वर्तमान के सर्वज्ञ का अभाव कर दिया - ये तीनों लोकों की, तीनों कालों की बात को आपने कैसे जाना? यदि तू तीनों लोकों की, तीनों कालों की बात को जानता ही है तो मैं तुम्हें ही सर्वज्ञ मान लेता हूँ। क्योंकि मेरा सर्वज्ञ तो वही होता है जो त्रैकालिक द्रव्य, गुण, पर्याय को जानता है, वही मेरा सर्वज्ञ है।

ऐसे ही हमारी अहिंसा है। तुम परस्पर में लड़ रहे, झगड़ रहे। ये लड़ना, झगड़ना छोड़ दो। मुझे जैनधर्म के प्रचार की कोई जरूरत नहीं है। हमारा यही जैनधर्म है पर **जो धर्म के नाम पर लड़ रहे है, झगड़ रहे हैं, वे पापी लोग हैं, धर्मात्मा नहीं है, क्योंकि धर्म अहिंसा है।** यदि आप भी ये कह रहे हो कि मेरा मंदिर, तेरा मंदिर – ये धर्मात्मा की भाषा नहीं है। धर्मात्मा निश्चय से आत्मद्रव्य को देखता है, व्यवहार से अहिंसा धर्म को देखता है। **निश्चय-अहिंसा आत्मानुभूति ही है। व्यवहार-अहिंसा जगत् के प्राणीमात्र पर करुणा करना है।** जब करुणा करना है ही तो पंडितजी! ये तो बता दो - मैं तो मुनि ही बना हूँ, मैंने इसमें कौन पाप कर लिया ? मुझे भी मान लिया कर।

मैं यह कह रहा हूँ कि यदि तुम्हारे सामने तिर्यञ्च तड़पते आ जाये, तो तुम करुणा करने पहुँच जाते हो। कोई सप्तव्यसनी तड़फता हो तो करुणा करने पहुँच जाते हो। भैय्या! यदि कोई निर्ग्रन्थ मुनि तुम्हें दिख जाये, अस्वस्थ हैं पीड़ित हैं तो उसे जीवद्रव्य मान लो, इंसान मान लो। आप डॉक्टर हैं, पंडितजी ने कहा – डॉ. साहब अमुक महाराज बीमार हैं तो ये कहोगे कि मैं मुनि को नहीं मानता, मैं तो देखने नहीं जाऊँगा। तेरी प्रतिज्ञा भंग हो चुकी है। जब तूने डॉक्टरी पड़ी थी, जब तुझे प्रमाण-पत्र मिला था, तब तुझे प्रतिज्ञा दी गई थी, तुमने स्वीकार की थी मैं जाति, पंथ, भेष आदि को नहीं देखूँगा, मैं तो रोगी के रोग को ठीक करने जाऊँगा।

ऐसे ही जीव जब तू मुनि बना था, आचार्य बना था, उपाध्याय बना था, साधु बना था, तब तूने प्रतिज्ञा की थी, मैं जगत् के प्राणीमात्र पर करुणादृष्टि रखूँगा। यदि तू अब संघ, पंथ, आम्नाय के भेद में लिप्त होता है तो तेरी प्रतिज्ञा की हानि हो गई, ये न्यायशास्त्र बोल रहा है। बेगमगंज (रायसेन) से हम विहार कर रहे थे, हम तीन मुनि मात्र थे, सागर चातुर्मास के बाद विहार किया और बेगमगंज के रास्ते में रात्रि में एक स्कूल में संघ रुका। अचानक विशल्यसागर महाराज के सीने में दर्द होने लगा और उनका एकदम स्वास्थ्य बिगड़ गया। बेगमगंज में कोई डॉक्टर था, देखो मैं व्यवहार से बोल रहा हूँ। वे डॉक्टर मुमुक्षु भाई थे। अब श्रावक आपस में क्या बात कर रहे, क्या मालूम वो डॉक्टर आयेंगे कि नहीं आयेंगे ? रात्रि का समय था सारी बातें सुनाई पड़ रही थीं। रात्रि को दस बजे डॉक्टर आये, उन्होंने अच्छे से देखा। भले इंसान के नाते आये हो, पर करुणा तो थी।

एक महाराज का अचानक मल फूट गया, हम देख रहे थे, पंडितजी सेवा में लग गये। अपने हाथ से मल की सफाई करने लगे। हमने पूछा - आप ? वह बोले - महाराज जी! ये निर्विचिकित्सा अंग है और साधु की सेवा करना मेरा धर्म है। हमने कहा - लोग तो आपको मुमुक्षु बोलते हैं। उन्होंने कहा-महाराज लोगों का बोलना अलग विषय है पर मेरी श्रद्धा का विषय अलग है। मैं देखता रह गया उस विद्वान् को जो अपने हाथ से सफाई कर रहे थे। **जिसने विचिकित्सा को जीत लिया है, उपगूहन अंग का पालन करना सीख लिया है, वात्सल्य अंग से भरा है, वही धर्म की प्रभावना करा सकेगा।** नाना नगरों के युवा बैठे हैं, भाई! धर्म के मर्म को समझना। स्वरूप-अस्तित्व, सादृश्य-अस्तित्व। जब स्वरूपअस्तित्व को देखोगे, जिनकी सेवा कर रहे थे उनमें राग उत्पन्न होने लगे, तब समाधिकाल में आचार्य महाराज कहेंगे - हमने तुम्हारा त्याग कर दिया है। हे शिष्यो ! अब तुम मेरी सेवा नहीं करना, मेरा स्वरूप भिन्न है । तब कहना मेरे देह का धर्म मेरा नहीं है फिर हे साधक ! तेरा धर्म मेरा कैसा ? मुझे अपने निजधर्म में रहने दो । कौन बोल रहा है ? स्वरूप-अस्तित्व। सादृश्य-अस्तित्व में प्राणीमात्र को सादृश्यदृष्टि से देखना। तिर्यक्सामान्य, ऊर्ध्वतासामान्य, महासत्ता, अवान्तरसत्ता - इन शब्दों का प्रयोग किया करो प्रवचनों में जिससे कम-से-कम जिनवाणी की शब्दावली सुरक्षित रहे।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी जब लिख रहे होंगे तो कैसे तल्लीन होकर लिख रहे होंगे। भैया! जैसा ज्ञेय बनायेगा वैसा ज्ञान होगा। प्रवचनसार को बहुत अच्छे से जानने की जरूरत है। ज्ञानी ! यदि पंडितजी अपने हाथ में लेखनी लेकर के अर्हंत के स्वरूप का वर्णन लिख रहे हैं, हे विद्वान् उस समय तेरा काययोग अर्हन्त के स्वरूप को लिख रहा है, मनोयोग अर्हन्त को निहार रहा है, वचनयोग अर्हन्त को निहार रहा है, तेरे तीनों योग शुभ चल रहे हैं। ऐसे ही काल में तेरे बंध-अपकर्ष का काल भी आ जाए तो मेरे मित्र! तू अरिहंत के चरणों में बंध कर रहा है। ये बात सत्य है कि नहीं ? यहाँ तक तो बराबर।

जो प्राणी लेखनी लेकर के किसी जीव के दोष लिखने बैठ गया, जरूरी नहीं उसमें दोष हैं, लिखनेवाला लिख रहा है वह सत्य नहीं है, नियत नहीं है क्योंकि लोगों ने तो सर्वज्ञ में भी दोष खोजे हैं। यदि सर्वज्ञ में दोष न खोजे होते तो स्याद्वाद विद्वेषी कहाँ से होते ? जब तुम सर्वज्ञ में दोष खोज रहे थे, दुर्गुण खोज रहे थे। एक पंडितजी ने लिख दिया, ये जैनी कैसे हैं जो खायें और जायें नहीं, अरे! आहार करें और निहार न हो ऐसा कहीं होता है क्या ? अरे! उन अज्ञानियों को कौन समझाए ? एक व्यक्ति ढाई सौ ग्राम बादाम का हलवा पचा लेता है और एक व्यक्ति एक बादाम खाले तो लोटा लेकर भागता है । ये तेरे निज के क्षयोपशम का विषय है कि तू अपने अनुसार सबको देख रहा है। सर्वज्ञ की बात नहीं कर रहा हूँ। तीर्थंकर महामुनिराज आहार करते हैं, पर निहार नहीं होता है। ऐसे ही कोई जीव किसी पुरुष में दोष देख रहा है। जब अर्हन्त का वर्णन करनेवाला विद्वान् अर्हन्त को ज्ञेय बना रहा है उसका उपयोग निर्मल चल रहा है। ऐसे ही कोई जीव किसी के दोषों को ज्ञेय बना रहा है उसमें उसका काययोग भी है अशुभ, मनोयोग भी है

अशुभ,वचनयोग अशुभ, बंध-अपकर्ष काल आ गया तो नीच गोत्र का ही बंध होगा। अब निज पर करुणा हो वैसा करना। अपन क्या कर सकते हैं, अपन तो अकर्त्ता हैं, वस्तु धर्म - ये है। 'जो है सो है'।

उज्जैन में एक छोटीसी बच्ची चौथी कक्षा की, उसकी मेडम ने लिखवाया, पढ़ाया, उसने लिखके दे दिया। उस बालिका से वह पूछती है कि - ये आपने क्या लिखा? तो उस बच्ची ने कहा – जो है सो है। अब शिक्षिका को दो दिन समझ नहीं आया, तीसरे दिन उसने माता-पिता को बुलाया, बोली-ये ऐसा लिख रही है। मैं कुछ पूछती हूँ तो कह देती है- जो है सो है। पिताजी थे, वो भी कहने लगे, ठीक तो है, जो है सो है। मेडम बोली – क्या है ? आपको मालूम नहीं है हमारे गुरु महाराज पधारे हैं उनके प्रवचन से सीखा है बेटी ने 'जो है सो है'।

चित्रात्मशक्तिसमुदायमयोऽयमात्मा सद्यः प्रणश्यति नयेक्षणखण्ड्यमानः।
तस्मादखण्डमनिराकृतखण्ड मेक मेकान्तशांतमचलं चिदहं महोऽस्मि ।।270/कलश।।

नानारूपता को प्राप्त ये आत्मा अनंत शक्तियों से युक्त है, अनेक शक्तियों का पिण्ड है, कौन ? ये आत्मा। अभी-अभी तो आपने सैंतालीस शक्तियाँ सुनीं। ये आत्मद्रव्य आज ही नष्ट हो जायेगा पर नाश होनेवाला है नहीं, दृष्टि देखो आचार्य भगवन् की। कैसे ? जो नयों से देखेगा वो अखण्ड आत्मा को खण्ड-खण्ड कर देगा। ये भूमिका किसकी चल रही है? नाक, कान, मुँह। क्या नाक, कान की बात कर रहे, नयों से देखोगे तो खण्ड-खण्ड है, प्रमाण से देखोगे तो अखण्ड एक शरीर है। इसमें ही रागद्वेष है जीवों को। इसलिए खण्ड का निराकरण तो नहीं हो सकता है, क्योंकि नयदृष्टि है सो है। खण्ड का निराकरण कर दोगे तो ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यस्वभावी आत्मा कैसे होगी? इसलिए खण्ड का निराकरण तो नहीं हो सकता है। खण्ड का निराकरण तो अकृत, फिर भी अखण्ड एक है, अचल है, शान्त है, कौन ? मेरा चैतन्य। मेरा चैतन्य अखण्ड है, वो कैसा ? मैं हूँ, कोई मुझे शिष्य कहता है, प्रसन्न होता है; कोई गुरु कहता है तो प्रसन्न होता है। पर तुम मुस्करा लो, हँस लो, प्रसन्न हो जाओ पर मैं तो जो हूँ सो हूँ। क्या कोई मुझे शत्रु नहीं मानता? जिसकी दृष्टि शत्रु देख रही वो मुझे शत्रु मानेगा। कोई मित्र मानता है, कोई शिष्य मानता है, पर विश्वास रखो, तुम झंझट में मत पड़ना, मैं किसी का हूँ नहीं, तो मैं हूँ क्या ? मैं अखण्ड आत्मद्रव्य हूँ।

ज्ञानी ! झंझट में पड़ मत जाना, मेरे महाराज। जिसे तुम मेरा कह रहे हो उसे मैं अपना मेरा नहीं मानता हूँ। तुम किसको देखके मेरा कह रहे हो ? कर्म-नोकर्म के पिण्ड को देखकर मेरा कह रहे हो। मुझे देखने की ताकत तेरे पास नहीं है, न मैं द्रव्य से खण्डित होता हूँ, न क्षेत्र से खण्डित होता हूँ, न काल से खण्डित होता हूँ, न भाव से खण्डित होता हूँ, तो क्या हूँ ? विशुद्ध। अरे! विशुद्धसागर नाम मत समझ लेना। देखो पंडितजी! नियोग ऐसे होते हैं कि नाम भी चुन के रखा आचार्य विरागसागर ने। श्रेयांसगिरि में दीक्षा हो रही थी, पूरी सभा में हल्ला क्या हो रहा था, श्रेयांससागर। आचार्य महाराज ने मंत्र बोलकर नाम

की घोषणा की तो निकला विशुद्धसागर। पर ज्ञानी! नाम के विशुद्धसागर से मोक्ष नहीं मिलता, परिणामों के विशुद्धसागर से मोक्ष मिलेगा, नहीं तो तुम भूल के बैठ जाओ, मेरा नाम विशुद्धसागर है। किसी को छोड़ने का नहीं, किसी से मिलने का नहीं, मैं कैसा हूँ ? विशुद्ध, एक हूँ? कौन ? मैं तो एक ज्ञानमात्र हूँ। ज्ञायकभाव ही मेरा अखण्ड स्वरूप है, खण्ड-खण्ड होता नहीं, इस प्रकार से समझना।

आत्मस्वभावं परभावभिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

।। भगवान् महावीर स्वामी की जय।।

ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।

ज्ञेयो ज्ञेयः ज्ञानकल्लोलवल्गद् ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रमः ॥271॥

शब्दार्थः - (यः) जो **(अयं)** यह **(ज्ञान मात्रः भावः)** ज्ञानमात्रभाव **(अहम् अस्मि)** मैं हूँ **(सः ज्ञेय-ज्ञानमात्रः एवं न ज्ञेयः)** वह ज्ञेयों का ज्ञानमात्र ही नहीं जानना चाहिए **(ज्ञेय-ज्ञान-कल्लोल-वल्गद्)** ज्ञेयों के आकार से होनेवाले ज्ञान की कल्लोलों के रूप में परिणमित होता हुआ वह **(ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातृमत्)** ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातामय **(वस्तुमात्रः ज्ञेयः)** वस्तुमात्र जानना चाहिए।

भावार्थः - अनुभव करते ज्ञानमात्र अनुभवे तब बाह्य ज्ञेय तो पृथक् ही हैं, ज्ञान में बैठे नहीं और ज्ञेयों के आकार की झलक ज्ञान में है सो वह ज्ञान भी ज्ञेयाकाररूप दिखता है। ये ज्ञान के कल्लोल हैं सो ऐसा भी ज्ञान का स्वरूप है। आपसे आप जानने योग्य है, इसलिए ज्ञेयरूप भी है। आप ही अपने को जानने वाला है, इसलिये ज्ञाता भी है। ऐसे तीनों भावस्वरूपज्ञान एक है। इस प्रकार ज्ञानमात्रभाव ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता - इन तीनों भावों से युक्त सामान्य विशेषस्वरूप वस्तु है। सो अनुभव करनेवाला इसी तरह अनुभव करता है कि ऐसा ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ॥

समय देशना

भव्य बन्धुओ ! आचार्य प्रवर भगवत् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज समयसारजी में ध्रुवज्ञायकस्वभावी भगवान् आत्मा के सहज स्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। परमपारिणामिक टंकोत्कीर्ण ज्ञायकस्वभावी भगवानात्मा त्रैकालिक ध्रुव अवस्था से युक्त है। न खण्डित किसी को करता है, न खण्डित किसी से होता है। न भाव से खण्डित है, न काल से खण्डित है, न क्षेत्र से खण्डित है। किसी भी अवस्था में आत्मद्रव्य खंडित नहीं है, अखण्ड ध्रुवधारा है। ऐसी अखण्डधारा से युक्त आत्मद्रव्य है। जो ज्ञानमात्र ही नहीं ज्ञेय भी है; ज्ञेय ही नहीं ज्ञाता भी है, ज्ञप्ति भी है। जितनी प्ररूपणा, जितना चिंतन जैनाचार्यों ने आत्मा के बारे में किया है उतना चिंतन लोक में आत्मद्रव्य के बारे में कोई नहीं कर सका। एकमात्र जीवद्रव्य पर इतना चिंतन - अशुद्ध जीवद्रव्य पर चिंतन किया, शुद्ध जीवद्रव्य पर चिंतन किया।

सिद्धांतशास्त्र पर जो व्याख्यान हैं वे पूर्ण अशुद्धद्रव्य पर व्याख्यान हैं और सिद्धांत का अर्थ ही है जिसकी व्याख्या करते-करते अंत सिद्ध हो उसका नाम सिद्धांत। मार्गणा की व्याख्या करते-करते अंत में मार्गणातीत की व्याख्या की, सिद्ध परमात्मा की। गुणस्थान की व्याख्या की तो अंत में गुणस्थानातीत की व्याख्या की। पर्याप्ति का, प्राणों का वर्णन किया तो अंत में प्राणातीत की व्याख्या की, सिद्ध परमात्मा की। संज्ञाओं की व्याख्या की तो संज्ञातीत की व्याख्या की, सिद्ध परमात्मा की। गतियों की व्याख्या की तो गत्यातीत सिद्ध परमात्मा की व्याख्या की। इन्द्रियों की व्याख्या की तो

इन्द्रियातीत सिद्ध परमात्मा की व्याख्या की। **जिस व्याख्या का अंत ही सिद्ध से हो वही सिद्धांतशास्त्र है।**

जिसका प्रारंभ आत्मा से हो, आत्मा की नजदीकता से हो, आत्मा में लीन होने में हो, आत्मा में लवलीन हो जाये, उसका नाम अध्यात्म। जो मिश्रधारा से युक्त पर्याय की प्रधानता से, विभाव व्यंजनपर्याय की प्रधानता से, विभाव व्यंजनपर्याय में जो क्रियाकलाप जीव के चल रहे हैं, विभाव व्यंजनपर्याय में जो संज्ञाओं से युक्त परिणति चल रही है, वो विभावधारा की पूर्णता है।

जो विषयकषाय, वैराग्य से युक्त धारा का व्याख्यान है उसका नाम **प्रथमानुयोग** है। विभाव धाराओं की कथाओं से कैसे जीव बचे? कैसे जीव शुद्ध अवस्था को प्राप्त करे ? इसकी प्राप्ति का लक्षण जिसमें है, उपाय जिसमें है उसका नाम **चरणानुयोग** है। करण परिणामों की जो व्याख्या है, आत्मा के भावों की व्याख्या है, कर्म प्रकृतियों की व्याख्या है वही **करणानुयोग** सिद्धांतशास्त्र है। आत्मा से आत्मा की लीनता वो सिद्ध आत्मा की व्याख्या, शुद्धात्मा पर लक्ष्य जिसका है ऐसा अनुयोग अध्यात्म **द्रव्यानुयोग** है। उस द्रव्यानुयोग को केन्द्रित करके आत्मप्रवादपूर्व की जो व्याख्या है वह द्रव्यानुयोग का विषय है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने सिद्धांतों की भी व्याख्या की है। षट्खण्डागम पर सबसे प्राचीन जो टीका हुई है वह आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी की परिकर्म नाम की टीका है। आज वो टीका हमारे पास अनुपलब्ध हो गई। कभी-कभी ऐसा भी होता है। **जब नई वस्तु बहुत अधिक प्रभावित हो जाती है तो पुरानी वस्तु गौण होते-होते अभाव में बदल जाती है।** इस बात को स्वीकारना होगा। जब ग्रंथकर्त्ता के सामने प्राचीन ग्रंथ होते हैं और अपने क्षयोपशम की विराटता में जब सम्पूर्ण ग्रंथों का आलोडन कर लेता है और सम्पूर्ण ग्रंथों का सार मस्तिष्क में जब आ जाता है फिर लिखने बैठता है तो सबका नवनीत उस में आ जाता है। आचार्य वीरसेन स्वामी की टीका में यही हुआ है। धवलाजी में सार भरा है, धवलाजी इतनी प्रसिद्ध हो गई शेष टीकाएँ गौण होते-होते अभाव में बदल गईं।

आचार्यों, मुनियों और विद्वानों से स्पष्ट कहना है, कहीं तुम वर्तमान की शब्दावली मात्र का प्रयोग करते रहे, तो जिनागम की सैद्धांतिक, आध्यात्मिक शब्दावली गौण होते-होते आगे कहीं अभाव को प्राप्त न हो जाये। इसलिए आगम ग्रंथों की व्याख्या करते समय आगम ग्रंथों की ही भाषा का प्रयोग हो। समझाने के लिए नवीन भाषा का बाद में प्रयोग कर दो। प्रारंभ में कठिन भाषा का ही प्रयोग करना चाहिए। मैं बार-बार कह रहा हूँ अन्यथा तुम ईसवी सन् दो हजार तीन के हो जाओगे ।

आपकी पर्याय से सिद्धांत की रक्षा नहीं होगी। **कोई भी वक्ता अपनी पर्याय को जीवित नहीं रख सकता, कोई भी पुरुष अपनी पर्याय को जीवित नहीं रख सकता। उसकी पर्याय को पहचान करानेवाला कोई है तो उसका साहित्य है, आगम है।** कुन्दकुन्द की पर्याय को बतानेवाला

कौन है ? कुन्दकुन्द का साहित्य। पुष्पदंत व भूतबली को समझानेवाला कौन है ? षट्खण्डागम साहित्य है। पुष्पदन्त-भूतबली स्वामी उस मुनि वसदि में विराजते थे जिस वसदि में सैकड़ों मुनिराज थे। अर्हद्बलि के सामने तो यतिसम्मेलन चल रहा था, युगप्रतिक्रमण चल रहा था, वहाँ सैकड़ों मुनिराज थे, पर नाम किसका मालूम है ? आपकी पर्याय को आप सुरक्षित नहीं रख सकते हो। आपकी पर्याय को आपके शिष्य भी सुरक्षित नहीं रख सकते। आपकी पर्याय को आपके माननेवाले भी सुरक्षित नहीं रख सकते। आपकी पर्याय के नाम को भी यदि आपको सुरक्षित करना है तो आपका साहित्य ही आपको सुरक्षित रखेगा। **चिंतन की धारा इतनी पवित्र हो जो आगम की पुष्टि करे। चिंतन की धारा इतनी निकृष्ट न हो जो आगम का नाश करे।**

साधक का चिंतन आगम के अनुसार ही होना चाहिए है। अपने चिंतन के अनुसार आगम को नहीं चलाना चाहिए है। आपका चिंतन शाश्वत नहीं है, आगम शाश्वत है। हम शाश्वत सिद्धांतों को माननेवाले हैं। हमने महावीरस्वामी को प्रमाणित क्यों स्वीकार लिया ? क्योंकि उन्होंने पारसनाथ से हटकर कुछ नहीं कहा। हमने पारसनाथस्वामी को प्रमाणित क्यों स्वीकार कर लिया? क्योंकि उन्होंने नेमिनाथ से हटकर नहीं कहा। नेमिनाथादि को हमने क्यों स्वीकार लिया? क्योंकि उन्होंने आदिनाथ से हटकर नहीं कहा। आदिनाथस्वामी को हमने प्रमाणित क्यों मान लिया ? उन्होंने विदेहभूमि में जो तीर्थंकर शाश्वत विराजते हैं उन तीर्थंकरों ने जैसा व्याख्यान किया है वैसा चौबीसों तीर्थंकर ने कहा और जैसे भरतक्षेत्र की चौबीसी ने व्याख्यान किया है वैसे ही विदेहक्षेत्र के विद्यमान बीस तीर्थंकर ने किया है। जो विदेह और भरत के तीर्थंकरों ने व्याख्यान किया है वही ऐरावत के तीर्थंकर ने किया है क्योंकि **कैवल्य का विषय भिन्न-भिन्न नहीं होता है। कैवल्य का विषय एक ही होता है। आगमों, ग्रंथों के नाम बदल सकते हैं पर आगमों के सिद्धांत नहीं बदल सकते हैं।** आप कोई ग्रंथ लिखकर कोई नया नाम दे सकते हो। ये मात्र नाम बदलने की आपमें सामर्थ्य है, सिद्धांत बदलने की सामर्थ्य नहीं है। सिद्धांत बदल के लिखोगे तो वह ग्रंथ नहीं होंगे; कुशास्त्र होंगे। इसलिए ग्रंथों को हम प्रमाण नहीं मानते हैं। हम सिद्धांतों को प्रमाण मानते हैं। ग्रंथों के तो बहुत-बहुत ढेर लगे हैं, अन्य सम्प्रदाय में अनेकानेक ग्रंथ हैं। मुझे ग्रंथ प्रमाण नहीं है, मुझे जिनसिद्धांत प्रमाण है। कोई कहे; पुराने ग्रंथों में तो ऐसा लिखा है। हम पुराने ग्रंथों को नहीं मानते हैं, हम आगम के प्राचीन सिद्धांतों को मानते हैं। पुराने ग्रंथ तो जगत् में जो सबसे पहले लिखके रख लिए वे अपने आपको पुराने कहेंगे। अरे भाई! किसी का पिता और पितामह यदि चिलम पीता है तो वर्तमान के बेटे उसे प्रमाणित पुरुष मान लें तो चिलम पीना, धूम्रपान आदि व्यसन ही कहलायेंगे। ऐसे ही किसी पुरानी पोथी में हिंसा को धर्म लिख दिया हो, तो उसको मैं धर्म नहीं मान सकता। साक्षात् पर को पीड़ित किया जा रहा है वो धर्म कैसा? निज की खुशियों में पर को दुःखित किया जा रहा हो वो खुशियाँ कैसी ? वो धर्म कैसा ? ऐसे ग्रंथों को हम प्रमाणित नहीं मान पायेंगे।

हमें उन निर्ग्रंथ योगी की बात प्रमाणित लगती है जो अहिंसा को परमब्रह्म कहते हैं। जिन्होंने लेशमात्र भी हिंसक वृत्ति को आश्रय दिया है उसकी बात हम किंचित् भी प्रमाणित नहीं कर सकते। इसलिए ज्ञान को ही सँभालने की आवश्यकता है। सिद्धांत को समझते हुए ज्ञान को ही सँभालने की आवश्यकता है। सिद्धांत को समझते हुए ज्ञान को सँभालिए। शास्त्रीजी ! मन तुम्हारा विषयों में विचलित हो रहा है, इससे मात्र तेरा अहित होगा। तेरा मन विषयों की ओर दौड़ रहा है इससे मात्र तेरा घात होगा, पर तू वक्ता है, तेरी व्याख्यान की शैली कहीं विचलित हो गई तो अनंत श्रोताओं का घात हो जायेगा। मित्र ! व्याख्यान के काल में एक ग्रंथ की एक पंक्ति को समझना है तो अनेक पूर्वाचार्यों के ग्रंथों का अवलोकन करके आइए आप और जब-तक स्वयं में निर्णय नहीं हो पा रहा तब-तक निर्णायक बन कर उस विषय को मत उठाना।

जिस कलश की व्याख्या आज कर रहे हैं उस कलश के व्याख्यान में आपको कभी लगेगा ज्ञेय ज्ञान हो गया, कभी लगेगा ज्ञान ज्ञेय हो गया, फिर भी ज्ञान ज्ञान है, ज्ञेय ज्ञेय है। परज्ञेयों से भी ज्ञान में कल्लोलें उत्पन्न होती हैं, परज्ञेयों से ज्ञान में लहरें उत्पन्न होती हैं फिर भी लहरें ज्ञान की ही हैं, ज्ञेय की नहीं। देखो, इस विषय को धारावाहिक ही जाने देना। ज्ञान में ज्ञेयों से कल्लोलें उत्पन्न हो रही हैं फिर भी वे लहरें ज्ञेय की नहीं हैं, ज्ञान की हैं। अब तात्पर्य समझिए, एक युवा ने सरोवर के मध्य में एक पत्थर फेंका उस पत्थर के माध्यम से पानी उछलता दिखा, उस पानी में भैंस जाकर बैठ गई तो पानी बढ़ता दिखा। कहने लगे, भैंस ने पानी बढ़ा दिया। जो किनारों पर पानी नहीं था, वो पानी ऊपर आ गया। एक दृश्यमान दृश्य को देखो। जबलपुर में ग्रीष्मवाचना चल रही थी। सुबह शुद्धि को जहाँ जाते थे वहाँ एक विशाल सरोवर था। **ज्ञाता यदि सम्यक् है, तो हर तत्त्व में ज्ञेय खोजता रहता है।** दस-पाँच भैंसें घूमती रहती थीं। एक दिन क्या हुआ, चार-पाँच भैंसें एक साथ तालाब में घुस गईं, जैसे ही घुसीं पानी में बैठीं, पानी एकदम ऊपर आ गया। हमने कहा - देखो लोग कहेंगे पानी बढ़ गया। पानी बढ़ा नहीं, पानी घटा नहीं, पानी वही है। पानी के बीच भैंस है पर पानी किसने बढ़ा दिया? उछला कौन है ? ये व्यवहारवृत्ति परसोपाधिकअवस्था, पर उछला तो पानी ही है।

ज्ञानी ! तरंगें पत्थर से उत्पन्न हुई हैं ऐसा व्यवहार कहेगा, पर तरंगें उत्पन्न किसमें हुई हैं ? ज्ञेयों से ज्ञान में लहरें उत्पन्न हुई हैं पर लहरें ज्ञान में ही उत्पन्न हुई हैं, ज्ञेयों में नहीं हुई हैं। मित्र ! समझ में न आये तो कम-से-कम सुन-सुनकर अपने परिणामों को निर्मल करो। ये विषय ऐसा है कि छद्मस्थ से लेकर केवली तक जा रहा है। केवली के ज्ञान में भी कल्लोलें उत्पन्न होती हैं और छद्मस्थ के ज्ञान में भी कल्लोलें उत्पन्न होती हैं। क्या पर्याय-पर्याय की कल्लोलें चल रही हैं। जैसा मैं हाथ कर रहा हूँ वैसा तेरे कैमरे में परिणमन चल रहा है। अगर मेरा हाथ इधर-उधर न होता तो देख उसमें हो रहा है कि नहीं ? नहीं हो रहा। हो रहा है, केवल हाथ आ रहा है। यदि ये ज्ञेय न होता तो कैमरे में न झलकता। आकारवान है कोई वस्तु,

उसका आकार झलक रहा है। व्यवहार से कहेगा शास्त्री - महाराज! आपके हाथ की हर अवस्था उसमें आ रही है। मेरे हाथ की हर अवस्था उसमें आ रही है? मेरे मित्र! मेरे हाथ का उसमें कुछ नहीं आ रहा है। मेरे हाथ का परिणमन झलका रही है, ये भी सत्य है। ज्ञेय न होता, हाथ न होता तो झलकता क्या ? तो झलका भी हाथ है पर हाथ न होता तो झलकता क्या? तो झलका भी हाथ है पर हाथ नहीं झलका। परिणमन लेंस की स्वच्छता में ही हुआ है। इस बात को कहने की, समझने की, समझाने की विश्व में किसी दर्शन में ताकत नहीं है। कितना वैज्ञानिक-सैद्धांतिक विषय है। **एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में प्रवेश करने पर भी, एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप परिणत नहीं हो पाते।**

अण्णोण्णं पविसंता देंता ओगासमण्ण-मण्णस्स।
मेलंता वि य णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति।।पंचा. 7।।

एक दूसरे में प्रवेश होने पर भी, एक दूसरे को अवकाश देने पर भी, अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता। **'अनादि संबंधे च'**। ये जीव अनादिकाल से कर्म की एकसौ अड़तालीस प्रकृतियों से बद्ध है। कर्म की एकसौ अड़तालीस प्रकृतियों से बद्ध है, लेकिन तब भी एक भी प्रकृति मेरे चैतन्य को कर्मरूप नहीं कर सकी। व्यवहार से बोल रहा हूँ, हे जीव! इतना भोजन तू कर चुका है, बाहर का द्रव्य पूरा पेट में रख लेता है। भीतर जाने के बाद भी जबकि तेरे सर्वांग में आत्मा व्याप्त है पर पुद्गल का परिणमन पुद्गलरूप होकर बाहर निकल गया। पर तू एक भी दाने को चैतन्यभूत नहीं कर सका। कितना खाया, कितना पिया संतुष्ट ही कर सके। ज्ञान ने तो ज्ञान का ही वेदन किया है, इस विषय को समझोगे क्या ? मैं तो ज्ञाता ही रहा हूँ, मैंने इन्द्रियों से जाना ही तो है भोगा क्या है ? तटस्थ होकर समझना, विवेक से समझना, भ्रमित होने के पूरे अवसर हैं। स्वछन्दी मत हो जाना। व्यवहार से तुमने भोगा ही है, इसका बन्ध भी होगा।

मैंने इन्द्रियों से किसका सेवन किया ? ये पुद्गल पिण्ड है। इसे आँखें देख रही हैं। ये रक्तवर्ण है, इसे मैं जान ही तो रहा हूँ, स्वीकार कहाँ कर रहा हूँ। आप लोग पंखे के नीचे बैठे हो, कैसा लग रहा है, बोलो - कैसा लग रहा है? इसे तू जान रहा है कि नहीं ? स्पर्श इन्द्रिय से जान ही तो रहा है। आज मीठा किस-किस ने खाया ? मुख में रखा था, जब तुम मीठा खा रहे थे, तो मीठे में क्या खाया था ? बूंदी खाई थी। मिश्र मीठा खाया, शुद्ध मीठा नहीं खाया। तो हे जीव! जिह्वा पर रखी थी तूने तो जीभ के माध्यम से, रसना इन्द्रिय के माध्यम से तू क्या कर रहा था? तू जरा देख-ये वस्तु मीठी है; ये जान ही तो रहा था। ज्ञाता तो जान रहा था, राग भोग रहा था। ज्ञाता जान ही तो रहा था, यह मीठा है, यह जाना ही तो था। मैंने द्रव्यों को हर इन्द्रिय से जाना ही तो है। जाननक्रिया को भोगक्रिया में डालकर तू बंधक हो गया। अतन्मयीद्रव्य को अतन्मयीभूत होकर जानता रहता। अतन्मयीद्रव्य में तू राग का तन्मयी हो गया और बंधक हो गया।

तू कितना जान पायेगा पाँच इन्द्रियों से ? तू कितना जान पायेगा छद्मस्थ ज्ञान से ? पर क्षायिक ज्ञानी

से पूछो - वे तो लोकालोक को जान रहे थे तब भी बंध के भाव नहीं हो रहे, जाननक्रिया में। भोक्तृत्वक्रिया में जहाँ भोक्तादृष्टि का अभाव हो जाता है वहाँ बंध का अभाव हो जाता है। जाननक्रिया में भोक्तादृष्टि बैठी है, भोगनक्रिया बैठी है, वहाँ बंधन ही होता है। जगत् में ऐसा कौनसा द्रव्य है, ऐसी कौनसी क्रिया है, ऐसी कौनसी परिणति है विश्व की जिसे कैवल्य में न जाना जा रहा हो? पाँच पापों में से ऐसा कौनसा पाप है जो केवली के ज्ञान में नहीं झलक रहा ? झलक रहा है। वो अतन्मय होकर झलक रहा है। अतन्मय होकर जान रहे हैं, तन्मय होकर नहीं जान रहे हैं। वे मेरे बारे में तो कुछ भी नहीं जानते। जैसा मैं अपने बारे में जानता हूँ वैसा केवली मेरे बारे में कुछ भी नहीं जानते और जगत् के किसी भी द्रव्य के बारे में कुछ भी नहीं जानते। तन्मय होकर कुछ भी नहीं जानते।

बीच में किसी ने प्रश्न किया, उसका उत्तर - जो खाने का भाव है वह जीव का है, इसलिए भूल शरीर की नहीं है, भूल जीव की है। पर यहाँ जो व्याख्या का विषय चल रहा है वह ज्ञातादृष्टि में चल रहा है। जब भोक्तादृष्टि की व्याख्या करोगे तो ध्यान रखना; देह ने नहीं भोगा, देह के माध्यम से देही ने भोगा है। अन्यथा देह में ही तुम पाप-पुण्य की व्याख्या कर दोगे और यदि देह झुलस जायेगी तो पाप-पुण्य तुम्हारे झुलस जायेंगे, फिर देही तो अपनेआप में भिन्न ही हो जायेगी। इसलिये व्याख्या जो है वह द्रव्यानुयोग की है। **नय से एक की व्याख्या होती है, प्रमाण सब को ग्रहण करता है।** भगवान् मेरे बारे में कुछ भी नहीं जानते, मेरी अनुभूति भगवान् को किंचित्मात्र भी नहीं है। तुम्हारी सर्वज्ञता तुम्हारे घर में रह जायेगी। सर्वज्ञता तो व्यवहारी के घर में है। निश्चयों के घर में कोई सर्वज्ञता नहीं है, आत्मज्ञता है। **निश्चयनय से परमात्मा आत्मज्ञ है। व्यवहारनय से आत्मा सर्वज्ञ है। दोनों नयों से नहीं स्वीकारोगे तो मिथ्यादृष्टि हो जाओगे।**

तैयारियों से युक्त होकर के यदि विषयी पुरुष विषय का सेवन करता है उसकी अनुभूति अलग होती है और अचानक विषय का सेवन करता है उसकी अनुभूति अलग होती है। ध्यान दो, यदि आपने तैयारी से युक्त होकर दीक्षा ली है, तो आपको अहर्निश-प्रतिक्षण वैराग्य के चारित्र का आनंद आयेगा और बिना तैयारी के अचानक तुम्हें दीक्षा मिल गई या तुमने लेली है तो तुम निर्णय ही नहीं कर पाओगे, लम्बे समय तक कि मैं दीक्षित हूँ कि अदीक्षित हूँ। उसका निर्णय निज का नहीं था। आप दीक्षा देखने आये थे और दीक्षा लेली अथवा आपको दीक्षा मिल गई तो आपको दीक्षा का आनंद नहीं आ पायेगा और जिसने वर्षों से तैयारी की है; मुझे निर्ग्रंथयोगी बनके आत्मा का आनंद लेना है, तो हे जीव! तू प्रतिक्षण समरस का आनंद लेगा, सोमरस का नहीं लेगा। जिस जीव ने बिना तैयारी के दीक्षा ले ली है वो समरस का आंनद नहीं ले पायेगा, वो सोमरस का आनंद लेगा यानी मोह-मदिरा का। जो सर्वज्ञ हैं मेरे बारे में कुछ नहीं जानते इस बात को मानते हो ? नहीं मानते, तो आप जैन नहीं हो। सर्वज्ञ मेरे बारे में, जैसा मैं जानता हूँ, वैसा न निश्चय से जानते हैं, न व्यवहार से। हे माँ! यह समयसार की व्याख्या इसलिए चल

रही है कि अनादि से जो सिद्धांत मस्तिष्क में बैठे हैं मिथ्या, वो कैसे ठीक हों। भाई, आज बूंदी खाके आया है, अब ये शीघ्र बताओ बूंदी कैसी होती है ? मीठी। बूंदी मीठी थी कि चाशनी मीठी थी ? चाशनी मीठी थी, तो तुम लोग कितना झूठ बोलते रहते हो। बूंदी तो फीकी बेसन की। यानी भाई ! तू बूंदी खा के आया है तूने बूंदी खाई और बूंदी को खाते-खाते कितना समय निकाल दिया। मिश्र का आनंद लूटता रहा। मिश्र में जो अमिश्र था उसे आजतक समझ ही नहीं पाया। हे जीव! तूने बूंदी को, जलेबी को मीठा कहते-कहते पूरी पर्याय निकाल डाली पर ध्रुवसत्य को नहीं समझ सका कि बूंदी आजतक मीठी नहीं हुई। वह पराश्रित मीठापन है, स्वाश्रित नहीं है।

हे भोगियो ! तुमने जो आनंद लूटा है वह पराश्रित लूटा है, स्वाश्रित नहीं लूटा। **शुद्धोपयोगी निर्ग्रन्थ योगी जो आत्मा का आनंद लूटता है वह स्वाश्रित आनंद होता है और रागी-भोगियों का इन्द्रिय-आनंद पराश्रित होता है।** किसमें मग्न होकर डूब रहे हो? पराश्रित आनन्द में। क्या जलेबी मीठी है ? रस टपक रहा है उसका नाम ही रख दिया रसवन्ती, जलेबी का नाम है रसवन्ती। जलेबी खाते-खाते पूरा जीवन नष्ट कर लिया पर आज तक पता नहीं चला पाये कि मीठा कौन था ? चाशनी मीठी थी कि जलेबी मीठी थी ? पुनः मेरा प्रश्न है - माताओ ! बूंदी कैसी थी ? अरे! चाशनी के माध्यम से मीठी थी कि नहीं ? चाशनी से बूंदी अथवा जलेबी मीठी होती है, ये यह बोल रहा है। ये सही बोल रहा है कि नहीं बोल रहा। इसे आप जान रहे कि नहीं जान रहे कि बूंदी मीठी होती है। भैया! शास्त्री से पूछो जो बूंदी मैंने खाई है वह मीठी थी, वैसी मीठी का आपको ज्ञान हो रहा कि नहीं ? पंडितजी! उसका उत्तर दे दो, अभी उत्तर मिलता है सर्वज्ञ का। विश्वास है, मीठी है पर जैसा वो अनुभव कर रहा, मैंने खाई है वैसा आप कर रहे हो ? नहीं कर रहे।

जैसा मैं अनुभव अपनी परिणति का कर रहा हूँ तन्मय होकर, वैसा सर्वज्ञ अनुभव मेरा नहीं करता तन्मय होकर। यदि वो करने लग जायेगा तो मेरी अनुभूति उसमें प्रवेश कर जायेगी। मैं छद्मस्थ हूँ तो वे छद्मस्थ बन जायेंगे। इसलिए उनके ज्ञान में, मैं ज्ञेय बनके झलक तो रहा हूँ पर जैसा तन्मयीभूत होकरके स्वद्रव्य-गुण-पर्याय का वेदन केवली स्वयं का कर रहा है, वैसे लोक के किसी भी द्रव्य का वेदन केवली तन्मयीभूत होकर वेदन नहीं करता है। इस दृष्टि से केवली अज्ञानी है ? कुछ कहो, पर-द्रव्य की तन्मयता का अभाव है, इसलिए वे अज्ञानी हैं और मैं ज्ञानी हूँ अपने लिए, पर वे महाज्ञानी हैं उनके केवल्य ज्ञान में सारा विश्व चराचर झलक रहा है अतन्मयी होकर इसलिए वे ज्ञानी हैं। **'सर्वद्रव्य पर्यायेषु केवलस्य'। सम्पूर्ण गुणों की, सम्पूर्ण द्रव्यों की, सम्पूर्ण पर्याय को केवली एकसाथ जान रहे हैं, देख रहे हैं, पर अतन्मयीभूत होकर।** अब बताइए, केवली एकसाथ जान रहे हैं, देख रहे हैं पर अतन्मयीभूत। अब बताइए जैसा मैं अपने को जानता हूँ वैसा केवली मेरे को जानते हैं क्या ? नहीं जानते। अभी कुछ क्षण पहले आप कह रहे थे, जानते हैं। पंडितजी! विश्वास मानिए, बड़े-बड़े धुरंधर, वर्षों के दीक्षितों के अंदर

भी सिद्धांत की पूर्णता का अभाव झलकता है। हे भगवान्! इन जीवों पर करुणा बरसती है जब मैं दिनभर देखता हूँ; ये काम, वो काम; पर्यायें निकल जायेंगी, **हम जिस काम का उद्देश्य लेकर निकले थे, उसकी झलक कब आ पायेगी ?** ये ग्रंथों का वाचन भी छोड़ना पड़ेगा। पूरी पर्याय तुमने परपर्याय में लगा डाली। तू घर छोड़कर के एक आश्रम में निवास करने लग गया और घर से बोल के आया था, मुझे पर्याय से उदासता आ गई है। अरे मित्र! आज समझ ले सिद्धांत का तूने क्या किया ? पुद्गल की पर्याय में ही पूरा जीवन निकाल डाला। ये आँखें अक्षरों के गिनने में निकाल दी है तुमने, क्या किया ?

सद्दो बंधो सुहुमो, थूलो संठाण-भेद-तम-छाया।
उज्जोदादवसहिया, पुग्गलदव्वस्स पज्जाया॥16/द्र.सं.॥

तू बेटे की पर्याय को देखने से भागा , बेटी की पर्याय को देखने से भागा, पत्नी की पर्याय को देखने से भागा। यहाँ तूने परमात्मा की पर्याय को देखना प्रारंभ कर दिया, यहाँ तूने गुरु की पर्याय को देखना प्रारंभ कर दिया। यहाँ तूने अक्षरों को गिनना प्रारंभ कर दिया पर तू कहाँ देख पाया निजअक्ष को ? सत्य को तो समझना ही पड़ेगा, भले मैं ही क्यों न हूँ। कह देना विशुद्धसागर से - तुमने पच्चीस साल निकाल दिये ग्रंथों के अध्ययन करने में, पर वह तुम्हारा कोई सार का नहीं, जितने क्षण तुमने निर्ग्रन्थ को देखा वह तुम्हारा है। मेरे जीवन का अध्यात्म गुरु है; वह है समाधितंत्र ग्रंथ। इस ग्रंथ को देखने के पहले मैं भी सामान्य त्यागियों की भाँति जीता था। ये तस्वीर, फोटो को मैं धर्म मानता था। मैं ये समझता था - ये धर्म होता होगा। मेरी निज की पर्याय, असामान्यजातिपर्याय दो ही द्रव्यों में होती है जीव और पुद्गल में । कुछ जीव असामान्यजाति को मात्र जीवद्रव्य में मानते हैं, पर मुमुक्षु ! आचार्य जयसेनस्वामी ने पंचास्तिकाय में कहा - जीव-पुद्गल में दो द्रव्यों का परिणमन होता है, कैसे ? मैं विशुद्धसागर, ऐसा बोल रहा; 'मैं', कौन? शरीर, असामान्यजातिद्रव्य की पर्याय में 'मैं'। नर-देह में नरपना मान रहा है, तिर्यञ्च-देह में तिर्यञ्चपना मान रहा है।

नर की देह में नरपना, तिर्यञ्च की देह में तिर्यञ्चपना - ये ऐसा है जैसे साँचे में गुझिया। मसाला भिन्न है, साँचा भिन्न है फिर भी साँचे में गुझिया। हे मुमुक्षु ! ये नर देह साँचा है इसमें गुझिया का मसाला तो शुद्धात्मा है। जब एक सौ पाँच डिग्री बुखार चढ़े फिर कहना साँचे में गुझिया, तब कहना साँचे में गुझिया । जब पुद्गलकर्म नोकर्मपने को प्राप्त होता है तब जीव के सहचर होता है, वो जीव संज्ञा को प्राप्त होता है तो वो भी असामान्य अवस्था को प्राप्त हो रहा है और जीव तब कर्म-नोकर्म के साथ होता है, तब वह जीवपने की संज्ञा को प्राप्त हो रहा है, वह असामान्यपने को प्राप्त हो रहा है। और ज्ञानी ! धर्म,अधर्म, आकाश, काल में मात्र शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय का परिणमन चलता है। जीव जो है जब कर्मातीत हो जाता है, तब ये शुद्ध व्यंजनपर्याय को प्राप्त होता है, वह उसकी शुद्ध स्वभाव व्यंजन-पर्याय है। मिश्रधारा में हम लोग इतने संस्कारित हो चुके हैं कि ये तुम्हारा सौभाग्य, अहोभाग्य, परम अहोभाग्य बोलिए कि आप इस तत्त्व

को सुनने के लिए यहाँ बैठे हो और सुनने का, समझने का प्रयास कर रहे हो, नहीं तो विश्व में कितनी जीवों की संज्ञा है वे सब देह से मिश्रितधारा में ही जीवत्व खोज रहे हैं।

'पज्जयमूढा हि परसमया' जो पर्याय में मूढ़ हो रहा है वही परसमय है। शास्त्री जी! क्या तेरा भी मन करता है कि एकाध भवन तेरे नाम का नागपुर में बन जाये? अरे! हर पुर में हर लोगों के बन रहे हैं तब भी तू नहीं चाहता है एकाध भवन तेरे नाम का बन जाय, कम-से-कम लोग देखते रहेंगे। पर हे मूढ़ अज्ञानी! जीव पुद्गल की अवस्थाओं में निज की अनुभूति खोज रहा है ये 'पज्जय' मूढ़पना है तेरा। मैंने ऐसे भवनों को देखा है, शायद आपने भी देखा होगा जिन भवनों की भग्न दीवालों पर बैलगाड़ियाँ दौड़ जाएँ, इतनी मोटी-मोटी दीवालें थीं, वे महल खण्डहरों में बदल गए। **जो गगन का चुम्बन करते थे महल, वे अवनितल में सो गये तो मैं किसकी स्थिरता के लिए अपनी वर्तमान पर्याय को नष्ट करके आत्मभवन को भग्न करूँ ?** वर्तमान की पर्याय में भविष्य की पर्याय भी देख लेना चाहिए।

भाई ! तू मुझे देख रहा है कि नहीं ? देख रहा है। इस वर्तमान की पर्याय को तू पचास-साठ साल बाद देखेगा क्या ? उसे भी देख लो, और नियत नहीं है ये तो अनुमान की बात कर रहा हूँ उसे भी देख लो। जो मकान तुमने बनाया है पसीना डाल-डाल के उसकी भी भविष्य की पर्याय और देख लो। मुझे आश्चर्य होता है जब तू अपने पिता के मकान को गिराने खड़ा है उसने ऐसा कभी नहीं सोचा होगा। विश्वास रखना तेरा मकान भी तेरा बेटा गिरायेगा। किसके लिए तू मिट रहा, बन रहा, पूरे जीवन की साधना को बर्बाद कर रहा है? आज तुम बड़े भवनों को देखकर के मंदिरों को नष्ट कर दोगे, कल और भवन बनेंगे तो दूसरा भी आकर सोचेगा, वो भी उसको नष्ट कर देगा। इसी में तुम जीवन बर्बाद कर रहे हो। क्यों इसमें लवलीन हो ? जो शाश्वत है, **जो कभी नष्ट नहीं होगा उसका अवलोकन करो।**

तीर्थंकर का जो जन्म होता है वह झोपड़ी में नहीं होता। तीर्थंकर महावीरस्वामी का जन्म हुआ था नन्द्यावर्त महल में। कितने खण्ड का था ? सात खण्ड का। आदिनाथस्वामी का जन्म हुआ था वह कितने खण्ड का था चौरासी खण्ड का, वह कहाँ है? जब तीर्थंकर के भवनों को सौधर्म इन्द्र के आदेश पर कुबेर बनाता हो, वो नन्द्यावर्त वे चौरासी खण्ड के महल दिखाई नहीं दे रहे, तो वर्तमान के सड़ी-सड़ाई ईटों के महल कहाँ सुरक्षित बचेंगे ? इसलिए जिस पर्याय का विनाश मुझे नियत दिख रहा है, उस पर्याय में अपने को क्यों लगाना ? रह लो जब तक रह लो, भविष्य का भविष्य देखेगा। रक्षा द्रव्य की करो। जब-तक वस्तुस्वरूप का निर्णय नहीं है आपके अंदर तब-तक इन्हीं में आपको धर्म दिखता रहेगा। 'समाधितंत्र' एक अलौकिक ग्रंथ है। द्रव्यानुयोग का कोई नीतिग्रंथ है तो समाधितंत्र, इष्टोपदेश। द्रव्यानुयोग में दर्शनशास्त्र देखना हो तो 'स्वरूपसंबोधन'।

'पज्जयमूढा हि परसमया' स्व की पर्याय में मूढ़, सो पज्जयमूढा। पर की पर्याय में मूढ़ सो

पज्जयमूढा यानि पर्यायमूढ। कहीं ऐसा तो नहीं है शास्त्री जी! अध्यात्म के शब्दों पर ही तो मूढ़ नहीं हो रहे। यदि आपको समयसार की शब्दावली में आनंद आ रहा है, आपको समयसार के शब्दों में आनंद आ रहा है; हे पज्जयमूढ़ो ! ये पर की पर्याय में मूढ़ता है, क्योंकि कुन्दकुन्द भगवन् तो स्पष्ट कह रहे हैं -

अण्णाण मोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं।
बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्तो।।23/स.सा.।।

हे जीव ! बद्ध में तो राग किया ही, अबद्ध में भी राग कर रहा है। हे जीव ! अनेक भावों से संयुक्त इस लोक में तूने क्या किया? अज्ञान से मोहित हो करके तूने बद्ध अपने को तो माना-ही-माना, पर के बद्ध-अबद्ध को भी अपना माना। अत्यन्ताभाव जिनमें तेरा है उनको भी अपना ही मानता रहा। हटो-हटो, सटो-सटो; तब-तक पर से नहीं हटेगा, तब-तक निज में नहीं सटेगा। इसलिए ज्ञान की तरंगें, ज्ञान की लहरें चल रही हैं ज्ञेयों से, पर वे लहरें ज्ञेयों की नहीं ज्ञान की ही हैं। 27वाँ कलश बहुत प्रसिद्ध है। कुछ-कुछ गाथा, श्लोक इतने प्रसिद्ध हो जाते हैं कि जनसामान्य के मुख में आने लगते हैं। आज कहीं भी चले जाओ 'अहमिक्को खलु सुद्धो', जरा भी अध्यात्मप्रेमी होगा वो बोल देगा पर उसे पता नहीं ये क्या है? जब अहिंसा का सूत्र आता है दिगम्बर-श्वेताम्बर सभी आम्नायों में चलता है, आपको सभी जगह मिल जायेगा -

धम्मो मंगल-मुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तं णमंसंति जस्स धम्मे सया मणो।।8/वी.भ.।।
खम्मामि सव्व जीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वैरं मज्झं ण केण वि।।प्र.सू.।।

सूत्रों का शब्द-समानाधिकरण, उच्चारण-समानाधिकरण होने पर भी अंदर की भावाधिकरण भिन्न-भिन्न है। इसलिए ज्ञान ज्ञान है, ज्ञेय ज्ञेय है, ज्ञानमात्र ही ज्ञाता नहीं है। ये कलश क्या कह रहा है कि हे जीव! तू मात्र यही मानकर मत बैठ जाना कि ज्ञाता ज्ञानमात्र है। ज्ञाता ज्ञानमात्र नहीं है। ज्ञाता ज्ञेय भी है, ज्ञाता ज्ञानाकार भी है।

परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मय त्ति पण्णत्तं।
तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेयव्वो।।8/प्र.सा.।।

एकमात्र कुन्दकुन्द स्वामी के आगम, परमागम को समझने वाले को भी बहुत पुरुषार्थ करना पड़ेगा। पर इस बात का विश्वास रखना, समन्तभद्र, जिनसेन, वीरसेन जैसे योगियों को नहीं समझोगे तो कुन्दकुन्द स्वामी को नहीं समझ पाओगे। एक-दो भाग पढ़ने से अपने को विद्वान् घोषित मत कर देना। शास्त्रजी! जब ये छोटे-छोटे बालक समाज में वक्ता बनके आते हैं तब लगता है कि हे वक्ताओ! तुम जितना सम्यक् सुनके, समझके आये, उतना ही बोलना। पर तुम गहरे तत्त्व को बता नहीं पाओगे। कहीं मंच में लिप्त हो गया जीव और समय नहीं दिया स्वाध्याय के लिए, मात्र वक्ता बनके ही घूमता रहा, वाचक नहीं बन पाया

तो पूरा जीवन तुच्छज्ञान में ही निकाल देगा। **जितने गहरे वक्ता बनो, उतने गहरे वाचक बनने का पुरुषार्थ करो। ज्ञाता बनने का पुरुषार्थ करो।** ब्रह्मचारियो! ज्ञाता बनने का पुरुषार्थ आना चाहिए, मात्र मुख से बोलना मात्र प्रवचनशैली नहीं है, पर की रटी बातें कब तक कह पाओगे? जब-तक स्वात्मा का ज्ञान जाग्रत नहीं करोगे, क्या ग्रंथों को कण्ठस्थ करके बोल पाओगे ? ग्रंथों को कण्ठस्थ बोलके सत्य नहीं कह पाओगे, ग्रंथों को आत्मसात करके कह पाओगे। तत्त्व-निर्णय करने की विद्या लाओ। रटा ज्ञान तो जो तुम्हारे छत पर पानी की टंकी रखी है वह है। उसमें पानी भरा है वह पानी कब तक चलेगा ? बह गया कि खाली हो गया, टंकी खाली।

पाताल तोड़ कुआँ, जिसका शुद्ध पानी होता है अंदर से निकलेगा; ऐसे ही शब्दज्ञान से अर्थज्ञान पर जाकर के आप भावश्रुत की ओर प्रवेश करो। ज्ञानी ! पानी से पानी निकालने की विद्या जानते हो आप ? अरे! वर्तमान के भौतिक युग में तत्त्व को समझाने के दृष्टांत आँखों के सामने बरसते हैं। आज जो मशीनों से बोरिंग करते हैं पता है कैसे निकालते हैं ?बाहर से टंकियों में भरकर पानी लाते हो और फिर खोदते समय मशीन में पानी डालते आपने देखा नहीं क्या? पानी डाल-डाल कर नीचे पानी भेजा जा रहा है और जब पहुँच जाता है नीचे निश्चित स्थान पर फिर पानी डालना नहीं पड़ेगा, पानी निकलेगा सर्वांग से, केवली बनके। ये जिनवाणी वाचन तो मात्र खोदन क्रिया चल रही है।

नहीं देखा आपने, आप सब जानते हो कह नहीं पाते हो। जो-जो मैं बोलता हूँ वो सब तुम जानते हो, सब ज्ञानी हैं। यहाँ पर सभी विषयकषाय के प्राचार्य बैठे हैं। कैसे छल-कपट करना पड़ता है कैसे मायाचारी करना पड़ती है, इसके प्राचार्य हैं आप। ये भी शब्द मेरा नहीं है आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने लिखा है। प्राचार्य हो, विशिष्ट आचार्य हो।

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।

ज्ञेयो ज्ञेयः ज्ञानकल्लोलवल्गन् ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥271/कलश॥

ज्ञानमात्र मैं हूँ, ज्ञातामात्र ज्ञानमात्र ही नहीं है ज्ञेय भी है। ज्ञान ज्ञेयों का ज्ञेयपना, ज्ञान में कल्लोलें ले रहा है, लहरें उत्पन्न कर रहा है; पर-ज्ञेय भी मेरे ज्ञान में आ रहे हैं, पर-ज्ञेयाकार ज्ञान हो रहा है फिर भी पर-ज्ञेय नहीं हो रहा है, कैसे ? जैसे समुद्र में फेंका पत्थर अथवा उससे उत्पन्न की गई लहरें, पत्थर के द्वारा झलका तो पानी, पर झलका पानी ही है पत्थर नहीं। ऐसे ही ज्ञान में जो ज्ञेय झलक रहे हैं वे ज्ञेय ज्ञान ज्ञेयाकार हो रहा है पर ज्ञान ज्ञेयाकार हो रहा है, ज्ञान ही हो रहा है ज्ञेयरूप नहीं हो रहा है।

त्योहार पर गुड़ियाँ-गुल्ला, शक्कर की चिड़ियाँ आदि आकृति के मिलते हैं वह आप खा लेते हो। जो अहिंसक है वो जानवर की आकृति में चाहे मिठाईयाँ हों, कोई भी द्रव्य हो नहीं खाना चाहिये; चटाई आदि पर जिनमें तिर्यञ्चों के चिह्न बने हैं उनपर नहीं बैठना चाहिए। जो आकृति बनाई मीठे की वह चाशनी को जिस साँचे में डाल दिया तदाकार हुआ कि नहीं ? पंडितजी! यदि चिड़िया के आकार का

साँचा था उसमें सीरा (चाशनी) डाल दिया तो वह जमकर के क्या हुआ ? चिड़ियाकार। लेकिन चिड़ियाकार हुआ कि नहीं, पहले मानो, फिर जानो, पहचानो फिर मत मानो। चिड़ियाकार कौन हुआ ? शक्कर ही हुई कि साँचा हुआ। ऐसे ही ज्ञानियो! परज्ञेयों में ज्ञान ज्ञेयाकार होता है पर वो ज्ञान ही अपने आकार में है, ज्ञेयाकार होता है पर वो ज्ञान ज्ञेयाकार है स्यात्। चिड़ियाकार कौन हुआ? शक्कर ही परिणत हुई है, चिड़िया नहीं आई। चिड़िया आ जायेगी तो चीं-चीं करना शुरु हो जायेगा, चेतन बन जायेगी। जैसे चिड़िया नहीं आई वैसे ही परज्ञेय मेरे ज्ञान में आकरके मेरा ज्ञान परज्ञेयाकार नहीं हो गया, नहीं तो जड़ को देखूँगा तो मेरा ज्ञान ही जड़ हो जायेगा।

ज्ञान की कल्लोलें; ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञान; ज्ञान ज्ञेय ज्ञानि; ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता - इन से युक्त वस्तुमात्र से आत्मा स्वयं में ही ज्ञेय है। अब निश्चयनय से मैं ही मेरा, मैं को जाननहारा हूँ, मैं ही ज्ञाता, मैं ही ज्ञेय, मैं ही ज्ञान। वस्तुमात्र ज्ञान भी है, वस्तुमात्र ज्ञेय भी है, वस्तुमात्र ज्ञाता भी है, परमार्थदृष्टि। कभी नहीं सोचते आप जितना जिनागम के बारे में चिन्तन किया जा सकता है, नहीं सोचते। कभी तो सोच लिया करो। क्या क्षयोपशम होंगे हमारे आचार्य भगवन्तों के ? कैसे केवली के ज्ञान को संजोकर रखा है ? केवली के ज्ञान को संजो के रखा है कि निज के ही ज्ञान को संजो के रखा है? क्षायिकज्ञान मेरे ज्ञान में कैसे प्रवेश कर गया वो तो व्यवहारदृष्टि उपचारदृष्टि है। सर्वज्ञ की वाणी को हमने अपने ज्ञान में सँभालकर रखा, शास्त्र में सँभालकर रखा। पर ध्रुवसत्य है मैंने मेरा ही क्षयोपशम संजोकर रखा है। दोनों सत्य हैं स्यात्-स्यात्। पर मैं 'मैं' ही हूँ। इसमें स्यात् नहीं लगेगा। मैं मेचक भी हूँ, अमेचक हूँ। जो है, सो है।

आत्मस्वभावं परभावभिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

स्याद्वाद शक्ति

क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिन्मेचकाऽमेचकं
क्वचित् पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम।
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां जन्मनः
परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत् ॥272॥

शब्दार्थ- ज्ञानी कहता है **(मम तत्त्वं सहजम् एव)** मेरे तत्त्व का ऐसा स्वभाव ही है कि **(क्वचित् मेचकं लसति)** कभी तो वह आत्मतत्त्व मेचक अर्थात् अनेकाकार, अशुद्ध दिखाई देता है **(क्वचित् मेचक-अमेचकं)** कभी मेचक-अमेचक दोनों रूप दिखाई देता है **(पुनः क्वचित् अमेचकं)** और कभी अमेचक एकाकार शुद्ध दिखाई देता है **(तथापि)** तथापि **(परस्पर-सुसंहत-प्रगट-शक्ति-चक्रं-स्फुरत् तत्)** परस्पर सुसंहत प्रगट शक्तियों के समूह रूप से स्फुरायमान वह आत्मतत्त्व **(अमल मेधसां मनः)** निर्मल बुद्धिवालों के मन को **(न विमोहयति)** विमोहित (भ्रमित) नहीं करता।

भावार्थ- आत्मतत्त्व अनेक शक्तियों को लिये हुए है, इसलिए किसी अवस्था में कर्म के उदय के निमित्त से अनेक आकार अनुभव में आते हैं, किसी अवस्था में शुद्ध एकाकार अनुभव में आता है और किसी अवस्था में शुद्धाशुद्ध स्वरूप अनुभव में आता है, तो भी यथार्थ ज्ञानी स्याद्वाद के बल से भ्रमरूप नहीं होता। जैसा है वैसा ही मानता है, ज्ञानमात्र से च्युत नहीं होता।

अनन्तधर्मात्मकता

इतो गतमनेकतां दधदितः सदाप्येकता-
मितः क्षणविभङ्गुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात्।
इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजै-
रहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवम् ॥273॥

शब्दार्थ-(अहो आत्मनः तद् इदम् सहजम् अद्भुत वैभवम्) अहो! आत्मा का तो यह सहज अद्भुत वैभव है कि **(इतः अनेकतां गतम्)** एक ओर से देखने पर वह अनेकता को प्राप्त है और **(इतः सदा अपि एकताम् दधत्)** एक ओर से देखने पर सदा एकता को धारण करता है **(इतः क्षण-विभंगुरम्)** एक ओर से देखने पर क्षणभंगुर है और **(अतः सदा एव उदयात् ध्रुवम्)** एक ओर से देखने पर सदा उसका उदय होने से ध्रुव है **(इतः परम-विस्तृतम्)** एक ओर से देखने पर परम विस्तृत है और **(इतः निजैः प्रदेशैः धृतम्)** एक ओर से देखने पर अपने प्रदेशों से ही धारण कर रखा हुआ है।

भावार्थ- यह द्रव्यपर्यायात्मक अनन्तधर्मा वस्तु का स्वभाव है। जो पूर्ण अज्ञानी हैं उनके ज्ञान में आश्चर्य उत्पन्न होता है कि यह असम्भवसी बात है। ज्ञानियों के वस्तुस्वभाव में आश्चर्य नहीं है तो भी ऐसा अद्भुत परम आनन्द होता है कि जैसा पहले कभी नहीं हुआ, यह आश्चर्य भी उपजता है।

।। समय देशना ।।

भव्य बन्धुओ! आचार्यप्रवर भगवन् कुन्दकुन्दस्वामी ग्रन्थराज समयसारजी में ध्रुवज्ञायकस्वभावी भगवान् आत्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं।

चिद्पिण्ड चैतन्यज्ञानघन आत्मद्रव्य परज्ञेयों से अत्यन्त भिन्न है। निजज्ञान निज ज्ञप्ति से ही युक्त है। निज प्रमाता प्रमीति निजप्रमेयपने से युक्त है। जो-जो ज्ञेय दिखाई दे रहे हैं वे ज्ञेय की तरंगें कल्लोलें ज्ञाता में नजर आती हैं पर यथार्थ में वे ज्ञान की कल्लोलें हैं। अज्ञानी जीव नहीं समझ पाता है, वह परज्ञेयों में ज्ञान निहारता है, जब कि ज्ञान परज्ञेयों में नहीं है। ज्ञान से हम परज्ञेयों को जानते अवश्य हैं। न्यायशास्त्रों में न्याय की भाषा में भगवान् भट्टअकलंकस्वामी ने जो व्याख्या लघीयस्त्रय, राजवार्तिक आदि ग्रन्थों में की उसी को लेकर आचार्य माणिक्यनंदीस्वामी ने कहा है कि - मैंने अकलंक-महोदधि से इन माणिक्यमणियों को निकालकर लाया हूँ।

नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत्।।2/6,प.मु.सू.।।

अर्थ - पदार्थ और आलोक ये ज्ञान के हेतु नहीं हैं, तमोवत्; अंधकार के समान।

जैसे अंधकार में बहुत सारे जीवों को दिखाई देता है और बहुत सारे जीवों को दिखाई नहीं देता, तो ये अर्थ आलोक, प्रकाश पदार्थ ये हमारे ज्ञान का कारण कैसा ? अगर यूँ कहूँ जैसा-जैसा ज्ञेय होगा वैसा-वैसा ज्ञान होगा, ज्ञेय के अभाव में ज्ञान नहीं होता। अरे! दो भिन्न ज्ञेयों को, जड़ ज्ञेयों को, चेतन बनाना चाहता है। ज्ञान आत्मा का धर्म है कि जड़ का धर्म है ? हम ज्ञेयों के माध्यम से ज्ञान को उत्पन्न नहीं करते, ज्ञान के माध्यम से ज्ञेयों को व्यवहार से जानते अवश्य हैं, परन्तु परमार्थ से तो ज्ञेयाकार जो झलक रहा है वो मेरा ज्ञान ही है परज्ञेयों के आकार प्रवेश नहीं किये हैं। मेरे ज्ञान का ही आकार है।

अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकं प्रदीपवत्।।2/8, प.मु.सू.।।

अर्थ - ज्ञान यद्यपि पदार्थों से उत्पन्न नहीं होता तो भी पदार्थों को जानता है।

इस सूत्र को समझने की आवश्यकता है। प्रमेयरत्नमाला, प्रमेयकमलमार्तण्ड, प्रमेयकलिका आदि ग्रन्थ इस परीक्षामुख सूत्र पर हैं। प्रमेयकमलमार्तण्ड ग्रन्थ में आचार्य प्रभाचन्द्रसूरि ने इस सूत्र पर विशद व्याख्या की है। लघुअनंतवीर्य ने प्रमेयरत्नमाला में मध्यम व्याख्या की है।

ये ट्यूबलाइट, ये हेलोजन, ये सब प्रकार के साधन तुम्हें दिखाई दे रहे हैं। भैया ! वह दीपक माईक से उत्पन्न हुआ है कि माईक से दीपक उत्पन्न हुआ? दीपक से कोई पुरुष का जन्म हुआ कि पुरुष से दीपक

का जन्म हुआ ? दीपक यहाँ रखा हो उसके प्रकाश में दीपक ही दिखेगा कि और कुछ भी दिखेगा ? ये ट्यूबलाइट है, इस ट्यूबलाइट के प्रकाश से मुझे ट्यूबलाइट दिखाई दे रही है। क्या मुझे शास्त्री का चेहरा दिखाई नहीं दे रहा ? दे रहा है। पर इस जीव का चेहरा इससे उत्पन्न नहीं हुआ। ज्ञेयों से ज्ञान उत्पन्न मानते हो ? जो जिससे उत्पन्न होता है उससे ही उत्पन्न माना जाता है तो फिर घर की उत्पत्ति भी दीपक से होना चाहिए, या दीपक की उत्पत्ति भी घर से होना चाहिए। जबकि दीपक घर से उत्पन्न नहीं होता, घर दीपक से उत्पन्न नहीं होता। वह उससे उत्पन्न न होने पर भी उसका प्रकाशक होता है। ऐसे ही हमारा ज्ञान जो है जगत् के ज्ञेयों से उत्पन्न नहीं होता है तब भी हमारा ज्ञान ज्ञेयों को प्रकाशित करता है।

आपको लगता है विभिन्न ग्रन्थों के विभिन्न विषय हैं, मुझे तो लगता है सम्पूर्ण ग्रन्थों में एक ही विषय है। व्याख्यान शैलियाँ भिन्न हैं; अध्यात्मदृष्टि से, न्यायदृष्टि से, प्रमाणदृष्टि से, नयप्रमाणदृष्टि से, प्रमाणनयदृष्टि से, भेददृष्टि से, अभेददृष्टि से, पर्यायदृष्टि से, गुणदृष्टि से, गुणपर्यायदृष्टि से, द्रव्यदृष्टि से, द्रव्यगुणपर्यायदृष्टि से। सिद्धांतापेक्षा, न्यायअपेक्षा, अध्यात्मअपेक्षा, प्रथमानुयोगअपेक्षा, करणानुयोगअपेक्षा; ये सारी अपेक्षा-अपेक्षाएँमात्र हो सकती हैं, पर कथन तो छः द्रव्य का ही है, पंचास्तिकाय का ही है, नौ-पदार्थ का ही है, सात तत्त्वों का ही है। इसके बाहर कोई व्याख्यान का व्याख्येय नहीं है। जो भी वाच्यार्थ है वह वाच्यार्थ छः द्रव्य के अन्तर्गत है। सांख्य के पच्चीस तत्त्व भी छः द्रव्य के वाच्यार्थ हैं। वैषेशिक के नौ तत्त्व भी छः तत्त्व के वाच्यार्थ हैं , बौद्ध के तत्त्व भी छः द्रव्य के वाच्यार्थ हैं ।

विपर्यास द्रव्यों में नहीं है, विपर्यास ज्ञाताओं की बुद्धि में है। विपर्यास पदार्थों में नहीं है, वस्तु में नहीं है, विपर्यास आपकी दृष्टि में है। कुछ नहीं करना, मात्र अपनी दृष्टि पवित्र कर लो, कहाँ है विपर्यास ? गेहूँ को घुन से बचाने के लिये उसकी सुरक्षा रखते हो पर तेरी बुद्धि में एकान्त का घुन लग गया है, विपरीतता का घुन लग गया है। संशय, विपर्याय, अनध्यवसाय का घुन लग गया है। न्याय की भाषा में समारोप का घुन है। उन समारोप का घुन निकल जाये तो आप स्वच्छ हो।

ज्ञान विशद हो, ज्ञान वैशद्य हो। सिद्धांत समझने के लिए तत्त्वार्थसूत्र जिसने कण्ठस्थ कर लिया है उसको जहाँ देखो वहाँ फिट हो जायेगा। न्याय समझने के लिए परीक्षामुख कण्ठस्थ करलो। जहाँ देखो वहाँ लगा लोगे और न्याय सिद्धांत दोनों को एकसाथ देखना हो तो पच्चीस श्लोक प्रमाणमात्र 'स्वरूपसम्बोधन' को कण्ठस्थ कर लो। मैं क्या बोल रहा हूँ - वाच्यार्थ छः द्रव्य हैं, दृष्टियाँ अपनी-अपनी देखने की हैं। लोक में राजस्थान में केसरियाजी जैसी कितनी जिनप्रतिमा हैं जिनको दिगम्बर अपनी दृष्टि से देख रहे हैं श्वेताम्बर अपनी दृष्टि से देख रहे हैं, वैष्णव अपनी दृष्टि से देख रहे हैं। प्रतिमा एक आदिनाथस्वामी की दिगम्बरमुद्रा, जबकि तीनों आम्नायों को मालूम है कि ये प्रतिमा तो दिगम्बर है। सबको पता है, पर अपनी-अपनी दृष्टि से देख रहे हैं।

ज्ञानी ! आप मेरे शिष्य हो कि अपने पिता के बेटा हो, कि चाचा के भतीजे हो, कि आप-आप हो? सत्य बोलिए, सत्य क्या है ? जिनको रागदृष्टि से देखना हो वो तुझे शिष्य देखें, भाई देखें, बेटा देखें, भतीजा देखें पर सत्य तो ये है - 'अहमिक्को', तू तो तू ही है। ये रागियों के सम्बन्ध नानत्वभूत हैं, पर मेरा द्रव्यत्व एकत्वभूत है। ऐसे ही छः द्रव्य अपने स्वरूप में एकत्वभूत हैं। पर नाना रागियों की विपरीतता में कोई तत्त्व को क्रियावादी, अक्रियावादी, द्वैतवादी, अद्वैतवादी, क्षणिकवादी, शून्यवादी, नित्यवादी, अनित्यवादी, प्रत्यक्षवादी, परोक्षवादी, चित्तअद्वैत, शून्यअद्वैत देखते हैं। जितने मिथ्याएकान्तदर्शन हैं वे सब अपनी आँखों से देखते हैं। वस्तु तो जैसी है, वैसी है।

ये विशुद्धसागर कुछ नहीं जानते। विश्वास रखना, मैं जो भी बोल रहा हूँ पूर्वाचार्यों का है। **'द्विचन्द्र ज्ञानवत्'** आँख पर अँगुली रख, दो दिखेंगे तुझे ? रखके देखो। देखो बेटा! दो चन्द्रमा दो ही आदमी को दिखते हैं; या तो आँखों में रोग है, या फिर जानेवाला है। ये नित्य सत्य है जिस व्यक्ति को चन्द्रमा दो दिखने लग जायें वह अपनी आँखें जाँच करवाले। आँख में रोग न हो तो समाधि लेलो, क्योंकि आपकी उम्र चन्द्रमास की बची है, ये रिष्ट है। पर उसको दो चन्द्रमा दिखते हैं; यह सत्य है कि असत्य है ? मित्र! एक पुरुष को आकाश में एकही समय में दो चन्द्रमा दिख रहे हैं, वह असत्य है कि सत्य ? एक साथ दो चन्द्रमा हो सकते हैं क्या ? नहीं हो सकते। अरे! चन्द्रमा दो कब दिखेंगे ? जब एक होगा तभी तो दो दिखेंगे, एक ही नहीं होता तो दो कहाँ से दिखते ? आपको यह मालूम करना चाहिए जिसको दो चन्द्रमा दिख रहे हैं इसका मतलब चन्द्रमा तो निकल चुका है, भले दो दिख रहे हैं। बताओ प्रमाणित है कि अप्रमाणित। शास्त्रीजी! मैं 'लघीयस्त्रय' से बोल रहा हूँ।

'लघीयस्त्रय' जैनदर्शन का बेजोड़ ग्रन्थ है और जहाँ न्यायग्रन्थ सामने आ जायें और अकलंक जैसे योगी का नाम आ जाये, जिसने भारत की भूमि को शून्यवादियों से शून्य कर दिया हो। समझा करो, न्याय की भाषा में, ये भारत की वसुधा पर पहले दिगम्बराचार्य हैं। बड़े-बड़े धुरंधर द्वैतवादी, अद्वैतवादी सब शून्यवादियों से परेशान हो गये पर कोई शून्यवादी को भारत से शून्य नहीं कर पाया। भारत की भूमि पर शून्यवादी को शून्य करनेवाला एकमात्र कोई आचार्य है वह भट्टअकलंकस्वामी।

मैं कह रहा हूँ कि विशुद्धसागर को दो चन्द्रमा दिख रहे हैं। ये सत्य है तो नेत्र में रोग आ गया है उसी को दो चन्द्रमा दिख सकते हैं। हमारे यहाँ एक बहुत बड़े आचार्य हुए हैं दुर्गादेव। इन्होंने रिष्टसार (रिष्टसमुच्चय) नाम का ग्रन्थ लिखा है और इस ग्रन्थ में इसका वर्णन है।

आप कमरे के अन्दर हो, आँगन में पुरुष बोल रहा है – दो चन्द्रमा दिख रहे हैं तो कमरे के अन्दरवाला व्यक्ति जान लेता है कि रात्रि हो चुकी है। क्यों ? बिना एक के दो दिखाई दे नहीं सकते। पूरा अप्रमाण अप्रमाण नहीं होता है; प्रमाण होता है, तभी अप्रमाण होता है। प्रमाण के अभाव में कोई वस्तु अप्रमाण हो नहीं सकती। जो अप्रमाण घोषित कर रहा है तो वो प्रमाण भी घोषित कर रहा है, कैसे ? बताऊँ, माना

कि ये वेद को जानने वाला विद्वान् है और ये बोल रहे हैं कि हम स्याद्वाद को नहीं मानते और स्याद्वादी होते नहीं हैं। बोले - आपने कैसे जाना ? वेदों में इनका खण्डन है। बहुत अच्छी बात है, क्यों? मेरा अभाव तुम कर रहे हो। कब से मेरा अभाव मानते हैं आप ? अनादिकाल से आपका अभाव मानता हूँ। प्रमाण क्या है ? हमारे यहाँ वेद हैं सनातन। इसका मतलब है मैं कह रहा हूँ गधे के सींग नहीं होते। तो तूने क्या सीखा इससे? यानी गधा तो होता है और सींग भी होते हैं। पर गधे के सींग नहीं होते, इतना तो ज्ञान हो गया।

ऐसे ही शास्त्री जी! कह रहे हैं कि जैनत्व है ही नहीं, इनका मेरे वेदों में खण्डन है। तो जब मैं होता नहीं तो मेरा खण्डन कैसे ? मतलब है मैं था तभी तो मेरा खण्डन किया है और जब वेद लिखे गये थे उससे पहले मैं था। आपके अभाव ने मेरा सद्भाव घोषित किया है। इसलिए यहाँ जो भी व्याख्या करने आये, जिनको भी शंका खड़ी करना हो, तो पहले यहाँ विचार करके आना, नहीं तो आपको पूरा उल्टा होना पड़ेगा। अपन को प्राणीमात्र पर समता रखना चाहिए इसलिए सीधे रहना चाहिए।

जैन साधु अहिंसक होते हैं, परन्तु सिद्धान्त का विपर्याय करनेवालों के लिए सीधे नहीं होते हैं। देखो, मैं बिलकुल शान्त मौन रहता हूँ, पर किसी ने जरा भी गड़बड़ी की सिद्धांत पर, आपको मालूम है मैं किसी को नहीं छोड़ता, आप कौन होते हैं ? जब गणधर की गद्दी पर मैं बैठता हूँ उस समय सीधा नहीं होता हूँ। यहाँ से बाहर गया तुम्हारा काम तुम जानो, मुझे क्या लेना-देना। पर जिनवाणी से अनुवीचि जिनसूत्र के अनुसार भाषण होना चाहिए। अनुवीचि भाषण का नामभर नहीं लेना चाहिए, वास्तव में अनुवीचि भाषण होना चाहिए। अनुवीचि भाषण का नाम लेकरके अनुवीचि भाषण नहीं करना - ये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान दोनों में दूषण है। दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय दोनों कर्म का आस्रव होगा।

कम ज्ञानी बनके रह लेना पर विपरीत ज्ञान प्राप्त मत करना। अल्पसम्यग्ज्ञान मोक्ष का कारण है, विपरीत बहुश्रुतज्ञान बंध का ही कारण है। मोह से रीता अल्पज्ञान मोक्ष का कारण है मोहसहित बहुश्रुतज्ञान बन्ध का कारण है। जब अकलंकस्वामी का नाम लेते तो डर जाते हैं फिर समन्तभद्रस्वामी तो 'पटुसिंहनादैः'। 'युक्त्यनुशासन' ग्रन्थ में कहा - 'पटुसिंहनादैः' जैसे सिंह नाद करता है। अभद्र को भी समन्तभद्र बना देते हैं, पटुसिंहनादैः। वे समन्तभद्र अहंकार में न्याय की भाषा में बनारस में जाके बोले – मैं शार्दूल हूँ और मनुष्यों का स्वामी। जिसने अपनी माँ के आँचल का पान किया हो, तो मुझ समन्तभद्र से आकर शास्त्रार्थ करे। ऐसे-ऐसे आचार्य भगवन्त हुए हैं। आज तुम बने बनाये मैदान में बैठकर के आनन्द लूट रहे हो। पूछो, उन योगियों से जिन्होंने काँचीपुरम से भेलसा (विदिशा), विदिशा से बनारस तक शास्त्रार्थ के डंके पीटे हों वे आचार्य समन्द्रभद्र जयवंत हों। अपरवर्ती आचार्यों में, कवियों में, तीर्थंकर पदवी प्राप्त थी आचार्य समन्तभद्र को। जैसे वीरसेनस्वामी को कलिकाल सर्वज्ञ कहा है।

अनेक ग्रन्थों को भी पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। एक ग्रन्थ को भी अच्छे से तैयार कर लो उसमें सारे ग्रन्थ आ जाते हैं। आचार्य समन्तभद्रस्वामी का 'स्वयंभू स्तोत्र' ही इतना महान् है जिससे आप किसी भी ग्रन्थ की चर्चा करना चाहो कर सकते हो। स्वयंभूस्तोत्र में समयसार है, न्याय से पूर्ण है, चरणानुयोग से भरा है, परिपूर्ण द्रव्यदृष्टि है और सभी एकान्तों का निरसन है। ऐसा अपूर्व स्तोत्र कि हर साधक सन्त को नित्यपाठ करने की आवश्यकता है।

आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी ज्ञान-ज्ञेय के व्याख्यान करने के उपरान्त दो सौ बहत्तरवें कलश में मेचक-अमेचक की व्याख्या कर रहे हैं; एक-अनेक, शुद्ध-अशुद्ध, शुद्धाशुद्ध। एक ही जीव एक ही समय में अनंत शक्तियों का पिण्ड है इसलिए एकस्वभाव-अनेकस्वभाव, भेदस्वभाव-अभेदस्वभाव, भव्यस्वभाव-अभव्यस्वभाव, नित्यस्वभाव- अनित्यस्वभाव। कितने सारे स्वभाव भरे हैं। जैनदर्शन एक ही समय में नित्य भी कह लेता है, एक ही समय में अनित्य ही कह लेता है। एक ही समय में एक भी कहता है, एक ही समय में अनेक भी कहता है। यही कारण है जो नहीं समझ पाये स्याद्वाद को वह कहने लगे संशयवाद। शंकराचार्य जैसे विद्वान् ने स्याद्वाद को संशयवाद कह दिया, परन्तु मुमुक्षु ! यह **स्याद्वाद संशयवाद नहीं है। यह स्याद्वाद सम्यक्वाद है।** इस भूतल पर स्याद्वाद का गंभीर नाद करने वाले कितने ही धुरंधर दिगम्बराचार्य योगी हो चुके हैं।

वर्तमान का युग निर्माण कार्यों में लगा हुआ है। मध्य का ऐसा समय था जब हर दर्शन में अपने-अपने पक्षों की पुष्टि के लिए दर्शनशास्त्र चल रहे थे, तोते-तोते रटने लगे थे। **तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च।।13/परीक्षामुख।** तोते-तोते रट रहे थे **'अर्पिताऽनर्पित सिद्धेः'।** हर दर्शन अपने-अपने सूत्र निकाल रहा था। सत्य ये है जब गली-गली में चलने वाले यहाँ के बच्चे-बच्चे जैसे नमोऽस्तु शासन कहने लगे हैं, ऐसे ही इनके श्रीमुख से **'अर्पिताऽनर्पित सिद्धेः'** गूँजना चाहिए।

'नय प्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धि इति सिद्धासिद्धान्ता' जब भी वस्तु की सिद्धि होगी तो नय और प्रमाण से ही होगी, यह सिद्धान्त सिद्ध है। कितने लोग वीतराग आचार्यों के पास जाने से डरते हैं, क्योंकि उन्हें मालूम है एक दिन में पन्द्रह सौ तीन शिष्य बन गये थे। अरे! समझो, मैं क्या बोल रहा हूँ। एक दिन में भगवान् महावीर के पन्द्रह सौ तीन शिष्य बन गये थे समवशरण में। यदि कोई विद्वान् आचार्य मुनि शास्त्री कोई कहे कि विशुद्धसागर के पास नहीं जाना, तुम समझ लो, क्यों नहीं जाना? इसका मतलब है तुम उलटे हो, नहीं तो डर क्यों तुमको कि बदल जाओगे।

वस्तु की सिद्धि तो नय और प्रमाण के द्वारा ही होगी, अन्य किसी से नहीं होगी। कोई भी अनुयोग की सिद्धि करो, नय और प्रमाण से ही होगी। नय, निक्षेप और प्रमाण; इनके बिना व्याख्यान होता ही नहीं है। मेचक, अमेचक, मेचकामेचक - ये शब्द कभी सुने थे आपने? मेचक स्वरूपोऽहं, अमेचक स्वरूपोऽहं, मेचकामेचकस्वरूपोऽहं फिर भी अमेचकस्वरूपोऽहं।

क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिन्मेचकाऽमेचकं
क्वचित् पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम।
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मनः
परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत्॥ 272/कलश।

कहीं ये आत्मद्रव्य अनुभव करनेवाले आत्मतत्त्व कभी मेचक दिखता है - अनेकाकार; अनेकाकार मेचक यानी अनेकरूप, कहीं अमेचक दिखता है एकरूप दिखता है; कभी एकानेक एक साथ दिखता है, कभी आत्मा शुद्ध दिखता है, कभी आत्मा अशुद्ध दिखता है। अखण्ड द्रव्यत्व की दृष्टि से, ज्ञायक की दृष्टि से मैं एक भगवानात्मा हूँ। अनंत गुणों की दृष्टि से मैं अनेकरूप हूँ। ध्रुवज्ञायकभाव के साथ उत्पाद-व्यय अनंत गुणों से युगपत् जब देखता हूँ तो मुझे एकानेक दिखाई देता है। मैं एक भी हूँ, मैं अनेक भी हूँ, मैं एक ही हूँ, मैं अनेक ही हूँ, स्यात्। अखण्ड चैतन्य पिण्ड की अपेक्षा से मैं एक ही हूँ। अनंत गुणों से पूर्ण कुम्भ हूँ, मैं अनेक ही हूँ। अखण्ड चैतन्य एक अनंत गुणों का समूह होने से मैं एकानेक हूँ।

मैं द्रव्यत्व की अखण्डता में जब प्रवेश करता हूँ, साँचा साँचा है, गुझिया गुझिया है, साँचे में गुझिया है, फिर भी साँचा गुझिया नहीं है। साँचे में स्वाद नहीं है। साँची (सच्ची) कह रहा हूँ स्वाद गुझिया में है। साँचा साँचा है, गुझिया गुझिया है। साँचे में गुझिया है, पर गुझियां में कोई स्वाद है कि नहीं? अरे! गुझियां में स्वाद ही स्वाद है, पर साँचे में कोई स्वाद नहीं। देह साँचा है, साँची मानो आत्मा गुझिया है; साँची मानो, पर साँचे को साँचा ही मानो। प्रपंच साँचा होता नहीं। जहाँ शान्ति वही शान्तिपना है। ज्ञानियो! जब मैं साँचे में मात्र देखता हूँ गुझिया को तब मुझे साँचा दिखाई नहीं देता।

ध्रुवसत्य को सुनिए, द्रव्यदृष्टि को समझिए; आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है संसार में, इसे भी जानिए। हे श्रमणो! हे श्रावको!! एकसौ अड़तालीस कर्म के बीच में, द्रव्यकर्म नोकर्म के बीच में होने पर भी आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है। बिल्कुल विचलित मत होना, सब स्पष्ट किये देता हूँ। त्रैकालिक सिद्ध है, घबराना मत; ये भी मत कहना फिर सिद्धालय में क्यों नहीं, यहाँ क्यों है? ऐसी बातें मैं अनंतबार लोगों को समझा चुका हूँ पर इसे भी आज समझ लो। भूल पंडितजी की है, ये बोलकर तो चले जाते हैं पर विस्तार नहीं करते, इसलिए लोग झगड़ते हैं। कई विषयों में ऐसा होना चाहिए। आप सभी विद्वानों को समझाने का परिणाम ये निकला कि आप सबने मुझे अनेकान्त में बैठा दिया।

बुन्देलखण्ड का पूरा क्षेत्र अनेक-अनेक विद्वानों से भरा है और जिस मुनि को विद्वान् बनना हो और चर्या को व्यवस्थित रखना हो तो दीक्षा के तुरन्त बाद किसी अन्य प्रान्त में विचरण नहीं करना चाहिए। विचरण मात्र बुन्देलखण्ड में क्यों? वहाँ की मिट्टी में एक ऐसा जादूसा है कि वहाँ बच्चा-बच्चा कौनसे महाराज, क्या कर रहे, ये जानता है। मानता सभी को है पर स्वीकारता सभी को नहीं है। विदिशा, जबलपुर, इन्दौर, सतना, टीकमगढ़, ललितपुर, सागर इन स्थानों में तुम जब जाकर बैठोगे तो वहाँ के

श्रावक आपसे प्रश्न करेंगे तब आपको सोचना पड़ेगा कि मुझे अध्ययन करना चाहिए। दुर्ग के बच्चे-बच्चे पण्डित बन गये। उन्नीस सौ सत्तानवे में बच्चों ने एक स्वाध्याय मण्डल स्थापित किया। उस स्वाध्याय मण्डल ने इतना विकास कर लिया है कि वहाँ विद्वानों को, साधुओं को आने में सोचना पड़ता है, सीखकर जाओ। ललितपुर में ऐसी विदुषी महिलाएँ हैं बड़े-बड़े विद्वानों को सोचकर आना पड़ता है, जाऊँ कि नहीं। सुनने वाले आपको बार-बार कहेंगे सुनाओ, देखने वाले आपकी चर्या को देखेंगे; जब सुनाने बैठोगे तो आपका ज्ञान बढ़ेगा और चर्या को देखा जायेगा तो चारित्र बढ़ेगा। वहाँ तुम स्नातक हो जाओगे फिर पूरे देश में विहार करना।

ऐसा नहीं मानना कि महाराष्ट्र आदि में शिथिलाचार का पालन है। अन्दर का विषय आपको बता देता हूँ - ये सब भक्त लोग हैं, ये मात्र मुद्रा को देखकर अभिवादन करनेवाले श्रावक हैं। ये जानते भी हैं ये गलत तो है फिर भी इतने महान् हैं। चर्या का पालन तो कराते हैं। सोलापुर, फलटण, अकलूज, नाते-पोते इन सब नगरों में रहकर आया हूँ। बारामती; जैसे बुन्देलखण्ड में चरणानुयोग, करणानुयोग पर दृष्टि है वैसे ही वहाँ न्याय पर है। साधुओं को इसलिए कहाँ विहार करना चाहिए है ये सब देखता जाता हूँ। सल्लेखना का कौन-सा स्थान चुनना चाहिए है। सूखे ज्ञानी कहाँ-कहाँ हैं। सूखे ज्ञानी जो मात्र ज्ञान की बातें करते हैं, चारित्र से विहीन हैं और जहाँ ज्ञान के साथ श्रद्धा विवेक और भक्ति भी है ऐसे स्थान पर समाधि करना चाहिए। कहाँ के क्षेत्र शुष्क हैं, कहाँ का क्षेत्र गीला है, कहाँ का मध्यम है, यह सब देखना चाहिए और कहाँ का भोजन कैसा है। अभी तुम विहार करके सभी जगह का भोजन कर लोगे तो तुमको मालूम चल जायेगा मेरा स्वास्थ्य कहाँ ठीक रहता है वहीं आप रुकना, ये सारे रहस्य आगम में भरे हैं।

आपको लगता है कि इतना विहार क्यों करते हैं। आपको क्या मालूम विहार रोकोगे तब कहाँ रुकोगे ? इसलिए विहार करना चाहिए। लम्बे समय तक एक स्थान पर साधुओं को कहीं नहीं रुकना चाहिए। विहार करते रहोगे तो गगन में चमन है और विहार रुक जायेगा तो विहार रुक जायेगा। बाहर का विहार रोका तो भीतर का भी विहार रुक जायेगा। क्षेत्र विशेष दिखेगा, स्थान विशेष दिखेगा, तो भावों में तुम्हारे मलिनता प्रारंभ हो जायेगी। समाज विशेष दिखेगी, फिर तुमको अखण्ड समाज नहीं दिख पायेगी। इसलिए साधकों को विहार करते रहना चाहिए। निर्ग्रन्थों को विहार करते रहना चाहिए और जो हमारी आगम व्यवस्था है पैदल विहार की वो ही सुरक्षित रखना चाहिए।

पंडित जी ! अभी एक पत्रिका में छपा है कि अब पैदल विहार की आवश्यकता नहीं है। ठीक है, अब आप ही विद्वानों ने लिख दिया, अब क्या कर सकते हैं। मतलब समझो, यदि मुनि कम्बल ओढ़ने लग जायें, गाड़ियों में दौड़ने लग जायें, अनेक बार भोजन करने लग जायें, फिर कौन नमोऽस्तु करके पड़गाहन करेगा ? क्या तुम दिगम्बरत्व की रक्षा कर पाओगे ? क्या तुम धर्म की रक्षा कर पाओगे ? इसलिए अपने चिंतनों को अपने घर का विषय बनाओ, लेकिन आगम के सूत्रों को खण्डित करने का

विचार मत करना। ये सोच वही सोच पाते हैं जो कभी साधुओं का कमण्डलु उठाकर नहीं चलते। भाई! कमण्डलु लेकर चलने में भी एक बहुत बड़ा आनंद होता है। एक भाई दुर्ग में है उस जीव का मात्र इतना काम है सुबह से आकर के कमण्डलों में पानी भरना, साधुओं के साथ विहार करना।

चारित्रमोहनीयकर्म का उपशमन करना है तो चारित्रवानों के साथ रहना होगा। चारित्रवानों के साथ आराधना सेवा करना होगी तभी चारित्रमोहनीकर्म का उपशमन होगा। ये अनुभूति में आता है, बिल्कुल समझ में आता है कि परिणामों में विशुद्धि तो बनती है।

कुम्भोज बाहुबली में एक शिविर लगा था। मैंने कहा – ये तो मुमुक्षु भाई है, ये तो मुझे बुलाने वाले हैं नहीं। पंडित जी! कुछ ऐसी विद्या भी होना चाहिए आपके पास। तो मैंने कहा-ये हजारों बच्चे यहाँ शिविर में हैं और कितने सारे श्रावक हैं। एक बालक था विदिशा का। मैंने कहा - भाई! मैं पंडित जी के प्रवचन सुनना चाहता हूँ। तो कौन विद्धान् होगा जो मना कर देगा। उसे तो आनंद आ गया। मेरे प्रवचन मुनि महाराज सुनेंगे। तुरंत मंच लग गया। मुझे तो मालूम था कि मुनि प्रवचन सुनने बैठेगा तो कौन ऐसा होगा जो यह न कहे महाराज आशीर्वाद के दो शब्द बोलो।

मैंने सोचा न्याय का प्रयोग करो। वहाँ तीन कक्षाएँ लगती थीं। पूरे महाराष्ट्र से श्रावक आये थे। जैसे ही मैं पहुँचा सब खड़े हो गये। बोले - आज एक क्लास कम करो, हमको महाराज को सुनना है और उस भाई ने भी प्रवचनसार की क्लास को बन्द कर दिया और नीचे बैठ गया और बोला - महाराज ! प्रवचन करो। पंडितजी! एक प्रवचन मात्र हुआ। पूरे शिविरार्थी विद्वान् बोले - सबकी इच्छा है पूरे शिविर में एक प्रवचन आपका भी हो। प्रवचन पर ही चर्चा हुई।

क्षेत्र का, भूमि का प्रभाव रहता है। जिस क्षेत्र में जैसी वर्गणा होगी, वहाँ आपकी वैसी रुचि बढ़ेगी। वर्तमान में आप जैसे ही खण्डेलवाल भवन में प्रवेश करते हो ये जितने श्रोता बैठे हैं उन सबका मन क्या बोलता है ? अपन को भी स्वाध्याय करना चाहिए। आप विश्वास मानिए कितने जटिल-जटिल शब्दों का प्रयोग हो रहा है यहाँ और कठिन विषय चलते हैं तब भी मन क्या बोलता है नहीं अपने को भी सीखना चाहिए। इतना कठिन विषय ये लोग सुनें, आप आश्चर्य करोगे। समयसार जैसे अलौकिक ग्रन्थ के लिए आपके भवन भरे रहे, आश्चर्य है। कोई आश्चर्य नहीं है। ये तो एक ही भवन भरा है। समवशरण में तो बारह सभा भरी होती हैं। यहाँ तो एक ही गति के जीव हैं, वहाँ तो तीन-तीन गतियों के जीव बैठे रहते हैं। चारों अनुयोग चलते हैं वहाँ। मुमुक्षु ! समझ में आ रहा है? अरे! इतना तो समझ में आ रहा है कि समझ में नहीं आ रहा है।

पंडित जी! आप मुमुक्षु कहकर बोलो, देखो अभी पता चल जायेगा। देखो, मैंने उसे मुमुक्षु बना दिया, तो बात ऐसी है कि अपनी-अपनी कहने की शैली है। मैं आपसे कह रहा था, मैं त्रैकालिक शुद्ध हूँ। मेरे में अशुद्धि ने प्रवेश किया ही कब है ? मैं अशुद्ध हुआ ही कब हूँ? अशुद्धि तो कर्माधीन है, मेरे में कर्म

प्रवेश किया नहीं, मैं कर्मभूत हुआ नहीं। माँ! दूध में पानी मिला दो, एकमेक दिखता रहेगा, पर क्या दूध पानी हो जायेगा ? क्या पानी दूध हो जायेगा ? दूध तो दूध ही रहेगा। इस दृष्टि से दूधपना दूध में ही शुद्ध है और पानीपना पानी में ही शुद्ध है। अशुद्धि किस बात की है ? मिलावट की। तो ऐसे ही मुमुक्षु! ये आत्मा और कर्म इनकी जो मिश्रसंयोगी धारा है वो अशुद्धि है लेकिन संयोग को गौण करके देखते हैं , तो आत्मा आत्मा है और कर्म कर्म है। मैं कभी कर्म होऊँगा नहीं और कर्म कभी आत्मा होंगे नहीं, इस दृष्टि से शुद्ध है, त्रिकाल शुद्ध है आत्मा फिर भी अशुद्ध है। जब-तक चौदहवें गुणस्थान में रहेगा तब-तक तू अशुद्ध है, बन्धदृष्टि से। ऐसी व्याख्या कर दो, कौन नहीं मानेगा?

अब आप कहीं शुद्ध कहकर चले गये। ये तो तुम्हारी आँखों से देखनेवाले हैं, न तो आत्मा से देख रहे हैं न आगम से देख रहे हैं। आँखों से देखेंगे तो शास्त्री जी को पकड़ेंगे। तुम मुझे शुद्ध बोल रहे हो ? हाँ, शुद्धत्वदृष्टि से शुद्ध है, बन्धदृष्टि से अशुद्ध है और जब-तक बंध में शुद्ध को नहीं जान लेगा तब-तक प्रगट करने के लिए कैसे बैठेगा? द्रव्यदृष्टि के बिना तो कोई किसान भी नहीं जी सकता; आप तो मनुष्य हो, श्रावक हो, मुनि हो। किसान को जब-तक द्रव्यदृष्टि का बोध नहीं होगा तब-तक खेती नहीं कर सकता। बीज में वृक्ष दिखाई देता है क्या ? बीज में अन्य बीज दिखाई देते हैं क्या ? पर किसान एक बीज में अनेक बीज देख लेता है जब हाथ में रखे होता है। अरे! बीज दिखा दिया तो वृक्ष देखने की क्या आवश्यकता? एक बीज में अनेक बीज दिखते हैं, कब दिखते हैं ? उसे बीज में अंकुर भी दिखता है, उसे बीज में पौधा भी दिखता है, फूल भी दिखते हैं, फल दिखते हैं और बीज में बीज निकलते दिखते हैं पर देख रहा बीज को।

खेत की मेंड़ पर कभी किसान को रोटी खाते देखा आपने? खेत की मेंड़ पर जब किसान रोटी खाता है, वह मुख में ग्रास रखता है रोटी का और वह सामने देखता है। उसके खेत से निकलनेवाले क्या देख रहे हैं ? देखो, किसान मिट्टी देख रहा है कि खेत देख रहा है। वो क्या देख रहा मालूम है ? बीज बो चुका है, रोटी खा रहा है, अब लहराती फसल को देख रहा द्रव्यदृष्टि से। यहाँ तक कि कई बार ऋण ले लेता है किसान। बोले - दे दूँगा, कब ? कार्तिक में दे दूँगा। कब ? चैत्र में। उसे मालूम है, उसे विश्वास है मेरे पास खेत है बीज बोऊँगा तो फसल आयेगी तो दे दूँगा। ज्ञानियो! एक किसान खेत में देख-देखके सारे काम कर रहा है। ऐसे ही एक **योगी निज की चैतन्यभूमि में चारित्र के बीज का वपन करके मोक्ष की फसल को देख रहा है** और तुम अशुद्धि देख रहे हो, शुद्ध हो न ? मित्र! शुद्ध का ज्ञान नहीं होगा तो शुद्ध प्रगट किसे करेगा ? अशुद्धि के लिए मुनि बनते हो क्या ? और मुनि बनके भी शुद्ध का लक्ष्य नहीं है तो मुनि बनने के लिए मुनि बने हो कि भगवान् बनने के लिए मुनि बने हो ? समय निकालना पड़ेगा, समय देना पड़ेगा, समय के लिये ही देना पड़ेगा, समय ही देना पड़ेगा।

समझो; शुद्ध है, अशुद्ध है, अशुद्धाशुद्ध है; तीन अवस्थाएँ। कर्मोपाधिकनिरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिकनय से सम्पूर्ण संसारी जीव सिद्धसदृश शुद्धात्मा हैं। जब हम विभावव्यंजनपर्याय को देखते हैं तो मुझे आत्मा अशुद्ध दिखती है। जब विभावव्यंजनपर्याय में अर्हंत अवस्था को देखते हैं तब मुझे आत्मा शुद्धाशुद्ध दिखती है। भावमोक्ष हो गया, शुद्ध हो गये; द्रव्यमोक्ष नहीं हुआ, अशुद्ध है। व्यक्तसिद्ध परमात्मा; सिद्ध ही है। उनमें कोई अशुद्धि नहीं है। मेचक भी है, अमेचक भी है, मेचक-अमेचक है फिर भी मेरा अमल निर्मल बुद्धि से युक्त मन मोहित नहीं होता – ये है मूल वस्तु। पुष्प फिकें तुम्हारे ऊपर, पत्र गिरें तुम्हारे ऊपर, प्रशंसक मिलें तुम्हें , निंदक मिलें तुम्हें, तब भी चित्त को मोहित मत करना। बुद्धि मेरी पवित्र रहे। जिसने स्वतंत्रता को जान लिया वो ऐसा ही करेगा। अपमान किसका, सम्मान किसका ?

जिसका चित्त विक्षिप्त है उसी का अपमान होता है। जिसका चित्त विक्षिप्त है उसी का सम्मान होता है। जिसका चित्त ही विक्षिप्त नहीं है उसका न सम्मान है न अपमान है, जो है सो है । मुमुक्षु ! परस्पर में ये शक्तियों का समूह स्फुरायमान हो रहा है। तब भी मेरी आत्मा मोहित नहीं हो रही है और ये आत्मा का वैभव तो बड़ा विचित्र है, कैसा -

इतो गतमनेकतां दधदितः सदाप्येकता
मितः क्षणविभंगुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात्।
इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजैरहो
सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवम्॥273/कलश।

ये क्या अद्भुत वैभव है आत्मद्रव्य का। इधर देखो तो अनेकरूप दिखता है, इधर देखो तो एकरूप दिखता है। इतना ही नहीं, एक ओर देखो तो क्षणभंगुर दिखाई दे रहा है और वही ध्रुव उदय दिखाई दे रहा है। एक ओर परम विस्तार दिख रहा है और एक ओर स्वप्रदेश मात्र दिख रहा है। अहो ज्ञानी! आश्चर्य, सहज आत्मा है, ये आत्मा का अद्भुत वैभव है। 'सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय' से मैं कल आपको मिलूँगा नहीं, विश्वास रखना बदल जायेंगे। मैं फिर भी बौद्ध नहीं होऊँगा, फिर भी बुद्ध रहूँगा। बुद्धि सम्पन्न बुद्ध रहूँगा, शून्य जड़वादी बुद्ध नहीं होऊँगा। पंडिजी! वचन का वैभव मिल जाये तो सारे जगत् का वैभव बरस जाये, इसलिए वचन से दरिद्री मत होना, समता से दरिद्री मत होना, शील से दरिद्री मत होना, चारित्र और श्रद्धा से दरिद्री मत होना।

अनेकांत-स्याद्वाद व्यवस्था जो है वह वस्तुस्वभाव की व्यवस्था है। यह व्यवस्थित व्यवस्था त्रैकालिक है। ऐसा अद्भुत विशेष-विशेषण का भाव जो स्याद्वाददर्शन में है, स्याद्वाद शासन में है वह अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता । एकही समय में एकही द्रव्य में नित्यत्व धर्म भी देखा जाये, अनित्यत्वधर्म भी देखा जाये। एक धर्म भी देखा जाये, अनेक धर्म भी देखा जाये। क्षणभंगुरता भी दृष्टिगोचर हो, त्रैकालिकता भी दृष्टिगोचर हो। विस्तार भी दिखे, संकोच भी दिखे। ये सब आत्मा के वैभव की व्याख्या

करनेवाला स्याद्वाद सिद्धांत ही है। जगत् के लोगों को कहाँ समझ में आता है। **जिनकी दृष्टि एकांत-दूषण से दूषित है वहाँ स्याद्वाद का भूषण कहाँ ?** और जहाँ स्याद्वाद का भूषण नहीं है, वह दृष्टिदूषण ही है। इसलिए हमारे नायक वे नहीं हैं, जो स्याद्वाद के द्वेषी हैं। हे वर्द्धमान! स्याद्वाद-द्वेषियों के आप नायक नहीं हो।

आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी 273 वें कलश में आत्मा के अद्भुत वैभव की व्याख्या कर रहे हैं। एक ओर जब मैं देखता हूँ तो आत्मा अनेकता को प्राप्त दिखती है, अनंतगुणों से युक्त अनंत पर्यायों से युक्त। जो अनंतगुणों से युक्त है वह अनंतपर्यायों से भी युक्त है। प्रत्येक गुण की पर्याय स्वतंत्र है और ऐसे आत्मद्रव्य में अनंतगुण हैं, उन अनंतगुणों को हम देखेंगे तो अनंतगुणों की अनंत पर्यायें भी मुझे दिखेंगी। अनंतपर्यायों को देखेंगे तो वह द्रव्य अनन्तता को दिखाई देगा। अनंत गुणात्मक, अनंत पर्यायात्मक जो है; वह ध्रुव है-आत्मद्रव्य। अनंतगुणों अनंतपर्यायों को जब हम निहारते हैं तो वही आत्मद्रव्य हमें अनंतता को दिखाई देता है तब ये आत्मा अनेक रूप दिखती है।

मैं अनेक भी हूँ पर्यायदृष्टि से, मैं एक हूँ द्रव्यदृष्टि से, स्यात्। मैं एक हूँ गुणदृष्टि से, ज्ञायकभावदृष्टि से; अखण्ड ज्ञानगुण को देखते हैं तो ये आत्मा हमें एक दिखती है। जब हम क्रम को देखते हैं तो अनंतता रूप दिखाई देता है। जब सहभावीपने से देखते हैं, तो एकरूप दिखाई पड़ता है। एक ज्ञानगुण की अपेक्षा; अनंतज्ञानगुण में अनेक-अनेक मतिज्ञान की पर्यायें श्रुतज्ञान की पर्यायें, अवधि-मनःपर्ययज्ञान की पर्यायें, और केवलज्ञान की अवस्थाएँ। पर्यायें अनंतता को प्राप्त हैं। कठिन भले हो, पर समझना।

'सहभुवो गुणाः, क्रमवर्तिनः पर्यायाः' जब हम क्रमवर्तिपर्याय को देखते हैं तो पर्याय एक समय में एक होती है, तो मैं एकरूप हूँ। सहभावी गुणों को देखता हूँ तो एकसमय में अनंत गुण होते हैं ज्ञानदर्शनादि अपेक्षा। तब मैं अनंतता को प्राप्त होता हूँ। एक समय में एकद्रव्य में एक पर्याय देखते हैं जब, तो एक रूप है, एक समय में एक द्रव्य में जब अनंतगुण देखते हैं, तब अनेकता को प्राप्त होता हूँ, अनेकपने को प्राप्त होता हूँ। इसलिए एक स्वभावी, अनेकस्वभावी; एकस्वभावी हूँ, अनेकस्वभावी हूँ। हमारे जो गुण हैं वे **गुण गौण किये जा सकते हैं पर गुणों का कभी अभाव नहीं होता। व्याख्यान के काल में अनंत गुणों को गौण करके व्याख्यान तो किया जा सकता है नयदृष्टि में, पर प्रमाणदृष्टि में अनंतगुण कभी गौण नहीं होते।**

व्याख्यान के काल में जब मैं ज्ञान की व्याख्या करूँगा तब दर्शन की नहीं कर रहा होऊँगा। जब दर्शन की कर रहा होऊँगा उस समय चारित्र की व्याख्या नहीं कर रहा होऊँगा। ऐसे काल में हमने व्याख्यान में गौणता का प्रयोग किया है, लेकिन प्रमाण में कोई गौणता नहीं है। पदार्थ की गौणता, पदार्थ की प्रधानता - ये तुम्हारे वक्ता के व्याख्यान के तत्क्षण की पर्याय का विषय है, लेकिन वस्तु में कोई भी गौणता नहीं है, कोई भी प्रधानता नहीं है; वो तो प्रधान-ही-प्रधान है। जो पर्यायों को कभी बौद्ध होके तो नहीं स्वीकार रहा

है, तुच्छाभाव तो नहीं कर रहा है, निरन्वय विनाश तो नहीं कर रहा है। पर्याय कभी निरन्वय विनाश को प्राप्त नहीं होती, पर्याय कभी तुच्छाभाव को प्राप्त नहीं होती।

सहक्रम भवनियमोऽविनाभावः ॥3/12, प.मु.सू.॥

सहभाव नियम और क्रमभाव नियम - ये पूरी व्याख्या 273वें कलश की है। जो सहक्रमभाव नियम है वह अविनाभाव है। इस पर जोर दीजिए, ये सूत्र आपको सांख्य नहीं होने दे रहा है। ये सूत्र आपको बौद्ध नहीं होने दे रहा। ये सूत्र आपको स्याद्वादी बनाके रखे है। यदि द्रव्यगुण-पर्याय को जानने वाला जीव, अध्यात्म की अपेक्षा रखनेवाला जीव इस सूत्र से हटके चला जायेगा तो मिथ्यात्व में डूब जायेगा। आप लोगों ने मिथ्यात्व में डूबने का अर्थ मात्र इतना मान लिया है देव-शास्त्र-गुरु की पूजा से दूर हुए। **अरे मित्रो! देव-शास्त्र-गुरु की पूजा त्रैकालिक करते हुए भी मिथ्यात्व में डूब सकते हो। न तुमने देव को छोड़ा, न शास्त्र को छोड़ा, न गुरु को छोड़ा, लेकिन देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप का विपर्यास कर बैठे, यानी आप मिथ्यात्व में डूब गये।**

आप देव का लक्षण भी देवभूत मान रहे हो, शास्त्र का लक्षण भी शास्त्रभूत मानते हो और गुरु का लक्षण भी गुरुभूत मान रहे हो तब भी मिथ्यात्व में डूब सकते हो, बिल्कुल ध्रुवसत्य कह रहा हूँ। परिभाषा में आप देव-शास्त्र-गुरु को स्वीकार रहे हो, श्रद्धा में स्वीकार रहे हो पर जो देव ने दिव्यध्वनि में कहा, गुरु ने ग्रंथों में लिखा वैसा आपको तत्त्व समझ में नहीं आ रहा है। तत्त्व को तुम विपरीत समझ बैठे, देव-शास्त्र-गुरु को मानते हुए भी प्रथम गुणस्थान में ही होगे, यदि सहक्रमभाव नियम अविनाभाव नहीं समझा। कलश का विषय बड़ा बेजोड़ है तभी तो आचार्य भगवन्त ने कहा है कि - ये आत्मा का वैभव अद्भुत है। '**सहक्रम भवनियमोऽविनाभावः**। इस पर मैं जोर दे रहा हूँ, क्यों ? क्योंकि कुछ जीवों ने द्रव्य से पर्याय को अत्यन्त भिन्न मान लिया है। गुण को तो अविनाभावी मान लेते हैं पर पर्याय को अविनाभावी नहीं मान रहे। शास्त्री जी! ये तत्त्व की भूल है। ऐसा कौनसा काल आयेगा जिस काल में द्रव्य पर्याय से रहित हो जायेगा और ऐसा कौन सा काल आयेगा कि जिस क्षण में पर्याय द्रव्य से रहित हो जायेगी ? **यदि आप पर्याय को द्रव्य से रहित मानते हो, तो आपके दिगम्बरत्व के सिद्धांत का नाश होता है।** एक-एक अंग पकड़ना, क्योंकि आपकी जैन परम्परा में कई ऐसे मत हैं जो पर्याय को मानते हैं, द्रव्य को नहीं मानते हैं, तब भगवान् कुन्दकुन्द जैसे महाश्रमण को लिखना पड़ा-

पज्जयविजुदं दव्वं, दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविंति ॥12/पंचा.॥

द्रव्य से रहित पर्याय; ऐसा द्रव्य नहीं होता, दोनों अन्यन्यभूत हैं ऐसा पदार्थ का स्वभाव है। इसकी प्ररूपणा किसने की ? महाश्रमण तीर्थंकर भगवन्तों ने। यदि कोई पुरुष वास्तविक में तत्त्वज्ञ बनना चाहता है तो कुन्दकुन्द के साहित्य में न्याय की खोज करे। ये '**सहक्रमभवनियमोऽविनाभावः**' सूत्र

माणिक्यनंदीस्वामी 'परीक्षामुख' में लिखते हैं। कुन्दकुन्दस्वामी की गाथा सामने आ गई, देखो। भगवान् आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी को मात्र एक पक्ष का मत देखिए। अनेक दृष्टियों से प्रज्ञावन्त कोई भारत की भूमि पर श्रमण हुआ है तो वो आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी हैं।

पर्याय भी अविनाभावीभूत है और गुण भी अविनाभावीभूत है। गुण और पर्याय के साथ द्रव्य भी अविनाभावीभूत है। जैसे कि आपके जैनदर्शन में एक ऐसा पक्ष है जो काल की पर्याय को तो स्वीकारता है, पर कालद्रव्य को नहीं स्वीकारता। उनसे प्रश्न है – ये तो बताओ, ऐसा कौनसा परिणमन है जो द्रव्य से शून्य होकर करेगा, वो पर्याय होगी किसमें? पर्याय पर्यायी में ही होती है। पर्याय पर्यायी का ही विकार है कि द्रव्य का विकार पर्याय है कि गुण का विकार पर्याय है ? जितने सुधी श्रोता हैं आप तो अपने मस्तिष्क में विषय को रखते चलो, घर में जुगाली करते रहना, जैसे गाय खाने के बाद बैठकर जुगाली करती है। ऐसे ही इस विषय को समझो, क्योंकि जितनी वस्तुव्यवस्था है मात्र द्रव्य-गुण-पर्याय।

ये द्रव्य-गुण-पर्याय की व्याख्या करने की सामर्थ्य जैनदर्शन में है, किंचित् स्पर्श किया है वैशेषिक ने, लेकिन विस्तार नहीं कर सके, क्यों ? क्योंकि सर्वज्ञता का अभाव था और जिसके पास सर्वज्ञता का अभाव है वह त्रैकालिक द्रव्य-गुण-पर्याय की व्याख्या क्या करेगा ? और आपका अहोभाग्य है कि आपका जो श्रुत है वह सर्वज्ञ प्ररूपित है और सर्वज्ञ प्ररूपित जो श्रुत है उस श्रुत को विश्रुत मत कर देना। श्रुत को श्रुत बनाके कब रख सकते हो? जैसे यहाँ छात्र परम्परा बैठी हुई है, शिष्य-परम्परा बैठी हुई है। गुरु समझा रहे हैं, शिष्य समझ रहे हैं - ये श्रुति श्रुतिरूप में चली जायेगी; कहीं इस श्रुति को विश्रुत कर दिया, भुला दिया, तो श्रुतपरम्परा का विच्छेद हो जायेगा।

ग्रंथों में लिखे विषय ग्रंथों में तो सुरक्षित रहेंगे, पर जब-तक निर्ग्रन्थों के मुख में नहीं आयेंगे तब-तक ग्रंथों की वाणी विस्तारित नहीं हो सकती है। प्रज्ञा जो है ग्रंथों में लिखे होने से विस्तृत नहीं होगी, प्रज्ञा आपकी निर्ग्रन्थता की वाणी से विस्तार को प्राप्त होगी। पंडितजी साहब ! ये दो-दो कैमरे लगे हैं। ये दोनों भाई सी.डी. बना रहे हैं पर ये बना के अपने जेब में रख लें, किसको क्या मालूम इन्होंने पूरा प्रवचन संग्रह करके रख लिया लेकिन जब यही एक चैनल से प्रसारित करते हैं तो वह पूरे देश में श्रुति पहुँचती है। ऐसे ही जो हमारे आचार्यों ने ग्रंथों का सृजन किया, वह तो एक सी.डी. बना के रख दी। पर हे वर्द्धमान के निर्ग्रन्थो ! आपके मस्तिष्क में वो फिट न की जाये, वहाँ से उसे प्रसारित नहीं की जाये, तबतक जगत् में कैसे तत्त्व आयेगा ? द्रव्य-गुण-पर्याय की व्याख्या क्या है कैसे ज्ञात होगा ?

वह मेरा सोच मेरे लिए ही शौच है दूसरे के लिए अशौच भी हो सकता है। पर मैं क्या कह रहा हूँ जैसे ये प्रवचन हाल है, ये धर्मसभा है यदि इसमें कोई टी.वी. लगाता है तो मेरा विश्वास है यहाँ तुम तत्त्व की सी.डी. सुनना पसन्द करोगे और कहीं कुशीलता से भरी हुई सी.डी. लगा दी, तो तत्त्वप्रेमी जीव आँख बंद करके उठकर चले जायेंगे। हे श्रमण! जैसे अशोभनीय सी.डी. धर्मसभा में लगा दी जाये तो शोभा को

प्राप्त नहीं होती है, ऐसे ही श्रमणों के मस्तिष्क में मात्र श्रुत की ही सी.डी. लगना चाहिए। बाकी जो भी मुनि महाराज काम कर रहे हैं कुशील शब्दों से; कुशीलभावों से भरी हुई सी.डी. उनके मस्तिष्क में है।

द्रव्य-गुण-पर्याय; कहीं द्रव्य-गुण-पर्याय की व्याख्या को व्यवस्थित नहीं किया, तो ज्ञानी! आदिनाथ की कथा, महावीरस्वामी की कथा, इनकी तिथियाँ कुछ इधर-उधर हो भी गईं तो इनसे ज्यादा तुम्हारा घात नहीं होगा। पर मेरे मित्र! द्रव्य-गुण-पर्याय; इनकी जो व्याख्या है उसे व्यवस्थित समझना पड़ेगी। द्रव्य से भिन्न गुण को नहीं कर पाओगे, गुण से भिन्न द्रव्य को नहीं कर पाओगे, दोनों से भिन्न पर्याय को नहीं कर पाओगे; इसलिए जो सहभाव नियम है उसे तुम अविनाभाव मानते हो, तो क्या क्रमभाव अविनाभाव नहीं है? परीक्षामुख के एक सूत्र को सामान्य न्याय की भाषा में पढ़ा दो। दो मिनट में पढ़ाई हो जाती है दो सूत्रों की। एक सूत्र को आप तत्त्व पर रखकर के अब व्याख्या कीजिए, इसके ऊपर हमारा पूरा सिद्धांत टिका हुआ है **'सहक्रमभवनियमोऽविनाभावः'** जहाँ सहभाव नियम की व्याख्या चल रही है वहाँ गुणदृष्टि है, जहाँ क्रमभाव की व्याख्या है वहाँ पर्यायदृष्टि है। अविनाभाव का तात्पर्य है - होने पर होना व्याप्ति, व्याप्य-व्यापकभाव।

अष्टमी-चतुर्दशी को महावीर निकेतन में छोटे-छोटे बालक 'स्वरूपसम्बोधन' पढ़ रहे थे, जिस दिन दूसरी-तीसरी कारिका पढ़ा रहा था, वहाँ एक विद्वान् थे, बोले - भारत की भूमि पर क्या ऐसा भी दिन है आज जो कार्यकारण व्यवस्था, वस्तुस्वरूप व्यवस्था, द्रव्यदृष्टि की व्याख्या चल रही हो। आप विश्वास रखो, आपको ये दो भाईयों के कैमरे तो दिखाई दे रहे हैं पर आपको भगवान् अनंतानंत सिद्धों के केवलज्ञान के कैमरे नहीं दिख रहे हैं क्या? विदेहों में विराजे सीमन्धर आदि बीस तीर्थंकरों के कैवल्य के कैमरे नहीं दिख रहे क्या ? यथार्थ मानना, उनके कैवल्य में भी झलक रहा है कि आज इस विदर्भ में नागपुर में मध्याह्नकाल में द्रव्य-गुण-पर्याय की व्याख्याएँ, साक्षात् केवली के न होने पर भी चल रही हैं। ये पंचमकाल की तीव्र श्रद्धा का विषय है कि आज भी जीव भरतक्षेत्र में द्रव्य-गुण-पर्याय के बारे में जानने की आकांक्षा रख रहा है। जब प्रज्ञा मिली है, चिंतन मिला ही है तो क्यों न हम उसको विकसित, निर्मल, विशद करें? बिना किसी पर के व्यवधान के, बिना किसी दूषण के, मात्र भूषण-ही-भूषण हो, ऐसा निर्मलज्ञान ही विशद है। सहभावी गुण, क्रमभावी पर्याय। पर्याय क्रम-क्रम से होती है।

सहचारिणो व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः ।13/पु.मु.सू.।।

जो सहचारी है; चाहे जीव नरक जाये, स्वर्ग जाये, चाहे निगोद जाये, चाहे जीव त्रसस्थावर पर्याय को प्राप्त करे, चाहे जीव मनुष्य हो जाये, चाहे जीव सिद्ध हो जाये पर जीव में जो चैतन्य गुण है, ज्ञान-दर्शन है वह कभी जीव से भिन्न नहीं होगा। व्याप्य-व्यापकभाव। जहाँ वृक्ष है वह विशेष। जहाँ वृक्षत्व है वह सामान्य। जहाँ शीशम है वहाँ वृक्ष है, विशेष। जहाँ अनेक प्रकार के वृक्ष हैं , वहाँ वृक्षत्व हैं, सामान्य। व्याप्य-व्यापकभाव। जहाँ अग्नि है वहाँ उष्णता है, जहाँ उष्णता है वहाँ अग्नि है। जहाँ जल है

वहाँ शीतलता है, जहाँ शीतलता है वहाँ जल है। जहाँ ज्ञान-दर्शन है वहाँ आत्मा है, जहाँ आत्मा है वहाँ ज्ञान-दर्शन है। व्याप्य-व्यापक। ये कभी भिन्न नहीं होंगे। अनवरत हर अवस्था में गुण रहेगा गुणी के साथ। तो क्या पर्याय नहीं रहेगी ? अपितु अवश्य रहेगी, व्यतिरेकी।

पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः।14/प.मु.सू.॥

कभी शिशु थे, युवा हो गये। ज्ञानी! पर्याय बदली तो है पर पर्यायी से अभाव को प्राप्त कब हुआ ? पर्यायी में पर्याय बदली है, पर्यायी विनाश को प्राप्त नहीं हुआ है। पर्याय सन्तानदृष्टि से नष्ट कहाँ हुई है ? संतान तो वही चल रही है निरंतर। संतान-संतानी कहने वाला स्याद्वाद को कहकर बोलता, मैं उसके साथ होता। संतान-संतानी का तुमने कथन तो किया है पर निरन्वय अभाव करके, तुच्छाभाव करके संतान-संतानी को मानने वाला सुगत दर्शन है। संतान-संतानी, वासना, जिसे तुम वासना कह रहे हो, तो सीधा जैन बन के बोल दो, जो क्रमभाव नियम है वो कार्यकारणभाव है। आपकी शिशु पर्याय - पूर्वचर, कारण; युवा पर्याय - उत्तरचर, कार्य।

आज कौनसा दिन है ? आज शुक्रवार है। इसका तात्पर्य कल गुरुवार था। आज शुक्रवार है इसके उत्तर में कल शनिवार होगा। ये आज का शुक्रवार विलीन होगा तब शनिवार आयेगा। शुक्रवार कारण है, शनिवार कार्य है **'पूवोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः'।** हे जीव! विषय तो वही है, शैली एक नहीं अनंत हैं। सत्ताईस नक्षत्र होते हैं, तो ज्ञानी! जैसे सात वार हैं; आज शुक्रवार है, कल शनिवार है वैसे जो आज युवा है कल का बूढ़ा है। अब चाहे रोओ, चाहे गाओ। कुछ लोगों को बूढा कह दो तो बुरा लगता है। कोई तुम्हें बूढ़ा कहे तो तुमको बुरा लगना चाहिए? बुरा नहीं लगना चाहिए क्योंकि कितना श्रेष्ठ पुरुष आया? मैं तो धोखे में था इसने इतना बोध करा दिया। तुम्हारा भी सिर हिलेगा, छड़ी आयेगी, वो आ भी पाये ये नियत नहीं है। इसलिए समझ में आ रहा है कि नहीं, शुष्क होने पर भी आपको सरस लग रहा है। ये विषय न्याय का पूरा शुष्क है, फिर भी सरस है।

अब कोई कहे दौ सौ तेहत्तरवें कलश में ये विषय कहाँ से आ गया? ये ही विषय तो चल रहा है, है क्या? एक ओर एकरूप दिखता है दूसरी ओर अनेकरूप दिखता है तो जब हम जीव को देखते हैं कार्य-कारणभाव से, सहक्रमभाव से, तब हमें दिखाई देता है गुण सहभावी है, पर्याय क्रमभावी है पर अविनाभावी है। ऐसा कोई भी समय नहीं होगा जब द्रव्य में पर्याय नहीं होगी, इसलिए शुद्धपर्याय भी होगी तो अशुद्धपर्याय का व्यय भी होगा। इसलिए निरन्वय विनाश मानते हो आप, तो मेरे मित्र! सादृश्य अस्तित्व कैसे बनेगा, प्रत्यभिज्ञान कैसे बनेगा और सर्वज्ञ बनेगा ही कौन ? जो असर्वज्ञ की पर्याय थी, वही पर्याय व्यय को प्राप्त हुई है, परंतु व्यय को प्राप्त होने पर भी वो निरन्वय नाश को प्राप्त नहीं हुई है वो सावयव है।

शास्त्री को वैराग्य हो गया और इसने दिगम्बर दीक्षा को धारण कर लिया। हे जीव! पूरा समाज, पूरा देश कहेगा कि शास्त्री मुनि हो गये। इनकी पर्याय बदल गई तो मुनि कौन बना है और नहीं बदली तो मुनि

कैसा ? समझो, ऐसे ही जो अज्ञानी शुभोपयोग, अशुभोपयोग, शुद्धोपयोग में निरन्वय विनाश मान लेगा वो वस्तुस्वरूप को जान नहीं सकेगा। ये व्याख्यान, शास्त्री जी! सामान्य जीवों के बीच का ही मात्र नहीं है, बड़े-बड़े शास्त्रियों के बीच में इस व्याख्यान की आवश्यकता है। जो बालक युवा हुआ है उसकी पर्याय बदल गई, बदली है फिर भी नहीं बदली है। यदि बदल गई तो बूढ़ा हुआ कौन है? प्रत्यभिज्ञान का अभाव नहीं करते हम, **'उपमान अर्थापत्तिअभाव'** इन सारी अवस्थाओं को हम प्रत्यभिज्ञान में देखते हैं।

'तद्भावाऽव्ययं नित्यम्' तद्भाव नित्य है। अभाव में भी भाव नित्य है। ज्ञानी ! अभाव में भी भाव नित्य है। प्रतिक्षण अभाव हो रहा है किसमें हो रहा है ? मेरे में। मैं नित्य हूँ, जो भाव है उसमें अभाव है फिर भी भाव है। आपको इतना तो समझ में आ रहा है कि हमारे जैनदर्शन की क्या विद्या है। इतना तो समझ में आ रहा है कि मेरा अहंकार चकनाचूर हो रहा है कि मैं जानता था, कि मैं सब कुछ जान चुका हूँ, पर आज समझ में आ रहा है कि मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा। अभाव। जो पर्याय है वो पर्याय कभी द्रव्य से भिन्न होकर नहीं चलती है, वो पर्यायें द्रव्य में ही विलीन हो जाती हैं। आम हरा था, आम पीला हुआ; पर्याय तो विलीन हुई है पर पर्याय विलीन नहीं हुई होती तो पीला कैसे हुआ ? यदि पर्याय का अभाव हो जायेगा तो गुठली भी नहीं बचेगी। गुठली भी यदि तुम बोल रहे हो वो भी पर्याय के लिए बोल रहे हो। जो संज्ञा ले रहे हो, वो पर्याय की चल रही है। द्रव्य की क्या संज्ञा है ? जो-जो पहचान कर रहे हो वह सब पर्याय से कर रहे हो। पुद्गल कहने से काम नहीं चलेगा, अन्योन्याभाव आपको स्वीकारना पड़ेगा। शास्त्रीजी! जीव कहने से काम नहीं चलेगा, अन्योन्याभाव स्वीकारना पड़ेगा, नहीं तो पहचान तुम्हारी क्या होगी ?

सेवफल भी पुद्गल है, आम भी पुद्गल है तो ये शास्त्री भोजन करने बैठे तो इसे पेन्सिल दे देना कि खा लो। तू पुद्गल को खाता है तो खा ले। तू पुद्गल को खाता है तो खा ले, द्रव्य की एक पर्याय नहीं अनेक पर्यायें पुद्गल की हैं। **सभी पर्यायों का परिणमन एकत्व नहीं है।** तब आपको स्वभाव से स्वभावान्तर दृष्टिगोचर होगा जब तुझे स्वभाव से स्वभावान्तर का बोध होगा, तब ये शास्त्री मुमुक्षु ! कहेगा - मैं तो पुद्गल खाता हूँ। इसे पेन रख देना खाने को।

आज सुबह एक मंदिर के दर्शन करने गया था। वहाँ पर सेव लटके थे, नाशपाती लटके थे। मैंने कहा - देखो, मुमुक्षु सुव्रतसागर ! ये सेवफल हैं, ये नाशपाती हैं, तो इन्होंने कहा कि - आचार्य श्री ये सब प्लास्टिक के हैं । देखो, पंडितजी! अपना तो काम ये है कि हर जगह तत्त्वदृष्टि से देखना और अपना लगाते जाना। आपको लगता है कि - शास्त्र पढ़ते हैं, अरे! शास्त्र तो पढ़ता ही हूँ, सबसे ज्यादा बाहर का पढ़ता हूँ। शास्त्र में प्रमेय क्या है? जो संसार की द्रव्य-गुण-पर्याय है वही तो शास्त्रों में है, हम देखकर समझ रहे हैं। अब वो सेवफल थे कि नहीं? थे, पर प्लास्टिक के थे। 'फल' संज्ञा जरूर थी, पर पर्याय

भिन्न थी। सेवफल कहाँ होते हैं ? शिमला में । शिमला के सेवफल का स्वाद प्लास्टिक के सेवफल में नहीं आने वाला और नागपुर के संतरों का स्वाद प्लास्टिक के संतरों में नहीं आयेगा।

ये शास्त्री कहता है कि मैं तो पर्याय खाता हूँ तो खा इन प्लास्टिक के फलों को। फिर कहेगा - महाराज जी! समझ में आ गया। पर्याय पर्याय में अन्योन्याभाव है और इनके स्वभाव स्वभाव में अंतर है फिर सुगत बनकर नहीं कहेगा – ऊँट खा लो, मृग खा लो। फिर मैं कहूँगा – तुम अपने इष्ट को खा लो। यदि तुझे ऐसा लगता है, तू कहेगा गुरु की पर्याय भिन्न है। सेवफल खाया जा सकता है पर गाय, भैंस, ऊँट आदि नहीं खाये जा सकते हैं। समझो, द्रव्य-गुण-पर्याय की परिभाषा। तात्त्विक उत्तर देना चाहिए। दूध पीया जा सकता है, पर उसी जीव का खून नहीं पीया जा सकता, न बाटलों से चढ़ाया जा सकता है। धर्म की व्याख्या है, तुम्हारे लौकिक समाज की व्याख्या नहीं है। शास्त्रीजी भले ही रक्त चढ़वा के आ जायें पर पक्का धर्म का जैन होगा तो मुख से उसे यही कहना पड़ेगा कि मैंने गलत किया है। वो पर्याय का राग तुम्हारा विषय है। तुम्हारी पर्याय के राग में हम अपने जैनदर्शन की अहिंसा को नहीं छोड़ पायेंगे। मैं भी राग कह रहा हूँ।

आप कल्पना करो, भगवत् जिनेन्द्र के कैवल्य में गुण-पर्याय की क्या व्याख्या झलक रही होगी? इससे द्रव्य-गुण-पर्याय, अन्योन्याभाव पर दृष्टि नहीं गई न आपकी। भक्ष्याभक्ष्य का विवेक भी न्याय से होता है, अन्याय से नहीं। यदि शास्त्री कहते हैं कि मैं आम खाता हूँ तो अचार भी खाता हूँ उसी का तो बनता है। खा ले अनंत जीवों का पिण्ड, भर जायेगा पेट। यदि तू अचार खाकर अपना पेट भरना चाहता है तो मैं विश्वास दिलाता हूँ तेरे से नरक का भी पेट भरेगा। समझ गये; अचार पराठे के साथ, बासी पुड़ी के साथ सड़ा-सड़ाया खाकर अपना पेट भरना चाहता है, तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि तेरी पर्याय से नरक का भी पेट भरेगा। बुरा नहीं मानना, जो है सो है।

शास्त्री जी! यदि तुम समुद्र का नमक खा रहे हो, तो आज से अपने को जैन मत कहना। तू ये नहीं कह सकता कि महाराज! वो नमक नमक की पर्याय एकसी है। एकसी नहीं है। ज्ञानी! जो समुद्र का नमक है वह अनंत प्राणियों का पिण्ड है। जब किसी की मृत्यु हो जाती है तो उसकी राख को देखो। क्षार, वो भी नमकीन होती है। जो समुद्री नमक है तो वो अनंत जीवों के हड्डी-पसलियों के चूर्ण होकर गलकर सब संगृहीत हो रहा है। कौन पानी छान-छान कर जमा रहा था वहाँ पर, बोल ना? हे मुमुक्षु ! हे भावी भगवन्तो ! देख देख उस द्रव्य-गुण-पर्याय को, निहार तू ये रसना इन्द्रिय के राग में ज्ञानी भावी भगवन्तों की पर्याय खा रहा है। तू देखले और जिसने भले पत्थर का क्यों न हो अड़तालीस मिनट से अधिक रखा पीसने के बाद फिर तुम तीन दिन रख रहे हो, वो भी पिण्ड खा रहे हो। पिसने के बाद अड़तालीस मिनट से ज्यादा नहीं रख सकते आप। नमक गर्म कर लो, प्रासुक करके खाओ। सेंधा नमक खाना चाहिए, प्रासुक।

पुद्गल-पुद्गल कहने पर भी पुद्गल एकत्व नहीं है, पुद्गल अनेकत्व है। ऐसे जीव-जीव कहने पर भी जीव एकत्व नहीं है, जीव अनेकत्व है। इसलिए एक जीव ऐसा मत बोलिए। सादृश्य अस्तित्व से एकत्व है, स्वरूप अस्तित्व से कोई एकत्व नहीं है, भिन्नत्व है। न मैं ईश्वर की आत्मा हूँ, न प्रभु की आत्मा हूँ, न गुरु की आत्मा हूँ, मैं स्वतंत्र हूँ। पर ये ध्यान रखना, आज ये आँधी-तूफान चल रहा है शास्त्री जी! आज अधिकतर शिष्य अपने गुरु को बाप कहने लगे। बोले - कैसे पागलों की भीड़ लग गई है। गुरु को बाप बना रहे हैं। आज बाप एक होता है ऐसा कह रहे हैं। ठीक है व्यवहार से गुरु को बाप बना रहे तो बाप एक होता है, पर चाचा अनेक हो सकते हैं। पर बात समझो, गुरु न बाप है, न चाचा है। लगता है जिनवाणी के बोध से शून्य लोग घूम रहे हैं। आपको जिनवाणी का आधार है क्या? गुरु बाप होता है क्या? 'त्वमेव माता त्वमेव पिता' ये जैनदर्शन का सूत्र नहीं है, ध्यान रखना।

हे ज्ञानी ! श्लोकवार्तिक, राजवार्तिक, अष्टसहस्री, अष्टशती, प्रमेयकमलमार्तण्ड, सत्यशासन-परीक्षा, प्रमेयकलिका, ये जितने भी महान् ग्रंथ हैं - इन महान् ग्रंथों का जब-तक अवलोकन नहीं किया तभी तक बाप कहेगा और जिस दिन इन ग्रंथों को पढ़ लेगा उस दिन गुरु को गुरु कहेगा, बाप कहना बंद कर देगा। क्या अज्ञानियों की भीड़ चल रही है। आपको बोध होना चाहिए मुमुक्षु! ज्ञान-ज्ञेय संबंध कहाँ से स्थापित कर लिए ? तूने क्या किया यहाँ आकर के ? वहाँ माता-पिता, माता-पिता चिल्लाता था, तो तूने परिवर्तन कर लिया है। वह राग यहाँ बरसने लगा तुम्हारा। तुम अपने गुरु को बाप कह रहे हो। पिता भी नहीं शुद्ध ठेठ बाप।

तुम गुरु को बाप कहकर चिल्ला रहे हो - बाप मेरा एक। ज्ञानी! लगता है बाप को छोड़कर तुमने बाप ही बना लिया है, गुरु नहीं बना पाये आज तक। धिक्कार हो। श्रद्धा-श्रद्धेय संबंध; ये मैं आगम से आलापपद्धति से बोल रहा हूँ। कौनसा संबंध है ? श्रद्धा-श्रद्धेय संबंध। इसलिए आपसे कहना है, ये संघों की भेड़चाल में नहीं चलना, आपको तो आगम की भाषा को समझना है। मैं गुरुभक्ति करता हूँ पर अंधगुरुभक्ति नहीं करता। प्रतिदिन आचार्य-वंदना करता हूँ, गुरु की भक्ति करता हूँ। मुझे मालूम है साधन साधन है, साधन साध्य नहीं है। **मैंने गुरु का आश्रय आत्मकल्याण के लिए लिया है उनको पकड़ने के लिए नहीं लिया। नौका से पार होने के लिए नौका में बैठना पड़ता है, पर नौका में बैठे ही रहोगे तो पार कैसे हो पाओगे ?** ये कौन समझाए आपको? नौका में बैठे थे पार होने के लिए, पर नौका नहीं छोड़ना चाहता, तो बैठा रह नौका में। समुद्र में तो बैठा है, पर बैठा पानी में ही है। अरे! विमान निकलता है नागपुर से, आप पूछना - विमान कहाँ है? तो कहोगे नागपुर में, भले ही विमान आकाश में हो। भाई! आपको अनुमति लेना पड़ेगी। हमारा शासन नभ में भी है, थल में भी है, जल में भी है। तीनों सेना देश में होती हैं थलसेना, जलसेना, नभसेना (वायुसेना)। इसका तात्पर्य क्या हुआ ? बहुमुखी प्रज्ञा को जन्म दो आप। इसलिए आपके यहाँ जिनागम में दिग्विरतिव्रत देशविरतिव्रत का नियम

लेना पड़ता है जो नीचे का भी होता है, मध्य का भी होता है और तिर्यक् का भी होता है। मुझे तो लगता है कि लोग ये न समझें कि अनपढ़ लोगों का काम है व्रती बनना। यहाँ तो लगता है व्रती भी निर्दोष वही होगा जो अच्छा पढ़ा-लिखा होगा।

अब तो आपको सोचना ही पड़ेगा, इतने सारे भंग कैसे समझोगे ? **कोई सोचे बुद्धि नहीं चल रही तो मुनि बन जाओ, बुद्धि नहीं चल रही तो ब्रह्मचारी बन जाओ, बुद्धि नहीं चल रही तो त्यागी का भेष बना लो। भाई! बुद्धिविहीनों का मार्ग नहीं है, ये प्रज्ञावन्तों का मार्ग है।** हमारे आचार्य बुद्धिविहीन होते तो धवला, जयधवला, महाधवला जैसे ग्रंथों को कैसे लिखते? महापुराण के कर्त्ता 'जिनसेन' ऐसे वो चौबीस महापुराण लिखनेवाले थे, ऐसे प्रज्ञावंत आचार्य हुए।

श्रद्धा-श्रद्धेय संबंध; पंचपरमेष्ठी में कौनसा संबंध ? श्रद्धा-श्रद्धेय संबंध होता है, न माता न पिता का। नहीं तो स्थानांतरण किया, छोड़के कहाँ आये ? मुमुक्षु ! तू पचास का नोट लेकर बाजार गया और सेवफल खरीद लाया और कहता है, अहा ! मैं कितना दानी, मैं पचास रुपये सुबह से देकर आ गया। मेरे मित्र! दान करके नहीं आया, सेबफल लेकर आया है, ये परिवर्तन करके लाया है। ऐसे ही मुमुक्षु! तू बन गया मुनि और कहता है - विशुद्धसागर महाराज! आप ही मेरी माँ हो, आप ही मेरे पिता हो। तू क्या करके आ गया ? तू पूरी यादें तो यहीं लेकर आया है। उन्हें छोड़कर आया, यहाँ बनाकर बैठ गया। तो कहाँ तेरी आत्मकल्याणदृष्टि है? श्रद्धा-श्रद्धेय संबंध, उपमा दो न तुम्हीं मेरे भगवान् हो, हीन की उपमा क्यों दे रहे हो, उत्कृष्ठ की उपमा दो।

ज्ञानी ! श्रद्धा-श्रद्धेय संबंध, आधार-आधेय संबंध, ज्ञान-ज्ञेय संबंध, संश्लेष संबंध, अविनाभाव संबंध - ये सब संबंध हैं पर जो संबंध जैसा है उसको वैसा लगाइए। पहली बार तो सुन रहा हूँ, पहली बार सुन रहे; इसका मतलब समझो। कितना अंदर में अविवेक छाया था, आप ही तो बोलते थे-तुम्हीं मेरी माता तुम्हीं मेरे पिता हो। माता-पिता का भाव अलग आता है। गुरु-शिष्य का भाव अलग आता है - यह कौनसा संबंध है? श्रद्धा-श्रद्धेय संबंध। न आपसे मुझे कुछ लेना है, न आपको कुछ देना है; ये तो आस्था का संबंध है। माता-पिता का संबंध परिचितों में होता है, विषय-कषायों का संबंध होता है, लेकिन दिगम्बर गुरु कहीं भी आपको दिख जाये, चेहरा मुस्कराता है। कब देखा था? कब जाना था?

कर्नाटक में होसपेट नाम का गाँव है। हम लोग वहाँ गये, लगभग आठ-दस वर्ष का कन्नड़ी बालक भक्ति में लग गया। वो मेरी भाषा नहीं जानता था, मैं उसकी भाषा नहीं जानता था। वह इतना भक्ति में लीन हो गया, ऐसा लग रहा था कि वह कई वर्षों से परिचित हो। इतना ही नहीं गाँव से विहार हो गया। वह अपने माता-पिता को दूसरे गाँव लेकर आया, मुझे महाराज के दर्शन करना है। ये परिचय किसका था ? विशुद्धसागर का नहीं था। ये वीतरागी अर्हंत की मुद्रा का परिचय था, श्रद्धा-श्रद्धेय संबंध था।

जब गोम्मटेश्वर में अभिषेक हो रहा था, ढाईसौ पिच्छी थी। प्रथम अभिषेक में बहुत भीड़ थी। वह बालक अपने माता-पिता को लेकर आया, रो-रोकर बोला - मुझे दर्शन करना है। जब वहाँ गया, मुझे क्या मालूम मुझे कौन देख रहा है। सीढ़ियों से जा रहा था ऊपर, वह बालक उस भीड़ में चिल्लाता है पिताजी से कन्नड़ी में, अपने महाराज वे जा रहे हैं। जब संघ नीचे उतरकर आया, खोज कर यतिनगर जहाँ बसा था वहाँ पिताजी बालक को लेकर पहुँचे और बोले - महाराज! इसे सँभालो। मैंने कहा - क्या हो गया ? बोले – जब से आप गाँव से निकले हो, तबसे परेशान कर रहा है। बोले – इतनी भीड़ में भी आपको देखकर कह रहा था – हमारे महाराज जा रहे हैं। अब सोचिए, क्या मैं इसका पिता हूँ ? क्या मैं इसकी माँ हूँ ? नहीं, इस जीव का मात्र श्रद्धा-श्रद्धेय संबंध है। **श्रद्धा-श्रद्धेय संबंध मोक्ष का सहकारी साधन है और माता-पिता का संबंध संसार का सहकारी साधन है।** अब आपको जो रुचिकर लगे वह कर लेना। मेरा कोई मना नहीं है। मैं क्यों क्लेश करूँ ?

ध्यान दो, गुरु गुरु ही है, प्रभु प्रभु ही है। मैं मैं ही हूँ। न ये दासों का पंथ है, न बापों का पंथ है। ये तीर्थंकरों का पंथ है, मार्ग है। दासों का मार्ग नहीं है, बापों का मार्ग नहीं है, भगवन्तों का मार्ग है।

इतो गतमनेकतां दधदितः सदाप्येकता-
मितः क्षणविभंगुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात्।
इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजै-
रहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवम्॥273॥

अनित्य एकान्त मानते हो तो पुनर्भव का अभाव हो जायेगा, फिर कार्य का आरंभ, कार्य का फल क्या ? बालक बाहर क्यों गये ? नौकरी करने, पैसा कमाने, फिर लौटकर कहाँ आये ? घर आये। तुम पहचान कैसे गये, यही घर है तुम्हारा ? जब माँ रोटी बना रही थी तब दूसरी थी, बनाते-बनाते वो बदल गई रोटी तो बन गई अब खायेगा कौन ? बनानेवाला गया, खानेवाला दूसरा आयेगा तो बनाई क्यों थी ? **'कार्यारम्भः कुतः फलं'** क्षणिक एकान्तवादियों के लिए है। तुम्हारा क्षणिकएकान्त है तो कार्य कोई आरंभ करेगा, फल कोई भोगेगा। इसलिए वह नहीं घटित होता है। हम क्षणभंगुर मानते हैं ऋजुसूत्रनय की एक समय की दृष्टि से। ध्रुव है, नित्य है; ध्रुवत्वद्रष्टि से। आत्मा नित्य है, लेकिन नित्य ही नहीं है।

नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते।
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलम्॥37/आ.मी.॥

यदि नित्य ही है, यदि नित्यएकान्त मानते हो तो विक्रिया नहीं होती है, परिणमन नहीं होता है, तो पहले ही कारक का अभाव हो गया, प्रागभाव का अभाव हो गया, कर्त्ता का अभाव हो गया। फिर क्या फल होगा प्रमाण का? विक्रिया ही नहीं है, फल ही नहीं है, तो न बन्ध बनता है, न मोक्ष घटित होता है, न पुण्य-पाप बनता है। जब परिणमन ही नहीं है - किसका पुण्य? जब परिणमन ही नहीं है तो प्रेत का

अभाव हो जायेगा। पुनर्भव, प्रेत यानी भूत। भूत लगता है कि नहीं पंडितजी! आपको लगे कि नहीं? अगर नहीं लगे होते तो घर में होता। तुझे लगे कि नहीं? अगर नहीं लगे होते तो घर में न होता। तुझे लगे हैं, अच्छे से लगे हैं भूत यानी प्राणी। तेरे बेटे की माँ नहीं लगी और तू नहीं लगा। यदि भूत उतर जाता तो मुनि बन गया होता।

पंडितजी! यदि आप भूत नहीं मानते हो तो जीव की सिद्धि नहीं कर पाओगे। जो भूत लोगों को लग रहे, वह जीवत्व की सिद्धि कर रहे हैं। भूत कब लगेगा ? जब पुनर्भव होगा। इसलिए प्रेत यानी पुनर्भव। ध्रुवत्व सिद्धि करोगे - आत्मा ध्रौव्य है। पाप-पुण्य की व्याख्या करोगे। पाप को छोड़ेंगे, पुण्य में लगेंगे। पाप के फल को नहीं भोगना चाहते हो, पुण्य के फल को प्राप्त करना चाहते हो तो आत्मा की त्रैकालिकता स्वीकारना पड़ेगी। कैवल्य की दृष्टि से देखो। केवलज्ञान सम्पूर्ण लोकालोक में व्याप्त है, प्रमेय की अपेक्षा। लोकपूरण समुद्घात को देखोगे - आत्मा के प्रदेश सर्वव्याप्त हैं, इसलिए आत्मा सर्वलोक में है।

जगत् के सम्पूर्ण ज्ञेयों में प्रवेश होता है कैवल्य का। इसलिए आत्मा हमारी क्या है ? विस्तरित है और स्वदेह की अपेक्षा से स्व प्रदेशमात्र है। परमार्थदृष्टि से आत्मप्रदेशों से कभी भिन्न हुई ही नहीं है इसलिए आत्मा स्वप्रदेशमात्र है। ये आत्मा का अद्भुत वैभव है। शास्त्रीजी! चल रहा है द्रव्यानुयोग। समयसार अध्यात्म कलश में, आत्मख्याति टीका में, स्याद्वाद अधिकार में षट्दर्शनों की व्याख्या हो गई है।

आत्मस्वभावं परभावभिन्नं।
आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।
भगवान् महावीर स्वामी की जय।

स्व-स्वभाव-महिमा

कषायकलिरेकतः स्खलति शांतिरस्त्येकतो।
भवोपहतिरेकतः स्पृशति मुक्तिरप्येकतः।
जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकतः
स्वभावमहिमात्मनो विजयतेऽद्भुताददद्भुतः ॥274॥

शब्दार्थः - **(एकतः कषाय-कलिःस्खलित)** एक ओर से देखने पर कषायों का क्लेश दिखाई देता है और **(एकतः शान्ति अस्ति)** एक ओर से देखने पर शांति है। **(एकतः भव-उपहति)** एक ओर से देखने पर भव की पीड़ा दिखाई देती है और **(एकतः मुक्तिः अपि स्पृशति)** एक ओर से देखने पर मुक्ति भी स्पर्श करती है। **(एकतः त्रितयम् जगत् स्फुरति)** एक ओर से देखने पर तीनों लोक स्फुरायमान होते हैं और **(एकतः चित् चकास्ति)** एक ओर से देखने पर केवल एक चैतन्य ही शोभित होता है **(आत्मनः अद्भुतात् अद्भुतः स्वभाव महिमा विजयते)** ऐसी आत्मा की अद्भुत से अद्भुत से अद्भुत स्वभावमहिमा जयवन्त वर्तती है।

भावार्थः - अन्यवादी सुनकर बड़ा आश्चर्य करते हैं। उनके चित्त में विरोध के कारण यह बात समझ में नहीं आ सकती। यदि उनके कभी श्रद्धा भी हो जाये तो प्रथम अवस्था में बड़ा अद्भुत दिखता है कि हमने अनादिकाल यों ही खोया, ये जिनवचन बड़े उपकारी हैं, वस्तु का स्वरूप यथार्थ जताते हैं, ऐसा आश्चर्य कर श्रद्धान करता है।

चैतन्य चमत्कार

जयति सहजतेजः पुञ्जमज्जत्त्रिलोकी -
स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः।
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलम्भः
प्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः ॥275॥

शब्दार्थः - **(सहज)** अपने स्वभावरूप **(तेजः पुंजः-मज्जत् - त्रिलोकी-स्खलत् अखिल-विकल्पः अपि एकः एव स्वरूपः)** तेजः पुंज में त्रिलोक के पदार्थ मग्न हो जाते हैं, इसलिए जिसमें अनेक भेद होते हुए दिखाई देते हैं, तथापि जिसका एक ही स्वरूप है **(स्व-रस-विसर-पूर्ण-अच्छिन्न-तत्त्व-उपलम्भः)** जिसमें निजरस के विस्तार से पूर्ण अछिन्न तत्त्वोपलब्धि है **(प्रसभ-नियमित-अर्चिः)** और जिसकी ज्योति अत्यंत नियमित है **(एषः चित्चमत्कारः जयति)** ऐसा यह चैतन्य चमत्कार जयवंत वर्तता है।

भावार्थः - यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर चैतन्यचमत्कार जयवन्त प्रवर्तता है, किसी से बाधा न जाय इस तरह सर्वोत्कृष्ट हो प्रवर्तता है। अपने स्वभाव स्वरूप प्रकाशरूप के पुञ्ज में मग्न हुये जो तीन लोक के पदार्थ उनसे जिसमें अनेक भेद हुए दिखते हैं ऐसा है तो भी एक स्वरूप ही है, अर्थात् केवलज्ञान में सब पदार्थ झलकते हैं। वे अनेक ज्ञेयाकाररूप दिखते हैं तो भी चैतन्यरूप ज्ञानाकार की दृष्टि में एक ही स्वरूप है। अपने निजरस से पूर्ण ऐसी तत्त्वस्वरूप की प्राप्ति जिसकी छिदी नहीं है यानी प्रतिपक्षी कर्म का अभाव होने से जिसके स्वभाव का अभाव नहीं पाया जाता। प्रकट बलात्कार से जिसकी दीप्ति नियमरूप है, अपने अनंतवीर्य से निष्कम्प ठहर रहा है। ऐसा चित्चमत्कार जयवन्त है। जहाँ जयवंत कहने से सर्वोत्कृष्टपने कर रहना कहा, सो यही मंगल है।

।। समय देशना ।।

भव्य बन्धुओ ! आचार्यप्रवर भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज समयसारजी में ध्रुवज्ञायकस्वभावी भगवान् आत्मा के सहज स्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं ।

आत्मद्रव्य जगत् के सम्पूर्ण प्रपञ्चों से शून्य है, एकत्व है, विभक्त है, एक है पर से भिन्न है, पर से भिन्न है एक है। एक-एक द्रव्य की दृष्टि से प्रत्येक आत्मा एकत्वभूत ही है। **सम्बन्ध बन्ध के हैं, सम्बन्ध राग के हैं, स्वभाव का कोई सम्बन्ध नहीं है, जहाँ सम्बन्धदृष्टि है वहाँ स्वभाव का अभाव है। जहाँ स्वभावदृष्टि है, वहाँ सम्बन्ध का अभाव है। जहाँ रागदृष्टि है, वहाँ सम्बन्ध का सद्भाव है । जहाँ राग का अभाव है वहाँ सम्बन्ध का अभाव है।** सम्बन्ध का भाव होने पर भी, सम्बन्ध का स्वभाव में अभाव ही है । राग में राग है, वस्तु में कोई राग नहीं है। वस्तु से राग की पुष्टि करते हो। वस्तु राग को उत्पन्न नहीं करती और जिसमें पुष्टि कर रहे हो उसे आप अपनी वस्तु कह रहे हो। चाहे राग का सद्भाव हो तब भी परवस्तु तेरी नहीं होती है। चाहे राग का अभाव हो तब भी परवस्तु तेरी नहीं होती है ।

राग में ही जी रहे हो, द्वेष में ही जी रहे हो, फिर भी राग-द्वेष तेरे भीतर नहीं है; यह कर्मसापेक्षदशा है । कर्म से अभाव करके देखें तो न मेरे में राग है, न मेरे में द्वेष है। एक दृष्टि में सकषायदशा दूसरी दृष्टि में अकषायदशा, दोनों की अनुभूति लेकर देखो, क्या होता है ? क्या वस्तु तेरी नहीं है ? कोई छीन ले जाये, तो प्रेम से दे देगा क्या ? अपनी वस्तु देना चाहिए क्या ? छोड़ना चाहिए क्या ? तेरे पिता ने कितनी मेहनत करके पैसा कमाया, तब तुझे वस्त्र-आभूषण दिये गये हैं तो कैसे छिनवा सकता है ? नहीं छोड़ना चाहिए। कैसे छोड़ सकते हैं ? तेरे पिता ने तुझे भूमि खरीद के दी है वह तेरे नाम से खरीदी है अब कोई दूसरा अधिकार जमाना चाहता है तो कैसे छोड़ी जा सकती है, छोड़ सकते हो क्या ?

ये वस्तु मेरी है, मैं इसका स्वामी हूँ। ये मेरे दादा का मंदिर है, मेरी परम्परा से आया है, मैं आपको इसका अधिकारी कैसे बना सकता हूँ? ये भी एक आनंद है। यदि ये आनंद नहीं आता होता तो संसार

चल ही नहीं सकता था। इसी आनंद की बलिहारी है कि पंचमकाल का दर्शन करने को मिला है। यदि ये कषाय का आनंद न होता तो कलिकाल का आनंद नहीं मिल सकता था। आपको इस भौतिक युग की भौतिक सामग्रियों का अवलोकन करने को मिल रहा है। आपको अपनी काषायिक भावों को धन्यवाद देना चाहिए, कषाय कैसे कूट-कूट के भरी है, क्या है ये? तुम्हारी संस्कृति पर प्रहार हो रहा है। लोग तुम्हारे क्षेत्र पर अधिकार जमा रहे हैं, कहीं जिनवाणी पर बदलाव हो रहे हैं, क्या है? शास्त्री जी! बैठे रहोगे ? आपके वंश, धर्म का लोप करने लोग खड़े हों, आपके बहू-बेटियों की इज्जत नष्ट करने लोग खड़े हों तो क्या आप ऐसे ही बैठे रहोगे? क्या आपके शरीर में रक्त नहीं है ? क्या आप पुरुषत्वहीन हो? क्या वीरत्व नहीं है? आप क्षत्रियपुत्र हो, तुम वीर हो, अधीर क्यों होते हो? आप वीर हो, धर्म की रक्षा करो। देखो अकलंक-निकलंक ने कैसे धर्म की रक्षा की। युवाओ ! क्या आपको अपने धर्म पर अनुराग नहीं आता, क्या कषाय का आनंद है?

धर्म है क्या ? क्षमा धर्म है, आत्मानुभूति धर्म है। इन सारी भाषा वर्गणाओं से, वचनालाप से मेरी आत्मशांति भंग हो रही है। **कण-कण स्वतंत्र है।** कौन किसका रक्षक है? कौन किसका घातक है? स्वचतुष्टय में प्रत्येक द्रव्य परिणमन कर रहा है। अपने अस्तित्वपने का नाश कब होगा और नास्तित्वपने का अस्तित्व कैसे बनेगा ? इसलिए मैं अपने स्वरूप में व्यवस्थित हूँ। **राग-द्वेष के परिणाम जिन-जिन निमित्तों से हो रहे हैं, वे धर्म ही नहीं हैं; आत्मविशुद्धि ही धर्म है।** इसलिए बहिरंग इन सम्बन्धियों के राग को देखकर के आत्मा की शांति का भंग होना दिखाई दे रहा है। मैं ऐसे सम्बन्ध से अपने एकत्व को देखना चाहता हूँ, पृथक्त्व को देखना चाहता हूँ। **सम्बन्ध तो संक्लेशता के सेतु हैं, संसार के हेतु हैं।** इसलिए मैं संबंध में प्रवेश नहीं करना चाहता हूँ। मैं 'अहमिक्कोऽहं' अहमिक्को; मैं मंदिर नहीं हूँ, मैं मठ नहीं हूँ, मैं भूमि नहीं हूँ, मैं भूपति नहीं हूँ। भूमि अपने चतुष्टय में है, मैं अपने चतुष्टय में हूँ। मेरे राग के निमित्त का सद्भाव हो रहा है इसलिए भूपति बोल रहा हूँ। पर भूमि का भूपति तो आज तक हुआ ही नहीं हूँ। पृथ्वी का प्रत्येक प्रदेश अनादि से स्वतंत्र है। किसी भी प्रदेश ने आज तक नहीं कहा कि आप मेरे पति हो। पर धिक्कार उस व्यभिचारी को हो, जो कन्या तुझे पति स्वीकारती नहीं है उसका तू पति बना बैठा है, धिक्कार हो।

शास्त्रीजी! धिक्कार हो तुझे, तुझे किसी कन्या ने वरमाला नहीं डाली तब भी तू कहता है इसका पति मैं हूँ। मेरे मित्र! व्यवहार से ही बोलिए, लोकाचार से बोलिए, जो कन्या तुझे कभी वरमाला नहीं डाल रही है, फिर भी तू उसे अपनी पत्नी आपको उसका पति कह रहा है। लोक में तू क्या कहलायेगा? ब्रह्मचारी या व्यभिचारी? व्यभिचारी। हे व्यभिचारियो ! जिस भूमि ने तुझे कभी वरमाला नहीं डाली, तब भी तू कह रहा मैं इसका स्वामी हूँ। ये तेरी व्यभिचारिणी बुद्धि है। किस भवन ने ये कहा कि ये मेरा स्वामी है? किस खण्ड ने कहा कि ये मेरा स्वामी है? किस वस्तु ने कहा ये मेरा स्वामी है?

भैया! कपड़ों ने आपसे कब कहा कि तू मेरा स्वामी है फिर क्यों दुर्बुद्धि को लगाता है ? कपड़ों को देखकर लड़ रहा है। यात्रा पर निकले, तो मेरा सामान मेरी सामग्री, मेरा थैला। एक दिन को किराये पर कमरा भी ले लेता है, तो कहता है मेरा कमरा। तेरी बुद्धि कहाँ चरने चली गई ? स्वद्रव्य पर लक्ष्य ही नहीं है, मात्र साधु बनने का उद्देश्य इतना ही है। स्त्री का व्यभिचार तो कोटी-कोटी लोग छोड़ चुके हैं पर बुद्धि का व्यभिचार अभी तक नहीं छोड़ा। **नारी को नहीं देखनेवाले ब्रह्मचारी बहुत मिल जायेंगे, पर परवस्तु को अपना नहीं माननेवाले ब्रह्मचारी बहुत कम मिलेंगे।** इस तीर्थ में मेरा अधिकार है, यह भूखण्ड मैंने अपने भक्तों से खरीदकर रख दिया है। मेरा तीर्थ बनेगा, एक व्यभिचार को छोड़ के चले थे दूसरे में व्यभिचार कर बैठे।

ज्ञानी ! सुनते जाना दो सौ चहौत्तर कलश की महिमा चल रही है। एक ही कलश में दो धाराओं की व्याख्या है। काषायिकभाव कैसा होता है और अकाषायिकभाव कैसा होता है? ये है आत्मा का वैभव, सम्बन्ध जोड़ते जाइये और कषाय को बुलाते जाइये। गाड़ी में चलते-चलते एक पुरुष आपको मिल गया, बात करते-करते वह मित्र बन गया। दूसरी सीट पर दूसरा व्यक्ति बैठा था, वह उससे बोला – आप खड़े हो जाओ। तुम कहते-देखो, मेरे मित्र से नहीं बोलना। वो भी अपरिचित था, ये भी अपरिचित हैं। हे अज्ञानी ! एक को तूने मित्र बना लिया दूसरे को शत्रु बना लिया। राग-द्वेष खड़े कर लिए, क्या है ? मुमुक्षु ! आपके साथ यही तो हो रहा है। आप मेरे से अपरिचित थे, मैं आपसे अपरिचित हूँ। एक को शिष्य बना लिया और दूसरा शिष्य नहीं है उसे शत्रु बना लिया। क्या किया तुमने घर छोड़के ? राग-द्वेष ही तो बढ़ा लिया है। शिष्यों में शिष्यबुद्धि, किसी ने दूसरे से दीक्षा ले ली हो उसको मैं देखना पसंद नहीं करता हूँ, क्या दुर्बुद्धि आ गई विशुद्धसागर तुम्हारे मन में। मुनि देखते तो अच्छा होता, शिष्य देख रहे इसलिए मुनि दिखाई नहीं दे रहा है। जीवद्रव्य देख लेता तो और कितना अच्छा होता। जीवास्तिकाय देख लेता तो कितना अच्छा होता। जीव पदार्थ देख लेता तो और कितना अच्छा होता।

सम्बन्धों में बंध है, स्वभाव में कोई बन्ध नहीं है। सम्बन्ध देखोगे तो स्त्री दिखेगी। सम्बन्ध देखोगे तो पुरुष दिखेगा। सम्बन्ध देखोगे तो नपुंसक दिखेगा और जितने वेद देखोगे उतने विकार दिखेंगे। स्वभाव देखोगे तो भगवान् आत्मा दिखेगी। क्या देख रहे हो ? स्त्री देखोगे तो काम-विकार सता रहे हैं, नपुंसक देखोगे, तो वो तो वासनाओं की भट्टी जल रही है। **पुरुष के विकार घास की आग के समान हैं। स्त्री के विकार कण्डे की आग के समान हैं और नपुंसक के ईंट के भट्टे की आग के समान हैं।** देख लो इन वेदों को, वेदों में ज्वाला-ही-ज्वाला है और अग्नि जलने के बाद राख होती है, वासनाओं की इच्छाओं के जलने के बाद राख होती है। कुछ नहीं होता; ये चमक, उत्साह, ओज, उमंग विषयों की पूर्ति के बाद सब राख हो जाती हैं। स्वयं का चेहरा ही देखना पसंद नहीं आता। धर्म के मर्म को समझो,

धर्म की सत्यता को समझो, धर्म के सत्य को समझो। हँसना, मुस्कराना; ये सब उन्मत्त चेष्टाएँ हैं, काषायिकभाव हैं। धर्म क्या मान बैठे हो ?

भैया ने आगरा में पंडितजी को बुला लिया, अच्छे मिठाई पकवान खिला दिए। मैंने धर्म कर लिया और उस विद्वान् ने चार मीठी-मीठी बातें सुना दीं, मैंने धर्म कर लिया। दोनों कषायी हो, क्यों ? एक को खिलाने में आनंद आ रहा है, एक को खाने में आनंद आ रहा है, दोनों ने कषाय की अनुभूति ली है। **जहाँ निज देह के संबंध का भी वेदन समाप्त हो जाये; परदेहों के देखने का, सुनने का, स्पर्श करने का वेदन समाप्त हो जाये, जहाँ मात्र अशरीरी भगवान् आत्मा की अनुभूति मात्र हो उसका नाम धर्म है।** उतना ही धर्म है बाकी सब धर्म से दूर हैं। ये निज की व्यभिचारिणी प्रज्ञा पर अंकुश लगाइए। जिस मिलन-जुलन को तुम धर्म मानते थे - ये कषाय के मिलन-जुलन हैं, धर्म के नहीं। मित्र! ये ध्रुव सत्य कथन है। हे योगीश ! आगे मत जाइये, क्यों ? स्वामी! पाँच सौ योगियों को घानी में पेल दिया है यहाँ के सम्राट् ने। मैं मुनियों को संकेत कर रहा हूँ। तुम्हारी दया अदया में न बदल जाये। भैया! आपको समझ में नहीं आ रहा है इसलिए गम्भीर हो, या ज्यादा समझ में आ गया इसलिए तू ऐसा हो गया, समझ में आ रहा है? हे योगी ! पाँच सौ योगियों को घानी में पेल दिया। शास्त्रीजी! धर्म के मर्म को समझने की आवश्यकता है, नहीं तो धर्मात्माओं का राग भी तुझे धर्म से दूर कर देगा। जिस धर्म की व्याख्या यहाँ चल रही है वह पूर्ण नीरस है, नीरज है, समरस है।

स्वामी! विहार मत कीजिए, उमड़ पड़ा संवेग, उमड़ पड़ा निर्वेग, बदल गया आवेग में , पाँच सौ मुनिराजों को घानी में पेल दिया, अहो! कैसा राजा ? भावलिंगी सच्चे योगी, जिसके तैजस पुतला निकल रहा है वह द्रव्यलिंगी नहीं होता। ध्यान रखना, द्रव्यलिंगी के पुतला नहीं निकलता, क्योंकि जो तैजस ऋद्धि है वह ऋद्धि द्रव्यलिंगियों में नहीं होती है। द्रव्यसहित भावलिंगी में ही होती है। जब ऋद्धि का प्रयोग कर रहे थे, तब भी भावलिंगी थे। अब देखो, भाव बदल गये, क्योंकि ऋद्धि प्रगट हुई है। उनको तो पता ही नहीं था है कि नहीं, पुतला कब निकला ? जब आवेग आ गया। संज्वलन कषाय की तीव्रता में द्वारिका झुलस गई। पंडितजी! उस समय कोई दूसरी कषाय नहीं थी। जब पुतला वापस आता है और मुनिराज को भी झुलसा देता है। गुणस्थान उनका गिर जाता है, भस्म होते-होते सब भस्म हो गया। जैसे ही मुनिराज के मन में ऐसा भाव आया कैसे पेल दिया पाँच सौ योगियों को, उनके शरीर से अशुभ तैजस निकलता है और अशुभ तैजस ने जाकर के दण्डक राजा की नगरी को झुलसा दिया और वापस आकर के उन मुनिराज को भी झुलसा दिया।

मैं मरणकण्डिका ग्रंथ से बोल रहा हूँ। वहाँ श्रमण से क्या कह रहे हैं आचार्य अमितगतिस्वामी - हे निर्ग्रंथ तपोधन! अब तुम परिपूर्ण राग से विमुक्त हो जाओ, कषाय से विमुक्त हो जाओ। धर्मात्माओं से वात्सल्य तो रखना, पर वात्सल्य शल्य में न बदल जाये। ये भाषा नहीं है आपकी कि मैं गुरु के नाम पर

खून बहा दूँगा। ये निर्ग्रंथों की भाषा नहीं है कि जहाँ मेरे गुरु का पसीना गिरेगा मैं रक्त बहाऊँगा। ये निर्ग्रंथों की भाषा नहीं है। प्रभु के नाम पर मैं खून बहाऊँगा, अर्हंत्-भक्तों की भाषा नहीं है।

निर्ग्रंथों की भाषा क्या होगी ? जब कोई करेगा उपसर्ग, जब कोई करेगा कष्ट और पीड़ा के लिए प्रयत्न, तब मेरा होगा मौन और मेरा होगा ध्यान, यही होगा मेरा कवच। कहाँ गई द्रव्यदृष्टि, मृत्यु के आगे क्या होता है ? मैं यहाँ बैठा हूँ किसी ने तलवार का वार किया, किसी ने धनुष-बाण छोड़ दिया, मरण ही तो होगा कि और कुछ होगा ? जबकि मैं बुद्धिपूर्वक सल्लेखना के लिए निकला ही हूँ। सत्य यह है कि दुनियाँ अपना मरण देख नहीं पाती। मैं देखते-देखते मरण को वरण करूँगा। तू मेरा मित्र है, दो मिनट रुक जा प्रहारक! मुझे शांति से बैठ जाने दे, फिर प्रहार कर देना, क्यों ? मरण मेरा कैसा होता, कब होता, परिणाम कैसे होते, उस समय मुझे विवेक होता कि नहीं होता; आज तू मेरा परम उपकारी है कि मैं विवेकसहित सल्लेखना धारण करके अपनी अंतिम श्वास ले रहा हूँ। तू मेरा परम मित्र है। ऐसा जीवन जो जी रहा है वही आत्मा का वैरागी योगी है। तुम्हारी दया, दया तक ही सीमित रहे, तुम्हारी दया अदया में न बदल जाये।

मैं जैन हूँ, जैन मुनि हूँ यदि कोई मेरे पर उपसर्ग कर रहा है तो मैं साम्यभाव से साधना करूँगा । कीर्तिधर मुनिराज और सुकौशल दोनों योगी खड़े हुए हैं। माताओ! बुरा मत मानना, अधिक ममत्व अच्छा नहीं होता। आप विशुद्धसागर पर भी तीव्र अनुराग मत कर लेना और मेरे राग में किसी दूसरे से लड़ने खड़े मत हो जाना। मैं तो तुम्हारा हूँ ही नहीं और जिससे लड़ रहे वह भी तुम्हारा नहीं है। कषाय करके जाओगे तो साथ लेकर जाओगे। मैं स्पष्ट बोल रहा हूँ। मैं आपका नहीं हूँ विश्वास रखिए, मैं आपको अपना मानता ही नहीं हूँ पर आप भी मुझे अपना मान के बैठ मत जाना। यदि मेरे राग में भी आपने किसी से द्वेष किया है तो वो परिणाम भी तुमको भोगना पड़ेगा। जीवन जी रहा हूँ, आयुकर्म को अनुभव कर रहा हूँ पर किसी कर्मबंध के लिए नहीं।

कीर्तिधर मुनिराज पर उसने आक्रमण नहीं किया, आक्रमण किस पर किया ? सुकौशल मुनिराज पर और सीधा जाकर के सबसे पहले पंजा कहाँ मारा ? सुकौशल महाराज जब ध्यानस्थ खड़े थे उन पर। **'न मे शत्रुर्न च प्रियः'**। जो आँचल का पान कराती थी, जो नौ महिने तक पेट में रखी थी वह पेट चीर रही है। मैं किसको मित्र मानूँ? जिनके पीछे राम-रावण का युद्ध हो गया, कोटि-कोटि योद्धाओं की भुजा नष्ट हो गई, वही रावण तीर्थंकर बनेगा और सीता बनेगी गणधर। **'न मे शत्रुर्न च प्रियः'**। तुम क्यों लड़ रहे हो एक-दूसरे के प्रति। जो शत्रु दिख रहे हैं और जिनके पीछे शत्रुता चल रही है वे तीर्थंकर-गणधर हैं, तुम बीच में पिस रहे हो। शास्त्री जी! यह सही नहीं है क्या ? है। हे जीव ! वो तुम्हारा पड़ोसी बैठा है, वह मित्र है, ठीक है। पर इतना ध्यान रखना, कहीं तेरी माँ और पिता आपस में युद्ध कर रहे हैं तो दूर बैठ जाना, ज्यादा हो तो एक कैमरे वाले को बुला लाना और दोनों के फोटो खिंचवा लेना। पूछें, क्या कर रहे हो?

बोल देना-आपका फोटो चैनल में देना है। बोले - क्यों बेटे!, माँ! अगर मैं आपका पक्ष लेता हूँ तो आप पूज्य हैं और पिता का पक्ष लेता हूँ तो वह भी पूज्य हैं, इसलिए मैं ज्ञाता-दृष्टा बनके देख रहा हूँ। मुझे क्या सिखा रहे हैं? आप दोनों पति-पत्नि हो, आप दोनों तो फिर मिल जाओगे, बीच में मैं कषाय में उलझ गया, तो आप दोनों खाने आ जाओगे। इसलिए मैं इन झंझटों में नहीं पड़ता हूँ।

आपको मुनिराज का उपसर्ग दूर करना चाहिए पर उपसर्गकर्त्ता पर उपसर्ग नहीं करना चाहिए, यही तो साधना है। श्रावक का कर्त्तव्य है अपने गुरु की रक्षा करे पर उस उपसर्ग करने वाले पर दया करे, नहीं तो आपमें और उसमें अंतर क्या है ? एक सत्य घटना बताऊँ। एक सज्जन मेरे पास आये, उन्होंने झूठे पत्र किसी के लिए लिख दिये। वह मेरे पास आये बोले - आप तो बहुत ज्ञानी हो, देखो, मीठी जहर की पुड़िया। आप तो कर सकते हो, आप इनके लिए ऐसा करा दो। मैंने कहा - ज्ञानी! सुन, उसने जो किया है उसे अच्छा मानते हो कि बुरा? बोले - बुरा। तो वो आदमी अच्छा कि बुरा ? बुरा। यदि मैं भी वैसा कर दूँगा तो मैं क्या बचूँगा, अच्छा कि बुरा। इसलिए अपनी जहर भरी मधुरता है इसे, घर ले जाओ, मुझे सलाह नहीं चाहिए। जिसने भूल कर दी वो उसकी भूल है। पर वैसी भूल आप कैसे कर सकते हो ? कभी नहीं, इसलिए निर्ग्रंथपने का भी उपसर्ग दूर करो, पर उपसर्गकर्त्ता पर उपसर्ग मत करो।

कषाय की बात मत करो, शांति की बात करो। एक ही कलश में ये आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी की अलौकिक कला है। आपको मैं कथा नहीं सुना रहा, कलश का अर्थ बता रहा हूँ विभिन्न प्रकार से। कीर्तिधर मुनिराज (पूर्व भव का पति) और सुकौशल मुनिराज (पूर्व भव का बेटा), माँ का जीव बेटे के पेट पर पंजा मारता है, रक्त बहना प्रारंभ हो गया, फव्वारे छूट गये। योगी क्या निहार रहे थे ? हे जीव! जिसे तू नष्ट करना चाहता है वो तो नष्ट ही है। जिस पर तूने पंजा मारा है वो तो नष्ट होने वाला ही है। जिसे तू नष्ट करने की आकांक्षा रखता हो वो नष्ट होता नहीं है। तुम वार मुझ पर कर सकते हो। कषाय पर कोई कषाय करता ही नहीं है, कषाय पर तुमने कषाय नहीं की। बेटा! तेरे माता-पिता लड़ रहे थे, वे भी कषाय पर कषाय नहीं कर रहे थे। डण्डा लेकर भी दौड़े एक-दूसरे के पीछे तब भी ज्ञानी ! कषाय ने कषाय की। कषाय को किसी ने नहीं मारा, बिचारी देह बीच में पिट गई, कौन पिटा ? कषाय निकाली किस पर ? तुमने पुद्गल पिण्ड पर निकाली है। जो कषाय कर रहा है उस कषाय पर डण्डा मारो। पहले कषाय को निकालो बाहर, कषाय पर कषाय भी तुमने नहीं की। किसी के गाल पर चाँटा मार दिया, ये क्या किया तूने? पुद्गल पर वार किया है, कषाय पर कहाँ तूने वार किया? समझ में आ रहा है क्या? अब क्या समझ में आ रहा है? घटना घटने पर भी तुम उसमें घटित न हो, तो मानूँगा समझ में आ रहा है ।

शास्त्री घर जाये, भोजन में नमक अधिक पड़ जाये, मिर्च न मिले और मीठे के दर्शन न हों फिर देखना बेटे की माँ के साथ कैसा व्यवहार करता है? लोक-लाज से उस पर प्रहार नहीं किया तो स्वयं पर प्रहार कर रहा है। क्या मेरे कर्म फूट गये जो मुझे ऐसी देवी मिली। बोले - मैंने उनसे थोड़े ही कुछ कहा है। मुझे

उससे मतलब नहीं है मुझे तो कषाय से मतलब है। ज्ञानी! तूने 'पर' पर न करके स्वयं पर कर ली है, है तो कषाय ही। बहुत सारे ऐसे लोग होते हैं जिनकी लोक में प्रसिद्धि हो गई, किसी पर गुस्सा नहीं करता तो बेचारा कमरे में बैठकर अपना ही सिर फोड़ रहा है। पंडित जी! मैंने ऐसे लोग देखे हैं, यानी गुस्सा करते हैं, अपना ही हाथ पटकते हैं, अपना ही सिर फोड़ते हैं। एक आदमी को देखा हमने, दीवाल में सिर पटक रहा था। हमने कहा - यह तो पागल आदमी है। मैंने कहा - अरे! पुद्गल पर ही पुद्गल पटक रहा है। उसे फोड़ जो फुड़वा रहा है, लोट रहा है, मचल रहा, रस्सी से अपने शरीर को बाँध रहा है। जगत् में ऐसे ढोंगी-पाखंडी लोग हैं इनको तत्त्व का कोई बोध नहीं है, रूठ-रूठ कर भाग रहे हैं महिलाओं जैसे -

छादयदि सयं दोसे, णयदो छाददि परं वि दोसेण।
छादणसीला जम्हा, तम्हा सा वण्णिया इत्थी।।274/गो. जी. का.।।

जो दोषों से आच्छादित है, जो दोषों से आच्छादित करता है, दोषों से आच्छादित करना जिनका धर्म है; उसका नाम स्त्री है। अब तुम पंडित जी! कुछ भी बने रहे, यह मैं नहीं बोल रहा हूँ, सिद्धांत- चक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र गोम्मटसार-जीवकाण्ड में बोल रहे हैं। जिन्होंने गोम्मटेश बाहुबली स्वामी को सूरिमंत्र दिया था वे बोल रहे हैं। पंडित जी का कोई मित्र है यहाँ पर ? ठीक। दादा आप रोज आते हैं, अच्छा आपने हाथ उठाया, ये जीव क्या बोल रहा है ? महाराज! आपकी वाणी ने हमें मंत्रित कर दिया। इससे पूछो जरा, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ करता है क्या ? निमित्त कुछ करता है क्या? इसका मतलब है ये सुलझा जीव है। ये इसे भी मानता है **एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का उपादान-कर्त्ता नहीं होता है, पर व्यवहार से निमित्तकर्त्ता तो होता है।** सत्यता यही है कि लोक को हमारा ज्ञान-अज्ञान न दिख पाये और हमारा कथन पूरा हो जाना चाहिए विवेकपूर्वक।

कीर्तिधर और सुकौशल मुनिराज खड़े हैं। माँ ने पेट में वार कर दिया, रक्त की धारा बह रही है, अंदर का द्रव्य सब बाहर निकल पड़ा, आँतें फट गईं, लहुलुहान हो गये, श्वासें खिंचने लगीं, कीर्तिधर मुनिराज कहते हैं - हे जीव ! निहारो समयसार, यह है समयसार। हे जीव! ये तूने क्या किया, जिसे तूने नौ माह पेट में रखा था आज उसी के पेट को तूने चीर दिया। राग की सत्ता में मरण किया सो व्याघ्री हो गई, ये तूने क्या कर दिया ? उधर मुनिराज का हंस परमहंस में लीन हो रहा था, इधर व्याघ्री माँ का जीव सम्यक्त्व में स्थापित हो रहा था, **'न मे शत्रु र्न च प्रियः'** अब किसको शत्रु कहें किसको प्रिय कहें ? पूर्व संबंध से बेटे के प्राण-पखेरू उड़ गये। आगम में दो प्रमाण मिलते हैं-कहीं कहा मोक्ष हो गया, कहीं कहा स्वर्ग, सर्वार्थसिद्धि गए। उभयवचन प्रमाण हैं। जब अपन केवली बनेंगे या केवली से मिलेंगे तब-तक ठीक है, दोनों बातें स्वीकार हैं। वो तो वीरगति को प्राप्त हुए और माँ सम्यग्दर्शन को प्राप्त हो गई। ऐसा उपसर्ग दूर करो कि उपसर्गकर्त्ता भी उपसर्ग सहन करने के सामर्थ्य को प्राप्त हो जाये, देह पर किये उपसर्ग। यदि आज कोई मेरे ऊपर उपसर्ग करता है तो क्या श्रावको! आप उठके दौड़ोगे नहीं, क्या बचाओगे

नहीं ? अहो ज्ञानी ! शरीर के ऊपर हुए उपसर्ग को बचाने के लिए तुम सब मिलकर खड़े हो जाओगे कि मेरे महाराज पर तुम पत्थर मत फेंको। भैया! देह के रक्षक मित्र मेरे बहुत हैं पर मेरे भावों का रक्षक मित्र कोई है तो मैं ही हूँ। यदि मेरे परिणाम खराब हो गये उस समय कोई खड़ा नहीं होगा, कोई भक्त खड़ा नहीं होगा, कि मैं अपने गुरु के उपसर्ग को दूर कर लूँ। पत्थर जिसने फेंका है वह मात्र इस पर्याय का घातक है पर परिणाम मैंने विकृत किये हैं तो मैं अपनी समाधिमरण का शत्रु हूँ।

वे योगीश्वर जितना देह का ध्यान रखते हैं उससे कोटी-कोटी गुना उस देही का ध्यान रखते हैं। शास्त्रीजी! कुछ परिग्रह की भी हम लोग रक्षा करते हैं, आप मानोगे इस बात को? दिगम्बर मुनि कुछ परिग्रह को प्रतिक्षण सुरक्षित रखते हैं। अब इस बात को तुम अधूरा सुनकर चले गये। जितने भी तीर्थ, मठ, मंदिर हमारे महाराज के नाम पर बन रहे हैं ये दुनियाँ के आडम्बर हो रहे हैं। अब तो विशुद्धसागर ने भी बोल दिया कि कुछ परिग्रह मुनि रखते हैं। पूरी बात सुनना, ज्ञानी! कौन से परिग्रह की रक्षा करते हैं मुनिराज ? हे ज्ञानी ! गात्रमात्र परिग्रह। ये शरीर मेरा परिग्रह है, परद्रव्य है निजद्रव्य नहीं है, पर इसकी रक्षा के लिए आहार देता हूँ इसको। अगर ये सुरक्षित नहीं रहेगा तो मैं साधना कैसे करूँगा, इसलिए एकमात्र इस परिग्रह की रक्षा करता हूँ और कोई श्री-स्त्री आदि परिग्रह की रक्षा नहीं करता हूँ। नहीं तो आप समझो कम्बल ओढ़ लें, दुनियाँ के परिग्रह रख लें, कुछ परिग्रह रख सकते हैं; नहीं।

ज्ञानी श्रावको ! आप परिग्रही नहीं हो ? परिग्रह तो कभी छूट ही नहीं सकता है, परिग्रह कभी छोड़ा ही नहीं जाता है। परिग्रह को कभी छोड़ना भी नहीं चाहिए और विपुल परिग्रही है तो उसका नाम केवली भगवान् है। महान् परिग्रही केवली है, देखो पूरा समझना। भैया! जादूगर का खेल देखा कभी? देखा है। जब वह खेल दिखाना प्रारंभ करता है, एक टोकनी में बच्चे को लिटा दिया, कपड़ा डाल दिया, अब हाथ जोड़कर कहता है आप लोग जाना मत, नहीं तो मेरा बेटा जीवित नहीं बचेगा। ऐसे ही अब तुम कहीं जाना मत यहीं बैठे रहना, नहीं तो तुम मेरे तत्त्व का विपर्यास करके चले जाओगे। मैं तो पूर्ण परिग्रही होने के लिए मुनि बना हूँ। परिग्रही होना चाहता हूँ। एक दिन मैंने मुमुक्षु से कहा - परिग्रह तो छोड़ना ही नहीं चाहिए। उसने कहा - ऐसे कैसे ? मैंने कहा - पढ़ो अमृतचन्द्रस्वामी को। उन्होंने पढ़ा तो बोला - बराबर। मैंने पूछा - कैसे? तुम क्या परवस्तु को लिए बैठे परिग्रह चिल्ला रहे हो? क्या परिग्रह है तुम्हारे पास ? परिग्रह चारों ओर से जो ग्राह्यमान है, जो मेरे से दूर होता ही नहीं है, वो अनंतज्ञानगुण क्षायिकभाव है उसका नाम परिग्रह, जो कभी छूटता ही नहीं है अनंतज्ञान पिण्ड। पढ़ लेना अध्यात्म अमृतकलश, आत्मख्याती टीका। इसलिए ये कभी मत सोचना मैंने एक बार ग्रंथ पढ़ लिया और काम पूरा हो गया।

शास्त्री जी! नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो अब ये प्रश्न मेरे पास आ गया, कहाँ से बोल दिया। अरे ज्ञानी! मालूम, ये माताएँ मकान में रहती हैं और झाड़ू लगाती हैं, तब भी पीछे से देखा एक तिनका पड़ा था, अभी तो मैंने झाड़ू लगा ली फिर कैसे रह गया? बोले, सब जगह देख लिया होता, फिर तिनका कैसे

रहता ? तुम उसे देख ही नहीं पाये। जैसे माँ मक्खन निकालती है मट्ठे से, जितनी बार हाथ घुमाओ नेनु आती है ऐसे ही ज्ञानी एक ग्रंथ को जितनी बार पढ़ोगे उतनी बार मक्खन मिलेगा। मूलाचारजी में आचार्य वसुनन्दीस्वामी ने अपनी टीका में सर्वज्ञ के शासन को 'नमोऽस्तुशासन' लिखा है इसलिए कोई इसे विपरीत अर्थ में मत लगा लेना। ज्ञानियो ! शासन को तो नमोऽस्तु है ही, नमोऽस्तुशासन ही है। तुम जैन हो, कि जैनी हो, कि जिन हो? शास्त्री जी! क्या हो ?

इसी प्रकार से कभी हेतु में पक्ष होता है, पक्ष में हेतु होता है, इसे स्याद्वाद से समझना चाहिए है। इसलिए सर्वज्ञ के शासन को ही नमोऽस्तु शासन कहा है। सर्वज्ञ के शासन को नमोऽस्तु और नमोऽस्तु शासन। आपको पता है आज नागपुर में दिल्ली आई है, नहीं पता ? दिल्ली नहीं आई ? पंडितजी के घर में दूध की बाल्टी है और दिल्ली यहाँ आ गई है, बोलो सत्य है कि असत्य ? दिल्ली नहीं आई? शास्त्रीजी! दूध की बाल्टी रोज सुबह लेकर जाता है, वो बाल्टी कौन से बाजार से खरीदी थी ? दूध की बाल्टी बनती है क्या ? अरे मुमुक्षु! जिस बाल्टी में दूध रखते हो उसका नाम उपचार से दूध की बाल्टी है। ऐसे ही दिल्ली के श्रावक आये हैं, इसलिए दिल्ली आ गई है। इसी प्रकार से जिस शासन में नमोऽस्तु होता है उस शासन को भी नमोऽस्तु शासन कहा जाता है। बिना प्रमाण के कोई बात नहीं करना, नहीं तो सोलहमुक्की न्याय याद है क्या ? एक दिन मैंने समझा दिया था; कषाय-अकषाय, एक ओर कषाय दिखाई दे रही है और एक ओर शुद्धोऽहं।

सिद्धोहं सुद्धोहं अणंतणाणाइ समिद्धो हं।
देहपमाणो णिच्चो असंखदेसो अमुत्तो य।।त.सा./28।।

निरंजनोऽहं, रसरसायनस्वरूपोऽहं, उपशान्तस्वरूपोऽहं, वीतरागस्वरूपोऽहं, अर्हंत् स्वरूपोऽहं, सिद्धस्वरूपोऽहं, सर्वज्ञस्वरूपोऽहं, ध्रुवज्ञायकस्वरूपोऽहं, ब्रह्मानंद स्वरूपोऽहं, सहजानंदस्वरूपोऽहं, सोऽहं।

सहज आनंद ही मेरा स्वरूप है, ओम शांति, शांति, हलचल समाप्त, ये भी आत्मा में है।

एक ओर कषाय, एक ओर उपशम, एक ओर संसार की पीड़ा; जहाँ देखो वहाँ क्लेश, जहाँ देखो वहाँ अशांति, पिता पुत्र पर बरस रहा है, पुत्र पिता पर बरसते हैं। कभी घर में तेल नहीं है, घी नहीं है, कभी नमक नहीं है, कभी खटाई नहीं है और ऑफिस जाता तो साहब-साहब करता, घर जाता तो पत्नी बरसती है कि सामान मँगाया था लेकर नहीं आते, बेटे को चार दिन से बुखार है, यह लीला क्या है ? उधर से फोन आ गया रिश्तेदार का, अहो! तुम्हारी सासू ऊपर गई। इधर पड़ोसी तुम्हारे मकान की ईंट उठाकर ले गया। देखो, संसार क्या आनंद दे रहा है; क्या आनंद है ? शास्त्रीजी! एक बेटे को मनाया तो दूसरा रूठ गया, दूसरे को मनाया तो तीसरा रूठ गया। ये चेला-चेली; कोई रूठ रहा, कोई हँस रहा, ये संसार की सब लीलाएँ देखते चलो। वे आ गये हमारी माला टूट गई, माला दे दो। ये क्या है? संसार का आनंद ले

लो, कहीं शान्ति है, एक ओर भव की पीड़ा चल रही है। पंडितजी! ये तो पराश्रित दुःख हैं। इधर आइये संसार में, संश्लेष संबंध के दुःख देखो। बिचारे का सिरदर्द कर रहा है, दो दिन नहीं हुए सीना दर्द करने लगा, उसको हैदराबाद दिखाने गया, लौट के आया तो गाड़ी से उतर रहा था पैर टूट गया और उस पैर पर पट्टा चढ़ाया, सो लकड़ी लेके चल रहा था, तो खिसक गया, तो कमर टूट गई। अब बिचारा जैसे-तैसे पलंग पर पड़ा था, वहाँ मालूम चला कि दूध का ग्लास लेकर पत्नी आ रही थी वो ही फिसल गई, अब वो ही टूट गई। बताओ अब कौन सेवा करेगा? ये है संसार, तब भी मुस्कुरा रहे हैं। अरे ज्ञानियो ! हे अज्ञानियो ! तनक तो सोचो। घर के सुख देख रहे। देखो, इसका वियोग, इसका संयोग। ये संसार ऐसा है, ये संसार को देखोगे यही-यही दिखेगा। **अखण्डोऽहं**। कुछ नहीं मैं एक शाश्वत आत्मा हूँ, ज्ञान-दर्शन मेरा लक्षण है, शेष ये संयोग हैं, ये स्वभाव नहीं है।

एकोऽहं निर्ममःशुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावा, मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा।।27/इष्टो.।।

पूज्यपादस्वामी ने अमृतचन्द्र स्वामी, कुन्दकुन्दस्वामी को समेट लिया है। सब संयोग है, जो-जो संयोग हैं उनके वियोग नियत हैं। जब वियोग नियत है तो संयोग में मुस्कुराना कैसा ? आप चले जाओगे, यहाँ से जाओगे न, जहाँ जाओगे वहाँ से फिर नहीं जाओगे क्या ? वहाँ से भी चले जाओगे, वहाँ से कहाँ जाओगे? बोलो - फिर वहाँ से नहीं जाओगे? वहाँ से भी जाना पड़ेगा। मित्र! जब जाना-ही-जाना है फिर जाना ही क्यों है ? इसलिए वहाँ जाओ जहाँ से जाना नहीं पड़ता है, उस स्थान का नाम है 'सिद्धशिला'। पर निगोदिया बनके मत जाना, सिद्ध बनके जाना, निगोदिया बनके गये तो फिर पुनः आना पड़ेगा।

एक ओर मुक्ति का दर्शन हो रहा है तो ध्रुव अखण्ड चैतन्य स्वभाव झलकता है। सुनो, इस संसार में जब अभावरूप को देखते हैं, तो मुक्ति का स्पर्श होता है। जब संसार का अभाव करके देखते हैं तो मुक्ति का स्पर्श होता है। जब संसार का सद्भाव करके देखते हैं तो संसार में डूब जाते हैं। ये दौ सौ चौहत्तरवाँ कलश का तो घर-घर में पाठ होना चाहिए। घर-घर में ही नहीं घट-घट में पाठ होना चाहिए। कोई सुख नहीं है कोई दुःख नहीं है; जैसी दृष्टि मोड़ लो वैसा है। आँखों में जहर है, आँखों में अमृत है। लोक की दृष्टि आशीविष ऋद्धि तुल्य है। सुनो ज्ञानियो ! आशीर्विष ऋद्धि के समान है लोक की दृष्टि ऐसी है। आशीविष ऋद्धि की व्याख्या 'तिलोयपण्णत्ती' में है।

मैं तो साधुओं से बहुत दूर रहता हूँ, इसलिए सही कह रहा हूँ। बहुत दूर रहता हूँ, मतलब मैं अपने बड़े संघ में भी जाऊँ तो जितनी आवश्यकता होती है उतना ही आचार्य महाराज के कमरे में जाता हूँ। आचार्य सन्मतिसागर मासोपवासी से जब मिला, मैं तो उन्हें बैठा-बैठा देखता रहता था। मैं अभी रामटेक गया तो शांति से आचार्य महाराज को देखता रहा। दुनियाँ कुछ भी कहे मुझे अपना काम करना था कर लिया।

उनको अपना काम करना वो उन्होंने किया। तुम क्यों बीच में विकल्प कर रहे हो ? मुझे तो दर्शन करना था, तुम क्यों कषाय कर रहे हो ?

ज्ञानियो ! साधुओं से ऐसे दूर रहना, जैसे चूल्हे में रोटी रहती है, कैसे ? रहती चूल्हे में है फिर भी घूमती रहती है और कहीं रखी रह गई तो जल जायेगी। मुमुक्षु! ऐसे ही तुम साधु के पास जाओ, तो घूमते रहो। परन्तु उनके पास पूरे बैठ मत जाना, नहीं तो जल जाओगे। घूमने का मतलब यह नहीं कि उनके पास जाकर चक्कर काटने लग जाओ। नमोऽस्तु स्वामी ! उपदेश करें तो उपदेश सुन लेना, चर्या के समय आहार दे लेना, सेवा के समय सेवा कर लेना, शेष समय में अपने घर।

मैं मात्र साधु के चरणों तक जाता हूँ, कानों तक नहीं जाता। **इतना ध्यान रखना, साधु के मात्र चरणों तक जाना कानों तक नहीं, न अपने घर की सुनाना, न दूसरे के घर की सुनाना और साधु बनो तो सुनने में मगन मत हो जाना।** अपने पास समय ही नहीं है किसकी सुनूँ, किसकी सुनाऊँ, इसलिए जो है सो है। कितनी सुनने की ललक रहती है। बोले - **आशीर्विषां ऋद्धि;** आशीर्विष ऋद्धि जो होती है, यदि किसी को कालिया नाग ने डस लिया हो और आशीर्विष ऋद्धिधारी मुनिराज प्रसन्न होकर देख लें तो उसका जहर उतर जायेगा। मित्र ! दूसरी बात और सुनो, उनसे दूर भी रहना, यदि आशीर्विष ऋद्धिधारी मुनिराज ने गुस्से में तुम्हें देख लिया तो जहर चढ़ जायेगा, मरण हो जायेगा। क्या करूँ ऋद्धि ऐसी ही है। ये ही संसार की दशा है, इसको विरक्ति में देखोगे, तो लोक में आनंद-ही-आनंद है, आसक्ति में देखोगे तो लोक में क्लेश-ही-क्लेश है। एक ओर चैतन्यपिण्ड का स्वभाव दिखाई देता है, ये स्वभाव महिमा आत्मा की है, ये अद्भुत से अद्भुत है। किसकी महिमा? ये भगवान् आत्मा की महिमा है।

जयति सहजतेजः पुञ्जमज्जत्त्रिलोकी -
स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः।
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलम्भः
प्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः ॥275/कलश॥

चैतन्य का चमत्कार करना चाहिए, देखो चैतन्य का चमत्कार क्या है ? अपने आत्मा की बात सुनने यहाँ बैठे हैं। विद्वानो ! आपको हमने तत्त्वार्थसूत्र का पर्यूषण में पाठ करते देखा, विद्वान् ही बैठा मिला। इसलिए पहले वचनों को भी सिद्ध कर लो, प्रवचन सिद्ध कर लो, कोई मंत्र सिद्ध करने मत बैठ जाना, जयति जयवन्त हो। भैया! ये मत कहने बैठ जाना कि हमारा दर्शन क्या मृत्यु को प्राप्त हो गया ? जो तुम जयवन्त बोलते हो, इसको अशुभ भाषा मत बोलिए, ये आगम की भाषा है। यहाँ आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी क्या लिख रहे हैं, जयति जयवंत हो। जो सहज तेज है, तीनों लोकों में यदि प्रत्यक्ष अनुभवगोचर कोई है, चैतन्य चमत्कार जयवंत प्रवर्तता है, वह कौन? मेरा निजात्मा का ज्ञानगुण-कैवल्य ज्ञान।

जो स्खलत् – दृश्यमान है, नष्ट होने वाला नहीं है, चलायमान होनेवाला नहीं है उस आत्मा का ध्रुव स्वभाव कभी बाधा को प्राप्त नहीं होता है। वही उत्कृष्ट है, निजरस से भरा है पूर्ण, अपूर्व आनंद से पूर्ण है, वही निजानंद है। किसका आनंद है ? निजनाथ का आनंद है। ऐसा अच्छिन्न तत्त्व उपलम्भ है ऐसा परम ज्ञायकाकार अखण्ड चैतन्य स्वरूप ज्ञानदृष्टि स्वरूप निजरस से पूर्ण ऐसा निजानंद ज्ञानघन स्वरूप मेरा है। वही परम आनंद है। ऐसी चिद्ज्योति केवलज्ञानज्योति जयवंत हो।

यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर, चैतन्यचमत्कार, जयवन्त प्रवर्तता है, किसी से बाधा न जाए इस तरह सर्वोत्कृष्ट प्रवर्तता है। अपने स्वभाव स्वरूप प्रकाशरूप के पुञ्ज में मग्न हुए जो तीन लोक के पदार्थ उनसे जिसमें अनेक भेद हुए हैं, दिखते हैं। ऐसा है तो भी एकस्वरूप ही है अर्थात् केवलज्ञान में सब पदार्थ झलकते हैं वे अपने ज्ञेयाकाररूप दिखते हैं तो भी चैतन्यरूप ज्ञानाकार की दृष्टि में एक ही स्वरूप है। अपने निज रस से पूर्ण ऐसा तत्त्वस्वरूप का पाना जिसका छिदा नहीं है अर्थात् प्रतिपक्षी कर्म का अभाव होनेसे जिसके स्वभाव का अभाव नहीं पाया जाता। प्रगट बलात्कार से जिसकी दीप्ति नियमरूप है, अपने अनन्त वीर्य से निष्कम्प ठहर रहा है। ऐसा चिच्चमत्कार जयवन्त है। यहाँ जयवन्तपने से सर्वोत्कृष्ट रहना कहा, सो यही मङ्गल है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

अमृतचन्द्र ज्योति

अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्म-
न्यनवरतनिमग्नं धारयद् ध्वस्तमोहम्।
उदितममृतचन्द्रज्योतिरेतत्समन्ताज् -
ज्वलतु विमलपूर्णं निःसपत्नस्वभावम्॥276॥

शब्दार्थः - **(अविचलित-चिदात्मनि)** जो अचल चेतनास्वरूप **(आत्मनि आत्मानम् आत्मना अनवरत-निमग्नं धारयद्)** आत्मा में आत्मा को अपने आप ही निरंतर निमग्न रखती है। **(ध्वस्त मोहम्)** जिसने मोह का नाश किया है **(निःसपत्न स्वभावम्)** जिसका स्वभाव निःसपत्न, प्रतिपक्षी कर्मों से रहित है **(विमल-पूर्णं)** जो निर्मल है और पूर्ण है ऐसी **(एतत् उदितम् अमृतचन्द्र-ज्योतिः)** यह उदय को प्राप्त अमृतचन्द्र ज्योति **(समन्ताज् ज्वलतु)** सर्वतः जाज्वल्यमान रहे।

भावार्थः - यहाँ आत्मा को अमृतचन्द्रज्योति कहा, सो यह लुप्तोपमा अलंकार से कहा जानना, क्योंकि अमृतचन्द्रवत् ज्योति ऐसा समास करने से 'वत्' शब्द का लोप हो जाता है तब अमृतज्योति कहा जाता है और 'वत्' शब्द का लोप न करो तो अमृतचन्द्ररूप ज्योति ऐसा कहना तब भेदरूपक अलंकार है। तथा अमृतचन्द्रज्योति ऐसा ही आत्मा का नाम कहो तब अभेदरूपक अलंकार होता है। इसके विशेषणों के द्वारा चन्द्रमा से व्यतिरेक भी है, क्योंकि ध्वस्त मोह विशेषण तो अज्ञान अंधकार दूर होना बतलाता है और निर्मलपूर्ण विशेषण लांछनरहितपना पूर्णता बताता है। निःसपत्न स्वभाव विशेषण राहु-बिम्ब से और बादलादि से आच्छादित न होना बतलाता है। समंतात् ज्वलन है वह सब क्षेत्र और सब काल में प्रतापरूप प्रकाश करना बतलाता है। ऐसा चंद्रमा नहीं है। 'अमृतचन्द्र' इस शब्द से टीकाकार ने अपना नाम भी सूचित किया है और इसका समास बदलकर अर्थ किया जाय तब अनेक अर्थ होते हैं, सो यथासम्भव जानना चाहिए।

।। समय देशना ।।

भव्य बन्धुओ ! आचार्यप्रवर भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज समयसारजी में ध्रुवज्ञायक स्वभावी भगवानात्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। तीन लोक तिलक यदि विश्व में कोई है तो निजशुद्धात्म तत्त्व ही है। शुद्धि यदि है तो स्वचतुष्टय में है, अशुद्धि है तो स्वचतुष्टय में है, परचतुष्टय से मेरे में अशुद्धि भी नहीं है, परचतुष्टय से मेरे में शुद्धि भी नहीं है, विभाव निजचतुष्टय में ही है, स्वभाव निजचतुष्ट्य में ही है; **पर का अशुद्धपना मेरी अशुद्धि का कारण नहीं है, पर का शुद्धपना मेरी शुद्धि का भी कारण नहीं है। आत्मा कर्मसापेक्ष अशुद्धता को प्राप्त है।** इस व्याख्यान के साथ यह भी व्याख्यान करना होगा कि यदि भावकर्म न होते तो द्रव्यकर्म क्यों होते और द्रव्यकर्म न होते तो भावकर्म न होते। द्रव्यकर्म के सापेक्षता से भावकर्म में विकल्प है, भावकर्म के विकल्प से द्रव्यकर्मों का आस्रव है,

जीव परिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गल परिणमंति।
पुग्गलकम्म णिमित्तं तहेव जीवोवि परिणमइ॥80/स.सा.॥

हल्दी-हल्दी है, चूना-चूना है; हल्दी का रंग पीला है, चूने का रंग सफेद है। यह लाल वर्ण जो उत्पन्न हुआ है - यह हल्दी ने चूने का विपर्यास किया कि चूने ने हल्दी का विपर्यास किया ? बोलो मुमुक्षु ! यह किसके माध्यम से किसका परिणमन हुआ? हल्दी के निमित्त से चूने में परिणमन हुआ है कि चूने के निमित्त से हल्दी में परिणमन हुआ है? हे ज्ञानी ! जैसे दोनों के निमित्त से दोनों में परिणमन हुआ है ऐसे ही द्रव्यकर्म के निमित्त से भावकर्म में परिणमन हुआ है भावकर्म के निमित्त से द्रव्यकर्म में परिणमन हुआ है। जीव के परिणाम हेतु बने हैं तब कार्मणवर्गणाएँ, कर्मरूप परिणत हुई हैं। वे पौद्गलिक कर्म जब निमित्त बने हैं तब जीव भी भावकर्मरूप परिणत हुआ है और ये अवस्था कब से है **'अनादि संबंधे च'।** ये अनादि से व्यवस्था चली आ रही है। इसलिए पहले हमें बंध को स्वीकारना है फिर मोक्ष को निहारना है। यदि बंध नहीं स्वीकारा तो कुन्दकुन्ददेव स्वयं समयसार में लिख रहे हैं कि बंध को छेद के ही जीव मुक्त होता है और बंध यदि नहीं स्वीकारोगे तो आत्मा सर्वथा मुक्त हो जायेगी और सर्वथा मुक्त हो जायेगी तो बंध का अभाव हो जायेगा और बंध का अभाव हो जायेगा तो मोक्ष का भी अभाव हो जायेगा।

बंध को भी देखो, बंध को स्वीकारो पर बंध को स्वभाव मत स्वीकारो। यदि बंध को नहीं स्वीकारा तो मोक्षपुरुषार्थ की हानि। बंध को बंधस्वभाव ही स्वीकार लिया तो मोक्ष पुरुषार्थ की हानि। यदि आत्मा का विभाव बंध नहीं स्वीकारा तो मोक्ष किसके लिए ? और आत्मा का स्वभाव बंध स्वीकार लिया तो मोक्ष किसके लिए ? बैल छूटा ही है तो खूँटा किसने तोड़ा ? बंधा है खूँटे से पर खूँटा बैल का स्वभाव नहीं है, बंधा है रस्सी से पर रस्सी बैल का स्वभाव नहीं है। मुमुक्षुओ! हम कर्मों से बंधे अवश्य हैं पर कर्म मेरा स्वभाव नहीं है। खूँटा खूँटा है, रस्सी रस्सी है, बैल बैल है, कर्म कर्म है, बंध बंध है और निर्बन्ध स्वभाव निर्बन्ध स्वभाव है। रस्सी से बंधा हुआ बैल निर्बन्धता का अनुभव कर लेता है तभी वो खूँटा तोड़ने का पुरुषार्थ करता है।

आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी ने 'लघुतत्त्वस्फोट' नाम का एक ग्रंथ लिखा है। यह ग्रंथ भारतीयों को, जैनियों को पता नहीं था, रूस में इस ग्रंथ के रशियन भाषा में अनुवाद होने पर प्रसिद्धि फैली तब फिर भारत के जैनियों को मालूम चला और पंडित पन्नालाल साहित्याचार्यजी ने इसका हिन्दी अन्वयार्थ किया। ऐसा रहस्यमयी ग्रंथ जैसे कि 'बृहद्स्वयंभूस्तोत्र' चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति है न्याय की भाषा में, वैसे ही लघुतत्त्वस्फोट में चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति है अध्यात्म की भाषा में। लघुतत्त्वस्फोटकर्त्ता अपने ग्रंथ में लिखते हैं, हे मुमुक्षु ! मोक्ष के सुख की अनुभूति का आनंद तुमको पूछना हो तो बैल से पूछो, क्यों ? हरी घास है, दाने हैं, चारा है, भूसा है, सब कुछ उसके सामने है, पर जब अपनी निर्बंध की स्थिति में आता है तो घास-चारे को, दाने को न देखता हुआ मालिक के न होने पर वह खूँटा तोड़ने का पुरुषार्थ

करता है। रस्सी तोड़ के, खूँटा तोड़ के जैसा आनंदित होता है वैसा खूँटे पर बंधे हुए दाना-पानी पीने पर भी उसे आनंद नहीं आता। तात्पर्य क्या हुआ? बंधन में सुख होता तो बैल रस्सी क्यों तोड़ता, बंधन में सुख होता तो निर्ग्रंथ योगी मोक्ष का पुरुषार्थ क्यों करते? इसलिए निर्बंध होने के पुरुषार्थ का कोई मार्ग है तो ये जिनमुद्रा है। **बंध के लिए अनेक भेष हैं, बंध के लिए अनेकभाव हैं, बंध के लिए अनेक पर्याय हैं, बंध के लिए अनेक गतियाँ हैं पर निर्बंधता के लिए मात्र एक दिगम्बर भेष है, जिनलिंग है और निर्ग्रंथ परिणाम हैं। किसी दूसरे परिणाम से निर्बंध नहीं हो सकता। बहिरंग सामग्री के साथ अंतरंग सामग्री चाहिए पड़ती है। मुमुक्षु !** ये जिनमुद्रा, ये पिच्छी-कमण्डलु, जिनलिंग; ये सहकारी साधन हैं। इन बहिरंग सहकारी साधनों के प्राप्त हो जाने के उपरांत इति मत मान लेना कि मेरा निर्वाण हो जायेगा, मेरा मोक्ष हो ही जायेगा। ये तो आपने लड्डु बनाने के लिए कड़ाही अग्नि, आदि-आदि सामग्री संगृहीत कर ली है पर कड़ाही में अभी बूरा कहाँ पड़ा है और जब-तक बूरा नहीं पड़ेगा तो तुम तार किसके तोड़ोगे? ऐसे ही मुमुक्षु! जिनमुद्रा, पिच्छी-कमण्डलु, बहिरंग उपवास आदि वृत्तियाँ बहिरंग साधन, ये बहिरंग सामग्री मात्र हैं, अंतरंग में भावों की विशुद्धि यदि नहीं है तो मोक्ष का निर्वाण-लाड्डू मिलनेवाला नहीं है, इसलिए बहिरंग साधनों के उपरांत, पुरुषार्थ अंतरंग का प्रारंभ हो ही जाना चाहिए।

अव्रतीव्रतमादाय व्रती ज्ञान परायणः।
परात्मज्ञान संपन्नः स्वयमेव परो भवेत्॥86/स.तं.॥

अव्रती को व्रतों में जाना चाहिए और व्रतधारण करते ही ज्ञानी! कर्मनय से विलीन होकर के ज्ञाननय में लीन हो जाना चाहिए। कर्मनय से ज्ञाननय में प्रवेश कर जाना चाहिए और जब-तक ज्ञाननय में प्रवेश नहीं होगा, तब-तक जैसे कड़ाही आदि जो सामग्री आ चुकी है, पर बूरा उसमें नहीं डाला गया। ज्ञाननय 'बूरा' स्थानीय है, क्रियानय 'कड़ाही पक्ष' आदि हैं, जिसमें 'चासनी' बनेगी वो क्रियानय है वो भी आवश्यक है, पर जिसके लिए कड़ाही रखी गई है वो ज्ञाननय है इसलिए कहीं जीव ये न विचार कर ले कि बहिरंग तप हमने स्वीकार कर लिया, बहिरंग साधना हमने स्वीकार कर ली अब तो मेरा निर्वाण हो ही जायेगा। करण इन्द्रिय के विषय का निर्वाण हो सकता है, अर्थात् भाषा में निर्वाण की व्याख्या हो सकती है पर मोक्ष का निर्वाणमार्ग जो है वह तो समग्र चारित्र से होगा। असमग्र मोक्षमार्ग मोक्ष नहीं भेज पायेगा, वह साधन मात्र है करणमात्र है पर साधकतम करण जो है वो समग्र मोक्षमार्ग है। समग्रचारित्र, समग्रसंयम और रत्नत्रय की समग्रता। कभी भी स्वप्न में भी नहीं सोचना कि रत्नत्रय से बंध होता है, आस्रव होता है। ऐसे तो मोक्षमार्ग को आस्रव तत्त्व में डाल दिया।

मित्र! जरा आगम को आगम की भाषा में कहो। रत्नत्रय यदि आस्रव का ही कारण हो गया तो फिर निर्जरा का, संवर का, मोक्ष का कारण क्या होगा? ऐसा प्रश्न करो स्वयं के अंदर। रत्नत्रय को यदि आस्रव तत्त्व में ही डाल दिया, मात्र बंधतत्त्व में ही डाल दिया आपने, फिर मोक्ष का, संवर-निर्जरा का कारण

कौन होगा? पंडित जी! ये तो ऐसा मोक्षमार्ग हो गया, हिंसा करने से स्वर्ग जाता है, जीवों का बलिदान करने से मोक्ष मिलता है तो मेरे मित्र, इस क्रूर क्रिया से, हिंसककृत से मोक्ष मिलने लग जाये तो नरक कौन से कर्म करने से जायेगा? हिंसा प्रथम पाप है।

संसार की लीला देखो। प्रथम पाप है हिंसा, उसे ही लोग धर्म कह रहे हैं । क्या अज्ञान धारा है? कभी आपको दया नहीं आती। जिन जीवों का घात हो रहा है उन पर ही दया मत करो, जो घात कर रहे उन पर भी दया करो। जिसका घात हुआ है उसके परिणाम निर्मल हैं उसकी तो गति सुधर जायेगी, पर घात करनेवाले के परिणाम कभी निर्मल होते ही नहीं हैं उसकी गति नहीं सुधरेगी। पुनः कहूँ, मानाकि मैं बैठा हूँ यहाँ पर किसी पूर्व भव के बैरी देव, तिर्यंच, मनुष्यादि ने मेरे ऊपर उपसर्ग कर दिया और मेरी समाधि हो गई। मैं शांतचित्त से अंतिम साँस लेता हूँ भावों की विशुद्धिपूर्वक पंचपरमेष्ठी की आराधना करते हुये। ज्ञानियो! समाधिसहित जीव मरण करेगा तो दुर्गति होगी क्या ? नहीं होगी। नियम से पंचमकाल का जीव स्वर्ग ही जायेगा सल्लेखना करके।

पारसनाथ स्वामी, गुरुदत्तादि मुनि, वरदत्तादि मुनि इन सब योगियों को देखो। इन पर उपसर्ग हुए, निर्वाण को प्राप्त हो गये। निज के परिणामों की विशुद्धि से निजआत्मविशुद्धि को प्राप्त हो गये । पर जो उपसर्ग कर रहा था उसके परिणाम तो क्रूर थे उसको अशुभ का बंध हुआ कि नहीं हुआ? ऐसे ही कभी किसी के विकल्पों में आ मत जाना, शास्त्री जी! पंचमकाल बड़ा ढोंगमय काल है। बोले, ऐसा काम कर दो तुम्हारे कार्य की सिद्धि हो जायेगी। आटे के मुर्गे की बली चढ़ानेवाले की दुर्गति हुई। यदि माँ सामने रखे श्रीफल को फोड़ते हुए कल्पना कर रही है - ये मैं बलि देती हूँ तो विश्वास रखो, तुमको पंचेन्द्रियजीव के वध का ही दोष लगेगा।

समग्रचारित्र, असमग्रचारित्र, ध्यान देना। यदि कोई जीव हिंसा में धर्म मानता है उसमें मोक्ष मानता है तो नरक जाने के द्वार उसके पास क्या होंगे, अहिंसा? ऐसे ही हे ज्ञानियो! अब आपसे प्रश्न है यदि रत्नत्रय से आस्रव ही मानते हो और आस्रव तत्त्व तो संसार का ही कारण है, संसार में रुलाने वाला है। **रत्नत्रय का पालन करनेवाले संसार में रुलेंगे तो मोक्ष जानेवाले कौन होंगे ?** जो पाँच पाप का आश्रय ले रहे वे मोक्ष जायेंगे क्या ? पंडित जी इसलिए कुन्दकुन्द भगवन्त के ग्रंथों पर कोई भी व्याख्यान करो **'नय योगान्न सर्वथा'** स्याद्वाद अधिकार को कहने की आवश्यकता क्यों पड़ गई। इन्हीं आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी ने **'जिनप्रवचन रहस्यकोष'** यानी 'पुरुषार्थसिद्धिउपाय' ग्रंथ में लिखा है रत्नत्रय निर्वाण का हेतु है।

रत्नत्रयमिह हेतुर्निर्वाणस्यैव भवति नान्यस्य।
आस्रवति यत्तुपुण्यं शुभोपयोगोऽयमपराधः ॥ 220/पु.सि.उ.॥

रत्नत्रय तो निर्वाण का ही हेतु है। रत्नत्रय से कोई पापबंध नहीं होता, रत्नत्रय से संसार में नहीं

रुलता, पर रत्नत्रय की साधना के काल में जो शुभभाव, शुभोपयोग, असमग्र रत्नत्रय में जब होता है, ये उसका अपराध है, उससे आस्रव होता है और ऐसा आस्रव करके जीव स्वर्ग में जाता है। सर्वार्थसिद्धि का देव भी बनेगा तो रत्नत्रय की साधना में शुभोपयोग की धारा में जो आस्रव हुआ है, शुद्धोपयोग की धारा में जो पुण्यास्रव हुआ है उस पुण्यास्रव से स्वर्ग गया है। समग्र रत्नत्रय तो नियम से निर्वाण ही भेजेगा पर जब-तक समग्र रत्नत्रय प्राप्त नहीं होता तब-तक असमग्ररत्नत्रय को छोड़ मत देना। ये असमग्र रत्नत्रय भी ऐसे संस्कार डाल देगा, कोई भी जीव रत्नत्रय धारण के अभाव में सौधर्म इन्द्र नहीं बन सकता, कोई भी जीव लोकान्तिक देव नहीं होगा, सर्वार्थसिद्धि का देव नहीं हो सकता और **जो जीव सर्वार्थसिद्धि का देव, सौधर्म इन्द्र, लौकान्तिक देव, दक्षिणेन्द्र हो गया है नियम से वहाँ से च्युत होकर के एक भवावतारी बनेगा।** असंयम के प्रभाव से उन्होंने भव की स्थिति का छेद किया है कि संयम के प्रभाव से भव की स्थिति का छेद किया है? जो भवस्थिति छेदी है, अनंत भव धारण करने वाला जीव एक भवावतारी हो गया वह संयम के प्रभाव से हुआ है।

आज कोई अपने से बोल दे, महाराज! ये आपकी अंतिम पर्याय है, पर बोलने वाला होना चाहिए क्षायिकज्ञानी, भक्तों की भीड़ नहीं। भक्तों की भीड़ तो ऐसी है पंडितजी! पंचमकाल में जन्मे एक पुरुष को भक्तों ने सर्वार्थसिद्धि भेज दिया, बोले सर्वार्थसिद्धि में देव हुए। अरे भाई! कौन से सर्वज्ञ ने कह दिया है जो तुम सर्वार्थसिद्धि भेज रहे हो। **पंचमकाल का जीव किसी भी अवस्था में सर्वार्थसिद्धि का देव नहीं हो सकता।** इसलिए गुरु की भक्ति उतनी ही करो, उतनी प्रशंसा करो जिससे आगम बचा रहे। आगम का ही विच्छेद करोगे तो कौन स्वीकार करेगा कि सर्वार्थसिद्धि में देव हो गया। पंचमकाल का जीव अभी सर्वार्थसिद्धि नहीं जा सकता है। पंडित जी! शुभोपयोग को अपराध इसलिए कहा है -

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं।
कह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि॥145/स.सा.॥

हे जीव! हर जीव अशुभकर्म को कुशील कहता है, शुभकर्म को सुशील कहता है पर मैं कैसे सबको सुशील कह दूँ जो संसार में प्रवेश करा रहा है? ये परमार्थदृष्टि है। अशुभ से नरक तिर्यंचगति में जाओगे, **अशुभ के साथ तीव्र क्रोध रहा तो नरक जाओगे, अशुभ के साथ शुभ-अशुभ की मिश्रधारा में कुटिलता बरती तो स्त्री बनोगे। अशुभ-शुभ की धारा में मायाचारी की तो नारी पर्याय में जन्म लेना पड़ेगा और शुभ-अशुभ के मध्यम अंश में जीव मरता है तो मनुष्य अवस्था को प्राप्त करता है और शुभ की उत्कृष्टता को प्राप्त होता है तो देव बनता है लेकिन इन शुभ-अशुभ के माध्यम से कभी जीव सिद्ध नहीं बनता।**

बंधदृष्टि से, संसारदृष्टि से चारों गतियाँ ही संसार हैं। जब हम चतुर्गति संसार को देखते हैं उस समय हमें वह भी संसार ही दिखता है। उस शुभकर्म को हम सुशील कैसे कह दें जिससे हमें संसार में भ्रमण करना

पड़े। **सुशील तो वह है जो संसार से मुक्त करा दे। उसका नाम शुद्धोपयोग है।** ''अयं शुभोपयोग अपराधो:'' इसलिए ये शुभोपयोग का अपराध कहा है, पर हे बालको ! ऐसे शुभोपयोग के अपराध को अपराध ही मान लिया और तुमने पूजन भक्ति पाठ सब छोड़ दिया और पाँच पाप नहीं छोड़े आचार्य भगवन्त अमृतचन्द्रस्वामी कहेंगे - हे बाल! तू आत्मा में प्रवेश कर नहीं सका और बहिरंग को छोड़कर बैठ गया, उभयलोक से भ्रष्ट हो गया।

मैं बारबार कहता हूँ 'पुरुषार्थसिद्धि उपाय' पढ़ो, वह एक अलौकिक ग्रंथ है, इसमें हर विषय की प्ररूपणा की है। इसमें मात्र श्रावकाचार ही नहीं है, इसमें मूलाचार समयसार भी है। प्रारंभ की अठारह कारिकाओं तक पूरा समयसार भरा हुआ है और पुनः अन्त में समयसार, मूलाचार प्रारंभ हो जाता है। हे जीव ! भाषण सरल है, वक्ता तो दो इन्द्रिय से प्रारंभ हो जाता है। दो इन्द्रिय जीव से भाषा प्रारंभ हो गई है, पर प्रवचन जो है तेरहवे गुणस्थान से प्रारंभ होते हैं। समझ में आया, वक्ता तो दो इन्द्रिय से बन जाता है पर प्रवचनकर्त्ता, मूलप्रवचनकर्त्ता तेरहवे गुणस्थान में होता है। तेरहवे गुणस्थान के अनुसार जो कहे वे पंचेन्द्रिय मनुष्य संज्ञी ही होते हैं। पंचेन्द्रिय जाग्रत पर्याप्त कर्मभूमिया सम्यग्दर्शन के योग्य होता है। **जो सम्यग्दृष्टि होता है वह आगम के अनुरूप कथन करता है।**

जो आगम को जानकर बोलता है, उसका नाम प्रवचन है। **प्रवचन के लिए आगम की गहराईयों में जाना पड़ता है** और भाषण के लिए कहीं-की-ईंट कहीं-का-रोड़ा बोल सकते हैं आप। ये जो सुन रहे हो साक्षात् जिनेन्द्र का प्रवचन, क्या कह रहे हैं, हे जीव! यदि तूने व्यवहारी षट् आवश्यक को छोड़ दिया और निश्चय आवश्यक में प्रवेश किया नहीं तो तू उभयलोक से भ्रष्ट है। ये प्रतिक्रमण, ये व्याख्यान विषकुम्भ हैं। ये विषकुम्भ किसके लिए ? शुद्धोपयोग में लीन है उसके लिए पर जो ईंट, चूना, नमक, मिर्च, मिठाई की बातें करें, उनके लिए विषकुम्भ नहीं है, प्रतिक्रमण अमृतकुम्भ है। इसलिए ये शुभोपयोग वर्तमान में आपके लिए विषकुम्भ नहीं है।

आराध्यआराधकभाव है पर शुद्धोपयोगी इनमें लगने की इच्छा रखे तो राध नहीं अपराध है। **भूमिका के अनुसार लक्ष्य तो आपको रखना ही पड़ेगा।** राध राध है, अपराध अपराध है, इसलिए जहाँ नहीं चल पा रहे हो वहाँ का लक्ष्य रखते रहना चाहिए। जैसे सम्प्रति यानी वर्तमान, लट् लकार, लट् लकार क्या बोलता है, शास्त्री जी! लट् और लृट् एकभूत में ले जा रहा है एक वर्तमान में ले जा रहा है। तो लृट्लकार क्या कह रहा है वर्तमान में ज्ञानी ! लृट् में जी रहे हो पर लृट् के लिए नहीं, लृट् में जीयो पर लृट् के लिए नहीं, क्यों भविष्यन्ति, भविष्य पर ही दृष्टि रखो।

आध्यात्मिक-दार्शनिक विषयों के जानने के लिए, लक्ष्य-शास्त्र को जानने के लिए लक्षण-शास्त्रों का जानना अनिवार्य है। अब शास्त्री जी! कुछ लोगों की भाषा होती है, बताऊँ क्या ? बोले – महाराज! ये

शब्दजाल है, ये भाषा है इतने सारे विषयों को जानने से क्या लाभ है। मुझे तो आत्मा जानना है। मेरे मित्र! बात आपकी सत्य है फिर भी ध्यान रखो, वो आत्मा को जानने के लिए स्थिरता कैसे रख पाओगे ? आपको सिद्धांतों को जानना अनिवार्य है। लम्बे समय तक आप ध्यान नहीं कर सकते हो। लम्बे समय तक आप माला नहीं फेर सकते हो। लम्बे समय तक स्वाध्याय कर सकते हो और **जितना पवित्र स्वाध्याय होगा उतना पवित्र ध्यान होगा। भरतक्षेत्र में पंचमकाल में स्वाध्याय ही ध्यान है।** इसलिए हे श्रमणो! स्वाध्याय में लीन रहो, ऐसा कुन्दकुन्द भगवंत ने 'रयणसार' में लिखा है।

जयति, जयवंत हो। ये जैनदर्शन में आदि मंगल, मध्य मंगल और अन्त मंगल- इन तीन मंगलों की व्याख्या है। **प्रारंभ में मंगल करो, मध्य में मंगल करो, अंत में मंगल करो। शिष्य निर्विघ्न विद्या को प्राप्त हो, आदि मंगल का फल; मध्य में कोई विघ्न न आ जाये, मध्य मंगल का फल और विद्या तथा विद्या के फल की प्राप्ति हो, ये अंत मंगल का उद्देश्य है।** आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी वो ही अन्तमंगल यहाँ कर रहे है, पर किसे जयवंत कर रहे हैं? जो एक होने पर अनेक है और अनेक होने पर भी एक है उस आत्मा से आत्मा को ही आशीर्वाद दे रहे हैं। जयवंत हो और जयवंत हो ? जो सहज तेज का पुञ्ज है वो सहज तेज का पुञ्ज कौन है ? त्रिलोकी, तीनों लोकों में सहज तेज पुञ्ज केवलज्ञान है।

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।
दर्पणतलइव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र।।पु.सि.उ./1।।

कौन-सी ज्योति की वंदना की यहाँ? केवलज्ञान ज्योति की, नहीं तो अपने शास्त्री जी कहें-दीपक, ट्यूबलाइट, टॉर्च। ज्ञानियो! न यहाँ दीपक, न ट्यूबलाइट, न टॉर्च।

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे।।स.सा.।।

स्वानुभूति की ज्योति से प्रकाशमान आत्मज्योति को नमः, वही है समयसार। जो परभावों से अत्यन्त भिन्न है ऐसी परम ज्योति की वंदना है। किसी दीपक की ज्योति की वंदना नहीं है, नहीं तो शास्त्री जी बैठ जायें, दिख गई, क्या दिख गई, चित्ज्योति कैसी है? दिव्य प्रकाशमयी है लौ फूट रही है। कैसी दिख रही है? श्वेत। तू सफेद झूठ बोल रहा है। अरस, अरूप, अवक्तव्य भगवानात्मा में तुम लौ कहाँ खोज रहे हो? यह ज्योति पुद्गल की है ?

एक बढ़िया फोटो खिंचवाया। एक किरण इधर बिखर रही है, एक किरण उधर बिखर रही है और छप गया, झलक गई शास्त्रीजी की आत्मा कैसी है ? जो चारों ओर किरणें बिखर रही हैं वैसा स्वरूप है। नहीं मित्र! ऐसा ये शास्त्री कभी नहीं कर सकता यदि सम्यग्दृष्टि है तो, क्योंकि उसे मालूम है तीर्थंकर का आभामण्डल भी चेतन नहीं है वो भी पौद्गलिक है तो तेरा आभामण्डल कहाँ से चेतन भगवान् आत्मा हो गया। **वस्तु स्वरूप को समझनेवाले जीव बहुत कम हैं, मात्र रूढ़ियों में जीनेवाले जीव बहुत ज्यादा हैं।**

ऐसा ध्यान का व्यन्तर लग चुका है सारे विश्व के दर्शनों में, सब कपड़ेवाले बैठे हैं सबके आभामण्डल बन रहे हैं, पर उन्हें पता नहीं उनके आभामण्डल में क्या झलकता है ? मुझे पता है, बता दूँ क्या ? बालको! उनके आभामण्डल में ये झलकता है; पहले तो टिकट लगेगा उस भवन में प्रवेश करनेवालों का और कहेंगे अब तुमको ध्यान होगा। तुमसे दक्षिणा माँगेगे और शिविर लगानेवाले तुमसे खीचेंगे । उनसे प्रश्न हमारा है कि पहले सामग्री होती है कि भोजन बन जाता है ? पहले सामग्री होती है तो पहले सामग्री तो लाओ। जब सामग्री ही नहीं है तो लोगों को पागल मत बनाओ। सामग्री आ भी जाये पर नियत नहीं है भोजन बन जायेगा, पर सामग्री चाहिए तभी भोजन बनेगा।

पहली सामग्री परिग्रह का त्याग और जो ध्यान करानेवाला करोड़ों को जेब में भर रहा हो, उससे प्रश्न करना तेरा ध्यान तो धन में टिका हुआ है, तू क्या ध्यान करा रहा है ? पंडितजी! सारी व्याख्या बंद करके रख देते हैं उसकी व्याख्या नहीं करते, बोले ये व्याख्या कर दूँगा मैं तो मेरा टिकट बंद हो जायेगा।

शास्त्री कहीं महाराज बन गया तो आहार का टिकट माँगेगा, अब तो गरीब बिचारे चौके भी नहीं लगा पायेंगे, क्यों? भैया! पैसा देना पड़ेगा कमेटी को, तैयारी करके चौका लगायेगा। ज्ञानी ! निर्ग्रंथों की चर्या पैसे की चर्या नहीं है, ये निर्ग्रन्थों की चर्या सहज चर्या है, ये धर्म की प्रभावना नहीं हो रही है। अंतरंग धर्म की अप्रभावना है। जब-तक तेरे पास लाखों नहीं होगे, तब-तक तू आहार नहीं दे पायेगा मुनि को। यदि निर्ग्रन्थों के आहार के टिकिट लगने लग गये, तो जब कर लगेगा उसी समय मुनिराज अंजलि छोड़ देंगे । उसके लिए बहुत समय है, साढ़े अठारह हजार वर्ष शेष हैं, वहाँ तो कल्कि माँगेगा। यहाँ तो शास्त्री जी कल्कि बन गया। कैसा ? मैं ट्रस्टी हूँ तुम्हारे यहाँ आहार हुए हैं, दान दो। मित्र! ऐसा मत करो, दान का उपाय दूसरा निकालो, लेकिन निर्ग्रन्थ के आहार का दान मत माँगो। ये तो गोचरीवाले हैं, ये तो चन्द्रचर्यावाले हैं, मधुकरवृत्ति वाले हैं।

आप भले कहते रहो प्रभावना होती है, पर जो आगम जानता है उसके लिए अप्रभावना हो जाती है। महाराज बनो तो ये काम मत करना। यह अर्हंत मुद्रा है, कोई भिखारियों की मुद्रा नहीं है, तीर्थंकर मुद्रा है । अब लगाओ तुम कहाँ ध्यान लगाते हो ? आप कितना ही कह लो ध्यान लगाता हूँ, विशुद्धसागर माननेवाले नहीं हैं, मुझे आगम चाहिए, आगम की कसौटी पर कसके उतरना चाहिए। पहला हेतु ध्यान का है – संग-त्याग। शास्त्रीजी! अब कितने ही इन बच्चों की आँखें बंद करवा लेना, बूढ़ों की आँखें बंद करवा लेना, मैं खोज करूँगा इसकी दृष्टि श्री पर है क्या, परिग्रह पर है क्या ? **परिग्रहधारी को निर्विकल्पध्यान होता ही नहीं है।**

संग-त्याग, पहली सामग्री परिग्रह का त्याग, कषायों का निग्रह, मन और इन्द्रियों पर विजय - ये ध्यान को जन्म देने वाली सामग्री हैं। बिठालके रखना, चित्त को मोड़ देना, किसी दूसरे विषय में लगा देना - ये भिन्न लौकिक विषय है। वास्तव में जो आत्मतत्त्व का ध्यान है, पंचपरमेष्ठी का

ध्यान है उस ध्यान के लिए आपको बिल्कुल सहज होना पड़ेगा। सहज होगा तब अपने चिन्तन से, श्रुतज्ञान के माध्यम से, अपने कैवल्यज्योति पर लक्ष्य रखेगा, चिंतन करेगा।

ज्योति से तात्पर्य कोई प्रकाश नहीं। जो चैतन्य है, चैतन्य का जो अनुभवन, चैतन्य का जो वेदन, मैं चैतन्य आत्मा हूँ उस आत्मा की अनुभूति, आत्मा का लक्ष्य, **आत्मा की स्थिरता जो है वह शुद्धोपयोगी योगी का चैतन्य ध्यान है। ये है चैतन्यज्योति।** ज्योति शब्द से लेकर कहीं यहाँ दीपक रखकर के नहीं बैठ जाना। समयसार में लिखा है चित्ज्योति। अमृतचन्द्र स्वामी ने लिखा 'पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय' में 'तज्जयति परंज्योति। परमज्योति' से तात्पर्य है - परम शब्द पर ध्यान दो। कौनसी परमज्योति? कैवल्यज्ञान।

एक-एक शब्द पर, एक-एक अक्षर पर दृष्टि की आवश्यकता है अन्यथा जीव कहीं का विषय कहीं समझ बैठेगा और यही हुआ अनादिकाल से। तत्त्व तो सम्यक् ही था, तत्त्व तो सम्यक् ही है, तत्त्व तो सम्यक् ही रहेगा पर जीव समझ नहीं पाये सो अनेक पन्थ बनाये। तत्त्व ने कभी पंथ नहीं बनाये, अर्हंत ने कोई पंथ नहीं बनाये, निर्ग्रन्थ ने कोई पंथ नहीं बनाये।

मुमुक्षु ! तत्त्व ने पंथ नहीं बनाये, नासमझ लोगों ने पंथ बनाये, अज्ञानधारा। भैया ! यहाँ जो लिखा है जयति वो कौन जयवंत है ? त्रिलोक्य में केवल्यज्ञानज्योति एक होने पर भी अनेक और अनेक होने पर भी एक जो प्रत्यक्ष अनुभव चैतन्य के गोचर है, ऐसी ज्योति किसी से बाधित नहीं है, निर्बाध। आप दीपक का ध्यान करोगे, तनक-सा पानी पड़ गया तो बुझ जायेगा तेरा दीपक। हवा का झोंका लगा तो बुझ जायेगा दीपक। कैवल्य ज्योति। कैसी ज्योति ?

जले नहीं कभी अग्नि में,
भीगे नहीं पानी में,
सूखे नहीं पवन के द्वारा,
दुनियाँ में सबसे न्यारा ये आत्मा हमारा।

क्या वो आत्मज्योति है? उस पर पानी की बूँद का असर नहीं पड़ता, अग्नि का असर नहीं पड़ता, कोई वायु का असर नहीं पड़ता, वह चित्ज्योति आत्मज्योति है। ऐसा सुरस से भरा हुआ वह ज्योतिपुंज है। अनेक ज्ञेयों को दिखाते हुए फिर भी अनेक ज्ञेयाकार नहीं होता, अनेक ज्ञेयों को प्रकाशित करते हुए भी अनेक ज्ञेयाकार नहीं होता और अनेक ज्ञेयों से रहित भी नहीं होता। कैवल्यज्ञान में ऐसा कौनसा ज्ञेय है जो न झलकता हो? झलकता है फिर भी केवलज्ञान परज्ञेयभूत परिणत नहीं होता है।

अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्म -
न्यनवरतनिमग्नं धारयद् ध्वस्तमोहम्।
उदितममृतचन्द्रज्योतिरेतत्समन्ताज् -
ज्वलतु विमलपूर्णं निःसपत्नस्वभावम्॥276/कलश

आचार्यों की शैली देखो। अमृतचन्द्र नाम भी आ गया और अमृतचन्द्र का नाम भी नहीं लिया। अमृत लोक में किसे कहा जाता है? जो अमर करे सो अमृत, लेकिन ज्ञानियो ! ऐसा मधुर द्रव्य अमृत है जो अमरत्व की बात कर रहा है। जब लोक में कोई वस्तु प्रसिद्ध हो जाती है उसको आचार्य भगवन्त अपनी कथा का विषय बना लेते हैं। यथार्थ में अमृत, अ+मृत, जिसका मरण ही नहीं है उसका नाम है अमृत। मेरी चिद्ज्योति है परम अमृत, जिसका कभी विनाश नहीं होगा। मेरी ध्रुव भगवान् आत्मा ही है परम अमृत। अमृत कहाँ से टपकता है ? लोक की लीला सुनी आपने, अभी शरद पूर्णिमा आयेगी तो लोग खीर बनायेंगे और रात्रि में खोलकर रख देंगे। कहीं-कहीं तो चन्द्रप्रभ स्वामी को ही विराजमान कर देते हैं, बोले अमृत टपक रहा है चन्द्रप्रभ स्वामी के ऊपर। या दूध रखेंगे तो सुबह उसकी खीर खायेंगे, खीर ही बना के रख देते हैं। हे मुमुक्षु आत्माओ ! तनिक विवेक और विचार करो।

नैवं वासरभुक्तेर्भवति हि रागोऽधिको रजनिभुक्तौ।
अन्नकवलस्य भुक्तेर्भुक्ताविव मांसकवलस्य॥132/ पु.सि.॥

श्रावको ! दिन में बनाया रात्रि में खाया, वो भी रात्रिभोजन। भोजन रात्रि में बनाया दिन में खाया, वो भी रात्रिभोजन। जब तुम प्रवचन की गद्दी पर बैठो, बेटा ! ये लाग-लपेट नहीं करना। माना कि पंडित जी को रात्रि में दूध पीना हो और उसको बैठा दिया गद्दी पर, वो क्या बोलेगा हाँ, भाई ! रोटी नहीं खाना चाहिए पर दूध-रबड़ी चल सकती है। नहीं मित्र! यह तुम्हारी कमजोरी है। जैसे कि मैं बोलता हूँ। मुझे ये खण्डेलवाल भवन में बैठकर समयसार की व्याख्या नहीं करना चाहिए थी। मुझे तो चातुर्मास जंगल में वृक्ष के नीचे बैठकर करना चाहिए। पर इस कलिकाल में मेरे अंदर इतना संहनन नहीं है। इस काल में, आगम में जंगल में जाने का निषेध है पूर्णरूप से। ये निषेध क्यों किया ? जैसे त्रस जीवों की उत्पत्ति, विकलत्रय की उत्पत्ति, इस युग में होती है ऐसी पूर्व में नहीं होती थी।

आज यहाँ जितने जीव-जंतु नहीं हैं, उतने जीव-जंतु जंगल में हैं और पूर्वकाल में सामान्य लोग पैदल विहार करते थे सो जंगलों में रास्ते होते थे। आज जंगलों में कोई रास्ता नहीं है। हर जंगल में घास-फूस खड़ी है। 'पद्मनंदीपञ्चविंशतिका' में लिखा हुआ है पंचमकाल वर्तमान में जंगलवास का निषेध। तब भी अंतरंग में दृष्टि यही होना चाहिए है कि मुझे जंगल में होना चाहिए था, पर मैं नहीं जा सका हूँ। ये संहनन की कमजोरी और काल का दोष है।

रात्रिभोजन त्याग करने में न संहनन की कमजोरी है, न काल का दोष है। फिर भी ये जीव कहे लोंग, इलायची, सुपारी, फल तो चल सकते हैं रात्रि में। हे जीव! ये तेरी निजी व्यवस्था है। ये पुरुषार्थ सिद्धयुपाय ग्रंथ की टीका में मूल आचार्य की व्यवस्था नहीं है। रात्रि में लौंग, इलायची आदि ले सकतें हैं - ये अभिप्राय किसी पंडितजी का ही है, मूल आचार्य का नहीं है। अब सुनिए कैसे नहीं है, वे क्या लिख रहे हैं 'नैवं वासर भुक्तै' जितना राग दिन के भोजन में नहीं होता, उतना राग रात्रि के भोजन में होता

है। जो रात्रि में अन्न के ग्रास को ग्रहण करता है वह रात्रि में मांस के ग्रास के समान है। अब लोगों ने क्या लगा लिया यहाँ, अन्न शब्द पकड़कर के उन्होंने शेष खाना प्रारंभ कर दिया। जबकि चारों प्रकार के आहार – खाद्य, स्वाद, पेय, लेह्य का त्यागी पूर्ण रात्रिभोजन का त्यागी है, वह भी समय के साथ। ऐसा नहीं कि दिन का बना रात्रि में खा लो अथवा रात्रि का बना दिन में खा लो।

ऐसे ही तत्त्व का उपदेश जो है ज्यों–का–त्यों करना। अपनी कमजोरी को आगम बनाकर मत बोलना। ठीक है हमारी कमजोरी है, पर आगम में तो ऐसा ही है। अब कोई ये प्रश्न न करे कि पंडितजी! आप भी तो दवाई ले रहे थे रात्रि में। हाँ, ठीक है ये मेरी कमजोरी है। पर मैं अपनी कमजोरी को गणधर की गद्दी पर बैठकर ये तो नहीं कह सकता हूँ कि ले सकते हो, कथन तो उत्कृष्ठ ही करूँगा।

आस-पास में कोई बाँध है क्या? नाग नदी पर बाँध है। कभी देखने गये नदी पर? जब भी बाँध बनता है, जब भी शासन बाँध बंधवाता है उसकी किंचित् भी इच्छा नहीं होती, इसमें से एक बूँद भी पानी बाहर गिरे, तब भी कितना ही मजबूत बना ले, पर पानी रिसता-ही-रिसता है। ऐसे ही ज्ञानियो ! कथन तो मजबूत आगम का ही करना चाहिए। अब पानी फिर से रिस जाये सो पानी के पतलेपन का दोष है। पर व्याख्यान में किंचित् भी कमी नहीं होना चाहिए। भैया ! रात्रि में पानी पी सकते हैं क्या? बिल्कुल नहीं। बहुत बढ़िया बेटा! ये तो मैंने जैन शास्त्रों की बात बताई है, वैदिक शास्त्रों में भी लिखा है -

अस्ते गते दिवानाथे, तोयं रुधिर मुच्यते।
अन्नं मांसं समं प्रोक्तं, मार्कण्डेय महर्षिनः ।। मार्कण्डेय पुराण ।।

वैदिकदर्शन में अठारह पुराणों में एक मार्कण्डेय नाम का पुराण है और मार्कण्डेय पुराण में लिखा है मार्कण्डेय ऋषि ने कि दिन का नाथ सूर्य, उसके अस्त होते ही पानी खून के समान हो जाता है, अन्न मांस के समान हो जाता है इसलिए रात्रि में न पानी पीना चाहिए, न भोजन करना चाहिए; यही राजमार्ग है। दिन में इतना खा लो इतना पी लो। पात्र से आपको पूरी सामग्री नहीं देना चाहिए, महाराज को पूरी सामग्री नहीं लेना चाहिए। ग्लास से दूध भी दे रहे हैं तो लेते-लेते देख लो, ग्लास में दूध समाप्त होने वाला है तो अंजलि बंद कर लो। गोचरीवृत्ति। पूरा नहीं खींचना, उसे छोड़ दो ।

आहारचर्या की पाँच वृत्तियाँ - पहली वृत्ति का नाम **गोचरी**। अब गोचरी का मतलब ये नहीं है यहाँ मुख मारो, वहाँ मुख मारो। अलग-अलग लोगों ने अलग अर्थ निकाले कि कई घरों से माँगकर इकट्ठा कर खा लेना। दिगम्बर आम्नाय इसे गोचरी नहीं मानती। सात घर, वो भी सातों घर पंक्तिवत् होना चाहिए, वहाँ तक का तो आहार ले सकते हैं। इस मोहल्ले का आहार उस मोहल्ले में देने जा रहे हो तो वो नहीं ले सकते, रोटी दाल भात।

गोचरी का अर्थ है जैसे गाय भी चरती है और गधा भी चरता है। गधा जब चरता है, घोड़ा जब चरता है तो घास को पकड़ता और पूरे जड़ से उखाड़ लेता है। पर गाय जब चरती है तो जड़ से नहीं

उखाड़ती, वो ऊपर-ऊपर का तोड़ती है और आगे बढ़ जाती है। ऐसेही हे मुनिराज! माताओ! ध्यान दो, आज प्रसंग आया है तो अच्छे से सुनो। महाराज! कोई कहे आप ही के लिए, बिल्कुल नहीं लेना। ऐसा नहीं बोलना। जब भी आहार देने जाओ उसे पूरा नहीं देना, थोड़ा बचा कर देना। घर में इतना भोजन बना के रखो कि सबको मिले, नहीं तो बच्चे रोने लगे कि तुमने महाराज को तो अच्छा-अच्छा खिला दिया, अब कुछ बचा ही नहीं। कोई बालक देख रहा था, वह सोच रहा था कि महाराज के आहार के बाद मुझे भी मिलेगा और उस बेचारे को कुछ भी नहीं मिला। गोचरी का दूसरा अर्थ यह भी है कि **गाय घास को देखती है, घसियारे को नहीं देखती है।** घास देने वाला सेठ है कि गरीब है यह नहीं देखती है। ऐसे ही जैन मुनि आहार की प्रासुकता को तो देखते हैं, परंतु ये नहीं देखते हैं कि ये नगर सेठ हैं कि गरीब हैं। उसके यहाँ जाना चाहिए, उसके यहाँ नहीं जाना चाहिए। सहजरूप से घास को देखो घसियारे को मत देखो, ये गोचरीवृत्ति है।

दूसरी वृत्ति है भ्रामरी। भौंरा जो है पुष्प पर बैठता है लेकिन जो छेद फूल में होते हैं वह भौंरा कभी नहीं करता, कीड़े करते हैं। भौंरा पराग तो लेता है पर किसी फूल में छेद नहीं करता। ऐसे ही योगी मधुकरवृत्तिवाले होते हैं। ये श्रावक के घर में चर्या को तो जाते हैं पर उसे सता के नहीं आते, उसको छेद करके नहीं आते; ये भ्रामरीवृत्ति है। शांति से अपनी अंजलि देखो, अपने पात्र पर ध्यान रखो, जीव न गिर जाये; दाता को देखो कहीं अंधा, लूला, लगड़ा तो नहीं है, कोई नख पालिश आदि तो नहीं लगाये; इतनी दृष्टि रखो। ऐसे व्यक्ति से आहार नहीं लेना चाहिए। कौनसी वृत्ति? मधुकर वृत्ति। वो मधुकरवृत्ति का नाम ही भ्रामरीवृत्ति है।

गर्तपूरण, जैसे आपके घर के द्वारे पर गड्ढा हो जाता है तो उसको आप जैसे बने वैसे भर देते हो, ऐसे ही ये पेट भी गड्ढा है इसे भरना पड़ता है पर प्रासुकद्रव्य से भरना। उसमें ये नहीं देखना कौनसा घर बढ़िया, उसमें खाने को क्या मिलेगा। गोचरीवृत्ति वाले की मृत्यु नहीं होती है, अधिक खानेवालों की मृत्यु ज्यादा होती है।

अगली वृत्ति है अक्षमृक्षण – अक्ष यानी चक्के की धुरी। मृक्षण यानी ओंगन। किसान जब गाड़ी में माल भरके ले जाता है तो चक्के की धुरी में ओंगन डालता है। यदि ओगन नहीं डालेगा तो गाड़ी चिरमिर करेगी, चीं-चीं करेगी, आवाज करेगी या फिर चक्का टूट जायेगा। ऐसे ही ये शरीर गाड़ी है, इसमें रत्नत्राय भरकर जा रहे हैं, हमें मोक्षमहल की ओर ले जाना है, रास्ते में कहीं टूट गई तो कैसे काम चलेगा ? इसलिए ओंगनस्वरूप ये साधु आहार लेने जाते हैं ।

चन्द्रचर्या – बहुत अच्छा हुआ हवा पर, सूर्य पर, चन्द्रमा पर, धूप पर, कोई कर नहीं लग रहे। पानी भी पाउच में, उसका भी कर। चन्द्रचर्या का अर्थ होता है जैसे चन्द्रमा आकाश में उदित होता है वो यह नहीं देखता कि ये सेठ है इसके घर ज्यादा प्रकाश करना और गरीब को कम देना। नहीं सभी के घर में

चन्द्रमा का प्रकाश समान होता है। ऐसे निर्ग्रन्थ मुनि सभी के द्वारों से निकल गये, जहाँ विधि मिल गई चले गये। इसका नाम है चन्द्रचर्या। ये पाँच वृत्तियाँ होती हैं। पंडितजी चरणानुयोग भी विशाल है, इसलिए आप मुनि बनो, तो इन पाँच वृत्तियों का ध्यान रखना।

आज तो पूरा समयसार चरणानुयोग में चला गया, फिर भी लोग शांति से बैठे हैं। पंडितजी! इससे आपको समझना चाहिए है, गाय का कोई भी थन पकड़ो, दूध-ही-दूध है; इसलिए कोई भी अनुयोग पकड़ो, आनंद-ही-आनंद है। यहाँ अमृतचन्द्रस्वामी कलश में कह रहे हैं कि जो चलायमान नहीं, अमरण स्वरूप है, मरण स्वरूप नहीं है, वही अमृत है। वही अमृत है जिसमें अन्य का भी मरण नहीं है, स्वयं का भी मरण नहीं है ऐसा स्वादिष्ट मिष्ट है। सभी द्रव्यों में, सभी क्षेत्रों में, सभी कालों में, सभी भावों में कैवल्यज्योति अपना ज्ञान प्रकाश करती है। ऐसी अमृतज्योति ऐसे ही आत्मा के द्वारा अपने ही आप में निरंतर निमग्न रहती है। ऐसी उदित अमृतचन्द्र ज्योति जाज्वल्यमान है, निर्मल पूर्ण है जो अज्ञान के अंधकार को दूर कर रही है। ऐसी जिस ज्योति का कभी पतन नहीं होता है। दीपक की ज्योति बुझ जाती है, पर अमृतज्योति बुझती नहीं है। इस प्रकार ऐसी निर्मल ज्योति है।

यहाँ आचार्य महाराज ने अमृतचन्द्रज्योति कहा है वह लुप्तोत्तमा अलंकार का प्रयोग किया है। अमृतचन्द्रवत्, यहाँ वत् का कर दिया लोप, इसलिए हो गया लुप्तोत्तमा अलंकार; ऐसे अलंकार से यहाँ चिद्ज्योति की वंदना भी है। यहाँ आचार्य महाराज ने अन्त्य मंगल किया है। ज्योतिष के सिद्धांत का एक नियम है समाप्यं, स्थाप्यं, भौमवासरे। कोई विषय समाप्त करना हो, स्थापित करना हो तो शनिवार और मंगलवार को करना चाहिये। इस श्लोक को यहाँ आचार्य महाराज ने क्षेपक के रूप में दिया है।

मुक्तामुक्तैकरूपो यः कर्मभिः संविदादिना।
अक्षयं परमात्मानं ज्ञानमूर्तिं नमामितम्॥स्व. सं.॥

यह 'स्वरूपसंबोधन' का श्लोक है। एक ही समय में परमात्मा मुक्त भी है अमुक्त भी है। कर्मों से मुक्त है और ज्ञानादि गुणों से अमुक्त है, इसलिए वे सिद्ध परमात्मा एकही समय में मुक्तामुक्त हैं, अक्षय हैं। ऐसे सिद्ध परमात्मा कैसे हैं? ज्ञानमूर्ति हैं। मैं उनको नमस्कार करता हूँ।

आत्मस्वभावं परभावभिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

परसंयोग से विभिन्न भाव

यस्माद्द्वैतमभूत् पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं
रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः ।
भुञ्जाना च यतोऽनुभूतिरखिलं खिन्ना क्रियायाः फलं
तद् विज्ञानघनौघमग्नमधुना किंचिन्न किंचित् खलु ॥277॥

शब्दार्थः - **(यस्मात्)** जिससे **(पुरा)** प्रथम **(स्व-परयोः द्वैतम् अभूत्)** अपना और पर का द्वैत हुआ **(यतः अत्र अन्तरं भूतं)** द्वैतभाव होने से जिससे स्वरूप में अंतर पड़ गया **(यतः राग-द्वेष-परिग्रहे सति)** स्वरूप में अंतर पड़ने पर जिससे राग-द्वेष का ग्रहण हुआ **(क्रिया -कारकैः जातं)** राग-द्वेष का ग्रहण होने पर जिससे क्रिया के कारक उत्पन्न हुए **(यतः च अनुभूतिः क्रियायाः अखिलं फलं भुञ्जाना खिन्ना)** कारक उत्पन्न होने पर जिससे अनुभूति क्रिया के समस्त फल को भोगती हुई खिन्न हो गई **(तत्)** वह अज्ञान **(विज्ञान-घन-औघ-मग्नम्)** अब विज्ञानघन समूह में मग्न हुआ **(अधुना किल किंचित् न किंचित्)** इसलिए अब वह सब वास्तव में कुछ भी नहीं है।

भावार्थः - अज्ञान है वह परसंयोग से ज्ञान ही अज्ञानरूप परिणमित हुआ था, कुछ दूसरी वस्तु तो थी नहीं , इसलिए अब ज्ञानरूप परिणमित हुआ तब कुछ भी न रहा। उस समय इस अज्ञान के निमित्त से राग-द्वेष, कर्त्ता-कर्म, सुख-दुःखादि भाव होते थे वे भी नष्ट हो गये। एक ज्ञान ही रह गया। तीन कालवर्ती अपने पर के सब भावों को आत्मा ज्ञाता-द्रष्टा हुआ देखना चाहिए।

समय देशना

भव्य बन्धुओ ! आचार्यप्रवर भगवन् कुन्दकुन्दस्वामी ग्रंथराज समयसारजी में ध्रुवज्ञायकस्वभावी भगवानात्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। वह परमज्ञायकभाव अनंत धर्मात्मक है, नयप्रमाणात्मक है। निजआत्मद्रव्य ही निजआत्मद्रव्य को आत्मद्रव्य से नयात्मक भी निहारता है, प्रमाणात्मक भी निहारता है। अनंतगुणों का जब पिण्ड देखता है तब ये आत्मद्रव्य प्रमाणभूत है। एक-एक गुण को जब निहारता है तो एक-एक गुण 'अपि' से युक्त नहीं 'एव' से युक्त है। आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है यह ज्ञान की अपेक्षा ही है। आत्मा ज्ञानस्वरूप ही नहीं है, आत्मा दर्शनस्वरूप भी है। **जहाँ अपि का प्रयोग हो रहा है, वहाँ प्रमाण की ओर जा रहे हैं। जहाँ एवकार का प्रयोग हो रहा है, वहाँ नय की ओर जा रहे हैं। नय एवकार से ही युक्त होता है।** यदि एवकार का प्रयोग नहीं किया तो अनिश्चितार्थ होता है, संशय हो सकता है पर एवकार में अनिश्चितार्थ नहीं होता है, एवकार में निश्चितार्थ होता है।

आत्मा ज्ञानगुण की दृष्टि से ज्ञानस्वरूप ही है। ज्ञानस्वरूप की दृष्टि से आत्मा अन्यभूत नहीं है पर एवकार ने अन्य गुणों का निषेध नहीं किया है। एवकार ने अन्य गुणों का अभाव नहीं किया है। आत्मा ज्ञानगुण की अपेक्षा से ही ज्ञानरूप है। आत्मा ज्ञानगुण की अपेक्षा से ज्ञानगुण ही है। ज्ञानगुण की अपेक्षा से ज्ञानभूत ही है। हमने शेष गुणों का अभाव कहाँ किया है ? **विरुद्धधर्मों को एक साथ जो अविरुद्धरूप देखे उसका नाम स्याद्वाद है। एक ही वस्तु में विरोधी धर्मों को एक साथ जो निहारे उसका नाम अनेकान्त है।** अनेक गुणों को अनेकान्त; अन्त यानी धर्म, अनेक हैं अंत जिसमें उस दृष्टि का नाम है अनेकांत। अनेक धर्मों की देखने की दृष्टि जो है, उसका नाम अनेकान्तदृष्टि है और अनेक धर्मों को कहने के लिए कोई समर्थवान है उसका नाम है स्याद्वाद। जो स्यात् निपात् से युक्त वाद है उसका नाम है स्याद्वाद। जहाँ स्यात् निपात् नहीं है, वहाँ वाद है वो विवाद है। जहाँ स्यात् निपात् नहीं है वह मात्र विवाद है, वो एकान्तभूत है और वाद के पूर्व स्यात् लगा हुआ है, स्यात् निपात जहाँ लगा हुआ है, स्यात् निपात जहाँ है वही वाद सम्यक्वाद है। स्यात् निपात-रहित वाद-शून्यवाद मिथ्यावाद। निपात्-सहित वाद - सम्यक्वाद। **स्याद्वाद शैली है, अनेकांतदृष्टि है। वाच्य-वाचकभाव। अनेकान्त वाच्य है, स्याद्वाद वाचक है।** वाच्य के अभाव में वाचक नहीं होता और वाचक के अभाव में वाच्य का बोध नहीं होता। ये स्याद्वाद अधिकार का उपसंहार चल रहा है। अभी तक स्याद्वाद अधिकार में अनेक विषयों की व्याख्या की, पर स्याद्वाद की व्याख्या नहीं की थी।

यहाँ आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी सप्तभंगी की व्याख्या कर रहे हैं। भंग सात ही हैं , छः नहीं हैं, आठ नहीं हैं, सात ही हैं। हम बुद्ध नहीं हैं, हम सुगत नहीं हैं, हम शून्य एकान्तवादी नहीं हैं। हम प्रत्यक्ष एकान्तवादी नहीं हैं, हम परोक्ष एकान्तवादी नहीं हैं, हम नित्य एकान्तवादी नहीं हैं, हम अनित्य एकान्तवादी नहीं है। हम जड़त्वभूत एकान्तवादी भी नहीं हैं, चेतनत्वभूत एकान्तवादी भी नहीं हैं। द्रव्य को अनेक धर्मात्मक देख रहे हैं और यहाँ हमारा द्रव्य से लक्ष्य है - आत्मद्रव्य। हमारा आत्मद्रव्य प्रत्यक्ष भी है, हमारा आत्मद्रव्य परोक्ष भी है। अशरीरी है, अमूर्तिक है; इस दृष्टि से पर की इन्द्रियों का विषय नहीं है इसलिए परोक्ष है। पर मेरी निजात्मा का विषय निजआत्मलोक है इसलिए प्रत्यक्ष भी है। सामान्य छद्मस्थों के, मिथ्यादृष्टियों के अनुभव गोचर भी नहीं है इसलिए परोक्ष है, परंतु स्वानुभूति में लीन योगी के लिए वही अध्यात्म का प्रत्यक्ष है। मुमुक्षु ! सिद्धांत का परोक्ष भी अध्यात्म का प्रत्यक्ष है। मेरा आत्मद्रव्य; मति-श्रुतज्ञान से हम देखते हैं तो वह परोक्षभूत दिखाई देता है। वही आत्मद्रव्य को मति-श्रुतज्ञान को भी आत्मा का गुण स्वीकारता हूँ तो गुण गुणी से भिन्न नहीं होता है। गुण-गुणी में एकत्वभूत अनुभवन होता है इसलिए प्रत्यक्ष भी है। मेरी आत्मा का जो गुण है वह ज्ञानगुण है। वह ज्ञानगुण से भिन्न जगत् की कोई पर्याय नहीं होती। मतिज्ञान भी ज्ञानगुण की पर्याय है, श्रुतज्ञान भी ज्ञानगुण की पर्याय है, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान भी ज्ञानगुण की पर्याय है।

जब पर्याय की व्याख्या की जा रही है तो ज्ञानियों को समझ लेना चाहिए, वहाँ पर्यायी की भी व्याख्या है। जो मति-श्रुतज्ञान की पर्यायें हैं वे ज्ञानगुण की ही पर्यायें हैं। ज्ञानत्व से भिन्न कोई पर्याय नहीं है। हम लोग पर्यायी से पर्याय को भिन्न मानने वाले नहीं है। पर्याय और पर्यायी में अभिन्नत्व है। कालद्रव्य को नहीं मानने वाले, कालद्रव्य की पर्याय को मानने वाले ऐसे लोगों के जैसा हम द्रव्य-गुण का स्वरूप नहीं मानते। जहाँ पर्याय है वहाँ नियत पर्यायी है। जब ज्ञानगुण की पर्याय है मति-श्रुतज्ञान तो ज्ञायकभाव उसमें भी है। ज्ञायकभाव केवलज्ञान में भी है। इस दृष्टि से द्रव्य में द्रव्य उपचार, पर्याय में पर्याय उपचार, पर्याय में गुण उपचार और पर्याय में द्रव्य उपचार। ये उपचार को समझना, जब हमने मति-श्रुतज्ञान को आत्मा का गुण कहा तो वहाँ आप मति-श्रुतज्ञान में पर्याय में गुण का उपचार ग्रहण करो।

जब आपसे किसी ने कहा कि मति-श्रुतज्ञान आत्मा का गुण है तो आपको शीघ्र समझ जाना चाहिए ये मति-श्रुत ज्ञान तो ज्ञानगुण की पर्यायें हैं। ये गुण कैसे हो गया तो आपको तुरंत समझ जाना चाहिए, ये व्याख्यान पर्याय में गुण के उपचार का है। पंडितजी! बिना स्याद्वाद के कोई शुद्धोपयोग में प्रवेश करना चाहे, संभव नहीं लगता। बिना स्याद्वाद के आत्मा की सिद्धि करना चाहे, ये संभव नहीं है। अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असंभव; इन तीन दोषों से शून्य मेरी आत्मा ज्ञानस्वरूप है। त्रिदोष-शून्य आत्मा ज्ञानस्वरूप है। इसमें अव्याप्ति दोष भी नहीं है, इसमें अतिव्याप्ति व असंभव दोष भी नहीं है।

ज्ञानियो! धारावाहिक विषय को समझना। यदि मति-श्रुतज्ञान को आप आत्मभूत नहीं मानते हो, **'आद्ये परोक्षम्'** की दृष्टि से आपने सर्वथा ऐसा परोक्ष मान लिया है कि जैसा दण्डी का डण्डा। ये सब भिन्नभूत होकर के परोक्ष मान रहे हो, तो आपके अंदर चेतनत्व की हानि हो जायेगी। जब-तक क्षायिकज्ञान प्रगट नहीं हुआ अथवा एकदेश प्रत्यक्ष प्रगट नहीं हुए तब-तक आत्मा इस मति-श्रुतज्ञानरूप ज्ञानगुण के साथ ही रहता है। इसलिए आत्मा को परोक्ष इस मति-श्रुतज्ञान के साथ में लगाना, पर आत्मा से भिन्न होकर ज्ञानगुण से भिन्न होकर मति-श्रुतज्ञान को मत देख लेना।

जो भी तुम तत्त्व का निर्णय कर रहे हो मति-श्रुतज्ञान से ही कर रहे हो। मति भी जब शांत हो जाता है तो मति का प्रयोग भी बंद हो जाता है तो श्रुत श्रुत ही चलता है। **स्वार्थ-परार्थभूत एक मात्र इकलौता ज्ञान है उसका नाम है श्रुतज्ञान।** दिगम्बर परम्परा में भले हम लोग अंगपूर्व का लोप मानते हैं पर अंगपूर्व के अंश का लोप नहीं मानते हैं। श्वेताम्बर परम्परा में 'उत्तराध्ययन' 'दशवैकालिक' इन ग्रंथों को मैं देख रहा था, पर इन ग्रंथों को देखने पर मुझे ऐसा महसूस नहीं हुआ कि हमारे पास सिद्धांत नहीं बचे। उनको देखके लगा कि हमारे कुन्दकुन्दादि, पुष्पदन्त-भूतबलीस्वामी, धरसेनस्वामी, आचार्य यतिवृषभस्वामी, नेमिचन्द्रसिद्धांत-चक्रवर्ती – इन सब आचार्य भगवन्तों ने अभी भी हमारे आगम को परिपूर्ण सुरक्षित रखा है।

जो प्राञ्जल भाषा, जो सिद्धांत की प्राञ्जलता, व्याख्यान की विशदता दिगम्बराचार्यों के पास नजर आती है उससे श्रद्धा से सिर टिक जाता है। शास्त्री जी ! जो योगी 'तिलोयपण्णत्ती' जैसा ग्रंथ लिख रहा हो, जिसने हजारों गाथाएँ बनाई हों, वो निर्ग्रंथ आचार्य यतिवृषभस्वामी लिखते हैं 'तिलोयपण्णत्ती' में, मुझे ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों का व्याख्यान अनुपलब्ध हो गया, उसका लोप हो गया है। वो चाहते तो गाथा बना देते; नहीं, आगम नहीं मिला। क्या लिखते? यतिवृषभस्वामी ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर भगवन्त के प्रवचन का अभाव है यद्यपि छोटी-से-छोटी बात को लिखा, बड़ी-से-बड़ी बात को लिखा। वे चाहते तो कितनी भी कल्पना करके लिख देते, लेकिन कल्पना लिखकर के उनका हृदय कहता, यतिवृषभ तुमने ग्रंथ के कलेवर को तो बड़ा दिया है, पर सत्य का गला घोट दिया है। हे सुधी श्रावको! हे सुधी श्रमणो ! लेखनी लेकर सत्य का गला घोंट करके ग्रंथ के कलेवर को बढ़ाना उचित नहीं है। उतनी ही प्ररूपणा करना जितना आगम है। वो ग्रंथ, वो सिद्धांत विलुप्त हो गया, समाप्त हो गया परन्तु तीर्थंकरों का वर्णन तो तीर्थंकरों जैसा ही होता है। पर उनके स्थान उनके माता-पिता, उनके नाम ये सब उनको कुछ उपलब्ध नहीं हुआ, इसलिए हे ज्ञानियो! कहीं सिद्धांत के एकांत में आत्मा की ध्रुव सत्ता को भूल मत जाना।

'आद्ये परोक्षम्' सूत्र को लेकर के कहीं प्रत्यक्षात्मानुभूति का लोप मत कर देना। आद्ये परोक्षम् सूत्र यानी मति-श्रुत ज्ञान परोक्षज्ञान हैं। इस सूत्र को अवधारणा में लेकर के कहीं निर्ग्रंथ वीतरागी श्रमण अप्रमत्त गुणस्थान में भेदाभेद रत्नत्रय की आराधना से युक्त निश्चयस्वरूप में लवलीन प्रत्यक्ष आत्मानुभूति ले रहे हैं – प्रत्यक्षज्ञान से। लेकिन एक ने प्रश्न कर दिया, जब बारहवें गुणस्थान तक परोक्ष अथवा एकदेश प्रत्यक्ष और अवधि, मनःपर्ययज्ञान, ये आत्मा की अनुभूति का बोधक नहीं है। आत्मा की अनुभूति तो श्रुतज्ञान से ही होती है, श्रुतज्ञान परोक्षज्ञान है इसे आप प्रत्यक्ष कैसे कहते हो ? इन्द्रिय-मन की सहायता से होने की दृष्टि से परोक्षपना है परन्तु श्रुतज्ञान ऐसा नहीं समझ लेना कि इन्द्रियों में हो रहा है कि मन में हो रहा है। ज्ञानी ! ज्ञान इन्द्रियों का गुण नहीं है, ज्ञान मन का गुण नहीं है, मुमुक्षु! ज्ञान तो आत्मा का गुण है। इसलिए आत्मा में जो ज्ञान हो रहा है जब आत्मगुण को आत्मस्थ होकर निहारता है तो वही परोक्षज्ञान प्रत्यक्षभूत होता है।

शास्त्रीजी! जब तक भारत की भूमि पर वर्तमान में विचरण करनेवाले श्रमण इस विषय को नहीं स्पर्श करेंगे तब-तक उनको शुद्धोपयोग की झलक कैसे आयेगी? और गहरे में जाइए तब विषय मस्तिष्क में प्रवेश करेगा। मति-श्रुत ज्ञान। अभी मति को भी विराम दे दिया। तीर्थंकर प्रकृति का भी बंध करेगा तो श्रुतज्ञान से। शुद्धोपयोग में जायेगा तो श्रुतज्ञान से और शुक्लध्यान में भी प्रवेश करेगा तो एकत्ववितर्क, पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान है वह भी प्राप्त करेगा श्रुतध्यान से। गुणस्थान का क्रम गुणस्थानभूत चल रहा है। पर वहाँ योगी गुणस्थान को नहीं देख रहा है, गुणस्थान को नाली बना रहा है और परिणति को पानी बना रहा है। नाली में, पाइप लाइन में पानी तो बहता है पर पाइप लाइन पानी नहीं है। गुणस्थान मीटर है, उसमें नम्बर तो गिने जा

सकते हैं, पर वो नम्बर जिसके गिने जा रहे हैं , वह मीटर नहीं है। मीटर से पानी का उतार-चढ़ाव तो देखा जा सकता है, पर मीटर पानी नहीं देता है। मीटर से बुखार का तापमान तो देखा जा सकता है, पर मीटर तापमान नहीं होता है। ऐसे ही गुणस्थान जो है वो गुणस्थान ही है और जो उतार-चढ़ाव चल रहा है, आत्मा की परिणति की जो धारा है वो गुणस्थानातीत अनुभूति है।

मार्गणास्थानातीत अनुभूति, गति-अतीत अनुभूति चल रही और जब वेदन कर रहा है श्रमण, मैं घट को अपनी आत्मा से वेदता हूँ। इसमें माणिक्यनन्दी, अकलंकस्वामी का न्याय ही मत देखो, इसमें कुन्दकुन्ददेव का भी न्याय देखो। मैं घट को आत्मा से वेदता हूँ। जब ज्ञेय और ज्ञाता; ज्ञान परज्ञेय को देखता है तो घट दिखाई देता है पर हमने घट को घट से नहीं जाना है। हमने ज्ञान को ही ज्ञान से जाना है और वो ज्ञान क्या है ? गुण-गुणी में संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन की दृष्टि से मात्र भेद है; अधिकरण की दृष्टि से, प्रदेशत्व की दृष्टि से, स्वभाव की दृष्टि से कोई भेद नहीं है। घट को मैंने किससे जाना ? ज्ञान से जाना। किसको जाना? ज्ञान को जाना। किसमें जाना ? ज्ञान में जाना। ज्ञान है किसमें ? आत्मा में। इसलिए किसको जाना? आत्मा को जाना है।

हे जीव ! धन्य हो निर्ग्रंथों को, वे जब किसी को नहीं जानते हैं तब वे जाननहारे को ही जानते हैं, वो ज्ञानगुण से जान रहे हैं। जाननहारे को ही जान रहे हैं ज्ञानगुण से जान रहे हैं। हम नहीं देख रहे पिच्छी को, हम नहीं देख रहे कमण्डलु को, हम नहीं देख रहे दिगम्बर भेष को, हम देख रहे उसे जो बना है दिगम्बर भगवानात्मा। **पराश्रित परवस्तुजन्य बोध कब तक करोगे ? स्वाश्रित का तो बोध करो, स्वाश्रित का तो आनंद लूटो। वह है आत्मानंद।** इसलिए श्रुतज्ञान आत्मा से भिन्न नहीं होता है। इस दृष्टि से, अध्यात्मदृष्टि से वह श्रुतज्ञान प्रत्यक्षज्ञान है। अध्यात्मदृष्टि से श्रुतज्ञान भी प्रत्यक्षज्ञान है। सिद्धांतदृष्टि से परोक्ष है। ये व्याख्यान निराधार नहीं बोल रहा हूँ। ये व्याख्यान आगम का आलम्बन लेकर बोल रहा हूँ। 'परमात्मप्रकाश' और 'बृहद् द्रव्यसंग्रह' दोनों ग्रंथों की टीका में आचार्य ब्रह्मदेवसूरि ने स्पष्ट किया है। द्रव्यानुयोग की अन्तस्थ गहराइयों में स्पर्श करना है तो ब्रह्मदेवसूरि को समझना बहुत आवश्यक है।

श्रुतज्ञान आत्मा का बोधक है, पर का बोधक है; स्वपर बोधक है फिर भी स्वबोधक है, कैसा ? व्यवहार एकान्त में आपने मति-श्रुतज्ञान को परोक्ष मानके जब प्रारंभ किया है, तो प्रत्यक्ष आत्मा की अनुभूति का तो पता ही नहीं चलेगा। संवित्ति (अनुभूति) फिर भी है। **स्वसंवेदन का अभाव कर दोगे, तो तुम जड़ हो जाओगे। हम स्याद्वादी आत्मा को स्वसंवेदन से शून्य नहीं मानते। एकेन्द्रिय जीव को भी स्वसंवेदन से शून्य नहीं मानते, एकेन्द्रिय जीव भी स्वसंवेदन से युक्त होता है।** आप प्रश्न करो कि चौथे गुणस्थान में आप स्वसंवेदन क्यों नहीं मानते हो? हे ज्ञानी! जब मैं एकेन्द्रिय स्वसंवेदन मानता हूँ तो चौथे गुणस्थान में स्वसंवेदन का निषेध कब किया है ? चतुर्थ गुणस्थान में सप्तम गुणस्थान जैसी, अभेदगुणस्थान जैसी जो स्वानुभूति शुद्धोपयोगरूप है वो नहीं होती है, स्वसंवेदन तो होता है। मिथ्यादृष्टि

को भी होता है स्वसंवेदन। **यदि मिथ्यादृष्टिजीव को स्वसंवेदन नहीं मानोगे, तो जीवत्व का लोप हो जायेगा, चेतनत्व का अभाव हो जायेगा, जड़त्व की सिद्धि हो जायेगी।**

स्वसंवेदन सुव्यक्तस्तनुमात्रोनिरत्यय: ।
अत्यन्तसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकन: ।।21/इष्.।।

पूज्यपादस्वामी ने इस ग्रंथ में न्याय, सिद्धांत, अध्यात्म सब भरा है। इष्टोपदेश भाष्य में इस कारिका में नैयायिक, वैशेषिक आदि सभी मत लिए हैं। स्वसंवेदन कहाँ से प्रारंभ हो रहा है ? जहाँ से जीव है वहाँ से स्वसंवेदन है। कब से जीव है ? अनादि से। तभी से स्वसंवेदन है। इसलिए स्वसंवेदन का निषेध नहीं करना, परंतु गुणस्थान-क्रम से समझना। किस गुणस्थान में किस क्रम से स्वसंवेदन है फिर विषयजन्य संवेदन, आत्मजन्य संवेदन, परज्ञेय-संबंध संवेदन, ज्ञेय-संबंध संवेदन। इसलिए **चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव को जो शुद्धोपयोग का अनुभवन है वह भावनाभूत अनुभवन है, लेकिन अनुभूतिजन्य अनुभवन तो अभेद रत्नत्रय से मण्डित वीतरागी श्रमण को है।** सर्वत्र अध्यात्म ग्रंथ के टीका ग्रंथों में ऐसी ही व्याख्या है।

भरत, सगर, राम आदि को राज अवस्था में स्वसंवेदन कहा है पर कैसा कहा है? भावना भण्णते। शुद्धोपयोग की भावना भाते हैं। यदि शुद्धोपयोग की भावना नहीं है तो चतुर्थ गुणस्थान भी नहीं है, इसलिए गृहस्थों के भावना भण्णते और साधु के अनुभूतिरूप; ये दोनों व्याख्यानों का ध्यान रखना, गुणस्थान भेद है। अमृतचन्द्र स्वामी ने गुणस्थान-क्रम से व्याख्यान नहीं किया, उनको तो शुद्ध तत्त्व की प्ररूपणा करना थी। तब जयसेनस्वामी ने गुणस्थान-क्रम में प्रथम से तृतीय पर्यंत तारतम्य से अशुभोपयोग, चतुर्थ से छठे गुणस्थान में तारतम्य से शुभोपयोग, सप्तम से बारहवें तक तारतम्य से शुद्धोपयोग; तेरहवें गुणस्थान, चौदहवें गुणस्थान, सिद्ध परमात्मा - इनमें शुद्धोपयोग का फल।

ये जो शुद्धोपयोग है ये परिणतिजन्य है। पंडित जी! इस विषय में और स्पर्श करो। जो शुद्धोपयोग है वह परिणतिजन्य है, शुद्धोपयोग नहीं है। **'उपयोगो लक्षणम्'** ये त्रैकालिक विषय है वो परिणति है। जो परिणति है वह पर्यायजन्य विषय है। 'उपयोगो लक्षणम्' को जब हम देखते हैं तो जहाँ तक अशुद्धज्ञान है वहाँ तक अशुद्धोपयोग है और जहाँ उपयोग शुद्ध होगा क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन-ये शुद्धज्ञान; तेरहवाँ, चौदहवाँ गुणस्थान शुद्धोपयोगी है। परिणतिजन्य शुद्धोपयोग बारहवें गुणस्थान तक। शुभ-अशुभ-शुद्ध; ये परिणतियाँ हैं। ये लक्षणभूत नहीं हैं, ये लक्षण नहीं है।

'उपयोगो लक्षणम्' उपयोग की दो परिभाषा बनाओ, उपयोग की तीन परिभाषा बनाओ। एक **'लब्धिोपयोगो भावेन्द्रियम्'** वो लब्धिरूप उपयोग की परिभाषा। एक शुभ-अशुभ, शुद्ध परिणतिजन्य उपयोग, एक उपयोगो लक्षणम्। **उभय निमित्तवशादुत्पद्यमानश्चैतन्यानुविधायी परिणाम उपयोग:।** 'सर्वार्थसिद्धि' ग्रन्थ से ये उपयोग की जो परिभाषा है वह जीव के लक्षणभूत परिभाषा है। तत्त्वार्थसूत्र में

द्वितीय अध्याय में आठवाँ सूत्र 'उपयोगो लक्षणम्' ये सूत्र कहाँ तक जायेगा? निगोदिया से सिद्धों तक। अब निगोदिया में जो सिद्धत्वभाव है, उपयोगभाव है वह उपयोगभाव संसारावस्था में छद्मस्थों के अशुद्धभूत है, केवलियों के वह उपयोग शुद्धभूत है। वह शुद्धोपयोग, जीव के लक्षणभूत शुद्धोपयोग तेरहवें गुणस्थान से प्रारंभ होगा पर चारित्र-गुण की इस परिणति के साथ। असंयम की परिणति के साथ, मिथ्यात्व की परिणति के साथ जो उपयोग की धारा है अशुभ, शुभ, शुद्ध। बारहवें गुणस्थान में चारित्र परिणतिभूत शुद्धोपयोग है, लेकिन ज्ञान-दर्शन की शुद्धता की दृष्टि से अशुद्धोपयोग है, अशुभ नहीं कह रहा हूँ अशुद्धोपयोग है।

क्या गजब है जिनवाणी, हो जाने दो यथाख्यात तब भी अशुद्धोपयोग। परम यथाख्यात संयम में तीन होंगे तब केवलज्ञान गुण प्रगट होगा। तब ये जीव शुद्ध ज्ञान-दर्शन को प्राप्त करेगा। एक और निर्णय करना, ज्ञान कभी शुद्ध ज्ञान को जन्म नहीं देता। अब तो और गहरे में चले जाओ। ज्ञान कभी शुद्धज्ञान को जन्म नहीं देता। ज्ञान की महिमा ज्ञान के रूप में गाओ और जब ज्ञान की हम शुद्ध पर्याय को प्रगट करायेंगे, कैवल्य को प्रगट करायेंगे और मोक्ष को प्रगट करायेंगे।

ज्ञानियो ! ज्ञान से मोक्ष नहीं मिलेगा। यदि ज्ञान से मोक्ष हो गया तो शास्त्री जी बौद्ध हो जाते हैं। यदि ज्ञान होते ही मोक्ष होता तो मेरा प्रश्न है - हे सुगत! तुमको बोधि हुई, तुम्हारा तो मोक्ष हो गया फिर उपदेश किसने दिया ? यदि ज्ञान होते ही मोक्ष हो गया, निर्वाण हो गया, तो फिर जगत् में व्याख्यान किसने दिया ? मोक्ष हो गया। इसलिए **ज्ञान की पूर्णता से मोक्ष नहीं होता। ज्ञान की पूर्णता से तो कैवल्य प्रगट हुआ है, दिव्यध्वनि खिरती है, तत्त्वोपदेश होता है। मोक्ष तो चारित्र की पूर्णता से होता है।** जब-तक चौदहवें गुणस्थान में अठारह हजार शील की पूर्णता नहीं हो जाती है, अठारह हजार शील की पूर्णता ही चारित्र की पूर्णता है, तब निर्वाण होता है और कैवल्य भी। जब-तक यथाख्यात चारित्र में योगी लीन नहीं होता, मोहनीय कर्म को काटकर नाश नहीं करता, तब-तक कैवल्य प्रगट नहीं होता है। कैवल्य और निर्वाण ये चारित्र के अभिनाभावीभूत हैं। तथोत्पत्ति अन्यथोत्पत्ति। जहाँ चारित्र होगा वहीं कैवल्य होगा - तथोत्पत्ति और जहाँ चारित्र नहीं होगा वहाँ कैवल्य नहीं होगा - अन्थोत्पत्ति।

जहाँ अठारह हजार शील की पूर्णता होगी वहीं मोक्ष होगा और जब-तक अठारह हजार शील की पूर्णता नहीं होगी तब-तक मोक्ष नहीं होगा। तथोत्पत्ति, अन्यथोत्पत्ति; दोनों ही हेतु काम कर जाते हैं, तीन हेतु की जरूरत ही नहीं है। लघीयस्त्रय। तथोत्पत्ति, अन्यथोत्पत्ति, ये बड़े अस्त्र हैं, हेतु हैं। आपको ऐसा नहीं लगता कि बुद्धि की प्रकर्षता के अभाव में मोक्ष कैसे हो सकता है? अब कोई कुछ भी कहे, आपको मेरे इस विषय पर विश्वास न होतो आप सीमन्धर स्वामी के पास जाओ, उनसे प्रश्न करके आओ, स्वामी! क्या शरीर वैकल्यवाला व्यक्ति मुनि नहीं बन सकता ? तो इसका शरीर तो स्वस्थ है पर इसका मस्तिष्क

विकलांग है, वो व्यक्ति मुनि बनके मोक्ष जा सकता है क्या ?

मेरे मित्र! माता-पिता से मेरा कहना है, इतनीसी हमारे जिनशासन पर करुणा करना, सन्तान में बुद्धि का वैकल्य (विकलांग) हो तो उसे मुनिसंघ में भर्ती मत करना, क्योंकि ये मस्तिष्क का विकलांगपना, ये जिनधर्म के अपमान का कारण बन जायेगा। जिसकी घर के कार्यों में बुद्धि नहीं लग रही है उसकी मोक्षमार्ग में क्या बुद्धि लगेगी ? इसलिए घर के विकल्पों से स्वतंत्र होने के लिए बालक-बालिकाओं को यहाँ मत भेज देना। जिसको भूत, व्यन्तर लगे हों, जो पागलपन से युक्त हों, उसे मुनिसंघ में भर्ती नहीं करना। आगम में भूत से युक्त, नपुंसकता से युक्त, विकलांगता से युक्त व्यक्ति को जैनेश्वरी दीक्षा देने का निषेध है। मुझे आप जिनदीक्षा का विरोधी नहीं समझना, मैंने स्वयं दीक्षा ली है, स्वयं दीक्षा दी है। मैं दीक्षा का विरोधी नहीं हूँ पर जहाँ तक आगम जब पढ़ते हैं तो आगम में यही व्याख्यान है।

जब हम समयसार की आत्मख्याति टीका निहारते हैं तब पूर्ण निर्णय हो जाता है। वो श्रुतज्ञान भी दो धारा में बहता है। एक पराश्रित होकर बहता है, एक स्वाश्रित होकर बहता है। जब पराश्रित होकर बहता है तो बाल-गोपाल को समझ में आता है। जब स्वाश्रित बहता है तब बाल-गोपाल वहाँ दिखाई नहीं देता। कैसा ? अखण्ड श्रुत की धारा। शास्त्री जी! अपन को स्याद्वाद को समझना है। अखण्ड श्रुत की धारा; ये विशुद्धसागर नहीं बोल रहे हैं, ये आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी बोल रहे हैं। अखण्ड श्रुत की धारा। जब अखण्ड श्रुत की धारा में जाते हैं तो जो किंचिंत् भी शास्त्री होगा, उसे जानने में प्रवेश कर जायेगा। आज ही बोल देगा महाराज! पूर्ण सत्य है, गृहस्थों की पूर्ण अखण्ड धारा हम कैसे समझ पायें? ध्यान दो, अखण्ड श्रुत की धारा, वह कैसे ? अखण्ड श्रुत की धारा; जहाँ पाँच पापों का खण्डन न हो, पाँच पापों से खण्डित न हो। तात्पर्य, देखो मेरी तरफ, तुम्हारे कैमरे में चित्र आ रहा है पर मेरे मित्र! शास्त्री क्षणभर में अत्यन्त द्रुतगति से निकल जाये और कोई समझ ही न पाये तब भी कैमरे में चित्र आयेगा कि नहीं आयेगा ? आयेगा।

इसी वर्ष की एक सत्य घटना बताऊँ। मंदिर में कैमरा लगा था। एक सज्जन अभिषेक करने गये। उनके हाथ से श्रीजी की प्रतिमा का सिर निकल गया। वह व्यक्ति बड़े विवेक के साथ प्रतिमा वहीं-की-वहीं रखकर चला गया। किसी को कुछ नहीं मालूम। डर और भय से उसने किसी को कुछ नहीं बताया। दूसरे दिन दूसरे सज्जन अभिषेक करने गये और जैसेही विचारे ने मार्जन किया वह सिर उसके हाथ में आ गया। समाज में कलंक का ठप्पा लग गया, प्रतिमा खण्डित कर दी। वो बिचारा कहता है भैया! मैंने तो मात्र मार्जन किया था और वो हाथ में आ गई। ठीक है, प्रायश्चित्त दे समाज। आचार्य महाराज के पास लेकर चलो और वो हमारे पास आये। तो मालूम, कुछ ज्ञानी लोग हर जगह रहते हैं उन्होंने कहा चिन्ता मत करो। ये कैमरा जो मंदिर में लगा है उसमें देखो। तो कैमरे ने सत्यता को प्रगट कर दिया।

तुम जगत् की ज्ञान की पर्याय में छुपा सकते हो, पर कैमरे के ज्ञान में नहीं छुपा पाये तो केवली के ज्ञान

में क्या छुपा पाओगे? उस कैमरे में दिख गये वो सज्जन, जिनसे मूर्ति खण्डित हुई थी। कितना ही पापी हो तब-तक पाप को पाप नहीं मानता जब-तक दूसरा न देख ले। दूसरा देख ले तब कहता है - हाँ, मैं पापी हूँ यानी **पाप से इतना डर नहीं तुमको, जितना पाप के प्रचार से डर है। पाप से डर होता, तो बन्द कमरे में ही पाप क्यों करता। पाप से डर नहीं है; कोई देख न ले, कोई सुन न ले इसका डर है।** कितना सावधान रहता है? पर मेरे भव का भ्रमण न बढ़ जाये इसका कोई डर नहीं है।

वो कैमरे ने बता दिया कि प्रतिमा भंग किससे हुई है, ऐसे ही कितने ही परनिमित्तों को दोष दे दो, पर प्रतिमा भंग पर से नहीं हुई है, तेरे निजध्रुव भगवानात्मा की प्रतिमा तेरे द्वारा भंग हुई है। भैया! जैसे कैमरे के सामने से एक क्षणमात्र को शास्त्री जी निकलते हैं इतनी तीव्रगति से, क्षिप्रगति से निकल जाये, शास्त्रीय भाषा में तीव्रगति से निकल जायें, द्रुतगति से निकल जायें तब भी फोटो आयेगा। ये मेरे श्रुतज्ञान की धारा मात्र ज्ञान, ज्ञान को ही जान रही है। ज्ञान ज्ञाता को ही जान रहा है। मेरे मित्र! पाँच पाप तो छोड़िए, पंचपरमेष्ठी भी आ गये हैं तो अखण्डज्ञान में खण्ड हो गया है और जिसके पाँच पाप टकरा रहे हैं वहाँ क्या होगा ? पाँच पाप टकरा रहे हैं, पंचपरमेष्ठी टकरा रहे हैं तब-तक शुद्धोपयोग नहीं बन रहा है।

पं. गोपालदास वरैया ने पंचाध्यायीकार की वस्तु को पकड़कर के अनंतानुबंधी के अभाव में जो शुद्धोपयोग लिखा है वह वास्तव में सम्यक्त्वाचरणचारित्र है, वह स्वरूपाचरणचारित्र नहीं है। अब किसी एक विद्वान् ने लिख दिया हो तो आवश्यक थोड़े है कि हम किसी एक विद्वान् को पकड़कर बैठ जायें। मूल अमृतचन्द्र की धारा में जाते हैं, सिद्धांत पर कसते हैं तो कहीं दिखाई नहीं दे रहा है कि अखण्ड श्रुत की धारा को उन्होंने शुद्धोपयोग कहा है। अब अखण्ड श्रुत की धारा में जितने क्षण अखण्ड में रहेंगे उतने ही क्षण मात्र हैं और कहीं पंचपरमेष्ठी आ गये तो शुभोपयोग में रहेंगे, शुद्धोपयोग में नहीं हैं।

अब जो खण्डित धारा है वहाँ लगाइए आप गुणस्थान क्रम से, अनुयोग द्वार से कि यहाँ पर जो श्रद्धा की अनुभूति चल रही है, ज्ञान की अनुभूति चल रही है, पंचपरमेष्ठी की अनुभूति चल रही है और आर्त-रौद्रध्यान की अनुभूति चल रही है, यहाँ तटस्थ होकरके कौन क्या बोल रहा ये छोड़िये, स्वयं में निहारिये मेरे चौबीस घंटे में धर्मध्यान भी हो रहा है कि नहीं हो रहा। ये मत मानना ये व्यवहार की बातें हैं पंडितजी! आज तो शुद्ध बातें करो। जो मंदिर में बैठा है उसे धर्मध्यानी कह दिया जाता है, पर मैं नहीं कह पाऊँगा। सुनना ध्यान से, मंदिर में बैठकर धर्मध्यानी कोई नियत नहीं है।

मंदिर में बैठकर के ये भी तो लक्ष्य है कि मैं मंदिर नहीं आऊँगा तो कोई दूसरा मंदिर हड़प लेगा; मैं नहीं आऊँगा तो मेरी पहचान समाप्त हो जायेगी, बहुत विकल्प हो सकते हैं। मंदिर में होकर जो मात्र पंचपरमेष्ठी को लक्ष्य बनाये हैं उतना शुभोपयोग है और पंचपरमेष्ठी से हट गया है,मंदिर में भी पाँच पाप का लक्ष्य रहता है। मैं इसलिए मंदिर आया हूँ, पुण्य बढ़ेगा, सम्पत्ति मिलेगी। शास्त्री जी ने बोल दिया था कलश ले लो,

कलश रख देना, कलश के सामने माला फेरते रहना तो सब दरिद्रता नष्ट हो जायेगी। तो वह कलश नहीं देखेगा, वो तो इसलिए बैठा है मिलेगा कुछ। ये सब अशुभोपयोग है।

शास्त्री जी! जब मिथ्यात्व के टुकड़े करता है जीव, तीन करण परिणाम करता है जीव, तब उसकी विशुद्धि बनती है, अपूर्व विशुद्धि बनती है। उस समय उसकी जो विशुद्धि है वही चतुर्थ गुणस्थान में प्रवेश करानेवाली है। वही आत्मा का संवेदन तद्जन्य हो रहा है लेकिन जिस संवेदन की हम व्याख्या कर रहे हैं वो संवेदन अखण्ड रत्नत्रय से मण्डित धारा है, वो वहाँ नहीं है क्योंकि एक बुद्धिपूर्वक व्यवस्था है, एक अबुद्धिपूर्वक व्यवस्था है। बुद्धि की धारा चल रही है। अपन 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' में नहीं उलझते हैं। महाराज लोग अच्छे आनंद से अपना जीवन जी रहे हैं। आपको यथार्थ बता दूँ, प्रसूति की वेदना माँ बता सकती है। सुन लो भाई! सड़क पर मिट्टी डालनेवाले का वेतन कितना होता है और इंजीनियर का वेतन कितना होता है और उसके अधिकारी का वेतन कितना होता है ? बाहरी सुविधा देखी जायें तो सड़क पर मिट्टी डालनेवाले का क्या सुख है ? सर्वाधिक मेहनत है पर वेतन किसका ज्यादा है। ज्ञानी ! जो मिट्टी खोद कर डाल रहा है उसकी शरीर की मेहनत अधिक हो रही है, मस्तिष्क का कोई पुरुषार्थ विशेष नहीं कर रहा। **ऐसे ही जिनागम में जितने बहिरंग तप से निर्जरा होती है उससे कोटी-कोटी गुना अंतरंग तप से होती है और अंतरंग तप में भी जितनी ध्यान से निर्जरा होती है उतनी किसी से नहीं होती, ये अंदर का विषय है।**

ज्ञानी ! भवन को उखाड़ करके आप दूसरे नगर में स्थापित करके आ जाओ यह सरल है पर अपनी सोच को अपने में स्थापित करके बैठो, कठिन है। जितना भोजन-पानी तुम ले रहे हो उतनी शरीर से मेहनत नहीं करोगे तो पूरा शरीर मोटा हो जायेगा। महापुरुष के आहार तो होते हैं पर निहार नहीं होता, इनकी जठराग्नि इतनी तेज हो जाती है कि सारा भोजन भस्म हो जाता है। **जितना गहरा तुम्हारा चिंतन होगा उतना गहरा तत्त्व का निर्णय होगा।** शास्त्री जी! घंटों-घंटों लगते हैं एक तत्त्व के निर्णय में अपने को स्थापित करने में। सामान्य आदमी को लगता है कि ये क्या साधु जीवन जी रहे हैं ? वास्तव में साधु जीवन जीयोगे तब तत्त्व का निर्णय करोगे। इतनी मेहनत करोगे तो प्रथम गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान में जाने में कितनी मेहनत होती है आपको पता नहीं है।

आपको क्या मालूम, आप तो खीर बनाना जानते हो, चावल से पूछो कैसे खीर बनी है ? ये सिंहासन को मत देखो, ये शिष्यों को मत देखो, कुछ मत देखो; आप तो मात्र परिणति को देखो। मेरी तो मानसिकता यह है, आपको स्पष्ट बता सकता हूँ कि जैसे क्रम-क्रम से व्याख्याता, प्रोफेसर डीन वगैरह की उपलब्धियाँ होती हैं वे सब बुद्धि की उपाधि हैं। ऐसे ही जैनशासन में जो पदों की रेवड़ी हैं वे वास्तविक नहीं हैं। ये पूरा दर्शन बुद्धि का विषय है। जैसे-जैसे तुम्हारे परिणामों की विशुद्धि और ज्ञान का क्षयोपशम और

चारित्र की वृद्धि होगी – ये उसके ही पद हैं। इस दृष्टि से हम देखते हैं। अब खोज लीजिए कि रौद्रध्यान के अंश कितने चल रहे हैं, क्योंकि किसने क्या व्याख्यान में कहा वो नहीं; सर्वज्ञ ने क्या कहा है, मूल आचार्यों ने क्या कहा है उनके अनुसार अपनी परिणति में हम झाँक रहे हैं तब देखो धर्मध्यान में कितने स्थापित हैं।

शास्त्री जी! कभी मंदिर में झाड़ू दिखती है, कभी कचरा दिखता है, कभी माली को डाँटते हो, कभी पुजारी को डाँटने लगते हो कि आज तुमने द्रव्य नहीं लगाई है। द्रव्यदृष्टि होती तो द्रव्य क्यों देखता और द्रव्य बिना द्रव्यदृष्टि बनेगी कैसे ? आत्मा का आश्रय नहीं लेगा तो मिथ्यात्व से सम्यक्त्व में आयेगा कैसे ? ये व्यवहारपक्षवालों से बोलना अपूर्व आनंद आया है, सम्यक्त्व में आया है, किसका आया है ? पराश्रित का नहीं आया है स्वाश्रित का आया है। पर चतुर्थ गुणस्थान का स्वाश्रित इतना महान् है तो अप्रमत्त आदि आगे-आगे का स्वाश्रित कितना आनंदमयी होगा ? गुणस्थान क्रम से लगा दो कोई विवाद नहीं होगा, पर संज्ञा का विकल्प है तो शुद्धोपयोगी संज्ञा सप्तम गुणस्थान से प्रारंभ है, विकल्प किसका ? संज्ञा का।

मुख्यवृत्ति, गौणवृत्ति; इस पर ध्यान दिया जाये। मुख्यवृत्ति जो है अप्रमत्त गुणस्थान से ही है पर इतना है एक सूत्रीय कार्यक्रम करोगे तो सफल हो जाओगे, अपना आस्था का विषय है। जितना साधु गमन करेगा उतना चमन रहेगा। इसलिए लम्बा रुकने का नहीं, वाचना करो, चातुर्मास करो, और चलो, नहीं तो नागपुर में एक भवन बनाना पड़ेगा। राग बढ़ जायेगा। **यदि स्वात्मा को निर्मल रखना है तो विहार करो।** विश्वास मानो विहार करना ही पड़ेगा। विहार कराने के पहले विहार हो जाये तो मुनि बनके जायेगा और विहार के पहले विहार करेगा तो मुर्दा होकर जायेगा जीव। घर से तो निकलना ही पड़ेगा, पिच्छी-कमण्डलु लेकर निकल गया तो मुनि कहलायेगा। बिना पिच्छी-कमण्डलु के हंस निकल गया तब निकाला जायेगा तो मुर्दा कहलायेगा। अब आपको जैसा अच्छा लगे वैसा करना। कह देना इस हंसात्मा से कि लोग निकालें इससे पहले निकल चलो।

द्रव्य जो है आदेश के वश से द्रव्य का व्याख्यान कर रहे हैं। अब यहाँ सप्तभंगी का अवतार होता है।

यस्माद्द्वैतमभूत् पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं,
रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः।
भुञ्जाना च यतोऽनुभूतिरखिलं खिन्ना क्रियायाः फलं,
तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुना किंचिन्न किंचित् खलु ॥277/कलश॥

अर्थ – जिससे द्रव्य द्वैतभूत है। जिस परसंयोगरूप बन्धपर्यायजनित अज्ञान से प्रथम तो अपना और पर का द्वैतरूप एक भाव हुआ। पुनः उस द्वैतपने से अपने स्वरूप में अन्तर हुआ अर्थात् बन्धपर्याय को ही आप जाना, उस अन्तर के पड़ने से राग-द्वेष का परिग्रहण हुआ, उसके होने से क्रिया और कर्त्ता, कर्म आदि कारकों से भेद पड़ा, उस क्रियाकारक के भेद से आत्मा की जो अनुभूति है वह क्रिया के सब फल को भोगती

खेदखिन्न हुई। ऐसा अज्ञान है। इसलिए जब ज्ञान हुआ तब उस विज्ञानघन के समूह में मग्न हो गया। अब इनको देखा जाए तो कुछ भी नहीं है, यह प्रकट अनुभव में आता है। **स्यात् अस्ति द्रव्य, द्रव्य स्यात् अस्ति है; प्रथम भंग।**

स्यात् नास्ति द्रव्य – स्यात् द्रव्य नहीं है; द्वितीय भंग। स्यात् अस्ति-नास्ति द्रव्य – द्रव्य है, नहीं है; तृतीय भंग। स्यात् द्रव्य अवक्तव्यम् – द्रव्य है पर अवक्तव्य, अवाच्य है – चतुर्थ भंग। स्यात् द्रव्य अस्ति अवाच्य – स्यात् द्रव्य है, अवक्तव्य है; पंचम भंग। स्यात् द्रव्य नास्ति अवक्तव्यम् – स्यात् द्रव्य नहीं है, अवक्तव्य है; षष्ठभंग। द्रव्य स्यात् अस्ति-नास्ति अवाच्य - स्यात् द्रव्य है, नहीं है, अवक्तव्य; सप्तम् भंग। ये याद करने लायक, अंतरंग में रखने लायक विषय हैं। जो यहाँ पर सर्वथापने का निषेध करनेवाला है, जो कथंचित् का अर्थ–प्रकाशक स्यात् शब्द है; वह निपात है। इसलिए जो स्यात् चिह्न से लांछित है, स्यात् शब्द है, वह निपात है। जो स्यात् चिह्न से लांछित है, स्यात् चिह्न से चिह्नित है, वह निपात अनेकान्त का प्रतीक है। उनसे स्वद्रव्य–क्षेत्र–काल भाव की दृष्टि से द्रव्य है – प्रथम भंग की व्याख्या। पर द्रव्य–क्षेत्र काल-भाव की दृष्टि से द्रव्य नास्तिरूप हैं – द्वितीय भंग की व्याख्या। स्वपर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा द्रव्य है और नहीं है – तृतीय भंग। स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा और पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से युगपत् कहे जाने की अपेक्षा द्रव्य नहीं कहा जा सकता है – अवक्तव्य है – चतुर्थ भंग की व्याख्या। स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव और युगपत् स्वपरद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा द्रव्य है और अवक्तव्य है – पंचम भंग की व्याख्या। पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव और युगपत् स्व पर द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा द्रव्य नहीं है और अवक्तव्य है – षष्ठं भंग की व्याख्या। स्व द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव और पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव तथा युगपत् स्वपर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा द्रव्य है और नहीं है तथा अवक्तव्य है – सप्तम् भंग की व्याख्या। इस प्रकार से ये सात भंग जानना चाहिए।

मुमुक्षु ! प्रत्येक द्रव्य स्वस्वभाव से अद्वैत ही है। आप द्वैतवादी हो, अद्वैतवादी हो, द्वैत-अद्वैत सुने कभी, सुने हैं। जगत् में कहीं द्वैत का विरोध मिलेगा, अद्वैत का विरोध मिलेगा, परंतु स्याद्वाद दर्शन द्वैताद्वैतवादी है और सत्यता यही है। कुछ ऐसा प्रचार करो कि प्राचीन शब्दावली का प्रयोग करो। क्या तुम नये-नये लोगों के नाम पर भवन का नाम रख रहे हो ? आप स्याद्वाद के बारे में क्या सोचते हो, आपके जिनालयों पर, भवनों पर ऐसा भी लिखा मिलना चाहिए। 'द्वैताद्वैतवादी' कभी ऐसा भी लिखा करो; 'स्याद्वाद दर्शन', श्रमणोपासक भवन, श्रमण परिषधि, वात्सल्य भवन। तुम संतभवनों के पीछे पड़े हो, तुम वर्तमान के नाम के पीछे पड़े हो; कोई की श्रद्धा होती, कोई की नहीं होती है। अरे! ऐसे नाम रखो जिसके ऊपर पूरा शासन ही टिका है। पर द्वैत-अद्वैवादी नहीं है, नहीं तो स्यात् द्वैतवादी, स्यात् अद्वैतवादी, स्यात्

द्वैत-अद्वैतवादी; ऐसा द्वैत एकान्त, अद्वैत एकान्त, उभय एकान्त, ऐसा नहीं। निश्चय एकांत, व्यवहार एकान्त, उभय एकान्त। लोगों ने पं. टोडरमल जी को पढ़-पढ़ के छोड़ दिया, परंतु सत्य को फिर भी नहीं समझा। उस जीव ने मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रंथ में निश्चय-व्यवहार एकान्तवादी को समझाया, उभय एकान्तवादी को समझाया, फिर भी समझ नहीं आया।

इसलिए ये ध्यान रखना, मिथ्यात्व में किसी के ले जाने से कोई मिथ्यात्व में नहीं जाता। किसी के सम्यक्त्व में ले जाने से सम्यक्त्व में नहीं जाता। जब तेरी नियत योग्यता ऐसी होती है तो वैसे ही चलना प्रारंभ कर देता है। ध्यान दो, मैं क्या कह रहा हूँ, द्रव्य को द्रव्यत्वदृष्टि से देखिए, मैं अद्वैत हूँ। धर्मद्रव्य में कौनसे द्रव्य का मिश्रण ? अधर्मद्रव्य में कौन से द्रव्य का मिश्रण ? आकाश में कौन से द्रव्य का मिश्रण ? काल में कौन से द्रव्य का मिश्रण ? ये दो ही द्रव्य ऐसे हैं; जीव और पुद्गल, ये मिश्र होते रहते हैं पर इनके मिश्रण को भी गौण करके देखो तो दोनों अद्वैत हैं। पुद्गल भिन्न है, जीव भिन्न है। हम अद्वैत हैं। सबके बीच में रह करके भी मैं द्वैत ही हूँ। सबके साथ रह करके भी मैं अद्वैत ही हूँ। जहाँ द्वन्द्व है वहाँ द्वन्द्व है। यमल, द्वन्द्व आदि ये सब दो के नाम हैं। बात ऐसी है, जब आचार्यश्री नाममाला पढ़ाते थे, इसमें तो नाम ही नाम है, क्या सूखापन है? अब सूखापन देखो, आचार्यश्री जल्दी-जल्दी कर दो। आज देखो, क्या मीठापन है, अब जो है, सो है। क्यों माताओ! पंजीरी जानते हो? कसार। देखो ये मत मान लेना ये लोग बड़े विचित्र जीव हैं। एक दिन मैंने गुझिया का दृष्टांत दे दिया सो दूसरे दिन चौके में गुझिया-ही-गुजिया दिखाई दी। तो इसका मतलब यह मत समझ लेना मैं बता रहा हूँ क्या बनाना चौके में। पंजीरी जानते हो? आटा, अब सीधा आटा का कौर फाँकेगा तो कण्ठ में लग जायेगा तो बैकुण्ठ चला जायेगा। उसी आटे को सेंककर बूरा डाल दिया तो कसार बन गया। जब सीधा था तो सार नहीं कहलाता था, अब कस-कस के सार आ गया, कसार हो गया। ऐसे ही द्वैत हुआ वह खाने में आ जाता है।

जहाँ कर्म और आत्मा का द्वन्द्व होता है वहीं झगड़ा प्रारंभ हुआ और यमराज के कण्ठ में गया। जन्म-मरण क्यों हो रहा है ? द्वैत के कारण हो रहा है; अद्वैत में जन्म ही नहीं होता है, अद्वैत में मरण ही नहीं होता है, वो तो होता है, फिर भी होता है। विसंवाद कहाँ होता है ? जहाँ द्वैत है वहाँ विसंवाद है, जहाँ अद्वैत है वहाँ संवाद है। पूर्व में पर संयोग से आत्मा द्वैत में होता है उसके बाद जब वही आत्मा द्वैतपने से अपने स्वरूप को अन्तरित कर लेता है तो बन्धपर्यायों को आप जानकर के, वही राग-द्वेष से भिन्न होकर के अद्वैत को प्राप्त कर रहा है। अज्ञानी जीव द्वैत को प्राप्त करके, राग-द्वेष परिग्रह को ग्रहण करके तब क्रियाकारक को प्राप्त होता है फिर भोगता है कर्मों के फल को। बिल्कुल ठीक-ठीक लिख रहे हैं।

जब-तक चोट न पड़े तब-तक खोट कहाँ निकलती है। घर में घड़ा पिचक जाता है तो बाजार में सही कराने के लिए पैसे देकर आता है। शिल्पकार ने क्या किया, इन्होंने घर में ठोका था, शिल्पकार ने दुकान पर ठोक दिया; पिचका तो ठोक से, पिचक मिटी तो ठोक से। क्या गजब है ? पर अंतर महान् है। एक

पिचक बिना किसी के पड़ी थी, जब पिचक मिटाने गया तो भीतर हाथ लगाकर ठोका तो पिचक मिट गई। ऐसे ही पिचक मिटाना है तो चारित्र का आलम्बन लेकरके ठोकोगे तो पिचक मिट जायेगी। बिना चारित्र के आलम्बन के ठोकोगे तो फूट ही जाओगे, पिचकोगे क्या। पर जब भोग लेता है तब जीव को लगता है क्या है, तब क्रिया के कर्म के फल को भोगकर खिन्न होता है। सत्यता है, जब-तक खिन्नता नहीं आयेगी तब-तक पिच्छी-कमण्डलु नहीं लेना।

पंडितजी! एक बार अच्छे से खिन्नता छा जाये तो फिर घर का नाम नहीं लेना, लड़ाई भी हो तो भरत-बाहुबली जैसी। सो मुनि महाराज बनजाना। तुम लोग लड़ते तो हो, शाम को फिर पाँव पड़ लेते हो एक-दूसरे के। जब क्रिया के फल को देखकर खिन्न होता है तब ये जीव जो पहले पाप में निमग्न था, वही जीव वर्तमान में निज ही ज्ञान में अवगाहन करके किंचित् भी पर में प्रवेश नहीं करता है फिर कुछ भी प्रगट अनुभव में नहीं आता। जब ज्ञान-विज्ञान में लीन होता है तो स्वरस-स्वरस का पान करता है फिर भी जगत् का किंचित् भी वेदन नहीं होता। जाओ खिन्न मत होना, नहीं तो संक्लेशता बढ़ जायेगी।

आत्मस्वभावं परभावभिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

शब्दों से शास्त्र-सृजन

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैः व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः।
स्वरूपगुप्तस्य न किञ्चिदस्ति कर्तव्यमेवामृतचन्द्र सूरेः ॥278॥

शब्दार्थः- (स्व-शक्ति-संसूचित-वस्तुतत्त्वैः शब्दैः) जिनने अपनी शक्ति से वस्तुतत्त्व को भली-भाँति कहा है ऐसे शब्दों ने **(समयस्य इयं व्याख्या)** समय की यह व्याख्या **(कृता)** की है। **(स्वरूपइयंगुप्तस्य अमृतचन्द्रसूरेः)** स्वरूपगुप्त अमृतचन्द्रसूरि का इसमें **(किंचित् एव कर्तव्यम् न अस्ति)** कुछ भी कर्तव्य कार्य नहीं है।

भावार्थः- शब्द है वह तो पुद्गल है, सो पुरुष के निमित्त से वर्ण-पद-वाक्यरूप परिणमन करता है। सो इनमें वस्तु के स्वरूप के कहने को शक्ति स्वयमेव है, क्योंकि शब्द और अर्थ का वाच्य-वाचक सम्बन्ध है, सो द्रव्यश्रुत की रचना शब्द को ही करना सम्भवती है। आत्मा अमूर्तिक और ज्ञानस्वरूप है, इसलिए मूर्तिक पुद्गल की रचना कैसे करे ? इसलिए आचार्य ने ऐसा कहा है कि - यह समय प्राभृत की टीका की गई है, मैं तो अपने स्वरूप में लीन हूँ, मेरा कर्तव्य इसमें नहीं है। ऐसा कहने से उद्धतपने का त्याग भी आता है तथा निमित्त-नैमित्तिक व्यवहार से ऐसा ही कहते हैं कि विवक्षित कार्य उस पुरुष ने किया, इस न्याय से यह टीका अमृतचन्द्र आचार्यकृत ही है। इसी न्याय से पढ़ने-सुनने वालों को उनका उपकार भी मानने योग्य है, क्योंकि इसके पढ़ने-सुनने से परमार्थ आत्मा का स्वरूप जाना जाता है, उसका श्रद्धान-आचरण होने पर मिथ्याज्ञान-श्रद्धान-आचरण दूर हो जाते हैं और परम्परा मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसलिए इसका निरन्तर अभ्यास करना योग्य है।

।। समय-देशना ।।

भव्य बन्धुओ! आचार्यप्रवर भगवत् कुन्दकुन्दस्वामी ग्रन्थराज समयसारजी में ध्रुवज्ञायकस्वभावी भगवानात्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। आत्मद्रव्य परभावों से भिन्न, स्वभाव से अभिन्न; द्वैत पर सम्बन्ध से, निज सम्बन्ध से अद्वैतभूत है। ये जीव द्वैत में ही आत्मदृष्टि मान बैठता है जब विवेकदृष्टि जाग्रत होती है जब द्वैत से अद्वैत में जाता है। द्वैत में राग-द्वेष है, राग-द्वेष में बहिर् क्रियाकारकभाव है, बहिर् क्रिया-कारकभाव में आस्रव-बंध भाव भी है। ऐसे आस्रव-बंध के भाव को भाता हुआ जीव जब खिन्न हो जाता है, थक जाता है तब जीव विज्ञानघन आत्मतत्त्व में निमग्न होता है फिर निजस्वभाव में निमग्न हुआ आत्मतत्त्व में पहुँचता है। इस प्रकार से कलश में व्याख्यान किया। आज यह अभूतपूर्व ग्रन्थ का अन्तिम कलश है।

इस समयप्राभृत ग्रन्थ में भगवान् कुन्दकुन्दस्वामी ने नौ पदार्थों की व्याख्या की और नौ पदार्थों की व्याख्या में सम्पूर्ण आत्मप्रवाद पूर्व के अंश का पूर्व व्याख्यान किया है। द्वितीय श्रुतस्कन्ध पर आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी की लेखनी चली, जिसने कि सम्पूर्ण विश्व को शुद्ध तत्त्व की प्ररूपणा करके तीर्थंकर भगवन्तों के रहस्य का सारे विश्व को बोध दिया है। सिद्धान्त की व्याख्या करनेवाले आचार्यों की ये परम्परा है। अध्यात्म की परम्परा का प्रारंभ करने वाले इन आचार्य भगवन्त की परम्परा में कुन्दकुन्दस्वामी का आद्यभूमिका में नाम आता है। आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी के उपरान्त अनेक-अनेक आचार्यों ने संस्कृत प्राकृत भाषा में आध्यात्मिक ग्रन्थों का सृजन किया, परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थों में आचार्य कुन्दकुन्दजी की छवि दृष्टिगोचर होती है।

आचार्य देवसेन स्वामी ने 'तत्त्वसार' ग्रन्थ अध्यात्म पर लिखा, यह बड़ा अनूठा ग्रन्थ है। भगवान् पूज्यपाद स्वामी ने 'समाधिशतक', 'इष्टोपदेश' ग्रन्थ लिखे अध्यात्म पर, आचार्य योगीन्द्रदेव स्वामी ने योगसार, आचार्य अमितगतिस्वामी ने योगसारप्राभृत, आचार्य योगीन्द्रदेव स्वामी ने 'ज्ञानांकुश' जैसे ग्रन्थ का सृजन किया। आचार्य कार्तिकेयस्वामी ने 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' ग्रन्थ में बारहभावना की व्याख्या करके अध्यात्म के विषय का विवेचन किया। सामान्यतः अनेक आचार्यों ने आध्यात्मिक ग्रन्थ लिखे, परन्तु उन सम्पूर्ण ग्रन्थों में; दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानक – इन तीनों परम्पराओं में जब भी अध्यात्म के नाम पर कोई चर्चा होती है, तो आचार्य कुन्दकुन्ददेव का नाम सामने खड़ा हो जाता है। पंचपरमागम में समयप्राभृत एक अनूठा ग्रन्थ है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रन्थों का अध्ययन भी करना है तो क्रम से ही करने की आवश्यकता है। उनके ग्रन्थों को समझने के लिए नयचक्र का बोध हो, आलापपद्धति का बोध हो, न्यायदीपिका का बोध हो, कम-से-कम न्याय का इतना ज्ञान तो आवश्यक है। इसके उपरान्त भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी का पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, बारसाणुपेक्खा, अष्टपाहुड समयसार – ये अनुपम ग्रन्थ हैं। समयप्राभृत में जो व्याख्यान है वह व्याख्यान न किसी उपनिषद् में मिलता है, न किन्हीं अन्य ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होता है, **क्योंकि जगत् में अद्वैत की व्याख्या तो हुई, पर अद्वैत को समझ के व्याख्यान नहीं हुआ।**

लोक का अद्वैत और जैनदर्शन का अद्वैत; शब्द में समानता तो दृष्टिगोचर होती है, पर अर्थ में कोई समानता नहीं है। ब्रह्म अद्वैत में, परमात्म ब्रह्म जब सारा विश्व परमात्मा ही है, इस ब्रह्म अद्वैत में तो मात्र सारे विश्व के द्रव्यों की सत्ता संक्रमण को प्राप्त हो रही है, संकरदोष को प्राप्त हो रही है। पर जैनदर्शन का अद्वैत कह रहा है कि प्रत्येक द्रव्य में पृथक्त्वभाव, प्रत्येक द्रव्य में भिन्नत्वभाव है। धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव, पुद्गल – ये छः द्रव्य अद्वैतभूत हैं स्व-स्वभाव में। भिन्नत्व, पृथक्त्व जो विवेकभूत अद्वैतभूत है वो विवेक कैसा ?

जैसे माँ धान्य से कंकड़ को अलग कर लेती है, ऐसे ही तत्त्वज्ञानीजीव एक सौ अड़तालीस कर्मप्रकृतियों को आत्मा से भिन्न करके देखता है। उस भिन्नत्व की व्याख्या करते हुए आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी, कर्त्ताकर्म अधिकार को लिखनेवाला योगी, निर्जरा अधिकार को लिखनेवाला योगी विशुद्धअधिकार को लिखने वाला योगी, इस बात के दम्भ को भी स्थान नहीं दे रहा है कि मैंने समयसार की आत्मख्याति टीका की है। **लघुत्व देखना है, अकृर्तत्वदृष्टि देखना है तो वो आचार्य अमृतस्वामी के पास है। वर्णों से वाक्य बने हैं, वर्ण पौद्गलिक हैं, वाक्य पौद्गलिक हैं। छन्द आदि पौद्गलिक हैं। शब्द पुद्गल की पर्याय है। मैं चैतन्य द्रव्य हूँ तो मैंने द्रव्यश्रुत को कैसे बनाया? भावश्रुत मेरे में है। द्रव्यश्रुत मेरे में कहाँ है ? द्रव्यश्रुत में मैं कहाँ हूँ ?**

शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम्॥ 5/19 त.सू.॥

शरीर, वचन, मन, श्वाच्छोश्वास; ये सब पुद्गल हैं। धन्य हो ऐसे श्रमण को व्यवहारदृष्टि से कर्तृत्वभाव है, संयोजन अमृचन्द्रस्वामी ने ही किया है, लेकिन तब भी परमार्थदृष्टि से देख रहे हैं।

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैः व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः।
स्वरूप गुप्तस्य न किञ्चिदस्ति कर्तव्यमेवामृतचन्द्र सूरेः॥

जो वस्तु तत्त्व है अपनी शक्ति से संचित है, इस समय की जो व्याख्या है जो शब्दों ने की है। पर दृष्टि तो देखो, इतनी विशाल आत्मख्याति टीका लिखने के बाद भी आचार्य अमृत चन्द्रस्वामी लिख रहे हैं कि यह व्याख्या जो की गई है वह शब्दों के द्वारा की गई है और मैं शब्द नहीं हूँ, मैं तो चैतन्य हूँ। पुद्गल की उत्पत्ति चैतन्य से कैसे ? इसलिए मैं शब्दों का कर्त्ता नहीं हूँ। निहारना चाहिए आज के जीवों को, दो-चार पक्तियाँ यहाँ-वहाँ की लिखने पर, छुपा करके, चुराकर के अपने को ग्रन्थकर्त्ता मान लेते हैं। पर जो योगी इतना महान् ग्रन्थ लिख रहा हो, तब भी कह रहा है – शब्दों ने किया है; **जहाँ कर्तृत्वदृष्टि है वहाँ नियत दम्भदृष्टि है। जहाँ कर्तृत्वदृष्टि है वहाँ अहंकारदृष्टि है। अहंकारदृष्टि जहाँ है, वहाँ बन्धदृष्टि है। बन्धदृष्टि जहाँ है, संसारभ्रमणदृष्टि है।** नहीं भटकना चाहता योगी। मैं पहचान नहीं बनाना चाहता हूँ। मैं पहचान बनाऊँगा भी तो किसकी? ये कर्म-नोकर्म का पिण्ड है, ये तो विलीन हो ही जायेगा। वे परमाणु दूसरे के भोगने आयेंगे। मैंने पहचान भी बनाई तो किसकी बनाके गया। पुद्गल से पुद्गल की। समझो, शास्त्री जी! पुद्गल से पुद्गल की जो पहचान बनाने की मानसिकता चल रही है, क्या है? कहाँ पहचान बनाओगे ? अच्छा बताओ जरा, लोक में जो भी पहचान होगी या तो भवनों से कराओगे या कागजों पर कराओगे, पाषाण पर कराओगे। आपकी वर्तमान पर्याय तो बचेगी नहीं और किसकी कराओगे ? वर्तमान पर्याय की कराओगे। जबकि आपको बोध है कि मेरी पर्याय पौद्गलिक है। पौद्गलिक पर्याय की पहचान के लिए हम पुद्गल का ही पुरुषार्थ पुद्गल पर ही कर रहे हैं। जिसकी पहचान बनाना चाहिए थी, उसको पहचान ही नहीं पा रहे हैं। जिसकी पहचान होना चाहिए थी उसको पहचान लिया

जाये, तो असमानजाति की पहचान की आकांक्षा ही समाप्त हो जायेगी। न फिर अभिनन्दन ग्रन्थ छपेंगे, न फिर प्रशस्ति पत्र मिलेंगे, क्योंकि मैंने जो मेरी पहचान थी उसे पहचान ली है। अब वो मेरी पहचान मिटनेवाली नहीं है, उस पहचान के लिए मैं दिगम्बर अवस्था को प्राप्त हुआ हूँ। लिखनेवाला जीव इतना गहरा नहीं लिख सकता, लखनेवाला जीव ही इतना गहरा लिख सकता है।

आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी के महान् ग्रन्थ को लखने वाले दो योगी हुए हैं । अमृतचन्द्र और जयसेन स्वामी। इन्होंने जो भी लिखा है लख-लख के लिखा है, इसलिए इतना गहरा लिख गये और लिख-लिख के लिखते तो इतना गहरा नहीं लिख सकते थे। मैंने क्या किया है? अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं— जो स्वरूप में गुप्त है निजस्वरूप हैं वहाँ तो कुछ भी नहीं है। भावश्रुत में कोई लेखन नहीं है। भावश्रुत में कोई व्याख्यान नहीं है। भावश्रुत में कोई रचना नहीं है। भावश्रुत तो शुद्धात्मानुभूति है। अखण्डश्रुत की धारा उसका नाम भावश्रुत है।

जो भी व्याख्यान-व्याख्येयभाव हैं वो सब द्रव्यश्रुत हैं, शब्दब्रह्म हैं; आत्मब्रह्म में कोई शब्द नहीं है। शब्दब्रह्म के लिए शब्दों की रचना है। शब्दब्रह्म के लिए वाक्यों की रचना है। शब्दब्रह्म के लिए अध्यायों की रचना है। भावब्रह्म में कोई शब्द नहीं है वह तो शब्दातीत है, अवाच्य है, अशब्द है । अशब्द को शब्दों में मत खोजो। जो ग्रन्थों का वाचन है वह बाह्य प्रमेय को जानने के लिए है। भावप्रमेय के लिए कोई ग्रन्थों के वाचन की आवश्यकता नहीं है, बहिर् प्रमेय है सब; भावप्रमेय अवाच्य है, निज में वाच्य है पर के लिए अवाच्य है।

मुझ अमृतचन्द्र सूरि ने क्या कर्तृत्व किया? मैं तो कुछ भी नहीं कर रहा हूँ। दृष्टि को देखो, पर के उपादान में हम अपना उपादान लगा रहे हैं। यही तत्त्व की भूल है। **पर के उपादान में अपना उपादान बिठा रहे हो, यही घोर मिथ्यात्व है।** ये भवन मिट्टी से बना है, मिट्टी को तपना पड़ा तब ईंट का आकार बना; पाषाण का शिल्पकार का योग परिणमन है। मुमुक्षु ! इसमें आपका क्या लगा है, भवन में आपका क्या लगा है? फिर भी ये जीव मिट्टी के उपादान में मिट्टी को नहीं देख रहा है, मिट्टी के उपादान में अपने कर्तृत्व को देख रहा है। लोग विसंवाद करते हैं कि मैंने बनाया है, इसका मुझे हिस्सा दो ये मेरा अधिकार है। मेरे मित्र! भवन निमित्तमात्र है मेरे अधिकार का। वह अधिकार मांग रहा है एक सौ अड़तालीस कर्म के बद्ध का। नहीं, ये तो आज जानना ही पड़ेगा। मैं तो एक-एक क्षण की मुनिदशा का वेदन कर रहा हूँ। **मैं मरते-मरते नहीं जी रहा हूँ , मैं जीते-जीते मर रहा हूँ।** अन्तर समझना, जीते-जीते मर रहा हूँ, मरते-मरते नहीं जी रहा हूँ। **तत्त्वज्ञानी जीव जीते-जीते मर जाता है और अज्ञानी मरते-मरते जीता रहता है।** तात्पर्य समझ में आया क्या ? जीते-जीते जियें वे महान् हैं और जीते-जीते मरें वे भी महान् हैं ।

सत्रह प्रकार का मरण होता है। सत्रह प्रकार के मरणों में आवीचि नाम का मरण है। जो आयुकर्म के निषेक प्रतिक्षण झड़ रहे हैं वो आवीचिमरण है। एक निषेक भी हमारा मरकर न नष्ट हो, हम अनुभव करके

जियें। ध्वनित हो गया, मुमुक्षु! मुनि बनने का लक्ष्य था वो यही है क्या ? जब शास्त्री अपने भाई से हिस्सा माँग रहे होंगे उस समय पूछना, मेरे मित्र! परिणामों की कलुषता की क्या दशा चल रही होगी ? उस समय नहीं दिखता भाईपना। महाभारत जैसे युद्ध हो गये हिस्से के राग में। तब श्रुत में निहारना कि हमको साधु क्यों बनना पड़ा है ? तब क्या आत्मा की विडम्बना हिस्से के राग में नहीं करना चाह रहे हो? क्योंकि **कलुषता की तीव्रता का स्थान हिंसा है।**

शास्त्री जी! जीते जी सुनना और बड़े गहरे में सुनना। भेषधारियों की विडम्बना देखकर तुम बात मत करना। निर्ग्रन्थ मुनि की बात करना, आपको लगता है कि साधु बनना है वो साधु बनना, पर सत्य है शांति के समरस का आनंद लेते हुए जीना ही साधु बनना है। **जहाँ करने के विकल्प का अभाव है, रखने के विकल्प का अभाव है, जहाँ संग्रह के विकल्प का अभाव है, जहाँ माँगने के विकल्प का अभाव है, जहाँ देने के विकल्प का अभाव है, वह साधु स्वभाव है।** कितने संकटों से मुक्त हो गये, कितनी विपत्तियों से मुक्त हो गये। जिसका वर्तमान का जीवन ऐसा है उसका भविष्य तो निर्मल अवश्य होगा। सिद्धों के अनंतवें भाग, अभव्यों के अनंतगुणे एकसमयप्रबद्ध कर्म का आस्रवबन्ध एक समय में होता है, समझो।

जब झगड़ा चल रहा था हिस्से पर, क्योंकि पंडितजी! मैंने एक झगड़ा देखा है हिस्से का, वो भी बिल्कुल छोटीसी वस्तु पर। सास और बहू में चकिया पर झगड़ा हो गया, एक चकिया थी उसके पाट बाँट लिए, दोनों के काम का नहीं बचा, हाथ से पीसने की चक्की। एक झगड़ा देखा, जो भाई-भाई को तलवार ले मारने दौड़ रहा है जिसे हम लोगों ने सुरक्षित किया, कि भाई क्या है ये? पंडितजी ! सँभलकर सुनें, मुनि भी सुनें, ब्रह्मचारी भी सुनो, सभी लोग सुनें कि कहीं तुम्हारे मन में प्रभावना-क्षेत्र न बँट जाये, कि नागपुर मेरा है जबलपुर मेरा है। ज्ञानी! कोटी-कोटी जीव आकर चले गये, तीर्थंकरों जैसी अनंतानंत चौबीसियाँ इस तीर्थ को छोड़कर चली गईं और कोटि-कोटि चक्रवर्ती होकर चले गये, पर भूमि तो भूमि रही है। तुम मात्र राग के कर्ता हो, भूमि के कर्ता नहीं हो। तुम मात्र द्वेष के कर्ता हो, भूमि के कर्ता नहीं हो।

मुमुक्षु भाई! मत कहना, महाराज! ये मेरा भवन है। मेरे मित्र! पुण्य से बना है, मैं तेरे पुण्य को ही तेरी वस्तु नहीं मानता हूँ तो तेरे भवन को कहाँ मैं माननेवाला हूँ। मुझे तो आश्चर्य होता है जब जिनदीक्षा प्राप्त करके भी योगी के मन में भाव आ जायें कि ये मेरी आम्नाय के लोग हैं, ये दूसरी आम्नाय के लोग हैं। तब लगता है कर्मों की परम्परा, आम्नाय को नष्ट करने के लिए तुम साधु बने थे पर अभी आम्नाय नष्ट नहीं हुई तो कर्मों की आम्नाय कब नष्ट करोगे ? श्रावकों के घर की खीर खाओ, पर आम्नाय में डूबा योगी, व्यक्ति कभी मोक्ष नहीं जाता।

जाति लिंग विकल्पेन येषां च समयाग्रहः।
तेऽपि न प्राप्नुवन्त्येव परमं पदमात्मनः ॥89/स.तं.॥

जिस जीव के अन्तस् में जाति का, लिंग का विकल्प बैठा हुआ है वो परमपद 'परमात्म'पद को प्राप्त नहीं कर सकता। हम सारी परम्पराओं से भिन्न होने के लिए आये हैं, कर्मातीत होने के लिए आये हैं और आप तो विकल्पों में जा रहे हो; **आत्मजनों को छोड़कर आये और अनात्मजनों में आत्मीयता बिठाये बैठे हो।** निज को पहचान नहीं रहे हो। पूछो अमृतचन्द्र स्वामी से, वो तो इतना महान् ग्रन्थ लिखने पर भी कह रहे हैं, मेरा कोई कर्तृत्व नहीं है। ऐसी अकर्तृत्वदृष्टि से भरा ये ग्रन्थ है। आज सहजनियोगसे भगवान् सीमन्धर के कैवल्य में भी झलक रहा होगा कि जबलपुर में प्रारंभ हुई वाचना अब नागपुर में पूरी हो रही है। पर ज्ञानियो! जो कुछ है द्रव्यश्रुत की दृष्टि से है। इस ग्रन्थ के टीकाकर्ता अमृतचन्द्र स्वामी हैं और मूल ग्रन्थकर्ता कुन्दकुन्द स्वामी हैं और श्रुत की अखण्ड धारा की दृष्टि से देखेंगे तो श्रुत हमारा सनातन है। तीर्थंकर भी कर्ता नहीं हैं तो आचार्य कहाँ से कर्ता होंगे? इस दृष्टि से श्रुत सनातन है, पर वर्तमान तीर्थ की दृष्टि से ग्रन्थ के मूलकर्ता भगवान् महावीर स्वामी हैं। उत्तर ग्रन्थकर्ता भगवान् गौतम गणधर स्वामी हैं और प्रतिउत्तर ग्रन्थकर्ता आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी हैं। इस ग्रन्थ के ऊपर दोनों ही आचार्यों ने अलौकिक चिन्तन करके ये सम्पूर्ण जैनसमाज के लिए ही नहीं अपितु विश्व समाज के लिए वैभव दिया, निधि दी। अनेक विद्वानों ने इस पर अपने प्रवचन किये हैं, लेखन किये हैं। ज्ञानी! बड़े-बड़े धुरंधर जीव इस ग्रन्थ को निहार चुके हैं। ये भूल जाओ विशुद्धसागर ने वाचना कर कुछ किया है। ये मैंने कुछ नहीं किया। जो आचार्य भगवन्त से मिला, गुरु-परम्परा से प्राप्त हुआ, अपने उपयोग की विशुद्धि के लिये ये ग्रन्थ का वाचन हुआ है। ज्ञानी! ग्रन्थ बन गये हैं, ग्रन्थ बनाये नहीं हैं। जिन सरस्वती अर्हंत वाणी हमेशा-हमेशा जयवंत रहे।

अक्खर-पयत्थ-हीणं, मत्ता हीणं च जं मए भणियं।
तं खमउ णाणदेव! य मज्झ वि दुक्खक्खयं कुणउ॥

हे श्रुत देवता! ब्रह्माण्ड में परमात्मा से भी श्रेष्ठ स्थान किसी का है, निवास स्थान किसी का है तो वह वाग्वादिनी सरस्वती का है। परमात्मा तो देवों के द्वारा रचित समवशरण में विराजते हैं। परम दिव्यवाणी उस समवशरण में नहीं विराजती 'अर्हन् मुखकमलनिवासिनी'।

ये अर्हंतदेव के मुखकमल में विराजमान है, अर्हंत का निवास तो समवशरण है, परन्तु अर्हंत की देशना का निवासस्थान अर्हंत का श्रीमुखकमल है। वो मुझ जैसे तुच्छ प्राणी के मुख में कहाँ विराजमान होगी - ये दम्भ न हो; ये मैंने कहा है। ये आनंद हो कि अर्हंत के मुख से निकली है। ये अहोभाग्य अपना है कि दुनियाँ के लोग मोड़ी-मोड़ा के लत्ता-तत्ता धो रहे हैं, मल उठाये हैं इन हाथों में। पंडितजी! धन्य है, अपने हाथों में जिनवाणी है। कभी मत रखना इनको पैरों पर, कभी मत मानना इनका वजन, **जिन जीवों ने पूर्व में घोर तपस्या की होगी उन्हीं के हाथों में यह जिनवाणी शोभायमान होती है।**

जलाद्रक्षेत् तैलाद्रक्षेत रक्षेत शिथिलबन्धनात्।
मूर्ख हस्ते न दातव्या पवित्रा जिनभारती।।

मेरी जल से रक्षा करना, तेल से रक्षा करना, मुझे मूर्ख के हाथ में नहीं दे देना, शिथिल बन्धन से मेरी रक्षा करना - यह माँ भारती जिनवाणी अपने भक्तों से कह रही है। मेरा सभी समाज से कहना है कि विवाह हो रहा है तो जिनवाणी बाँट रहे हो, मर गया तो बाँट रहे हो, इतना तो विवेक रखो किसके हाथ में दे रहे हो? क्या तुम किसी के भी हाथ में अपनी माँ को दे दोगे ? पंडित जी! इस परम्परा पर थोड़ा नियंत्रण करो। जो विनयपूर्वक रखता है उसे ही जिनवाणी दो।

''वीर हिमाचल तैं निकसी, गुरु गौतम के मुख कुण्ड झरी है।''

हम सिर पर विराजमान कर रहे हैं, किसी को भी पकड़ा दोगे तो वह वहीं जंघा पर रखकर बैठ जाता है। विनय करने की सामर्थ्य न हो तो मेरी जिनवाणी वापस कर देना। जन्म देनेवाली माँ को भी तुम पाटा डालते हो। आगम कह रहा है कि - नाभि के नीचे हाथ चला जाये तो शुद्धि करिए हाथों की। ये लोग जंघा पर रख लेते हैं। तुम इतने अहंकारी मत बनो जिस पाटे पर बैठे हो, उसी पर जिनवाणी मत रखो। ये कोई तोता-मैना की कथा नहीं है, ये मेरा धर्म ग्रन्थ है, मेरा संविधान है, यह हमारा सिद्धांत है। पंडित जी! उनसे विनयपूर्वक वापस ले लेना पर ऐसा नहीं करना। मैं ग्रन्थ को बाँटने का निषेध नहीं कर रहा हूँ पर आप उसको रेवड़ी मत बनाओ। कोई प्लेट-तस्तरी नहीं है जो घर में आये उसको पकड़ा दिया। मित्र ! पैसों की कीमत से जिनवाणी को मत मापना। ये तो कागज की कीमत है जिसे तुम देकर आते हो। ये जिनवाणी की कीमत नहीं है। जो ग्रन्थ आप खरीदकर ला रहे हो उसे जिनवाणी की कीमत मत मान लेना। इतने तुम धनपति कब से हो गये हो जो तुम आगम की कीमत दे रहे हो। ये आगम की कीमत नहीं है, कागजों की कीमत है। **जिनवाणी तो अनर्घवान है। उसकी कोई कीमत नहीं।**

मत कहना मैंने शास्त्र खरीदा है, आगम खरीदा है; आगम नहीं खरीदा तूने कागज खरीदा है। आज उपकार का दिन है। करो उनको याद, आचार्य धरसेन स्वामी, पुष्पदंत-भूतबली स्वामी को; उन्होंने कैसे रक्षा की आगम की। जितने यतिसंघों में शिष्यमंडली बन रही है उनके भीतर एक ही विद्या जाये कि बेटे ! भवनों की रक्षा तो समाज कर लेगी, पर जिनश्रुत की रक्षा तो तुम्हारी प्रज्ञा का भवन ही कर पायेगा। अपनी प्रज्ञा को इसमें लगाओ जिससे आगम की रक्षा हो। सुनो भाई! ये समाज तुम्हें इसलिए आहार-भोजन नहीं दे रही है कि तुम आराम से जीयो। ये तुम्हें इसलिए भोजन देती है कि आप हमारे धर्म की रक्षा करो। तुम जिनवाणी का उपकार करो।

वह त्यागी इस पृथ्वी पर भारभूत हैं जो जिनशासन की प्रभावना से शून्य हैं ऐसा आचार्य वीरनन्दी स्वामी ने आचारसार में लिखा है। इसलिए आप ये मत मानना मैंने कुछ किया है। सत्यता ये है कि इतनी बड़ी टीका करनेवाला कह रहा है – मैंने क्या किया। मैंने भी क्या किया है ? मैंने भी कुछ नहीं किया है,

कुछ नहीं है। नागपुरवासियो! अधिकतर तुम बारे-बारे हो। शास्त्री जी! सब आकर रहने लगे हो। बारे-बारे, फटी चड्डी फटी बनियान मत भूल जाना, जिसके साथ आये थे। ऐसे ही हे शिष्य! तुम मत भूल जाना गुरु के उपकार को, तुम क्या थे ? एक श्लोक भी याद नहीं होता था। तब गुरु ने आपको कैसे तैयार किया है। ये सब आचार्य विरागसागर का है, जो कुछ है भगवान् महावीर की वाणी है, आचार्य अमृतचन्द्र कुन्दकुन्द का कथन है। अपन तो मात्र योग के बहिरंगकर्ता हैं । मैं तो उपयोग का अन्तरंग कर्ता हूँ। योग-उपयोग का कर्त्ता हूँ और योग-उपयोग से ही शब्दों का समन्वय हुआ है। मेरी बुद्धि में कुछ नहीं है, इसलिए हे सरस्वती! अक्षर पद मात्रा की किंचित् भी भूल हुई हो तो क्षमा करें।

अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः।
अनेकान्तमयीमूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम्।।2/स.सा.।।

हे अनेकान्तमयीमूर्ति ! आप नित्य मेरी अविद्या को विनाश करके मेरे भीतर वो विद्या भर दो, अब जब भी बोलूँ सर्वांग से बोलूँ और कुछ नहीं चाहिए। ज्ञान की सरिता में जो आनंद है, जगत् की किसी भी नदी में डूबने से कुछ नहीं मिलता है, मृत्यु ही मिलेगी, कीचड़ ही होगी पर ज्ञानगंगा ऐसी है जिसमें कोई जलकीट नहीं है। इसमें कोई कीचड़ नहीं है। ये तो अमल-विमल-निर्मल ज्ञान-वाक्-गंगा का सलिल है । ऐसी सरस्वती की वंदना करते हुए, आज कुन्दकुन्द स्वामी को नमोऽस्तु, पुष्पदन्त-भूतबली स्वामी की वंदना करूँ, जयवंत हों परम्परागत सम्पूर्ण आचार्य भगवंत जिन्होंने हमारे ऐसे श्रुत को सुरक्षित रखा है। उन श्रावकों को भी धन्यवाद दो कि जिन्होंने अपनी श्री का निर्मल उपयोग करके ग्रन्थों का संरक्षण किया। उन भट्टारकों को भी आशीर्वाद दो पंडित जी! इस बात के लिए कि हमारे पूर्व आचार्य के श्रुत को दक्षिणभारत में सुरक्षित रखा गया। ये उत्तर और दक्षिण की व्यवस्था को ऐसे मानकर चलना जैसे देवकी के कृष्ण, यशोदा के बेटा। मैं तो ऐसे ही मानता हूँ। श्रावको ! देवकी के कृष्ण की रक्षा किसने की ? यशोदा ने। ऐसे ही ये उत्तरभारत जो है वह देवकी है, क्योंकि तीर्थंकरों का यहाँ जन्म हुआ है, देशना हुई, खिरी है । वो उत्तरभारत में हुआ है और श्रुत की रक्षा हुई है वो दक्षिण भारत में, तो ये यशोदा है।

आपका दक्षिण भारत नागपुर से लग जाता है। जितने हमारे महान् आचार्य कुन्दकुन्द से लेकर के शांतिसागर, देशभूषण, विद्यासागर जितने भी आचार्य हैं, दक्षिण के हैं। उत्तरभारत के लिए ऐसा मत सोच बैठना कि आचार्यों से शून्य रहा हो। भारत की भूमि भगवान् शान्तिनाथ से लेकर आजतक दिगम्बरत्व से शून्य नहीं रही है, ये भूल मत कर लेना। आचार्य शांतिसागर जी ने श्रमण परम्परा का विस्तार किया है लेकिन ये मत कहना कोई मुनि नहीं थे उनके पहले। उनके सामने भी चार मुनिराज थे, आचार्य भगवन्त भी थे। वे विहार कम करते थे, अपनी सीमा में रहे हैं इसलिए शांतिसागर ने विहार करके दक्षिण से उत्तर में जिनशासन की महती प्रभावना की है। **तीर्थंकर शांतिनाथ से लेकर आज की तारीख तक भारत भूमि दिगम्बरत्व से शून्य नहीं हुई** पर मृदुलचर्या बढ़ गई थी, शब्दों का अच्छा चुनाव करो, कटु शब्द

मत बोलो। कठोरचर्या का ह्रास हुआ था। मृदुलचर्या वृद्धिमान हो गई थी। सम्प्रतिकाल वर्तमान जिनशासन का स्वर्णमयी समय चल रहा है। संस्कृति की रक्षा श्रावकों ने, श्रमणों ने की है। आज त्यागियों को मुस्कराना चाहिए, हम तो बने मैदान में खेल खेल रहे हैं।

उन आचार्यों से मिलो, कितना घोर उपसर्ग सहन किया। पंडितजी! गंभीरता का विषय यह है कि सम्पत्ति की रक्षा के लिए तुम कितना सोचते हो ? पर जिनवाणी रक्षा के लिए तुम कितना सोचते हो ? माँ! आज आपका भी विषय छोड़ा नहीं जा सकता। कर्नाटक में एक अतिमम्बे करके एक माँ हुई है जिन्होंने ग्रन्थ को लिखवाकर के पूरे कर्नाटक प्रान्त में स्थापित किये हैं। जब हम मूलाचार की प्रशस्ति पढ़ते हैं, अन्य ग्रन्थों की प्रशस्ति पढ़ते हैं वे प्रशस्तियाँ कह रही हैं कि हमारे यहाँ जो पर्व होते थे, व्रत होते थे, कोई दशमी का व्रत कर रहा है, कोई पर्यूषण व्रत कर रहा है, कोई रोहणी, कोई जिनगुण संपत्ति व्रत कर रहा है। इन व्रतों के उद्यापन में ये हमारी माताएँ ग्रन्थ लिखवा-लिखवा करके मन्दिर-मन्दिर में रखती थीं। वे ही पाण्डुलिपियाँ आज हमारे यहाँ सुरक्षित हैं। पहले प्रकाशन तो होता नहीं था वो लिखवाते थे, कितनी जिनश्रुत के प्रति श्रद्धा थी। आज आपसे कहना है जितनी भी पाण्डुलिपियाँ हैं उन्हें अपने ही मन्दिर में सुरक्षित रखो। एक जगह सम्पूर्ण संगृहीत कर दोगे और किसी मनचले का मन मचल गया, पूरे देश की पाण्डुलिपियाँ नष्ट हो जायेंगी।

जहाँ-जहाँ सुरक्षित हो रही हैं उनसे कह दो इनकी और प्रतिलिपि बना कर सुरक्षित करो यदि तुमने पूरे देश की संगृहीत कर ली हैं। प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ जैसे- प्राचीन मन्दिर, प्राचीन प्रतिमाएँ ऐसी प्राचीन पाण्डुलिपियाँ ऐसी ही सुरक्षित रहेंगी तभी हमारी जैनत्व की प्राचीनता सिद्ध कर पाओगे। वर्तमान के मन्दिरों से, वर्तमान के ग्रन्थों से इतिहास सुरक्षित नहीं कर पाओगे। इसलिए नये बनाइए पर पुराने को सुरक्षित रखिए। पुराने मिटा के नये मत बनाओ। पुराने की रक्षा करते हुए नये बनाइए। ये बहुत बड़ा अंधकार है, तूफान चल रहा है कि हम लोग ही प्राचीन जिनालयों को ध्वस्त कर रहे हैं। ज्ञानी! एक ऐसा जीव हुआ भारत की भूमि पर जिसने मन्दिर प्रतिमायें भंजन किए उसे तो आज तक हम कोसते रहते हैं। अब तुम्हीं भंजन कर रहे हो उसे कौन कोसने जायेगा ? इसलिए प्राचीन दीवाल-दीवाल की रक्षा करो। प्राचीन मन्दिर मत तोड़ो। तुम नये मन्दिर बनाओ। इतिहास को सुरक्षित रखो।

तीर्थक्षेत्र कमेटी का मतलब यह नहीं है कि क्षेत्र में राज करो और तोड़ कर फेंक दो। तीर्थक्षेत्र कमेटी का उद्देश्य है कि क्षेत्र की रक्षा करो। इसलिए **साहित्य की रक्षा, पुरातत्त्व की रक्षा और योगियों की रक्षा - इन तीनों की रक्षा ही संस्कृति की रक्षा है।** आपको ऐसा लगेगा कि महाराज विरोध में हैं, पर जिस दिन आपको आगम समझ में आयेगा उस दिन आप सच कहोगे। जितने त्यागीव्रती हैं, विद्वान् हैं, वे समझते हैं कि देखो विशुद्धसागर ऐसा बोलते रहते हैं, पर ठंडे दिमाग से सोचोगे तो सबसे बड़ा मित्र मैं ही हूँ, क्योंकि प्रशंसक जो होते हैं वे सत्य को नहीं कहते। आचार्य वट्टकेरस्वामी, आचार्य शिवकोटीस्वामी

और अपराजित सूरि की भाषा में मैं कहूँ तो ज्ञानी! मैं कौन-सा मित्र हूँ? प्रतिकूल मित्र हूँ। जितने लोग मुझे प्रतिकूल मानते, पता है मैं उनका प्रतिकूल मित्र हूँ। ठंडे मस्तिष्क से सोचेंगे तो पता चल जायेगा और जो तुम्हारे अनुसार तुम्हारी प्रशंसा में प्रशंसा करने लगे हुए हैं, जो तुम्हारा साथ दे रहे हैं, वे अनुकूल शत्रु हैं। अनुकूल शत्रुओं की भीड़ लगी हुई है। पर सत्य है तुम मुझे शत्रु मानो पर एक सामायिक में चिंतन कर लेना, कि वे अनुकूल शत्रु हैं। कोई श्रावक कहता है - डर नहीं लगता क्या ? इसमें डरने का क्या विषय है, इसमें डरने का कोई विषय नहीं है। जो है, सो है। इस प्रकार से पुनः सरस्वती की वंदना, आचार्य भगवन्तों की वंदना करते हुए आज समयसार की पूर्णता हुई, समयसार आत्मख्याति टीका पूर्ण हुई।

हम तो वाचना करके चले जाते हैं। ये सुव्रतसागर और अन्य त्यागीगण-श्रावक लिखते हैं, शब्द संयोजन करते हैं। मैं क्या करता हूँ? आज स्वाध्याय की परम्परा बढ़ रही है, श्रमण-संस्कृति की रक्षा का अच्छा समय चल रहा है। जिन-भारती की वंदना कर लो।

प्रथमं भारती नाम, द्वितीयं च सरस्वती।
तृतीयं शारदा देवी, चतुर्थं हंसगामिनी ॥1॥
पंचमं विदुषांमाता, षष्ठं वागीश्वरी तथा।
कुमारी सप्तमं प्रोक्तं, अष्टमं ब्रह्मचारिणी ॥2॥
नवमं च जगन्माता, दशमं ब्राह्मिणी तथा।
एकादशं तु ब्रह्माणी, द्वादशं वरदा भवेत् ॥3॥
वाणी त्रयोदशं नाम, भाषाचैव चतुर्दशं।
पंचदशं च श्रुतदेवी, षोडशं गौर्निगद्यते ॥4॥
एतानि श्रुतनामानि, प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
तस्य संतुष्यति माता, शारदा वरदा भवेत् ॥5॥
सरस्वती नमस्तुभ्यं, वरदे काम रूपिणी।
विद्यारम्भं करिष्यामि, सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥6॥

आत्मस्वभावं परभावभिन्नं।
आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।
भगवान् महावीर स्वामी की जय।
नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची

संक्षेप	ग्रंथ का नाम	रचयिता
अ.अ.क.	अध्यात्म अमृत कलश	आचार्य श्री अमृतचंद्र स्वामी
आ.प.	आलाप पद्धति	आचार्य श्री देवसेन स्वामी
आ.मी.	आप्त मीमांसा	आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी
इष.	इष्टोपदेश	आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी
का.अ.	कार्तिकेयानुप्रेक्षा	आचार्य श्री कार्तिकेय स्वामी
का.व्या./क.व्या.	कलाप व्याकरण	श्री शर्ववर्माचार्य
गो.जी.का.	गोम्मटसार जीवकाण्ड	आचार्य श्री नेमिचन्द्र स्वामी
छ.ढा.	छहढाला	पण्डित श्री दौलतराम
त.सू.	तत्त्वार्थ सूत्र	आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी
त.सा.	तत्त्वसार	आचार्य श्री देवसेन स्वामी
ति.प.	तिलोय-पण्णत्ती	आचार्य श्री यतिवृषभ स्वामी
द्र.सं.	द्रव्य-संग्रह	आचार्य श्री नेमिचन्द्र स्वामी
द.पा.	दंसण पाहुड	आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी
नि.सा.	नियमसार	आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी
न्या.दी.	न्याय दीपिका	अभिनव यतिभूषण स्वामी
प.प्र.	परमात्म प्रकाश	आचार्य श्री योगीन्द्र स्वामी
प.प्र.टी.	परमात्म प्रकाश टीका	आचार्य श्री ब्रह्मदेव सूरि
पं.का.	पंचास्तिकाय	आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी
पु.सि.उ.	पुरुषार्थ सिद्धयुपाय	आचार्य श्री अमृतचंद्र स्वामी
प्र.सा.	प्रवचनसार	आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी
प्र.सू.	प्रतिक्रमण सूत्र	श्री गौतम गणधर स्वामी
प.मु.सू.	परीक्षा मुख सूत्र	आचार्य श्री माणिक्य नंदी स्वामी
भा.पा.	भाव पाहुड	आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी
भ.आ.	भगवती आराधना	आचार्य श्री शिवार्य स्वामी
मूला.	मूलाचार	आचार्य श्री वट्टकेर स्वामी
मो.पा.	मोक्ख पाहुड	आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी
युक्.	युक्त्यनुशासन	आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी
र.क.श्रा.	रत्नकरण्ड श्रावकाचार	आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी

र.सा.	रयणसार	आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी
वी.भ.	वीरभक्ति	आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी
यो.भ.	योगी भक्ति	आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी
स.सा.	समयसार	आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी
स.तं.	समाधितंत्र	आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी
स.सु.	सम्मई सुत्तं	आचार्य श्री सिद्धसेन गणी
स.भ.	समाधि भक्ति	आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी
स.सि.	सर्वार्थ सिद्धि	आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी
सा.पा.	सामायिक पाठ	आचार्य श्री अमितगति स्वामी
सु.र.सं.	सुभाषित रत्न संदोह	आचार्य श्री अमितगति स्वामी
सु.पा.	सुत्त पाहुड	आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी
स्व. स्.	बृहत्स्वयंभू स्तोत्र	आचार्य श्री समंतभद्र स्वामी
स्व.सं.	स्वरूप संबोधन	आचार्य श्री अकलंक स्वामी
ज्ञाना.	ज्ञानांकुश	आचार्य श्री योगीन्द्रदेव स्वामी